संपादकीय विज्ञप्ति

प्रसन्नता का विषय है कि 'सूरसागर' का यह संस्करण जिसके संपादन मे हमें चार वर्षों से अधिक समय लगा था और जो पिछले दस बारह वर्षों से अप्रकाशित पड़ा था, अब प्रकाश में आ रहा है। सभा द्वारा इसे प्रकाशित करने के कई प्रयत्न इसके पूर्व भी किए गए थे, एक बार तो इसका मासिक पत्राकार 'राजसंस्करण' आठ अंकों तक प्रकाशित भी हुआ था, पर वह कार्य भी अधूरा ही रहा और बीच में ही स्थगित कर दिया गया। 'सूरसागर' जैसे महान् और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का कोई सुसंपादित प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध न होने के कारण हिंदीभाषी जनता अत्यंत असमंजस में रही है और विशेषत: काव्य-प्रेमियों और सूरकाव्य के अध्येताओं के लिये बड़ी विषम परिस्थिति थी। उन्हें कतिपय छोटे संग्रहों से ही काम चलाना पड़ता था। प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशित होने से यह अभाव अधिक अंश तक दूर हो जायगा और प्रथम बार सूरसागर के समस्त उपलब्ध पदों का शुद्ध पाठ जनसमाज को प्राप्त होगा।

इस विज्ञप्ति के साथ हम यह स्वीकार करते हैं कि प्रस्तुत संस्करण में संपादित प्रति का पूरा उपयोग नहीं किया जा सका है। इसमें समस्त उपलब्ध पद तो दे दिए गए हैं परंतु किन प्राचीन प्रतियो में कौन से पद मिलते हैं और कौन से नहीं मिलते, इसका विवरण नहीं दिया जा सका है। निश्चय ही प्रस्तुत पदावली में कई सौ पद निर्भ्रांत रूप से प्रक्षिप्त हैं और अन्य कई सौ पद अत्यधिक संदिग्ध हैं। यह सूचना हम पादटिप्पणियों में देना चाहते थे, परतु प्राचीन प्रतियों की प्रतिलिपि का काल तथा उनकी सापेक्षिक प्रामाणिकता संबंधी वक्तव्य दिए बिना किसी पद के प्रक्षिप्त या संदिग्ध होने का निर्देश मात्र कर देना हमें विशेष समीचीन नहीं प्रतीत हुआ। विभिन्न प्रतियों में पाए जानेवाले पाठभेद तथा राग-रागिनियों-संबंधी उल्लेख भी यहाँ नहीं दिए जा सके हैं। दीर्घ वर्णों का ह्रस्व उच्चारण करने के निमित्त कई स्थानों पर संकेतक चिह्न आवश्यक थे, परंतु यहाँ उनका भी प्रयोग नहीं किया जा सका। महाकवि सूरदास तथा उनके इस महान

काव्यग्रंथ पर एक प्रशस्त और शोधपूर्ण भूमिका भी आवश्यक थी जो इस संस्करण में नहीं दी जा सकी है। सभा द्वारा व्यवस्था की जा रही है कि ऊपर निर्देश किए गए अंगों की पूर्ति आगामी संस्करण में की जाय और वह संस्करण भी यथासंभव शीघ्र प्रकाशित किया जाय। परंतु जब तक वह प्रस्तावित संस्करण प्रकाशित नहीं होता, तब तक हिंदीभाषी और हिंदीप्रेमी विशाल जनसमूह को सूरसागर के शुद्ध पाठ की यह आरंभिक प्रति ही भेंट की जा रही है। आशा है इसका उचित उपयोग किया जायगा।

'सूरसागर' के इस संस्करण को प्रस्तुत करने की कल्पना सर्वप्रथम स्वर्गीय श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी के मन में हुई थी जो व्रजभाषा और प्राचीन काव्य के अनन्य प्रेमी और मर्मज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने इस संकल्प को पूरा करने के निमित्त अनेक स्थानों से 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त की थीं और संपादन कार्य की प्रारंभिक रूपरेखा भी बनाई थी। उन्होंने व्रजभाषा व्याकरण संबंधी आवश्यक शोध किए थे और अपने उन विचारों और निर्णयों को लिपिबद्ध भी कर लिया था। व्रजभाषा की प्राचीन पुस्तकों तथा 'सूरसागर' की पुरानी प्रतिलिपियों के आधार पर उन्होंने प्रस्तुत संस्करण के लिये एक सामान्य लिपि-पद्धति का भी निर्माण किया था, परंतु इस आरंभिक सामग्री को लेकर वे संपादन-कार्य में संलग्न ही हुए थे, इतने में उनका असामयिक शरीरपात हो गया और उनकी योजना अकृतकार्य ही रही।

'रत्नाकर' जी तथा उनके उत्तराधिकारियों के इच्छानुसार यह कार्य सभा को सौंप दिया गया और वह संपूर्ण सामग्री सभा के अधिकार में रख दी गई, जो 'रत्नाकर' जी ने एकत्र की थी। सभा द्वारा समस्त कार्य नए सिरे से आरंभ किया गया। कुछ दिनों तक श्री मुंशी अजमेरी यह कार्य करते रहे, परंतु कुछ ही दिनों में वे इससे उपराम हो गए। सन् '३३ के अंत में सभा के तत्कालीन अधिकारी डा० श्यामसुंदरदास जी ने मुझे इस कार्य के लिये बुलाया और सभा का आदेश पाकर '३४ से '३७ तक चार वर्ष पर्यंत मैं इसमें संलग्न रहा। इस अवधि में मैंने, प्रथम पद से लेकर अंतिम पद तक, समस्त ग्रंथ का संपादन किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने पूर्ववर्ती संपादकों, विशेषकर श्री 'रत्नाकर' जी के मूल्यवान निर्देशों का मैंने यथोचित उपयोग किया। सभा तथा हम सभी उनके कृतज्ञ हैं कि उन्होंने व्ययसाध्य

बहुमूल्य सामग्री और दुर्लभ ग्रंथसंग्रह सभा को समर्पित किया जिसके बिना सभा इस संस्करण को इतने विशुद्ध और विश्वस्त रूप में उपस्थित न कर सकती। मैं सभा द्वारा नियोजित 'सूरसमिति' के सदस्यों का भी आभारी हूँ जिनसे समय समय पर उपयोगी परामर्श प्राप्त हुए थे। विशेषतः स्वर्गीय 'हरिऔध' जी के तत्संबंधी मार्मिक सुझाव मुझे सदैव स्मरण रहेंगे। अपने सहायक कार्यकर्ताओं, विशेषकर 'रत्नाकर' जी के सहकर्मी श्री चंद्रिकाप्रसाद जी के मूल्यवान सहयोग का उल्लेख करना भी मेरे लिये आवश्यक है। खेद है, वे भी असमय में ही हमारे बीच से उठ गए। इन सब विधायकों, सहकारों और उपायनों के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए भी संपादन-संबंधी समस्त कार्य और उसकी अनगिन त्रुटियों के लिये मैं किसी अन्य की ओट नहीं ले सकता। वह सारा उत्तरदायित्व मेरा रहा है और उसकी पूरी परीक्षा मुझे ही देनी पड़ेगी। मैं विनीत भाव से सहृदय पाठक-समाज के संमुख उपस्थित होकर समस्त त्रुटियों के लिये क्षमायाचना करता हूँ। सूचना मिलने पर मैं उनके परिहार का प्रयत्न भी करूँगा, और आवश्यकता होने पर अपनी निजी संमतियाँ उन विषयों पर दे सकूँगा जिनके संबंध में शंका होगी। परंतु मुझे पूरा परितोष तो तभी प्राप्त होगा जब 'सूरसागर' के चार वर्षों के संपादन-काल के अपने संपूर्ण संपादकीय प्रयत्नों को पाठकों के संमुख उपस्थित कर सकूँगा जिसके आधार पर वे हमारी सफलता असफलता का निर्णय कर सकेंगे। साथ ही सूरदास तथा उनके काव्य के संबंध में विस्तृत प्रस्तावना लिखकर मैं उस अधीत सामग्री का उपयोग कर लेना चाहता हूँ जिसके बिना मेरा चार वर्षों का संपादकीय जीवन अपने प्रयोजन की अभिव्यक्ति नहीं कर सकेगा। इसके लिये पाठक-समाज से आगामी संस्करण की प्रतीक्षा करने का अनुरोध-अनुनय करना ही संप्रति मेरा एकमात्र अवलंब है।

नंददुलारे वाजपेयी

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ

सूरसागर

प्रथम स्कंध

विनय

मंगलाचरण — *राग बिलावल*

चरन-कमल बंदौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ॥ १॥

सगुणोपासना — *राग कान्हरौ*

अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै॥ २॥

भक्त-वत्सलता — *राग मारू*

बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगत-पिता, जगदीस, जगत-गुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई।
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई।
बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाई।
बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हैं ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं॥३॥

राग धनाश्री

करनी करुना-सिंधु की, मुख कहत न आवै ।
कपट हेत परसैं बकी, जननी-गति पावै ।
बेद-उपनिषद जासु कौं, निरगुनहिं बतावै ।
सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै ।
उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै ।
कंस मारि, राजा करै, आपहु सिर नावै ।
जरासंध बंदी कटैं नृप-कुल जस गावै ।
असमय-तन गोतम-तिया कौ साप नसावै ।
लच्छा-गृह तैं काढ़ि कैं पांडव गृह ल्यावै ।
जैसैं गैया बच्छ कैं सुमिरत उठि धावै ।
बरुन-पास तैं ब्रजपतिहिं छन माहिं छुड़ावै ।
दुखित गयंदहिं जानि कै आपुन उठि धावै ।
कलि मैं नामा प्रगट ताकि छानि छवावै ।
सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै ॥ ४ ॥

राग मारू

ऐसी को करी अरु भक्त काजैं ।
जैसी जगदीस जिय धरी लाजैं ॥
हिरनकस्यप बढ़्यो उदय अरु अस्त लौं, हठी प्रहलाद चित चरन लायौ ।
भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी, खंभ तैं प्रगट ह्वै जन छुड़ायौ ।
ग्रस्यौ गज ग्राह लै चल्यौ पाताल कौं, काल कैं त्रास मुख नाम आयौ ।
छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ ।
कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पांडु की बधू जस नैंकु गायौ ।
लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ़्यौ तन-चीर नहिं अंत पायौ ।
रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ौ ।
जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के बिभव तैं अधिक बाढ़ौ ।
सक्र कौ दान-बलि-मान ग्वारनि लियौ, गह्यौ गिरि पानि,
जस जगत छायौ ।
यहै जिय जानि कैं अंध भव त्रास तैं, सूर कामी-कुटिल सरन आयौ ॥५॥

राग रामकली

का न कियौ जन-हित जदुराई ।
प्रथम कह्यौ जो बचन दयारत, तिहिं बस गोकुल गाइ चराई ।

भक्तबछल बपु धरि नरकेहरि, दनुज दह्यौ, उर दरि, सुरसाँई ।
बलि बल देखि, अदिति-सुत-कारन, त्रिपद ब्याज तिहुँपुर फिरि आई ।
एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्रुति गाई ।
सूर दीन प्रभु-प्रगट-बिरद सुनि अजहुँ दयाल पतत सिर नाई ॥६॥

राग रामकली

जहाँ जहाँ सुमिरे हरि जिहिं बिधि, तहँ तैसैं उठि धाए (हो) ।
दीन-बंधु हरि, भक्त-कृपानिधि, वेद-पुराननि गाए (हो) ।
सुत कुबेर के मत्त-मगन भए, बिषै-रस नैननि छाए (हो) ।
मुनि सराप तैं भए जमलतरु, तिन्ह हित आपु बँधाए (हो) ।
पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो) ।
संपति दै वाकी पतिनी कौं, मन-अभिलाष पुराए (हो) ।
जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर, तब हरि कौं उर ध्याए (हो) ।
गरुड़ छाँड़ि, आतुर ह्वै धाए, सो ततकाल छुड़ाए (हो) ।
कलानिधान, सकल-गुन-सागर, गुरु धौं कहा पढ़ाए (हो) ।
तिहिं उपकार मृतक सुत जाँचे, सो जमपुर तैं ल्याए (हो) ।
तुम मोसे अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए (हो) ।
सूरदास-प्रभु भक्त-बछल तुम, पावन-नाम कहाए (हो) ॥७॥

राग धनाश्री

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ ।
तिनका सौं अपने जनकौ गुन मानत मेरु-समान ।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान ।
बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसैं ।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौं तौ तैसैं !
भक्त-बिरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे ।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ॥ ८ ॥

राग नट

हरि सौं ठाकुर और न जन कौं ।
जिहिं जिहिं बिधि सेवक सुख पावै, तिहिं बिधि राखत मन कौं ।
भूख भए भोजन जु उदर कौं, तृषा तोय, पट तन कौं ।
लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत-सँग, औचट गुनि गृह बन कौं ।

परम उदार, चतुर चिंतामनि, कोटि कुबेर निधन कौं।
राखत है जन की परतिज्ञा, हाथ पसारत कन कौं।
संकट परैं तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौं।
कोटिक करै एक नहिं मानै सूर महा कृतघन कौं ॥९॥

राग धनाश्री

हरि सौं मीत न देख्यौ कोई।
बिपति-काल सुमिरत, तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई।
ग्राह गहे गजपति मुकरायौ, हाथ चक्र लै धायौ।
तजि बैकुंठ, गरुड़ तजि, श्री तजि, निकट दास कैं आयौ।
दुर्बासा कौ साप निवार्‌यौ, अंबरीष-पति राखी।
ब्रह्मलोक-परजंत फिर्‌यौ तहँ देव-मुनी-जन साखी।
लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत बुधि-बल नाथ, उबारे।
सूरदास-प्रभु अपने जन के नाना त्रास निवारे ॥१०॥

राग धनाश्री

राम भक्तवत्सल निज बानौं।
जाति, गोत, कुल, नाम, गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं।
सिव-ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिं जानौं।
हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं ?
प्रगट खंभ तैं दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ।
रघुकुल राघव कृस्न सदा ही गोकुल कीन्हौं थानौ।
बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारंबार बखानौं।
ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी-सुत, कौन कौन अरगानौ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि-हाथ बिकानौ।
राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ।
रसना एक, अनेक स्याम-गुन, कहँ लगि करौं बखानौ !
सूरदास-प्रभु की महिमा अति, साखी बेद-पुरानौ ॥११॥

राग बिलावल

काहू के कुल तन न विचारत।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत।
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत।
भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज-मान-मद टारत।

ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ ब्यौहारत।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल-प्रन पारत ॥१२॥

राग सारंग

गोबिंद प्रीति सबनि की मानत।
जिहिं जिहिं भाइ करत जन सेवा, अंतर की गति जानत।
सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई।
जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत-भाई।
संतत भक्त-मीत हितकारी स्याम बिदुर कैं आए।
प्रेम-बिकल, अति आनँद उर धरि, कदली-छिकुला खाए।
कौरव-काज चले रिषि सापन, साक-पत्र सु अघाए।
सूरदास करुना-निधान प्रभु, जुग जुग भक्त बढ़ाए ॥१३॥

राग रामकली

सरन गए को को न उबार्‌यौ।
जब जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभार्‌यौ।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुरवासा कौ क्रोध निवार्‌यौ।
ग्वालनि हेत धर्‌यौ गोबर्धन, प्रकट इंद्र कौ गर्ब प्रहार्‌यौ।
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मार्‌यौ।
नरहरि रूप धर्‌यौ करुनाकर, छिनक माहिं उर नखनि बिदार्‌यौ।
ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टार्‌यौ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग-भूमि मैं कंस पछार्‌यौ ॥१४॥

राग केदारौ

जन की और कौन पति राखै ?
जाति-पाँति-कुल-कानि न मानत, बेद-पुराननि साखै।
जिहिं कुल राज द्वारिका कीन्हौ, सो कुल साप तैं नास्यौ।
सोइ मुनि अंबरीष कैं कारन तीनि भुवन भ्रमि त्रास्यौ।
जाकौ चरनोदक सिव सिर धरि, तीनि लोक हितकारी।
सोइ प्रभु पांडु-सुतनि के कारन निज कर चरन पखारी।
बारह बरस बसुदेव-देवकिहिं कंस महा दुख दीन्हौ।
तिन प्रभु प्रहलादहिं सुमिरत हीं नरहरि-रूप जु कीन्हौ।
जग जानत जदुनाथ, जिते जन निज-भुज-स्रम-सुख पायौ !
ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ ॥१५॥

राग केदारौ

जब जब दीननि कठिन परी।
जानत हौं, करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी।
सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी।
सुमिरत पट कौ कोट बढ़्यौ तब, दुख-सागर उबरी।
ब्रह्म-बाण तैं गर्भ उबार्‌यौ, टेरत जरी जरी।
बिपति-काल पांडव-बधु बन मैं राखी स्याम ढरी।
करि भोजन अवसेस जज्ञ कौ त्रिभुवन-भूख हरी।
पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हौ राखि करी।
तब तब रच्छा करी भगत पर जब जब बिपति परी।
महा मोह मैं पर्‌यौ सूर प्रभु, काहैं सुधि बिसरी? ॥१६॥

राग रामकली

और न काहुहिं जन की पीर।
जब जब दीन दुखी भयौ, तब तब कृपा करी बलबीर।
गज बल-हीन बिलोकि दसौ दिसि, तब हरि-सरन पर्‌यौ।
करुनासिंधु, दयाल, दरस दै, सब संताप हर्‌यौ।
गोपी-ग्वाल-गाय-गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्हौ।
मागध हत्यौ, मुक्त नृप कीन्हें, मृतक विप्र-सुत दीन्हौ।
श्री नृसिंह बपु धर्‌यौ असुर हति, भक्त-वचन प्रतिपार्‌यौ।
सुमिरत नाम, द्रुपद-तनया कौ पट अनेक बिस्तार्‌यौ।
मुनि-मद मेटि दास-व्रत राख्यौ, अंबरीष-हितकारी।
लाखा-गृह तैं, सत्रु-सैन तैं, पांडव-बिपति निवारी।
वरुन-पास ब्रजपति मुकरायौ दावानल-दुख टार्‌यौ।
गृह आने वसुदेव-देवकी, कंस महा खल मार्‌यौ।
सो श्रीपति जुग जुग सुमिरन-बस, वेद बिमल जस गावै।
असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै? ॥१७॥

राग केदारौ

ठकुरायत गिरिधर की साँची।
कौरव जीति जुधिष्ठिर-राजा, कीरति तिहूँ लोक मैं माँची।
ब्रह्म-रुद्र डर डरत काल कैं, काल डरत भ्रू-भँग की आँची।
रावन सौ नृप जात न जान्यौ, माया विषम सीस पर नाची।

गुरु-सुत आनि दिए जमपुर तैं बिप्र सुदामा कियौ अजाची।
दुस्सासन कटि-बसन छुड़ावत, सुमिरत नाम द्रौपदी बाँची।
हरि-चरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ, तिनकी मति काँची।
सूरदास भगवंत भजत जे, तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची ॥१८॥

राग मलार

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक।
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक।
कह पांडव कैं घर ठकुराई ? अरजुन के रथ-बाहक।
कहा सुदामा कैं धन हो ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक ॥१९॥

राग कान्हरौ

जैसैं तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ।
अपने जन कौं दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ।
जहँ जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ।
भक्ति-हेत प्रहलाद उबार्यौ, द्रौपदि-चीर बढ़ायौ।
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं, नामदेव-घर छायौ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिं दारिद्र नसायौ ॥२०॥

राग रामकली

नाथ अनाथनि ही के संगी।
दीनदयाल, परम करुनामय, जन-हित हरि बहु-रंगी।
पारथ-तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी।
स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बढ़्यौ बसन उमंगी।
कहा बिदुर की जाति बरन है, आइ साग लियौ मंगी।
कहा कूबरी सील-रूप-गुन ? बस भए स्याम त्रिभंगी।
ग्राह गह्यौ गज बल बिनु ब्याकुल, बिकल गात, गति लंगी।
धाइ चक्र लै ताहि उबार्यौ, मार्यौ ग्राह बिहंगी।
कहा कहौं हरि केतिक तारे, पावन-पद परतंगी।
सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी ॥२१॥

जे जन सरन भजे बनवारी।
ते ते राखि लिए जग-जीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी।
संकट तैं प्रहलाद उबार्‌यौ, हिरनाकसिप-उदर नख फारी।
अंबर हरत द्रुपद-तनया की दुष्ट-सभा मधि लाज सम्हारी।
राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं, कर-नख पर गोवर्धन धारी।
सूरदास प्रभु सब सुख-सागर, दीनानाथ, मुकुंद, मुरारी ॥२२॥

पारथ के सारथि हरि आप भए हैं।
भक्त-बछल नाम निगम गाइ गए हैं।
बाएँ कर बाजि-बाग दाहिन हैं बैठे।
हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यौं ऐंठे।
छाता लौं छाँह किए सोभित हरि-छाती।
लागन नहिं देत कहूँ समर-आँच ताती।
करन-मेघ बान-बूँद भादौं-झरि लायौ।
जित जित मन अर्जुन कौ तितहिं रथ चलायौ।
कौरौ-दल नासि नासि कीन्हौं जन-भायौ।
सरन गए राखि लेत सूर सुजस गायौ ॥२३॥

राग परज

स्याम-भजन-बिनु कौन बड़ाई ?
बल, बिद्या, धन, धाम, रूप, गुन और सकल मिथ्या सौंजाई।
अंबरीष, प्रहलाद, नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई।
गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई।
मानी हार बिमुख दुरजोधन, जाके जोधा है सौ भाई।
पांडव पाँच भजे प्रभु-चरननि, रनहिं जिताए हैं जदुराई।
राज-रवनि सुमिरे पति-कारन असुर-बंदि तैं दिए छुड़ाई।
अति आनंद सूर तिहिं औसर, कीरति निगम कोटि मुख गाई ॥२४॥

राग बिहागरौ

कहा गुन बरनौं स्याम, तिहारे।
कुबिजा, बिदुर, दीन द्विज, गनिका, सबके काज सँवारे।
जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं रिषिपति पतित बिचारे।
भिल्लिनि के फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे।

कोमल कर गोवर्धन धार्यौ जब हुते नंद-दुलारे।
दधि-मिस आपु बँधायौ दाँवरि, सुत कुवेर के तारे।
गरुड़ छाँड़ि प्रभु पायँ पियादे गज-कारन पग धारे।
अब मोसौं अलसात जात हौ अधम-उधारनहारे!
कहँ न सहाय करी भक्तनि की, पांडव जरत उबारे।
सूर परी जहँ विपति दीन पर, तहाँ विघन तुम टारे॥२५॥

राग सारंग

भक्तनि हित तुम कहा न कियौ?
गर्भ परीच्छित-रच्छा कीन्ही, अंबरीष-व्रत राखि लियौ।
जन प्रहलाद-प्रतिज्ञा पुरई, सखा विप्र-दारिद्र हयौ।
अंबर हरत द्रौपदी राखी, ब्रह्म-इंद्र कौ मान नयौ।
पांडव कौ दूतत्व कियौ पुनि, उग्रसेन कौं राज दयौ।
राखी पैज भक्त भीषम की, पारथ कौ सारथी भयौ।
दुखित जानि दोउ सुत कुवेर के, नारद-साप निवृत्त कियौ।
करि वल-विगत उबारि दुष्ट तैं, ग्राह ग्रसत बैकुंठ दियौ।
गौतम की पतिनी तुम तारी, देव, दवानल कौं अँचयौ।
सूरदास-प्रभु भक्त-बछल हरि, बलि-द्वारैं दरवान भयौ॥२६॥

राग धनाश्री

ऐसैहिं जनम बहुत बौरायौ।
बिमुख भयौ हरि-चरन-कमल तजि, मन संतोष न आयौ।
जब जब प्रगट भयौ जल थल मैं, तब तब बहु बपु धारे।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-बस, अतिहिं किए अघ भारे।
नृग, कपि, बिप्र, गीध, गनिका, गज, कंस-केसि-खल तारे।
अघ, बक, बृषभ, बकी, धेनुक हति, भव-जल-निधि तैं उबारे।
संखचूड़, मुष्टिक, प्रलंब अरु तृनावर्त संहारे।
गज-चानूर हते दव नास्यौ, ब्याल मथ्यौ, भयहारे!
जन-दुख जानि, जमलद्रुम-भंजन, अति आतुर ह्वै धाए।
गिरि कर धारि इंद्र-मद मर्द्यौ, दासनि सुख उपजाए।
रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन सरन कहि भाषी।
चढ़े दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा-माँझ पति राखी।

मृतक जिवाइ दिए गुरु के सुत, व्याध परम गति पाई।
नंद-बरुन-बंधन-भय-मोचन, सूर पतित सरनाई ॥२७॥

राग धनाश्री

तातैं जानि भजे बनवारी। सरनागत की ताप निवारी।
जन-प्रहलाद-प्रतिज्ञा पारी। हिरनकसिपु की देह बिदारी।
ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी। अंबरीप की दुर्गति टारी।
द्रुपद-सुता जब प्रगट पुकारी। गहत चीर हरि-नाम उवारी।
गज, गनिका, गौतम-तिय तारी। सूरदास सठ, सरन तुम्हारी ॥२८॥

राग धनाश्री

ऐसे कान्ह भक्त हितकारी।
जहाँ जहाँ जिहिं काल सम्हारे, तहँ तहँ त्रास निवारी।
धर्म-पुत्र जब जज्ञ उपायौ, द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौं।
अस्व-निमित उत्तर दिसि कैं पथ गमन धनंजय कीन्हौं।
अहिपति-सुता-सुवन सन्मुख ह्वै वचन कह्यौ इक हीनौ।
पारथ बिमल बभ्रुबाहन कौं सीस-खिलौना दीनौ।
इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरपत लोचन नीर।
पुत्र-कबंध अंक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर
लै लै स्रोन हृदय लपटावति, चुंबति भुजा गँभीर।
त्यागति प्रान निरखि सायक धनु, गति-मति-बिकल-सरीर।
ठाढ़े भीम, नकुल, सहदेव ऽरु नृप सब कृष्न समेत।
पौढ़े कहा समर-सेज्या सुत, उठि किन उत्तर देत!
थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह अचेत।
या रथ बैठि बंधु की गर्जहिं पुरवै को कुरुखेत?
काकौ बदन निहारि द्रौपदी दीन दुखी संभरिहै?
काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहै?
काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट रच्छा करिहैं?
को कौरव-दल-सिंधु मथन करि या दुख पार उतरिहै?
चिंता मानि, चितै अंतर-गति, नाग-लोक कौं धाए।
पारथ-सीस सोधि अष्टाकुल, तब जदुनंदन ल्याए।
अमृत-गिरा बहुत बरपि सूर-प्रभु, भुज गहि पार्थ उठाए।
अस्व समेत बभ्रुवाहन लै, सुफल जज्ञ-हित आए ॥२६॥

राग गौरी

मोहन के मुख ऊपर वारी।
देखत नैन सबै सुख उपजत, वार बार तातैं बलिहारी।
ब्रह्मा बाल बछरुवा हरि गयौ, सो ततछन सारिखे सँवारी।
कीन्हौं कोप इंद्र बरषारितु, लीला लाल गोवर्धन धारी।
राखी लाज समाज माहिं जब, नाथ नाथ द्रौपदी पुकारी।
तीनि लोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक-सुखकारी ॥३०॥

राग सोरठ

गोविंद गाढ़े दिन के मीत।
गज अरु ब्रज प्रहलाद, द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत।
लाखागृह पांडवनि उबारे, साक-पत्र मुख नाए।
अंबरीष-हित साप निवारे, ब्याकुल चले पराए।
नृप-कन्या कौ ब्रत प्रतिपार्‌यौ, कपट बेष इक धार्‌यौ।
तामैं प्रगट भए श्रीपति जू, अरि-गन-गर्ब प्रहार्‌यौ।
कोटि छ्यानबै नृप-सेना सब जरासंध बँध छोरे।
ऐसैं जन परतिज्ञा राखत, जुद्ध प्रगट करि जोरे।
गुरु-बांधव-हित मिले सुदामहिं, तंदुल पुनि पुनि जाँचत।
भगत-विरह कौ अतिहीं कादर, असुर-गर्ब-बल नासत।
संकट-हरन-चरन हरि प्रगटे, बेद बिदित जस गावै।
सूरदास ऐसे प्रभु तजि कै, घर घर देव मनावै ! ॥३१॥

राग आसावरी—तिताला

प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ।
पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ।
जब गजराज ग्राह सौं अटक्यौ, बली बहुत दुख पायौ।
नाम लेत ताही छिन हरि जू, गरुड़हिं छाँड़ि छुड़ायौ।
दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहिं बसन बढ़ायौ।
सूरदास प्रभु भक्तबछल हैं, चरन सरन हौं आयौ ॥३२॥

राग सारंग

हरे बलबीर बिना को पीर ?
सारँग-पति प्रगटे सारँग तैं, जानि दीन पर भीर।

सारँग बिकल भयौ सारँग मैं, सारँग तुल्य सरीर।
पर्‌यौ काम सारँग-बासी सौं, राखि लियौ बलबीर।
सारँग इक सारँग ह्वै लोट्यौ, सारँगही कैं तीर।
सारँग-पानि राय ता ऊपर, गए परीच्छत कीर।
गहैं दुष्ट द्रुपदी कौ सारँग, नैननि बरसत नीर।
सूरदास प्रभु अधिक कृपा तैं, सारँग भयौ गँभीर ॥३३॥

राग सारंग

हरि के जन सब तैं अधिकारी।
ब्रह्मा महादेव तैं को बड़, तिनकी सेवा कछु न सुधारी।
जाँचक पैं जाँचक कह जाँचै? जौ जाँचै तौ रसना हारी।
गनिका-सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल कोऊ न पिता री।
तिनकी साखि देखि, हिरनाकुस-रावन-कुटुँब-सहित भई ख्वारी।
जन प्रहलाद प्रतिज्ञा पाली, कियौ बिभीषन राजा भारी।
सिला तरी जल माहिं सेत बँधि, बलि वह चरन अहिल्या तारी।
जे रघुनाथ-सरन तकि आए, तिनकी सकल आपदा टारी।
जिहिं गोबिंद अचल ध्रुव राख्यौ, रबि-ससि किए प्रदच्छिनकारी।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु धरनी जननि बोझ कत मारी! ॥३४॥

राग सारंग

जापर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुंदर सोइ, जिहिं पर कृपा करै।
कौन बिभीषन रंक-निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै।
राजा कौन बड़ौ रावन तैं, गर्बहिं-गर्ब गरै।
रंकव कौन सुदामाहू तैं, आप समान करै।
अधम कौन है अजामील तैं, जम तहँ जात डरै।
कौन बिरक्त अधिक नारद तैं, निसि-दिन भ्रमत फिरै।
जोगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताकौं काम छरै।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैं, हरि पति पाइ तरै।
अधिक सुरूप कौन सीता तैं, जनम बियोग भरै।
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, किहिं रस रसिक ढरै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै ॥३५॥

राग सारंग

जाकौं दीनानाथ निवाजैं।
भव-सागर मैं कबहुँ न झूकै, अभय निसाने बाजैं।
विप्र सुदामा कौं निधि दीन्हीं, अर्जुन रन मैं गाजैं।
लंका राज विभीषन राजैं, ध्रुव आकास विराजैं।
मारि कंस-केसी मथुरा मैं, मेट्यौ सबै दुराजैं।
उग्रसेन-सिर छत्र धर्यौ है, दानव दस दिसि भाजैं।
अंबर गहत द्रौपदी राखी, पलटि अंध-सुत लाजैं।
सूरदास प्रभु महा भक्ति तैं, जाति अजातिहिं साजैं॥३६॥

राग देवगंधार

जाकौं मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै।
हिरनकसिपु-परहार थक्यौ, प्रहलाद न नैंकु डरै।
अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत, अविचल राज करै।
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै।
दुरजोधन कौ मान भंग करि बसन-प्रवाह भरै।
जौ सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर क्रोध न कछू सरै।
ब्रज-जन राखि नंद कौ लाला, गिरिधर बिरद धरै।
जाकौ बिरद है गर्व-प्रहारी, सो कैसैं बिसरै?
सूरदास भगवंत-भजन करि, सरन गए उबरै॥३७॥

राग केदारौ

जाकौं हरि अंगीकार कियौ।
ताके कोटि बिघन हरि हरि कै, अभै प्रताप दियौ।
दुरबासा अँबरीष सतायौ, सो हरि-सरन गयौ।
परतिज्ञा राखी मन-मोहन फिरि तापैं पठयौ।
बहुत सासना दई प्रहलादहिं, ताहि निसंक कियौ।
निकसि खंभ तैं नाथ निरंतर, निज जन राखि लियौ।
मृतक भए सब सखा जिवाए, बिष-जल जाइ पियौ।
सूरदास-प्रभु भक्तबछल हैं, उपमा कौं न बियौ॥३८॥

राग बिलावल

कहा कमी जाके राम धनी ।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज धनी ।
अर्थ, धर्म अरु काम, मोच्छ फल, चारि पदारथ देत गनी ।
इंद्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी ।
कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी ।
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी ।
आनँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-सँताप की काटि तनी ।
सूर कहत जे भजत राम कौं, तिनसौं हरि सौं सदा बनी ॥३९॥

राग बिलावल

हरि के जन की अति ठकुराई ।
महाराज, रिषिराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई ।
निरभय देह, राज-गढ़ ताकौ, लोक मनन-उतसाहु ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ये भए चोर तैं साहु ।
दृढ़ बिस्वास कियौ सिंहासन, तापर बैठे भूप ।
हरि-जस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप ।
हरि-पद-पंकज पियौ प्रेम-रस, ताही कैं रँग रातौ ।
मंत्री ज्ञान न औसर पावै, कहत बात सकुचातौ ।
अर्थ-काम दोउ रहैं दुवारैं, धर्म-मोच्छ सिर नावैं ।
बुद्धि-विवेक बिचित्र पौरिया, समय न कबहूँ पावैं ।
अष्ट महा-सिधि द्वारैं ठाढ़ीं, कर जोरे, डर लीन्हे ।
छरीदार बैराग बिनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हे ।
माया, काल, कछू नहिं ब्यापै, यह रस-रीति जो जानै ।
सूरदास यह सकल समग्री, प्रभु-प्रताप पहिचानै ॥४०॥

तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार ।
जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार ।
किंकिनि नूपुर पाट पटंबर, मानौ लिये फिरैं घर-बार ।
मानुष-जनम पोत नकली ज्यौं, मानत भजन-बिना बिस्तार ।
कलिमल दूरि करन के काजैं, तुम लीन्हौ जग मैं अवतार ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसैं सूकर-स्वान-सियार ॥४१॥

माया-वर्णन राग केदारौ

विनती सुनौ दीन की चित दै, कैसैं तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष-तरंगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै।
ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै।
मेरे तो तुम पति, तुमहीं गति, तुम समान को पावै ?
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुख बिसरावै ॥४२॥

राग केदारौ

हरि, तुव माया को न बिगोयौ ?
सौ जोजन मरजाद सिंधु की, पल मैं राम बिलोयौ।
नारद मगन भए माया मैं, ज्ञान-बुद्धि-बल खोयौ।
साठि पुत्र अरु द्वादस कन्या, कंठ लगाए जोयौ।
संकर कौ मन हर्यौ कामिनी, सेज छाँड़ि भू सोयौ।
चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख-सिख तैं रोयौ।
सौ भैया दुरजोधन राजा, पल मैं गरद समोयौ।
सूरदास कंचन अरु काँचहिं, एकहिं धगा पिरोयौ ॥४३॥

राग सारंग

(गोपाल) तुम्हरी माया महाप्रबल, जिहिं सब जग बस कीन्हौ (हो)।
नैंकु चितै, मुसक्याइ कै, सब कौ मन हरि लीन्हौ (हो)।
पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)।
कटि लहँगा नीलौ बन्यौ, को जो देखि न मोहै (हो) ?
चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)।
अँतरौटा अवलोकि कै, असुर महा-मद माते (हो)।
नैकु दृष्टि जहँ परि गई, सिव-सिर टोना लागे (हो)।
जोग-जुगति बिसरी सबै, काम-क्रोध-मद जागे (हो)।
लोक-लाज सब छुटि गई, उठि धाए सँग लागे (हो)।
सुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)।

बहुत कहाँ लौं बरनिऐ, पुरुष न उबरन पावै (हो)।
भरि सोवै सुख-नींद मैं, तहाँ सु जाइ जगावै (हो)।
एकनि कौं दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै (हो)।
एकनि लै मंदिर चढ़ै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो)।
अकथ कथा याकी कछू, कहत नहीं कहि आई (हो)।
छैलनि कै सँग यौं फिरै, जैसैं तनु सँग छाईं (हो)।
इहिं बिधि इहिं डहके सबै, जल-थल-नभ-जिय जेते (हो)।
चतुर-सिरोमनि नंद-सुत, कहौं कहाँ लगि तेते (हो)।
कछु कुल-धर्म न जानई, रूप सकल जग राँच्यौ (हो)।
बिनु देखैं, बिनुहीं सुनैं, ठगत न कोऊ बाँच्यौ (हो)।
इहिं लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी (हो)।
सूर स्याम इहिं बरजि कै, मेटौ अब कुल-गारी (हो) ॥४४॥

राग बिहागरौ

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ।
जबै आवौं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ।
वेष धरि धरि हर्‍यौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ।
जैसैं नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ।
करौं जतन, न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ ॥४५॥

राग बिहागरौ

माधौ जू, मन माया बस कीन्हौ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यौं पतंग तन दीन्हौ।
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर।
मैं मति-हीन मरम नहिं जान्यौ, पर्‍यौ अधिक करि दौर।
बिवस भयौं नलिनी के सुक ज्यौं, बिन गुन मोहि गह्यौ।
मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुख-पुंज सह्यौ।
बहुतक दिवस भए या जग मैं, भ्रमत फिर्‍यौ मति-हीन।
सूर स्यामसुंदर जौ सेवै, क्यौं होवै गति दीन ॥४६॥

अब हौं माया-हाथ बिकानौ।
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ।
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाहीं लपटानौ।
याही करत अधीन भयौ हौं, निद्रा अति न अघानौ।
अपने हीं अज्ञान-तिमिर मैं, बिसर्‌यौ परम ठिकानौ।
सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ ॥४७॥

राग धनाश्री

दीन जन क्यौं करि आवै सरन ?
भूल्यौ फिरत सकल जल-थल-मग, सुनहु ताप-त्रय-हरन।
परम अनाथ, विवेक-नैन बिनु, निगम-ऐन क्यौं पावै ?
पग पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै ?
नाहिं कर लकुटि सुमति-सतसंगति, जिहिं अधार अनुसरई।
प्रबल अपार मोह-निधि दस-दिसि, सुधौं कहा अब करई।
अखुटित रटत सभीत, ससंकित, सुकृत सब्द नहिं पावै।
सूर स्याम-पद-नख-प्रकास बिनु, क्यौं करि तिमिर नसावै ॥४८॥

राग धनाश्री

अब सिर परी ठगौरी देव।
तातैं बिबस भयौं करुनामय, छाँड़ि तिहारी सेव।
माया-मंत्र पढ़त मन निसि-दिन मोह-मूरछा आनत।
ज्यौं मृग नाभि-कमल निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत।
भ्रम-मद-मत्त, काम-तृष्ना-रस-बेग, न क्रमै गह्यौ।
सूर एक पल गहरु न कीन्ह्यौ, किहिं जुग इतौ सह्यौ ! ॥४९॥

राग धनाश्री

माया देखत ही जु गई।
ना हरि-हित, ना तू-हित, इनमैं एकौ तौ न भई !
ज्यौं मधुमाखी सँचति निरंतर, बन की ओट लई।
व्याकुल होत हरे ज्यौं सरबस, आँखिनि धूरि दई।
सुत-संतान-स्वजन-बनिता-रति, घन समान उनई।
राखे सूर पवन पाखँड हति, करी जो प्रीति नई ॥५०॥

अविद्या-वर्णन

राग मलार

माधौ जू, यह मेरी इक गाइ।
अब आज तैं आप-आगैं दई, लै आइयै चराइ।
यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति।
फिरति बेद-बन-ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति।
हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन माहँ।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि बाहँ।
निधरक रहौ सूर के स्वामी, जनि मन जानौ फेरि।
मन-ममता रुचि सौं रखवारी, पहिलैं लेहु निबेरि ॥५१॥

राग धनाश्री

किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए।
पर-निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए।
तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, बिषयिनि के मुख जोए।
काल बली तैं सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हूँ रोए।
सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए ॥५२॥

राग बिलावल

यह आसा पापिनी दहै।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की, नीच नरनि कैं संग रहै।
जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौं राजा-राय कहै।
धन-मद-मूढ़नि,अभिमानिनि,मिलि, लोभ लिए दुर्बचन सहै।
भई न कृपा स्यामसुंदर की, अब कहा स्वारथ फिरत बहैं?
सूरदास सब-सुख-दाता-प्रभु-गुन बिचारि नहिं चरन गहै ॥५३॥

राग सारंग

इहिं राजस को को न बिगोयौ ?
हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन, कुंभकरन कुल खोयौ।
कंस, केसि, चानूर, महाबल करि निरजीव जमुन-जल बोयौ।
जज्ञ-समय सिसुपाल सुजोधा अनायास लै जोति समोयौ।
ब्रह्मा-महादेव-सुर-सुरपति नाचत फिरत महा रस भोयौ।
सूरदास जो चरन-सरन रह्यो, सो जन निपट नींद भरि सोयौ ॥५४॥

राग सारंग

फिरि फिरि ऐसोई है करत।
जैसैं प्रेम पतंग दीप सौं, पावक हू न डरत।
भव-दुख-कूप ज्ञान करि दीपक, देखत प्रगट परत।
काल-ब्याल, रज-तम-बिष-ज्वाला कत जड़ जंतु जरत!
अबिहित बाद-विवाद सकल मत इन लगि भेष धरत।
इहिं बिधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछू न काज सरत।
अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत।
सूरदास-व्रत यहै, कृष्ण भजि, भव-जलनिधि उतरत ॥५५॥

तृष्णा-वर्णन *राग केदारा*

माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।
भ्रमत निसि-वासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ।
छुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम दलि खाइ।
अष्ट-दस-घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाइ।
छहौं रस जौ धरौं आगैं, तउ न गंध सुहाइ।
और अहित अभच्छ भच्छति, कला बरनि न जाइ।
ब्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ।
नील खुर अरु अरुन लोचन, सेत सींग सुहाइ।
भुवन चौदह खुरनि खूँदति, सु धौं कहाँ समाइ।
ढीठ, निठुर, न डरति काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुहाइ।
हरै खल-वल दनुज-मानव-सुरनि सीस चढ़ाइ।
रचि-बिरचि मुख-भौंह-छबि, लै चलति चित्त चुराइ।
नारदादि सुकादि मुनिजन थके करत उपाइ।
ताहि कहु कैसैं कृपानिधि, सकत सूर चराइ? ॥५६॥

राग देवगंधार

कहत हे, आगैं जपिहैं राम।
बीचहिं भई और की औरे परयौ काल सौं काम।
गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो बिस्राम।
बालापन खेलतहीं खोयौ, जोबन जोरत दाम।
अब तौ जरा निपट नियरानी, कर्यौ न कछुवै काम।
सूरदास प्रभु कौं बिसरायौ बिना लिएँ हरि-नाम ॥५७॥

राग कान्हरौ

रे मन, जग पर जानि ठगायौ।
धन-मद, कुल-मद, तरुनी कैं मद, भव-मद, हरि बिसरायौ।
कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्याम न गायौ।
रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ।
कर्म-धर्म, लीला-जस, हरि-गुन, इहिं रस छाँव न आयौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु कहु कैसैं सुख पायौ!॥५८॥

राग नट

रे मन, छाँड़ि विषय कौ रँचिवौ।
कत तूँ सुवा होत सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिवौ।
अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचिवौ।
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिवौ।
सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन धन सँचिवौ।
सूरदास-प्रभु हरि-सुमिरन बिनु जोगी-कपि ज्यौं नचिवौ॥५९॥

राग देवगंधार

चौपरि जगत मड़े जुग बीते।
गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि, न कबहूँ जीते।
चारि पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिरि गिनि आनै।
काम-क्रोध-मद-संग मूढ़ मन खेलत हार न मानै।
बाल-बिनोद बचन हित-अनहित बार बार मुख भाखै।
मानौ बग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखै।
षोड़स जुक्ति, जुवति चित षोड़स, षोड़स बरस निहारै।
षोड़स अंगनि मिलि प्रजंक पै छ-दस अंक फिरि डारै।
पंद्रह पित्र-काज, चौदह दस-चारि पढे, सर साँधे।
तेरह रतन कनक रुचि द्वादस अटन जरा जग बाँधे।
नहिं रुचि पंथ, पयादि डरनि छकि पंच एकादस ठानै।
नौ दस आठ प्रकृति तृष्ना सुख सदन सात संधानै।
पंजा पंच प्रपंच नारि-पर भजत, सारि फिरि मारी।
चौक चवाउ भरे दुबिधा छकि रस रचना रुचि धारी।
बाल, किसोर, तरुन, जर, जुग सो सुपक सारि ढिग ढारी।
सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी॥६०॥

राग सारंग

अब कैसैं पैयत सुख माँगे ?
जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे।
तीरथ-व्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे।
पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे।
बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे।
सूरदास तुम राम न भजि कै, फिरत काल सँग लागे ॥६१॥

रे मन, गोविंद के ह्वै रहियै।
इहिं संसार अपार विरत ह्वै, जम की त्रास न सहियै।
दुख, सुख, कीरति, भाग आपनैं आइ परे सो गहियै।
सूरदास भगवंत-भजन करि अंत बार कछु लहियै ॥६२॥

रे मन, अजहूँ क्यौं न सम्हारै।
माया-मद मैं भयौ मत्त, कत जनम बादिहीं हारै।
तू तौ विषया-रंग रँग्यो है, बिन धोए क्यों छूटै।
लाख जतन करि देखौ, तैसैं बार-बार बिष घूँटै।
रस लै-लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई।
फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई।
सेत, हरौ, रातौ अरु पियरो रंग लेत है धोई।
कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई।
कुबिजा भई स्याम-रँग-राती, तातैं सोभा पाई।
ताहि सबै कंचन सम तौलैं अरु श्री-निकट समाई।
नंद-नँदन-पद-कमल छाँड़ि कै माया-हाथ बिकानौ।
सूरदास आपुहिं समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ ॥६३॥

राग धनाश्री

जनम साहिबी करत गयौ।
काया-नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिन कछु बढ़यौ।
हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं, झकि-झकि डारि दयौ।
विषया-गाँव अमल कौ टोटौ, हँसि-हँसि कै उमयौ।
नैन-अमीन, अधर्मिनि कैं बस, जहँ कौ तहाँ छयौ।
दगाबाज कुतवाल काम रिपु, सरबस लूटि लयौ।

पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ, धर्म-सुधन लुटयौ।
चरनोदक कौं छाँड़ि सुधा-रस, सुरा-पान अँचयौ।
कुबुधि-कमान चढ़ाइ कोप करि, बुधि-तरकस रितयौ।
सदा सिकार करत मृग-मन कौ, रहत मगन भुरयौ।
घेरयौ आइ कुटुम-लसकर मैं, जम अहदी पटयौ।
सूर नगर चौरासी भ्रमि-भ्रमि, घर-घर कौ जु भयौ ॥६४॥

राग धनाश्री

नर तैं जनम पाइ कह कीनौ ?
उदर भरयौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ।
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरु गोविंद नहिं चीनौ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौ।
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ।
लख चौरासी जोनि भरमि कै फिरि वाहीं मन दीनौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु ज्यौं अंजलि-जल छीनौ ॥६५॥

राग कान्हरौ

नीकैं गाइ गुपालहिं मन रे।
जा गाए निर्भय पद पाए अपराधी अनगन रे।
गायौ गीध, अजामिल, गनिका, गायौ पारथ-धन रे।
गायौ स्वपच परम अघ-पूरन, सुत पायौ बाम्हन रे।
गायौ ग्राह-ग्रसत गज जल मैं, खंभ बँधे तैं जन रे।
गाए सूर कौन नहिं उबरयौ, हरि परिपालन पन रे ॥६६॥

राग केदारौ

रह्यौ मन सुमिरन कौ पछितायौ।
यह तन राँचि राँचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनौ भायौ।
मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि तरि नहिं सक्यौ, समायौ।
मेल्यौ जाल काल जब खैंच्यौ, भयौ, मीन जल-हायौ।
कीर पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध परम पद पायौ।
ऐसौ सूर नाहिं कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ ॥६७॥

राग सारंग

सब तजि भजिऐ नंद-कुमार।
और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार।
जिहिं जिहिं जोनि जन्म धार्‌यौ, बहु जोर्‌यौ अघ कौ भार।
तिहिं काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम-कुठार।
वेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार।
भव-समुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार।
यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार॥६८॥

राग सूहा बिलावल

यहई मन आनंद-अवधि सब।
निरखि सरूप विवेक-नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब।
चित चकोर-गति करि अतिसय रति, तजि स्रम सघन बिषय लोभा।
चिंति चरन-मृदु-चारु-चंद-नख, चलत चिन्ह चहुँ दिसि सोभा।
जानु सुजघन करभ-कर-आकृति, कटि प्रदेस किंकिनि राजै।
ह्रद बिध नाभि, उदर त्रिबली बर, अवलोकत भव-भय भाजै।
उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं।
कनक-बलय, मुद्रिका मोदप्रद, सदा सुभग संतनि काजैं।
उर बनमाल बिचित्र बिमोहन, भृगु-भँवरी भ्रम कौं नासै।
तड़ित-बसन घन-स्याम सदस तन, तेज-पुंज तम कौं त्रासै।
परम रुचिर मनि-कंठ किरनि-गन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी।
बिधु मुख, मृदु मुसुक्यानि अमृत सम, सकल लोक-लोचन प्यारी।
सत्य-सील-संपन्न सुमूरति, सुर-नर-मुनि-भक्तनि भावै।
अंग-अंग-प्रति-छबि-तरंग-गति सूरदास क्यौं कहि आवै!॥६९॥

रे मन, आपु कौं पहिचानि।
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि।
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास।
भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढ़ै, जबहिं पावै बास।
भरम ही बलवंत सब मैं, ईसहू कैं भाइ।
जब भगत भगवंत चीन्है, भरम मन तैं जाइ।

सलिल कौं सब रंग तजि कै, एक रंग मिलाइ।
सूर जो द्वै रंग त्यागै, यहै भक्त सुभाइ ॥७०॥

राग रामकली

राम न सुमिरयौ एक घरी।
परम भाग सुकृत के फल तैं सुंदर देह धरी।
जिहिं जिहिं जोनि भ्रम्यौ संकट-बस, सोइ-सोइ दुखनि भरी।
काम-क्रोध-मद-लोभ-गरब मैं, बिसर्‍यौ स्याम हरी।
भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, तिनतैं कछु न सरी।
लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी।
मरती बेर सम्हारन लागे, जो कछु गाड़ि धरी।
सूरदास तैं कछू सरी नहिं, परी काल-फँसरी ॥७१॥

नर देही पाइ चित चरन-कमल दीजै।
दीन बचन, संतनि-सँग दरस-परस कीजै।
लीला-गुन अमृत रस स्रवननि-पुट पीजै।
सुंदर मुख निरखि, ध्यान नैन माहिं लीजै।
गद्‌गद सुर, पुलक रोम, अंग प्रेम भीजै।
सूरदास गिरिधर-जस गाइ गाइ जीजै ॥७२॥

राग धनाश्री

जनम सिरानौई सौ लाग्यौ।
रोम रोम, नख-सिख लौं मेरैं, महा अघनि बपु पाग्यौ।
पंचनि के हित-कारन यह मन जहँ तहँ भरमत भाग्यौ।
तीनौ पन ऐसैंहीं खोए, समय गए पर जाग्यौ।
तौ तुम कोऊ तार्‍यौ नहिं, जौ, मोसौं पतित न दाग्यौ।
हौं स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ आग्यौ ॥७३॥

राग नट

गाइ लेहु मेरे गोपालहिं।
नातरु काल-ब्याल लेते है, छाँड़ि देहु तुम सब जंजालहिं।
अंजलि के जल ज्यौं तन छीजत, खोटे कपट तिलक अरु मालहिं।
कनक-कामिनी सौं मन बाँध्यौ, ह्वै गज चल्यौ स्वान की चालहिं।

सकल सुखनि के दानि आनि उर, दृढ़ बिस्वास भजो नँदलालहिं।
सूरदास जो संतनि कौं हित, कृपावंत मेटत दुख-जालहिं ॥७४॥

राग धनाश्री

जौ हरि-व्रत निज उर न धरैगौ।
तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगौ।
आन देव की भक्ति-भाइ करि, कोटिक कसब करैगौ।
सब वे दिवस चारि मन-रंजन, अंत काल बिगरैगौ।
चौरासी लख जोनि जन्मि जग, जल-थल भ्रमत फिरैगौ।
सूर सुकृत सेवक सोइ साँचौ, जो स्यामहिं सुमिरैगौ ॥७५॥

राग सारंग

अंत के दिन कौं हैं घनस्याम।
माता-पिता-बंधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिं कौं काम।
आमिष-रुधिर-अस्थि अँग जौलौं, तौलौं कोमल चाम।
तौ लगि यह संसार सगौ है जौ लगि लेहि न नाम।
इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याहीं धाम।
छाँड़ि न करत सूर सब भव-डर बृंदाबन सौं ठाम ॥७६॥

राग बिलावल

तेरौ तब तिहिं दिन, को हितू हो हरि बिन,
सुधि करि कै कृपिन, तिहिं चित आनि।
जब अति दुख सहि, कठिन करम गहि,
राख्यौ हो जठर महिं स्रोनित सौं सानि।
जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम,
सकल विधि विषम, खल मल खानि।
समुझि धौं जिय महिं, को जन सकत नहिं,
बुधि बल कुल तिहिं, जायौ काकी कानि!
वैसी आपदा तैं राख्यौ, तोष्यौ, पोष्यौ, जिय दयौ,
मुख - नासिका - नयन - स्रौन - पद - पानि।
सुनि कृतघन, निसि-दिन कौ सखा आपन,
अब जो विसार्यौ करि विनु पहिचानि।

अजहुँ सँग रहत, प्रथम लाज गहत,
संतत सुभ चहत, प्रिय जन जानि।
सूर सो सुहृद मानि, ईस्वर अंतर जानि,
सुनि सठ, झूठौ हठ-कपट न ठानि ॥७७॥

राग धनाश्री

जनम तौ ऐसेहिं बीति गयौ।
जैसैं रंक पदारथ पाए, लोभ बिसाहि लयौ।
बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर-स्वान भयौ।
अब मेरी मेरी करि बौरे, बहुरौ बीज बयौ।
नर कौ नाम पारगामी हो, सो तोहिं स्याम दयौ।
तैं जड़ नारिकेल कपि-कर ज्यौं, पायौ नाहिं पयौ।
रजनी गत बासर मृगतृष्ना रस हरि कौ न चयौ।
सूर नंद-नंदन जेहिं बिसर्‌यौ, आपुहिं आपु हयौ ॥७८॥

राग धनाश्री

प्रीतम जानि लेहु मन माहीं।
अपनैं सुख कौं सब जग बाँध्यौ, कोउ काहू कौ नाहीं।
सुख मैं आइ सबै मिलि बैठत, रहत चहूँ दिसि घेरे।
बिपति परी तब सब सँग छाँड़े, कोउ न आवै नेरे।
घर की नारि बहुत हित जासौं, रहति सदा सँग लागी।
जा छन हंस तजी यह काया, प्रेत प्रेत कहि भागी।
या बिधि कौ ब्यौपार बन्यौ जग, तासौं नेह लगायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, नाहक जनम गँवायौ ॥७९॥

राग बिलावल

क्यौं तू गोविंद नाम बिसारौ ?
अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ।
धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चल्यौ पछिताइ, नयन जल ढारौ ॥८०॥

राग कान्हरौ

जौ अपनौ मन हरि सौं राँचै।
आन उपाय-प्रसंग छाँड़ि कै, मन-बच-क्रम अनुसाँचै।

निसि-दिन नाम लेत ही रसना, फिरि जु प्रेम-रस माँचै।
इहिँ बिधि सकल लोक मैं बाँचै, कौन कहै अब साँचै।
सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हर्ष-सोक नहिं खाँचै।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि जगत नहिं नाचै ॥८१॥

राग टोड़ी

जो घट अंतर हरि सुमिरै।
ताकौ काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै।
कोपै तात प्रहलाद भगत कौ, नामहिं लेत जरै।
खंभ फारि नरसिंह प्रगट ह्वै, असुर के प्रान हरै।
सहस बरस गज युद्ध करत भए, छिन इक ध्यान धरै।
चक्र धरे बैकुंठ तैं धाए, वाकी पैज सरै।
अजामील द्विज सौं अपराधी, अंतकाल बिडरै।
सुत - सुमिरत नारायन-बानी, पार्षद धाइ परैं।
जहँ जहँ दुसह कष्ट भक्तनि कौं, तहँ तहँ सार करै।
सूरजदास स्याम सेए तैं दुस्तर पार तरै ॥८२॥

राग सोरठ

करि हरिसौं सनेह मन साँचौ।
निपट कपट की छाँड़ि अटपटी, इंद्रिय बस राखहि किन पाँचौ?
सुमिरन कथा सदा सुखदायक, बिषधर बिषय-बिषम-बिष बाँचौ।
सूरदास प्रभु हित कै सुमिरौ जौ, तौ आनँद करिकै नाँचौ ॥८३॥

राग टोडी

हरि बिन अपनौ को संसार।
माया-लोभ-मोह हैं चाँड़े काल-नदी की धार।
ज्यौं जन संगति होति नाव मैं, रहति न परसैं पार।
तैसैं धन-दारा-सुख-संपति, बिछुरत लगै न बार।
मानुष-जनम, नाम नरहरि कौ, मिलै न बारंबार।
इहिं तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार!
जैसैं अंधौ अंध कूप मैं गनत न खाल पनार।
तैसेहिं सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार ॥८४॥

राग धनाश्री

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे।
सुनि मन, कहौं पुकारि तोसौं हौं, भजि गोपालहिं मेरे।
या संसार बिषय-बिष-सागर, रहत सदा सब घेरे।
सूर स्याम बिनु अंतकाल मैं कोउ न आवत नेरे ॥८५॥

राग झिंझौटी

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।
या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैं।
तीननि मैं तन कृमि, कै बिष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै।
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहै।
जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं।
घर के कहत सवारे काढ़ौ, भूत होइ धरि खैहैं।
जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैं।
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतनि मैं कछु पैहै।
नर-बपु धारि नाहिं जन हरि कौं, जम की मार सो खैहै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहै ॥८६॥

राग बिहाग—तिताला

अब तौ यहै बात मन मानी।
छाड़ौं नाहिं स्याम-स्यामा की बृंदावन रजधानी।
भ्रम्यौ बहुत लघु धाम बिलोकत छन-भंगुर दुखदानी।
सर्वोपरि आनंद अखंडित सूर-मरम लपिटानी ॥८७॥

राग सोरठ

नहिं अस जनम बारंबार।
पुरबलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर-अवतार।
घटै पल-पल, बढ़ै छिन-छिन, जात लागि न बार।
धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिरि न लागै डार।
भय-उदधि जमलोक दरसै, निपट ही अँधियार।
सूर हरि कौ भजन करि-करि उतरि पल्ले-पार ॥८८॥

नाम-महिमा *राग बिलावल*

को को न तर्‌यौ हरि-नाम लिएँ।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध तर्‌यौ सर-घात किएँ।
अंतर-दाह जु मिट्‌यौ ब्यास कौ इक चित ह्वै भागवत किएँ।
प्रभु तैं जन, जन तैं प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिएँ।
जौ पै राम-भक्ति नहिं जानी, कह सुमेरु सम दान दिएँ?
सूरजदास बिमुख जो हरि तैं, कहा भयौ जुग कोटि जिएँ! ॥८९॥

अद्‌भुत राम नाम के अंक।
धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-वधू-ताटंक।
मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग, जाकैं बल उड़ि ऊरध जात।
जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु बिख्यात।
अंधकार-अज्ञान हरन कौं रबि-ससि जुगल-प्रकास।
बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास।
दुहूँ लोक सुखकरन, हरनदुख, बेद-पुराननि साखि।
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये, प्रेमनिरंतर भाखि ॥९०॥

अब तुम नाम गहौ मन नागर।
जातैं काल-अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुख-सागर।
मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर।
क्रिया-कर्म करतहु निसि-बासर भक्ति कौ पंथ उजागर।
सोचि बिचारि सकल-स्रुति-सम्मति, हरि तैं और न आगर।
सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि उतरि चलौ भवसागर ॥९१॥

राग सारंग

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढ़ैं काम।
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसौ हरि-नाम।
बैकुँठनाथ सकल सुख-दाता, सूरदास-सुख-धाम ॥९२॥

राग गौरी

तुम्हरी एक बड़ी ठकुराई।
प्रति दिन जन-जन कर्म सवासन नाम हरै जदुराई।

कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई।
तदपि विमुख पाँती सो गनियत, भक्ति हृदय नहिँ आई।
भक्ति पंथ मेरे अति नियरैँ जब तब कीरति गाई।
भक्ति-प्रभाव सूर लखि पायौ, भजन-छाप नहिँ पाई ॥६३॥

बिनती

राग केदारौ

वंदौँ चरन-सरोज तिहारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे।
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैँ नहिँ टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे।
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिनी, बलि, नृग, व्याध, पतित बहु तारे।
जे पद-पदुम रमत वृंदावन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे।
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिविध-ताप-दुख-हरन हमारे ॥६४॥

राग धनाश्री

हरि जू, तुमतैँ कहा न होइ ?
बोलै गुंग, पंगु गिरि लंघै अरु आवै अंधौ जग जोइ।
पतित अजामिल, दासी कुबिजा, तिनके कलिमल डारे धोइ।
रंक सुदामा कियौ इंद्र-सम, पांडव-हित-कौरव-दल खोइ।
बालक मृतक जिवाइ दए प्रभु, तब गुरु-द्वारैँ आनँद होइ।
सूरदास-प्रभु इच्छापूरन, श्रीगुपाल सुमिरौ सब कोइ ॥६५॥

राग सोरठ

बिनती करत मरत हौँ लाज।
नख-सिख लौँ मेरी यह देही है पाप की जहाज।
और पतित आवत न आँखि-तर देखत अपनौ साज।
तीनौँ पन भरि ओर निबाह्यौ तऊ न आयौ बाज।
पाछैँ भयौ न आगैँ ह्वै है, सब पतितनि सिरताज।
नरकौ भज्यौ नाम सुनि मेरौ, पीठि दई जमराज।

अबलौं नान्हे-नून्हे तारे, ते सब वृथा अकाज।
साँचै बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज ॥९६॥

राग सोरठ

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय-जय कृपानिधान ॥९७॥

राग बिहागरौ

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी।
बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसैं जाति कटी।
अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इंद्रिय-कर्म-गटी।
हौं तित हीं उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी।
झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी।
अरु झूठनि के बदन निहारत मारत फिरत लटी।
दिन-दिन हीन छीन भइ काया दुख-जंजाल-जटी।
चिंता कीन्हैं भूख भुलानी, नींद फिरति उचटी।
मगन भयौ माया-रस लंपट, समुझत नाहिं हटी।
ताकैं मूँड़ चढ़ी नाचति है मीचऽति नीच नटी।
किंचित स्वाद स्वान-बानर ज्यौं, घातक रीति ठटी।
सूर सुजल सींचियै कृपानिधि, निज जन चरन तटी ॥९८॥

राग केदारौ

अब कैं नाथ, मोहिं उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि मैं, कृपासिंधु मुरारि!
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कौं गहे ग्राह अनंग।
मीन इंद्री तनहिं काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार।

क्रोध-दम्भ-गुमान-तृष्ना पवन अति झकझोर।
नाहिँ चितवन देत सुत-तिय, नाम-नौका ओर।
थक्यौ बीच बिहाल, बिह्वल, सुनौ करुना-मूल !
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल ॥९९॥

राग सारंग

माधौ जू, मन हठ कठिन पर्‌यौ।
जद्यपि बिद्यमान सब निरखत, दुख सरीर भर्‌यौ।
बार-बार निसि-दिन अति आतुर, फिरत दसौं दिसि धाए।
ज्यौं सुक सेमर-फूल बिलोकत, जात नहीं बिनु खाए।
जुग-जुग जनम, मरन अरु बिछुरन, सब समुझत मत-भेव।
ज्यौं दिनकरहिँ उलूक न मानत, परि आई यह टेव।
हौं कुचील, मति-हीन सकल बिधि, तुम कृपालु जग जान।
सूर-मधुप निसि कमल-कोष-बस, करौ कृपा-दिन-भान ॥१००॥

राग धनाश्री

आछौ गात अकारथ गार्‌यौ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौं हार्‌यौ।
निसि-दिन बिषय-बिलासनि बिलसत, फूटि गईं तव चार्‌यौ।
अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मार्‌यौ।
कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तार्‌यौ।
तातैं कहत दयाल देव-मनि, काहैं सूर बिसार्‌यौ ? ॥१०१॥

राग सारंग

माधौ जू, मन सबही बिधि पोच।
अति उनमत्त, निरंकुस, मैगल, चिंता-रहित, असोच।
महा मूढ़ अज्ञान-तिमिर महँ, मगन होत सुख मानि।
तेली के वृष लौं नित भरमत, भजत न सारँगपानि।
गीध्यौ दुष्ट हेम तस्कर ज्यौं, अति आतुर मति-मंद।
लुब्ध्यौ स्वाद मीन-आमिष ज्यौं, अवलोक्यौ नहिं फंद।
ज्वाला-प्रीति प्रगट सन्मुख हठि, ज्यौं पतंग तन जार्‌यौ।
बिषय-असक्त, अमित-अघ-व्याकुल, तबहूँ कछु न सँभार्‌यौ।

ज्यौं कपि सीत-हतन-हित गुंजा सिमिटि होत लौलीन।
त्यौं सठ बृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत बिषय-आधीन।
सेमर-फूल सुरँग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप।
परसत चोंच तूल उघरत मुख, परत दुःख कैं कूप।
जहाँ गयौ तहँ भलौ न भावत, सब कोऊ सकुचानौ।
ज्ञान और बैराग भक्ति, प्रभु, इनमैं कहूँ न सानौ।
और कहाँ लौं कहौं एक मुख, या मन के कृत काज।
सूर पतित तुम पतित-उधारन, गहौ बिरद की लाज॥१०२॥

राग सारंग

मेरौ मन मति-हीन गुसाईं।
सब सुख-निधि पद कमल छाँड़ि, स्रम करत स्वान की नाईं।
फिरत बृथा भाजन अवलोकत, सूनैं सदन अजान।
तिहिं लालच कबहूँ, कैसैहूँ, तृप्ति न पावत प्रान।
कौर-कौर-कारन कुबुद्धि, जड़, किते सहत अपमान।
जहँ-जहँ जात तहीं तहिं त्रासत अस्म, लकुट, पद-त्रान।
तुम सर्वज्ञ, सबै बिधि पूरन, अखिल-भुवन-निज-नाथ।
तिन्हैं छाँड़ि यह सूर महा सठ, भ्रमत भ्रमनि कैं साथ॥१०३॥

राग गौरी

दयानिधि तेरी गति लखि न परै।
धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै।
जय अरु बिजय कर्म कह कीन्हौ, ब्रह्म-सराप दिवायौ।
असुर-जोनि ता ऊपर दीन्ही, धर्म-उछेद करायौ।
पिता-बचन खंडै सो पापी, सोइ प्रहलादहिं कीन्हौ।
निकसे खंभ-बीच तैं नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हौ।
दान धर्म बहु कियौ भानु-सुत, सो तुव बिमुख कहायौ।
वेद-बिरुद्ध सकल पांडव-कुल, सो तुम्हरैं मन भायौ।
जज्ञ करत बैरोचन कौ सुत, वेद-विहित-बिधि-कर्मा।
सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपानिधि, धर्मा?
द्विज कुल पतित अजामिल बिषयी, गनिका-हाथ बिकायौ।
सुत-हित नाम लियौ नारायन, सो बैकुंठ पठायौ।

पतिव्रता जालंधर-जुवती, सो पति-व्रत तैं टारी।
दुष्ट पुंस्चली, अधम सो गनिका सुवा पढ़ावत तारी।
मुक्ति-हेत जोगी स्रम साधै, असुर विरोधैं पावै।
अविगत गति करुनामय तेरी, सूर कहा कहि गावै ॥१०४॥

राग सारंग

अविगत-गति जानी न परै।
मन-बच-कर्म-अगाध, अगोचर, किहि विधि बुधि सँचरै ?
अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै।
अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै।
रीतै भरै, भरै पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै।
कबहुँक तृन बूड़ै पानी मैं, कबहुँक सिला तरै।
बागर तैं सागर करि डारै, चहुँ दिसि नीर भरै।
पाहन-बीच कमल बिकसावै, जल मैं अगिनि जरै।
राजा रंक, रंक तैं राजा, लै सिर छत्र धरै।
सूर पतित तरि जाइ छिनक मैं, जो प्रभु नैंकु ढरै ॥१०५॥

राग केदारौ

अपनी भक्ति देहु भगवान।
कोटि लालच जौ दिखावहु, नाहिनैं रुचि आन।
जा दिना तैं जनम पायौ, यहै मेरी रीति।
विषय-बिष हठि खात, नाहीं डरत करत अनीति।
जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, स्वकर काटत सीस।
देखि साहस सकुच मानत, राखि सकत न ईस।
कामना करि कोटि कबहूँ किए बहु पसु-घात।
सिंह-सावक ज्यौं तजैं गृह, इंद्र आदि डरात।
नरक कूपनि जाइ जमपुर पर्‍यौ बार अनेक।
थके किंकर-जूथ जमके, टरत टारैं न नेक।
महा माचल, मारिबे की सकुच नाहिं न मोहिं।
किए प्रन हौं पर्‍यौ द्वारैं, लाज प्रन की तोहिं।
नाहिं काँचौ कृपा-निधि हौं, करौ कहा रिसाइ।
सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ै, डारिहौ कढ़िराइ ॥१०६॥

राग धनाश्री

जन के उपजत दुख किन काटत ?
जैसैं प्रथम-अषाढ़-आँजु-तृन, खेतिहर निरखि उपाटत ।
जैसैं मीन किलकिला दरसत, ऐसैं रहौ प्रभु डाटत ।
पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है, सूर खाल किन पाटत ॥१०७॥

राग कान्हरौ

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महा पतित, कबहूँ नहिं आयौ, नैंकु तिहारैं काज ।
माया सबल धाम-धन-बनिता बाँध्यौ हौं इहिं साज ।
देखत-सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज ।
कहियत पतित बहुत तुम तारे, स्रवननि सुनी अवाज ।
दई न जाति खेवट उतराई, चाहत चढ़्यौ जहाज ?
लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज ।
नई न करन कहत प्रभु, तुम हौ सदा गरीब-निवाज ॥१०८॥

राग बिलावल

महा प्रभु, तुम्हैं बिरद की लाज ।
कृपा-निधान, दानि, दामोदर, सदा सँवारन काज ।
जब गज-चरन ग्राह गहि राख्यौ, तबहीं नाथ पुकार्‍यौ ।
तजि कै गरुड़ चले अति आतुर, नक्र चक्र करि मार्‍यौ ।
निसि-निसि ही रिषि लिए सहस-दस दुरबासा पग धार्‍यौ ।
ततकालहिं तब प्रगट भए हरि, राजा-जीव उबार्‍यौ ।
हिरनाकुस प्रहलाद भक्त कौं बहुत सासना जार्‍यौ ।
रहि न सके, नरसिंह रूप धरि, गहि कर असुर पछार्‍यौ ।
दुस्सासन गहि केस द्रौपदी, नगन करन कौं ल्यायौ ।
सुमिरत ही ततकाल कृपानिधि, बसन-प्रवाह बढ़ायौ ।
मागधपति बहु जीति महीपति, कछु जिय मैं गरबाए ।
जीत्यौ जरासंध, रिपु मार्‍यौ, बल करि भूप छुड़ाए।
महिमा अति अगाध, करुनामय भक्त-हेत हितकारी ।
सूरदास पर कृपा करौ अब, दरसन देहु मुरारी ॥१०९॥

राग धनाश्री

सरन आए की प्रभु, लाज धरिऐ।
सध्यौ नहिं धर्म सुचि, सील, तप, व्रत कछू, कहा मुख लै तुम्हैं बिनै करिऐ।
कछू चाहौं कहौं, सकुचि मन मैं रहौं, आपने कर्म लखि त्रास आवै।
यहै निज सार, आधार मेरौ यहै, पतित-पावन बिरद बेद गावै।
जन्म तैं एक टक लागि आसा रही, बिषय-बिष खात नहिं तृप्ति मानी।
जो छिया छरद करि सकल संतनि तजी, तासु तैं मूढ़-मति प्रीति ठानी।
पाप-मारग जिते, सबै कीन्हें तिते, बच्यौ नहिं कोउ जहँ सुरति मेरी।
सूर अवगुन भर्‌यौ, आइ द्वारैं पर्‌यौ, तकै गोपाल, अब सरन तेरी॥११०॥

राग धनाश्री

प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न विचारौ।
कीजै लाज सरन आए की, रवि-सुत-त्रास निवारौ।
जोग-जज्ञ-जप-तप नहिं कीन्हौ, बेद बिमल नहिं भाख्यौ।
अति रस-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, अनत नहीं चित राख्यौ।
जिहिं जिहिं जोनि फिर्‌यौ संकट-बस तिहिं तिहिं यहै कमायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित ह्वै बिषय परम बिष खायौ।
जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं, लै सुरतरु बिधि हाथ।
मम कृत दोष लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति नाथ।
तुमहिं समान और नहिं दूजौ काहि भजौं हौं दीन।
कामी, कुटिल, कुचील, कुदरसन, अपराधी, मति-हीन।
तुम तौ अखिल, अनंत, दयानिधि, अबिनासी, सुख-रासि।
भजन-प्रताप नाहिं मैं जान्यौ, पर्‌यौ मोह की फाँसि।
तुम सरबज्ञ, सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह-समुद्र सूर बूड़त है, लीजै भुजा पसारि॥१११॥

राग सारंग

तुम हरि, साँकरे के साथी।
सुनत पुकार, परम आतुर ह्वै, दौरि छुड़ायौ हाथी।
गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्ही, बेद-उपनिषद साखी।
बसन बढ़ाइ द्रुपद-तनया की सभा माँझ पति राखी।

राज-रवनि गाईं ब्याकुल ह्वै, दै दै तिनकौं धीरक।
मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर-पीरक।
कपट रूप निसिचर तन धरिकै अमृत पियौ गुन मानी।
कठिन परैं ताहू मैं प्रगटे, ऐसे प्रभु सुख-दानी।
ऐसैं कहौं कहाँ लगि गुन-गन, लिखत अंत नहिं लहिऐ।
कृपासिंधु उनहीं के लेखैं मम लज्जा निरबहिऐ।
सूर तुम्हारी आसा निबहै, संकट मैं तुम साथै।
ज्यौं जानौ त्यौं करौ, दीन की बात सकल तुव हाथै ॥११२॥

राग सारंग

तुम बिनु साँकरैं को काकौ।
तुमहीं देहु बताइ देवमनि, नाम लेउँ धौं ताकौ।
गर्भ परीच्छित रच्छा कीनी, हुतौ नहीं बस माँ कौ।
मेटी पीर परम पुरुपोत्तम, दुख मेट्यौ दुहुँ-घाँ कौ।
हा करुनामय कुंजर टेर्‌यौ, रह्यौ नहीं बल, थाकौ।
लागि पुकार तुरत छुटकायौ, काट्यौ बंधन ताकौ।
अंबरीष कौं साप देन गयौ, बहुरि पठायौ ताकौं।
उलटी गाढ़ परी दुर्वासैं, दहत सुदरसन जाकौं।
निधरक भए पांडु-सुत डोलत, हुतौ नहीं डर काकौ?
चारौं बेद चतुर्मुख ब्रह्मा जस गावत हैं ताकौ।
जरासिंधु कौ जोर उघार्‌यौ, फारि कियौ द्वै फाँकौ।
छोरी बंदि बिदा किए राजा, राजा ह्वै गए राँकौ।
सभा-माँझ द्रौपदि-पति राखी, पति पानिप कुल ताकौ।
बसन-ओट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्हौ झाँकौ।
भीर परैं भीषम-प्रन राख्यौ, अर्जुन कौ रथ हाँकौ।
रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ, भक्तबछल-प्रन ताकौ।
नरहरि ह्वै हिरनाकुस मार्‌यौ, काम पर्‌यौ हो बाँकौ।
गोपीनाथ सूर के प्रभु कैं बिरद न लाग्यौ टाँकौ ॥११३॥

राग कान्हरौ

तुम्हरी कृपा गोपाल गुसाईं, हौं अपने अज्ञान न जानत।
उपजत दोष नैन नहिं सूझत, रवि की किरनि उलूक न मानत।

सब सुख-निधि हरिनाम महामनि, सो पाएहुँ नाहीं पहिचानत।
परम कुबुद्धि, तुच्छ रस-लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत।
सिव कौ धन, संतनि कौ सरवस, महिमा बेद-पुरान बखानत।
इते मान यह सूर महा सठ, हरि-नग बदलि, विषय-बिप आनत॥११४॥

राग बिलावल

अपनैं जान मैं बहुत करी।
कौन भाँति हरि कृपा तुम्हारी, सो स्वामी, समुझी न परी।
दूरि गयौ दरसन के ताईं, व्यापक प्रभुता सब बिसरी।
मनसा-बाचा-कर्म-अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी।
गुन बिन गुनी, सुरूप रूप बिन, नाम बिना श्री स्याम हरी।
कृपा-सिंधु, अपराध अपरिमित, छमौ, सूर तैं सब बिगरी॥११५॥

राग बिलावल

तुम प्रभु, मोसौं बहुत करी।
नर-देही दीनी सुमिरन कौं, मो पापी तैं कछु न सरी।
गरभ-बास अति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी।
पावक-जठर जरन नहिं दीन्हौ, कंचन सी मम देह करी।
जग मैं जनमि पाप बहु कीन्हे, आदि-अंत लौं सब बिगरी।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, अपने बिरद की लाज धरी॥११६॥

राग धनाश्री

माधौ जू, जौ जन तैं बिगरै।
तउ कृपाल, करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरै।
जैसैं जननि-जठर-अंतरगत सुत अपराध करै।
तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै।
जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै।
तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-ताप हरै।
धर बिधंसि नल करत किरपि हल, बारि, बीज बिथरै।
सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं, सोई सुफल करै।
रसना द्विज दलि दुखित होति बहु, तउ रिस कहा करै!
छमि सब छोभ जु छाँड़ि, छवौ रस लै समीप सँचरै।

कारन-करन, दयालु, दयानिधि, निज भय दीन डरै।
इहि कलिकाल-ब्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै ॥११७॥

राग कान्हरौ

दीन-नाथ अब बारि तुम्हारी।
पतित उधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सँवारी।
बालापन खेलत ही खोयौ, जुवा विषय-रस मातैं।
वृद्ध भए सुधि प्रगटी मोकौं, दुखित पुकारत तातैं।
सुतनि तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तज्यौ, तन तैं त्वच भई न्यारी।
स्रवन न सुनत, चरन-गति थाकी, नैन भए जलधारी।
पलित केस, कफ कंठ बिरुंध्यौ, कल न परति दिन-राती।
माया-मोह न छाँड़ै तृष्ना, ये दोऊ दुख-थाती।
अब यह बिथा दूरि करिबे कौं और न समरथ कोई।
सूरदास-प्रभु करुना-सागर, तुमतैं होइ सो होई ॥११८॥

राग आसावरी

पतितपावन जानि सरन आयौ।
उदधि-संसार सुभ नाम-नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ।
ब्याध अरु गीध, गनिका, अजामील द्विज, चरन गौतम-तिया परसि पायौ
अंत औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुम्रत गज ग्राह तैं तुम छुड़ायौ।
अबल प्रहलाद, बलि दैत्य सुखहीं भजत, दास ध्रुव चरन चित सीस नायौ।
पांडु-सुत बिपति-मोचन महादास लखि, द्रौपदी-चीर नाना बढ़ायौ।
भक्त-बत्सल कृपा-नाथ असरन-सरन, भार-भूतल हरन जस सुहायौ।
सूर प्रभु-चरन चित चेति चेतन करत, ब्रह्म-सिव-सेस-सुक-सनक-ध्यायौ ॥११९॥

राग आसावरी

(श्री)नाथ सारंगधर कृपा करि दीन पर, डरत भव-त्रास तैं राखि लीजै।
नाहिं जप, नाहिं तप, नाहिं सुमिरन-भजन, सरन आए की अब लाज कीजै।
जीव जल थल जिते, बेष धरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे।
मुसल मुदगर हनत, त्रिबिध करमनि गनत, मोहिं दंडत धरम-दूत हारे।
वृषभ, केसी, प्रलँब, धेनुकऽरु पूतना, रजक, चानूर से दुष्ट तारे।
अजामिल गनिका तैं कहा मैं घटि कियौ, तुम जो अब सूर चित तैं बिसारे ॥१२०॥

राग आसावरी

कबहूँ तुम नाहिँ न गहरु कियौ।
सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ।
गाइ-गोप-गोपीजन-कारन गिरि कर-कमल लियौ।
अघ-अरिष्ट, केसी, काली मथि दावानलहिँ पियौ।
कंस-बंस बधि, जरासंध हति, गुरु-सुत आनि दियौ।
करषत सभा द्रुपद-तनया कौ अंबर अछय कियौ।
सूर स्याम सरबज्ञ कृपानिधि, करुना-मृदुल-हियौ।
काकी सरन जाउँ नँदनंदन, नाहिन और बियौ ॥१२१॥

राग सारंग

तातैं तुम्हरौ भरोसौ आवै।
दीनानाथ पतित-पावन, जस वेद-उपनिषद गावै।
जौ तुम कहौ कौन खल तार्‍यौ, तौ हौं बोलौं साखी।
पुत्र-हेत सुर-लोक गयौ द्विज, सक्यौ न कोऊ राखी।
गनिका किए कौन ब्रत-संजम, सुक-हित नाम पढ़ावै।
मनसा करि सुमिर्‍यौ गज बपुरैं, ग्राह प्रथम गति पावै।
बकी जु गई घोष मैं छल करि, जसुदा की गति दीनी।
और कहति स्रुति, बृषभ-ब्याध की जैसी गति तुम कीनी।
द्रुपद-सुताहिं दुष्ट दुरजोधन सभा माहिं पकरावै।
ऐसौ और कौन करुनामय, बसन-प्रवाह बढ़ावै?
दुखित जानिकै सुत कुबेर के, तिन्ह लगि आपु बँधावै।
ऐसौ को ठाकुर, जन-कारन दुख सहि, भलौ मनावै?
दुरबासा दुरजोधन पठयौ पांडव-अहित बिचारी।
साक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी।
देवराज मघ-भंग जानि कै बरष्यौ ब्रज पर आई।
सूर स्याम राखे सब निज कर, गिरि लै भए सहाई ॥१२२॥

राग धनाश्री

दीन कौ दयाल सुन्यौ, अभय-दान-दाता।
साँची बिरुदावलि, तुम जग के पितु माता।

ब्याध-गीध-गनिका-गज इनमैं को ज्ञाता ?
सुमिरत तुम आए तहँ, त्रिभुवन बिख्याता।
केसि-कंस दुष्ट मारि, मुष्टिक कियौ घाता।
धाए गजराज-काज, केतिक यह बाता !
तीनि लोक बिभव दियौ तंदुल के खाता।
सरबस प्रभु रीझि देत तुलसी कैं पाता।
गौतम की नारि तरी नैंकु परसि लाता।
और को है तारिबे कौं, कहौ कृपा-ताता।
माँगत है सूर त्यागि जिहिं तन-मन राता।
अपनी प्रभु भक्ति देहु जासौं तुम नाता ॥१२३॥

राग मारू

सो कहा जु मैं न कियौ (जो) सोइ चित धरिहौ।
पतित-पावन-बिरद साँच (तौ) कौन भाँति करिहौ।
जब तैं जग जनम लियौ, जीव नाम पायौ।
तब तैं छुटि औगुन इक नाम न कहि आयौ।
साधु-निंदक, स्वाद-लँपट, कपटी, गुरु-द्रोही।
जेते अपराध जगत, लागत सब मोहीं।
गृह-गृह प्रति द्वार फिर्यौ, तुमकौं प्रभु छाँड़े।
अंध अंध टेकि चले, क्यौं न परैं गाड़े।
सुकृती-सुचि-सेवकजन काहि न जिय भावै।
प्रभु की प्रभुता यहै जु दीन सरन पावै।
कमल-नैन, करुनामय, सकल-अँतरजामी।
बिनय कहा करै सूर, कूर, कुटिल, कामी ॥१२४॥

राग सारंग

कौन गति करिहौ मेरी नाथ !
हौं तौ कुटिल, कुचील, कुदरसन, रहत बिषय के साथ।
दिन बीतत माया कैं लालच, कुल-कुटुंब कैं हेत।
सिगरी रैनि नींद भरि सोवत जैसैं पसु अचेत।
कागद धरनि, करै द्रुम लेखनि, जल-सायर मसि घोरै।
लिखै गनेस जनम भरि मम कृत, तऊ दोष नहिं ओरै।

गज, गनिका अरु बिप्र अजामिल, अगनित अधम उधारे।
यहै जानि अपराध करे मैं तिनहूँ सौं अति भारे।
लिखि लिखि मम अपराध जनम के, चित्रगुप्त अकुलाए।
भृगु रिषि आदि सुनत चकित भए, जम सुनि सीस डुलाए।
परम पुनीत-पवित्र, कृपानिधि, पावन-नाम कहायौ।
सूर पतित जब सुन्यौ बिरद यह, तब धीरज मन आयौ ॥१२५॥

राग केदारौ

मेरी कौन गति ब्रजनाथ?
भजन बिमुख ऽरु सरन नाहीं, फिरत बिषयनि साथ।
हौं पतित, अपराध-पूरन, भर्यौ कर्म-विकार।
काम क्रोध ऽरु लोभ चितवौं, नाथ तुमहिं बिसार।
उचित अपनी कृपा करिहौ तबै तौ बनि जाइ।
सोइ करहु जिहिं चरन सेवै सूर जूठनि खाइ ॥१२६॥

राग धनाश्री

सोइ कछु कीजै दीन-दयाल।
जातैं जन छन चरन न छाँड़ै करुना-सागर, भक्त-रसाल।
इंद्री अजित, बुद्धि बिषयारत, मन की दिन-दिन उलटी चाल।
काम-क्रोध-मद-लोभ-महाभय, अह-निसि नाथ, रहत बेहाल।
जोग-जुगति, जप-तप, तीरथ-ब्रत, इनमैं एकौ अंक न भाल।
कहा करौं, किहिं भाँति रिझावौं हौं तुमकौं सुंदर नँदलाल।
सुनि समरथ, सरवज्ञ, कृपानिधि, असरन सरन, हरन जग-जाल।
कृपानिधान, सूर की यह गति, कासौं कहै कृपन इहिं काल! ॥१२७॥

राग गूजरी

कृपा अब कीजिए बलि जाउँ।
नाहिंन मेरैं और कोउ, बलि, चरन-कमल बिन ठाउँ।
हौं असौच, अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाउँ।
तुम कृपाल, करुनानिधि, केसव, अधम-उधारन-नाउँ।
काकैं द्वार जाइ होउँ ठाढ़ौ, देखत काहि सुहाउँ।
असरन सरन नाम तुम्हरौ, हौं कामी, कुटिल, निभाउँ।

कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सेंत-मेंत न बिकाउँ।
सूर पतितपावन पद-अंबुज, सो क्यौं परिहरि जाउँ ॥१२८॥

राग सारंग

दीन-दयाल, पतित-पावन प्रभु, बिरद बुलावत कैसौ ?
कहा भयौ गज-गनिका तारैं जो न तारौ जन ऐसौ।
जो कबहूँ नर जन्म पाइ नहिं नाम तुम्हारौ लीनौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तजि, अनत नहीं चित दीनौ।
अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति।
जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति।
इंद्री-रस-बस भयौ, भ्रमत रह्यौ, जोइ कह्यौ सो कीनौ।
नेम-धर्म-व्रत, जप-तप-संजम, साधु-संग नहिं चीनौ।
दरस-मलीन, दीन दुरबल अति, तिनकौं मैं दुख-दानी।
ऐसौ सूरदास जन हरि कौ, सब अधमनि मैं मानी ॥१२६॥

राग देवगंधार

मोहिं प्रभु तुमसौं होड़ परी।
ना जानौं करिहौ अब कहा तुम नागर नवल हरी।
हुतीं जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी।
अधम-समूह उधारन-कारन तुम जिय जक पकरी।
मैं जु रह्यौ राजीव-नैन, दुरि, पाप-पहार-दरी।
पावहु मोहि कहाँ तारन कौं, गूढ़-गँभीर खरी।
एक अधार साधु-संगति कौ, रचि पचि मति सँचरी।
याहु सौंज संचि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी।
मोकौं मुक्ति बिचारत हौ प्रभु, पचिहौ पहर-घरी।
श्रम तैं तुम्हैं पसीना ऐहै, कत यह टेक करी ?
सूरदास बिनती कह बिनवै, दोषनि देह भरी।
अपनौ बिरद सम्हारहुगे तौ यामैं सब निबरी ॥१३०॥

राग धनाश्री

नाथ सकौ तौ मोहिं उधारौ।
पतितनि मैं बिख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ।

बड़े पतित पासंगहु नाहीं, अजामिल कौन बिचारौ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरौ, जम दीन्यौ हठि तारौ।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ।
सूर पतित कौं ठौर नहीं, तौ बहत बिरद कत भारौ? ॥१३१॥

राग धनाश्री

तुम कब मो सौं पतित उधार्‌यौ।
काहे कौं हरि बिरद बुलावत, बिन मसकत कौ तार्‌यौ।
गीध, ब्याध, गज, गौतम की तिय, उनकौ कौन निहोरौ।
गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ।
अजामील तौ विप्र, तिहारौ, हुतौ पुरातन दास।
नैंकु चूक तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुंठ निवास।
पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यौ न कोऊ खोट।
तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ, सूर कूर कवि ठोट ॥१३२॥

राग धनाश्री

पतित-पावन हरि, बिरद तुम्हारौ कौनैं नाम धर्‌यौ?
हौं तौ दीन, दुखित, अति दुरबल, द्वारैं रटत पर्‌यौ।
चारि पदारथ दिए, सुदामा तंदुल भेंट धर्‌यौ।
द्रुपद-सुता की तुम पति राखी, अंबर दान कर्‌यौ।
संदीपन सुत तुम प्रभु दीने, बिद्या-पाठ कर्‌यौ।
बेर सूर की निठुर भए प्रभु, मेरौ कछु न सर्‌यौ ॥१३३॥

राग धनाश्री

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै तुमहीं कै हमहीं, माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं।
हौं तौ पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिन करिहौं।
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं उठिहै, प्रभु, जब हँसि दैहौ बीरा ॥१३४॥

राग नट

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरु गुरु के सुत आनि।

रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारँग-पानि।
लंका दई बिभीषन जन कौं, पूरबली पहिचानि।
बिप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि।
सूरदास सौं कहा निहोरौ नैननि हूँ की हानि! ॥१३५॥

राग धनाश्री

मोसौं बात सकुच तजि कहियै।
कत ब्रीड़त, कोउ और बतावौ, ताही के ह्वै रहियै।
कैधौं तुम पावन प्रभु नाहीं कै कछु मो मैं झोलौ।
तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं, बचन एक जौ बोलौ।
तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे, इहै स्वाँग कौं काछे।
सूरदास कौं यहै बड़ौ दुख, परत सबनि के पाछे ॥१३६॥

राग सारंग

प्रभु, हौं बड़ी बेर कौ ठाढ़ौ।
और पतित तुम जैसे तारे, तिनहीं मैं लिखि काढ़ौ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं?
कै प्रभु हारि मानि कै बैठौ, कै करौ बिरद सही।
सूर पतित जौ झूठ कहत है, देखौ खोजि बही ॥१३७॥

राग सारंग

प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ।
बधिक, अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौं।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ?
कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितनि मैं, मोहूँ तैं को नीकौ! ॥१३८॥

राग सारंग

हौं तौ पतित-सिरोमनि, माधौ!
अजामील बातनि हीं तार्‌यौ, हुतौ जु मोतैं आधौ।
कै प्रभु हार मानि कै बैठौ, कै अबहीं निस्तारौ।
सूर पतित कौं और ठौर नहिं, है हरि-नाम सहारौ ॥१३९॥

राग सारंग

माधौ जू, मोतैं और न पापी।
घातक, कुटिल, चवाई, कपटी, महाक्रूर, संतापी।
लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, विषय-जाप कौ जापी।
भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी।
कामी, बिबस कामिनी कैं रस, लोभ-लालसा थापी।
मन-क्रम-वचन-दुसह सबहिनि सौं कटुक-वचन-आलापी।
जेतिक अधम उधारे प्रभु तुम, तिनकी गति मैं नापी।
सागर-सूर बिकार भर्‌यौ जल, बधिक-अजामिल बापी ॥१४०॥

राग कान्हरौ

हरि, हौं सब पतितनि-पतितेस।
और न सरि करिबे कौं दूजौ, महामोह मम देस।
आसा कैं सिंहासन बैठ्यौ, दंभ-छत्र सिर तान्यौ।
अपजस अति नकीब कहि टेर्‌यौ, सब सिर आयसु मान्यौ।
मंत्री काम-क्रोध निज, दोऊ अपनी अपनी रीति।
दुविधा-दुंद रहै निसि-बासर, उपजावत बिपरीति।
मोदी लोभ, खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार।
पाट बिरध ममता है मेरैं, माया कौ अधिकार।
दासी तृष्ना भ्रमत टहल-हित, लहत न छिन बिश्राम।
अनाचार-सेवक सौं मिलिकै करत चवाइनि काम।
बाजि मनोरथ, गर्ब मत्त गज, असत-कुमत रथ-सूत।
पायक मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्ट-मति दूत।
गढ़वै भयौ नरकपति मोसौं, दीन्हे रहत किवार।
सेना साथ बहुत भाँतिन की, कीन्हे पाप अपार।
निंदा जग उपहास करत, मग बंदीजन जस गावत।
हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित नौबत द्वार बजावत ॥१४१॥

राग धनाश्री

साँचौ सो लिखहार कहावै।
काया-ग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावै।
मन-महतो करि कैद अपने मैं, ज्ञान-जहतिया लावै।
माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध कौ, पोता-भजन भरावै।

चट्टा काटि कसूर भरम कौ, फरद तलै लै डारै।
निहचै एक असल पै राखै, टरै न कबहूँ टारै।
करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावै।
दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तामैं आवै।
मुजमिल जोरै ध्यान कुल्ल कौ, हरि सौं तहँ लै राखै।
निर्भय रूपै लोभ छाँड़िकै, सोई वारिज राखै।
जमा-खरच नीकैं करि राखै, लेखा समुझि बतावै।
सूर आपु गुजरान मुहासिब, लै जवाब पहुँचावै ॥१४२॥

राग धनाश्री

हरि, हौं ऐसौ अमल कमायौ।
साबिक जमा हुती जो जोरी, मिनजालिक तल ल्यायौ।
वासिल बाकी, स्याहा मुजमिल, सब अधर्म की बाकी।
चित्रगुप्त सु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी ?
मोहरिल पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी बिपरीति।
जिम्मैं उनके, माँगैं मोतैं, यह तौ बड़ी अनीति।
पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे।
सुनी तगीरी, बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे।
बढ़ौ तुम्हार बरामद हूँ कौ लिखि कीनौ है साफ।
सूरदास की यहै बीनती, दस्तक कीजै माफ ॥१४३॥

राग सारंग

हरि, हौं सब पतितनि कौ राजा।
निंदा पर-मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा।
तृष्ना देसऽरु सुभट मनोरथ, इंद्री खड्ग हमारी।
मंत्री काम कुमति दीबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी।
गज-अहँकार चढ़्यौ दिग-बिजयी, लोभ-छत्र करि सीस।
फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसौ हौं मैं ईस।
मोह-मया बंदी गुन गावत, मागध दोष-अपार।
सूर पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार ॥१४४॥

राग धनाश्री

हरि, हौं सब पतितनि कौ राउ।
को करि सकै बराबरि मेरी, सो धौं मोहिं बताउ।

व्याध, गीध अरु पतित पूतना, तिनतैं बड़ौ जु और।
तिनमैं अजामील, गनिकादिक, उनमैं मैं सिरमौर।
जहँ-तहँ सुनियत यहै बड़ाई, मो समान नहिं आन।
और हैं आजकाल के राजा, मैं तिनमैं सुलतान।
अब लगि प्रभु तुम बिरद बुलाए, भई न मोसौं भेंट।
तजौ बिरद कै मोहिं उधारौ, सूर कहै कसि फेंट ॥१४५॥

राग सारंग

हरि, हौं सब पतितनि कौ नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी, और नहीं कोउ लायक।
जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाऊँ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ।
बचन बाहँ लै चलौं गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी।
यह मारग चौगुनौ चलाऊँ, तौ पूरौ ब्यौपारी।
यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं, आइ होइ इक ठौर।
अब कै तौ आपुन लै आयौ, बेर बहुर की और।
होड़ा होड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट।
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हे भरि भाँड़ौ।
लीजै बेगि निबेरि तुरतहीं सूर पतित कौ टाँड़ौ ॥१४६॥

राग धनाश्री

मोसौं पतित न और गुसाइँ।
अवगुन मोपैं अजहुँ न छूटत, बहुत पच्यौ अब ताइँ।
जनम जनम तैं हौं भ्रमि आयौ कपि गुंजा की नाइँ।
परसत सीत जात नहिं क्यौंहूँ, लै लै निकट बनाइँ।
मोह्यौ जाइ कनक-कामिनि-रस, ममता मोह बढ़ाई।
जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौं उरझ्यौ, सूझी नहीं फँदाई।
सोवत मुदित भयौ सपने मैं पाई निधि जो पराई।
जागि परैं कछु हाथ न आयौ, यौं जग की प्रभुताई।
सेए नाहिं चरन गिरिधर के, बहुत करी अन्याई।
सूर पतित कौं ठौर कहूँ नहिं, राखि लेहु सरनाई ॥१४७॥

राग जगला—तिताला

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सब के अंतरजामी!
जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नोन-हरामी।
भरि भरि द्रोह बिषै कौं धावत, जैसैं सूकर ग्रामी।
सुनि सतसंग होत जिय आलस, बिषयिनि सँग बिसरामी।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की निसि-दिन करत गुलामी।
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी।
सूरदास प्रभु अधम-उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी ॥१४८॥

राग धनाश्री

हरि, हौं महापतित, अभिमानी।
परमारथ सौं बिरत, बिषय-रत, भाव-भगति नहिं नैंकहु जानी।
निसि-दिन दुखित मनोरथ करि करि, पावतहूँ तृष्ना न बुझानी।
सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटति ज्यौं अंजुलि-पानी।
बिमुखनि सौं रति जोरत दिन-प्रति, साधुनि सौं न कबहुँ पहिचानी।
तिहिं बिनु रहत नहीं निसि बासर, जिहिं सब दिन रस-बिषय बखानी।
माया-मोह-लोभ के लीन्हैं, जानी न बृंदावन रजधानी।
नवल किसोर जलद-तनु सुंदर, बिसर्‌यो सूर सकल-सुख-दानी ॥१४९॥

राग धनाश्री

माधो जू, मोहि काहे की लाज।
जनम जनम यौं हीं भरमायौ, अभिमानी, बेकाज।
जल-थल जीव जिते जग, जीवन निरखि दुखित भए देव!
गुन-अवगुन की समुझ न संका, परि आई यह टेव।
अब अनखाइ कहौं, घर अपनैं राखौ बाँधि-बिचारि।
सूर स्वान के पालनहारैं आवति हैं नित गारि ॥१५०॥

राग सारंग

माधौ जू, सो अपराधी हौं।
जनम पाइ कछु भलौ न कीन्हौ, कहौ सु क्यौं नियहौं?
सब सौं बात कहत जमपुर की गज पिपीलिका लौं।
पाप-पुन्य कौ फल दुख सुख है, भोग करौ जोइ गौं।

मोकौं पंथ वतायो सोई नरक कि सरग लहौं।
काकैं वल हौं तरौं गुसाईं, कछु न भक्ति मो मौं।
हँसि वोलौ जगदीस जगत-पति, वात तुम्हारी यौं।
करुना-सिंधु कृपाल, कृपा विनु काकी सरन तकौं।
वात सुने तैं वहुत हँसौगे, चरन-कमल की सौं।
मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूत घर मौं।
लै लै ते हथियार आपने, सान धराए त्यौं।
जिनके दारुन दरस देखि कै, पतित करत म्यौं म्यौं।
दाँत चवात चले जमपुर तैं, धाम हमारे कौं।
ढूँढ़ि फिरे घर कोउ न वतायौ, स्वपच कोरिया लौं।
रिस भरि गए परम किंकर तव, पकर्‍यौ छुटि न सकौं।
लै लै फिरे नगर मैं घर घर, जहाँ मृतक हो हौं।
ता रिस मैं मोहिं वहुतक मार्‍यौ, कहँ लगि वरनि सकौं।
हाय हाय मैं पर्‍यौ पुकारौं, राम-नाम न कहौं।
ताल-पखावज चले वजावत, समधी सोभा कौं।
सूरदास की भली वनी है, गर्जी गई अरु पौं ॥१५१॥

राग कान्हरौ

थोरे जीवन भयौ तन भारौ।
कियौ न संत-समागम कवहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ।
अति उनमत्त मोह-माया-बस नहिं कछु वात विचारौ।
करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ।
इंद्री-स्वाद-विवस निसि-वासर, आप अपुनपौ हारौ।
जल औंड़े मैं चहुँ दिसि पैर्‍यौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ।
वाँधी मोट पसारि त्रिविध गुन, नहिं कहुँ वीच उतारौ।
देख्यौ सूर विचारि सीस परी, तव तुम सरन पुकारौ ॥१५२॥

राग धनाश्री

अव मैं नाच्यौ वहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर वाजत, निंदा-सब्द-रसाल।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।

तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फैंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल ॥१५३॥

राग धनाश्री

ऐसैं करत अनेक जन्म गए, मन संतोष न पायौ।
दिन-दिन अधिक दुरासा लाग्यौ, सकल लोक भ्रमि आयौ।
सुनि-सुनि स्वर्ग, रसातल, भूतल, तहाँ-तहाँ उठि धायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-अगिनि तैं कहूँ न जरत बुझायौ।
सुत-तनया-वनिता-विनोद-रस, इहिं जुर-जरनि जरायौ।
मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत माँझ घृत नायौ।
भ्रमि-भ्रमि अब हार्‍यौ हिय अपनैं, देखि अनल जग छायौ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, कैसैं जात नसायौ ! ॥१५४॥

राग धनाश्री

जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ
हरि-सुमिरन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यौ न जाइ।
अब की बार मनुष्य-देह धरि, कियौ न कछू उपाइ।
भटकत फिर्‍यौ स्वान की नाईं नैंकु जूठ कैं चाइ।
कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन, विमल-विमल जस गाइ।
प्रेम सहित पग बाँधि घूँघुरू सक्यौ न अंग नचाइ।
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि नैंकहु रुचि उपजाइ।
आनि भक्ति करि, हरि-भक्तनि के कबहुँ न धोए पाइ।
अब हौं कहा करौं करुनामय, कीजै कौन उपाइ।
भव-अंबोधि, नाम-निज-नौका, सूरहिं लेहु चढ़ाइ ॥१५५॥

राग गौरी

माधौ जू, तुम कत जिय बिसर्‍यौ ?
जानत सब अंतर की करनी, जो मैं करम कर्‍यौ।
पतित-समूह सबै तुम तारे, हुतौ जु लोक भर्‍यौ।
हौं उनतैं न्यारौ करि डार्‍यौ, इहिं दुख जात मर्‍यौ।

फिरि-फिरि जोनि अनंतनि भरम्यौ, अब सुख-सरन पर्‌यौ।
इहिं अवसर कत बाहँ छुड़ावत, इहिं डर अधिक डर्‌यौ।
हौं पापी, तुम पतित-उधारन, डारे हौं कत देत?
जौ जानौ यह सूर पतित नहिं, तौ तारौ निज हेत ॥१५६॥

राग केदारौ

जौ पै तुमहीं बिरद बिसारौ।
तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय, कृपिन करम कौ मारौ!
दीन-दयाल, पतित-पावन, जस बेद बखानत चारौ।
सुनियत कथा पुराननि, गनिका, व्याध, अजामिल तारौ।
राग-द्वेष, बिधि-अबिधि, असुचि-सुचि, जिहिं प्रभु जहाँ सँभारौ।
कियौ न कबहुँ बिलंब कृपानिधि, सादर सोच निवारौ।
अगनित गुए हरि नाम तिहारैं, अजौं अपुनपौ धारौ।
सूरदास-स्वामी, यह जन अब करत करत स्रम हारौ ॥१५७॥

राग सारंग

ऐसे और बहुत खल तारे।
चरन-प्रताप, भजन-महिमा कौं, को कहि सकै तुम्हारे?
दुखित गयंद, दुष्ट-मति गनिका, नृग नृप कूप उधारे।
बिप्र बजाइ चल्यौ सुत कैं हित, कटे महा दुख भारे।
व्याध, गीध, गौतम की नारी, कहौ कौन ब्रत धारे?
केसी, कंस, कुवलया, मुष्टिक, सब सुख-धाम सिधारे।
उरजनि कौं बिष बाँटि लगायौ, जसुमति की गति पाई।
रजक - मल्ल - चानूर - दवानल - दुख - भंजन सुखदाई।
नृप सिसुपाल महा पद पायौ, सर-अवसर नहिं जान्यौ।
अघ-बक-तृनावर्त-धेनुक हति, गुन गहि दोष न मान्यौ।
पांडु-बधू पटहीन सभा मैं, कोटिनि बसन पुजाए।
बिपति काल सुमिरत तिहिं अवसर जहाँ तहाँ उठि धाए।
गोप-गाइ-गोसुत जल-त्रासत, गोवर्धन कर धार्‌यौ।
संतत दीन, हीन, अपराधी, काहैं सूर बिसार्‌यौ? ॥१५८॥

राग केदारौ

बहुरि की कृपाहू कहा कृपाल?
विद्यमान जन दुखित जगत मैं, तुम प्रभु दीन-दयाल!

जीवत जाँचत कन-कन निर्धन, दर-दर रटत बिहाल।
तन छूटे तैं धर्म नहीं कछु, जौ दीजै मनि-माल।
कह दाता जो द्रवै न दीनहिं देखि दुखित ततकाल।
सूर स्याम कौ कहा निहोरौ, चलत वेद की चाल ॥१५६॥

राग केदारौ

कौन सुनै यह बात हमारी ?
समरथ और देखौं तुम बिनु, कासौं बिथा कहौं बनवारी ?
तुम अविगत, अनाथ के स्वामी, दीन-दयाल, निकुंज-बिहारी।
सदा सहाइ करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी।
अब किहिं सरन जाउँ जादौपति, राखि लेहु बलि, त्रास निवारी।
सूरदास चरननि की बलि-बलि, कौन खता तैं कृपा बिसारी ?॥१६०॥

राग कल्यान

जैसैं राखहु तैसैं रहौं।
जानत हौ दुख-सुख सब जन के, मुख करि कहा कहौं ?
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महा गज, कबहुँक भार बहौं।
कमल-नयन, घन-स्याम-मनोहर, अनुचर भयौ रहौं।
सूरदास-प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं ॥१६१॥

राग धनाश्री

कब लगि फिरिहौं दीन बह्यौ ?
सुरति-सरित-भ्रम-भौंर-लोल मैं, मन परि तट न लह्यौ।
बात-चक्र बासना-प्रकृति मिलि, तन-तृन तुच्छ गह्यौ।
उरभ्यौ बिबस कर्म-निर अंतर, स्रमि सुख-सरनि चह्यौ।
बिनती करत डरत करुनानिधि, नाहिंन परत रह्यौ।
सूर करनि तरु रच्यौ जु निज कर, सो कर नाहिं गह्यौ ॥१६२॥

राग धनाश्री

तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी।
जिन कैं बस अनिमिप अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी।
बहत पवन, भरमत ससि-दिनकर, फनपति सिर न डुलावै।
दाहक गुन तजि सकत न पावक, सिंधु न सलिल बढ़ावै।

सिव-विरंचि-सुरपति-समेत सब सेवत प्रभु-पद चाए।
जो कछु करन कहत सोई सोइ कीजत अति अकुलाए।
तुम अनादि, अविगत, अनंत-गुन-पूरन परमानंद।
सूरदास पर कृपा करौ प्रभु, श्रीवृंदावन-चंद ॥१६३॥

राग मलार

तुम तजि और कौन पै जाउँ ?
काकैं द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ विकाउँ।
ऐसौ को दाता है समरथ, जाके दिऐं अघाउँ।
अंत काल तुम्हरैं सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं दाउँ।
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय-पद ठाउँ।
कामधेनु, चिंतामनि, दीन्हौं कल्पवृच्छ-तर छाउँ।
भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन मैं अधिक डराउँ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाउँ ॥१६४॥

राग सारंग

अब धौं कहौ, कौन दर जाउँ ?
तुम जगपाल, चतुर चिंतामनि, दीनबंधु सुनि नाउँ।
माया कपट-जुवा, कौरव-सुत, लोभ, मोह, मद भारी।
परबस परी सुनौ करुनामय, मम मति-तिय अब हारी।
क्रोध-दुसासन गहे लाज-पट, सर्व अंध-गति मेरी।
सुन,नर,मुनि,कोउ निकट न आवत,सूर समुझि हरि-चेरी ॥१६५॥

राग मारू

मेरी तौ गति-पति तुम, अनतहिं दुख पाऊँ !
हौं कहाइ तेरौ, अब कौन कौ कहाऊँ ?
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा लै दुहाऊँ !
हय गयंद उतरि कहा गर्दभ-चढ़ि धाऊँ !
कंचन-मनि खोलि डारि, काँच गर बँधाऊँ ?
कुमकुम कौ लेप मेटि, काजर मुख लाऊँ ?
पाटंबर-अंबर तजि, गूदरि पहिराऊँ ?
अंब सुफल छाँड़ि, कहा सेमर कौं धाऊँ ?

सागर की लहरि छाँड़ि, छीलर कस न्हाऊँ ?
सूर कूर, आँधरौ , मैं द्वार पर्यौ गाऊँ ? ॥१६६॥

राग आसावरी

स्याम-बलराम कौं सदा गाऊँ।
स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं, स्वप्न हूँ माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ।
यहै जप, यहै तप, यहै मम नेम-व्रत, यहै मम प्रेम, फल यहै ध्याऊँ।
यहै मम ध्यान,यहै ज्ञान,सुमिरन यहै,सूर-प्रभु देहु हौं यहै पाऊँ॥१६७॥

राग देवगंधार

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसैं उड़ि जहाज कौ पच्छी, फिरि जहाज पर आवै।
कमल-नैन कौ छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥१६८॥

राग सारंग

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गएँ कैसैं जन जीवत, ज्यौं पानी बिनु पान।
जैसैं मगन नाद-रस सारँग, बधत बधिक बिन बान।
ज्यौं चितवत ससि ओर चकोरी, देखत ही सुख मान।
जैसैं कमल होत अति प्रफुलित, देखत दरसन भान।
सूरदास-प्रभु-हरि-गुन मीठे, नित प्रति सुनियत कान॥१६९॥

राग धनाश्री

जौ हम भले बुरे तौ तेरे ?
तुम्हैं हमारी लाज-बड़ाई, बिनती सुनि प्रभु मेरे।
सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहे रे।
तुम प्रताप-बल बदत न काहूँ, निडर भए घर-चेरे।
और देव सब रंक-भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा तैं, पाए सुख जु घनेरे॥१७०॥

राग बिलावल

हमैं नँदनंदन मोल लिये।
जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किये।
भाल तिलक, स्रवननि तुलसीदल, मेटे अंक बिये।
मूँड्यौ मूँड, कंठ वनमाला, मुद्रा-चक्र दिये।
सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ, सुनत सिरात हिये।
सूरदास कौं और बड़ौ सुख, जूठनि खाइ जिये ॥१७१॥

राग कान्हरौ

भक्त-बछल प्रभु, नाम तुम्हारौ।
जल-संकट तैं राखि लियौ गज, ग्वालनि हित गोवर्धन धारौ।
द्रुपद-सुता कौ मिट्यौ महादुख, जबहीं सो हरि टेरि पुकारौ।
हौं अनाथ, नाहिंन कोउ मेरौ, दुस्सासन तन करत उघारौ।
भूप अनेक बंदि तैं छोरे, राज-रवनि जस अति बिस्तारौ।
कीजै लाज नाम अपने की, जरासंध सौं असुर सँघारौ।
अंबरीष कौ साप निवारौ, दुरबासा कौं चक्र सँभारौ।
बिदुर दास कैं भोजन कीन्हौ, दुरजोधन कौ मेट्यौ गारौ।
संतत दीन, महा अपराधी, काहैं सूरज क्रूर बिसारौ?
सो कहि नाम रह्यौ प्रभु तेरौ, बनमाली, भगवान, उधारौ ॥१७२॥

राग जैतश्री

हरि, हौं महा अधम संसारी।
आन समुझि मैं बरिया ब्याही, आसा कुमति कुनारी।
धर्म - सत्त मेरे पितु - माता, ते दोउ दिये बिडारी।
ज्ञान - बिवेक विरोधे दोऊ, हते बंधु हितकारी।
बाँध्यौ बैर दया भगिनी सौं, भागि दुरी सु बिचारी।
सील-सँतोष सखा दोउ मेरे, तिन्हैं बिगोवति भारी।
कपट - लोभ वाके दोउ भैया, ते घर के अधिकारी।
तृष्ना बहिनि, दीनता सहचरि, अधिक प्रीति बिस्तारी।
अति निसंक, निरलज्ज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी।
मैं तो वृद्ध भयौ वह तरुनी, सदा बयस इकसारी।
याकैं बस मैं बहु दुख पायौ, सोभा सबै बिगारी।
करियै कहा, लाज मरियै जब अपनी जाँघ उघारी।

अधिक कष्ट मोहिं परयौ लोक मैं, जब यह बात उचारी।
सूरदास प्रभु हँसत कहा हौ, मेटौ विपति हमारी ॥१७३॥

राग नट

तिहारे आगैं बहुत नच्यौ।
निसि-दिन दीन-दयाल, देवमनि, बहु बिधि रूप रच्यो।
कीन्हे स्वाँग जिते जाने मैं, एकौ तौ न बच्यौ।
सोधि सकल गुन काछि दिखायौ, अंतर हो जो सच्यौ।
जौ रीझत नहिं नाथ गुसाईं, तौ कत जात जँच्यौ?
इतनी कहौ, सूर पूरौ दै, काहैं मरत पच्यौ ॥१७४॥

राग अहीरी

भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ।
इन पतितनि कौं देखि देखि कै पाछैं सोच न कीन्हौ।
अजामील-गनिकादि आदि दै, पैरि पार गहि पैलौ।
संग लगाइ बीचहीं छाँड़्यौ, निपट अनाथ, अकेलौ।
अति गंभीर, तीर नहिं नियरैं, किहिं विधि उतरयो जात?
नहीं अधार नाम अवलोकत, जित-तित गोता खात।
मोहिं देखि सब हँसत परस्पर, दै दै तारी तार।
उन तौ करी पाछिले की गति, गुन तोरयौ बिच धार।
पद-नौका की आस लगाए, बूड़त हौं बिनु छाहँ।
अजहूँ सूर देखिबौ करिहौ, बेगि गहौ किन बाहँ? ॥१७५॥

राग सोरठ

भरोसौ नाम कौ भारी।
प्रेम सौं जिन नाम लीन्हौ, भए अधिकारी।
ग्राह जब गजराज घेरयौ, बल गयौ हारी।
हारि कै जब टेरि दीन्ही, पहुँचे गिरिधारी।
सुदामा-दारिद्र भंजे, कूबरी तारी।
द्रौपदी कौ चीर बढ़यौ, दुस्सासन गारी।
बिभीषन कौं लंक दीनी, रावनहिं मारी।
दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ, राम-दरबारी।

सत्य भक्तहिं तारिबे कौं, लीला विस्तारी।
बेर मेरी क्यों ढील कीन्ही, सूर बलिहारी ॥१७६॥

राग धनाश्री

तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत।
लालच लागि कोटि देवनि के, फिरत कपाटनि खोलत।
जब लगि सरवस दीजै उनकौं, तबहीं लगि यह प्रीति।
फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै, यह देवनि की रीति।
एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे।
तब पहिचानि सबनि कौं छाँड़े, नख-सिख लौं सब झूठे।
कंचन मनि तजि काँचहिं सैंतत, या माया के लीन्हे।
चारि पदारथ हूँ कौ दाता, सु तौ बिसर्जन कीन्हे।
तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, अखिल लोक के नायक।
सूरदास हम दृढ़ करि पकरे, अब ये चरन सहायक ॥१७७॥

राग गौरी

प्रभु मेरे, मोसौं पतित उधारौ।
कामी, कृपिन, कुटिल, अपराधी, अघनि भर्‌यौ बहु भारौ।
तीनौ पन मैं भक्ति न कीन्ही, काजर हूँ तैं कारौ।
अब आयौ हौं सरन तिहारी, ज्यौं जानौ त्यौं तारौ।
गीध-व्याध-गज-गनिका उधरी, लै लै नाम तिहारौ।
सूरदास प्रभु कृपावंत ह्वै, लै भक्तनि मैं डारौ ॥१७८॥

जानिहौं अब बाने की बात।
मोसौं पतित उधारौ प्रभु जौ, तौ बदिहौं निज तात।
गीध, व्याध, गनिका ऽरु अजामिल, ये को आहिं बिचारे।
ये सब पतित न पूजत मो सम, जिते पतित तुम तारे।
जौ तुम पतितनि के पावन हौ, हौं हूँ पतित न छोटौ।
बिरद आपुनौ और तिहारौ, करिहौं लोटक-पोटौ।
कै हौं पतित रहौं पावन ह्वै, कै तुम बिरद छुड़ाऊँ।
द्वै मैं एक करौं निरवारौ, पतितनि-राव कहाऊँ।
सुनियत है, तुम बहु पतितनि कौं, दीन्हौ है सुखधाम।
अब तौ आनि पर्‌यौ है गाढ़ौ, सूर पतित सौं काम ॥१७९॥

राग जैतश्री

तब विलंब नहिं कियौ, जबै हिरनाकुस मारयौ।
तब बिलंब नहिं कियौ, केस गहि कंस पछारयौ।
तब विलंब नहिं कियौ, सीस दस रावन कट्टे।
तब बिलंब नहिं कियौ, सबै दानव दहपट्टे।
कर जोरि सूर बिनती करै, सुनहु न हो रुकुमिनि-रवन!
काटौ न फंद मो अंध के, अब विलंब कारन कवन? ॥१८०॥

राग धनाश्री

ताहूँ सकुच सरन आए की होत जु निपट निकाज।
जद्यपि बुधि-बल बिभव बिहूनौ, बहत कृपा करि लाज।
तृन जड़, मलिन, बहत बपु राखै, निज कर गहै जु जाइ।
कैसैं कूल-मूल आस्रित कौं तजै आपु अकुलाइ?
तुम प्रभु अजित, अनादि, लोक-पति, हौं अजान, मतिहीन।
कछुव न होत निकट उत लागत, मगन होत इत दीन।
परिहस-सूल प्रबल निसि-बासर, तातैं यह कहि आवत।
सूरदास गोपाल सरनगत भएँ न को गति पावत ॥१८१॥

राग सोरठ

(हरि)पतित-पावन, दीन-बंधु, अनाथनि के नाथ।
संतत सब लोकनि स्तुति, गावत यह गाथ।
मोसौ कोउ पतित नहिं अनाथ - हीन - दीन।
काहे न निस्तारत प्रभु, गुननि - अँगनि - हीन।
गज, गनिका, गौतम-तिय मोचन मुनि-साप।
अरु जन - संताप - दरन, हरन - सकल - पाप।
मनसा - बाचा - कर्मना, कछू कही राखि?
सूर सकल अंतर के तुमहीं हौ साखि ॥१८२॥

राग सोरठ

जौ प्रभु, मेरे दोष बिचारैं।
करि अपराध अनेक जनम लौं, नख-सिख भरौ बिकारैं।
पुहुमि पत्र करि सिंधु मसानी गिरि-मसि कौं लै डारैं।
सुर-तरुवर की साख लेखिनी, लिखत सारदा हारैं।

पतित-उधारन बिरद बुलावैं, चारौं बेद पुकारैं।
सूर स्याम हौं पतित-सिरोमनि, तारि सकैं तौ तारैं ॥१८३॥

हमारी तुमकौं लाज हरी।
जानत हौ प्रभु, अंतरजामी, जो मोहिं माँझ परी।
अपनैं औगुन कहँ लौं बरनौं, पल पल, घरी घरी।
अति प्रपंच की मोट बाँधिकै अपनैं सीस धरी।
खेवनहार न खेवट मेरैं, अब मो नाव अरी।
सूरदास प्रभु, तव चरननि की आस लागि उबरी ॥१८४॥

प्रभु जू, यौं कीन्ही हम खेती।
बंजर भूमि, गाउँ हर जोते, अरु जेती की तेती।
काम-क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज-तामस सब कीन्हौ।
अति कुबुद्धि मन हाँकनहारे, माया जूआ दीन्हौ।
इंद्रिय-मूल-किसान, महातृन-अग्रज-बीज बई।
जन्म जन्म की बिषय-बासना, उपजत लता नई।
पंच-प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-बिधान जौ कीनौ।
अधिकारी जम लेखा माँगै, तातैं हौं आधीनौ।
घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं।
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौं।
अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही।
लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही।
सोई करौ जु बसतै रहियै, अपनौ धरियै नाउँ।
अपने नाम की बैरख बाँधौ, सुबस बसौं इहिं गाउँ।
कीजै कृपा-दृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई।
सूरदास के प्रभु सो करियै, होइ न कान-कटाई ॥१८५॥

प्रभु जू, हौं तो महा अधर्मी।
अपत, उतार, अभागौ, कामी, बिषयी, निपट कुकर्मी।
घाती, कुटिल, ढीठ, अति क्रोधी, कपटी, कुमति, जुलाई।
औगुन की कछु सोच न संका, बड़ौ दुष्ट, अन्याई।
चटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठि-कटा, लठबाँसी।
चंचल, चपल, चबाइ, चौपटा, लिये मोह की फाँसी।

चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठौ, खोटौ-खूटा।
लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, बड़ौ पढ़ैलौ, लूटा।
लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, कौड़ी कौड़ी जोरै।
कृपन, सूम, नहिं खाइ खवावै, खाइ मारि कै औरै।
लंगर, ढीठ, गुमानी, टूँडक, महा मसखरा, रूखा।
मचला, अकलै-मूल, पातर, खाउँ खाउँ करै भूखा।
निर्घिन, नीच कुलज, दुर्बुद्धी, भौंदू, नित कौ रोऊ।
तृष्ना हाथ पसारे निसि-दिन, पेट भरे पर सोऊ।
बात बनावन कौं है नीकौ, वचन-रचन समुझावै।
खाद-अखाद न छाँड़ै अब लौं, सब मैं साधु कहावै।
महा कठोर, सुन्न हिरदै कौ, दोष देन कौं नीकौ।
बड़ौ कृतघ्नी और निकम्मा, वेधन, राँकौ-फीकौ।
महा मत्त बुधि-बल कौ हीनौ, देखि करै अंधेरा।
बमनहिं खाइ, खाइ सो डारै, भापा कहि कहि टेरा।
मूकू, निंद, निगोड़ा, भौंड़ा, कायर, काम बनावै।
कलहा, कुही, मूष रोगी अरु काहूँ नैंकु न भावै।
पर-निंदक, परधन कौ द्रोही, पर-संतापनि बोरौ।
औगुन और बहुत हैं मो मैं, कह्यौ सूर मैं थोरौ ॥१८६॥

राग धनाश्री

अधम की जौ देखौ अधमाई।
सुनु त्रिभुवन-पति, नाथ हमारे, तौ कछु कह्यौ न जाई।
जब तैं जनम-मरन-अंतर हरि, करत न अघहिं अघाई।
अजहूँ लौं मन मगन काम सौं, बिरति नाहिं उपजाई।
परम कुबुद्धि, अजान ज्ञान तैं, हिय जु बसति जड़ताई।
पाँचौ देखि प्रगट ठाढ़े ठग, हठनि ठगौरी खाई।
सुमृति-बेद मारग हरि-पुर कौ, तातैं लियौ भुलाई।
कंटक-कर्म - कामना-कानन कौ मग दियौ दिखाई।
हौं कहा कहौं, सबै जानत हौ, मेरी कुमति कन्हाई।
सूर पतित कौं नाहिं कहूँ गति, राखि लेहु सरनाई ॥१८७॥

राग सारंग

तातैं बिपति-उधारन गायौ।
स्रवननि साखि सुनी भक्तनि मुख, निगमनि भेद बतायौ।

सुवा पढ़ावत जीभ लड़ावति, ताहि विमान पठायौ।
चरन-कमल परसत रिपि-पतिनी, तजि पपान, पद पायौ।
सव-हित-कारन देव, अभय पद, नाम प्रताप वढ़ायौ।
आरतिवंत सुनत गज-क्रंदन, फंदन काटि छुड़ायौ।
पावँ अवार सु धारि रमापति, अजस करत जस पायौ।
सूर कूर कहै मेरी विरियाँ विरद किते विसरायौ ॥१८८॥

राग कान्हरौ

ऐसी कव करिहौ गोपाल।
मनसा-नाथ, मनोरथ-दाता, हौ प्रभु दीनदयाल।
चरननि चित्त निरंतर अनुरत, रसना चरित-रसाल।
लोचन सजल, प्रेम-पुलकित तन, गर अंचल, कर माल।
इहिं विधि लखत, झुकाइ रहै जम अपनैं हीँ भय भाल।
सूर सुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल ॥१८९॥

राग धनाश्री

ऐसे प्रभु अनाथ के स्वामी।
दीनदयाल, प्रेम-परिपूरन, सव-घट-अंतरजामी।
करत विवस्त्र द्रुपद-तनया कौं, सरन सव्द कहि आयौ।
पूजि अनंत कोटि वसननि हरि, अरि कौ गर्व गँवायौ।
सुत-हित विप्र, कीर-हित गनिका, नाम लेत प्रभु पायौ।
छिनक भजन, संगति-प्रताप तैँ, गज अरु ग्राह छुड़ायौ।
नर-तन, सिंह-वदन, वपु कीन्हौ, जन लगि भेष वनायौ।
निज जन दुखी जानि भय तैँ अति, रिपु हति, सुख उपजायौ।
तुम्हरी कृपा गुपाल गुसाईं, किहिं, किहिं स्रम न गँवायौ?
सूरजदास अंध, अपराधी, सो काहैँ विसरायौ ॥१९०॥

राग धनाश्री

तौ लगि वेगि हरौ किन पीर?
जौ लगि आन न आनि पहूँचै, फेरि परैगी भीर।
अवहिं निवछरौ समय, सुचित है हम तौ निधरक कीजै।
औरौ आइ निकसिहैँ तातैँ, आगैं है सो लीजै।
जहाँ तहाँ तैँ सव आवैंगे, सुनि सुनि सस्तौ नाम।
अव तौ पर्‌यौ रहैगौ दिन-दिन तुमकौं ऐसौ काम।

यह तौ बिरद प्रसिद्ध भयौ जग, लोक-लोक जस कीन्हौ।
सूरदास प्रभु समुझि देखियै मैं वड़ तोहिं करि दीन्हौ ॥१६१॥

राग धनाश्री

माधौ जू, हौं पतित-सिरोमनि।
और न कोई लायक देखौं, सत-सत अघ प्रति रोमनि।
अजामील, गनिकाऽरु व्याध, नृग, ये सब मेरे चटिया।
उनहूँ जाइ सौंह दै पूछौ, मैं करि पठयौ सटिया।
यह प्रसिद्ध सवही कौ संमत, वड़ौ बड़ाई पावै।
ऐसौ को अपने ठाकुर कौं इहिं विधि महत वटावै।
नाहक मैं लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी।
यह तौ कथा चलैगी आगैं, सब पतितनि मैं हाँसी।
सूर सुमारग फेरि चलैगौ, वेद-बचन उर धारौ।
विरद छुड़ाइ लेहु वलि अपनौ, अब इहि तैं हद पारौ ॥१६२॥

राग सारंग

जिन जिनहीं केसव उर गायौ।
तिन तुम पै गोविंद-गुसाईं, सबनि अभै-पद पायौ।
सेवा यहै, नाम सर-अवसर जो काहुहिं कहि आयौ।
कियौ विलंब न छिनहुँ कृपानिधि, सोइ सोइ निकट बुलायौ।
मुख्य अजामिल मित्र हमारौ, सो मैं चलत बुझायौ।
कहाँ कहाँ लौं कहौं कृपन की, तिनहुँ न स्रवन सुनायौ।
व्याध,गीध,गनिका,जिहिं कागर,हौं तिहिं,चिठि न चढ़ायौ।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, सूर सबै बिसरायौ ॥१६३॥

राग नट नारायन

बिरद मनौ बरियाइन छाँड़े।
तुम सौं कहा कहौं करुनामय, ऐसे प्रभु तुम ठाढ़े।
सुनि सुनि साधु-बचन ऐसौ सठ, हठि औगुननि हिरानौ।
धोयौ चाहत कीच भरौ पट, जल सौं रुचि नहिं मानौ।
जौ मेरी करनी तुम हेरौ, तौ न करौ कछु लेखौ।
सूर पतित तुम पतित-उधारन, बिनय-दृष्टि अब देखौ ॥१६४॥

राग धनाश्री

जन यह कैसे कहै गुसाईं ?
तुम बिनु दीनबंधु, जादवपति, सब फीकी ठकुराई।
अपने से कर-चरन-नैन-मुख, अपनी सी बुधि पाई।
काल-कर्म-बस फिरत सकल प्रभु, तेऊ हमरी नाईं।
पराधीन, पर बदन निहारत, मानत मूढ़ बड़ाई।
हँसैं हँसत, बिलखैं बिलखत हैं, ज्यौं दर्पन मैं झाईं।
लियैं दियौ चाहैं सब कोऊ, सुनि समरथ जदुराई!
देव, सकल व्यापार परस्पर, ज्यौं पसु दूध-चराई।
तुम बिनु और न कोउ कृपानिधि, पावै पीर पराई।
सूरदास के त्रास हरन कौं कृपानाथ-प्रभुताई ॥१६५॥

राग देवगंधार

इक कौं आनि ठेलत पाँच !
करुनामय, कित जाउँ कृपानिधि, बहुत नचायौ नाच।
सबै क्रूर मोसौं ऋन चाहत, कहौ कहा तिन दीजै!
बिना दियैं दुख देत दयानिधि, कहौ कौन बिधि कीजै!
थाती प्रान तुम्हारी मोपै, जनमत हीं जो दीन्ही।
सो मैं बाँटि दई पाँचनि कौं, देह जमानति लीन्ही।
मन राखैं तुम्हरे चरननि पै, नित नित जो दुख पावैं।
मुकरि जाइ, कै दीन बचन सुनि, जमपुर बाँधि पठावैं।
लेखौ करत लाखही निकसत, को गनि सकत अपार।
हीरा जनम दियौ प्रभु हमकौं, दीन्ही बात सम्हार।
गीता-बेद-भागवत मैं प्रभु, यौं बोले हैं आथ।
जन के निपट निकट सुनियत हैं, सदा रहत हौ साथ।
जब जब अधम करी अधमाई, तब तब टोक्यौ नाथ।
अब तौ मोहिं बोलि नहिं आवै, तुमसौं क्यौं कहौं गाथ!
हौं तौ जाति गँवार, पतित हौं, निपट निलज, खिसिआनौ।
तब हँसि कह्यौ सूर-प्रभु सो तौ, मोहूँ सुन्यौ घटानौ ॥१६६॥

राग आसावरी

हरि जू, मोसौ पतित न आन।
मन-क्रम-बचन पाप जे कीन्हे, तिनकौ नाहिं प्रमान।

चित्रगुप्त जम-द्वार लिखत हैं, मेरे पातक झारि।
तिनहूँ त्राहि करी सुनि औगुन, कागद दीन्हे डारि।
औरनि कौं जम कैं अनुसासन, किंकर कोटिक धावैं।
सुनि मेरौ अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवैं।
हौं ऐसौ, तुम वैसे पावन, गावत हैं जे तारे।
अवगाहौं पूरन गुन स्वामी, सूर से अधम उधारे॥१६७॥

राग धनाश्री

मोसौ पतित न और हरे।
जानत हौ प्रभु अंतरजामी, जे मैं कर्म करे।
ऐसौ अंध, अधम, अविवेकी, खोटनि करत खरे।
बिषयी भजे, बिरक्त न सेए, मन धन-धाम धरे।
ज्यौं माखी, मृगमद-मंडित-तन परिहरि, पूय परे।
त्यौं मन मूढ़ विषय-गुंजा गहि, चिंतामनि बिसरे।
ऐसे और पतित अवलंबित, ते छिन माहिं तरे।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, बिरद कि लाज धरे॥१६८॥

राग नट

मेरी बेर क्यौं रहे सोचि?
काटि कै अघ-फाँस पठवहु, ज्यौं दियौ गज मोचि।
कौन करनी घाटि मोसौं, सो करौं फिरि काँधि।
न्याइ कै नहिं खुनुस कीजै, चूक पल्लैं बाँधि।
मैं कछू करिबे न छाँड्यौ, या सरीरहिं पाइ।
तऊ मेरौ मन न मानत, रह्यौ अघ पर छाइ।
अब कछू हरि कसरि नाहीं, कत लगावत बार?
सूर-प्रभु यह जानि पदवी, चलत बैलहिं आर॥१६९॥

राग धनाश्री

अपुने कौं को न आदर देइ?
ज्यौं बालक अपराध कोटि करै, मातु न मानै तेइ।
ते बेली कैसैं दहियत हैं, जे अपनैं रस भेइ।
श्री संकर बहु रतन त्यागि कै, विषहिं कंठ धरि लेइ।

माता-अछत छीर बिन सुत मरै, अजा-कंठ-कुच सेइ ?
जद्यपि सूरज महा पतित है, पतित-पावन तुम तेइ ॥२००॥

राग धनाश्री

जौ जग और बियौ कोउ पाऊँ।
तौ हौं बिनती बार-बार करि, कत प्रभु तुमहिं सुनाऊँ ?
सिव-बिरंचि, सुर-असुर, नाग-मुनि, सु तौ जाँचि जन आयौ।
भूल्यौ, भ्रम्यौ, तृषातुर मृग लौं, काहूँ स्रम न गँवायौ।
अपथ सकल चलि, चाहि चहूँ दिसि, भ्रम उघटत मतिमंद।
थकित होत रथ चक्र-हीन ज्यौं, निरखि कर्म-गुन-फंद।
पौरुष-रहित, अजित इंद्रिनि बस, ज्यौं गज पंक पर्‌यौ।
बिषयासक्त, नटी के कपि ज्यौं, जोइ जोइ कह्यौ कर्‌यौ।
भव-अगाध-जल-मग्न महा सठ, तजि पद-कूल रह्यौ।
गिरा-रहित, बृक-ग्रसित अजा लौं, अंतक आनि गह्यौ।
अपने ही अँखियानि दोष तैं, रबिहिं उलूक न मानत।
अतिसय सुकृत-रहित, अघ-ब्याकुल, बृथा स्रमित रज छानत।
सुनु त्रयताप-हरन, करुनामय, संतत दीनदयाल !
सूर कुटिल राखौ सरनाई, इहिं ब्याकुल कलिकाल ॥२०१॥

राग केदारौ

प्रभु, तुम दीन के दुख-हरन।
स्यामसुंदर, मदन-मोहन, बान असरन-सरन।
दूर देखि सुदामा आवत, धाइ परस्यौ चरन।
लच्छ सौं बहु लच्छ दीन्हौ, दान अवढर-ढरन।
छल कियौ पांडवनि कौरव, कपट-पासा ढरन।
खाय बिष, गृह लाय दीन्हौ, तउ न पाए जरन।
बूड़तहिं ब्रज राखि लीन्हौ, नखहिं गिरिवर धरन।
सूर प्रभु कौ सुजस गावत, नाम-नौका तरन ॥२०२॥

राग धनाश्री

भक्ति बिना जौ कृपा न करते, तौ हौं आस न करतौ।
बहुत पतित उद्धार किए तुम, हौं तिनकौं अनुसरतौ।
मुख मृदु-बचन जानि मति जानहु, सुद्ध पंथ पग धरतौ।

कर्म-बासना छाँड़ि कबहुँ नहिं साप पाप आचरतौ।
सुजन-बेष-रचना प्रति जनमनि, आयौ पर-धन हरतौ।
धर्म-धुजा अंतर कछु नाहीं, लोक दिखावत फिरतौ।
परतिय-रति-अभिलाष निसा-दिन, मन-पिटरी लै भरतौ।
दुर्मति, अति अभिमान, ज्ञान बिन, सब साधन तैं टरतौ।
उदर-अर्थ चोरी हिंसा करि, मित्र-बंधु सौं लरतौ।
रसना-स्वाद-सिथिल, लंपट ह्वै, अघटित भोजन करतौ।
यह ब्यौहार लिखाइ, रात-दिन, पुनि जीतौ पुनि मरतौ।
रवि-सुत-दूत बारि नहिं सकते, कपट घनौ उर बरतौ।
साधु-सील, सद्रूप पुरुष कौ, अपजस बहु उच्चरतौ।
औघड़-असत-कुचीलनि सौं मिलि, माया-जल मैं तरतौ।
कबहुँक राज-मान-मद-पूरन, कालहु तैं नहिं डरतौ।
मिथ्या बाद आप-जस सुनि सुनि, मूछहिं पकरि अकरतौ।
इहिं बिधि उच्च-अनुच तन धरि धरि, देस बिदेस बिचरतौ।
तहँ सुख मानि, बिसारि नाथ-पद, अपनैं रंग बिहरतौ।
अब मोहिं राखि लेहु मनमोहन, अधम-अंग पद परतौ।
खर-कूकर की नाईं मानि सुख, बिषय-अगिनि मैं जरतौ।
तुम गुन की जैसै मिति नाहिं न, हौं अघ कोटि बिचरतौ।
तुम्हैं-हमैं प्रति बाद भए तैं गौरव काकौ गरतौ ?
मोतैं कछू न उबरी हरि जू, आयौ चढ़त-उतरतौ।
अजहूँ सूर पतित-पद तजतौ, जौ औरहु निस्तरतौ ॥२०३॥

राग बिलावल

तुम्हरौ नाम तजि प्रभु जगदीसर, सु तौ कहौ मेरे और कहा बल ?
बुधि-बिवेक-अनुमान आपनैं, सोधि गह्यौ सब सुकृतानि कौ फल।
बेद, पुरान, सुमृति, संतनि कौं, यह आधार मीन कौं ज्यौं जल।
अष्ट सिद्धि, नव निधि, सुर-संपति, तुम बिनु तुसकन कहुँ न कछू लल।
अजामील, गनिका, जु ब्याध, नृग, जासौं जलधि तरे ऐसेउ खल।
सोइ प्रसाद सूरहिं अब दीजै, नहीं बहुत तौ अंत एक पल ॥२०४॥

राग सारग

अब हौं हरि, सरनागत आयौ।
कृपानिधान, सुदृष्टि हेरियै, जिहिं पतितनि अपनायौ।

ताल, मृदंग, झाँझ, इंद्रिनि मिलि, बीना, बेनु बजायौ।
मन मेरैं नट के नायक ज्यौं तिनहीं नाच नचायौ।
उघट्यौ सकल सँगीत रीति-भव अंगनि अंग बनायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह की, तान-तरंगनि गायौ।
सूर अनेक देह धरि भूतल, नाना भाव दिखायौ।
नाच्यौ नाच लच्छ चौरासी, कबहुँ न पूरौ पायौ ॥२०५॥

राग नट

मन बस होत नाहिनै मेरैं।
जिनि बातनि तैं बह्यौ फिरत हौं, सोई लै लै प्रेरै।
कैसैं कहौं-सुनौं जस तेरे, औरै आनि खचेरै।
तुम तौ दोष लगावन कौं सिर, बैठे देखत नेरैं।
कहा करौं, यह चर्‌यौ बहुत दिन, अंकुस बिना मुकेरैं।
अब करि सूरदास प्रभु आपुन, द्वार पर्‌यौ है तेरैं ॥२०६॥

राग धनाश्री

मैं तौ अपनी कही बड़ाई।
अपने कृत तै हौं नहिं बिरमत, सुनि कृपालु ब्रजराई!
जीव न तजै स्वभाव जीव कौ, लोक विदित दृढ़ताई।
तौ क्यौं तजै नाथ अपनौ प्रन? है प्रभु की प्रभुताई!
पाँच लोक मिलि कह्यौ, तुम्हारैं नहिं अंतर मुकताई।
तव सुमिरन-छल दुर्भर के हित, माला तिलक बनाई।
काँपन लागी धरा, पाप तैं ताड़ित लखि जदुराई!
आपुन भए उधारन जग के, मैं सुधि नीकैं पाई।
अब मिथ्या तप, जाप, ज्ञान सब, प्रगट भई ठकुराई।
सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई ॥२०७॥

राग गौरी

अब मोहिं सरन राखियै नाथ!
कृपा करी जो गुरुजन पठए, बह्यौ जात गह्यौ हाथ।
अहंभाव तैं तुम बिसराए, इतनेंहिं छूट्यौ साथ।
भवसागर मैं पर्‌यौ प्रकृति-बस, बाँध्यौ फिर्‌यौ अनाथ।

भ्रमित भयौ, जैसैं मृग चितवत, देखि देखि भ्रम-पाथ।
जनम न लख्यौ संत की संगति, कह्यौ-सुन्यौ गुन-गाथ।
कर्म, धर्म तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाथ।
अभय-दान दै, अपनौ कर धरि सूरदास कैं माथ ॥२०८॥

राग धनाश्री

अब मोहिं मज्जत क्यौं न उबारौ ?
दीनबंधु, करुनानिधि स्वामी, जन के दुःख निवारौ।
ममता-घटा, मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारौ।
बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट-अधारौ।
गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहुँ न उतारौ।
तृष्ना-तड़ित चमिकि छनहीं-छन, अह-निसि यह तन जारौ।
यह भव-जल कलिमलहिं गहे है, बोरत सहस प्रकारौ।
सूरदास पतितनि के संगी, बिरदहिं नाथ, सम्हारौ ॥२०९॥

राग धनाश्री

जगतपति नाम सुन्यौ हरि, तेरौ

. . . . ।
मन चातक जल तज्यौ स्वाति-हित, एक रूप व्रत धार्‍यौ।
नैंकु वियोग मीन नहिं मानत, प्रेम-काज बपु हार्‍यौ।
राका-निसि केते अंतर ससि, निमिष चकोर न लावत।
निरखि पतंग बानि नहिं छाँड़त, जदपि जोति तनु तावत।
कीन्हे नेह-निबाह जीव जड़, ते इत-उत नहिं चाहत।
जैहै काहि समीप सूर नर, कुटिल बचन-दव दाहत ॥२१०॥

राग देवगंधार

जौ पै यहै विचार परी।
तौ कत कलि-कलमष लूटन कौं, मेरी देह धरी ?
जौ नाहीं अनुसरत नाम जग, विदित विरद कत कीन्हौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह कैं, हाथ बाँधि कत दीन्हौ ?
मनसा और मानसी सेवा, दोउ अगाध करि जानौं।
होहु कृपालु कृपानिधि, केसव, बहु अपराध न मानौ।

काकौ गृह, दारा, सुत, संपति, जासौं कीजै हेत ?
सूरदास प्रभु दिन उठि मारियत, जम कौं लेखौ देत ॥२११॥

राग टोडी

भजहु न मेरे स्याम मुरारी।
सब संतनि के जीवन हैं हरि, कमल-नयन प्यारे हितकारी।
या संसार-समुद्र, मोह-जल, तृष्ना-तरँग उठति अति भारी।
नाव न पाई सुमिरन हरि कौ, भजन-रहित बूड़त संसारी।
दीन-दयाल, अधार सबनि के, परम सुजान, अखिल अधिकारी।
सूरदास किहिं तिहिं तजि जाँचै, जन-जन-जाँचक होत भिखारी ॥२१२

राग धनाश्री॥

हारी जानि परी हरि मेरी।
माया-जल बूड़त हौं तकि तट चरन सरन धरि तेरी।
भव सागर, बोहित बपु मेरौ, लोभ-पवन दिसि चारौ।
सुत-धन-धाम-त्रिया-हित औरै लग्यौ बहुत बिधि भारौ।
अब भ्रम-भँवर पर्‌यौ ब्रज-नायक, निकसन की सब बिधि की।
सूर सरद-ससि-बदन दिखाऐं उठै लहर जलनिधि की ॥२१३॥

राग रामकली

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्न स्वामी।
नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहिं पर, सकल अघ-हरन हरि गरुड़गामी।
पर्‌यौ भव-जलधि मैं, हाथ धरि काढ़ि मम दोष जनि धारि चित काम-कामी।
सूर बिनती करै, सुनहु नँद-नंद तुम, कहा कहौं खोलि कै अँतरजामी ॥२१४॥

राग धनाश्री

अदभुत जस बिस्तार करन कौं हम जन कौ बहु हेत।
भक्त-पावन कोउ कहत न कबहूँ, पतित-पावन कहि लेत।
जय अरु बिजय कथा नहिं कछुवै, दसमुख-बध-बिस्तार।
जद्यपि जगत-जननि कौ हरता, सुनि सब उतरत पार।
सेसनाग के ऊपर पौढ़त, तेतिक नाहिं बड़ाई।
जातुधानि-कुच-गर मर्षत तब, तहाँ पूर्नता पाई।
धर्म कहैं, सर-सयन गंग-सुत, तेतिक नाहिं सँतोष।
सुत सुमिरत आतुर द्विज उधरत, नाम भयौ निर्दोष!

धर्म-कर्म-अधिकारिनि सौं कछु नाहिं न तुम्हरौ काज।
भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत संत-समाज।
भार-हरन बिरुदावलि तुम्हरी, मेरे क्यौं न उतारौ?
सूरदास-सत्कार किए तैं ना कछु घटै तुम्हारौ ॥२१५॥

राग धनाश्री

हरि जू, हौं यातैं दुख-पात्र।
श्रीगिरिधरन-चरन-रति ना भई तजि विषया-रस मात्र।
हुतौ आढ्य तब कियौ असद्व्यय, करी न ब्रज-बन-जात्र।
पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र।
भवन सँवारि, नारि-रस लोभ्यौ, सुत, बाहन, जन, भ्रात्र।
महानुभाव निकट नहिं परसे, जान्यौ न कृत-बिधात्र।
छल-बल करि जित-तित हरि पर-धन, धायौ सब दिन-रात्र।
सुद्धासुद्ध बोझ बहु बह्यौ सिर, कृषि जु करी लै दात्र।
हृदय कुचील काम-भू-तृष्ना-जल-कलिमल है पात्र।
ऐसे कुमति जाट सूरज कौं प्रभु बिनु कोउ न धात्र ॥२१६॥

राग नट

मेरैं हृदय नाहिं आवत हौ, हे गुपाल, हौं इतनी जानत!
कपटी, कृपन, कुचील, कुदरसन, दिन उठि बिषय-बासना बानत।
कदली कंटक, साधु असाधुहिं, केहरि कैं सँग धेनु बँधाने।
यह बिपरीति जानि तुम जन की, अंतर दै बिच रहे लुकाने।
जो राजा-सुत होइ भिखारी, लाज परे ते जाइ बिकाने।
सूरदास प्रभु अपने जन कौं कृपा करहु जौ लेहु निदाने ॥२१७॥

राग सोरठ

प्रभु, मैं पीछौ लियौ तुम्हारौ।
तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल आपदा टारौ।
महा कुबुद्धि, कुटिल, अपराधी, औगुन भरि लियौ भारौ।
सूर कूर की याही बिनती, लै चरननि मैं डारौ ॥२१८॥

राग मुलतानी धनाश्री-तिताला

मेरी सुधि लीजौ हो ब्रजराज।
और नहीं जग मैं कोउ मेरौ, तुमहिं सुधारन-काज।

गनिका, गीध, अजामिल तारे, सवरी औ गजराज।
सूर पतित पावन करि कीजै, बाहँ गहे की लाज ॥२१९॥

राग खंबावती-तिताला

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक वरन ह्वै, गंगा नाम परौ।
तन माया, ज्यौं ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥२२०॥

राग मुलतानी-तिताला

अब मेरी राखौ लाज मुरारी।
संकट मैं इक संकट उपजौ, कहै मिरग सौं नारी।
और कछू हम जानति नाहीं, आई सरन तिहारी।
उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यौ सिर झारी।
नाचन-कूदन मृगिनी लागी, चरन कमल पर वारी।
सूर स्याम-प्रभु अविगत-लीला, आपुहिं आपु सँवारी ॥२२१॥

यमुना-स्तुति *राग रामकली*

भक्त जमुने सुगम, अगम औरैं।
प्रात जो न्हात, अघ जात ताके सकल, ताहि जमहू रहत हाथ जोरैं।
अनुभवी जानही विना अनुभव कहा, प्रिया जाकौ नहीं चित्त चोरै।
प्रेम के सिंधु कौ मर्म जान्यौ नहीं सूर कहि कहा भयौ देह बोरैं? ॥२२२॥

राग रामकली

फल फलित होत फल-रूप जानैं।
देखिहू सुनिहु नहिं ताहि अपनौ कहै, ताकी यह बात कोउ कैसैं मानै।
ताहि कैं हाथ निरमोल नग दीजियै, जोइ नीकैं परखि ताहि जानै।
सूर कहि क्रूर तैं दूर वसियै सदा, जमुन कौ नाम लीजै जु छानैं ॥२२३॥

श्रीभागवत-प्रसंग

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि की कथा होइ जब जहाँ। गंगाहू चलि आवै तहाँ।
जमुना, सिंधु, सरस्वति आवै। गोदावरी बिलंब न लावै।
सर्ब तीर्थ कौ बासा तहाँ। सूर हरि-कथा होवै जहाँ॥२२४॥

भागवत वर्णन *राग सारंग*

श्रीमुख चारि स्लोक दए ब्रह्मा कौं समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सौं कहे, नारद ब्यास सुनाइ।
ब्यास कहे सुकदेव सौं द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ॥२२५॥

श्री शुक-जन्म-कथा *राग बिलावल*

ब्यास कह्यौ जो सुक सौं गाइ। कहौं सो सुनौ संत चित लाइ।
ब्यास पुत्र-हित बहु तप कियौ। तब नारायन यह बर दियौ।
ह्वै है पुत्र भक्त अति ज्ञानी। जाकी जग मैं चले कहानी।
यह बर दै हरि कियौ उपाइ। नारद मन संसय उपजाइ।
तब नारद गिरिजा पैं गए। तिनसौं या बिधि पूछत भए।
मुंडमाल सिव-ग्रीवा कैसी? मोसौं बरनि सुनावौ तैसी।
उमा कही मैं तौ नहिं जानी। अरु सिवहूँ मोसौं न बखानी।
नारद कह्यौ अब पूछौ जाइ। बिनु पूछैं नहिं देहिं बताइ।
उमा जाइ सिव कौं सिर नाइ। कह्यौ सुनो बिनती सुरराइ।
मुंडमाल कैसी तव ग्रीवा? याकी मोहिं बतावौ सींवा।
सिव बोले तब बचन रसाल। उमा आहि यह सो मुँडमाल।
जब जब जनम तुम्हारौ भयौ। तब तब मुंडमाल मैं लयौ।
उमा कह्यौ सिव तुम अबिनासी। मैं तुम्हरे चरननि की दासी।
मेरे हित इतनौ दुख भरत। मोहि अमर काहे नहिं करत?

तब सिव-उमा गए ता ठौर। जहाँ नहीं द्वितिया कोउ और।
सहस-नाम तहँ तिन्हैं सुनायौ। जातैं आपु अमर-पद पायौ।
तहाँ हुतौ इक सुक कौ अंग। तिहिं यह सुन्यौ सकल परसंग।
ताकौं सिव मारन कौं धायौ। तिन उड़ि अपुनौ आपु बचायौ।
उड़त-उड़त सुक पहुँच्यौ तहाँ। नारि व्यास की बैठी जहाँ।
सिवहू ताके पाछैं धाए। पै ताकौं मारन नहिं पाए।
ब्यास-नारि तबहीं मुख बायौ। तब तनु तजि मुख माहिं समायौ।
द्वादस बर्ष गर्भ मैं रह्यौ। व्यास भागवत तबहीं कह्यौ।
बहुरौ जब जदुपति समुझायौ। तेरी माता बहु दुख पायौ।
तू जिहिं हित नहिं बाहर आवै। सो हमसौं कहि क्यौं न सुनावै ?
प्रभु तुव माया मोहिं सतावत। तातैं मैं बाहर नहिं आवत।
हरि कह्यौ अब न व्यापिहै माया। तब वह गर्भ छाँड़ि जग आया।
माया मोह ताहि नहिं गह्यौ। सुन्यौ ज्ञान सो सुमिरन रह्यौ।
जैसैं सुक कौं ब्यास पढ़ायौ। सूरदास तैसैं कहि गायौ ॥२२६॥

श्रीभागवत के वक्ता-श्रोता *राग बिलावल*

ब्यासदेव जब सुकहिं पढ़ायौ। सुनि कै सुक सो हृदय बसायौ।
सुक सौं नृपति परीछित सुन्यौ। तिनि पुनि भली भाँति करि गुन्यौ।
सूत सौनकनि सौं पुनि कह्यौ। बिदुर सो मैत्रेय सौं लह्यौ।
सुनि भागवत सबनि सुख पायौ। सूरदास सो बरनि सुनायौ ॥२२७॥

सूत-शौनक-संवाद *राग बिलावल*

सूत ब्यास सौं हरि-गुन सुने। बहुरौ तिन निज मन मैं गुने।
सो पुनि नीमषार मैं आयौ। तहाँ रिषिनि कौ दरसन पायौ।
रिषिनि कह्यौ हरि-कथा सुनावौ। भली भाँति हरि के गुन गावौ।
प्रथमहिं कह्यौ ब्यास-अवतार। सुनौ सूर सो अब चित धार॥२२८॥

व्यास-अवतार *राग बिलावल*

हरि हरि,हरि हरि,सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
ब्यास-जनम भयौ जा परकार। कहौंसो कथा, सुनौ चित धार।
सत्यवती मच्छोदरि नारी। गंगा-तट ठाढ़ी सुकुमारी।
तहाँ परासर रिषि चलि आए। बिबस होइ तिहिं कैं मद छाए।

रिषि कह्यौ ताहि, दान-रति देहि। मैं बर देहुँ तोहिं सो लेहि।
तू कुमारिका बहुरौ होइ। तोकौं नाम धरै नहिं कोइ।
मेरौ कह्यौ न जौ तू करै। देहौं साप, महा दुख भरै।
सत्यवती सराप-भय मान। रिषि कौ बचन कियौ परमान।
जोजनगंधा काया करी। मच्छ-बास ताकी सब हरी।
ब्यासदेव ताकैं सुत भए। होत जनम बहुरौ बन गए।
देखौ काम-प्रताप ऽधिकाई। कियौ परासर बस रिषिराई।
प्रबल सत्रु आहै यह मार। यातैं संतौ, चलौ सँभार।
या बिधि भयौ ब्यास-अवतार। सूर कह्यौ भागवत बिचार ॥२२९॥

श्रीभागवत-अवतरण का कारण *राग बिलावल*

भयौ भागवत जा परकार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार।
सतजुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ।
द्वापर सहस एक की भई। कलिजुग सत संबत रहि गई।
सोऊ कहन सुनन कौं रही। कलि-मरजाद जाइ नहिं कही।
तातैं हरि करि ब्यास ऽवतार। करो संहिता वेद - बिचार।
बहुरि पुरान अठारह किये। पै तउ सांति न आई हिये।
तब नारद तिनकैं ढिग आइ। चारि स्लोक कहे समुझाइ।
ये ब्रह्मा सौं कहे भगवान। ब्रह्मा मोसौं कहे बखान।
सोई अब मैं तुमसौं भाखे। कहौ भागवत इन हिय राखे।
श्री भागवत सुनै जो कोइ। ताकौं हरि-पद-प्रापति होइ।
ऊँच नीच ब्यौरौ न रहाइ। ताकी साखी मैं, सुनि भाइ!
जैसैं लोहा कंचन होइ। ब्यास, भई मेरी गति सोइ।
दासी-सुत तैं नारद भयौ। दोष दासपन कौ मिटि गयौ।
ब्यासदेव तब करि हरि-ध्यान। कियौ भागवत कौ ब्याख्यान।
सुनै भागवत जो चित लाइ। सूर सो हरि भजि भव तरि जाइ ॥२३०॥

राग सारंग

कह्यौ सुक श्री भागवत-बिचार।
जाति-पाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति कैं दरबार।
श्रीभागवत सुनै जो हित करि, तरै सो भव-जल पार।
सूर सुमिरि सो रटि निसि-बासर, राम-नाम निज सार ॥२३१॥

नाम-माहात्म्य

राग कान्हरौ

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कैं कोट।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट ॥२३२॥

राग धनाश्री

सोइ भलौ जो रामहिं गावै।
स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विज-जनम न भावै।
वाद-विवाद, जज्ञ-व्रत-साधन, कितहूँ जाइ, जनम डहकावै।
होइ अटल जगदीस-भजन मैं, अनायास चारिहुँ फल पावै।
कहूँ ठौर नहिं चरन-कमल बिनु, भृंगी ज्यौं दसहूँ दिसि धावै।
सूरदास प्रभु संत-समागम, आनँद अभय निसान बजावै ॥२३३॥

राग सारग

काहु के बैर कहा सरै।
ताकी सरवरि करै सो झूठौ जाहि गुपाल बड़ौ करै।
ससि-सन्मुख जो धूरि उड़ावै, उलटि ताहि कैं मुख परै।
चिरिया कहा समुद्र उलीचै, पवन कहा परवत टरै?
जाकी कृपा पतित ह्वै पावन, पग परसत पाहन तरै।
सूर केस नहिं टारि सकै कोउ, दाँत पीसि जौ जग मरै ॥२३४॥

राग केदारौ

है हरि-भजन कौ परमान।
नीच पावैं ऊँच पदवी, बाजते नीसान।
भजन कौ परताप ऐसौ, जल तरै पाषान।
अजामिल अरु भीलि गनिका, चढ़े जात बिमान।
चलत तारे सकल मंडल, चलत ससि अरु भान।
भक्त ध्रुव कौं अटल पदवी, राम के दीवान।
निगम जाकौ सुजस गावत, सुनत संत सुजान।
सूर हरि की सरन आयौ, राखि लै भगवान ॥२३५॥

बिदुर-गृह भगवान-भोजन *राग बिलावल*

हरि, हरि, हरि, सुमिरौ सब कोइ। ऊँच नीच हरि गनत न दोइ।
बिदुर-गेह हरि भोजन पाए। कौरव-पति कौं मन नहिं ल्याए।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। सूर स्याम भक्तनि मन भाइ॥२३६॥

राग बिलावल

भए पांडवनि के हरि दूत। गए जहाँ कौरवपति धूत।
उन सौं जो हरि बचन सुनाए। सूर कहत सो सुनौ चित लाए॥२३७॥

राग बिलावल

"सुनि राजा दुर्जोधना, हम तुम पैं आए।
'पांडव-सुत जीवत मिले, दै कुसल पठाए।
'छेम-कुसल अरु दीनता, दंडवत सुनाई।
'कर जोरे बिनती करी, दुरबल-सुखदाई।
'पाँच गाउँ पाँचौ जननि, किरपा करि दीजै।
'ये तुम्हरे कुल-बंस हैं, हमरी सुनि लीजै।"
"उनकी मोसौं दीनता, कोउ कहि न सुनावौ।
'पांडव-सुत अरु द्रौपदी कौं मारि गड़ावौ।
'राजनीति जानौ नहीं, गो-सुत चरवारे।
'पीवौ छाँछ अघाइ कै, कब के रयवारे!"
"गाइ-गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई।
'इनकी लज्जा नहिं हमैं, तुम राज-बड़ाई।"
भीषम-द्रोन-करन सुनैं, कोउ मुखहु न बोलैं।
ये पांडव क्यौं गाड़िऐ, धरनी-धर डोलैं।
हम कछु लेन न देन मैं, ये बीर तिहारे।
सूरदास प्रभु उठि चले, कौरव-सुत हारे॥२३८॥

राग धनाश्री

ऊधौ, चलौ बिदुर कैं जइयै।
दुरजोधन कैं कौन काज जहँ आदर-भाव न पइयै!
गुरुमुख नहीं बड़े अभिमानी, कापै सेव करइयै?
टूटी छानि, मेघ जल बरसैं, टूटौ पलँग बिछइयै।

चरन धोइ चरनोदक लीन्हौं, तिया कहै प्रभु अइयै।
सकुचत फिरत जो बदन छिपाए, भोजन कहा मँगइयै।
तुम तौ तीनि लोक के ठाकुर, तुम तैं कहा दुरइयै ?
हम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक, भाजी-साक छकइयै।
हँसि हँसि खात, कहत मुख महिमा, प्रेम-प्रीति अधिकइयै।
सूरदास-प्रभु भक्तनि कैं बस, भक्तनि प्रेम बढ़इयै ॥२३९॥

राग धनाश्री

हरि ठाढ़े रथ चढ़े दुवारे।
तुम दारुक, आगैं ह्वै देखौ, भक्त भवन किधौं अनत सिधारे।
सुनि सुंदरि उठि उत्तर दीन्ह्यौ, कौरव-सुत कछु काज हँकारे।
तहँ आए जदुपति सुनियत हैं, कमल-नयन हरि हितू हमारे।
जिनकौं मिलन गए पति तेरे, सो ठाकुर ये बिदित तुम्हारे।
सूर सुनत संभ्रम उठि दौरी, प्रेम-मगन, तन-दसा बिसारे ॥२४०॥

राग धनाश्री

प्रभु जू, तुम हौ अंतरजामी।
तुम लायक भोजन नहिं गृह मैं अरु नाहीं गृह-स्वामी।
हरि कह्यौ साग-पत्र मोहिं अति प्रिय, अम्रित ता सम नाहीं।
बारंबार सराहि सूर प्रभु, साग बिदुर घर खाहीं ॥२४१॥

भगवान-दुर्योधन-संवाद *राग सोरठ*

क्यौं दासी-सुत कैं पग धारे ?
भीषम-करन-द्रोन-मंदिर तजि, मम गृह तजे मुरारे!
सुनियत हीन, दीन, बृषली-सुत, जाति-पाँति तैं न्यारे।
तिनकैं जाइ कियौ तुम भोजन, जदु-कुल लाजनि मारे।
हरि जू कह्यौ, सुनौ दुरजोधन, सत्य सुबचन हमारे।
सोइ निरधन, सोइ कृपन दीन हैं, जिन मम चरन बिसारे।
तुम साकट, वै भगत-भागवत, राग-द्वेष तैं न्यारे।
सूरदास प्रभु नंदनँदन कहैं, हम ग्वालनि-जुठिहारे ॥२४२॥

राग सारंग

"हम तैं बिदुर कहा है नीकौ ?
'जाकैं रुचि सौं भोजन कीन्हौ, कहियत सुत दासी कौ।"

"द्वै बिधि भोजन कीजै राजा, बिपति परैं कै प्रीति।
'तेरैं प्रीति न मोहिं आपदा, यहै बड़ी बिपरीति।
'ऊँचे मंदिर कौन काम के, कनक-कलस जो चढ़ाए।
'भक्त-भवन मैं हौं जु बसत हौं, जद्यपि तृन करि छाए।
'अंतरजामी नाउँ हमारौ, हौं अंतर की जानौं।
'तदपि सूर मैं भक्तबछल हौं, भक्तनि हाथ बिकानौ" ॥२४३॥

राग सारंग

"हरि, तुम क्यौं न हमारैं आए ?
'षट-रस ब्यंजन छाँड़ि रसोई, साग बिदुर-घर खाए।
'ताके झुगिया मैं तुम बैठे कौन बड़प्पन पायौ ?
'जाति-पाँति कुलहू तैं न्यारौ, है दासी कौ जायौ।"
"मैं तोहिं सत्य कहौं दुरजोधन, सुनि तू बात हमारी।
'बिदुर हमारौ प्रान पियारौ, तू बिषया-अधिकारी।
'जाति-पाँति सबकी हौं जानौं, बाहिर छाक मँगाई।
'ग्वालनि कैं सँग भोजन कीन्हौं, कुल कौं लाज लगाई।
'जहँ अभिमान तहाँ मैं नाहीं, यह भोजन बिष लागै।
'सत्य पुरुष सो दीन गहत है, अभिमानी कौं त्यागै।
'जहँ जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहाँ तहाँ उठि धाऊँ।
'भक्तनि के हौं संग फिरत हौं, भक्तनि हाथ बिकाऊँ।
'भक्तबछल है बिरद हमारौ, बेद सुमृतिहूँ गावैं।"
सूरदास प्रभु यह निज महिमा, भक्तनि काज बढ़ावैं ॥२४४॥

द्रौपदी-सहाय — *राग बिलावल*

हरि,हरि,हरि, सुमिरौ सब कोइ। नारि-पुरुष हरि गनत न दोइ।
द्रुपद-सुता की राखी लाज। कौरव-पति कौ पार्‍यौ ताज।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। सूर स्याम भक्तनि सुखदाइ ॥२४५॥

राग बिलावल

कौरव पासा कपट बनाए। धर्म-पुत्र कौं जुआ खिलाए।
तिन हार्‍यौ सब भूमि-भँडार। हारी बहुरि द्रौपदी नार।
ताकौं पकरि सभा मैं ल्यावै। दुस्सासन कटि-बसन छुड़ावै।
तब वह हरि सौं रोइ पुकारी। सूर राखि मम लाज मुरारी ॥२४६॥

राग सारंग

अब कछु नाहिन नाथ, रह्यौ ?
सकल सभा मैं पैठि दुसासन, अंबर आनि गह्यौ।
हारि सकल भंडार-भूमि, आपुन वन-बास लह्यौ।
एकै चीर हुतौ मेरे पर, सो इन हरन चह्यौ।
हा जगदीस ! राखि इहिं अवसर, प्रगट पुकारि कह्यौ।
सूरदास उमँगे दोउ नैना, सिंधु-प्रवाह बह्यौ ॥२४७॥

राग मारू

राखौ पति गिरिवरगिरि-धारी !
अब तौ नाथ, रह्यौ कछु नाहिन, उघरत माथ अनाथ पुकारी।
बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषम-द्रोन-करन व्रतधारी।
कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी।
पांडु-कुमार पवन से डोलत, भीम गदा कर तैं महि डारी।
रही न पैज प्रबल पारथ की, जब तैं धरम-सुत धरनी हारी।
अब तौ नाथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंद-मुरारी।
सूरदास अवसर के चूकैं, फिरि पछितैहौ देखि उघारी ॥२४८॥

राग कल्यान

मो अनाथ के नाथ हरी !
ब्रह्मादिक, सनकादिक, नारद, जिहिं समाधि नहिं ध्यान टरी।
बूड़त स्याम, थाह नहिं पावौं, दुस्सासन-दुख-सिंधु परी।
भक्त-बछल प्रभु नाम सुमिरि कै, ता कारन मैं सरन धरी।
भीषम, द्रोन, करन, अस्थामा, सकुनि सहित काहूँ न सरी।
महापुरुष सब बैठे देखत, केस गहत धरहरि न करी।
त्राहि-त्राहि द्रौपदी पुकारी, गई बैकुंठ अवाज खरी।
सूर स्याम फिरि कहा करौगे, जब जैहै इक बसन हरी ॥२४९॥

जब गहि राजसभा मैं आनी।
द्रुपद-सुता पट्ट-हीन करन कौं दुस्सासन अभिमानी।
परै बज्र या नृपति-सभा पै, कहति प्रजा अकुलानी।
बैठे हँसत करन, दुर्जोधन, रोवति द्रौपदि रानी !

जित देखति तित कोऊ नाहीं, टेरि कहति मृदु बानी।
हा जदुनाथ, कमल-दल-लोचन, करुनामय, सुखदानी!
गरुड़ चढ़े देखे नँदनंदन ध्यान-चरन-लपटानी।
सूरदास प्रभु कठिन बिपति सौं राखि लियौ जग जानी ॥२५०॥

राग मारू

इत-उत देखि द्रौपदी टेरी।
ऐंचत बसन, हँसत कौरव-सुत, त्रिभुवन-नाथ, सरन हौं तेरी।
सरबस दै अंबर तन बाँच्यौ, सोउ अब हरत, जाति पति मेरी।
क्रोधित देखि हँसै कौरव-कुल, मानौ मृगी सिंह बन घेरी।
गहि दुस्सासन केस सभा म, बरबस लै आयौ ज्यौं चेरी।
पांडव सब पुरुषारथ छाँड़्यौ, बाँधे कपट-बचन की बेरी।
हा जदुनाथ द्वारिका-बासी, जुग-जुग भक्त-आपदा फेरी।
बसन-प्रवाह बढ़्यौ सुनि सूरज, आरत बचन कहे जब टेरी ॥२५१॥

राग बिलावल

जितनी लाज गुपालहिं मेरी।
तितनी नाहिं बधू हौं जिनकी, अंबर हरत सबनि तन हेरी।
पति अति रोष मारि मनहीं मन, भीषम दई बचन बँधि बेरी।
हा जगदीस, द्वारिकाबासी, भई अनाथ, कहति हौं टेरी।
बसन-प्रवाह बढ़्यौ जब जान्यौ, साधु-साधु सबहिनि मति फेरी।
सूरदास-स्वामी जस प्रगट्यौ, जानी जनम-जनम की चेरी ॥२५२॥

राग रामकली

प्रभु, मोहिं राखियै इहिं ठौर।
केस गहत कलेस पाऊँ, करि दुसासन जोर।
करन, भीषम, द्रोन, मानत नाहिं कोउ निहोर।
पाँच पति हित हारि बैठे, रावरैं हित मोर।
धनुष-बान सिरान, कैधौं गरुड़ वाहन खोर।
चक्र काहु चोरायौ, कैधौं, भुजनि बल भयौ थोर।
सूर के प्रभु कृपा-सागर, चितै लोचन-कोर।
बढ़्यौ बसन-प्रवाह जल ज्यौं, होत जय-जय सोर ॥२५३॥

राग आसावरी

लाज मेरी राखौ स्याम हरी।
हा-हा करि द्रौपदी पुकारी, बिलंब न करौ घरी।
दुस्सासन अति दारुन रिस करि, केसनि करि पकरी।
दुष्ट-सभा पिसाच दुरजोधन, चाहत नगन करी।
भीषम, द्रोन, करन, सब निरखत, इनतैं कछु न सरी।
अर्जुन-भीम महाबल जोधा, इनहूँ मौन धरी।
अब मोकौं धरि रही न कोऊ, तातैं जाति मरी।
मेरैं मात-पिता-पति-बंधू, एकै टेक हरी।
जय-जयकार भयौ त्रिभुवन मैं, जब द्रौपदि उबरी।
सूरदास प्रभु सिंह-सरन-गति स्यारहिं कहा डरी ॥२५४॥

राग धनाश्री

निबाहौ बाहँ गहे की लाज।
द्रुपद-सुता भाषति, नँदनंदन, कठिन बनी है आज।
भीषम, द्रोन, करन, दुरजोधन, बैठे सभा बिराज।
तिन देखत मेरौ पट काढ़त, लीक लगै तुम लाज।
खंभ फारि हरनाकुस मार्‌यौ, जन प्रहलाद निवाज।
जनक-सुता-हित हत्यौ लंकपति, बाँध्यौ साइर-पाँज।
गदगद स्वर, आतुर, तन पुलकित, नैननि नीर-समाज।
दुखित-द्रौपदी जानि जगतपति, आए खगपति त्याज।
पूरे चीर भीरु-तन-कृष्ना, ताके भरे जहाज।
काढ़ि काढ़ि थाक्यौ दुस्सासन, हाथनि उपजी खाज।
बिकल मान खोयौ कौरव-पति, पारेउ सिर कौ ताज।
सूरज प्रभु यह मान सदाई, भक्त-हेत महराज ॥२५५॥

राग बिहागरौ

ठाढ़ी कृष्न-कृष्न यौं बोलै।
जैसैं कोऊ बिपति परे तैं, दूरि धर्‌यौ धन खोलै।
पकर्‌यौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलख बदन भइ डोलै।
जैसैं राहु नीच ढिग आएँ, चंद्र-किरन झकझोलै।

जाकैं मीत नंदनंदन से, ढकि लइ पीत पटोलै।
सूरदास ताकौं डर काकौं, हरि गिरिधर के ओलै ॥२५६॥

राग धनाश्री

तुम्हरी कृपा बिनु कौन उबारे?
अर्जुन, भीम, जुधिष्ठिर, सहदेव, सुमति नकुल बलभारे।
केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन, राखी लाज, मुरारे!
नाना बसन बढ़ाइ दिए प्रभु, बलि-बलि नंद-दुलारे।
नगन न होति, चकित भयौ राजा, सीस धुनै, कर मारै।
जापर कृपा करै करुनामय, ता दिसि कौन निहारै?
जो जो जन निस्चै करि सेवै, हरि निज बिरद सँभारै।
सूरदास प्रभु अपने जन कौं, उर तैं नैंकु न टारै ॥२५७॥

द्रौपदी हरि सौं टेरि कही।
तुम जिनि सहौ स्यामसुंदर बर, जेती मैं जु सही।
तुम पति पाँच, पाँच पति हमरे, तुम सौं कहा रही?
भीषम, करन, द्रोन देखत, दुस्सासन बाहँ गही।
पूरे चीर, अंत नहिं पायौ, दुरमति हारि लही।
सूरदास प्रभु द्रुपद-सुता की, हरि जू लाज ठही ॥२५८॥

राग आसावरी

जौ मेरे दीनदयाल न होते।
तौ मेरी अपत करत कौरव-सुत, होत पंडवनि ओते।
कहा भीम के गदा धरैं कर, कहा धनुष धरे पारथ?
काहु न धरहरि करी हमारी, कोउ न आयौ स्वारथ।
समुझि-समुझि गृह-आरति अपनी, धर्मपुत्र मुख जोवै।
सूरदास प्रभु नँद-नंदन-गुन गावत निसि-दिन रोवै ॥२५९॥

पांडव-राज्याभिषेक *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि चरनारबिंद उर धरौ।
हरि पांडव कौं ज्यौं दियौ राज। पुनि सो गए राज ज्यौं त्याज।
बहुरौ भयौ परीच्छित राजा। ताकौं साप बिप्र-सुत साजा।
सुनि हरि-कथा मुक्त सो भयौ। सूत सौनकनि सौं सो कह्यौ।
कहौं सु कथा सुनौ चित धारि। सूर कहै भागवत बिचारि ॥२६०॥

भीष्मोपदेश, युधिष्ठिर-प्रति *राग बिलावल*

हरि हरि,हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
भारत जुद्ध होइ जब बीता। भयौ जुधिष्ठिर अति भयभीता।
गुरुकुल-हत्या मोतैं भई। अब धौं कैसी करिहै दई।
करौं तपस्या, पाप निवारौं। राज-छत्र नाहीं सिर धारौं।
लोगनि तिहिं बहु बिधि समुझायौ। पै तिहिं मन-संतोष न आयौ।
तब हरि कह्यौ टेक परिहरौ। भीष्म पितामह कहै सो करौ।
हरि-पांडव रन-भूमि सिधाए। भीषम देखि बहुत सुख पाए।
हरि कह्यौ, राज न करत धर्मसुत। कहत हते मैं भ्रात तात-जुत।
गुरु-हत्या मोतैं ह्वै आई। कह्यौ सो छूटै कौन उपाई?
राजधर्म तब भीषम गायौ। दानापद पुनि मोच्छ सुनायौ।
पै नृप कौ संदेह न गयौ। तब भीषम नृप सौं यौं कह्यौ।
धर्म-पुत्र तू देखि बिचार। कारन करनहार करतार।
नर के किएँ कछू नहिं होइ। करता - हरता आपुहिं सोइ।
ताकौं सुमिरि राज तुम करौ। अहंकार चित तैं परिहरौ।
अहंकार किएँ लागत पाप। सूर स्याम मेटै संताप ॥२६१॥

राग धनाश्री

करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ।
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिं कोइ।
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम-चरन मन पोइ ॥२६२॥

राग कान्हरौ

होत सो जो रघुनाथ ठटै।
पचि-पचि रहैं सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै।
जोगी जोग धरत मन अपनैं, सिर पर राखि जटै।
ध्यान धरत महादेव ऽरु ब्रह्मा, तिनहूँ पै न छटै।
जती, सती, तापस आराधैं, चारौं बेद रटै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, करम-फाँस न कटै ॥२६३॥

राग सारंग

भावी काहू सौं न टरै।
कहँ वह राहु, कहाँ वै रवि ससि, आनि सँजोग परै।
मुनि बसिष्ठ पंडित अति ज्ञानी, रचि-पचि लगन धरै।
तात-मरन, सिय-हरन, राम बन-बपु धरि बिपति भरै।
रावन जीति कोटि तैंतीसौ, त्रिभुवन राज करै।
मृत्युहिं बाँधि कूप मैं राखै, भावी-बस सो मरै।
अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ बन निकरै।
द्रुपद-सुता कौ राजसभा, दुस्सासन चीर हरै।
हरीचंद सो को जगदाता, सो घर नीच भरै।
जौ गृह छाँड़ि देस बहु धावै, तउ वह संग फिरै।
भावी कैं बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वै है, को करि सोच मरै!॥२६४॥

राग कान्हरौ

तातैं सेइयै श्री जदुराइ।
संपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ।
तरुवर फूलै, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ।
सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाइ।
दुतिया-चंद बढ़त ही बाढ़ै, घटत-घटत घटि जाइ।
सूरदास संपदा-आपदा, जिनि कोऊ पतिआइ॥२६५॥

राग मलार

इहिं बिधि कहा घटैगौ तेरौ?
नंदनँदन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ।
कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ बहुत घर घेरौ।
कहुँ हरि-कथा, कहूँ हरि-पूजा, कहुँ संतनि कौ डेरौ।
जो बनिता-सुत-जूथ सकेले, हय-गय-बिभव घनेरौ।
सबै समर्पौ सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ॥२६६॥

महाभारत में भगवान् की भक्तवत्सलता का प्रसंग *राग सारंग*

भक्तबछल श्री जादवराइ।
भीषम की परतिज्ञा राखी, अपनौ बचन फिराइ।

भारत माहिँ कथा यह विस्तृत, कहत होइ विस्तार।
सूर भक्त-बत्सलता बरनौं, सर्व कथा कौ सार ॥२६७॥

अर्जुन-दुर्योधन का कृष्ण-गृह-गमन *राग सारंग*

भक्तबछलता प्रगट करी।
सत संकल्प वेद की आज्ञा, जन के काज प्रभु दूरि धरी।
भारतादि दुरजोधन, अर्जुन, भेंटन गए द्वारिकापुरी।
कमलनैन पौढ़े सुख-सेज्या, बैठे पारथ पाइतरी।
प्रभु जागे, अर्जुन-तन चितयौ,कब आए तुम, कुसल खरी ?
ता पाछैं दुर्जोधन भेट्यौ, सिर-दिसि तैं मन गर्व धरी।
दुहुँनि मनोरथ अपनौ भाष्यौ, तब श्रीपति बानी उचरी।
जुद्ध न करौं, सस्त्र नहिँ पकरौं, एक ओर सेना सिगरी।
हरि-प्रभाउ राजा नहिँ जान्यौ, कह्यौ सैन मोहिँ देहु हरी।
अर्जुन कह्यौ, जानि सरनागत, कृपा करौ ज्यौं पूर्व करी।
निज पुर आइ, राइ, भीषम सौं,कही जो बातैं हरि उचरी।
सूरदास भीषम परतिज्ञा, अस्त्र गहावन पैज करी ॥२६८॥

दुर्योधन-वचन, भीष्म-प्रति *राग धनाश्री*

मतौ यह पूछत भूतलराइ।
सुनौ पितामह भीषम, मम गुरु, कीजै कौन उपाइ ?
'उत अर्जुन अरु भीम पंडु-सुत, दोउ बर बीर गँभीर।
'इत भगदत्त, द्रोन, भूरिश्रव, तुम सेनापति धीर।
'जे जे जात, परत ते भूतल, ज्यौं ज्वाला-गत चीर।
'कौन सहाइ, जानियत नाहीं, होत बीर निर्बीर।"
"जब तोसौं समुझाइ कही नृप, तब तैं करी न कान।
'पावक जथा दहत सबही दल तूल-सुमेरु-समान।
'अबिगत, अबिनासी, पुरुषोत्तम, हाँकत रथ कै आन।
अचरज कहा पार्थ जौ बेधै, तीनि लोक इक बान!"
"अब तौ हौं तुमकौं तकि आयौ, सोइ रजायसु दीजै।
'जातैं रहै छत्रपन मेरौ, सोइ मंत्र कछु कीजै।
'जा सहाइ पांडव-दल जीतौं, अर्जुन कौ रथ लीजै।
'नातरु कुटुँब सकल संहरि कै कौन काज अब जीजै ?"

"तेरैं काज करौं पुरुषारथ, जथा जीव घट माहीं।
'यह न कहौं, हौं रन चढ़ि जीतौं, मो मति नहिं अवगाही।
'अजहूँ चेति, कह्यौ करि मेरौ, कहत पसारे बाहीं।
'सूरदास सरबरि को करिहै, प्रभु पारथ द्वै नाहीं" ॥२६९॥

भीष्म प्रतिज्ञा *राग मलार*

आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु-सुत न कहाऊँ।
स्यंदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ।
पांडव-दल-सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता-रुधिर बहाऊँ।
इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ।
सूरदास रनभूमि बिजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊँ ॥२७०॥

राग मारू

सुरसरी-सुवन रनभूमि आए।
बान-बरषा लगे करन अति क्रुद्ध ह्वै, पार्थ-अवसान तब सब भुलाए।
कह्यौ करि कोप प्रभु अब प्रतिज्ञा तजौ, नहीं तौ जुद्ध निजु हम हराए।
सूर-प्रभु, भक्तबत्सल-बिरद आनि उर, ताहि या बिधि बचन कहि सुनाए
॥२७१॥

अर्जुन के प्रति भगवान् के वचन *राग बिलावल*

हम भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह ब्रत टरत न टारे।
भक्तनि काज लाज जिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ।
जहँ-जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ।
जो भक्तनि सौं बैर करत है, सो बैरी निज मेरौ।
देखि बिचारि भक्त-हित-कारन, हाँकत हौं रथ तेरौ।
जीतैं जीति भक्त अपनैं के, हारैं हारि बिचारौं।
सूरदास सुनि भक्त-बिरोधी, चक्र सुदरसन जारौं ॥२७२॥

भगवान् का चक्र-धारण *राग सारंग*

गोबिंद कोपि चक्र कर लीन्हौ।
छाँड़ि आपनौ प्रन जादवपति, जन कौ भायो कीन्हौ।

रथ तैं उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए।
मनु संचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए।
कछुक अंग तैं उड़त पीतपट, उन्नत बाहु बिसाल।
स्रवत स्रोनकन, तन सोभा, छवि-घन बरसत मनु लाल।
सूर सुभुजा समेत सुदरसन देखि बिरंचि भ्रम्यौ।
मानौ आन सृष्टि करिबे कौं, अंबुज नाभि जम्यौ ॥२७३॥

राग मलार

बरु मेरी परतिज्ञा जाउ।
इत पारथ कोप्यौ है हम पर, उत भीषम भट-राउ।
रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ, सुभट सामुहैं आए।
ज्यौं कंदर तैं निकसि सिंह, झुकि, गज-जूथनि पर धाए।
आइ निकट श्रीनाथ निहारे, परी तिलक पर दीठि।
सीतल भई चक्र की ज्वाला, हरि हँसि दीन्ही पीठि।
जय-जय-जय चिंतामनि स्वामी, सांतनु-सुत यौं भाखै।
तुम बिनु ऐसौ कौन दूसरौ, जो मेरौ प्रन राखै।
साधु-साधु सुरसरी-सुवन तुम, नहिं प्रन लागि डराऊँ।
सूरजदास भक्त दोऊ दिसि, कापर चक्र चलाऊँ ॥२७४॥

अर्जुन और भीष्म का संवाद *राग धनाश्री*

"कहौ पितु, मोसौं सोइ सतिभाव।
'जातैं दुरजोधन-दल जीतौं, किहिं बिधि करौं उपाव"।
"जब लगि जिय घट-अंतर मेरैं, को सरवरि करि पावै?
'चिरंजीव तौलौं दुरजोधन, जियत न पकरयौ आवै।
'कौरव छाँड़ि भूमि पर कैसैं दूजौ भूप कहावै?
'तौ हम कछु न बसाइ पार्थ, जौ श्रीपति तोहिं जितावै"।
"अब मैं सरन तुम्हैं तकि आयौ, हमैं मंत्र कछु दीजै।
'नातरु कुटुँब सैन संहरि सब, कौन काज कौं जीजै"।
"द्रुपद-कुमार होइ रथ आगैं, धनुष गहौ तुम बान।
'ध्वजा बैठि हनुमत गल गाजै, प्रभु हाँकै रथ-यान।
'केतिक जीव कृपिन मम बपुरौ, तजै कालहू प्रा
'सूर एकहीं बान बिदारै, श्री गोपाल की आन" ॥२७५॥

भीष्म का देह-त्याग *राग सारंग*

पारथ भीषम सौं मति पाइ। कियौ सारथी सिखंडी आइ।
भीषम ताहि देखि मुख फेर्यौ। पारथ जुद्ध-हेत रथ प्रेर्यौ।
कियौ जुद्ध अतिहीं बिकरार। लागी चलन रुधिर की धार।
भीषम सर-सज्या पर पर्यौ। पै दछिनाइनि लखि नहिं मर्यौ।
हरि पांडव-समेत तहँ आए। सूरज-प्रभु भीषम मन भाए॥२७६॥

राग सारंग

हरि सौं भीषम बिनय सुनाई। कृपा करी तुम जादवराई!
भारत मैं मेरौ प्रन राख्यौ। अपनौ कह्यौ दूरि करि नाख्यौ।
तुम बिनु प्रभु को ऐसी करै। जो भक्तनि कैं बस अनुसरै।
तव दरसन सुर-नर-मुनि दुर्लभ। मोकौं भयौ सो अतिहीं सुलभ।
दूरि नहीं गोबिंद वह काल। सर कृपा कीजै गोपाल॥२७७॥

राग सारंग

गोबिंद, अब न दूरि वह काल।
दीनानाथ, देवकी-नंदन, भक्तबछल गोपाल!
मैं भीषम, तुम कृष्न सारथी, किये पीतपट लाल।
बहुत सनाह समर सर बेधे, ज्यौं कंटक नल-नाल।
तुम्हरैं चरन-कमल मो मस्तक, कत ताकौं सर-जाल?
सूरदास जन जानि आपनौ, देहु अभय की माल॥२७८॥

राग मलार

वा पट पीत की फहरानि।
कर धरि चक्र, चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बानि।
रथ तैं उतरि चलनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि।
मानौ सिंह सैल तैं निकस्यौ, महा मत्त गज जानि।
जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि बेद की कानि।
सोई सूर सहाइ हमारे, निकट भए हैं आनि॥२७९॥

राग सारंग

भीषम धरि हरि कौ उर ध्यान। हरि के देखत तजे परान।
तासु क्रिया करि सब गृह आए। राजा सिंहासन बैठाए।
हरि पुनि द्वारावती सिधाए। सूरदास हरि के गुन गाए॥२८०॥

भगवान् का द्वारिका-गमन　　　　*राग बिलावल*

धर्मपुत्र कौं दै हरि राज। निज पुर चलिबे कौं कियौ साज।
तब कुंती विनती उच्चारी। सुनौ कृपा करि कृष्न मुरारी।
जब-जब हमकौं बिपदा परी। तब-तब प्रभु सहाइ तुम करी।
तुम बिनु हमहिं राज किहिं काम? सूर बिसारहु हमैं न स्याम ॥२८१॥

कुंती-विनय　　　　*राग कान्हरौ*

प्रभु जू, बिपदा भली विचारी।
धिक यह राज बिमुख चरननि तैं, कहति पांडु की नारी।
लाखा-मंदिर कौरव रचियौ, तहँ राखे बनवारी।
अंबर हरत सभा मैं कृष्ना, सोक-सिंधु तैं तारी।
अतिथि रिषीस्वर सापन आए, सोच भयौ जिय भारी।
स्वल्प साग तैं तृप्त किए सब, कठिन आपदा टारी।
जन अर्जुन की रच्छा कारन, सारथि भए मुरारी।
सोई सूर सहाइ हमारे, संतनि के हितकारी ॥२८२॥

राग मलार

अब वे बिपदा हू न रहीं।
मनसा करि सुमिरत है जब-जब, मिलते तब-तबहीं।
अपने दीन दास कैं हित लगि, फिरते सँग-सँगहीं।
लेते राखि पलक गोलक ज्यौं, संतत तिन सबहीं।
रन अरु वन, विग्रह, डर आगैं, आवत जहीं-तहीं।
राखि लियौ तुमहीं जग-जीवन, त्रासनि तैं सबहीं।
कृपा-सिंधु की कथा एक रस, क्यौं करि जाति कहीं।
कीजै कहा सूर सुख-संपति, जहँ जदुनाथ नहीं? ॥२८३॥

राजा धृतराष्ट्र का वैराग्य तथा वन गमन　　　　*राग बिलावल*

कौरवपति ज्यौं वन कौं गयौ। धर्मपुत्र विरक्त पुनि भयौ।
वरनि-सुनावौं ता अनुसार। सूत कह्यौ जैसैं परकार।
भारतादि कुरुपति की जथा। चली पांडवनि की जब कथा।
विदुर कह्यौ मति करौ अन्याइ। देहु पांडवनि राज बटाइ।
कुरुपति कह्यौ, धान मम खाइ। पांडु-सुतनि की करत सहाइ।

याकौं ह्याँ तैं देहु निकारि। बहुरि न आवै मेरे द्वारि।
बिदुर सस्त्र सब तबहिं उतारि। चल्यौ तीरथनि मुंड उघारि।
भारत के बीतैं पुनि आयौ। लोगनि सब बृत्तांत सुनायौ।
तब पूछ्यौ, कुरुपति है कहाँ? कह्यौ, पांडु-सुत-मंदिर जहाँ।
राजा सेव भली बिधि करै। दंपति-आयसु सब अनुसरै।
बिदुर कह्यौ, देखौ हरि-माया। जिन यह सकल लोक भरमाया।
इहिं माया सब लोगनि लूट्यौ। जिहिं हरि कृपा करी सो छूट्यौ।
इनके पुत्र एक सौ मुए। तिन्हैं बिसारि सुखी ये हुए।
अब मैं उनकौं ज्ञान सुनाऊँ। जिहिं तिहिं विधि वैराग्य उपाऊँ।
बहुरौ धर्म-पुत्र पैं आयौ। राजा देखि बहुत सुख पायौ।
करि सन्मान कह्यौ या भाइ। करी हमारी बहुत सहाइ।
लाखा-गृह तैं जरत उबारे। अरु बालापन तैं प्रतिपारे।
कौन-कौन तीरथ फिरि आए? बिदुर सकल बृत्तांत सुनाए।
बहुरि कह्यौ, हरि-सुधि कछु पाई? कह्यौ न कछू, रह्यौ सिर नाई।
बहुरौ कुरुपति कैं ढिग आए। पूछे समाचार सतिभाए।
कह्यौ, जुधिष्ठिर सेवा करत। तातैं बहुत अनंदित रहत।
कह्यौ, सुतनि-सुधि आवति कबहीं? कह्यौ, भावियै कैं बस सबहीं।
बिदुर कह्यौ, सत पुत्र तुम्हारे। पांडु-सुतनि सो सकल सँहारे।
तिनकैं गृह तुम भोजन करत। अरु पुनि कहत सुखी हम रहत।
धिक तुम, धिक या कहिबे ऊपर। जीवित रहिहौ कौ लौं भू पर।
स्वान-तुल्य है बुद्धि तुम्हारी। जूठनि काज सहत दुख भारी।
द्रौपदि के तुम बसन छिनाए। इनि तब राज बहुत दुख पाए।
इनकैं गृह रहि तुम सुख मानत। अति निलज्ज, कछु लाज न आनत।
जीवनि-आस प्रबल श्रुति लेखी। साच्छात सो तुममैं देखी।
काल-अगिनि सबही जग जारत। तुम कैसे कैं जिअन बिचारत?
आयु तुम्हारी गई सिराइ। बन चलि भजौ द्वारिकाराइ।
कुरुपति कह्यौ अंध हम दोइ। बन मैं भजन कौन बिधि होइ?
बिदुर कह्यौ, सेवा मैं करिहौं। सेवा करत नैंकु नहिं टरिहौं।
अर्ध निसा तिनकौं लै गयौ। प्रात भए नृप बिस्मय भयौ।
बूड़ि मुए, कै कहुँ उठि गए। तिनकैं सोच नृपति बहु तए।
उहाँ जाइ कुरुपति बल-जोग। दियौ छाँड़ि तन कौ संजोग।
गंधारी सहगामिनि कियौ। बिदुर भक्त तीरथ-मग लियौ।

तिहिं अंतर नारद तहँ आए। नृप कौं सब वृत्तांत सुनाए।
नृप कैं मन उपज्यौ वैराग। भजौं सूर-प्रभु अब सब त्याग॥२८४॥

हरि-वियोग, पांडव-राज्य-त्याग, उत्तर-गमन *राग सारग*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि बियोग पांडव तजि राज। गए बन, भयौ परीच्छित-राज।
कहौं सु कथा, सुनौ चित धारि। सूर कह्यौ भागवतऽनुसारि॥२८५॥

अर्जुन का द्वारिका जाना और शोक-समाचार लाना *राग बिलावल*

राजा सौं अर्जुन सिर नाइ। कह्यौ सुनौ विनती महराइ।
बहु दिन भए, हरि-सुधि नहिं पाई। आज्ञा होइ तौ देखौं जाई।
यह कहि पारथ हरि-पुर गए। सुन्यौ, सकल जादव छै भए।
अर्जुन सुनत नैन जल धार। पर्‌यौ धरनि पर खाइ पछार।
तब दारुक संदेस सुनायौ। कह्यौ, हरि जू जो गीता गायौ।
सो सुरूप हिरदै महँ आन। रहियौ करत सदा मम ध्यान।
तब अर्जुन मन धीरज धारि। चले संग लै जे नर-नारि।
तहँ भिल्लनि सौं भई लराई। लूटे सब, बिन स्याम-सहाई।
अर्जुन बहुत दुखित तब भए। इहाँ अपसगुन होत नित नए।
रोवैं बृषभ, तुरग अरु नाग। स्यार द्यौस, निसि बोलैं काग।
कंपै भुव, वर्षा नहिं होइ। भयौ सोच नृप-चित यह जोइ।
इहिं अंतर अर्जुन फिरि आयौ। राजा कैं चरननि सिर नायौ।
राजा ताकौं कंठ लगाइ। कह्यौ, कुसल हैं जादवराइ?
बल, वसुदेव, कुसल सब लोइ? अर्जुन यह सुनि दीन्हौ रोइ।
राजा कह्यौ, कहा भयौ तोहिं। तू क्यौं कहि न सुनावै मोहिं।
काहू असत्कार तोहिं कियौ। कै कहि दान न द्विज कौं दियौ।
कै सरनागत कौं नहिं राख्यौ। कै तुमसौं काहू कटु भाष्यौ।
कै हरि जू भए अंतर्धान। मोसौं कहि तू प्रगट बखान।
तब अर्जुन नैननि जल डारि। राजा सौं कह्यौ बचन उचारि।
सूरज-प्रभु वैकुंठ सिधारे। जिन हमरे सब काज सँवारे॥२८६॥

राग धनाश्री

हरि बिनु को पुरवै मो स्वारथ?
मीड़त हाथ, सीस धुनि ढोरत, रुदन करत नृप, पारथ।

थाके हस्त, चरन-गति थाकी, अरु थाक्यौ पुरुषारथ।
पाँच बान मोहिं संकर दीन्हे, तेऊ गए अकारथ।
जाकैं संग सेत-बँध कीन्हौ, अरु जीत्यौ महभारथ।
गोपी हरी सूर के प्रभु बिनु, रहत प्रान किहिं स्वारथ! ॥२८७॥

राग बिलावल

यह सुनि राजा रोइ पुकारे। भीमादिक रोए पुनि सारे।
रोवत सुनि कुंती तहँ आई। कहौ, कुसल जादौ-जदुराई?
अर्जुन कह्यौ, सबै लरि मुए। हरि-बिनु सब अनाथ हम हुए।
कुंती प्रान तजे धरि ध्यान। जीवन-मरन उनहिं भल जान।
राज परीच्छित कौं नृप दीन्हौ। बज्रनाभ मथुरापति कीन्हौ।
द्रुपद-सुता समेत सब भाई। उत्तर दिसा गए हरि ध्याई।
जोग पंथ करि उन तनु तजे। सूर सबै तजि हरि-पद भजे ॥२८८॥

गर्भ में परीक्षित की रक्षा तथा उनका जन्म *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि परीच्छितहिं गर्भ-मँझार। राखि लियौ निज कृपा-अधार।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। जो हरि भजै, रहै सुख पाइ।
भारत जुद्ध बितत जब भयौ। दुरजोधन अकेल रहि गयौ।
अस्वत्थामा तापैं जाइ। ऐसी भाँति कह्यौ समुझाइ।
हमसौं तुमसौं बाल-मिताई। हमसौं कछु न भई मित्राई।
अब जो आज्ञा मोकौं होइ। छाँड़ि बिलंब करौं मैं सोइ।
राज गए का दुख नहिं कोइ। पांडव राज नहीं जो होइ।
उनके मुएँ हिएँ सुख होइ। जौ करि सकौ, करौ अब सोइ।
हरि सर्वज्ञ बात यह जानि। पांडु-सुतनि सौं कही बखानि।
आज सरस्वति-तट रहौ सोइ। पै यह बात न जानै कोइ।
पांडव हरि की आज्ञा पाइ। तजि गृह, रहे सरस्वति जाइ।
काहू सौं यह कहि न सुनाई। उहाँ जाइ सब रैनि बिताई।
अस्वत्थामा निसि तहँ आए। द्रौपदि-सुत तहँ सोवत पाए।
उनके सिर लै गयौ उतारि। कह्यौ, पांडवनि आयौ मारि।
बिन देखैं ताकौं सुख भयौ। देखे तैं दूनौ दुख ठयौ।
ये बालक तैं बृथा सँहारे। कहि, कुरुपति तजि प्रान-सिधारे।

अस्वत्थामा भय करि भग्यौ। इहाँ लोग सब सोवत जग्यौ।
द्रौपदि देखि सुतनि दुख पायौ। अर्जुन सौं यह बचन सुनायौ।
अस्वत्थाम न जब लगि मारौ। तब लगि अन्न न मुख मैं डारौ।
हरि-अर्जुन रथ पर चढ़ि धाए। अस्वत्थामा पै चलि आए।
अस्वत्थामा अस्त्र चलायौ। अर्जुन हूँ ब्रह्मास्त्र पठायौ।
उन दोउनि सौं भई लराई। अर्जुन तब दोउ लिए बुलाई।
अस्वत्थामा कौं गहि ल्याए। द्रौपदि सीस मूँड़ि मुकराए।
याके मारैं हत्या होइ। मनि लै छाँड़ौ सोभा खोइ।
अस्वत्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म-अस्त्र कौं दियौ चलाइ।
गर्भ परीच्छित जारन गयौ। तब हरि ताहि जरन नहिं दयौ।
रूप चतुर्भुज गर्भ-मँझारि। ताकौं तासौं लियौ उबारि।
जन्म परीच्छित कौ जब भयौ। कह्यौ, चतुर्भुज कहँ अब गयौ ?
पुनि जब हरि कौं देख्यौ जोइ। पाइ सँतोष सुखी भयौ सोइ।
राजा जन्म-समय कौं देखि। मन मैं पायौ हर्ष बिसेखि।
गर्भ-परीच्छित रच्छा करी। सोई कथा सकल बिस्तरी।
श्रीभगवान कृपा जिहिं करै। सूर सो मारैं काके मरै ? ॥२८६॥

परीच्छित-कथा *राग सारंग*

हरि, हरि-भक्तनि कौं सिर नाऊँ। हरि, हरि-भक्तनि के गुन गाऊँ।
हरि, हरि-भक्त एक, नहिं दोइ। पै यह जानत बिरला कोइ।
भक्त परीच्छित हरि कौ प्यारौ। गर्भ-मँझार हुतौ जब बारौ।
ब्रह्म-अस्त्र तैं ताहि बचायौ। जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ।
बहुरि राज ताकौं जब भयौ। मिस दिगबिजय चहूँ दिसि गयौ।
परजा सकल धर्म-रत देखी। ताकैं मन भयौ हर्ष बिसेखी।
कुरुच्छेत्र मैं पुनि जब आयौ। गाइ, बृषभ तहँ दुःखित पायौ।
तासु बृषभ कैं पग त्रय नाहिं। रोवति गाइ देखि करि ताहिं।
बृषभ धर्म, पृथ्वी सो गाइ। बृषभ कह्यौ तासौं या भाइ।
मेरैं हेत दुखी तू होत। कै अधर्म तो ऊपर होत ?
गो कह्यौ, हरि बैकुंठ सिधारे। सम-दम उनहीं संग पधारे।
दया, धर्म संतोषहु गयौ। ज्ञान, छमादिक सब लय भयौ।
जज्ञ, सराध न कोऊ करै। कोऊ धर्म न मन मैं धरै।
अरु तुमकौं बिनु पाइनि देखि। मोहिं होत है दुःख बिसेखि।

सूद्रराज इहिँ अंतर आयौ। बृषभ-गाइ कौं पाइ चलायौ।
ताहि परीच्छित खड्ग उठाइ। बहुरौ बचन कह्यौ या भाइ।
तू को, कौन देस है तेरौ? कै छल गह्यौ राज सब मेरौ।
या बिधि नृपति परीच्छित कह्यौ। पै वासौं उत्तर नहिं लह्यौ।
कह्यौ बृषभ सौं, को दुखदाइ? तासु नाम मोहिं देहु बताइ।
इंद्र होइ ताहू कौं मारौं। तुम्हरौ यह संताप निवारौं।
बृषभ कह्यौ तुम ऐसेहि राउ। पै मैं लेउँ कौन कौ नाउँ?
कोउ कहै हरि-इच्छा दुख होइ। छितिया दुखदायक नहिं कोइ।
कोउ कहै करम होइ दुख-दाता। काहूँ दुख नहिं देत बिधाता।
कोउ कहै सत्रु होइ दुखदाई। सो तौ मैं न कीन्हि सत्राई।
काकौ नाम बताऊँ तोकौं। दुखदायक अदृष्ट मम मोकौं।
कहियत इतनें दुख-दातार। तुमहीं देखौ करौ बिचार।
तब बिचार करि राजा-देख्यौ। सूद्र नृपति कलिजुग करि लेख्यौ।
बृषभ धर्म अरु पृथ्वी गाइ। इनकौं यहै भयौ दुखदाइ।
ताहि कह्यौ तू बड़ौ अधर्मी। तो समान नहिं और कुकर्मी।
छमा, दया, तप पग तैं काट्यौ। छाँड़ि देस मम, यह कहि डाँट्यौ।
तिन कह्यौ, मो मैं एक भलाई। तुमसौं कहौं, सुनौ चित लाई।
धर्म बिचारत मन मैं होइ। मनसा पाप लगै नहिं कोइ।
राज तुम्हारौ है सब ठौर। तुम बिनु नृपति न छितिया और।
जौन ठौर मोहिं आज्ञा होइ। ताही ठौर रहौं मैं जोइ।
कही, हरि-बिमुख ऽरु बेस्या जहाँ। सुरापान, बधिकनि गृह तहाँ।
जूआ खेलत जहाँ जुआरी। ये पाँचौ हैं ठौर तुम्हारी।
पाँचौ होहिं नृपति ये जहाँ। मोकौं ठौर बतावहु तहाँ।
तब नृप ताकौं कनक बतायौ। कनक-मुकुट लखि सो लपटायौ।
इक दिन राइ अखेटहिं गयौ। ता वन माहिं पियासौ भयौ।
रिषि समीप कैं आस्रम आयौ। रिषि हरि-पद सौं ध्यान लगायौ।
राजा जल ता रिषि सौं माँग्यौ। ताकौ मन हरि-पद सौं लाग्यौ।
राजा कौं उत्तर नहिं दियौ। तब मन माहिं क्रोध तिन कियौ।
यह सब कलिजुग कौ परभाउ। जो नृप कैं मन भयउ कुभाउ।
रिषि की कपट-समाधि बिचारि। दियौ भुजंग मृतक गर डारि।
रिषि समाधि महँ त्यौंही रह्यौ। सृंगी रिषि सौं लरिकनि कह्यौ।
सृंगी रिषि तब कियौ बिचार। प्रजा-दोष करै नृपति गुहार।

नृपति-दोष कहियै किहिं जाइ। दियौ साप तिहिं तच्छक खाइ।
दै करि साप पिता पहँ आयौ। देख्यौ सर्प पिता-गर नायौ।
रोवन लग्यौ मृतक सो जान। रुदन सुनत छूट्यौ रिषि-ध्यान।
सुत सौं कह्यौ कहा भयौ तोहिं। क्यौं न सुनावत निज दुख मोहिं ?
सृंगी रिषि तब कहि समुझायौ। नृप भुजंग तव ग्रीवा नायौ।
यह अपराध बड़ौ उन कीन्हौ। तच्छक डसन साप मैं दीन्हौ।
रिषि कह्यौ बहुत बुरौ तैं कीन्हौ। जो यह साप नृपति कौं दीन्हौ।
तुव सराप तैं मरिहै सोइ। यह अपराध मोहिं सब होइ।
सुख सौं बसत राज उनकैं सब। दुख पैहैं सो सकल प्रजा अब।
ताकी रच्छा हरि जू करी। हरी-अवज्ञा तुम अनुसरी।
इत राजा मन मैं पछिताइ। मैं यह कियौ बड़ौ अन्याइ।
जाकैं हृदय बुद्धि यह आवै। ताकौ फल सो भलौ न पावै।
रिषि सिष्यहिं भेज्यौ समुझाइ। नृप सौं कहि तू ऐसी जाइ।
मम सुत साप दियौ या भाइ। सप्तम दिन तोहिं तच्छक खाइ।
सृंगी यह कीन्हौ बिनु जानैं। होत कहा अब के पछितानैं।
तातैं तुम उपाइ सो करौ। जातैं भव-सागर कौं तरौ।
नृप सुनि, लाग्यौ करन बिचार। सप्तम दिन मरिबौ निरधार।
जज्ञ-दान करि सुर पुर जैयै। तहाँ जाइ कै सुख बहु पैयै।
बहुरि कह्यौ, सुरपुर कछु नाहिं। पुन्य-छीन तिहिं ठौर गिराहिं।
तातैं सुत, कलत्र, सब त्याग। गहौं एक हरि-पद अनुराग।
बहुरि कह्यौ, अबकौ कहा त्याग। खोयौ जन्म बिषय-सुख-लाग।
सूर न हरि-पद सौं चित लायौ। इत-उत देखत जनम गँवायौ॥२९०॥

राग धनाश्री

इत-उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ।
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भई, अति दुख प्रान सह्यौ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहिं, सुमिरत क्यौं न रह्यौ।
श्रीभागवत सुन्यौ नहिं कबहूँ, बीचहिं भटकि मर्‌यौ।
सूरदास कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तर्‌यौ॥२९१॥

राग सारंग

जनम सिरानौ अटकैं-अटकैं।
राज-काज, सुत-बित की डोरी, बिनु बिबेक फिर्‌यौ भटकैं।

कठिन जो गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकैं।
ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीचहीं लटकैं।
ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं।
सूरदास सोभा क्यौं पावै, पिय-बिहीन धनि मटकैं ॥२६२॥

राग सारंग

जनम सिरानौ ऐसैं-ऐसैं।
कै घर-घर भरमत जदुपति बिनु, कै सोवत, कै बैसैं।
कै कहुँ खान-पान-रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसैं।
कै कहुँ रंक, कहूँ ईस्वरता, नट-बाजीगर जैसैं।
चेत्यौ नाहिं, गयौ टरि औसर, मीन बिना जल जैसैं।
यह गति भई सूर की ऐसी, स्याम मिलैं धौं कैसैं ॥२६३॥

राग देवगंधार

बिरथा जन्म लियौ संसार।
करी कबहुँ न भक्ति हरि की, मारी जननी भार।
जज्ञ, जप, तप नाहिं कीन्ह्यौ, अलप मति बिस्तार।
प्रगट प्रभु नहिं दूरि हैं, तू, देखि नैन पसार।
प्रबल माया ठग्यौ सब जग, जनम जूआ हार।
सूर हरि कौ सुजस गावौ, जाहि मिटि भव-भार ॥२६४॥

राग सोरठ

काया हरि कैं काम न आई।
भाव-भक्ति जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई।
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहाँ सुनत उठि धाई।
चरन-कमल सुंदर जहँ हरि के, क्यौंहुँ न जाति नवाई।
जब लगि स्याम-अंग नहिं परसत, अंधे ज्यौं भरमाई।
सूरदास भगवंत-भजन तजि, बिषय परम बिष खाई ॥२६५॥

राग धनाश्री

सबै दिन गए बिषय के हेत।
तीनौं पन ऐसैं हीं खोए, केस भए सिर सेत।
आँखिनि अंध, स्त्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत।
गंगा-जल तजि पियत कूप-जल, हरि तजि पूजत प्रेत।

मन-बच-क्रम जौ भजै स्याम कौं, चारि पदारथ देत।
ऐसौ प्रभू छाँड़ि क्यौं भटकै, अजहूँ चेति अचेत।
राम नाम बिनु क्यौं छूटौगे, चंद गहैं ज्यौं केत।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत ॥२९६॥

राग सारंग

जौ तू राम-नाम-धन धरतौ।
अबकौ जन्म, आगिलौ तेरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ।
जम कौ त्रास सबै मिटि जातौ, भक्त नाम तेरौ परतौ।
तंदुल-घिरत समर्पि स्याम कौं, संत-परोसौ करतौ।
होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ।
सूरदास बैकुंठ-पैंठ मैं, कोउ न फैंट पकरतौ ॥२९७॥

राग देवगंधार

सबनि सनेहौ छाँड़ि दयौ।
हा जदुनाथ! जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ।
सोइ तिथि-बार-नछत्र-लगन-ग्रह, सोइ जिहिं ठाट ठयौ।
तिन अंकनि कोउ फिरि नहिं बाँचत, गत स्वारथ समयौ।
सोइ धन-धाम, नाम सोई, कुल सोई जिहिं बिढ़यौ।
अब सबही कौ बदन स्वान लौं, चितवत दूरि भयौ।
बरष दिवस करि होत पुरातन, फिरि-फिरि लिखत नयौ।
निज कृत-दोष बिचारि सूर प्रभु तुम्हारी सरन गयौ ॥२९८॥

राग मलार

द्वै मैं एकौ तौ न भई।
ना हरि भज्यौ, न गृह सुख पायौ, बृथा बिहाइ गई।
ठानी हुती और कछु मन मैं, औरै आनि ठई।
अबिगत-गति कछु समुझि परत नहिं, जो कछु करत दई।
सुत-सनेहि-तिय सकल कुटुँब मिलि, निसि-दिन होत खई।
पद-नख-चंद चकोर बिमुख मन, खात अँगार मई।
विषय-बिकार-दवानल उपजी, मोह-बयारि लई।
भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पायौ, अजहुँ न टेंव गई।

होत कहा अबके पछिताएँ, बहुत बेर चितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई ॥२९९॥

राग सारंग

यह सब मेरीयै आइ कुमति।
अपनैं ही अभिमान-दोष दुख पावत हौं मैं अति।
जैसैं केहरि उझकि कूप-जल, देखत अपनी प्रति।
कूदि पर्‍यौ, कछु मरम न जान्यौ, भई आइ सोइ गति।
ज्यौं गज फटिक सिला मैं देखत, दसननि डारत हति।
जौ तू सूर सुखहिं चाहत है, तौ करि बिषय-बिरति ॥३००॥

राग केदारौ

झूठेही लगि जनम गँवायौ।
भूल्यौ कहा स्वप्न के सुख मैं, हरि सौं चित न लगायौ।
कबहुँक बैठ्यौ रहसि-रहसि कै, ढोटा गोद खिलायौ।
कबहुँक फूलि सभा मैं बैठ्यौ, मूँछनि ताव दिखायौ।
टेढ़ी चाल, पाग सिर टेढ़ी, टेढ़ैं-टेढ़ैं धायौ।
सूरदास प्रभु क्यौं नहिं चेतत, जब लगि काल न आयौ ॥३०१॥

राग केदारौ

जग मैं जीवत ही कौ नातौ।
मन बिछुरैं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ।
मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै, पंच-सुहातौ।
बिषयासक्त रहत निसि-बासर, सुख सियरौ, दुख तातौ।
साँच-झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखौ खातौ।
सूरदास कछु थिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ ॥३०२॥

राग धनाश्री

कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी ?
हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी ?
सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ, जो जतननि करि माया जोरी।
राज-पाट सिंहासन बैठौ, नील पदुम हूँ सौं कहै थोरी।

मैं-मेरी करि जनम गँवावत, जब लगि नाहिं परति जम-डोरी।
धन-जोबन-अभिमान अल्प जल, काहे करत आपनी बोरी।
हस्ती देखि बहुत मन-गर्बित, ता मूरख की मति है थोरी।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चले खेलि फागुन की होरी ॥३०३॥

राग धनाश्री

विचारत ही लागे दिन जान।
सजल देह, कागद तैं कोमल, किहिं बिधि राखै प्रान?
जोग न यज्ञ, ध्यान नहिं सेवा, संत-संग नहिं ज्ञान।
जिह्वा-स्वाद, इंद्रियनि-कारन, आयु घटति दिन मान।
और उपाइ नहीं रे बौरे, सुनि तू यह दै कान।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँगपान ॥३०४॥

राग धनाश्री

अब मैं जानी, देह बुढ़ानी।
सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी।
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी।
मिटि गई चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी।
नाहिं रही कछु सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँगपानी ॥३०५॥

मन-प्रबोध

राग देवगंधार

रे मन, सुमिरि हरि हरि हरि!
सत जज्ञ नाहिंन नाम सम, परतीति करि करि करि।
हरि-नाम हरिनाकुस बिसार्‍यौ, उठ्यौ बरि बरि बरि।
प्रहलाद-हित जिहिं असुर मार्‍यौ, ताहि डरि डरि डरि।
गज-गीध-गनिका-ब्याध के अघ गए गरि गरि गरि।
रस-चरन-अंबुज बुद्धि-भाजन, लेहि भरि भरि भरि।
द्रौपदी के लाज कारन, दौरि परि परि परि।
पांडु-सुत के बिघन जेते, गए टरि टरि टरि।
करन, दुरजोधन, दुसासन, सकुनि, अरि अरि अरि।
अजामिल सुत-नाम लीन्हैं, गए तरि तरि तरि।

चारि फल के दानि हैं प्रभु, रहे फरि फरि फरि।
सूर श्री गोपाल हिरदै राखि धरि धरि धरि ॥३०६॥

राग केदारौ

करि मन, नंद-नंदन-ध्यान।
सेव चरन-सरोज सीतल, तजि बिषय-रस-पान।
जानु-जंघ त्रिभंग सुंदर, कलित कंचन-दंड।
काछनी कटि पीतपट-दुति, कमल-केसर-खंड।
मनौ मधुर मराल-छौना, किंकिनी-कल-राव।
नाभि-ह्रद, रोमावली-अलि, चले सहज सुभाव।
कंठ मुक्तामाल, मलयज, उर बनी बनमाल।
सुरसरी कैं तीर मानौ लता स्याम तमाल।
बाहु-पानि सरोज-पल्लव, धरे मृदु मुख बेनु।
अति बिराजत बदन-बिधु, पर सुरभि-रंजित-रेनु।
अधर, दसन, कपोल, नासा, परम सुंदर नैन।
चलित कुंडल गंड-मंडल, मनहुँ निर्तत मैन।
कुटिल भ्रू पर तिलक रेखा, सीस सिखिनि-सिखंड।
मनु मदन धनु-सर सँधाने, देखि घन-कोदंड।
सूर श्रीगोपाल की छबि, दृष्टि भरि-भरि लेहु।
प्रानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देहु ॥३०७॥

राग केदारौ

भजि मन, नंद-नंदन-चरन।
परम पंकज अति मनोहर, सकल सुख के करन।
सनक-संकर ध्यान धारत, निगम-आगम बरन।
सेस, सारद, रिषय नारद, संत चिंतत सरन।
पद-पराग-प्रताप-दुर्लभ, रमा कौ हित-करन।
परसि गंगा भई पावन, तिहूँ पुर धर-धरन।
चित्त चिंतन करत जग-अघ हरत, तारन-तरन।
गए तरि लै नाम केते, पतित हरि-पुर-घरन।
जासु पद-रज-परस गौतम-नारि-गति-उद्धरन।
जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर धरन।

कृष्न-पद-मकरंद पावन, और नहिं सरचरन।
सूर भजि चरनारबिंदनि, मिटै जीवन-मरन ॥३०८॥

राग केदारौ

रे मन, समुझि सोचि-विचारि।
भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकारि।
धारि पासा साधु-संगति, फेरि रसना-सारि।
दाउँ अबकैं पर्‌यौ पूरौ, कुमति पिछली हारि।
राखि सतरह, सुनि अठारह, चोर पाँचौ मारि।
डारि दै तू तीनि काने, चतुर चौक निहारि।
काम क्रोधऽरु लोभ मोह्यौ, ठग्यौ नागरि नारि।
सूर श्री गोबिंद-भजन बिनु, चले दोउ कर झारि ॥३०९॥

राग सारंग

होउ मन, राम-नाम कौ गाहक।
चौरासी लख जीव-जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक।
भक्तनि-हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू, सकल दलाली देहि।
करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कैं पुर लै जाहि।
घाट-बाट कहुँ अटक होइ नहिं, सब कोउ देहि निबाहि।
और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि।
सूर स्याम कौ सौदा साँचौ, कह्यौ हमारौ मानि ॥३१०॥

राग केदारौ

रे मन, राम सौं करि हेत।
हरि-भजन की बारि करि लै, उबरै तेरौ खेत।
मन सुवा, तन पींजरा, तिहिं माँझ राखै चेत।
काल फिरत बिलार-तनु धरि, अब घरी तिहिं लेत।
सकल बिषय-बिकार तजि, तू उतरि सायर-सेत।
सूर भजि गोबिंद के गुन, गुर बताए देत ॥३११॥

राग कान्हरौ

मन-बच-क्रम मन, गोबिंद सुधि करि।
सुचि-रुचि सहज समाधि साधि सठ, दीनबंधु करुनामय उर धरि।

मिथ्या बाद-बिवाद छाँड़ि दै, काम-क्रोध-मद-लोभहिं परिहरि।
चरन-प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुख तरहरि।
बेदनि कह्यौ, सुमृतिहूँ भाष्यौ, पावन-पतित नाम निज नरहरि।
जाकौ सुजस सुनत अरु गावत, जैहै पाप-बृंद भजि भरहरि।
परम उदार, स्याम-घन-सुंदर, सुखदायक, संतत हितकर हरि।
दीनदयाल, गोपाल, गोपपति, गावत गुन आवत ढिग ढरहरि।
अति भयभीत निरखि भवसागर, घन ज्यौं घेरि रह्यौ घट घरहरि।
जब जम-जाल-पसार परैगौ, हरि बिनु कौन करैगौ धरहरि?
अजहूँ चेति मूढ़, चहुँ दिसि तैं उपजी काल-अगिनि झर झरहरि।
सूर काल-बल-ब्याल ग्रसत है, श्रीपति-सरन परत किन फरहरि ॥३१२॥

राग कान्हरौ

तिहारौ कृष्न कहत कह जात?
बिछुरैं मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यौं तरवर के पात!
सीत-वात-कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात।
प्रान लए जम जात, मूढ़-मति देखत जननी-तात।
छन इक माहिं कोटि जुग बीतत, नर की केतिक बात?
यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यौं, चाखत ही उड़ि जात।
जम कैं फंद पर्‍यौ नहिं जब लगि, चरननि किन लपटात?
कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात ॥३१३॥

राग केदारौ

हरि की सरन महँ तू आउ।
काम-क्रोध-बिषाद-तृष्ना, सकल जारि बहाउ।
काम कैं बस जो परै जमपुरी ताकौं त्रास।
ताहि निसि-दिन जपत रहि जो सकल-जीव-निवास।
कहत यह बिधि भली तोसौं, जौ तू छाँड़ै देहि।
सूर स्याम सहाइ हैं तौ आठहूँ सिधि लेहि ॥३१४॥

राग कान्हरौ

दिन दस लेहि गोबिंद गाइ।
छिन न चितत चरन-अंबुज, बादि जीवन जाइ।

दूरि जब लौं जरा रोग रु चलति इंद्री भाइ।
आपुनौ कल्यान करि लै, मानुषी तन पाइ।
रूप जोवन सकल मिथ्या, देखि जनि गरबाइ।
ऐसेहीं अभिमान-आलस, काल ग्रसिहै आइ।
कूप खनि कत जाइ रे नर, जरत भवन बुझाइ।
सूर हरि कौ भजन करि लै, जनम-मरन नसाइ ॥३१५॥

राग केदारौ

दिन द्वै लेहु गोबिंद गाइ।
मोह-माया-लोभ लागे, काल घेरै आइ।
बारि मैं ज्यौं उठत बुदबुद, लागि बाइ बिलाइ।
यहै तन-गति जनम-झूठौ, स्वान-काग न खाइ।
कर्म-कागद बाँचि देखौ, जौ न मन पतियाइ।
अखिल लोकनि भटकि आयौ, लिख्यौ मेटि न जाइ।
सुरति के दस द्वार रूँधे, जरा घेर्‌यौ आइ।
सूर हरि की भक्ति कीन्हैं, जन्म-पातक जाइ ॥३१६॥

राग धनाश्री

मन, तोसौं किती कही समुझाइ।
नंद-नँदन के चरन-कमल भजि, तजि पाखँड-चतुराइ।
सुख-संपति, दारा-सुत, हय-गय, छूट सबै समुदाइ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत नाहिं सँग जाइ।
जनमत-मरत बहुत जुग बीते, अजहूँ लाज न आइ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जैहै जनम गँवाइ ॥३१७॥

राग मलार

अब मन, मानि धौं राम दुहाई।
मन-बच-क्रम हरि-नाम हृदय धरि, ज्यौं गुरु बेद बताई।
महा कष्ट दस मास गर्भ बसि, अधोमुख-सीस रहाई।
इतनी कठिन सही तैं केतिक, अजहुँ न तू समुझाई!
मिटि गए राग द्वेष सब तिनके, जिन हरि प्रीति लगाई।
सूरदास प्रभु-नाम की महिमा, पतित परम गति पाई ॥३१८॥

राग असावरी

बौरे मन, रहन अटल करि जान्यौ।
धन-दारा-सुत-बंधु-कुटुँब-कुल, निरखि निरखि बौरान्यौ।
जीवन जन्म अल्प सपनौ सौ, समुझि देखि मन माहीं।
बादर-छाहँ, धूम-धौराहर, जैसैं थिर न रहाहीं।
जब लगि डोलत, बोलत, चितवत, धन-दारा हैं तेरे।
निकसत हंस, प्रेत कहि तजिहैं, कोउ न आवै नेरे।
मूरख, मुग्ध, अजान, मूढ़मति, नाहीं कोऊ तेरौ।
जो कोऊ तेरौ हितकारी, सो कहै काढ़ि सबेरौ।
घरी इक सजन-कुटुँब मिलि बैठैं, रुदन विलाप कराहीं।
जैसैं काग काग के मूएँ, काँ-काँ करि उड़ि जाहीं।
कृमि-पावक तेरौ तन भखिहै, समुझि देखि मन माहीं।
दीन-दयाल सूर हरि भजि लै, यह औसर फिरि नाहीं ॥३१९॥

राग गौरी

ते दिन बिसरि गए इहाँ आए।
अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए।
जिन दिवसनि तैं जननि-जठर मैं रहत बहुत दुख पाए।
अति संकट मैं भरत भँटा लौं, मल मैं मूँड़ गड़ाए।
बुधि-बिवेक-बल-हीन, छीन-तन, सबही हाथ पराए।
तब धौं कौन साथ रहि तेरैं, खान-पान पहुँचाए।
तिहिं न करत चित अधम अजहुँ लौं जीवत जाके ज्याए।
सूर सो मृग ज्यौं बान सहत नित बिषय ब्याध के गाए ॥३२०॥

राग धनाश्री

रे मन, निपट निलज अनीति।
जियत की कहि को चलावै, मरत विषयनि प्रीति।
स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-विहीन।
भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी-आधीन।
निकट आयुध वधिक धारे, करत तीच्छन धार।
अजा-नायक मगन क्रीड़त, चरत बारंबार।
देह छिन-छिन होति छीनी, दृष्टि देखत लोग।
सूर स्वामी सौं विमुख ह्वै, सती कैसे भोग? ॥३२१॥

राग गौरी

बौरे मन, समुझि-समुझि कछु चेत ।
इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत ।
तब लगि सेवा करि निस्चय सौं, जब लगि हरियर खेत ।
सूरजदास भरम जनि भूलौ, करि बिधना सौं हेत ॥३२२॥

राग धनाश्री

रे सठ, बिन गोबिंद सुख नाहीं ।
तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं, रिधि-सिधि फिरि-फिरि जाहीं ।
सिव, बिरंचि, सनकादिक मुनिजन इनकी गति अवगाहीं ।
जगत-पिता जगदीस-सरन बिनु, सुख तीनौं पुर नाहीं ।
और सकल मैं देखे-ढूँढ़े, बादर की सी छाहीं ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, दुख कबहूँ नहिं जाहीं ॥३२३॥

राग कान्हरौ

मन, तोसौं कोटिक बार कही ।
समुझि न चरन गहे गोबिंद के, उर अघ-सूल सही ।
सुमिरन, ध्यान, कथा हरिजू की यह एकौ न रही ।
लोभी, लंपट, बिषयिनि सौं हित, यौं तेरी निबही ।
छाँड़ि कनक-मनि रतन अमोलक, काँच की किरच गही ।
ऐसौ तू है चतुर बिबेकी, पय तजि पियत मही ।
ब्रह्मादिक, रुद्रादिक, रबि-ससि, देखे सुर सबही ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, सुख तिहुँ लोक नहीं ॥३२४॥

राग परज

मन रे, माधव सौं करि प्रीति ।
काम-क्रोध-मद-लोभ तू, छाँड़ि सबै बिपरीति ।
भौंरा भोगी बन भ्रमै, (रे) मोद न मानै ताप ।
सब कुसुमनि मिलि रस करै, (पै) कमल बँधावै आप ।
सुनि परमिति पिय प्रेम की, (रे) चातक चितवन पारि ।
घन-आसा सब दुख सहै, (पै) अनत न जाँचै बारि ।
देखौ करनी कमल की, (रे) कीन्हौं रबि सौं हेत ।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यौ, (रे) सूख्यौ सलिल समेत ।

दीपक पीर न जानई, (रे) पावक परत पतंग।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जर्‌यौ, (पै) चित न भयौ रस-भंग।
मीन बियोग न सहि सकै, (रे) नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहिं, (रे) रति न घटै तन जात।
परनि परेवा प्रेम की, (रे) चित लै चढ़त अकास।
तहँ चढ़ि तीय जो देखई, (रे) भू पर परत निसास।
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, (रे) स्रवननि राच्यौ राग।
धरि न सकत पग पछमनौ, (रे) सर सनमुख उर लाग।
देखि जरनि, जड़, नारि, की, (रे) जरति प्रेम के संग।
चिता न चित फीकौ भयौ, (रे) रची जु पिय कैं रंग।
लोक-बेद बरजत सबै, (रे) देखत नैननि त्रास।
चोर न चित चोरी तजै, (रे) सरवस सहै बिनास।
सब रस कौ रस प्रेम है, (रे) विपयी खेलै सार।
तन-मन-धन-जोबन खसै, (रे) तऊ न मानै हार।
तैं जो रतन पायौ भलौ, (रे) जान्यौ साधि न साज।
प्रेम-कथा अनुदिन सुनै, (रे) तऊ न उपजै लाज।
सदा सँघाती आपनौ, (रे) जिय कौ जीवन-प्रान।
सु तैं बिसार्‌यौ सहज हीं, (रे) हरि, ईस्वर, भगवान।
बेद, पुरान, सुमृति सबै, (रे) सुर-नर सेवत जाहि।
महा मूढ़ अज्ञान मति, (रे) क्यौं न सँभारत ताहि?
खग-मृग-मीन-पतंग लौं, (रे) मैं सोधे सब ठौर।
जल-थल-जीव जिते तिते, (रे) कहौं कहाँ लगि और।
प्रभु पूरन पावन सखा, (रे) प्राननि हूँ कौ नाथ।
परम दयालु कृपालु है, (रे) जीवन जाकैं हाथ।
गर्भ-बास अति त्रास मैं, (रे) जहाँ न एकौ अंग।
सुनि सठ, तेरौ प्रानपति, (रे) तहँउ न छाँड्यौ संग।
दिन-राती पोषत रह्यौ, (रे) जैसैं चोली पान।
वा दुख तैं तोहिं काढ़ि कै, (रे) लै दीनौ पय-पान।
जिन जड़ तैं चेतन कियौ, (रे) रचि गुन-तत्त्व-बिधान।
चरन, चिकुर, कर, नख, दए, (रे) नयन, नासिका, कान।
असन, बसन बहु बिधि दए, (रे) औसर औसर आनि।
मातु-पिता-भैया मिले, (रे) नई रुचि नई पहिचानि।

सजन कुटुँब परिजन बढ़े, (रे) सुत-दारा-धन-धाम।
महामूढ़ बिषयी भयौ, (रे) चित आकर्ष्यौ काम।
खान-पान-परिधान मैं, (रे) जोबन गयौ सब बीति।
ज्यौं बिट पर-तिय-सँग बस्यौ, (रे) भोर भए भई भीति।
जैसैं सुखहीं तन बढ़्यौ, (रे) तैसैं तनहिं अनंग।
धूम बढ़्यौ, लोचन खस्यौ, (रे) सखा न सूझ्यौ संग।
जम जान्यौ, सब जग सुन्यौ, (रे) बाढ़्यौ अजस अपार।
बीच न काहू तब कियौ, (जब) दूतनि दीन्हीं मार।
कहा जानै कैवाँ मुवौ, (रे) ऐसैं कुमति, कुमीच।
हरि सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच!
जौ पै जिय लज्जा नहीं, (रे) कहा कहौं सौ बार?
एकहु आँक न हरि भजे, (रे) रे सठ, सूर गँवार ॥३२५॥

राग कल्यान

धोखैं ही धोखैं डहकायौ।

समुझि न परी, बिषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई चहूँ दिसि धायौ।
जनम-जनम बहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ।
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि, निसि-बासर हठि चित्त लगायौ।
रीतौ पर्‌यौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, ताँवरौ आयौ।
ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन-कन कौं चौहटैं नचायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, काल-ब्याल पै आपु डसायौ ॥३२६॥

राग बिलावल

धोखैं ही धोखैं बहुत बह्यौ।
मैं जान्यौ सब संग चलैगौ, जहँ कौ तहाँ रह्यौ।
तीरथ गवन कियौ नहिं कबहूँ, चलतहिं चलत दह्यौ।
सूरदास सठ तब हरि सुमिर्‌यौ, जब कफ कंठ गह्यौ ॥३२७॥

राग धनाश्री

जनम गँवायौ ऊआबाई।
भजे न चरन-कमल जदुपति के, रह्यौ बिलोकत छाई।

धन-जोबन-मद ऐंड़ौ-ऐंड़ौ, ताकत नारि पराई।
लालच-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, सोऊ हाथ न आई।
रंच काँच-सुख लागि मूढ़-मति, कंचन-रासि गँवाई।
सूरदास प्रभु छाँड़ि सुधा-रस, विषय परम विष खाई ॥३२८॥

राग धनाश्री

भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
वालापन खेलतहीं खोयौ, तरुनाई गरबानौ।
वहुत प्रपंच किए माया के, तऊ न अधम अघानौ।
जतन-जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ।
सुत-वित-वनिता-प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ।
लोभ-मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनैं ज्यौं डहकानौ।
बिरध भएँ कफ कंठ विरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितानौ।
सूरदास भगवंत-भजन विनु, जम कैं हाथ विकानौ ॥३२९॥

राग धनाश्री

(मन) राम-नाम-सुमिरन बिनु, बादि जनम खोयौ।
रंचक सुख कारन, तैं अंत क्यौं बिगोयौ।
साधु-संग, भक्ति बिना, तन अकार्थ जाई।
ज्वारी ज्यौं हाथ झारि, चालै छुटकाई।
दारा-सुत, देह-गेह, संपति सुखदाई।
इनमैं कछु नाहिं तेरौ, काल-अवधि आई।
काम - क्रोध - लोभ - मोह - तृष्ना मन मोयौ।
गोबिंद-गुन चित बिसारि, कौन नींद सोयौ!
सूर कहै चित बिचारि, भूल्यौ भ्रम अंधा।
राम-नाम भजि लै, तजि और सकल धंधा ॥३३०॥

राग कल्याण

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ।
पाउँ चारि, सिर सृंग, गुंग मुख, तब कैसैं गुन गैहौ।
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ।
टेढ़ू कंधऽरु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौ।

लादत, जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ?
सीत, घाम, घन, विपति बहुत बिधि, भार तरैं मरि जैहौ।
हरि-संतनि कौ कह्यौ न मानत, कियौ आपुनौ पैहौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मिथ्या, जनम गँवैहौ ॥३३१॥

राग सारंग

तजौ मन, हरि-विमुखनि कौ संग।
जिनकैं संग कुमति उपजति है, परत भजन मैं भंग।
कहा होत पय-पान कराएँ, बिष नहिं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाएँ, स्वान न्हवाएँ गंग।
खर कौं कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन-अंग।
गज कौं कहा सरित अन्हवाएँ, बहुरि धरै वह ढंग।
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग ॥३३२॥

राग सोरठ

रे मन, जनम अकारथ खोइसि।
हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्हीं, उदर भरे परि सोइसि।
निसि-दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि।
गोड़ पसारि पर्‍यौ दोउ नीकैं, अब कैसी कह होइसि!
काल-जमनि सौं आनि बनी है, देखि-देखि मुख रोइसि।
सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै, चले जाव भाई पोइसि ॥३३३॥

राग सोरठ

तब तैं गोविंद क्यौं न सँभारे?
भूमि परे तैं सोचन लागे, महा कठिन दुख भारे।
अपनौ पिंड पोषिबैं कारन, कोटि सहस जिय मारे।
इन पापनि तैं क्यौं उबरौगे, दामनगीर तुम्हारे।
आपु लोभ-लालच कैं कारन, पापनि तैं नहिं हारे।
सूरदास जम कंठ गहे तैं, निकसत प्रान दुखारे ॥३३४॥

राग धनाश्री

रे मन मूरख, जनम गँवायौ।
करि अभिमान विषय-रस गीध्यौ स्याम-सरन नहिं आयौ।

यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुंदर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि हाथ कछू नहिं आयौ।
कहा होत अब के पछिताएँ, पहिलैं पाप कमायौ।
कहत सूर भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायौ ॥३३५॥

राग मारू

औसर हार्‌यौ रे, तैं हार्‌यौ।
मानुष-जनम पाइ नर बौरे, हरि कौ भजन बिसार्‌यौ।
रुधिर-बूँद तैं साजि कियौ तन, सुंदर रूप सँवार्‌यौ।
जठर अगिनि अंतर उर दाहत, जिहिं दस मास उबार्‌यौ।
जब तैं जनम लियौ जग भीतर, तब तैं तिहिं प्रतिपार्‌यौ।
अंध, अचेत, मूढ़मति, बौरे, सो प्रभु क्यौं न सँभार्‌यौ?
पहिरि पटंबर, करि आडंबर, यह तन झूठ सिंगार्‌यौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ, तिया-रति, बहु बिधि काज बिगार्‌यौ।
मरन भूलि, जीवन थिर जान्यौ, बहु उद्यम जिय धार्‌यौ।
सुत-दारा कौ मोह अँचै विष, हरि-अमृत-फल डार्‌यौ।
झूठ-साँच करि माया जोरी, रचि-पचि भवन सँवार्‌यौ।
काल-अवधि पूरन भई जा दिन, तनहूँ त्यागि सिधार्‌यौ।
प्रेत-प्रेत तेरौ नाम पर्‌यौ, जब, जेँवरि बाँधि निकार्‌यौ।
जिहिं सुत कैं हित विमुख गोविंद तैं, प्रथम तिहीं मुख जार्‌यौ।
भाई-बंधु कुटुंब-सहोदर, सब मिलि यहै बिचार्‌यौ।
जैसे कर्म, लहौ फल तैसे, तिनुका तोरि उचार्‌यौ।
सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवार्‌यौ।
हरि भजि, बिलँब छाँड़ि सूरज सठ, ऊँचैं टेरि पुकार्‌यौ ॥३३६॥

चित्-बुद्धि-संवाद *राग देवगधार*

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग।
जहाँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुवास।
जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि विहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै।

लछमी-सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस ॥३३७॥

राग देवगंधार

चलि सखि, तिहिं सरोवर जाहिं।
जिहिं सरोवर कमल कमला, रवि विना विकसाहिं।
हंस उज्जल पंख निर्मल, अंग मलि-मलि न्हाहिं।
मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिं।
अतिहिं मगन महा मधुर रस, रसन मध्य समाहिं।
पदुम-वास सुगंध-सीतल, लेत पाप नसाहिं।
सदा प्रफुलित रहैं, जल विनु निमिष नहिं कुम्हिलाहिं।
सघन गुंजत बैठि उन पर भौंरहू विरमाहिं।
देखि नीर जु छिलछिलौ जग, समुझि कछु मन माहिं।
सूर क्यौं नहिं चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबौ नाहिं ॥३३८॥

राग रामकली

भृंगी री, भजि स्याम-कमल-पद, जहाँ न निसि कौ त्रास।
जहँ विधु-भानु समान, एक रस, सो वारिज सुख-रास।
जहँ किंजल्क भक्ति नव-लच्छन, काम-ज्ञान, रस एक।
निगम, सनक, सुक, नारद, सारद, मुनि जन भृंग अनेक।
सिव-विरंचि खंजन मनरंजन, छिन-छिन करत प्रवेस।
अखिल कोष तहँ भरयौ सुकृत-जल, प्रगटित स्याम-दिनेस।
सुनि मधुकरि, भ्रम तजि कुमुदनि कौ, राजिववर की आस।
सूरज प्रेम-सिंधु मैं प्रफुलित, तहँ चलि करै निवास ॥३३९॥

राग देवगंधार

सुवा, चलि ता बन कौ रस पीजै।
जा बन राम-नाम अम्रित-रस, स्रवन-पात्र भरि लीजै।
को तेरौ पुत्र, पिता तू काकौ, घरनी, घर कौ तेरौ?
काग-सृगाल-स्वान कौ भोजन, तू कहै मेरौ-मेरौ!
बन बारानसि मुक्ति-क्षेत्र है, चलि तोकौं दिखराऊँ।
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ ॥३४०॥

राग बिलावल

या विधि राजा कर्‌यौ, विचारि। राज-साज सबहीं कौं डारि।
जीरन पट कुपीन तन धारि। चल्यौ सुरसरी, सीस उघारि।
पुत्र-कलत्र देखि सब रोवैं। राजा तिनकी ओर न जोवैं।
राजा चलत चले सब लोग। दुखित भए सब नृपति-वियोग।
नृपति सुरसरी कैं तट आइ। कियौ असनान मृत्तिका लाइ।
करि संकल्प अन्न-जल त्याग्यौ। केवल हरि-पद सौं अनुराग्यौ।
अत्रि-बसिष्ठादिक तहँ आए। नारदादि मुनि बहुरि सिधाए।
कुस-आसन दै तिनहिं बिठायौ। यौं कहि पुनि तिनकौं सिरनायौ।
धन्य भाग्य, तुम दरसन पाए। मम उद्धार करन तुम आए।
तुम देखत हरि-सुमिरन होइ। और प्रसंग चलै नहिं कोइ।
आज्ञा होइ करौं अब सोइ। जातैं मेरी सदगति होइ।
कोउ कहै, तीरथ सेवन करौ। कोउ कहै, दान-जज्ञ बिस्तरौ।
काहू कह्यौ मंत्र-जप करना। काहू कछु, काहू कछु बरना।
राजा कह्यौ, सप्त दिन माहिं। सिद्धि होति कछु दीसति नाहिं।
इहिं अंतर सुक मुनि तहँ आए। राजा देखि तुरत उठि धाए।
करि दंडवत कुसासन दीन्हौ। पुनि सनमान रुपिनि सब कीन्हौ।
सुक कौ रूप कह्यौ नहिं जाइ। सुक-हिय रह्यौ कृष्न-रस छाइ।
सुक की महिमा सुकही जानै। सूरदास कहि कहा बखानै ॥३४१॥

राग बिलावल

सुक नृप ओर कृपा करि देख्यौ। धन्य भाग, तिन अपनौ लेख्यौ।
बिनती करी चरन सिर नाइ। सप्त दिवस सब मेरी आइ।
तउ कुटुंब कौ मोह न जात। तन-धन-लोभ आइ लपटात।
जानि बूझि मैं होत अजान। उपजत नाहीं मन मैं ज्ञान।
अरु तनु छूटत बहु दुख होइ। तातैं सोच रहै नहिं कोइ।
बिना सोच सुमिरन क्यौं होइ। आज्ञा होइ करौं अब सोइ।
सुक कह्यौ, तन-धन कुटुँब बिहाइ। हरि-पद भजौ, न और उपाइ।
आयु भग्न-घट-जल ज्यौं छीजै। अह-निसि हरि-हरि सुमिरन कीजै।
नृप खट्वांग पूर्ब इक भयौ। सु तौ द्वै घरी मैं तरि गयौ।
सात दिवस तेरी तौ आइ। कहौं भागवत, सुनि चित लाइ।
सुनि हरि-कथा धरौ हरि-ध्यान। सब जग जानौ स्वप्न समान।

या बिधि जौ हरि-पद उर धरिहौ । निस्संदेह सूर तौ तरिहौ ॥३४२॥

राग बिलावल

हरि-जस-कथा सुनौ चित लाइ । ज्यौं षट्वांग तर्‍यौ गुन गाइ ।
नृप षट्वांग भयौ भुव माहिं । ताके सम छितिया कोउ नाहिं ।
इक दिन इंद्र तासु घर आयौ । राजा उठि कै सीस नवायौ ।
धनि मम गृह, धनि भाग हमारे । जौ तुम चरन कृपा करि धारे ।
अब मोकौं जो आज्ञा होइ । आयसु मानि करौं मैं सोइ ।
इंद्र कह्यौ, मम करौ सहाई । असुरनि सौं है हमैं लराई ।
इंद्रपुरी षट्वांग सिधाए । नाम सुनत सो सकल पराए ।
सुरपति सौं नृप आज्ञा माँगी । उन कह्यौ, लेहु कछू बर माँगी ।
नृपति कह्यौ, कहौ मेरी आइ । बर लैहौं पुनि सीस चढ़ाइ ।
दोइ मुहूरति आयु बताई । नृप बोल्यौ तब सीस नवाई ।
तुरत देहु मोहिं घर पहुँचाइ । तरौं जाइ तहँ हरि-गुन गाइ ।
एक मुहूरत मैं भुव आयौ । एक मुहूरत हरि-गुन गायौ ।
हरि-गुन गाइ परम पद लह्यौ । सूर नृपति सुनि धीरज गह्यौ ॥३४३॥

॥ प्रथम स्कंध समाप्त ॥

द्वितीय स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि चरनारबिंद उर धरौ।
सुकदेव हरि-चरननि सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
तुम कह्यौ सप्त दिवस मम आइ। कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ।
चिंता छाँड़ि, भजौ जदुराइ। सूर तरौ, हरि के गुन गाइ॥ १॥
॥३४४॥

राग सारंग

कह्यौ सुक श्रीभागवत बिचारि।
हरि की भक्ति जुगै जुग बिरधै, आन धर्म दिन चारि।
चिंता तजौ परीच्छित राजा, सुनि सिख साखि हमार।
कमल-नैन की लीला गावत, कटत अनेक बिकार।
सतजुग सत, त्रेता तप कीजै, द्वापर पूजा चारि।
सूर भजन कलि केवल कीजै, लज्जा-कानि निवारि॥ २॥
॥३४५॥

राग बिलावल

गोबिंद-भजन करौ इहिं बार।
संकर पारबती उपदेसत, तारक मंत्र लिख्यौ स्रुति-द्वार।
अस्वमेध जज्ञहु जो कीजै, गया, बनारस अरु केदार।
राम नाम-सरि तऊ न पूजै, जौ तनु गारौ जाइ हिवार।
सहस बार जौ बेनी परसौ, चंद्रायन कीजै सौ बार।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जम के दूत खरे हैं द्वार॥ ३॥
॥३४६॥

राग केदारौ

है हरि नाम कौ आधार।
और इहिं कलिकाल नाहीं, रह्यौ बिधि-ब्यौहार।

नारदादि सुकादि मुनि मिलि, कियौ बहुत बिचार।
सकल स्रुति-दधि मथत पायौ, इतोई घृत-सार।
दसौं दिसि तैं कर्म रोक्यौ, मीन कौं ज्यौं जार।
सूर हरि कौ सुजस गावत, जाहि मिटि भव-भार ॥ ४ ॥
॥३४७॥

नाम-महिमा *राग बिलावल*

हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि हरि सुमिरत सब सुख होइ।
हरि-समान द्वितिया नहिं कोइ। स्रुति-सुम्रिति देख्यौ सब जोइ।
हरि हरि सुमिरत होइ सु होइ। हरि चरननि चित राखौ गोइ।
बिनु हरि सुमिरन मुक्ति न होइ। कोटि उपाइ करौ जौ कोइ।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि सुमिरे तैं सब सुख होइ।
सत्रु-मित्र हरि गनत न दोइ। जो सुमिरै ताकी गति होइ।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि के गुन गावत सब लोइ।
राव-रंक हरि गनत न दोइ। जो गावहि ताकी गति होइ।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि सुमिरे तैं सब सुख होइ।
हरि हरि हरि सुमिर्यौ जो जहाँ। हरि तिहिं दरसन दीन्ह्यौ तहाँ।
हरि बिनु सुख नहिं इहाँ न उहाँ। हरि हरि-हरि सुमिरौ जहँ तहाँ।
सौ बातनि की एकै बात। सूर सुमिरि हरि-हरि दिन-रात।
॥ ५ ॥३४८॥

राग सारंग

जो सुख होत गुपालहिं गाएँ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हैं, कोटिक तीरथ न्हाएँ।
दिएँ लेत नहिं चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाएँ।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत, नंद-नँदन उर आएँ।
बंसीबट, बृंदाबन, जमुना तजि बैकुंठ न जावै।
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै ॥ ६ ॥
॥३४९॥

राग केदारौ

सोइ रसना, जो हरि-गुन गावै।
नैननि की छबि यहै चतुरता, जौ मुकुंद-मकरंदहिं ध्यावै।

निर्मल चित तौ सोई साँचौ, कृष्न बिना जिहिँ और न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै।
कर तेई जे स्यामहिँ सेवैं, चरननि चलि बृंदावन जावै।
सूरदास जैयै बलि ताकी, जो हरि जू सौं प्रीति बढ़ावै ॥ ७ ॥
॥३५०॥

राग सारग

जब तैं रसना राम कह्यौ।
मानौ धर्म साधि सब बैठ्यौ, पढ़िबे मैं धौं कहा रह्यौ।
प्रगट प्रताप ज्ञान-गुरु-गम तैं, दधि मथि, घृत लै, तज्यौ मह्यौ।
सार कौ सार, सकल सुख कौ सुख, हनूमान-सिव जानि गह्यौ।
नाम प्रतीति भई जा जन कौं, लै आनँद, दुख दूरि दह्यौ।
सूरदास धनि-धनि वह प्रानी, जो हरि कौ व्रत लै निबह्यौ ॥ ८ ॥
॥३५१॥

अनन्य भक्ति की महिमा *राग सारंग*

गोबिंद सौं पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै ?
स्याम-भजन बिनु सुख नहीं, जो दस दिसि धावै।
पति कौ व्रत जो धरै तिय, सो सोभा पावै।
आन पुरुष कौ नाम लै, पतिव्रतहिँ लजावै।
गनिका उपज्यौ पूत, सो कौन कौ कहावै ?
बसत सुरसरी तीर, मँदमति कूप खनावै।
जैसैं स्वान कुलाल के, पाछैं लगि धावै।
आन देव हरि तजि भजै, सो जनम गँवावै।
फल की आसा चित्त धरि, जो बृच्छ बढ़ावै।
महा मूढ़ सो मूल तजि, साखा जल नावै।
सहज भजै नँदलाल कौं, सो सब सचुपावै।
सूरदास हरि नाम लै, दुख निकट न आवै ॥ ९ ॥
॥३५२॥

राग कान्हरौ

जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिँ, ताहिँ और नहिँ भावै (हो)।
जौ लै मीन, दूध मैं डारै, बिनु जल नहिँ सचुपावै (हो)।

अति सुकुमार डोलत रस-भीनौ, सो रस जाहि पियावै (हो)।
ज्यौं गूँगौ गुर खाइ अधिक रस, सुख-सवाद न बतावै (हो)।
जैसैं सरिता मिलै सिंधु कौं, बहुरि प्रवाह न आवै (हो)।
ऐसैं सूर कमल-लोचन तैं, चित नहिं अनत डुलावै (हो) ॥१०॥
॥३५३॥

राग बिहाग

जौ मन कबहुँक हरि कौं जाँचै।
आन प्रसंग-उपासन छाँड़ै, मन-बच-क्रम अपनैं उर साँचै।
निसि-दिन स्याम सुमिरि जस गावै, कल्पन मेटि प्रेम रस माँचै।
यह ब्रत धरे लोक मैं बिचरै, सम करि गनै महामनि-काँचै।
सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हानि-लाभ कछु सोच न राँचै।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि न उलटि जगत मैं नाचै ॥११॥
॥३५४॥

राग बिलावल

जनम-जनम, जब-जब, जिहिं-जिहिं जुग, जहाँ-जहाँ जन जाइ।
तहाँ-तहाँ हरि चरन-कमल-रति सो दृढ़ होइ रहाइ।
स्रवन सुजस सारंग-नाद-बिधि, चातक-बिधि मुख नाम।
नैन चकोर सतत दरसन ससि, कर अरचन अभिराम।
सुमति सुरूप सँचै स्रद्धा-बिधि, उर-अंबुज अनुराग।
नित प्रति अलि जिमि गुंज मनोहर, उड़त जु प्रेम-पराग।
औरौ सकल सुकृत श्रीपति-हित, प्रति फल-रहित सुप्रीति।
नाक निरै, सुख दुःख, सूर नहिं, जिहि की भजन प्रतीति ॥१२॥
॥३५५॥

हरिविमुख-निंदा *राग सारंग*

अचंभौ इन लोगनि कौ आवै।
छाँड़ैं स्याम-नाम-अम्रित-फल, माया-बिष-फल भावै।
निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै।
मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावै।
पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै।
चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि, भ्रमि-भ्रमि जमहिं हँसावै।

मृगतृष्ना आचार-जगत जल, ता सँग मन ललचावै।
कहत जु सूरदास संतनि मिलि हरि जस काहे न गावै ! ॥१३॥
॥३५६॥

राग सारंग

भजन बिनु कूकर-सूकर जैसौ।
जैसैं घर बिलाव के मूसा, रहत बिषय-बस वैसौ।
बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियौ तैसौ।
उनहूँ कैँ गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ ?
जीव मारि कै उदर भरत हैं, तिनकौ लेखौ ऐसौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मनौ ऊँट-वृष-भैंसौ ॥१४॥
॥३५७॥

राग सारंग

भजन बिनु जीवत जैसैं प्रेत।
मलिन मंदमति डोलत घर-घर, उदर भरन कैं हेत।
मुख कटु बचन, नित्त पर-निंदा, संगति-सुजस न लेत।
कबहूँ पाप करैं पावत धन, गाड़ि धूरि तिहिं देत।
गुरु-ब्राह्मन अरु संत-सुजन के, जात न कबहुँ निकेत।
सेवा नहिं भगवंत-चरन की, भवन नील कौ खेत।
कथा नहीं गुन गीत सुजस हरि, सब काहूँ दुख देत।
ताकी कहा कहौं सुनि सूरज, बूड़त कुटुँब समेत ॥१५॥
॥३५८॥

राग सारंग

जिहिं तन हरि भजिबौ न कियौ।
सो तन सूकर-स्वान-मीन ज्यौं, इहिं सुख कहा जियौ ?
जो जगदीस ईस सबहिनि कौ, ताहि न चित्त दियौ।
प्रगट जानि जदुनाथ बिसार्‍यौ, आसा-मद जु पियौ।
चारि पदारथ के प्रभु दाता, तिन्हैं न मिल्यौ हियौ।
सूरदास रसना बस अपनैं, टेरि न नाम लियौ ॥१६॥
॥३५९॥

सत्संग-महिमा

राग केदारो

जा दिन संत पाहुने आवत ।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत ।
नयौ नेह दिन-दिन प्रति उनकैं चरन-कमल चित लावत ।
मन-बच कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत ।
मिथ्याबाद-उपाधि-रहित ह्वै, विमल-बिमल जस गावत ।
बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत ।
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत ।
सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति करावत ॥१७॥
॥३६०॥

भक्ति-साधन

राग धनाश्री

हरि-रस तौऽब जाइ कहुँ लहियै ।
गएँ सोच आएँ नहिं आनँद, ऐसौ मारग गहियै ।
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै ।
बाद-बिवाद, हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै ।
ऐसी जो आवै या मन मैं, तौ सुख कहँ लौं कहियै ।
अष्ट सिद्धि, नव निधि, सूरज प्रभु, पहुँचै जो कछु चाहियै ॥१८॥
॥३६१॥

राग धनाश्री

जौ लौं मन-कामना न छूटै ।
तौ कहा जोग-जज्ञ-ब्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै ।
कहा सनान कियैं तीरथ के, अंग भस्म, जट-जूटै ?
कहा पुरान जु पढ़ैं अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटैं ।
जग सोभा की सकल बड़ाई, इनतैं कछू न खूटै ।
करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै ।
काम, क्रोध, मद, लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सौं छूटै ।
सूरदास तबहीं तम नासै, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै ॥१९॥
॥३६२॥

राग-बिलावल

भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै । सुत-कलत्र सौं हित परिहरै ।

असन-वसन की चिंत न करै। बिस्वंभर सब जग कौं भरै।
पसु जाके द्वारे पर होइ। ताकौं पोषत अह-निसि सोइ।
जो प्रभु कैं सरनागत आवै। ताकौं प्रभु क्यौं करि बिसरावै ?
मातु-उदर मैं रस पहुँचावत। बहुरि रुधिर तैं छीर बनावत।
असन-काज प्रभु बन-फल करे। तृषा-हेत जल-झरना भरे।
पात्र स्थान हाथ हरि दीन्हे। बसन-काज बल्कल प्रभु कीन्हे।
सज्जा पृथ्वी करी बिस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार।
तातैं सब चिंता करि त्याग। सूर करौ हरि-पद अनुराग ॥२०॥
॥३६३॥

राग बिलावल

भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै। सो अष्टांग जोग कौं करै।
यम, नियमासन, प्रानायाम। करि अभ्यास होइ निष्काम।
प्रत्याहार - धारना - ध्यान। करै जु छाँड़ि बासना आन।
क्रम-क्रम सौं पुनि करै समाधि। सूर स्याम भजि मिटै उपाधि॥२१॥
॥३६४॥

वैराग्य-वर्णन *राग धनाश्री*

सबै दिन एकै से नहिं जात।
सुमिरन-भजन कियौ करि हरि कौ, जब लौं तन-कुसलात।
कबहूँ कमला चपल पाइ कै, टेढ़ै टेढ़ै जात।
कबहूँ मग-मग धूरि बटोरत, भोजन कौं बिलखात।
या देही कौ गरब करत, धन-जोबन के मदमात।
हौं बड़, हौं बड़, बहुत कहावत, सूधैं कहत न बात।
बाद-बिवाद सबै दिन बीतैं, खेलत ही अरु खात।
जोग न जुक्ति, ध्यान नहि पूजा, बिरध भएँ पछितात।
तातैं कहत सँभारहि रे नर, काहे कौं इतरात ?
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, कहूँ नाहिं सुख गात ॥२२॥
॥३६५॥

राग सारंग

गरब गोबिंदहिं भावत नाहीं।
कैसी करी हिरनकस्यप सौं, प्रगट होइ छिन माहीं!

जग जानै करतूति कंस की, वृप मार्‌यौ बल-बाहीं।
ब्रह्मा इंद्रादिक पछिताने, गर्व धारि मन माहीं।
जौबन-रूप-राज-धन-धरती जानि जलद की छाहीं।
सूरदास हरि भजौ गर्ब तजि, बिमुख अगति कौं जाहीं ॥२३॥
॥३६६॥

राग कान्हरौ

बिषया जात हरष्यौ गात।
ऐसे अंध, जानि निधि लूटत, परतिय सँग लपटात।
बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि-करि जतन उड़ात।
परै अचानक त्यौं रस-लंपट, तनु तजि जमपुर जात।
यह तौ सुनी ब्यास के मुख तैं, परदारा दुखदात।
रुधिर-मेद, मल-मूत्र, कठिन कुच, उदर गंध-गंधात।
तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैं बात।
जो नर भलौ चहत तौ सो तजि, सूर स्याम गुन गात ॥२४॥
॥३६७॥

आत्मज्ञान *राग नट*

जौ लौं सत-सरूप नहिं सूझत।
तौ लौं मृग मद नाभि बिसारे, फिरत सकल बन बूझत।
अपनौ मुख मसि-मलिन मंदमति, देखत दर्पन माहीं।
ता कालिमा मेटिबे कारन, पचत पखारत छाहीं।
तेल-तूल-पावक-पुट भरि धरि, बनै न बिना प्रकासत।
कहत बनाइ दीप की बतियाँ, कैसैं धौं तम नासत!
सूरदास यह मति आए बिन, सब दिन गए अलेखे।
कहा जानै दिनकर की महिमा, अंध नैन बिन देखे! ॥२५॥
॥३६८॥

राग नट

अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यौ।
जैसैं स्वान काँच-मंदिर मैं, भ्रमि-भ्रमि भूकि पर्‌यौ।
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृन सूँघि फिर्‌यौ।
ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ, तसकर अरि पकर्‌यौ।

ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै, आपुन कूप पर्‌यौ।
जैसैं गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अर्‌यौ।
मर्कट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर-घर-द्वार फिर्‌यौ।
सूरदास नलिनी कौ सुवटा, कहि कौनैं पकर्‌यौ॥ २६॥
॥३६९॥

विराट-रूप-वर्णन *राग केदारौ*

नैननि निरखि स्याम-स्वरूप।
रह्यौ घट-घट व्यापि सोई, जोति-रूप अनूप।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर-चंद्र-नछत्र-पावक, सर्व तासु प्रकास॥२७॥
॥३७०॥

आरती *राग केदारौ*

हरि जू की आरती बनी।
अति विचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी।
कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँड़ी सहस्र फनी।
मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती सैल घनी।
रवि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी।
उड़त फूल उड़गन नभ अंतर, अंजन घटा घनी।
नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर-अनी।
काल-कर्म-गुन-ओर-अंत नहिं, प्रभु इच्छा रचनी।
यह प्रताप दीपक सुनिरंतर, लोक सकल भजनी।
सूरदास सब प्रगट ध्यान मैं अति विचित्र सजनी॥२८॥
॥३७१॥

नृप-विचार *राग गूजरी*

श्री सुक के सुनि बचन, नृप, लाग्यौ करन विचार।
झूठे नाते जगत के, सुत-कलत्र-परिवार।
चलत न कोऊ सँग चलै, मोरि रहै मुख नारि।
आवत गाढ़ैं काम हरि, देख्यौ, सूर विचारि॥२९॥
॥३७२॥

राग गूजरी

हरि बिनु कोऊ काम न आयौ।
इहिं माया झूठी प्रपंच लगि, रतन सौ जनम गँवायौ।
कंचन-कलस, विचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायौ।
तामैं तैं ततछनही काढ़यौ, पल भर रहन न पायौ।
हौं तव संग जरौंगी, यौं कहि, तिया धूति धन खायौ।
चलत रही चित चोरि, मोरि मुख, एक न पग पहुँचायौ।
बोलि बोलि सुत-स्वजन-मित्रजन, लीन्यौ सुजस सुहायौ।
पर्‍यौ जु काज अंत की बिरियाँ तिनहुँ न आनि छुड़ायौ।
आसा करि करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ।
तोरि लयौ कटिहू कौ डोरा, तापर बदन जरायौ।
पतित-उधारन, गनिका-तारन, सो मैं सठ बिसरायौ।
लियौ न नाम कबहुँ धोखैं हूँ, सूरदास पछितायौ ॥३०॥
॥३७३॥

राग देवगंधार

सकल तजि, भजि मन चरन मुरारि।
स्रुति, सुम्रिति, मुनि जन सब भाषत, मैं हूँ कहत पुकारि।
जैसैं सुपनैं सोइ देखियत, तैसैं यह संसार।
जात बिलै ह्वै छिनक मात्र मैं, उघरत नैन-किवार।
बारंबार कहत मैं तोसौं, जनम-जुआ जनि हारि।
पाछैं भई सु भई सूर जन, अजहूँ समुझि सँभारि ॥३१॥
॥३७४॥

राग गूजरी

अजहूँ सावधान किन होहि।
माया विषम भुजंगिनि कौ विष, उतर्‍यौ नाहिं न तोहि।
कृष्न सुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायौ।
बारंबार निकट स्रवननि ह्वै, गुरु-गारुड़ी सुनायौ।
बहुतक जीव देह अभिमानी, देखत ही इन खायौ।
कोउ-कोउ उबर्‍यौ साधु-संग, जिन स्याम सजीवनि पायौ।

जाकौ मोह-मैर अति छूटै, सुजस गीत के गाएँ।
सूर मिटै अज्ञान-मूरछा, ज्ञान-सुभेषज खाएँ ॥२२॥
॥३७५॥

श्री शुकदेव के प्रति परीक्षित-वचन *राग गूजरी*

नमो नमो हे कृपानिधान।
चितवत कृपा-कटाच्छ तुम्हारैं, मिटि गयौ तम-अज्ञान।
मोह-निसा कौ लेस रह्यौ नहिं, भयौ विवेक-विहान।
आतम-रूप सकल घट दरस्यौ, उदय कियौ रवि-ज्ञान।
मैं-मेरी अब रही न मेरैं, छुट्यौ देह-अभिमान।
भावै परौ आजुही यह तन, भावै रहौ अमान।
मेरैं जिय अब यहै लालसा, लीला श्री भगवान।
स्रवन करौं निसि-वासर हित सौं, सूर तुम्हारी आन ॥२३॥
॥३७६॥

श्री शुकदेव-वचन *राग सारंग*

कह्यौ सुक, सुनौ परीच्छित राव।
ब्रह्म अगोचर मन-बानी तैं, अगम, अनंत प्रभाव।
भक्तनि हित अवतार धारि जो करी लीला संसार।
कहौं ताहि जो सुनै चित्त दै, सूर तरै सो पार ॥२४॥
॥३७७॥

शुकदेव-कथित नारद-ब्रह्मा-सवाद *राग बिलावल*

नारद ब्रह्मा कौं सिर नाइ। कह्यौ, सुनौ त्रिभुवन-पति-राइ।
सकल सृष्टि यह तुमतैं होइ। तुम सम द्वितीया और न कोइ।
तुमहूँ धरत कौन कौ ध्यान ? यह तुम मोसौं करौ बखान।
कह्यौ, करता-हरता भगवान। सदा करत मैं तिनकौ ध्यान।
नारद सौं कह्यौ विधि जिहिं भाइ। सूर कह्यौ त्यौं ही सुक गाइ ॥२५॥
॥३७८॥

चतुर्विंशति अवतार-वर्णन

ब्रह्मा-वचन नारद के प्रति *राग धनाश्री*

जो हरि करै सो होइ, करता राम हरी।
ज्यौं दरपन-प्रतिबिंब, त्यौं सब सृष्टि करी।

आदि निरंजन, निराकार, कोउ हुतौ न दूसर।
रचौं सृष्टि-विस्तार, भई इच्छा इक औसर।
त्रिगुन प्रकृति तैं महत्तत्व, महत्तत्व तैं अहँकार।
मन - इंद्री - सब्दादि - पँच, तातैं कियौ विस्तार।
सब्दादिक तैं पंचभूत सुंदर प्रगटाए।
पुनि सबकौ रचि अंड, आपु मैं आपु समाए।
तीनि लोक निज देह मैं, राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष सोई भयौ, जो प्रभु अगम अपार।
नाभि-कमल तैं आदि पुरुष मोकौं प्रगटायौ।
खोजत जुग गए बीति, नाल कौ अंत न पायौ।
तिन मोकौं आज्ञा करी, रचि सब सृष्टि बनाइ।
थावर-जंगम, सुर - असुर, रचे सबै मैं आइ।
मच्छ, कच्छ, बाराह, बहुरि नरसिंह रूप धरि।
बामन, बहुरौ परसुराम, पुनि राम रूप करि।
बासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयौ पुनि सोइ।
सोई कल्की होइहै, और न द्वितिया कोइ।
ये दस हरि-अवतार, कहे पुनि और चतुरदस।
भक्तबछल भगवान, धरे तन भक्तनि कैं बस।
अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ।
नटवत करत कला सकल, बूझै बिरला कोइ।
सनकादिक, पुनि ब्यास, बहुरि भए हंस रूप हरि।
पुनि नारायन, ऋषभदेव, नारद, धनवंतरि।
दत्तात्रेयऽरु पृथु बहुरि, जज्ञपुरुष-बपु धार।
कपिल, मनू, हयग्रीव पुनि, कीन्हौ ध्रुव अवतार।
भूमिरेनु कोउ गनै, नछत्रनि गनि समुझावै।
कह्यौ चहै अवतार, अंत सोऊ नहिं पावै।
सूर कहौ क्यौं कहि सकै, जन्म - कर्म - अवतार।
कहे कछुक गुरु-कृपा तैं श्रीभागवतऽनुसार॥ ३६॥

॥३७६॥

ब्रह्मा की उत्पत्ति

राग बिलावल

ब्रह्मा यौं नारद सौं कह्यौ। जब मैं नाभि-कमल मैं रह्यौ।

खोजत नाल कितौ जुग गयौ। तौहू मैं कछु मरम न लयौ।
भई अकास बानी तिहिं बार। तू ये चारि श्लोक बिचार।
इन्हैं बिचारत ह्वैहै ज्ञान। ऐसी भाँति कह्यौ भगवान।
ब्रह्मा सो नारद सौं कहे। व्यास सोइ नारद सौं लहे।
व्यास कह्यौ मोसौं विस्तार। भयौ भागवत या परकार।
सोई अब मैं तोसौं भाषौं। तेरे हृदै न संसय राखौं।
मूल भागवत के येइ चारि। सूर भली बिधि इन्हैं विचारि ॥३७॥
॥३८०॥

चतुःश्लोक श्रीमुख-वाक्य *राग कान्हरौ*

पहिलै हौं ही हो तब एक।
अमल, अकल, अज, भेद-विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक।
सो हौं एक अनेक भाँति करि सोभित नाना भेष।
ता पाछैं इन गुननि गए तैं, हौं रहिहौं अवसेष।
सत मिथ्या, मिथ्या सत लागत, मम माया सो जानि।
रवि, ससि, राहु सँजोग बिना ज्यौं, लीजतु है मन मानि।
ज्यौं गज फटिक मध्य न्यारौ बसि, पंच प्रपंच बिभूत।
ऐसैं मैं सबहिनि तैं न्यारौ, मनिनि ग्रथित ज्यौं सूत।
ज्यौं जल मसक जीव-घट अंतर, मम माया इमि जानि।
सोई जस सनकादिक गावत, नेति नेति कहि मानि।
प्रथम ज्ञान, विज्ञानक द्वितिय मत, तृतिय भक्ति कौ भाव।
सूरदास सोई समष्टि करि, व्यष्टि दृष्टि मन लाव ॥३८॥
॥३८१॥

द्वितीय स्कंध समाप्त।

तृतीय स्कंध

श्री शुक-वचन *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारविंद उर धरौ।
सुकदेव हरि-चरननि सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥३८२॥

उद्धव का पश्चात्ताप *राग सोरठि*

हरि जु सौं अब मैं कहा कहौं ?
प्रभु अंतरजामी सब जानत, हौं सुनि सोचि रहौं।
आयसु दियौ, जाउ बदरीबन, कहँ सो कियौ चहौं।
तन-मन-बुधि जड़ देह दयानिधि, क्यौं करि लै निबहौं ?
अपनी करनी बिचारि गुसाईं, काहे न सूल सहौं।
मैं इहिं ज्ञान ठगीं ब्रजबनिता, दियौ सु क्यौं न लहौं ?
प्रगट पाप-संताप सूर अब, कापर हठै गहौं ?
और इहाँउ बिवेक-अगिनि के बिरह-बिपाक दहौं ॥२॥
॥३८३॥

राग सोरठि

तुम्हरी गति न कछु कहि जाइ।
दीनानाथ, कृपाल, परम सुजान जादौराइ।
कहत पठवन बदरिका मोहिं, गूढ़ ज्ञान सिखाइ।
सकुचि साहस करत मन मैं, चलत परत न पाइ।
पिनाकहु के दंड लौं तन, लहत बल सतराइ।
कहा करौं चित चरन अटक्यौ, सुधा-रस कैं चाइ।
मेरी है इहिं देह कौ हरि, कठिन सकल उपाइ।
सूर सुनत न गयौ तबहीं खंड-खंड नसाइ ॥३॥
॥३८४॥

मैत्रेय-विदुर संवाद *राग बिलावल*

जब हरि जू भए अंतर्धान। कहि ऊधव सौं तत्त्वज्ञान।
कह्यौ मयत्रेय सौं समुझाइ। यह तुम विदुरहिं कहियौ जाइ।
बदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ।
ऊधव-विदुर तहाँ मिलि गए। दोऊ कृष्न-प्रेम-बस भए।
ऊधव कह्यौ, हरि कह्यौ जो ज्ञान। कहिहैं तुम्हैं मयत्रेय आन।
यह कहि ऊधव आगैं चले। विदुर मयत्रेय बहुरौ मिले।
जो कछु हरि सौं सुन्यौ सुज्ञान। कह्यौ मयत्रेय ताहि बखान।
सोइ मोहिं दियौ व्यास सुनाइ। कहौं सो सूर सुनौ चित लाइ॥४॥
॥३८५॥

विदुर-जन्म *राग बिलावल*

विदुर सु धर्मराइ अवतार। ज्यौं भयौ, कहौं, सुनौ चितधार।
मांडव ऋषि जब सूली दयौ। तब सो काठ हरौ ह्वै गयौ।
मांडव धर्मराज पै आयौ। क्रोधवंत यह वचन सुनायौ।
कौन पाप मैं ऐसौ कियौ। जातैं मोकौं सूली दियौ।
धर्मराज कह्यौ, सुनु ऋषिराइ। छमा करौ तौ देउँ बताइ।
बाल-अवस्था मैं तुम धाइ। उड़ति भँभीरी पकरी जाइ।
ताहि सूल पर सूली दयौ। ताकौ बदलौ तुमसौं लयौ।
ऋषि कह्यौ, बाल-दसा अज्ञान। भयौ पाप मोतैं बिनु जान।
बालापन कौ लगत न पाप। तातैं देउँ तुम्हैं मैं साप।
दासी-पुत्र होहु तुम जाइ। सूर विदुर भयौ सो इहिं भाइ॥५॥
॥३८६॥

सनकादिक-अवतार *राग बिलावल*

ब्रह्मा ब्रह्मरूप उर धारि। मन सौं प्रगट किए सुत चारि।
सनक, सनंदन, सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार।
ये चारौं जब ब्रह्मा किए। हरि कौ ध्यान धरयौ तिन हिये।
ब्रह्मा कह्यौ, सृष्टि बिस्तारौ। उन यह वचन हृदय नहिं धारौ।
कह्यौ, यहै हम तुमसौं चहैं। पाँच बरष के नितहीं रहैं।
ब्रह्मा सौं तिन यह बर पाइ। हरि-चरननि चित राख्यौ लाइ।
सुकदेव कह्यौ जाहि परकार। सूर कह्यौ ताही अनुसार॥६॥
॥३८७॥

रुद्र-उत्पत्ति *राग बिलावल*

सनकादिकनि कह्यौ नहिं मान्यौ। ब्रह्मा क्रोध बहुत मन आन्यौ।
तब इक पुरुष भौंह तैं भयौ। होत समय तिन रोदन ठयौ।
ताकौं नाम रुद्र बिधि राख्यौ। तासौं सृष्टि करन कौं भाख्यौ।
तिन बहु सृष्टि तामसी करी। सो तामस करि मन अनुसरी।
ब्रह्मा मन सो भली न भाई। सूर सृष्टि तब और उपाई ॥७॥
॥३८८॥

सप्तऋषि, दच्छ प्रजापति तथा स्वायंभुव मनु की उत्पत्ति *राग बिलावल*

ब्रह्मा सुमिरन करि हरि-नाम। प्रगटे रिषय सप्त अभिराम।
भृगु, मरीचि, अंगिरा, बसिष्ठ। अत्रि, पुलह, पुलस्त्य अति सिष्ठ।
पुनि दच्छादि प्रजापति भए। स्वायंभुव सो आदि मनु जए।
इनतैं प्रगटी सृष्टि अपार। सूर कहाँ लौं करै बिस्तार ॥ ८ ॥
॥३८९॥

सुर-असुर-उत्पत्ति *राग बिलावल*

ब्रह्मा रिषि मरीचि निर्मायौ। रिपि मरीचि कस्यप उपजायौ।
सुर अरु असुर कस्यप के पुत्र। भ्रात बिमात आपु मैं सत्रु।
सुर हरि-भक्त, असुर हरि-द्रोही। सुर अति छमी, असुर अति कोही।
उनमैं नित उठि होइ लराई। करैं सुरनि की कृष्न सहाई।
तिन हित जो-जो किये अवतार। कहौं सूर भागवतऽनुसार ॥ ९ ॥
॥३९०॥

वाराह-अवतार *राग बिलावल*

ब्रह्मा सौं स्वयंभु मनु भयौ। तासौं सृष्टि करन कौं कह्यौ।
तिन ब्रह्मा सौं कह्यौ सिर नाइ। सृष्टि करौं सो रहै किहिं भाइ ?
ब्रह्मा हरि-पद ध्यान लगायौ। तब हरि वपु-बराह धरि आयौ।
ह्वै बराह पृथ्वी ज्यौं ल्यायौ। सूरदास त्यौंही सुक गायौ ॥१०॥
॥३९१॥

जय-विजय की कथा *राग धनाश्री*

हरि-गुन-कथा अपार, पार नहिं पाइयै।
हरि सुमिरत सुख होइ, सु हरि-गुन गाइयै।

ब्रह्म-पुत्र सनकादि, गए वैकुंठ एक दिन।
द्वारपाल जय-विजय हुते, वरज्यौ तिनकौं तिन।
साप दियौ तब क्रोध ह्वै असुर होहु संसार।
हरि दरसन कौं जात क्यौं रोक्यौ बिना बिचार ?
हरि-तिनसौं कह्यौ आइ, भली सिच्छा तुम दीनी।
वरज्यौ आवत तुम्हैं, असुर-बुधि इन यह कीनी।
तिन्हैं कह्यौ, संसार मैं असुर होहु अब जाइ।
तीजे जनम विरोध करि, मोकौं मिलिहौ आइ।
कस्यप की दिति नारि, गर्भ ताकैं दोउ आए।
तिनकैं तेज-प्रताप, देवतनि बहु दुख पाए।
गर्भ माहिं सत वर्ष रहि, प्रगट भए पुनि आइ।
तिन दोउनि कौं देखि कै, सुर सब गए डराइ।
हिरन्याच्छ इक भयौ, हिरनकस्यप भयौ दूजौ।
तिन के बल कौं इंद्र, वरुन, कोऊ नहिं पूजौ।
हिरन्याच्छ तब पृथी कौं, लै राख्यौ पाताल।
ब्रह्मा विनती करि कह्यौ, दीनबंधु गोपाल!
तुम बिनु द्वितिया और कौन, जो असुर सँहारै।
तुम बिनु करुनासिंधु, और को पृथी उधारै ?
तब हरि धरि बाराह-वपु, ल्याए पृथी उठाइ।
हिरन्याच्छ लै कर गदा, तुरतहिं पहुँच्यौ जाइ।
असुर क्रोध ह्वै कह्यौ, बहुत तुम असुर सँहारे।
अब लैहौं वह दाउँ, छाँड़िहौं नहिं बिन मारे।
यह कहिकै मारी गदा, हरि जू ताहि सम्हारि।
गदा-युद्ध तासौं कियौ, असुर न मानै हारि।
तब ब्रह्मा करि विनय कह्यौ, हरि, याहि सँहारौ।
तुम तौ लीला करत, सुरनि मन परयौ खँभारौ।
मारयौ ताहि प्रचारि हरि, सुर-नर भयौ हुलास।
सूरदास के प्रभु बहुरि गए वैकुंठ-निवास ॥११॥
॥३९२॥

राग बिलावल

स्वायंभुव मनु सुत भए दोइ। तनया तीनि, सुनौ अब सोइ।

दच्छ प्रजापति कौं इक दई। इक रुचि, एक कर्दम-तिय भई।
कर्दम कैं भयौ कपिलऽवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥१२॥
॥३६३॥

कपिलदेव-अवतार तथा कर्दम का शरीर-त्याग *राग बिलावल*

हरि हरि हरि सुमिरन नित करौ। हरि कौ ध्यान सदा हिय धरौ।
ज्यौं भयौ कपिलदेव-अवतार। कहौं सो कथा, सुनौ चित धार।
कर्दम पुत्र-हेत तप कियौ। तासु नारिहूँ यह व्रत लियौ।
हरि-सौ पुत्र हमारैं होइ। और जगत-सुख चहैं न कोइ।
नारायन तिनकौं बर दियौ। मोसौं और न कोऊ बियौ।
मैं लैहौं तुम गृह अवतार। तप तजि, करौ भोग संसार।
दुहुँ तब तीरथ माहिं नहाए। सुंदर रूप दुहूँ जन पाए।
भोग-समग्री जुरी अपार। बिचरन लागे सुख-संचार।
तिनके कपिलदेव सुत भए। परम सुभाग्य मानि तिन लए।
कर्दम कह्यौ तिन्हैं सिर नाइ। आज्ञा होइ, करौं तप जाइ।
अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।
मिथ्या तनु कौ मोह बिसार। जाहु रहौ भावै गृह-वार।
करत इंद्रियनि चेतन जोइ। मम स्वरूप जानौ तुम सोइ।
जब मम रूप देह तजि जाइ। तब सब इंद्री-सक्ति नसाइ।
ताकौं जानि मग्न ह्वै रहै। देहऽभिमान ताहि नहिं दहै।
तन-अभिमान जासु नसि जाइ। सो नर रहै सदा सुख पाइ।
और जो ऐसी जानै नाहिं। रहै सो सदा काल-भय माहिं।
यह सुनि कर्दम बनहिं सिधाए। उहाँ जाइ हरि-पद चित लाए।
हरि-स्वरूप सब घट यौं जान्यौ। ऊख माहिं ज्यौं रस है सान्यौ।
खोई तन, रस आतम-सार। ऐसी बिधि जान्यौ निरधार।
यौं लखि, गहि हरि-पद-अनुराग। मिथ्या तनु कौ कीन्यौ त्याग।
तनहिं त्यागि कै हरि-पद पायौ। नृप सुनि हरि-स्वरूप उर ध्यायौ।

देवहूति-कपिल संवाद

इहाँ कपिल सौं माता कह्यौ। प्रभु मेरौ अज्ञान तुम दह्यौ।
आतमज्ञान देहु समुझाइ। जातैं जनम-मरन-दुख जाइ।
कह्यौ कपिल, कहौं तुमसौं ज्ञान। मुक्त होइ नर ताकौं जान।

मुक्त नरनि के लच्छन कहौं। तेरे सब संदेहै दहौं।
मम सरूप जो सब घट जान। मगन रहै तजि उद्यम आन।
अरु सुख-दुख कछु मन नहिं ल्यावै। माता, सो नर मुक्त कहावै।
और जो मेरौ रूप न जानै। कुटुँब-हेत नित उद्यम ठानै।
जाकौ इहि विधि जन्म सिराइ। सो नर मरिकै नरकहिं जाइ।
ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान। अज्ञानी-सँग होइ अज्ञान।
तातैं साधु-संग नित करना। जातैं मिटै जन्म अरु मरना।
थावर-जंगम मैं मोहिं जानै। दयासील, सब सौं हित मानै।
सत-सँतोष दृढ़ करै समाधि। माता ताकौं कहियै साध।
काम, क्रोध, लोभहिं परिहरै। द्वंद-रहित, उद्यम नहिं करै।
ऐसे लच्छन हैं जिन माहिं। माता, तिनसौं साधु कहाहिं।
जाकौं काम-क्रोध नित व्यापै। अरु पुनि लोभ सदा संतापै।
ताहि असाधु कहत सब लोइ। साधु-वेष धरि साधु न होइ।
संत सदा हरि के गुन गावैं। सुनि-सुनि लोग भक्ति कौं पावैं।
भक्ति पाइ पावैं हरि-लोक। तिन्हैं न व्यापै हर्षऽरु सोक।

भक्ति-विषयक प्रश्नोत्तर

देवहूति कह, भक्ति सो कहियै। जातैं हरि-पुर वासा लहियै।
अरु सो भक्ति कीजै किहिं भाइ। सोऊ मो कहँ देहु बताइ।
माता, भक्ति चारि परकार। सत, रज, तम गुन, सुद्धा सार।
भक्ति एक, पुनि बहु विधि होइ। ज्यौं जल रँग-मिलि रंग सु होइ।
भक्ति सात्विकी, चाहत मुक्ति। रजोगुनी, धन-कुटुँबऽनुरक्ति।
तमोगुनी, चाहै या भाइ। मम वैरी क्यौंहूँ मरि जाइ।
सुद्धा भक्ति मोहिं कौं चाहै। मुक्तिहुँ कौं सो नहिं अवगाहै।
मन-क्रम-बच मम सेवा करै। मन तैं सब आसा परिहरै।
ऐसौ भक्त सदा मोहिं प्यारौ। इक छिन तातैं रहौं न न्यारौ।
ताकौं जो हित, मम हित सोइ। ता सम मेरैं और न कोइ।
त्रिबिध भक्त मेरे हैं जोइ। जो माँगै तिहिं देउँ मैं सोइ।
भक्त अनन्य कछू नहिं माँगै। तातैं मोहिं सकुच अति लागै।
ऐसौ भक्त सु ज्ञानी होइ। ताके सत्रु-मित्र नहिं कोइ।
हरि-माया सब जग संतापै। ताकौं माया-मोह न व्यापै।
कपिल, कहौ हरि कौ निज रूप। अरु पुनि माया कौन स्वरूप ?

देवहूति जब या विधि कह्यौ। कपिलदेव सुनि अति सुख लह्यौ।
कह्यौ,हरि कैं भय रवि-ससि फिरै। बायु बेग अतिसै नहिं करै।
अगिनि दहै जाकैं भय नाहिं। सो हरि माया जा बस माहिं।
माया कौं त्रिगुनात्मक जानौ। सत-रज-तम ताके गुन मानौ।
तिन प्रथमहिं महतत्व उपायौ। तातैं अहंकार प्रगटायौ।
अहंकार कियौ तीनि प्रकार। सत तैं मन सुर सातऽरुचार।
रजगुन तैं इंद्रिय विस्तारी। तमगुन तैं तन्मात्रा सारी।
तिनतैं पंचतत्व उपजायौ। इन सबकौ इक अंड बनायौ।
अंड सो जड़ चेतन नहिं होइ। तब हरि-पद-छाया मन पोइ।
ऐसी बिधि बिनती अनुसारी। महाराज बिन सक्ति तुम्हारी।
यह अंडा चेतन नहिं होइ। करहु कृपा सो चेतन होइ।
तामैं सक्ति आपनी धरी। चच्छुवादिक इंद्री बिस्तरी।
चौदह लोक भए ता माहिं। ज्ञानी ताहि बिराट कहाहिं।
आदि पुरुष चेतन कौं कहत। तीनौं गुन जामैं नहिं रहत।
जड़ स्वरूप सब माया जानौ। ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ।
जब लगि है जिय मैं अज्ञान। चेतन कौं सो सकै न जान।
सुत-कलत्र कौं अपनौ जानै। अरु तिनसौं ममत्व बहु ठानै।
ज्यौं कोउ दुख-सुख सपनै जोइ। सत्य मानि लै ताकौं सोइ।
जब जागै तब सत्य न मानै। ज्ञान भएँ त्यौंही जग जानै।
चेतन घट-घट है या भाइ। ज्यौं घट-घट रवि-प्रभा लखाइ।
घट उपजै, बहुरौ नसि जाइ। रवि नित रहै एकहीं भाइ।
जड़ तन कौं है जनमऽरु मरना। चेतन पुरुष अमर-अज बरना।
ताकौं ऐसौ जानै जोइ। ताकौ तिनसौं मोह न होइ।
जब लौं ऐसौ ज्ञान न होइ। बरन-धरम कौं तजै न सोइ।

भगवान् का ध्यान

राग बिलावल

संतनि की संगति नित करै। पापकर्म मन तैं परिहरै।
अरु भोजन सो इहिं बिधि करै। आधौ उदर अन्न सौं भरै।
आधे मैं जल बायु समावै। तब तिहिं आलस कबहुँ न आवै।
अरु जो परालब्ध सौं आवै। ताही कौं सुख सौं बरतावै।
बहुतै कौ उद्यम परिहरै। निर्भय ठौर बसेरौ करै।
तीरथ हू मैं जौ भय होइ। ताहू ठाउँ परिहरै सोइ।

वहुरौ धरै हृदय महँ ध्यान। रूप चतुरभुज स्याम सुजान।
प्रथमैं चरन-कमल कौं ध्यावै। तासु महातम मन मैं ल्यावै।
गंगा प्रगट इनहिं तैं भई। सिव सिवता इनहीं तैं लई।
लछमी इनकौं सदा पलोवै। वारंवार प्रीति करि जोवै।
जंघनि कौं कदली सम जानै। अथवा कनकखंभ सम मानै।
उर अरु ग्रीव वहुरि हिय धारै। तापर कौस्तुभ मनिहिं विचारै।
तहँ भृगु-लता, लच्छमी जान। नाभि-कमल चित धारै ध्यान।
मुख मृदु-हास देखि सुख पावै। तासौं प्रेम-सहित मन लावै।
नैन कमल-दल से अनियारे। दरसत तिन्हैं कटैं दुखभारे।
नासा-कीर, परम अति सुंदर। दरसत ताहि मिटै दुख-द्वंदर।
कूप समान स्रौन दोउ जानै। मुख कौ ध्यान याहि विधि ठानै।
केसर-तिलक-रेख अति सोहै। ताकी पटतर कौं जग को है?
मृगमद-विंदा तामैं राजै। निरखत ताहि काम सत लाजै।
मोर - मुकुट, पीतांवर सोहै। जो देखै ताकौ मन मोहै।
स्रवननि कुंडल परम मनोहर। नख-सिख ध्यान धरै यौं उर धर।
क्रम-क्रम करि यह ध्यान वढ़ावै। मन कहुँ जाइ, फेरि तहँ ल्यावै
ऐसैं करत मगन रहै सोइ। वहुरौ ध्यान सहज ही होइ।
चितवत चलत न चित तैं टरै। सुत-तिय-धन की सुधि विसमरै।
तव आतम घट-घट दरसावै। मगन होइ, तन-सुधि विसरावै।
भूख प्यास ताकौं नहिं व्यापै। सुख-दुख तनिकौ तिहिं न सँतापै।
जीवन-मुक्त रहै या भाइ। ज्यौं जल-कमल-अलिप्त रहाइ।

चतुर्विध भक्ति

देवहूति यह सुनि पुनि कह्यौ। देह-ममत्व घेरि मोहिं रह्यौ।
कर्दम-मोह न मन तैं जाइ। तातैं कहियै सुगम उपाइ।
कपिल कह्यौ, तो हँ भक्ति सुनाऊँ। अरु ताकौ व्यौरौ समुझाऊँ।
मेरी भक्ति चतुर्विध करै। सनै-सनै तैं सब निस्तरै।
ज्यौं कोउ दूरि चलन कौं करै। क्रम-क्रम करि डग-डग पग धरै।
इक दिन सो उहाँ पहुँचै जाइ। त्यौं मम भक्त मिलै मोहिं आइ।
चलत पंथ कोउ थाक्यौ होइ। कहैं दूरि, डरि मरिहै सोइ।
जो कोउ ताकौं निकट बतावै। धीरज धरि सो ठिकानैं आवै।
तमोगुनी रिपु मरिवौ चाहै। रजोगुनी धन कुटुँबऽवगाहै।

भक्त सात्त्विकी सेवै संत। लखै तिन्हैं मूरति भगवंत।
मुक्ति-मनोरथ मन मैं ल्यावै। मम प्रसाद तैं सो वह पावै।
निर्गुन मुक्तिहुँ कौं नहिं चहै। मम दरसन ही तैं सुख लहै।
ऐसौ भक्त सुमुक्त कहावै। सो बहुर्‌यौ भव-जल नहिं आवै।
क्रम-क्रम करि सबकी गति होइ। मेरौ भक्त नसै नहिं कोइ।

हरि-विमुख की निंदा

हरि तैं बिमुख होइ नर जोइ। मरिकै नरक परत है सोइ।
तहाँ जातना बहु विधि पावै। बहुरौ चौरासी मैं आवै।
चौरासी भ्रमि, नर-तन पावै। पुरुष-वीर्य सौं तिय उपजावै।
मिलि रज-वीर्य बेर-सम होइ। द्वितिय मास सिर धारै सोइ।
तीजे मास हस्त-पग होहिं। चौथ मास कर-अँगुरी सोहि।
प्रान-बायु पुनि आइ समावै। ताकौं इत-उत पवन चलावै।
पंचम मास हाड़ बल पावै। छठैं मास इंद्री प्रगटावै।
सप्तम चेतनता लहै सोइ। अष्टम मास सँपूरन होइ।
नीचैं सिर अरु ऊँचैं पाव। जठर अग्नि कौ व्यापै ताव।
कष्ट बहुत सो पावै उहाँ। पूर्वजन्म - सुधि आवै तहाँ।
नवम मास पुनि बिनती करै। महाराज, मम दुख यह टरै।
ह्याँ तैं जौ मैं बाहर परौं। अहनिसि भक्ति तुम्हारी करौं।
अब मोपै प्रभु, कृपा करीजै। भक्ति अनन्य आपुनी दीजै।
अरु यह ज्ञान न चित तैं टरै। बार-बार यह विनती करै।
दसम मास पुनि बाहर आवै। तब यह ज्ञान सकल बिसरावै।
बालापन दुख बहु विधि पावै। जीभ बिना कहि कहा सुनावै।
कबहूँ बिष्ठा मैं रहि जाइ। कबहूँ माखी लागैं आइ।
कबहूँ जुवाँ देहिं दुख भारी। तिनकौं सो नहिं सकै निवारी।
पुनि जब षष्ठ बरष कौ होइ। इत उत खेल्यौ चाहै सोइ।
माता-पिता निवारैं जबहीं। मन मैं दुख पावै सो तबहीं।
माता-पिता पुत्र तिहिं जानैं। वहऊ उनसौं नातौ मानै।
वर्ष व्यतीत दसक जब होइ। बहुरि किसोर होइ पुनि सोइ।
सुंदर नारी ताहि बिवाहै। असन-बसन बहुबिधि सो चाहै।
बिना भाग सो कहाँ तैं आवै। तब वह मन मैं बहु दुख पावै।
पुनि लछमी-हित उद्यम करै। अरु जब उद्यम खाली परै।

।वह रहै बहुत दुख पाइ। कहँ लौं कहौं, कह्यौ नहिं जाइ।
ुरौ ताहि बुढ़ापौ आवै। इंद्री-सक्ति सकल मिटि जावै।
ान न सुनै, आँखि नहिं सूझै। बात कहँ सो कछु नहिं बूझै।
वेहू कौं जब नहिं पावै। तब बहु विधि मन'मैं पछितावै।
नि दुख पाइ-पाइ सो मरै। बिनु हरि-भक्ति नरक मैं परै।
रक जाइ पुनि बहु दुख पावै। पुनि-पुनि यौंहीं आवै-जावै।
ऊ नहीं हरि-सुमिरन करै। तातैं बार-बार दुख भरै।

क्त-महिमा

ाक्त सकामी हू जो होइ। क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ।
सनै-सनै विधि-लोकहिं जाइ। ब्रह्मा-सँग हरि-पदहि समाइ।
निष्कामी बैकुंठ सिधावै। जनम-मरन तिहि बहुरि न आवै।
त्रिविध भक्ति कहौं सुनि अब सोइ। जातैं हरि-पद प्रापति होइ।
एकै कर्म-जोग कौं करैं। बरन-आसरम धर्म बिस्तरैं।
अरु अधर्म कबहूँ नहिं करैं। ते नर याही विधि निस्तरैं।
एकै भक्ति-जोग कौं करैं। हरि-सुमिरन पूजा बिस्तरैं।
हरि-पद-पंकज प्रीति लगावैं। ते हरि-पद कौं या विधि पावैं।
एकै ज्ञान-जोग बिस्तरैं। ब्रह्म जानि सब सौं हित करैं।
ते हरि-पद कौं या विधि पावैं। क्रम-क्रम सब हरि-पदहिं समावैं।
कपिलदेव बहुरौ यौं कह्यौ। हमैं-तुम्हैं संवाद जु भयौ।
कलिजुग मैं यह सुनिहै जोइ। सो नर हरि-पद प्रापत होइ।
देवहूति सुज्ञान कौं पाइ। कपिलदेव सौं कह्यौ सिर नाइ।
आगैं मैं तुमकौं सुत मान्यौ। अब मैं तुमकौं ईश्वर जान्यौ।
तुम्हरी कृपा भयौ मोहिं ज्ञान। अब न ब्यापिहै मोहिं अज्ञान।
पुनि बन जाइ कियौ तन-त्याग। गहि कै हरि-पद सौं अनुराग।
कपिलदेव सांख्यहिं जो गायौ। सो राजा मैं तुम्हैं सुनायौ।
याहि समुझि जो रहै लव लाइ। सूर बसै सो हरिपुर जाइ ॥१३॥
॥३९४॥

तृतीय स्कंध समाप्त

चतुर्थ स्कंध

दत्तात्रेय-अवतार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि - चरनारबिंद उर धरौ।
सुक हरि-चरननि कौं सिर नाइ। राजा सो बोल्यौ या भाइ।
कहौं हरि-कथा, सुनौ चितलाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥३९५॥

राग बिभास

रुचि कैं अत्रि नाम सुत भयौ। ब्याहि अनुसुया सौं सो दयौ।
ताकैं भयौ दत्त अवतार। सूर कहत भागवतऽनुसार ॥२॥
॥३९६॥

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
कहौं अब दत्तात्रेय-अवतार। राजा, सुनौ ताहि चित धार।
अत्रि पुत्र-हित बहु तप कियौ। तासु नारिहूँ यह ब्रत लियौ।
तीनौं देव तहाँ मिलि आए। तिनसौं रिषि ये बचन सुनाए।
मैं तौ एक पुरुष कौं ध्यायौ। अरु एकहिं सौं चित्त लगायौ।
अपने आवन कौ कहौ कारन। तुम सकल जगत-उद्धारन।
कह्यौ तुम एक पुरुष जो ध्यायौ। ताकौ दरसन काहु न पायौ।
ताकी सक्ति पाइ हम करैं। प्रतिपालैं बहुरौ संहरैं।
हम तीनौं हैं जग-करतार। माँगि लेहु हमसौं बर सार।
कह्यौ, बिनय मेरी सुनि लीजै। पुत्र सुज्ञानवान मोहिं दीजै।
बिष्नु-अंस सौं दत्तऽवतरे। रुद्र - अंस दुर्वासा धरे।
ब्रह्मा - अंस चंद्रमा भयौ। अत्रिऽनुसूया कौं सुख दयौ।
यौं भयौ दत्तात्रेय अवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥३॥
॥३९७॥

यज्ञपुरुष-अवतार *राग बिलावल*

दच्छ के उपजीं पुत्री सात। तिन मैं सती नाम बिख्यात।

महादेव कौं सो तिन दई। पुनि सो दच्छ-जज्ञ मैं मुई।
तहँ कियौ जज्ञपुरुष अवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥४॥
॥३९८॥

हरि हरि,हरि ह र,सुमिरन करौ। हरि-चरनारविंद उर धरौ।
कहौं अब जज्ञपुरुष-अवतार। राजा, सुनौ ताहि चित धार।
सती दच्छ की पुत्री भई। दच्छ सो महादेव कौं दई।
ब्रह्मा, महादेव, रिषि सारे। इक दिन बैठे सभा मँझारे।
दच्छ प्रजापति हू तहँ आए। करि सनमान सबनि बैठाए।
काहूँ समाचार कछु पूछे। काहू सौं उनहूँ तब पूछे।
सिव की लागी हरि-पद तारी। तातैं नहिं उन आँखि उघारी।
महादेव बठे रहि गए। दच्छ देखि अतिसय दुख तए।
महादेव कौं भाषत साधु। मैं तौ देखौं बड़ौ असाधु।
जज्ञ-भाग याकौं नहिँ दीजै। मेरो कह्यौ मानि करि लीजै।
नंदी - हृदय भयौ सुनि ताप। दियौ ब्राह्मननि कौं तिन साप।
स्रुति पढ़ि कै तुम नहिं उद्धरिहौ। विद्या बेंचि जीविका करिहौ।
भृगु।तव कोप होइ यौं कह्यौ। सुनत साप रिस तैं तनु दह्यौ।
महादेव-हित जो तप करिहै। सोऊ भव-जल तैं नहिं तरिहै।
दच्छ प्रजापति जज्ञ रचायौ। महादेव कौं नाहिं बुलायौ।
सुर-गंधर्व जे नेवति बुलाए। ते सब बधुनि सहित तहँ आए।
सती सबनि कौं आवत देखि। सिव सौं बोली बचन बिसेषि।
चलियै दच्छ-गेह हम जाहिं। जद्यपि हमैं बुलायौ नाहिं।
मोकौं तौ यह अचरज आयौ। उन हमकौं कैसैं बिसरायौ।
गुरु-पितु-गृह बिनु बोलेहु जैऐ। है यह नीति नाहिं सकुचैऐ।
सिव कह्यौ,तुम भली नीति सुनाई। पै वह मानत है सत्राई।
उहाँ गए जो होइ अपमान। तौ यह भली बात नहिं जान।
दुर्जन-बचन सुनत दुख जैसौ। बान लगैं दुख होइ न तैसौ।
मम सत्राई हिरदैं आन। करिहै वह तेरौ अपमान।
भएँ अपमान उहाँ तू मरिहै। जौ मम बचन हृदय नहिं धरिहै।
सती कह्यौ, मम भगिनी सात। सबै बुलाई ह्वैहैं तात।
मोहूँ कौं प्रभु, आज्ञा दीजै। महाराज, अब बिलँब न कीजै।
बारंबार सती जब कह्यौ। तब सिव अंतर्गत यौं लह्यौ।

सती सदा मम आज्ञाकारी। कहति जो या विधि वारंवारी।
दीखति है कछु होवनहारी। सो काहू पै जाइ न टारी।
गननि समेत सती तहँ गई। तासौं दच्छ वात नहिं कही।
सती जानि अपनौ अपमान। सिव कौ वचन कियौ परमान।
कह्यौ, उहाँ अब गयौ न जाइ। वैठि गई सिर नीचैं नाइ।
सिव-आहुति-बेरा जब आई। विप्रनि दच्छहिं पूछ्यौ जाई।
सिव-निंदा करि तिनसौं भाष्यौ। मैं तौ पहिलैं ही कहि राख्यौ।
मेरौ वचन मानि करि लेहु। सिव-निमित्त आहुति जनि देहु।
तब करि क्रोध सती तिहिं कही। तैं सिव की महिमा नहिं लही।
महादेव ईस्वर भगवान। सत्रु-मित्र उन एक समान।
तैं अज्ञान करी सत्राई। उनकी महिमा तैं नहिं पाई।
पिता जानि तोकौं नहिं मारौं। अपनौ ही मैं प्रान सँहारौं।
जोग धारना करि तनु त्याग्यौ। सिव-पद-कमल हृदय अनुराग्यौ।
बहुरि हिमाचल कैं अवतरी। समय पाइ सिव बहुरो वरी।
इहाँ सिव-गननि उपद्रव कियौ। तब भृगु रिषि उपाइ यह ठयौ।
आहुति जज्ञकुंड मैं डारी। कह्यौ, पुरुष उपजैं वल भारी।
पुरुष कुंड तैं प्रगट जो भए। भृगु कैं निकट सवै चलि गए।
भृगु कह्यौ, करत जज्ञ ये नास। इनकौं ह्याँतैं देहु निकास।
सिव के गन तिन वहुतै मारे। ते गन सिव पै जाइ पुकारे।
सिव है क्रोध इक जटा उपारी। बीरभद्र उपज्यौ बलभारी।
बीरभद्र कौं तहाँ पठायौ। तासौं इहिं बिधि कहि समुझायौ।
दछ-सिर काटि कुंड मैं डारि। आवौ वेगि न लावौ वार।
बीरभद्र तव दच्छहिं मार्‌यौ। अरु भृगु रिषि कौ केस उपार्‌यौ।
हाथ-पाइँ बहुतनि के काट। आइ नवायौ सिवहिं ललाट।
तब सुर रिषि ब्रह्मा पैं आइ। दियौ सकल वृत्तांत सुनाइ।
कह्यौ ब्रह्मा सिव-निंदा जहाँ। बुरौ कियौ तुम वैठे तहाँ।
ब्रह्मा तिन लै सिव पहँ आए। सिव प्रनाम करि ढिग बैठाए।
सिव कौं सबनि कियौ सनमान। भोलानाथ लियौ सो मान।
ब्रह्मा सिव कौं बचन सुनायौ। दच्छ तुम्हारौ मरम न पायौ।
जैसौ कियौ सो तैसौ पायौ। अब उहिं चहियै फेरि जिवायौ।
सिव कह्यौ, मेरैं नहिं सत्राई। सती मुऐं यह मन मैं आई।
अब जो तुम्हरी आज्ञा होइ। छाँड़ि विलंब करौं मैं सोइ।

ब्रह्मा, विष्नु, रुद्र तहँ आए। भृगु रिषि केस आपने पाए।
घायल सबै नीक ह्वै गए। सुर-रिषि सबके भाए भए।
दच्छ-सीस जो कुंड मैं जर्‌यौ। ताके बदलैं अज-सिर धर्‌यौ।
महादेव तिहिं फेरि जिवायौ। दच्छ जानि यह सीस नवायौ।
बिप्रनि जज्ञ बहुरि बिस्तार्‌यौ। बेद भली बिधि सौं उच्चार्‌यौ।
जज्ञपुरुष प्रसन्न तब भए। निकसि कुंड तैं दरसन दए।
सुंदर स्याम चतुर्भुज रूप। ग्रीवा कौस्तुभ-माल अनूप।
उठि कै सबहिन माथ नवायौ। दच्छ बहुरि यौं बिनय सुनायौ।
मैं अपमान रुद्र कौ कियौ। तब मम जज्ञ सांग नहिं भयौ।
अब मोहिं कृपा कीजियै सोइ। फिरि ऐसी दुरबुद्धि न होइ।
बहुरौ भृगु रिषि अस्तुति कीनी। महाराज मम बुधि भई हीनी।
दियौ क्रोध करि सिवहिं सराप। करौ कृपा जो मिटै यह दाप।
पुनि सिव ब्रह्मा अस्तुति करी। जज्ञ पुरुष बानी उच्चरी।
दच्छ कियौ सिव कौ अपमान। तातैं भई जज्ञ की हान।
बिष्नु, रुद्र, बिधि, एकहिं रूप। इन्हैं जानि मति भिन्न स्वरूप।
जातैं ये परगट भए आइ। ताकौं तू मन मैं निज ध्याइ।
यौं कहि पुनि बैकुंठ सिधारे। बिधि, हरि, महादेव, सुर सारे।
या बिधि जज्ञपुरुष अवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥५॥
॥३९९॥

यज्ञपुरुष-अवतार (संक्षिप्त) *राग मारू*

जज्ञ प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।
बिष्नु-बिधि-रुद्र मम रूप ये तीनिहूँ, दच्छ सौं बचन यह कहि सुनायौ।
दच्छ रिस मानि जब जज्ञ आरंभ कियौ, सबनि कौं सहित पत्नी हँकार्‌यौ।
रुद्र-अपमान कियौ, सती तब जीव दियौ, रुद्र के गननि ताकौं सँहार्‌यौ।
बहुरि बिधि जाइ, छमवाइ कै रुद्र कौं, बिष्नु, बिधि, रुद्र तहँ तुरत आए।
जज्ञ आरंभ मिलि रिषिनि बहुरौ कियौ, सीस अज राखि कै दच्छ ज्याए।
कुंड तैं प्रगटि जग-पुरुष दरसन दियौ, स्याम सुंदर चतुरभुज मुरारी।
सूर प्रभु निरखि दंडवत सबहिनि कियौ, सुर-रिषिनि सबनि अस्तुति उचारी ॥६॥
॥४००॥

पार्वती-विवाह

राग बिलावल

सती हियैं धरि सिव कौ ध्यान। दच्छ-जज्ञ मैं छाँड़े प्रान।
बहुरि हिमाचल कैं सुभ घरी। पारवती ह्वै सो अवतरी।
पारवती बय-प्रापत भई। तवहिं हिमाचल तासौं कही।
तेरौ कासौं कीजै ब्याह? तिन कह्यौ,मेरौ पति सिव आह।
कह्यौ हिमाचल, सिव प्रभु ईस। हमसौं-उनसौं कैसी रीस?
पारवती सिव-हित तप कर्‌यौ। तब सिव आइ तहाँ, तिहिं बर्‌यौ।
पारवती-बिवाह ब्यवहार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार॥ ७॥
॥४०१॥

ध्रुव-कथा

राग बिलावल

स्वायंभू मनु के सुत दोइ। तिनकी कथा कहौं, सुनि सोइ।
उत्तानपाद एक कौ नाम। द्वितिय प्रियब्रत अति अभिराम।
ध्रुव उत्तानपाद-सुत भयौ। हरि जू ताकौं दरसन दयौ।
बहुरि दियौ ताकौं अस्थान। देहिं प्रदच्छिन जहँ ससि-भान।
कहौं सो कथा, सुनौ चित धारि। सूर कह्यौ भागवतऽनुसारि॥८॥
॥४०२॥

राग बिलावल

हरि हरि,हरि हरि,सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
अब कहौं ध्रुव बर देनऽवतार। राजा सुनौ ताहि चित धार।
उतानपाद पृथ्वीपति भयौ। ताकौ जस तीनौं पुर छयौ।
नाम सुनीति बड़ी तिहिं दार। सुरुचि दूसरी ताकी नार।
भयौ सुरुचि तैं उत्तम कार। अरु सुनीति कैं ध्रुव सुकुमार।
राजा हियैं सुरुचि सौं नेह। बसै सुनीति दूसरैं गेह।
इक दिन नृपति सुरुचि-गृह आयौ। उत्तम कुँवर गोद बैठायौ।
ध्रुव खेलत-खेलत तहँ आए। गोद बैठिबे कौं पुनि धाए।
राजा तिय-डर गोद न लयौ। ध्रुव सुकुमार रोइ तब दयौ।
तवहिं सुरुचि ध्रुव कौं समुझायौ। तैं गोबिंद-चरन नहिं ध्यायौ।
जो हरि कौ सुमिरन तू करतौ। मेरैं गर्भ आनि अवतरतौ।
राजा तोकौं लेतौ गोद। तवहिं गोद मैं करतौ मोद।
अजहूँ तू हरि-पद चित लाइ। होहिं प्रसन्न तोहिं जदुराइ।

सुरुचि के बचन बान सम लागे। ध्रुव आए माता पै भागे।
माता ताकौं रोवत देखि। दुख पायौ मन माहिँ बिसेषि।
कह्यौ पुत्र, तोकौं किन मार्‍यौ ? ध्रुव अति दुःखित बचन उचार्‍यौ।
माता ताकौं कंठ लगायौ। तब ध्रुव सब बृत्तांत सुनायौ।
कह्यौ सुत, सुरुचि सत्य यह कह्यौ। बिनु हरि-भक्ति पुत्र मम भयौ।
अजहूँ जौ हरिपद चित लैहौ। सकल मनोरथ मन के पैहौ।
जिन-जिन हरि चरननि चित लायौ। तिन-तिन सकल मनोरथ पायौ।
प्रपिता तव ब्रह्मा तप कियौ। हरि प्रसन्न ह्वै तिहिँ बर दियौ।
तिन कीन्ह्यौ सब जग बिस्तार। जाकौ नाहीं पारावार।
बहुरि स्वयंभू मनु तप कीन्हौ। ताहू कौं हरि जू बर दीन्हौ।
ताकैं भयौ बहुत परिवार। नर, पसु, कीट, गनत नहिं पार।
तैं हूँ जो हरि-हित तप करिहै। सकल मनोरथ तेरौ पुरिहै।
ध्रुव यह सुनि बन कौं उठि चले। पंथ माहिँ तिन नारद मिले।
देख्यौ पाँच बरष कौ बाल। सुरुचि बचन नहिं सक्यौ सँभार।
अब मैं हूँ याकौ दृढ़ देखौं। लखि बिस्वास, बहुरि उपदेसौं।
ध्रुव सौं कह्यौ क्रोध परिहरौ। मैं जो कहौं सो चित मैं धरौ।
मेरैं सँग राजा पै आउ। द्याऊँ तोहिं राज-धन-गाउँ।
भक्ति-भाव की जो तोहिं चाह। तोसौं नहिं ह्वै है निर्बाह।
बहुतक तपसी पचि-पचि मुए। पै तिन हरि-दरसन नहिँ हुए।
मैं हरि-भक्त, नाम मम नारद। मोसौं कहि तू अपनौ हारद।
राजा पास कहौं जौ जाइ। लैहै मानि नृपति सत-भाइ।
ध्रुव बिचार तब मन मैं कियौ। सुमिरत नारद दरसन दियौ।
जब मैं भक्ति स्याम की कैहौं। जानत नहीं कहा मैं पैहौं।
कह्यौ नारद सौं, करौ सहाइ। करौं भक्ति हरि की चित लाइ।
तुम नारायन-भक्त कहावत। केहिँ कारन हमकौं भरमावत ?
तब नारद ध्रुव कौं दृढ़ देखि। कह्यौ, देउँ मैं ज्ञान बिसेषि।
मथुरा जाइ सु सुमिरन करौ। हरि कौ ध्यान हृदय मैं धरौ।
द्वादस अच्छर मंत्र सुनायौ। और चतुर्भुज रूप बतायौ।
मथुरा जाइ सोइ उन कियौ। तब नारायन दरसन दियौ।
ध्रुव अस्तुति कीन्ही बहु भाइ। तब हरिजू बोले मुसुकाई।
ध्रुव, जो तेरी इच्छा होइ। माँगि लेहि अब मोपैं सोइ।
प्रभु, मैं तुम्हरौ दरसन लह्यौ। माँगन कौं पाछैं कहा रह्यौ ?

हरि कह्यौ, राज-हेत तप कियौ। ध्रुव, प्रसन्न ह्वै मैं तोहिं दियौ।
अरु तेरैं हित कियौ अस्थान। देहि प्रदच्छिन जहँ ससि-भान।
ग्रह-नछत्रहू सबही फिरैं। तू भयौ अटल, न कबहूँ टरै।
अरु पुनि महा-प्रलय जब होइ। मुक्ति स्थान पाइहै सोइ।
यहं कहि हरि निज लोक सिधारे। ध्रुव निज पुर कौं पुनि पग धारे।
जब ध्रुव पुर कैं बाहर आयौ। लोगनि नृप कौं जाइ सुनायौ।
उनके कहैं न मन मैं आई। तब नारद कह्यौ नृप सौं जाई।
ध्रुव आयौ हरि सौं बर पाइ। राजा, जाइ ताहिं मिलि धाइ।
नृप सुनि मन आनंद बढ़ायौ। अंतःपुर मैं जाइ सुनायौ।
पुनि नृप कुटुँब सहित तहँ आए। नगर-लोग सब सुनि उठि धाए।
ध्रुव राजा के चरननि पर्यौ। राजा कंठ लाइ हित कर्यौ।
पुनि सो सुरुचि कैं चरननि पर्यौ। तासौं वचन मधुर उच्चर्यौ।
तव उपदेस मैं हरि कौं ध्यायौ। यह उपकार न जात मिटायौ।
पुनि माता के पायनि पर्यौ। माता ध्रुव कौं अंकम भर्यौ।
ध्रुव निज सिंहासन बैठाए। नृप तप-कारन बनहिं सिधाए।
सातौ द्वीप राज ध्रुव कियौ। सीतल भयौ मातु कौ हियौ।
यौं भयौ ध्रुव-बर-देनऽवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥ ९ ॥
॥४०३॥

संक्षिप्त ध्रुव-कथा *राग आसावरी*

ध्रुव बिमाता-बचन सुनि रिसायौ।
दीन के दयाल गोपाल, करुनामयी मातु सौं सुनि, तुरत सरन आयौ।
बहुरि जब बन चल्यौ, पंथ नारद मिल्यौ, कृष्न-निज-धाम मथुरा बतायौ।
मुकुट सिर धरैं, बनमाल कौस्तुभ गरैं, चतुर्भुज स्याम सुंदरहिं ध्यायौ।
भए अनुकूल हरि, दियौ तिहिं तुरत बर, जगत करि राजपद अटल पायौ।
सूर के प्रभु की सरन आयौ जो नर, करि जगत-भोग बैकुंठ सिधायौ ॥ १० ॥
॥४०४॥

पृथु-अवतार *राग बिलावल*

धारि पृथु-रूप हरि राज कीन्हौ।
बिष्नु की भक्ति परवर्त जग मैं करी, प्रजा कौं सुख सकल भाँति दीन्हौ।
बेनु नृप भयौ बलवंत जब पृथीपर, रिषिनि सौं कह्यौ जप-तप निवारौ ॥

मोहिं विधि, विष्नु, सिव, इंद्र, रवि-ससि गनौ, नाम मम लेइ आहुतिनि डारौ।
जज्ञ मैं करत तब मेघ बरसत मही, बीज अंकुर तबै जमत सारौ।
होइ तिन क्रोध तब साप ताकौं दयौ, मारिकै ताहि जग-दुःख टारौ।
भयौ अराज जब,रिपिनि तब मंत्र करि,बेनु की जाँघ कौ मथन कीन्हौ।
जाँघ के मथे तैं पुरुप परगट भयौ,स्याम तिहिं भील कौ राज दीन्हौ।
बहुरि जब रिपिनि भुज दच्छिन कीन्ही मथन, लच्छमी सहित पृथु दरस दीन्हौ।
पहिरि सब आभरन, राज्य लागे करन,आनि सब प्रजा दंडवत कीन्हौ।
बहुरि बंदीजननि आइ अस्तुति करी,इंद्र अरु बरुन तुम तुल्य नाहीं।
कह्यौ नृप,बिनु पराक्रम न अस्तुति करौ,बिना किये मूढ़ सो हर्षि जाहीं।
करौ भगवान कौ जस गुनीजन सदा, जो जगत-सिंधु तैं पार तारै।
कियैं नर की स्तुती कौन कारज सरै, करै सो आपनौ जन्म हारै।
कह्यौ तिन,तिन्हैं हम मनुय जानत नहीं,जगतपति जगतहित देह धार्‌यौ।
करौगे काज जो कियौ न काहू नृपति, कियैं जस जाइ हम दुःख सारौ।
बहुरि सब प्रजा मिलि आइ नृप सौं कह्यौ, बिना आजीविका मरत सारी।
नृप धनुष-बान धरि पृथी पर कोप कियौ,तिन गऊ रूप बिनती उचारी।
बेनु के राज मैं औषधी गिलि गईं, होइहैं सकल किरपा तुम्हारी।
पर्वतनि जहाँ तहँ रोकि मोकौं लियौ, देहु करि कृपा इक दिसा टारी।
धनुप सौं टारि पर्वत किए एक दिसि, पृथी सम करि, प्रजा सब बसाई।
सुर-रिपिनि नृपति पुनि पृथी दोहन करी,आपनी जीविका सबनि पाई।
बहुरि नृप जज्ञ निन्यानवे करि, सतम जज्ञ कौं जबहिं आरंभ कीन्हौ।
इंद्र भय मानि,हय-गहन सुत सौं कह्यौ,सो न लै सक्यौ,तब आप लीन्हौ।
नृपति सुत सौं कह्यौ, जाइ हय ल्याइ अब, इंद्र तिहिं देखि हय छाँड़ि दीन्हौ।
नृप कह्यौ सुरनि के हेतु मैं जज्ञ कियौं,इंद्र मम अस्व किहिं काज लीन्हौ?
रिपिनि कह्यौ,तुव सतम जज्ञ आरंभ लखि,इंद्र कौ राज-हित कँप्यौ हीयौ।
नृप कह्यौ, इंद्रपुर की न इच्छा हमैं, रिषिनि तब पूरनाहुती दीयौ।
पुरुप कह्यौ, कुंड तैं निकसि पूरन भयौ, इंद्र जिमि बर कछू माँगि लीजै।
पृथु कह्यौ, नाथ, मेरैं न कछु सत्रुता, अरु न कछु कामना, भक्ति दीजै।
जग-पुरुष गए बैकुंठ धामहिं जबै, न्यौति नृप प्रजा कौं तब हँकारौ।
तिन्है संतोपि कह्यौ, देहु माँगै हमैं, बिष्नु की भक्ति सब चित्त धारौ।

सुनत यह बात सनकादि आए तहाँ, मान दै कह्यौ, मोहिं ज्ञान दीजै।
कह्यौ, यह ज्ञान, यह ध्यान सुमिरन यहै, निरखि हरि रूप मुख नाम लीजै।
पुनि कह्यौ, देहु आसीस मम प्रजा कौं, सबै हरि-भक्ति निज चित्त धारैं।
कृपा तुम करी, मैं भेंट कौं मन धरी, नहीं कछु वस्तु ऐसी हमारैं।
बहुरि सनकादि गए आपुने धाम कौं, नृपति, सब लोग, हरि-भक्ति लाए।
सूर प्रभु-चरित अगनित, न गनि जाहिं, कछु जथामति आपनी कहि सुनाए ॥११॥
॥४०५॥

पुरंजन-कथा *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
कथा पुरंजन की अब कहौं। तेरे सब संदेहनि दहौं।
प्राचीनबर्हि भूप इक भए। आयु प्रजंत जज्ञ तिन ठए।
ताकैं मन उपजी तब ग्लानि। मैं कीन्ही बहु जिय की हानि।
यह मम दोष कौन विधि टरै। ऐसी भाँति सोच मन करै।
इहिं अंतर नारद तहँ आए। नृप सौं यौं कहि बचन सुनाए।
मैं अबहीं सुरपुर तैं आयौ। मग मैं अद्‌भुत चरित लखायौ।
जज्ञ माहिं तुम पसु जे मारे। ते सब ठाढ़े सस्त्रनि धारे।
जोहत हैं वे पंथ तिहारौ। अब तुम अपनौ आप सँभारौ।
नृप कह्यौ, मैं ऐसोई कियौ। जज्ञ-काज मैं तिनि दुख दियौ।
रसनाहू कौ कारज सार्‍यौ। मैं यौं अपनौ काज बिगार्‍यौ।
अब मैं यहै बिनै उच्चरौं। जो कछु आज्ञा होइ सो करौं।
कह्यौ, कहौं इक नृप की कथा। उन जो कियौ, करौ तुम तथा।
ताहि सुनौ तुम भलैं प्रकार। पुनि मन मैं देखौ जु बिचार।
ता नृप कौ परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र।
खान-पान सो सब पहुँचावै। पै नृप तासौं हित न लगावै।
नृप चौरासी लछ फिरि आयौ। तब इहिं पुर मानुष तन पायौ।
पुर कौं देखि परम सुख लह्यौ। रानी सौं मिलाप तहँ भयौ।
तिन पूछ्यौ, तू काकी धी है? उन कह्यौ नहिं सुमिरन मम ही है।
पुनि कह्यौ नाम कहा है तेरौ? कह्यौ, न आव नाम मोहिं मेरौ।
तन पुर, जीव पुरंजन राव। कुमति तासु रानी कौ नाँव।
आँखि, नाक, मुख, मूल दुवार। मूत्र, स्रौन, नव पुर कौ द्वार।

लिंग-देह नृप कौ निज गेह। दस इंद्रिय दासी सौं नेह।
कारन तन सो सैन-अस्थान। तहाँ अविद्या नारि प्रधान।
कामादिक पाँचौ प्रतिहार। रहैं सदा ठाढ़े दरबार।
संतोषादि न आवन पावैं। बिषय भोग हिरदै हरषावैं।
जा द्वारे पर इच्छा होइ। रानी सहित जाइ नृप सोइ।
तहाँ-तहाँ कौ कौतुक देखि। मन मैं पावै हर्ष बिसेषि।
इंद्री दासी सेवा करैं। तृप्ति न होइ, बहुरि बिस्तरैं।
इन इंद्रिनि कौ यहै सुभाइ। तृप्ति न होइ कितौ हूँ खाइ।
निद्रा बस जो कबहूँ सोवै। मिलि सो अबिद्या सुधि-बुधि खोवै।
उनमत ज्यौं सुख-दुख नहिं जानै। जागैं वहै रीति पुनि ठानै।
संत दरस कबहूँ जौ होइ। जग-सुख मिथ्या जानै सोइ।
पै कुबुद्धि ठहरान न देइ। राजा कौं अंकम भरि लेइ।
राजा पुनि तब क्रीड़ा करै। छिन भरहू अंतर नहिं धरै।
जब अखेट पर इच्छा होइ। तब रथ साजि चलै पुनि सोइ।
जा बन की नृप इच्छा करै। ताही द्वार होइ निस्सरै।
चच्छुवादिक इंद्री दर जानौ। रूपादिक सब बन सम मानौ।
मन मंत्री सो रथ हँकवैया। रथ तन, पुन्य-पाप दोउ पैया।
अस्व पाँच ज्ञानेंद्रिय पाँच। बिषय अखेटक नृप-मन राँच।
राजा मंत्री सौं हित मानै। ताकैं दुख-दुख, सुख-सुख जानै।
नरपति ब्रह्म-अंस, सुख रूप। मन मिलि पर्‍यौ दुःख कैं कूप।
ज्ञानी संगति उपजै ज्ञान। अज्ञानी सँग होइ अज्ञान।
मंत्री कहैं अखेट सो करै। बिषय-भोग जीवन संहरै।
निसि भए रानी पै फिरि आवै। सोवति सो तिहिं बात सुनावै।
आजु कहा उद्यम करि आए। कहै बृथा भ्रमि-भ्रमि स्रम पाए।
काल्हि जाइ अस उद्यम करौं। तेरे सब भंडारनि भरौं।
सब निसि याही भाँति बिहाइ। दिन भए बहुरि अखेटक जाइ।
तहाँ जीव नाना संहरै। बिषय-भोग तिनके हित करै।
बिषय-भोग कबहूँ न अघाइ। यौंहीं नित-प्रति आवै जाइ।
इक दिन नृप निज मंदिर आयौ। रानी सौं अह-निसि मन लायौ।
ताकें पुत्र-सुता बहु भए। बिषय-बासना नाना रए।
कान लागि केसनि कह्यौ जाई। जरा काल-कन्या पुर आई।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "राजा, देखि, कहा धौं होइ।"

नगर-द्वार तिन सबै गिराए। लोगनि नृप कौं आनि सुनाए।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "राजा, देखि, कहा धौं होइ।"
कान न सुनै आँखि नहिं सूझै। कहै और औरै कछु बूझै।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति कहा धौं होइ।"
तृष्ना करि कियौ चाहै भोग। भोग न होइ, होइ तन रोग।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति, कहा धौं होइ।"
देह सिथिल भई, उठ्यौ न जाइ। मानौ दीन्यौ कोट गिराइ।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति, कहा धौं होइ।"
पुनि जुरि दौ दीनी पुर लाइ। जरन लगे पुर-लोग-लुगाइ।
"कह्यौ, प्रिया अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति, काह धौं होइ।"
मरन अवस्था कौं नृप जानै। तौ हू धरै न मन मैं ज्ञानै।
मम कुटुंब की कहा गति होइ। पुनि-पुनि मूरख सोचै सोइ।
काल तहाँ तिहिं पकरि निकार्‍यौ। सखा प्रानपति तउ न सँभार्‍यौ।
रानी ही मैं मन रहि गयौ। मरि विदर्भ की कन्या भयौ।
बहुरौ तिन सत-संगति पाई। कहौं सो कथा, सुनौ चित लाई।
मेघध्वज सौं भयौ बिवाह। विष्नु-भक्ति कौ तिहिं उत्साह।
ता संगति नव सुत तिन आए। स्रवनादिक मिलि हरि-गुन गाए।
इहिं बिधि तिन निज आयु बिताई। पूर्व-पाप सब गए बिलाई।
मरन-अवस्था जब नियराई। ईस सखा कैं मन यह आई।
बहुत जन्म इहिं बहु भ्रम कीन्ह्यौ। पै इन मोकौं कबहुँ न चीन्ह्यौ।
तब दयालु ह्वै दरसन दीन्ह्यौ। कह्यौ, मूढ़ तैं मोहिं न चीन्ह्यौ।
बिषय-भोग ही मैं पगि रह्यौ। जान्यौ मोहिं और कहुँ गयौ।
मैं तौ निकट सदाही रहौं। तेरे सकल दुखनि कौं दहौं।
यह सुनि कै तिहिं उपज्यौ ज्ञान। पायौ पुनि तिहिं पद-निर्वान।
यह कहि नारद नृप सौं कही। तेरी हू तैसी गति भई।
मैं जो कह्यौ सो देखि बिचार। बिन हरि-भजन नाहिं निस्तार।
हरि की कृपा मनुष-तन पावै। मूरख विषय-हेतु सो गँवावै।
तिन अंगनि कौ सुनौ बिवेक। खरचै लाख, मिलै नहिं एक।
नैन दरस देखन कौं दिए। मूढ़ देखि परनारी जिए।
स्रवन कथा सुनिबे कौं दीन्हे। मूरख पर-निंदा-हित कीन्हे।
हाथ दए हरि-पूजा हेत। तिहिं कर मूरख पर-धन लेत।
पग दिए तीरथ जैबे काज। तिन सौं चलि नित करै अकाज।

रसना हरि-सुमिरन कौं करी। तासौं पर-निंदा उच्चरी।
यह सुनि नृप कीन्हौ अनुमान। मैं सोइ नृपति न दूसर आन।
नारद जू तुम कियौ उपकार। बूड़त मोहिं उतार्यौ पार।
नृपति पाइ यह आतम-ज्ञान। राज छाँड़ि कै गयौ उद्यान।
यह लीला जो सुनै-सुनावै। सो हरि-कृपा ज्ञान कौं पावै।
सुक ज्यौं राजा कौं समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ ॥१२॥
॥४०६॥

राग बिलावल

अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ।
सब्दहि सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ।
ज्यौं कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ।
फिरि चितयौ जब चेतन ह्वै करि, अपनैं ही तन छायौ।
राज-कुमारि कंठ-मनि-भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ।
दियौ बताइ और सखियनि तब, तनु कौ ताप नसायौ।
सपने माहिं नारि कौं भ्रम भयौ, बालक कहूँ हिरायौ।
जागि लख्यौ, ज्यौं कौ त्यौं ही है, ना कहुँ गयौ न आयौ।
सूरदास समुझे कौं यह गति, मनहीं मन मुसुकायौ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौं गूँगैं गुर खायौ ॥१३॥
॥४०७॥

॥ चतुर्थ स्कंध समाप्त ॥

पंचम स्कंध

राग बिलावल

हरि-हरि, हरि-हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-चरननि सुकदेव सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥४०८॥

ऋषभदेव-अवतार *राग बिलावल*

ज्यौं भयौ रिषभदेव-अवतार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार।
सुक बरन्यौ जैसैं परकार। सूर कहै ताही अनुसार।
ब्रह्मा स्वायंभुव मनु जायौ। तातैं जन्म प्रियव्रत पायौ।
प्रियव्रत कैं अग्नीध्र सु भयौ। नाभि जन्म ताही तैं लयौ।
नाभि नृपति सुत-हित जग कियौ। जज्ञ-पुरुष तब दरसन दियौ।
विप्रनि अस्तुति विविध सुनाई। पुनि कह्यौ सुनियै त्रिभुवनराई।
तुम सम पुत्र नाभि कैं होइ। कह्यौ, मो सम जग और न कोइ।
मैं हरता - करता - संसार। मैं लैहौं नृप-गृह अवतार।
रिषभदेव तब जनमे आइ। राजा कै गृह बजी बधाइ।
बहुरौ रिषभ बड़े जब भए। नाभि राज दै बन कौं गए।
रिषभ-राज परजा सुख पायौ। जस ताकौ सब जग मैं छायौ।
इंद्र देखि, इरषा मन लायौ। करि कै क्रोध न जल बरसायौ।
रिषभदेव तबहीं यह जानी। कह्यौ, इंद्र यह कहा मन आनी?
निज बल जोग नीर बरसायौ। प्रजा लोग अतिहीं सुख पायौ।
रिषभ राज सब मन उतसाह। कियौ जयंती सौं पुनि ब्याह।
तासौं सुत निन्यानबै भए। भरतादिक सब हरि-रँग रए।
तिनमैं नव नव-खँड-अधिकारी। नव जोगेस्वर ब्रह्म-बिचारी।
असी-इक कर्म बिप्र कौ लियौ। रिषभ ज्ञान सबही कौं दियौ।
दृस्यमान बिनास सब होइ। साच्छी ब्यापक, नसै न सोइ।
ताही सौं तुम चित्त लगावहु। ताकौं सेइ परम गति पावहु।
ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान। अज्ञानी - सँग बढ़ै अज्ञान।

तातैं संत-संग नित करना। संत-संग सेवौ हरि-चरना।
बहुरौ भरतहिं दै करि राज। रिषभ ममत्व देह कौ त्याज।
उनमत की ज्यौं विचरन लागे। असन-वसन की सुरतिहिं त्यागे।
कोउ खवावै तौ कछु खाहिं। नातरु बैठेही रहि जाहिं।
मूत्र-पुरीष अंग लपटावै। गंध वास दस जोजन छावै।
अष्ट-सिद्धि बहुरौ तहँ आईं। रिषभदेव ते मुँह न लगाईं।
राजा रहत हुतौ तहँ एक। भयौ स्रावगी रिषभहिं देखि।
वेद धर्म तजि कै न अन्हावै। प्रजा सकल कौं यहै सिखावै।
अजहूँ स्रावग ऐसोहि करैं। ताही कौ मारग अनुसरैं।
अंतर क्रिया रहति नहिं जानैं। बाहर क्रिया देखि मन मानैं।
बरन्यौ रिषभदेव-अवतार। सूरदास भागवतऽनुसार ॥२॥
॥४०६॥

जड़भरत-कथा राग बिलावल

हरि-हरि, हरि-हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारविंद उर धरौ।
रिषभदेव जब बन कौं गए। नव सुत नवौ-खंड-नृप भए।
भरत सो भरत-खंड कौ राव। करै सदाही धर्मऽरु न्याव।
पालै प्रजा सुतनि की नाईं। पुरजन बसैं सदा सुख पाईं।
भरतहु दै पुत्रनि कौं राज। गए बन कौं तजि राज-समाज।
तहाँ करी नृप हरि की सेव। भए प्रसन्न देवनि के देव।
एक दिवस गंडकि-तट जाइ। करन लगे सुमिरन चित लाइ।
गर्भवती हिरनी तहँ आई। पानी सो पीवन नहिं पाई।
सुनि कै सिंह भयान अवाज। मारि फलाँग चली सो भाज।
कूदत ताकौ तन छुटि गयौ। ताके छौना सुंदर भयौ।
भरत दया ता ऊपर आई। ल्याए आस्रम ताहि लिवाई।
पोषैं ताहि पुत्र की नाईं। खाहिं आप तब, ताहि खवाईं।
सोवैं तब जब वाहि सुवावैं। तासौं क्रीड़त बहु सुख पावैं।
सुमिरन भजन बिसरि सब गयौ। इक दिन मृगछौना कहुँ गयौ।
भरत मोह-बस ताकैं भयौ। सब दिन बिरह-अगिनि अति तयौ।
संध्या समय निकट नहिं आयौ। ताके ढूँढ़न कौं उठि धायौ।
पग कौ चिन्ह पृथी पर देख। कह्यौ, पृथी धनि जहँ पग-रेख।
बहुरौ देख्यौ ससि की ओर। तामैं देखि स्यामता-कोर।

कहन लग्यौ, मम सुत ससि-गोद। ता सेती ससि करत विनोद।
ढूँढ़त-ढूँढ़त बहु स्रम पायौ। पै मृगछौना नहिं दरसायौ।
मृग कौ ध्यान हृदय रहि गयौ। मरन देह तजि कै मृग भयौ।
पूरब जनम ताहि सुधि रही। आप-आप सौं तब यौं कही।
मैं मृगछौना मैं चित दयौ। तातैं मैं मृगछौना भयौ।
अब काहू सौं संग न करौं। हरि-चरनारबिंद उर धरौं।
संग मृगनिहू कौ नहिं करै। हरी घासहू सो नहिं चरै।
सूखे पात और तृन खाइ। या विधि डार्‌यौ जनम बिताइ।
मृग-तन तजि, ब्राह्मन-तन पायौ। पूर्ब-जन्म-सुमिरन तहँ आयौ।
मन मैं यहै बात ठहराई। होइ असंग भजौं जदुराई।
पिता पढ़ावै सो नहिं पढ़ै। मन मैं राम-नाम नित रढ़ै।
पिता सो तासु काल-बस भयौ। भ्रातनि हूँ स्रम बहु विधि ठयौ।
पै सो हरि-हरि सुमिरत रहै। और कछू विद्या नहिं गहै।
जड़-स्वरूप सौं जहँ-तहँ फिरै। असन-बसन की सुधि नहिं धरै।
जैसौ देहिं सो तैसो खाइ। नाहिं तौ भूखौ ही रहि जाइ।
कृषि-रच्छक भाइनि तब कीन्हौ। उन तहँ हरि-चरननि-चित दीन्हौ।
तहँहीं अन्न देहिं पहुँचाइ। जौ न देहिं भूखौ रहि जाइ।
भील-राव निज लोगनि कह्यौ। मैं काली सौं यह प्रन गह्यौ।
तुव प्रसाद मम गृह सुत होइ। नर बलि देहुँ, भयौ वर सोइ।
तुम काहू धन दै लै आवहु। मेरे मन की आस पुजावहु।
ते खोजत-खोजत तहँ आए। जहँ जड़भरत कृषी मैं छाए।
देख्यौ भरत तरुन अति सुंदर। थूल सरीर, रहित सब दुंदर।
निज नृप पास बाँधि लै आए। नृप तिहिं देखि बहुत सुख पाए।
विप्रनि कह्यौ याहिं अन्हवावहु। याकैं अंग सुगंध लगावहु।
देवी-मंदिर तिहिं लै गए। खड्ग राव के कर मैं दए।
जब राजा तिहिं मारन लग्यौ। देवी काली-मन डगडग्यौ।
हरि-जन मारैं हत्या होइ। ज्यौं नहिं मरै करौं अब सोइ।
देवी निकसि राव कौं मार्‌यौ। भरत-साथ यह वचन उचार्‌यौ।
जानैं बिना चूक यह भई। मैं उनसौं ऐसी नहिं कही।
विप्रनि बेद-धर्म नहिं जान्यौ। तातैं उन ऐसौ बलि ठान्यौ।
यह सुनि ह्वाँ तैं भरत सिधायौ। राजा सौं सुक कहि समुझायौ।
नहीं त्रिलोकी ऐसौ कोइ। भक्तनि कौं दुख दै सकै जोइ।

ज्यौं सुक नृप सौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ ॥३॥
॥४१०॥

जड़भरत-रहूगण-संवाद *राग बिलावल*

हरि-हरि, हरि-हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
नृपति रहूगन कैं मन आई। सुनियै ज्ञान कपिल सौं जाई।
चढ़ि सुख-आसन नृपति सिधायौ। तहाँ कहार एक दुख पायौ।
भरत पंथ पर देख्यौ खरौ। वाकैं बदले ताकौं धरौ।
तिहिं सौं भरत कछू नहिं कह्यौ। सुख-आसन काँधे पर गह्यौ।
भरत चलै पंथ जीव निहार। चलै नहीं ज्यौं चलैं कहार।
नृपति कह्यौ मारग सम आहि। चलत न क्यौं तुम सूधैं राह।
कह्यौ कहारनि, हमैं न खोरि। नयौ कहार चलत पग भोरि।
कह्यौ नृपति, मोटौ तू आहि। बहुत पंथहू आयौ नाहिं।
तू जो टेढ़ौ-टेढ़ो चलत। मरिबे कौं नहिं हिय भय धरत।
ऐसी भाँति नृपति बहु भाषी। सुनि जड़ भरत हृदय महँ राखी।
मन मन लाग्यौ करन बिचार। हर्ष-सोक तनु कौ ब्यवहार।
जैसौ करै सो तैसो लहै। सदा आतमा न्यारौ रहै।
नृप कह्यौ, मैं उत्तर नहिं पायौ। मेरौ कह्यौ न मन मैं ल्यायौ।
नृप-दिसि देखि भरत मुसुकाइ। बहुरौ या बिधि कह्यौ समुझाइ।
तुम कह्यौ, तैं है बहुत मोटायौ। अरु बहु मारग हू नहिं आयौ।
टेढ़ौ-टेढ़ौ तू क्यौं जात। सुनौ नृपति, मोसौं यह बात।
जिय करि कर्म, जन्म बहु पावै। फिरत-फिरत बहुतै स्रम आवै।
अरु अजहूँ न कर्म परिहरै। जातैं याकौ फिरिबौ टरै।
तन स्थूल अरु दूबर होइ। परमातम कौं ये नहिं दोइ।
तनु मिथ्या, छन-भंगुर जानौ। चेतन जीव, सदा थिर मानौ।
जिय कौं सुख-दुख तन सँग होइ। जौ बिचरै तन कैं सँग सोइ।
देहऽभिमानी जीवहिं जानै। ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै।
तुम कह्यौ मरिबे की तोहिं चाह। सब काहू कौं है यह राह।
कहा जानि तुम मोसौं कह्यौ? यह सुनि, रिषि-स्वरूप नृप लह्यौ।
तजि सुखपाल रह्यौ गहि पाइ। मैं जान्यौ, तुम हौ रिषिराइ।
भृगु, कै दुर्बासा तुम होहु। कपिल, कै दत्त, कहौ तुम मोहु।
कबहूँ सुर, कबहूँ नर होइ। कबहूँ राव रंक जिय सोइ।

जीव कर्म करि बहु तन पावै। अज्ञानी तिहिँ देखि भुलावै।
ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन कैँ भेद भेद नहिँ मानै।
आत्म, अजन्म सदा अविनासी। ताकौँ देह-मोह बड़ फाँसी।
रिषभ-सुपुत्र, भरत मम नाम। राज छाँड़ि, लियौ बन-विस्राम।
तहँ मृगछौना सौँ हित भयौ। नर-तन तजि कै मृग-तन लयौ।
अब मैँ जन्म विप्र कौ पायौ। सब तजि, हरि-चरननि चित लायौ।
तातैँ ज्ञानी मोह न करै। तन-कुटुंब सौँ हित परिहरै।
जब लगि भजै न चरन मुरारि। तब लगि होइ न भव-जल पार।
भव-जल मैँ नर बहु दुख लहै। पै बैराग-नाव नहिँ गहै।
सुत-कलत्र दुर्बचन जो भाषै। तिन्हैँ मोह-बस मन नहिँ राखै।
जो वे बचन और कोउ कहै। तिनकौँ सुनि कै सहि नहिँ रहै।
पुत्र अन्याइ करै बहुतेरै। पिता एक अवगुन नहिँ हेरै।
और जो एक करै अन्याइ। तिहिँ बहु अवगुन देइ लगाइ।
इक मन अरु ज्ञानेंद्री पाँच। नर कौँ सदा नचावैँ नाच।
ज्यौँ मग चलत चोर धन हरैँ। त्यौँ ये सुकृत-धनहिँ परिहरैँ।
तस्कर ज्यौँ सुकित-धन लेहिँ। अरु हरि-भजन करन नहिँ देहिँ।
ज्ञानी इनकौ संग न करै। तस्कर जानि दूरि परिहरै।
नृप यह सुनि भरतहिँ सिर नाइ। बहुरि कह्यौ या भाँति सुनाइ।
नर सरीर सुर ऊपर आहि। लहै ज्ञान कहिये कहा ताहि?
तातैँ तुमकौँ करत दँडौत। अरु सब नरहूँ कौ परिनौत।
सुक कह्यौ, सुनि यह नृपति सुजान। लह्यौ ज्ञान तजि देहऽभिमान।
जो यह लीला सुनै-सुनावै। सोऊ ज्ञान भक्ति कौँ पावै।
सुकदेव ज्यौँ दियौ नृपहि सुनाइ। सूरदास कह्यौ ताही भाइ ॥४॥
॥४११॥

॥ पंचम स्कंध समाप्त ॥

षष्ठ स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। आधे पलकहुँ जनि बिसरौ।
सुक हरि-चरननि कौं सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ॥ १॥
॥४१२॥

परीक्षित-प्रश्न *राग बिलावल*

सुक सौं कह्यौ परीच्छित राइ। भरत गयौ बन, राज बिहाइ।
तहाँ जाइ मृग सौं चित लायौ। तातैं मरि फिरि मृग-तन पायौ।
जिनकौं पाप करत दिन जाइ। ते तौ परैं नरक मैं धाइ।
सो छूटे किहिं बिधि रिषिराई। सूर कहो मोसौं समुझाइ॥ २॥
॥४१३॥

श्रीशुक-उत्तर *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राउ। पतित-उधारन है हरि-नाउ।
अंतकाल हरि हरि जिन कह्यौ। ततकालहिं तिन हरि-पद लह्यौ।
तिन मैं कहौं एक की कथा। नारायन कहि उधर्‌यौ जथा।
ताहि सुनै जो कोउ चितलाइ। सूर तरै सोऊ गुन गाइ॥ ३॥
॥४१४॥

अजामिलोद्धार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि हरि कहत अजामिल तर्‌यौ। जाकौ जस सब जग बिस्तर्‌यौ।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। कहै-सुनै सो मर तरि जाइ।
अजामिल बिप्र कनौज-निवासी। सो भयौ बृषली कैं गृहवासी।
जाति-पाँति तिन सब बिसराई। भच्छ-अभच्छ सबै सो खाई।
ता भीलिनि कैं दस सुत भए। पहिले पुत्र भूलि तिहिं गए।

लघुसुत-नाम नरायन धर्‍यौ। तासौं हेत अधिक तिन कर्‍यौ।
काल-अवधि जब पहुँची आइ। तब जम दीन्हे दूत पठाइ।
नारायन सुत-नाम उचार्‍यौ। जम-दूतनि हरि-गननि निवार्‍यौ।
दूतनि कह्यौ बड़ौ यह पापी। इन तौ पाप किए हैं धापी।
विप्र जन्म इन जूवैं हार्‍यौ। काहे तैं तुम हमैं निवार्‍यौ?
गननि कह्यौ, इन नाम उचार्‍यौ। नाम-महातम तुम न विचार्‍यौ।
जान-अजान नाम जो लेइ। हरि वैकुंठ-वास तिहिं देइ।
बिन जानैं कोउ औषध खाइ। ताकौ रोग सकल नसि जाइ।
त्यौं जो हरि बिन जानैं कहै। सो सब अपने पापनि दहै।
अगिनि बिना जानैं जो गहै। तातकाल सो ताकौं दहै।
दोइ पुरुष कौ नाम इक होइ। एक पुरुष कौं बोलै कोइ।
दोऊ ताकी ओर निहारैं। हरिहू ऐसैं भाव बिचारैं।
हाँसी मैं कोउ नाम उचारे। हरि जू ताकौं सत्य बिचारैं।
भयहूँ करि कोउ लेइ जो नाम। हरि जू देहि ताहि निज-धाम।
जा बन केहरि-सब्द सुनाइ। ता बन तैं मृग जाहिं पराइ।
नाम सुनत त्यौं पाप पराहिं। पापी हू बैकुंठ सिधाहिं।
यह सुनि दूत चले खिसियाइ। कह्यौ तिन धर्मराज सौं जाइ।
अब लौं हम तुमहीं कौं जानत। तुमहीं कौं दँड-दाता मानत।
आजु गह्यौ हम पापी एक। तिन भय मान्यौ हमकौ देख।
नारायन सुत-हेत उचार्‍यो। पुरुष चतुरभुज हमैं निवार्‍यौ।
उनसौं हमरौ कछु न बसायौ। तातैं तुमकौं आनि सुनायौ।
औरौ दँड-दाता कोउ आहि। हमसौं क्यौं न बतावौ ताहि?
धर्मराज करि हरि कौ ध्यान। निज दूतनि सौं कह्यौ बखान।
नारायन सबके करतार। पालत अरु पुनि करत सँहार।
ता सम दुतिया और न कोइ। जो चाहै सो साजै सोइ।
ताकौ उन जब नाम उचार्‍यौ। तब हरि-दूतनि तुम्हैं निवार्‍यौ।
हरि के दूत जहाँ-तहाँ रहैं। हम तुम उनकी सोध न लहैं।
जो-जो मुख हरि-नाम उचारैं। हरि-गन तिहिं-तिहिं तुरत उधारैं।
नाम-महातम तुम नहिं जानौ। नाम-महातम सुनौ, बखानौं।
ज्यौं-त्यौं कोउ हरि-नाम उच्चरै। निस्चय करि सो तरै पै तरै।
जाके गृह मैं हरि-जन जाइ। नाम-कीरतन करै सो गाइ।
जद्यपि वह हरि-नाम न लेइ। तद्यपि हरि तिहिं निज-पद देइ।

कैसौहू पापी किन होइ। राम-नाम मुख उचरै सोइ।
तुम्हरौ नहीं तहाँ अधिकार। मैं तुमसौं यह कहौं पुकार।
अजामील हरि-दूतनि देखि। मन मैं कीन्हौ हर्ष विसेषि।
जम-दूतनि कौं इनहिं निवारयौ। या भय तैं मोहिं इनहिं उबारयौ।
तब मन माहिं आनि वैराग। पुत्र-कलत्र-मोह सब त्याग।
हरि-पद सौं उन ध्यान लगायौ। तातकाल वैकुंठ सिधायौ।
अंतकाल जो नाम उचारै। सो सब अपने पापनि जारै।
ज्ञान-बिराग तुरत तिहिं होइ। सूर विष्नु-पद पावै सोइ॥४॥
॥४१५॥

श्री गुरु-महिमा *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-गुरु एक रूप नृप जानि। यामैं कछु संदेह न आनि।
गुरु प्रसन्न, हरि परसन होइ। गुरु कैं दुखित दुखित हरि जोइ।
कहौं सो कथा, सुनौ चित धार। कहै-सुनै सो तरै भव पार।
इंद्र एक दिन सभा मँझारि। बैठ्यौ हुतौ सिंहासन डारि।
सुर, रिषि, सब गँधर्ब तहँ आए। पुनि कुबेरहू तहाँ सिधाए।
सुर-गुरुहू तिहिं औसर आयौ। इंद्र न तिहिं उठि सीस नवायौ।
सुर-गुरु, जानि गर्व तिहिं भयौ। तहँ तैं फिरि निज-आस्रम गयौ।
सुर-पति तब लाग्यौ पछितान। मैं यह कहा कियौ अज्ञान।
पुनि निज गुरु-आस्रम चलि गयौ। पै सुर-गुरु दरसन नहिं दयौ।
यह सुनि असुर इंद्र-पुर आइ। कियौ इंद्र सौं जुद्ध बनाइ।
इंद्र-सहित तब सब सुर भागे। आस्रम अपने सबहिनि त्यागे।
पुनि सब सुर ब्रह्मा पै जाइ। कह्यौ बृत्तांत सकल, सिर नाइ।
ब्रह्मा कह्यौ, बुरौ तुम कियौ। निज गुरु कौं आदर नहिं दियौ।
अब तुम बिस्वरूप गुरु करौ। ता प्रसाद या दुख कौं तरौ।
सुरपति बिस्वरूप पै जाइ। दोउ कर जोरि कह्यौ सिर नाइ।
कृपा करौ; मम प्रोहित होहु। कियौ बृहस्पति मो पर कोहु।
कह्यौ, पुरोहित होत न भलौ। बिनसि जात तेज-तप सकलौ।
पै तुम बिनती बहु बिधि करी। तातैं मैं मन मैं यह धरी।
यह कहि इंद्रहिं जज्ञ करायौ। गयौ राज अपनौ तिन पायौ।
असुरनि बिस्वरूप सौं कह्यौ। भली भई, तू सुरगुरु भयौ।

तुव ननसाल माहिँ हम आहिँ। आहुति हमैं देत क्यौं नाहिँ?
तिहिँ निमित्त तिन आहुति दई। सुरपति बात जानि यह लई।
करि कै क्रोध तुरत तिहिँ मार्‌यौ। हत्या हित यह मंत्र बिचार्‌यौ।
चारि अंस हत्या के किए। चारौं अंस बाँटि पुनि दिए।
एक अंस पृथ्वी कौं दयौ। ऊसर तामैं तातैं भयौ।
एक अंस बृच्छनि कौं दीन्हौं। गौंद होइ प्रकास तिन कीन्हौं।
एक अंस जल कौं पुनि दयौ। ह्वैकै काई जल कौं छयौ।
एक अंस सब नारिनि पायौ। तिनकौं रजस्वला दरसायौ।
त्वष्टा बिस्वरूप कौ बाप। दुखित भयौ सुनि सुत-संताप।
क्रुद्ध होइ इक जटा उपारी। बृत्रासुर उपज्यौ बल भारी।
सो सुरपति कौं मारन धायौ। सुरपति हू ता सन्मुख आयौ।
जेतक सस्त्र सो किए प्रहार। सो करि लिए असुर आहार।
तब सुरपति मन मैं भय मान। गयौ तहाँ जहाँ श्री भगवान।
नमस्कार करि बिनय सुनाई। राखि राखि असरन-सरनाई।
कह्यौ भगवान, उपाय न आन। रिषी दधीचि-हाड़ लै दान।
ताकौ तू निज बज्र बनाउ। मरिहै असुर ताहि कैं घाउ।
तब सुरपति रिषि कैं ढिग जाइ। करी बिनय बहु सीस नवाइ।
बहुरि कही अपनी सब कथा। हरि जो कह्यौ, कह्यौ पुनि तथा।
तिन कह्यौ देह-मोह अति भारी। सुर-पति, तब यह देखि बिचारी।
यह तन क्यौं हूँ दियौ न जावै। और देत कछु मन नहिँ आवै।
पै यह अंत न रहिहै भाई। परहित देहु तौ होइ भलाई।
तन देवे तैं नाहिँ न भजौं। जोग धारना करि इहि तजौं।
गउ चटाइ, मम त्वचा उपारौ। हाड़नि कौ तुम बज्र सँवारौ।
सुरपति रिषि की आज्ञा पाइ। लिए हाड़, कियौ बज्र बनाइ।
गो-मुख असुचि तबहिँ तैं भयौ। रिषि सुकदेव नृपति सौं कह्यौ।
इंद्र आइ तब असुर प्रचार्‌यौ। कियौ युद्ध पै असुर न हार्‌यौ।
इंद्र-हाथ तैं बज्र छिनाइ। मार्‌यौ ऐरावत कौं धाइ।
ऐरावत घायल ह्वै गयौ। तब बृत्रासुर कौं सुख भयौ।
ऐरावत अंमृत कैं प्याए। भयौ सचेत, इंद्र तब धाए।
बृत्रासुर कौं बज्र प्रहार्‌यौ। तिन त्रिसूल सुरपति कौं मार्‌यौ।
लगत त्रिसूल इंद्र मुरझायौ। कर तैं अपनौ बज्र गिरायौ।
कह्यौ असुर, सुरपति संभारि। लै करि बज्र मोहिँ परहारि।

जौ मरिहौं तौ सुरपुर जैहौं। जीते जगत माहिं जस लैहौं।
हार-जीति नहिं जिय कैं हाथ। कारन-करता आनहिं नाथ।
हमैं-तुम्हैं पुतरी कैं भाइ। देखत कौतुक विविध नचाइ।
तब सुरपति लै वज्र सँहार्‌यौ। जै-जै सब्द सुरनि उच्चार्‌यौ।
पै इंद्रहिं संतोष न भयौ। ब्राह्मन-हत्या कौ दुख तयौ।
सो हत्या तिहिं लागी धाइ। छिप्यौ सो कमलनाल मैं जाइ।
सुरगुरु जाइ तहाँ तैं ल्यायौ। तासौं हरि-हित जज्ञ करायौ।
जज्ञ तैं हत्या गई विलाइ। पुनि नृप भयौ इंद्रपुर आइ।
नृप यह सुनि सुक सौं यौं कही। ज्ञान-बुद्धि असुरहिं क्यौं भई?
सुक कह्यौ सुनौ परीच्छित राइ। देहुँ तोहिं वृत्तांत सुनाइ।
चित्रकेतु पृथ्वीपति राउ। सुत-हित भयौ तासु चित-चाउ।
जद्यपि रानी बरी अनेक। पै तिनतैं सुत भयौ न एक।
ता गृह रिषि अंगिरा सिधाए। अर्धासन दै तिन बैठाए।
रिषि सौं नृप निज बिथा सुनाई। कह्यौ मोहिं, सो करौ उपाई।
रिषि कह्यौ, पुत्र न तेरैं होइ। होइ कहूँ, तौ दुख दे सोइ।
नृप कह्यौ, एक बार सुत होइ। पाछैं होनी होइ सो होइ।
रिषि ता नृप सौं यज्ञ करायौ। दै प्रसाद यह वचन सुनायौ।
जा रानी कौं तू यह दैहै। ता रानी सौंती सुत ह्वैहै।
पटरानी कौं सो नृप दियौ। तिन प्रनाम करि भोजन कियौ।
रिषि-प्रसाद तैं तिन सुत जायौ। सुत लहि दंपति अति सुख पायौ।
बिप्र-जाचकनि दीन्हौ दान। कियौ उत्सव, कहा करौं बखान।
ता रानी सौं नृप-हित भयौ। और तियनि कौ मन अति तयौ।
तिन सबहिनि मिलि मंत्र उपायौ। नृपति-कुँवर कौं जहर पियायौ।
बहुत बार भई, कुँअर न जाग्यौ। दासी सौं रानी तब माँग्यौ।
ल्याउ कुँअर कौं बेगि जगाइ। दूध प्याइ कै बहुरि सुवाइ।
दासी कुँवर जगावन आई। देख्यौ कुँवर मृतक की नाईं।
दासी बालक मृतक निहारि। परी धरनि पर खाइ पछारि।
रानी तब तहँ आई धाइ। सुत मृत देखि परी मुरझाइ।
पुनि रानी जब सुरति सँभारी। रुदन करन लागी अति भारी।
रुदन सुनत राजा तहँ आयौ। देखि कुँवर कौं अति दुख पायौ।
कबहूँ मुरछित ह्वै नृप परै। कबहुँक सुत कौं अंकम भरै।
रिषि नारद, अँगिरा तहँ आए। राजा सौं ये वचन सुनाए।

को तू, को यह, देखि बिचार। स्वप्न-स्वरूप सकल संसार।
सोयौ होइ सो इहिं सत मानै। जो जागै सो मिथ्या जानै।
तातैं मिथ्या-मोह विसारि। श्रीभगवान-चरन उर धारि।
हम तुम सौं पहिलैं ही कही। नृप सो बात आज भई सही।
नृप कौं सुनि उपज्यौ वैराग। बन कौं गयौ राज सब त्याग।
बन मैं जाइ तपस्या करी। मरि गंधर्व-देह तिन धरी।
इक दिन सो कैलास सिधायौ। सिव कौ दरसन तहँ तिहिं पायौ।
उमा नगन देखी तिहिं राइ। उन दियौ साप ताहि या भाइ।
तू अब असुर-देह धरि जाइ। मेरो कह्यौ न मिथ्या आइ।
उमा साप ताकौं जब दयौ। बृत्रासुर सो या विधि भयौ।
हरि की भक्ति वृथा नहिं जाइ। जन्म-जन्म सो प्रगटे आइ।
तातैं हरि-गुरु-सेवा कीजै। मेरौ बचन मानि यह लीजै।
ज्यौं सुक नृप सौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंहीं कहि गायौ ॥५॥
॥४१६॥

राग सारंग

गुरु बिनु ऐसी कौन करै?
माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै।
भवसागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।
सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं लै उधरै ॥ ६ ॥
॥४१७॥

सदाचार-शिक्षा (नहुष की कथा) *राग बिलावल*

सुरपति कौं सँताप जब भयौ। सो सुरपुर भय तैं नहिं गयौ।
नहुप नृपति पै रिपि सब आइ। कह्यौ सुर-राज करौ तुम राइ।
नहुप इंद्र-राजहिं जब पायौ। इंद्रानी कौं देखि लुभायौ।
कह्यौ इंद्रानी मो पै आवै। नृप सौं ताकौ कहा बसावै।
सुरगुरु सौं यह बात सुनाई। अवधि करन तिहिं कहि समुझाई।
सची नृपति सौं यह कहि भाषी। नृप सुनिकै हिरदै मैं राखी।
सची अग्नि कौं तुरत पठायौ। सुरपति दसा देखि सो आयौ।
इंद्रानी सुनि व्याकुल भई। अवधि घरी व्यतीत ह्वै गई।
तब तिन ऐसी बुद्धि उपाई। इहिं अंतर सो नहुप बुलाई।
कह्यौ तुम अस्वमेध नहिं किए। रिषि-आज्ञा तैं सुरपति भए।

विप्रनि पै चढ़ि कै जौ आवहु। तौ तुम मेरौ दरसन पावहु।
नृपति रिषिनि पर ह्वै असवार। चल्यौ तुरंत सची कैं द्वार।
काम अंध कछु रहि न सँभारि। दुर्वासा रिषि कौं पग मारि।
सर्प-सर्प कह्यौ वारंवार। तव रिषि दीन्हौ ताकौं डार।
कह्यौ सर्प तैं भाष्यौ मोहिं। सर्प रूप तूही नृप होहि।
जवै साप रिषि सौं नृप पायौ। तव रिषि-चरनन माथौ नायौ।
इहिं सराप सौं मुक्ति ज्यौं होइ। रिषि कृपालु भाषौ अव सोइ।
कह्यौ जुधिष्ठिर देखे जोइ। तव उधार नृप तेरौ होइ।
नृप ऐसौ है परतिय-प्यार। मूरख करै सो विना विचार।
ज्यौं सुक नृप सौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कह गायौ ॥७॥
॥४१८॥

इंद्र-अहिल्या-कथा *राग बिलावल*

सुरपति गौतम-नारि निहारि। आतुर ह्वै गयौ विना विचारि।
काग-रूप करि रिषि गृह आयौ। अर्धनिसा निहिं वोल सुनायौ।
गौतम लख्यौ, प्रात है भयौ। न्हान काज सो सरिता गयौ।
तव सुरपति मन माहिं विचारी। पतिव्रता है गौतम-नारी।
गौतम-रूप विना जौ जैयै। ताके साप अग्नि सौं तैयै।
गौतम-रूप धारि तहँ आयौ। मूर्च्छित भयौ अहिल्या पायौ।
कह्यौ अहिल्या, तू को आहि? वेगि इहाँ तैं वाहिर जाहि।
इहिं अंतर गौतम गृह आयौ। इंद्र जानि यह वचन सुनायौ।
मूरख तैं पर-तिय मन लायौ। इंद्रानी तजिकै ह्याँ आयौ।
इक भग की तोहिं इच्छा भई। भग सहस्र मैं तोकौं दई।
इंद्र शरीर सहस भग पाइ। छुप्यौ सो कमल-नाल मैं जाइ।
काल वहुत ता ठौर वितायौ। सुरगुरु रिषिनि सहित तहँ आयौ।
जज्ञ कराइ प्रयाग न्हवायौ। तौहूँ पूरव तन नहिं पायौ।
तव सव रिषिनि दई आसीस। भग तैं नेत्र करौ जगदीस।
भग अस्थान नेत्र तव भए। रिषि इंद्रहिं लै सुरपुर गए।
परतिय-मोह इंद्र दुख पायौ। सो नृप मैं तोहिं कहि समुझायौ।
परतिय-मोह करै जो कोइ। जीवत नरक परत है सोइ।
सुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंहीं कहि गायौ ॥८॥
॥४१९॥

षष्ठ स्कंध समाप्त

सप्तम स्कंध

श्री नृसिंह-अवतार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-चरननि सुकदेव सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥ ४२० ॥

राग बिलावल

नरहरि, नरहरि, सुमिरन करौ। नरहरि-पद नित हिरदय धरौ।
नरहरि-रूप धर्यौ जिहिं भाइ। कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ।
हरि जब हिरन्याच्छ कौं मार्यौ। दसन-अग्र पृथ्वी कौं धार्यौ।
हिरनकसिप सौं दिति कह्यौ आइ। भ्राता-बैर लेहु तुम जाइ।
हिरनकसिप दुस्सह तप कियौ। ब्रह्मा आइ दरस तब दियौ।
कह्यौ तोहिं इच्छा जो होइ। माँगि लेहि हमसौं बर सोइ।
राति-दिवस नभ-धरनि न मरौं। अस्त्र-सस्त्र-परहार न डरौं।
तेरी सृष्टि जहाँ लगि होइ। मोकौं मारि सकै नहिं कोइ।
ब्रह्मा कह्यौ, ऐसियै होइ। पुनि हरि चाहै करिहै सोइ।
यह कहि ब्रह्मा निज पुर आए। हिरनकसिप निज भवन सिधाए।
भवन आइ त्रिभुवनपति भए। इंद्र, बरुन, सबही भजि गए।
ताकौ पुत्र भयौ प्रहलाद। भयौ असुर-मन अति अहलाद।
पाँच बरस की भई जब आइ। संडामर्कहिं लियौ बुलाइ।
तिनकैं सँग चटसार पठायौ। राम-नाम सौं तिन चित लायौ।
संडामर्क रहे पचि हारि। राजनीति कहि बारंबार।
कह्यौ प्रहलाद, पढ़त मैं सार। कहा पढ़ावत और जँजार।
जब पाँड़े इत-उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए।
कह्यौ, "यह ज्ञान कहाँ तुम पायौ ?" "नारद माता-गर्भ सुनायौ"।
सबनि कह्यौ, देउ हमैं सिखाइ। सबहिनि कैं मन ऐसी आइ।
कह्यौ सबनि सौं तब समुझाइ। सब तजि, भजौ चरन रघुराइ।

रामहिं राम पढ़ौ रे भाई। रामहिं जहँ-तहँ होत सहाई।
इहाँ कोउ काहू कौ नाहीं। रिन-संबंध मिलन जग माहिं।
काल-अवधि जब पहुँचै आइ। चलत बार कोउ संग न जाइ।
सदा सँघाती श्री जदुराइ। भजियै ताहि सदा लव लाइ।
हर्त्ता - कर्त्ता आपै सोइ। घट-घट ब्यापि रह्यौ है जोइ।
तातैं द्वितिया और न कोइ। ताके भजैं सदा सुख होइ।
दुर्लभ जन्म सुलभ ही पाइ। हरि न भजै सो नरकहिं जाइ।
यह जिय जानि विषय परिहरौ। रामहि-राम सदा उच्चरौ।
सत संवत मानुष की आइ। आधी तौ सोवत ही जाइ।
कछु बालापन ही मैं बीतै। कछु बिरधापन माहिं बितीतै।
कछु नृप-सेवा करत बिहाइ। कछु इक बिषय-भोग मैं जाइ।
ऐसैं हीं जो जनम सिराइ। बिनु हरि-भजन नरक महँ जाइ।
बालपनौ गए ज्वानी आवै। बृद्ध भए मूरख पछितावै।
तीनौंपन ऐसैंहीं जाइ। तातैं अबहिं भजौ जदुराइ।
बिषै-भोग सब तन मैं होइ। बिनु नर-जन्म भक्ति नहिं होइ।
जौ न करै तौ पसु सम होइ। तातैं भक्ति करौ सब कोइ।
जब लगि काल न पहुँचै आइ। हरि की भक्ति करौ चित लाइ।
हरि ब्यापक है सब संसार। ताहि भजौ अब सोचि-बिचार।
सिसु, किसोर, बिरधौ तनु होइ। सदा एकरस आतम सोइ।
ऐसौ जानि मोह कौं त्यागौ। हरि-चरनारबिंद अनुरागौ।
माटी मैं ज्यौं कंचन परै। त्यौंहीं आतम तन संचरै।
कंचन लै ज्यौं माटी तजै। त्यौं तन-मोह छाँड़ि, हरि भजै।
नर-सेवा तैं जौ सुख होइ। छनभंगुर थिर रहै न सोइ।
हरि की भक्ति करौ चित लाइ। होइ परम सुख, कबहुँ न जाइ।
ऊँच-नीच हरि गिनत न दोइ। यह जिय जानि भजौ सब कोइ।
असुर होइ, भावै सुर होइ। जो हरि भजै पियारौ सोइ।
रामहिं राम कहौ दिन-रात। नातरु जन्म अकारथ जात।
सौ बातनि की एकै बात। सब तजि भजौ जानकी-नाथ।
सब चेटुअनि मन ऐसी आई। रहे सबै हरि-पद चित लाई।
हरि-हरि नाम सदा उच्चारैं। बिद्या और न मन मैं धारैं।
तब संडामर्का संकाइ। कह्यौ असुरपति सौं यौं जाइ।
तुव सुत कौं पढ़ाइ हम हारे। आपु पढ़ै नहिं, और बिगारे।

राम-नाम नित रटिबौ करै। राजनीति नहिं मन मैं धरै।
तातैं कही तुम्हैं हम आइ। करिबे होइ सु करौ उपाइ।
हरिनकसिप तब सुतहिं बुलाइ। कछुक प्रीति, कछु डर दिखराइ।
बहुरौ गोद माहिं बैठार। कह्यौ, पढ़े कहा विद्या-सार?
"सार बेद चारौं कौ जोइ। छेऊ सास्त्र-सार पुनि सोइ।
'सर्ब पुरान माहिं जो सार। राम नाम मैं पढ़्यौ बिचार।"
कह्यौ, याहि लै जाउ उठाइ। सुमिरत मो रिपु कौं चित लाइ।
मेरी ओर न कछू निहारौ। याकौं पावक भीतर डारौ।
जौ ऐसी करतहुँ नहिं मरै। डारि देहु गज मैमत-तरैं।
पर्बत सौं इहिं देहु गिराइ। मरै जौन बिधि मारौ जाइ।
नृप-आज्ञा लयौ कुँवर उठाइ। कुँवर रह्यौ हरि-पद चित लाइ।
असुर चले तब कुँवर लिवाइ। हरि जू ताकी करी सहाइ।
असुरनि गिरि तैं दियौ गिराइ। राखि लियौ तहँ त्रिभुवनराइ।
पुनि गज मैमत आगैं डार्‌यौ। राम-नाम तब कुँवर उचार्‌यौ।
गज दोउ दंत टूटि धर परे। देखि असुर यह अचरज डरे।
बहुरौ दीन्हे नाग डुकाइ। जिनकी ज्वाला गिरि जरि जाइ।
हरि जू तहँ हूँ करी सहाइ। नाग रहे सिर नीचैं नाइ।
पुनि पावक मैं दियौ गिराइ। हरि जू ताकी करी सहाइ।
करैं उपाइ सो बिरथा जाइ। तब सब असुर रहे खिसिआइ।
कह्यौ असुर-पति सौं उन जाइ। मरत नहीं बहु किए उपाइ।
हम तौ बहुत भाँति पचिहारे। इन तौ रामहिं नाम उचारे।
नृप कह्यौ, "मंत्र-जंत्र कछु आहि। कै छल करत कछू तू आहि?
'तोकौं कौन बचावत आइ। सो तू मोकौं देहि बताइ"।
"मंत्र-जंत्र मेरैं हरि-नाम। घट-घट मैं जाकौ बिस्राम।
'जहाँ-तहाँ सोइ करत सहाइ। तासौं तेरौ कछु न बसाइ"।
कह्यौ, "कहाँ सो मोहिं बताइ। ना तरु तेरौ जिय अब जाइ"।
"सो सब ठौर", "खंभहूँ होइ?" कह्यौ प्रहलाद, "आहि, तू जोइ।"
हिरनकसिप क्रोधहिं मन धार्‌यौ। जाइ खंभ कौं मुष्टिक मार्‌यौ।
फटि तब खंभ भयौ द्वै फारि। निकसे हरि नरहरि-बपु धारि।
देखि असुर चक्रित ह्वै गयौ। बहुरि गदा लै सन्मुख भयौ।
हरि तासौं कियौ जुद्ध बनाइ। तब सुर मुनि सब गए डराइ।
संध्या समय भयौ जब आइ। हरि जू ताकौं पकर्‌यौ धाइ।

निज जंघनि पर ताहि पछारयौ। नख-प्रहार तिहिं उदर विदारयौ।
जै-जैकार दसौं दिसि भयौ। असुर देह तजि, हरि-पुर गयौ।
ब्रह्मादिक सब रहे अरगाइ। क्रोध देखि कोउ निकट न जाइ।
वहुरौ ब्रह्मा सुरनि समेत। नरहरि जू कैं जाइ निकेत।
करि दंडवत विनय उच्चारी। "तुम अनंत विक्रम वनवारी।
'तुमहीं करत त्रिगुन विस्तार। उतपति, थिति, पुनि करत सँहार।
करौ छमा कियौ असुर-सँहार।" गयौ न क्रोध, गयौ सो निहार।
महादेव पुनि विनय उचारी। "नमो-नमो भक्तनि-भयहारी।
'भक्त-हेत तुम असुर सँहारौ। श्री नरहरि,अव क्रोध निवारौ"।
क्रोध न गयौ, तव ऐसैं कह्यौ। "छमौ प्रलय कौ समय न भयौ"।
तबहूँ गयौ न क्रोध-विकार। महादेव हू फिरे निहार।
वहुरि इंद्र अस्तुति उच्चारी। "मुयौ असुर, सुर भए सुखारी।
'ह्वैहैं जज्ञ अव देव मुरारी। छमियै क्रोध सुरनि सुखकारी"।
पुनि लछमी यौं विनय सुनाई। "डरौं देखि यह रूप नवाई।
'महाराज, यह रूप दुरावहु। रूप चतुर्भुज मोहिं दिखावहु"।
वरुन, कुवेरादिक पुनि आइ। करी विनय तिनहूँ वहु भाइ।
तौहूँ क्रोध छमा नहिं भयौ। तव सब मिलि प्रहलादहिं कह्यौ।
तुम्हरैं हेत लियौ अवतार। अब तुम जाइ करौ मनुहार।
तव प्रहलाद निकट-हरि आइ। करि दंडवत परयौ गहि पाइ।
तव नरहरि जू ताहि उठाइ। ह्वै कृपाल वोले या भाइ।
"कहु जो मनोरथ तेरौ होइ। छाँड़ि विलंब करौं अब सोइ।"
"दीनानाथ, दयाल, मुरारि। मम हित तुम लीन्हौ अवतार।
'असुर असुचि है मेरी जाति। मोहिं सनाथ कियौ सब भाँति।
'भक्त तुम्हारी इच्छा करैं। ऐसे असुर किते संहरैं।
'भक्तनि हित तुम धारी देह। तरिहैं गाइ-गाइ गुन एह।
'जग-प्रभुत्व प्रभु, देख्यौ जोइ। सपन-तुल्य छनभंगुर सोइ।
'इंद्रादिक जातैं भय करयौ। सो मम पिता मृतक ह्वै परयौ।
'साधु-संग प्रभु, मोकौं दीजै। तिहि संगति निज भक्ति करीजै।
'और न मेरी इच्छा कोइ। भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ।
'और जो मो पर किरपा करौ। तौ सब जीवनि कौं उद्धरौ।
'जो कहो, कर्मभोग जब करिहैं। तव ये जीव सकल निस्तरिहैं।
'मम कृत इनके वदलैं लेहु। इनके कर्म सकल मोहिं देहु।

'मोकौं नरक माहिँ लै डारौ। पै प्रभु जू, इनकौं निस्तारौ।"
पुनि कह्यौ, "जीव दुखित संसार। उपजत-बिनसत बारंबार।
'बिना कृपा निस्तार न होइ। करौ कृपा, मैं माँगत सोइ।
'प्रभु, मैं देखि तुम्हैं सुख पावत। पै सुर देखि सकल डर पावत।
'तातैं महा भयानक रूप। अंतर्धान करौ सुर-भूप।"
हरि कह्यौ, "मोहिं बिरद की लाज। करौ मन्वंतर लौं तुम राज।
'राज-लच्छमी-मद नहिं होइ। कुल इकीस लौं उधरै सोइ।
'जो मम भक्त के मग मैं जाइ। होइ पवित्र ताहि परसाइ।
'जा कुल माहिं भक्त मम होइ। सप्त पुरुष लौं उधरै सोइ।"
पुनि प्रहलाद राज बैठाए। सब असुरनि मिलि सीस नवाए।
नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हौ। अभयदान प्रहलादहिं दीन्हौ।
तब ब्रह्मा बिनती अनुसारी। "महाराज, नरसिंह, मुरारी।
'सकल सुरनि कौ कारज सरौ। अंतर्धान रूप यह करौ।"
तब नरहरि भए अंतर्धान। राजा सौं सुक कह्यौ बखान।
जो यह लीला सुनै-सुनावै। सूरदास हरि भक्ति सो पावै ॥२॥
॥४२१॥

राग रामकली

पढ़ौ भाइ, राम-मुकुंद-मुरारि।
चरन-कमल मन-सनमुख राखौ, कहूँ न आवै हारि।
कहै प्रहलाद सुनौ रे बालक, लीजै जनम सुधारि।
को है हिरनकसिप अभिमानी, तुम्हैं सकै जो मारि?
जनि डरपौ जड़मति काहू सौं भक्ति करौ इकसारि।
राखनहार अहै कोउ औरै, स्याम धरे भुज चारि।
सत्य स्वरूप देव नारायन, देखौ हृदय बिचारि।
सूरदास प्रभु सबमैं ब्यापक, ज्यौं धरनी मैं बारि ॥ ३ ॥
॥४२२॥

राग कान्हरौ

जो मेरे भक्तनि दुखदाई।
सो मेरे इहिं लोक बसौ जनि, त्रिभुवन छाँड़ि अनत कहुँ जाई।
सिव-बिरंचि-नारद मुनि देखत, तिनहुँ न मोकौं सुरति दिवाई।
बालक अबल, अजान रह्यौ वह, दिन-दिन देत त्रास अधिकाई।

खंभ फारि, गल गाजि मत्त बल, क्रोधमान छबि बरनि न आई।
नैन अरुन, बिकराल दसन अति, नख सौं हृदय बिदार्‌यौ जाई।
कर जोरे प्रहलाद जो बिनवै, बिनय सुनौ असरन-सरनाई।
अपनी रिस निवारि प्रभु, पितु मम अपराधी, सो परम गति पाई।
दीनदयाल, कृपानिधि, नरहरि, अपनौ जानि हियैं लियौ लाई।
सूरदास प्रभु पूरन ठाकुर, कह्यौ, सकल मैं हूँ नियराई॥ ४॥
॥४२३॥

राग धनाश्री

तब लगि हौं बैकुंठ न जैहौं।
सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, जब लगि तब सिर छत्र न देहौं।
मन-बच-कर्म जानि जिय अपनै, जहाँ-जहाँ जन तहँ-तहँ ऐहौं।
निर्गुन-सगुन होइ सब देख्यौ, तोसौं भक्त कहूँ नहिं पैहौं।
मो देखत मो दास दुखित भयौ, यह कलंक हौं कहाँ गँवैहौं!
हृदय कठोर कुलिस तैं मेरौ, अब नहिं दीनदयालु कहैहौं।
गहि तन हिरनकसिप कौ चीरौं, फारि उदर तिहिं रुधिर नहैहौं।
यह हित मनै कहत सूरज प्रभु, इहिं कृति कौ फल तुरत चखैहौं॥५॥
॥४२४॥

राग मारू

ऐसी को सकै करि बिनु मुरारी।
कहत प्रहलाद के धारि नरसिंह बपु, निकसि आए तुरत खंभ फारी।
हिरनकस्यप निरखि रूप चकित भयौ, बहुरि कर लै गदा असुर-धायौ।
हरि गदा-जुद्ध तासौं कियौ भली बिधि बहुरि संध्यासमय होन आयौ।
गहि असुर धाइ, पुनि नाइ निज जंघ पर, नखनि सौं उदर डार्‌यौ बिदारी।
देखि यह सुरनि बर्षा करी पुहुप की, सिद्ध-गंधर्व जय-धुनि उचारी।
बहुरि बहु भाइ प्रहलाद अस्तुति करी, ताहि दै राज बैकुँठ सिधाए।
भक्त कैं हेत हरि धर्‌यौ नरसिंह-बपु, सूर जन जानि यह सरन आए॥६॥
॥४२५॥

भगवान् का श्री शिव को साहाय्य-प्रदान *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।

हरि ज्यौं सिव की करी सहाइ। कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ।
एक समय सुर-असुर प्रचारि। लरे भई असुरनि की हारि।
तिन ब्रह्मा कैं हित तप कीन्हौ। ब्रह्म प्रगटि दरस तिन्ह दीन्हौ।
तब ब्रह्मा सौं कह्यौ सिर नाइ। हमरी जय ह्वैहै किहिं भाइ?
ब्रह्मा तव यह बचन उचारौ। मय माया-मय कोट सँवारौ।
तामैं बैठि सुरनि जय करौ। तुम उनके मारैं नहिं मरौ।
असुरनि यह मय कौं समुझाई। तव मय दीन्हौ कोट बनाई।
लोह तरैं, मधि रूपा लायौ। ताके ऊपर कनक लगायौ।
जहँ लै जाइ तहाँ वह जाइ। त्रिपुर नाम सो कोट कहाइ।
गढ़ कैं बल असुरनि जय पाइ। लियौ सुरनि सौं अमृत छिनाइ।
सुर सब मिलि गए सिव-सरनाइ। सिव तब तिनकी करी सहाइ।
पै सिव जाकौं मारैं धाइ। अमृत प्याइ तिहिं लेहिं जिवाइ।
तब सिव कीन्हौ हरि कौ ध्यान। प्रगट भए तहँ श्रीभगवान।
सिव हरि सौं सब कथा सुनाई। हरि कह्यौ, अब मैं करौं सहाई।
सुंदर गऊ-रूप हरि कीन्हौ। बछुरा करि ब्रह्मा सँग लीन्हौ।
अमृत-कुंड मैं पैठे जाइ। कह्यौ असुरनि, मारौ इहिं गाइ।
एकनि कह्यौ, याहि मत मारौ। याकौ सुंदर रूप निहारौ।
केतिक अमृत पिए यह भाई। हरि मति तिनकी यौं भरमाई।
हरि अमृत लै गए अकास। असुर देखि यह भए उदास।
कह्यौ, इनहीं हिरनाच्छहिं मार्‌यौ। हिरनकसिप इनहीं संहार्‌यौ।
यासौं हमरौ कछु न बसाइ। यह कहि असुर रहे खिसियाइ।
बान एक हरि सिव कौं दियौ। तासौं सब असुरनि छय कियौ।
या बिधि हरि जू करी सहाइ। मैं सो तुमकौं दई सुनाइ।
सुक ज्यौं नृप कौं कहि समुझायौ। सूरदास जन त्यौंही गायौ ॥७॥
॥ ४२६ ॥

नारद-उत्पत्ति-कथा *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि भजि जैसैं नारद भयौ। नारद ब्यासदेव सौं कह्यौ।
कहौं सो कथा, सुनौ चित धार। नीच-ऊँच हरि कैं इकसार।
गंध्रव ब्रह्मा-सभा मँझारि। हँस्यौ अप्सरा-ओर निहारि।
कह्यौ ब्रह्मा, दासी-सुत होहि। सकुच न करी देखि तैं मोहिं।

भयौ दासी-सुत ब्राह्मन-गेह। तुरत छाँड़िकै गंध्रब - देह।
ब्राह्मन-गृह हरि के जन आए। दासी - दास सेव - हित लाए।
हरि - जन हरि-चरचा जो करै। दासी-सुत सो हिरदैं धरै।
सुनत-सुनत उपज्यौ बैराग। कह्यौ, जाउँ क्यौं माता त्याग।
ताकी माता खाई कारैं। सो मरि गई साँप के मारैं।
दासी - सुत बन - भीतर जाइ। करी भक्ति हरि-पद चित लाइ।
ब्रह्म-पुत्र तन तजि सो भयौ। नारद यौं आपनैं मुख कह्यौ।
हरि की भक्ति करै जो कोइ। सूर नीच सौं ऊँच सो होइ ॥८॥
॥४२७॥

सप्तम स्कंध समाप्त

अष्टम स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ । हरि-चरनारबिंद उर धरौ ।
हरि-चरननि सुकदेव सिर नाइ । राजा सौं बोल्यौ या भाइ ।
कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ । सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥४२८॥

गज-मोचन-अवतार *राग बिलावल*

गज-मोचन ज्यौं भयौ अवतार । कहौं, सुनौ सो अब चित धार ।
गंध्रब एक नदी मैं जाइ । देवल रिषि कौं पकरयौ पाइ ।
देवल कह्यौ, ग्राह तू होहि । कह्यौ गंधर्व दया करि मोहिं ।
जब गजेंद्र कौ पग तू गैहै । हरि जू ताकौं आनि छुटैहै ।
भएँ असपर्स देव-तन धरिहै । मेरौ कह्यौ नाहिं यह टरिहै ।
राजा इंद्रद्युम्न कियौ ध्यान । आए अगस्त्य, नहीं तिन जान ।
दियौ साप गजेंद्र तू होहि । कह्यौ नृप, दया करौ रिषि मोहिं ।
कह्यौ, तोहिं ग्राह आनि जब गैहै । तू नारायन सुमिरन कैहै ।
याही बिधि तेरी गति होइ । भयौ त्रिकूट पर्वत गज सोइ ।
कालहिं पाइ ग्राह गज गह्यौ । गज बल करि-करिकै थकि रह्यौ ।
सुत पत्नीहू बल करि रहे । छूट्यौ नहीं ग्राह के गहे ।
ते सब भूखे, दुःखित भए । गज कौ मोह छाँड़ि उठि गए ।
तब गज हरि की सरनहिं आयौ । सूरदास प्रभु ताहि छुड़ायौ ॥२॥
॥४२९॥

राग बिलावल

माधौ जू, गज ग्राह तैं छुड़ायौ ।
निगमनि हूँ मन-बचन-अगोचर, प्रगट सो रूप दिखायौ ।
सिव-बिरंचि देखत सब ठाढ़े, बहुत दीन दुख पायौ ।
बिन बदलैं उपकार करै को, काहूँ करत न आयौ ।

चिंतत ही चित मैं चिंतामनि, चक्र लिए कर धायौ ।
अति करुना-कातर करुनामय, गरुड़हु कौं छुटकायौ ।
सुनियत सुजस जो निज जन कारन कबहुँ न गहरु लगायौ।
ना जानौं सूरहिं इहिं औसर, कौन दोष बिसरायौ ॥ ३ ॥
॥४३०॥

राग बिलावल

हरबर चक्र धरे हरि धावत ।
गरुड़ समेत सकल सेनापति, पाछैं लागे आवत ।
चलि नहिं सकत गरुड़ मन डरपत, बुधि बल बलहिं बढ़ावत ।
मनहूँ तैं अति बेग अधिक करि, हरिजू चरन चलावत ।
को जानै प्रभु कहाँ चले हैं, काहूँ कछु न जनावत ।
अति ब्याकुल गति देखि देव-गन, सोचि सकल दुख पावत ।
गज-हित धावन, जन-मुकरावन, बेद बिमल जस गावत ।
सूर समुझि, समुझाइ अनाथनि, इहिं बिधि नाथ छुड़ावत ॥४॥
॥ ४३१ ॥

राग सारग

झाईं न मिटन पाई, आए हरि आतुर ह्वै,
जान्यौ जब गज ग्राह लिए जात जल मैं ।
जादौपति, जदुनाथ, छाँड़ि खगपति-साथ,
जानि जन बिह्वल, छुड़ाइ लीन्हौ पल मैं ।
नीरहू तैं न्यारौ कीनौ, चक्र नक्र-सीस छीनौ,
देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल मैं ।
कहै सूरदास, देखि नैननि की मिटी प्यास,
कृपा कीन्ही गोपीनाथ, आए भुव-तल मैं ॥ ५ ॥
॥ ४३२ ॥

राग बिलावल

अब हौं सब दिसि हेरि रह्यौ ।
राखत नाहिं कोउ करुनानिधि, अति बल ग्राह गह्यौ ।
सुर, नर, सब स्वारथ के गाहक, कत स्रम आनि करैं ।
उड़गन उदित तिमिर नहिं नासत, बिन रवि रूप धरैं ।

इतनी बात सुनत करुनामय, चक्र गहे कर धाए।
हति गज-सत्रु सूर के स्वामी, ततछन सुख उपजाए ॥ ६ ॥
॥ ४३३ ॥

कूर्म-अवतार

राग बिलावल

जैसैं भयौ कूर्म-अवतार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार।
नरहरि हिरनकसिप जब मार्‌यौ। अरु प्रहलाद राज बैठार्‌यौ।
ताकौ पुत्र बिरोचन रयौ। ताकैं बहुरि पुत्र बलि भयौ।
बलि सुरपति कौं बहु दुख दयौ। तब सुरपति हरि-सरनैं गयौ।
हरि जू अपनौ बिरद सँभार्‌यौ। सूरज-प्रभु कूरम-तनु धार्‌यौ ॥७॥
॥ ४३४ ॥

राग मारू

सुरनि हित हरि कछप-रूप धार्‌यौ।
मथन करि जलधि, अंमृत निकार्‌यौ।
चतुर्मुख त्रिदसपति बिनय हरि सौं करी, बलि असुर सौं सुरनि दुःख पायौ।
दीनबंधू, दयाकरन, असरन-सरन, मंत्र यह तिनहिं निज मुख सुनायौ।
बासुकी नेति अरु मंदराचल रई, कमठ मैं आपनी पीठि धारौं।
असुर सौं हेत करि, करौ सागर मथन, तहाँ तैं अमृत कौं पुनि निकारौं।
रतन चौदह तहाँ तै प्रगट होहिं तब, असुर कौं सुरा, तुम्हैं अमृत प्याऊँ।
जीतिहौ तब असुर महा बलवंत कौं, मरैं नहिं देवता, यौं जिवाऊँ।
इंद्र मिलि सुरनि बलि-पास आए बहुरि, उन कह्यौ, कहौ किहिं काज आए?
त्रिदसपति समुद के मथन के बचन जो, सो सकल ताहि कहिकै सुनाए।
बलि कह्यौ, बिलँब अब नैंकु नहिं कीजियै, मंदराचल अचल चले धाई।
दोउ इक मंत्र ह्वै जाइ पहुँचे तहाँ, कह्यौ, अब लीजियै इहिं उचाई।
मंदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत, बहुरि लै चलन कौं जब उठायौ।
सुर-असुर बहुत ता ठौरहीं मरि गए, दुहुनि कौ गर्व यौं हरि नसायौ।
तब दुहुँनि ध्यान भगवान कौ धरि कह्यौ, बिन तुम्हारी कृपा गिरि न जाई।
बाम कर सौं पकरि, गरुड़ पर राखि हरि, छीर कैं जलधि तट धर्‌यौ ल्याई।

कह्यौ भगवान अब वासुकी ल्याइयै, जाइ तिन वासुकी सौं सुनायौ ।
मानि भगवंत-आज्ञा सो आयौ तहाँ, नेति करि अचल कौं सिंधु नायौ ।
मंदराचल समुद माहिं बूड़न लग्यौ, तब सबनि बहुरि अस्तुति सुनाई ।
कूर्म कौ रूप धरि, धर्‍यौ गिरि पीठि पर, सुर-असुर सबनि कैं मन बधाई ।
पूँछ कौं तजि असुर दौरिकै मुख गह्यौ, सुरनि तब पूँछ की ओर लीन्ही ।
मथत भए छीन, तब बहुरि विनती करी, श्रीमहाराज निज सक्ति दीन्ही ।
भयौ हलाहल प्रगट प्रथमहीं मथन जब, रुद्र कैं कंठ दियौ ताहि धारी ।
चंद्रमा बहुरि जब मथत आयौ निकसि, सोउ करि कृपा दीन्हौ मुरारी ।
कामजाधेनु पुनि सप्तरिषि कौं दई, लई उन बहुत मन हर्ष कीन्हे ।
अप्सरा, पारिजातक, धनुष, अस्व, गज स्वेत, ये पाँच सुरपतिहिं दीन्हे ।
संख, कौस्तुभमनी, लई पुनि आप हरि, लच्छमी बहुरि तहँ दइ दिखाई ।
परम सुंदर, मनौ तड़ित है दूसरी, कमल की माल कर लियैं आई ।
सकल भूषन मनिनि के बने सकल अँग, बसन बर अरुन सुंदर सुहायौ ।
देखि सुर-असुर सब दौरि लागे गहन, कह्यौ मैं बर बरौं आप-भायौ ।
जो चहै मोहिं मैं ताहि नाहीं चहौं, असुर कौ राज थिर नाहिं देखौं ।
तपसियनि देखि कह्यौ, क्रोध इनमैं बहुत, ज्ञानियनि मैं न आचार पेखौं ।
सुरनि कौं देखि कह्यौ, ये पराधीन सब, देखि विधि कौं कह्यौ, यह बुढ़ायौ ।
चिरंजीवीनि कौं देखि कह्यौ निडर ये, लोक तिहुँ माहिं कोउ चित न आयौ ।
बहुरि भगवान कौं निरखि सुंदर परम, कह्यौ, इन माहिं गुन हैं सुभाए ।
पै न इच्छा इन्हैं है कछू वस्तु की, अरु न ये देखि कै मोहिं लुभाए ।
कबहुँ कियैं भक्ति हू के न ये रीझहीं, कबहुँ कियैं बैर के रीझि जाहीं ।
हरि कह्यौ, मम हृदय माहिं तू रहि सदा, सुरनि मिलि देव-दुंदुभि बजाई ।
धन्य-धनि कह्यौ पुनि लच्छमी सौं सबनि, सिद्ध-गंध्रर्ब जय-ध्वनि सुनाई ।
बहुरि धन्वंत्रि आयौ समुद सौं निकसि, सुरा अरु अमृत निज संग लायौ ।
भयौ आनंद सुर-असुर कौं देखि कै, असुर तब अमृत करि बल छिनायौ ।
सुरनि भगवान सौं आनि विनती करी, असुर सब अमृत लै गए छिनाई ।
कह्यौ भगवान, चिंता न कछु मन धरौ, मैं करौं अब तुम्हारी सहाई ।
परसपर असुर तब जुद्ध लागे करन, होइ बलवंत सोइ लै छिनाई ।
मोहिनी रूप धरि स्याम आए तहाँ, देखि सुर-असुर सब रहे लुभाई ।
आइ असुरनि कह्यौ, लेहु यह अमृत तुम, सबनि कौं बाँटि, मेटौ लराई ।

हँसि कह्यौ, नहीं हम-तुम्हैं कछु मित्रता, बिना बिस्वास बाँट्यौ न जाई।
कह्यौ, तुम-बाँटि पर हमैं बिस्वास है, देहु तुम बाँटि जो धर्म होई।
कह्यौ, सब सुर-असुर मथन कीन्ह्यौ जलधि, सबनि देउँ बाँटि, है धर्म सोई।
कह्यौ, जो करौ सो हमैं परमान है, असुर-सुर पाँति करि तब बिठाई।
असुर-दिसि चिते मुसुकयाइ मोहे सकल, सुरनि कौं अमृत दीन्ह्यौ पियाई।
राहु ससि-सूर के बीच मैं बैठि कै, मोहिनी सौं अमृत माँगि लीन्ह्यौ।
सूर-ससि कह्यौ,यह असुर,तब कृष्नजू लै सुदरसन सुं द्वै टूक कीन्ह्यौ।
राहु सिर, केतु धर कौ भयौ तबहिं तैं, सूर-ससि कौं सदा दुःखदाई।
करत भगवान रच्छा जो ससि-सूर की, होत है नित सुदरसन सहाई।
करि अँतरधान हरि मोहिनी-रूप कौं गरुड़ असवार ह्वै तहाँ आए।
असुर चक्रित भए, गई वह नारि कहँ, सुर-असुर जुद्ध-हित दोउ धाए।
सुरनि की जीति भई, असुर मारे बहुत, जहाँ-तहँ गए सबही पराई।
सूर प्रभु जिहिं करै कृपा, जीतै सोई, बिनु कृपा जाइ उद्यम बृथाई॥८॥
॥४३५॥

राग बिहागरौ

ऐसी को सकै करि तुम बिनु मुरारी।
सुरनि के कहत ही,धारि कूरम तनहिं,मंदराचल लियौ पीठि धारी।
सिंधु मथि सुरासुर अमृत बाहर कियो, बलि असुर लै चल्यौ सो छिनाई।
मोहिनी-रूप तुम दरस तिनकौं दियौ, आनि तब सबनि बिनती सुनाई।
अमृत यह बाँटि कै देहु तुम सबनि कौं, कृपा करि रारि डारौ मिटाई।
सुर-असुर-पाँति करि, सुरा असुरनि दई, सुरनि कौं अमृत दीन्हौ पियाई।
राहु-सिर, केतु धर भयौ यह तबहिं तैं, सूर-ससि दियौ ताकौं बताई।
चक्र सौं काटि सिर, कियौ द्वै टूक तब, असुरहूँ देवगति तुरत पाई।
भक्तवच्छल, कृपाकरन, असरन-सरन, पतित-उद्धरन कहै बेद गाई।

चारहूँ जुग करी कृपा परकार जेहि, सूरहू पर करौ तेहिं सुभाई ॥६॥
॥४३६॥

मोहिनी-रूप, शिव-छलन *राग मारू*

हरि कृपा करै जिहिं, जितै सोई। बादि अभिमान जनि करौ गोई।
पाइ सुधि मोहिनी की सदासिव चले, जाइ भगवान सौं कहि सुनाई।
असुर अजितेंद्रि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई।
हरि कह्यौ, "ब्रह्म व्यापक निराकार सौं मगन तुम, सगुन लै कहा करिहौ" ?
पुनि कह्यौ, "बिनय मम मानि लीजै प्रभो, उमा देख्यौ चहति, कृपा धरिहौ" ?
हँसि कह्यौ, "तुम्हैं दिखराइहौं रूप वह, करौ बिस्राम इस ठौर जाई।
बैठि एकांत जोहन लगे पंथ सिव, मोहिनी रूप कब दै दिखाई।
ह्वै अँतरधान हरि, मोहिनी रूप धरि, जाइ बन माहिं दीन्हैं दिखाई।
सूर-ससि किधौं चपला परम सुंदरी, अंग-भूषननि छबि कहि न जाई।
हाव अरु भाव करि चलत, चितवत जबै, कौन ऐसौ जो मोहित न होई !
उमा कौं छाँड़ि अरु डारि मृगचर्म कौं, जाइकै निकट रहे रुद्र जोई।
रुद्र कौं देखि कै मोहिनी लाज करि, लियौ अँचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ।
उमाहूँ देखि पुनि ताहि मोहित भई, तासु सम रूप अपनौ न जोह्यौ।
रुद्र तजि धीर जब जाइ ताकौं गह्यौ, सो चली आपु कौं तब छुड़ाई।
रुद्र कौ बीर्य खसि कै पर्‌यौ धरनि पर, मोहिनी रूप हरि लियौ दुराई।
देखिकै उमा कौं रुद्र लज्जित भए, कह्यौ मैं कौन यह काम कीनौ।
इंद्रि-जित हौं कहावत हुतौ, आपु कौं समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ खीनौ।
चतुरभुज रूप धरि आइ दरसन दियौ, कह्यो, सिव सोच दीजै बिहाई।
सम तुम्हारे नहीं दूसरौ जगत मैं, कह्यौ तुम, रूप तब दियौ दिखाई।
नारि के रूप कौं देखि मोहै न जो, सो नहीं लोक तिहुँ माहिं जायौ।
सूर स्वामी सरन रहति माया सदा, को जगत जो न कपि ज्यौं नचायौ
॥ १० ॥
॥४३७॥

सुंद-उपसुंद-वध — *राग मारू*

असुर द्वै हुते बलवंत भारी। सुंद-उपसुंद स्वेच्छा-बिहारी।
भगवती तिन्हैं दीन्ही दिखाई। देखि सुंदरि रहे दोउ लुभाई।
भगवती कह्यौ तिनकौं सुनाई। जुद्ध जीतै सो मोहिं बरै आई।
तब दुहुँनि जुद्ध कीन्हौ बनाई। लरि मुए तुरत ही दोउ भाई।
देखिकै नारि मोहिन जो होवै। आपनौ मूल या बिधि सो खोवै।
सुक नृपति पाहिं जिहि बिधि सुनाई। सूर जनहूँ तिहीं भाँति गाई ॥११॥
॥ ४३८ ॥

बामन-अवतार — *राग बिलावल*

जैसैं भयौ बावन अवतार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार।
हरि जब अंमृत सुरनि पियायौ। तब बलि असुर बहुत दुख पायौ।
सुक्र ताहि पुनि जज्ञ करायौ। सुर-जय, राज-त्रिलोकी पायौ।
निन्यानवे यज्ञ जब किये। तब दुख भयौ अदिति के हिये।
हरि-हित उन पुनि बहु तप कर्‌यौ। सूर स्याम बामन-बपु धर्‌यौ ॥१२॥
॥ ४३९ ॥

राग मलार

द्वारैं ठाढ़े हैं द्विज बावन।
चारौ बेद पढ़त मुख आगर, अति सुकंठ-सुर-गावन।
बानी सुनि बलि पूछन लागे, इहा बिप्र कत आवन?
चरचित चंदन नील कलेवर, बरषत बूँदनि सावन।
चरन धोइ चरनोदक लीन्हौ, कह्यौ माँगु मन-भावन।
तीनि पैंड़ बसुधा हौं चाहौं, परनकुटी कौं छावन।
इतनौ कहा बिप्र तुम माँग्यौ, बहुत रतन देउँ गाँवन।
सूरदास प्रभु बोलि छले बलि, धर्‌यौ पीठि पद पावन ॥१३॥
॥ ४४० ॥

राग मलार

राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी।
चारौ बेद पढ़त मुख आगर, द्वै बावन-बपु-धारी।
अपद-दुपद-पसु-भाषा बूझत, अबिगत अल्प-अहारी।

नगर सकल-नर-नारी मोहे, सूरज जोति बिसारी।
सुनि सानंद चले बलि राजा, आहुति जज्ञ बिसारी।
देखि सुरूप सकल कृष्नाकृति, कीनी चरन-जुहारी।
चलियै बिप्र जहाँ जग-बेदी, बहुत करी मनुहारी।
जो माँगौ सो देहुँ तुरतहीं, हीरा-रतन-भँडारी।
रहु-रहु राजा, यौं नहिं कहियै, दूषन लागै भारी।
तीन पैग बसुधा दै मोकौं, तहाँ रचौं धमसारी।
सुक्र कह्यौ, सुनि हो बलि राजा, भूमि कौ दान निवारी।
ये तौ बिप्र होहिं नहिं राजा, आए छलन मुरारी।
कहि धौं सुक्र, कहा अब कीजै, आपुन भए भिखारी।
जब हीं उदक दियौ बलि राजा, बावन देह पसारी।
जै-जै-कार भयौ भुव मापत, तीनि पैंड़ भइ सारी।
आध पैंड़ बसुधा दै राजा ना तरु चलि सत हारी।
अब सत क्यौं हारौं जग-स्वामी सापौ देह हमारी।
सूरदास बलि सरबस दीन्हौ, पायौ राज पतारी ॥१४॥

॥४४१॥

हरि तुम बलि कौं छलि कहा लीन्यौ ?
बाँधन गए बँधाए आपुन, कौन सयानप कीन्यौ ?
लए लकुटिया द्वारैं ठाढ़े, मन अति रहत अधीन्यौ।
तीनि पैंड़ बसुधा कैं कारन, सरबस अपनौ दीन्यौ।
जो जस करै सो पावै तैसौ, बेद पुरान कहीन्यौ।
सूरदास स्वामी पन तजि कै, सेवक-पन रस भीन्यौ ॥१५॥

॥४४२॥

मत्स्य-अवतार राग मारू

स्रुतिनि हित हरि मच्छ रूप धार्‌यौ। सदा ही भक्त-संकट निवार्‌यौ।
चतुरमुख कह्यौ, सँख असुर स्रुति लै गयौ, सत्यव्रत कह्यौ पर लै दिखायौ।
भक्त-बत्सल, कृपाकरन, असरन-सरन, मत्स्य कौ रूप तब धारि आयौ।
स्नान करि अंजली जल जबै नृप लियौ, मत्स्य कौं देखि कह्यौ डारि दीजै।
मत्स्य कह्यौ, मैं गही आइ तुम्हरी सरन, करि कृपा मोहिं अब राखि लीजै।

नृप सुनत बचन, चकित प्रथम ह्वै रह्यौ, कह्यौ, मछ वचन किहिं भाँति भाष्यौ।
पुनि कमंडल धरयौ, तहाँ सो बढ़ि गयौ, कुंभ धरि बहुरि पुनि माट राख्यौ।
पुनि धरयौ खाड़, तालाब मैं पुनि धरयौ, नदी मै बहुरि पुनि डारि दीन्हौ।
बहुरि जब चढ़ि गयौ, सिंधु तब लै गयौ, तहाँ हरि-रूप नृप चीन्हि लीन्हौ।
कह्यौ करि बिनय तुम ब्रह्म जो अनंत हौ, मत्स्य कौ रूप किहिं काज कीन्हौ ?
बेद बिधि चहत,तुम प्रलय देखन कहत,तुम दुहुँनि हेत अवतार लीन्हौ।
कबहुँ बाराह,नरसिंह कबहूँ भयौ, कबहुँ मैं कच्छ कौ रूप लीन्हौ।
कबहुँ भयौ राम, बसुदेव-सुत कबहुँ भयौ, और बहु रूप हित-भक्त कीन्हौ।
सातवैं दिवस दिखराइहौं प्रलय तोहिं, सप्त-रिषि नाव मैं बैठि आवैं।
तोहिं बैठारिहौं नाव मैं हाथ गहि, बहुरि हम ज्ञान तोहि कहि सुनावैं।
सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरैं निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग बाँधौ।
यहै कहि भए अँतरधान तब मत्स्य प्रभु,बहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ।
सातवैं दिवस आयौ निकट जलधि जब, नृप कह्यौ अब कहाँ नाव पावैं।
आइ गइ नाव, तब रिषिनि तासौं कह्यौ,आउ हम नृपति तुमकौं बचावैं।
पुनि कह्यौ, मत्स्य हरि अब कहाँ पाइयै, रिषिनि कह्यौ, ध्यान चित माहिं धारौ।
मत्स्य,अरु सर्प तिहिं ठौर परगट भए, बाँधि नृप नाव यौं कहि उचारौ।
ज्यौं महाराज या जलधि तैं पार कियौ, भव-जलधि पार त्यौं करौ स्वामी।
अहं-ममता हमैं सदा लागी रहै, मोह-मद-क्रोध-जुत मंद कामी।
कर्म सुख-हित करत, होत तहँ दुःख नित, तऊ नर मूढ़ नाहीं सँभारत।
करन-कारन महाराज हैं आप ही, ध्यान प्रभु कौ न मन माहिं धारत।
बिन तुम्हारी कृपा गति नहीं नरनि की, जानि मोहिं आपनौ कृपा कीजै।
जनम अरु मरन मैं सदा दुःखित रहत, देहु मोहिं ज्ञान जिहिं सदा जीजै।
मत्स्य भगवान कह्यौ ज्ञान पुनि नृपति सौं, भयौ सो पुरान सब जगत जान्यौ।

लह्यौ नृप ज्ञान, कह्यो आँखि अब मीचि तू, मत्स्य कह्यो सो नृपति मान्यौ।
आँखि कौं खोलि जब नृपति देख्यौ बहुरि, कह्यौ, हरि प्रलय-माया दिखाई।
कह्यौ जो ज्ञान भगवान, सो आनि उर, नृपति निज आयु इहिं विधि बिताई।
बहुरि संखासुरहिं मारि, बेदाऽनि दिए, चतुरमुख विविध अस्तुति सुनाई।
सूर के प्रभू की नित्य लीला नई, सकै कहि कौन, यह कछुक गाई॥
॥१६॥ ४४३॥

राग मारू

ऐसी को सकै करि बिन मुरारी।
कहत ही ब्रह्म के बेद-उद्धरन हित, गए पाताल तन-मत्स्य धारी।
संखासुर मारि कै, वेद उद्धारि कै, आपदा चतुरमुख की निवारी।
सुरनि आकास तैं पुहुप-बरषा करी, सूर सुनि सुजस कीरति उचारी।
॥ १७ ॥ ४४४ ॥

अष्टम स्कंध समाप्त

नवम स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारविंद उर धरौ।
सुकदेव हरि-चरननि सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥४४५॥

राजा पुरूरवा का वैराग्य *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राव। नारी-नागिनि एक सुभाव।
नागिनि के काटैं विष होइ। नारी चितवत नर रहै मोइ।
नारी सौं नर प्रीति लगावै। पै नारी तिहिं मन नहिं ल्यावै।
नारी संग प्रीति जो करै। नारी ताहि तुरत परिहरै।
नरपति एक पुरुरवा भयौ। नारी-संग हेत तिन ठयौ।
नृप सौं उन कटु बचन सुनाए। पै ताकैं मन कछू न आए।
बहुरौ तिहिं उपज्यौ वैराग। कियौ उरबसी कौ सो त्याग।
हरि की भक्ति करत गति पाई। कहौं सो कथा, सुनौ चित लाई।
एक बार महा-परलै भयौ। नारायन आपुहिं रहि गयौ।
नारायन जल मैं रहे सोइ। जागि कह्यौ, बहुरौ जग होइ।
नाभि-कमल तैं ब्रह्मा भयौ। तिन मन तैं मरीचि कौं ठयौ।
पुनि मरीचि कस्यप उपजायौ। कस्यप की तिय सूरज जायौ।
सूरज कैं वैवस्वत भयौ। सुत-हित सो वसिष्ठ पै गयौ।
ताकी नारि सुता-हित भाष्यौ। सुनि बसिष्ठ अपनैं मन राख्यौ।
रिषि नृप सौं जग-विधि करवाई। इला सुता ताकैं गृह जाई।
नृप कह्यौ, पुत्र-हेत जग ठयौ। पुत्री भइ, यह अचरज भयौ।
रिषि कह्यौ, रानी पुत्री चही। मेरे मन मैं सोई रही।
तातैं पुत्री उपजी आइ। करिहैं पुत्र ताहि हरिराइ।
हरि ता पुत्री कौं सुत कर्‌यौ। नाम सुद्युम्न ताहि रिषि धर्‌यौ।
एक दिवस सो अखेटक गयौ। जाइ अंबिका-बन तिय भयौ।

बुध कैं आस्रम सो पुनि आयौ। तासौं गंध्रब-ब्याह करायौ।
बहुरौ एक पुत्र तिन जायौ। नाम पुरुरवा ताहि धरायौ।
पुनि सुद्युम्न बसिष्ठ सौं कह्यौ। अंबा-बन मैं तिय ह्वै गयौ।
रिषि सिव सौं बहु बिनती करी। तब सिव यह बानी उच्चरी।
एक मास यह ह्वैहै नारि। दूजे मास पुरुष आकारि।
तब सुद्युम्न अपनैं गृह आयौ। राज-समाज माहिं सुख पायौ।
तीनि पुत्र तिन और उपाए। दच्छिन राज करन सो पठाए।
दस सुत मनु के उपजे और। भयौ इच्छूवाकु सबनि सिरमौर।
सूरजबंसी सो कहवाए। रामचंद्र ताही कुल आए।
सोमबंस पुरुरवा सौं भयौ। सकल देस नृप ताकौं दयौ।
तासु बंस लियौ कृष्नऽवतार। असुर मारि, कियौ सुर-उद्धार।
कहिहौं कथा सो करि बिस्तार। पुरुरवा-कथा सुनौ चित धार।
पुरुरवा - गेह उरबसी आई। मित्रबरुन के सापहिं पाई।
नृपति देखि तिहिं मोहित भयौ। तिनि यह बचन नृपति सौं कह्यौ।
बिन रतिकाल नगन नहिं होवहु। अरु मम मैंढ़नि कौं मति खोवहु।
तब लौं मैं तुम्हरौ सँग करौं। बचन-भंग भए तैं परिहरौं।
नृपति कह्यौ, तुम कह्यौ सो करिहौं। तुम्हरी आज्ञा मैं अनुसरिहौं।
तासौं मिलि नृप बहु सुख माने। अष्ट पुत्र तासौं उतपाने।
सुरपुर तैं गंध्रब तब आए। उरबसि सौं यह बचन सुनाए।
अब तुम इंद्रलोक कौं चलौ। तुम बिन सुरपुर लगत न भलौ।
तिन्ह उरबसी कह्यौ या भाइ। बल करि सकौ नहीं लै जाइ।
मम चलिबे कौ यहै उपाव। छल करि मैंढ़नि निसि लै जाव।
गंध्रब मैंढ़नि निसि लै धाए। सोवत नृप उरबसी जगाए।
मम मैंढ़नि कौं लै गयौ कोइ। देखौ ता पुरुषहिं तुम जोइ।
अर्द्ध-निसा भूप नाँगौ धायौ। पै मैंढ़नि कौं कहूँ न पायौ।
इत-उत देखि नृपति जब आयौ। तब उरबसि यह बचन सुनायौ।
राजा, बचन तुम्हारौ टर्‌यौ। तातैं मैं तुमकौं परिहर्‌यौ।
यह कहिकै सो चली पराइ। जैसैं तड़ित अकासैं जाइ।
ताकै बिरह नृपति बहु तयौ। नगन पगन ता पाछैं गयौ।
भ्रमत भ्रमत नृप बहु दुख पायौ। बहुरौ कुरुच्छेत्र मैं आयौ।
तहाँ उरबसी सखिनि समेत। आई हुती स्नान कैं हेत।
पै उनकौं कोउ देखे नाहिं। उनकौं सकल लोक दरसाहिं।

उरबसि सौं तिलोत्तमा कह्यौ। कौन पुरुष तुम भुव मैं लह्यौ।
ताके देखन की मोहिं चाह। कह्यौ, पुरुष वह ठाढ़ौ आह।
नृप कौं देखि सो बिस्मित भई। कह्यौ, तव विरह नृप-सुधि गई।
बहुत दुखित है तेरैं नेह। एक बेर इहिं दरसन देह।
तिन माया आकरषन करी। तब वह दृष्टि नृपति कैं परी।
राजा निरखि प्रफुल्लित भयौ। मानौ मृतक बहुरि जिय लह्यौ।
उरबसि-निकट नृपति चलि आए। करि बिनती तिहिं बचन सुनाए।
तुम मोकौं काहैं बिसरायौ। मैं तुम बिन बहुतै दुख पायौ।
तुम बिन भूख नींद नहिं आवै। पल-पल जुग सम मोहिं बिहावै।
मेरैं गेह कृपा करि चलौ। वाही बिधि मोसौं हिलिमिलौ।
कह्यौ; नेह हमैं कासौं आह! बिना काम हमरैं नहिं चाह।
हमसौं सहस बरष हित धरैं। हम तिनकौं छिन मैं परिहरैं।
बिनु अपराध पुरुष हम मारैं। माया-मोह न मन मैं धारैं।
हमैं कहौ केतौ किन कोइ। चाहैं करन करैं हम सोइ।
नृप पुनि बिनती बहु बिधि करी। तब उरबसी बात उच्चरी।
बरष सात बीतैं हौं ऐहौं। एक रात्रि तोकौं सुख दैहौं।
बरष सात बीतैं सो आई। नृप तासौं मिलि रैनि बिताई।
प्रात होत चलिबे कौं चह्यौ। तब राजा तासौं यौं कह्यौ।
तू मोकौं छाँड़े कत जाइ। मोकौं तुव बिन छिन न सुहाइ।
जब या भाँति नृपति बहु कह्यौ। तब उरबसि उत्तर यौं दयौ।
यह तौ होनहार है नाहीं। सुरपुर छाँड़ि रहौं भुव माहीं!
जौ तुम मेरी इच्छा धरौ। गंधर्बनि कैं हित तप करौ।
तप कीन्हैं सो देहैं आग। ता सेती तुम कीजौ जाग।
जज्ञ कियैं गंध्रबपुर जैहौ। तहाँ आइ मोकौं तुम पैहौ।
नृप जग करि तिहिं लोक सिधायौ। मिलि उरबसी बहुत सुख पायौ।
जब या विधि बहु काल गँवायौ। तब बैराग नृपति मन आयौ।
बहुतै काल भोग मैं किए। पै संतोष न आयौ हिए।
श्रीनारायन कौं बिसरायौ। बिषय-हेत सब जनम गँवायौ।
या विधि जब विरक्त नृप भयौ। छाँड़ि उरबसी, बन कौं गयौ।
बन मैं जाइ तपस्या करी। विषय-वासना सब परिहरी।
हरि-पद सौं नृप ध्यान लगायौ। मिथ्या तनु कौ मोह भुलायौ।
हरि व्यापक सब जग मैं जान। हरि-प्रसाद पायौ निरबान।

तातैं बुध तिय-संगति तजैं। श्रीनारायन कौं नित भजैं।
सुक जैसैं नृप कौं समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ ॥२॥
॥४४८॥

च्यवन ऋषि की कथा *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राव। जैसो है हरि-भक्ति-प्रभाव।
हरि कौ भजन करै जो कोइ। जग-सुख पाइ मुक्ति लहै सोइ।
च्यवन रिषीस्वर बहु तप कियौ। ता सम और जगत नहि बियौ।
बामी ताकौं लियौ छिपाइ। तासौं रिषि नहि देइ दिखाइ।
ता आस्रम स्रजात नृप गयौ। तहाँ जाइ कै डेरा दयौ।
छाँड़ि तहीं सब राज-समाज। राजा गयौ अखेटक-काज।
नृप-कन्या तहँ खेलन गई। रिषि-दृग चमकत देखत भई।
पै तिहिं रिषि-दृग जाने नाहिं। खेलत सूल दए तिन माहिं।
रुधिर-धार रिषि-आँखिनि ढरी। नृप-कन्या सो देखत डरी।
सूल-व्यथा सब लोगनि भई। राजा कह्यौ, कहा भइ दई!
तहँ के बासी नृपति बुलाइ। बूझ्यौ, तब तिन कही सुनाइ।
च्यवन रिषि-आस्रम इहिं ठाइ। बिनती उनसौं कीजै जाइ।
नृप खोजत रिषी-आस्रम आयौ। रिषि-दृग देखत बहुत डरायौ।
कह्यौ, कियौ किन ऐसौ काज? कन्या कह्यौ, सुनौ महराज।
मोतैं बिन जानैं यह भयौ। रिषि के दृगनि सूल हौं दयौ।
नृप मनहीं मन बहु पछितायौ। रिषि सौं पुनि यह बचन सुनायौ।
महाराज, तुम तौ हौ साध। मम कन्या तैं भयौ अपराध।
या कन्या कौं प्रभु तुम बरौ। कटक-सूल किरपा करि हरौ।
लोग सकल नीके जब भए। नृप कन्या दै, गृह कौं गए।
रिषि समाधि हरि-चरन लगाई। कन्या रिषि-चरननि लौ लाई।
सुरपति ताकैं रूप लुभायौ। बहुरि कुबेर तहाँ चलि आयौ।
पै तिन तिहिं दिसि देख्यौ नाहिं। गए खिस्याइ दोउ मन माहिं।
चौदह बरष भए या भाइ। तब रिषि देख्यौ सीस उठाइ।
हाड़-चाम तन पर रहि गए। कृपावंत रिषि तापर भए।
अस्विनि-सुत इहिं अवसर आए। करि प्रनाम, यह बचन सुनाए।
जो कछु आज्ञा हमकौं होइ। छाँड़ि बिलंब, करैं अब सोइ।
कह्यौ, दृगनि कौ करौ उपाइ। तुरत नेत्र तिन दिए बनाइ।

कह्यौ, हम जज्ञ-भाग नहिं पावत। वैद्य जानि हमकौं बहरावत।
रिषि कह्यौ,मैं करिहौं जहँ जाग। देहौं तुमहिं अवसि करि भाग।
नृप-कन्या सौं रिषि यौं कह्यौ। तुव ऊपर प्रसन्न मैं भयौ।
जद्यपि कछु इच्छा नहिं मेरैं। तदपि उपाइ करौं हित तेरैं।
दुहुँ मिलि तीरथ माहिं नहाए। सुंदर रूप दुहूँ जन पाए।
दासी सहस प्रगट तहँ भईं। इंद्रलोक-रचना रिषि ठईं।
तिय कौं सुख रिषि बहु बिधि दियौ। तासु मनोरथ पूरन कियौ।
तब स्रजात रानी सौं कही। जब तैं कन्या रिषि कौं दई।
तब तैं मैं सुधि कछू न पाई। बिनु प्रसंग तहँ गयौ न जाई।
जग अरंभ करि, नृप तहँ गयौ। लखि रिषि-आस्रम बिस्मय भयौ।
कह्यौ, यह बिभव कहाँ तैं आयौ? किन यह ऐसौ भवन भनायौ?
इहिं अंतर नृप-तनया आई। पिता देखि, मिलिबे कौं धाई।
नृप ताकौं आदर नहिं दियौ। तैं यह कर्म कौन है कियौ?
बृद्ध रिषीस्वर कौं कहा भयौ? कुल कलंक तैं किहिं मिलि दयौ।
कह्यौ, जोग-बल रिषि सब कीनौ। मोहिं सुख सकल भाँति कौ दीनौ।
नृप प्रसन्न ह्वै रिषि पै आयौ। जग-प्रसंग कहिकै गृह ल्यायौ।
रानी सुता देखि सुत मान्यौ। धन्य जन्म अपनौ करि जान्यौ।
च्यवन नृपति कौं जज्ञ करायौ। अस्विनि-सुत-हित भाग उठायौ।
इंद्र क्रोध ह्वै रिषि सौं कह्यौ। ताहि भाग तुम काहैं दयौ?
पुनि मारन कौं बज्र उठायौ। पै रिषि कौं मारन नहिं पायौ।
इंद्र-हाथ ऊपर रहि गयौ। तिन कह्यौ, दई कहा यह भयौ?
कह्यौ,सुरनि तुम रिषिहिं सतायौ। तातैं कर रहि गयौ उचायौ।
इंद्र बिनय रिषि सौं बहु करी। तब रिषि कृपा ताहि पर धरी।
सुरपति-कर तब नीचैं आयौ। अस्विनि-सुत बलि सुर मैं पायौ।
ऐसौ है हरि-भक्ति-प्रभाव। बरनि कह्यौ मैं तुमसौं राव।
हरि की भक्ति करै जो कोइ। दुहूँ लोक कौ सुख तिहिं होइ।
सुक ज्यौं नृप सौं कहि-समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ ॥३॥
॥४४७॥

हलधर-विवाह *राग भैरो*

रबिबंसी भयौ रेवत राजा। ता सम जग दुतिया न बिराजा।
ता गृह जन्म रेवती लयौ। ताकौं ले सो ब्रह्मपुर गयौ।

विधि तिहिँ आदर दै बैठायौ। तब नृप मन मैं अति सुख पायौ।
तहाँ देखि अप्सरा-अखारा। नृपति कछू नहिं बचन उचारा।
जब अप्सरा नृत्य करि रही। तब राजा ब्रह्मा सौं कही।
मम पुत्री बय-प्रापत आहि। आज्ञा होइ, देउँ तिहिं ब्याहि।
ब्रह्मा कह्यौ, सुनौ नर-नाह। तुमसौं नृप जग मैं अब नाह।
हलधर कौं तुम देहु बिबाहि। ब्याह-जोग अब सोई आहि।
रेवत ब्याह कियौ भुवि आइ। आप कियौ तप बन मैं जाइ।
हलधर-ब्याह भयौ या भाइ। सूरदास जन दियौ सुनाइ ॥४॥
॥४४८॥

राजा अंबरीष की कथा *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-पद अंबरीष चित लायौ। रिषि-सराप तैं ताहि बचायौ।
रिषि कौं तापै फेरि पठायौ। सुक नृप कौं यौं कहि समुझायौ।
अंबरीष राजा हरि-भक्त। रहै सदा हरि-पद अनुरक्त।
स्रवन - कीरतन - सुमिरन करै। पद-सेवन-अरचन उर धरै।
बंदन दासपनौ सो करै। भक्तनि सख्य-भाव अनुसरै।
काय - निवेदन सदा बिचारै। प्रेम - सहित नवधा बिस्तारै।
नौमी - नेम भली विधि करै। दसमी कौं संजम बिस्तरै।
एकादसी करे निरहार। द्वादसि पोषै लै आहार।
पतिब्रता ता नृप की नारी। अह-निसि नृप की आज्ञाकारी।
इंद्री सुख कौं दोऊ त्यागि। धरैं सदा हरि-पद अनुराग।
ऐसी बिधि हरि पूजैं सदा। हरि-हित लावैं सब संपदा।
राज-काज कछु मन नहिं धरै। चक्र सुदरसन रच्छा करै।
घटिका दोइ द्वादसी जानि। रिषि आयौ, नृप कियौ सन्मान।
कह्यौ भोजन कीजै रिषिराइ। रिषि कह्यौ, आवत हौं मैं न्हाइ।
यह कहिकै रिषि गए अन्हान। काल बितायौ करत स्नान।
राजा कह्यौ, कहा अब कीजै। द्विजनि कह्यौ, चरनोदक लीजै।
राजा तब करि देख्यौ ज्ञान। या विधि होइ न रिषि-अपमान।
लै चरनोदक निज ब्रत साध्यौ। ऐसी विधि हरि कौं आराध्यौ।
इहिं अंतर दुरबासा आए। अंबरीष सौं बचन सुनाए।
सुनि राजा, तेरौ ब्रत टरौ। क्यौं करि तेरैं भोजन करौं?

कह्यौ नृपति, सुनियै रिषिराइ। मैं व्रत-हित यह कियौ उपाइ।
चरनोदक लै व्रत प्रतिपारयौ। अब लौं अन्न न मुख मैं डारयौ।
रिषि सक्रोध इक जटा उपारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी।
जब नृप ओर दृष्टि तिहिं करी। चक्र सुदरसन सो संहरी।
पुनि रिषिहू कौं जारन लाग्यौ। तब रिषि आपन जिय लै भाग्यौ।
ब्रह्मा - रुद्र - लोकहूँ गयौ। उनहूँ ताहि अभय नहिं दयौ।
बहुरौ रिषि बैकुंठ सिधायौ। करि प्रनाम यह बचन सुनायौ।
मैं अपराध भक्त कौ कीनौ। चक्र सुदरसन अति दुख दीनौ।
और कहूँ मैं ठौर न पायौ। असरन-सरन जानि कै आयौ।
महाराज अब रच्छा कीजै। मोकौं जरत राखि प्रभु लीजै।
हरि जू कह्यौ, सुनौ रिषिराइ। मो पै तू राख्यौ नहिं जाइ।
तैं अपराध भक्त कौ कीनौ। मैं निज भक्तनि कैं आधीनौ।
मम-हित भक्त सकल सुख तजैं। और सकल तजि मोकौं भजैं।
बिन मम चरन न उनकैं आस। परम दयालु सदा मम दास।
उनकैं मन नाहीं सत्राइ। तातैं कहौ उनहिं सौं जाइ।
तुमकौं लैहैं वेइ बचाइ। नाहीं या बिन और उपाइ।
इहाँ नृपति अतिहीं दुख छयौ। रिषि मम द्वारे तैं फिरि गयौ।
रिषि मग जोवत वर्ष वितायौ। पै भोजन तौहूँ न सिरायौ।
अंबरीष पै तब रिषि आयौ। हाथ जोरि पुनि सीस नवायौ।
रिषिहिं देखि नृप कह्यौ या भाइ। लेहु सुदरसन याहि बचाइ।
ब्राह्मन हरि हरि-भक्तनि प्यारौ। तातैं अब याकौं मति जारौ।
चक्र सुदरसन सीतल भयौ। अभय-दान दुरबासा लयौ।
पुनि नृप तिहिं भोजन करवायौ। रिषि नृप सौं यह बचन सुनायौ।
मैं नहिं भक्त महातम जान्यौ। अब तैं भली भाँति पहिचान्यौ।
सुक राजा सौं ज्यौं समुझायौ। सूरदास त्यौंहीं करि गायौ।
जो यह लीला सुनै-सुनावै। सो हरि-भक्ति पाइ सुख पावै ॥५॥
॥४४६॥

राग गूजरी

फिरत-फिरत बलहीन भयौ।
कहा करौं इहिं त्रास कृपानिधि, जप-तप कौ अभिमान गयौ।
धायौ धर-सर-सैल, विदिसि-दिसि, चक्र तहाँ हूँ जाइ लयौ।
जाँचे सिव-विरंचि-सुरपति सब, नैंकु न काहूँ सरन दयौ।

भाज्यौ फिर्यौ लोक-लोकनि मैं, पत्र पुरातन पवन दयौ।
सूरदास द्विज दीन जानि प्रभु, तब निज जन सनमुख पठयौ ॥६॥
॥४५०॥

राग भोपाल।

जन कौ हौं आधीन सदाई।
दुरबासा बैकुंठ गए जब, तब यह कथा सुनाई।
बिदित बिरद ब्रह्मन्य देव, तुम करुनामय सुखदाई।
जारत है मोहिं चक्र सुदरसन, हा प्रभु लेहु बचाई।
जिन तन-धन मोहिं प्रान समरपे, सील, सुभाव, बड़ाई।
ताकौ बिषम बिषाद अहो मुनि- मोपै सह्यौ न जाई।
उलटि जाहु नृप-चरन-सरन मुनि वहै राखिहै भाई।
सूरजदास दास की महिमा श्रीपति श्रीमुख गाई ॥७॥
॥४५१॥

सौभरि ऋषि की कथा *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राव। जैसौ है हरि-भक्ति प्रभाव।
हरि कौ भजन करै जो कोइ। जग-सुख पाइ मुक्ति लहै सोइ।
सौभरि रिषि जमुना-तट गयौ। तहाँ मच्छ इक देखत भयौ।
सहित कुटुँब सो क्रीड़ा करै। अति उत्साह हृदय मैं धरै।
ताहि देखि रिषिकैं मन आई। गृह-आस्रम है अति सुखदाई।
तप तजि कै गृह-आस्रम करौं। कन्या एक नृपति की बरौं।
कह्यौ मानधाता सौं जाइ। पुत्री एक देहु मोहिं राइ।
नृप कह्यौ देखि बृद्ध रिषि-देह। हैं पचास पुत्री मम गेह।
अंतःपुर भीतर तुम जाहु। बरैं तुम्हैं तिहिं करौं बिवाहु।
तब रिषि मन मैं कियौ बिचार। बिरध पुरुष कौं बरै न नार।
तप-बल कियौ रूप अति सुंदर। गयौ तहाँ जहँ नृप कौ मंदिर।
सब कन्यनि सौभरि कौं बर्‍यौ। रिषि बिवाह सबहिनि सौं कर्‍यौ।
रिषि तिनकैं हित गेह बनाए। तिनकैं भीतर बाग लगाए।
भोग समग्री भरे भँडार। दासी-दास गनत नहिं पार।
रिषि नारिनि मिलि बहु सुख पाए। सहस पचास पुत्र उपजाए।
तिनकैं बहुत भई संतान। कहँ लगि तिनकौं करौं बखान।

बहुत काल या भाँति बितायौ। पै रिषि मन संतोष न आयौ।
कह्यौ विषय सौं तृप्ति न होइ। केतौ भोग करौ किन कोइ।
या विधि जब उपज्यौ बैराग। तब तप करि कीन्हौ तन-त्याग।
सब नारिनि सहगामिनि कियौ। हरि जू तिनकौं निज पद दियौ।
तातैं बुध हरि-सेवा करैं। हरि-चरननि नितही चित धरैं।
सुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ ॥८॥

॥४५२॥

श्री गंगा-आगमन *राग भैरौ*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ नर-नाह। गंगा ज्यौं आई जग माहँ।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। सुनै सो भव तरि हरि-पुर जाइ।
सौवौं जज्ञ सगर जब ठयौ। इंद्र अस्व कौं हरि लै गयौ।
कपिलास्रम लै ताकौं राख्यौ। सगर-सुतनि तब नृप सौं भाष्यौ।
हम तिहुँ लोक माहिं फिरि आए। अस्व-खोज कतहूँ नहिं पाए।
आज्ञा होइ जाहिं पाताल। जाहु, तिन्हैं भाष्यौ भूपाल।
तिनके खोदैं सागर भए। कपिलाश्रम कौं ते पुनि गए।
अस्व देखि कह्यौ, धावहु-धावहु। भागि जाहि मति, विलँब न लावहु।
कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ। कोप-दृष्टि करि तिन्हैं जरायौ।
सगर नृपति जब यह सुधि पाई। अंसुमान कौं दियौ पठाई।
कपिल-स्तुति तिहिं बहुविधि कीन्ही। कपिल ताहि यह आज्ञा दीन्ही।
जज्ञ के हेतु अस्व यह लेहु। पितर तुम्हारे भए जु खेहु।
सुरसरि जब भुव ऊपर आवै। उनकौं अपनौ जल परसावै।
तबहीं उन सबकी गति होइ। ता बिन और उपाइ न कोइ।
अंसुमान राजा ढिग आइ। साठि सहस की कथा सुनाइ।
घोरा सगर राइ कौं दयौ। हर्ष-विषाद हृदय अति भयौ।
सगर राज मख पूरन कियौ। राज सो अंसुमान कौं दियौ।
अंसुमान पुनि राज बिहाइ। गंगा हेत कियौ तप जाइ।
याही विधि दिलीप तप कीन्हौ। पै गंगा जू बर नहिं दीन्हौ।
बहुरि भगीरथ तप बहु कियौ। तब गंगा जू दरसन दियौ।
कह्यौ, मनोरथ तेरौ करौं। पै मैं जब अकास तैं परौं।
मोकौं कौन धारना करै? नृप कह्यौ, संकर तुमकौं धरै।
तब नृप सिव की सेवा कीनी। सिव प्रसन्न ह्वै आज्ञा दीनी।

गंगा सौं नृप जाइ सुनाई। तब गंगा भूतल पर आई।
साठ सहस्र सगर के पुत्र। कीने सुरसरि तुरत पवित्र।
गंग-प्रवाह माहिं जो न्हाइ। सो पवित्र ह्वै हरिपुर जाइ।
गंगा इहिं बिधि भुव पर आई। नृप मैं तुमसौं भाषि सुनाई।
सुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ ॥९॥
॥४५३॥

श्री गंगा-विष्णु-पादोदक-स्तुति *राग बिलावल*

पिउ पद-कमल कौ मकरंद।
मलिन-मति मन-मधुप, परिहरि, बिषय नीरस मंद।
अमृत हूँ तैं अमल अति गुन, स्रवत निधि-आनंद।
परम सीतल जानि संकर, सिर धर्‍यौ ढिग चंद।
नाग-नर-पसु सबनि चाह्यौ सुरसरी कौ बुंद।
सूर तीनौ लोक परस्यौ, सुरसरी जस-छंद ॥१०॥
॥४५४॥

राग भैरौ

जय जय, जय जय, माधव-बेनी।
जग हित प्रकट करी करुनामय, अगतिनि कौं गति दैनी।
जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप, संग सजी अघ-सैनी।
जनु ता लगि तरवारि त्रिबिक्रम, धरि करि कोप उपैनी।
मेरु मूठि, बर-बारि पाल-छिति, बहुत बित्त की लैनी।
सोभित अंग तरंग त्रिसंगम, धरी धार अति पैनी।
जा परसैं जीतैं जम-सैनी, जमन, कपालिक, जैनी।
एकै नाम लेत सब भाजै, पीर सो भव-भय-सैनी।
जा जल-सुद्ध निरखि सन्मुख ह्वै, सुंदरि सरसिज-नैनी।
सूर परस्पर करत कुलाहल, गर-सृग-पहरावैनी ॥११॥
॥४५५॥

राग बिलावल

गंग-तरंग बिलोकत नैन।
अतिहिं पुनीत विष्नु-पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुनि चैन।

परम पवित्र, मुक्ति की दाता, भागीरथहिं भव्य वर दैन।
द्वादस वर्ष सेए निसिबासर, तब संकर भाषी है लैन।
त्रिभुवन-हार सिंगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन।
सूरजदास विधाता कैं तप प्रगट भई संतनि सुख दैन ॥१२॥
॥४५६॥

परशुराम-अवतार *राग बिलावल*

ज्यौं भयौ परसुराम अवतार। कहौं सो कथा, सुनौ चित धार।
सहसबाहु रविवंसी भयौ। सरिता-तट इक दिन सो गयौ।
निज भुज-बल तिन सरिता गही। बढ़ि गयो जल,तब रावन कही।
नृप तुम हमसौं करौ लराइ। कह्यौ, करौं मध्यान बिताइ।
बहुरो क्रोधवंत जुध चह्यौ। सहसबाहु तब ताकौं गह्यौ।
बहुरो नृप करिकै मध्यान। दोनौ ताकौं छाँड़ि निदान।
फिरि नृप जमदग्न्यास्रम आयौ। कामधेनु बल करिकै धायौ।
परसुराम जब यह सुधि पाई। मार्‍यौ ताहि तुरतहीं धाई।
तासु सुतनि जमदग्निहिं मार्‍यौ। परसुराम रेनुका हँकार्‍यौ।
मारे छत्री इकइस वार। यौं भयौ परसुराम अवतार।
सुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ।
॥ १३ ॥ ४५७ ॥

राग धनाश्री

परसुराम जमदग्नि-गेह लीनौ अवतारा।
माता ताकी गई जमुन जल कौं इक बारा।
लागी तहाँ अबार तिहिं, रिषि करि क्रोध अपार।
परसुराम सौं यौं कही, माँकौं बेगि सँहार।
और सुतनि तब कही, पिता, नहिं कीजै ऐसी।
क्रोधवंत रिषि कह्यौ, करो इनहूँ सौं वैसी।
परसुराम तिन सबनि कौं, मार्‍यौ खड्ग-प्रहार।
रिषि कह्यौ होइ प्रसन्न, वर माँगौ देउँ, कुमार।
परसुराम तब कह्यौ, यहै वर देहु तात अब।
जानैं नाहिंन मुए, फेरिकै जीवैं ये सब।
रिषि कह्यौ यह वर दियौ मैं, इनकौं देहु उठाइ।
परसुराम उनकौं दियौ, सोवत मनौ जगाइ।

परसुराम बन गए, तहाँ दिन बहुत लगाए।
सहसबाहु तिहि समय जमदगिनि-आश्रम आए।
कामधेनु जमदग्नि की, लै गयौ नृपति छिनाइ।
परसुराम कौं बोलि रिषि दियौ बृत्तांत सुनाइ।
परसुराम सुनि पिता-बचन, ताकौं संहार्‌यौ।
कामधेनु दइ आनि, बचन रिषि कौ प्रतिपार्‌यौ।
सहसबाहु के सुतनि पुनि, राखी घात लगाइ।
परसुराम जब बन गयौ, मार्‌यौ रिषि कौं धाइ।
रिषि की यह गति देखि, रेनुका रोइ पुकारी।
परसुराम, तुम आइ लगत क्यौं नहीं गोहारी।
यह सुनि कै आयो तुरत, मार्‌यो तिन्हैं प्रचारि।
बहुरौ जिय धरि क्रोध हते, छत्री इकइस बार।
जग अराज ह्वै गयौ, रिषिनि तब अति दुख पायौ।
लै पृथ्वी कौ दान, ताहि फिरि बनहिं पठायौ।
बहुरि राज दियौ छत्रियनि, भयौ रिषिनि आनंद।
सूरदास पावत हरष, गावत गुन गोबिंद ॥१४॥
॥ ४५८ ॥

रामावतार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
जय अरु विजय पारषद दोइ। बिप्र-सराप असुर भए सोइ।
एक बराह रूप धरि मार्‌यौ। इक नरसिंह - रूप संहार्‌यौ।
रावन - कुंभकरन सोइ भए। राम जनम तिनकैं हित लए।
दसरथ नृपति अजोध्या - राव। ताकैं गृह कियौ आविर्भाव।
नृप सौं ज्यौं सुकदेव सुनायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ ॥१५॥
॥ ४५९ ॥

श्रीराम-जन्म (बालकांड) *राग कान्हरौ*

आजु दसरथ कैं आँगन भीर।
ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम-सरीर।
फूले फिरत अजोध्या-बासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परसपर, आनँद-नैननि नीर।

त्रिदस-नृपति, रिषि ब्यौम-बिमाननि-देखत रह्यौ न धीर।
त्रिभुवन-नाथ दयालु दरस दै, हरी सबनि की पीर।
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल सूर सब जाचक, जे जाँचे रघुबीर॥ १६॥
॥४६०॥

राग कान्हरौ

अजोध्या बाजति आजु बधाई।
गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता, रामचंद्र निधि आई।
गावैं सखी परसपर मंगल, रिषि अभिषेक कराई।
भीर भई दसरथ कैं आँगन, सामवेद-धुनि छाई।
पूछत रिषिहिं अजोध्या कौ पति, कहियै जनम गुसाईं।
भौम वार, नौमी तिथि नीकी, चौदह भुवन बड़ाई।
चारि पुत्र दसरथ कैं उपजे, तिहूँ लोक ठकुराई।
सदा-सर्बदा राज राम कौ, सूर दादि तहँ पाई॥१७॥
॥४६१॥

राग कान्हरौ

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
देस-देस तैं टीकौ आयौ, रतन-कनक-मनि-हीर।
घर-घर मंगल होत बधाई, अति पुरवासिनि भीर।
आनँद-मगन भए सब डोलत, कछू न सोध सरीर।
मागध-बंदी-सूत लुटाए, गो-गयंद-हय-चीर।
देत असीस सूर, चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर॥ १८॥
॥४६२॥

शर-क्रीडा

राग बिलावल

करतल-सोभित बान धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ।
दसरथ-कौसिल्या के आगैं, लसत सुमन की छहियाँ।
मानौ चारि हंस सरवर तैं बैठे आइ सदेहियाँ।
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँद-निधि सब कहियाँ।

यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
सूरदास हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ ॥१९॥
॥ ४६३ ॥

राग बिलावल

धनुहीँ-बान लए कर डोलत।
चारौ बीर संग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत।
लछिमन भरत सत्रुहन सुंदर, राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार, परम पुरुषारथ, मुक्ति-धर्म-धन-धाम।
कटि-तट पीत पिछौरी बाँधे, काकपच्छ धरे सीस।
सर-क्रीड़ा दिन देखन आवत, नारद, सुर तैंतीस।
सिव-मन सकुच,इंद्र-मन आनँद,सुख-दुख बिधिहिं समान।
दिति दुर्बल अति; अदिति हृष्टचित, देखि सूर संधान ॥२०॥
॥४६४॥

विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा *राग सारंग*

दसरथ सौं रिषि आनि कह्यौ।
असुरनि सौं जग होन न पावत,राम-लषन तब संग दयौ।
मारि ताड़का, यज्ञ करायौ, बिस्वामित्र अनंद भयौ।
सीय-स्वयंवर जानि सूर-प्रभु कौं लै रिषि ता ठौर गयौ ॥२१॥
॥४६५॥

अहल्योद्धार *राग सारंग*

गंगा-तट आए श्रीराम।
तहाँ पषान रूप पग परसे, गौतम रिषि की वाम।
गई अकास देव तन धरिकै, अति सुंदर अभिराम।
सूरदास प्रभु पतित-उधारन-बिरद, कितौ यह काम! ॥२२॥
॥४६६॥

धनुष-भंग *राग सारंग*

चितै रघुनाथ-वदन की ओर।
रघुपति सौं अब नेम हमारौ, विधि सौं करति निहोर।

यह अति दुसह पिनाक पिता-प्रन, राघव-वयस किसोर।
इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यौं, सखि, यह संसय मोर।
सिय-अँदेस जानि सूरज-प्रभु, लियौ करज की कोर।
टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ, ज्यौं तारागन भोर ॥२३॥
॥४६७॥

दशरथ का जनकपुर-आगमन *राग सारंग*

महाराज दसरथ तहँ आए।
बैठे जाइ जनक-मंदिर महँ, मोतिनि चौक पुराए।
बिप्र लगे धुनि बेद उचारन, जुवतिनि मंगल गाए।
सुर-गँधर्व-गन कोटिक आए, गगन बिमाननि छाए।
राम-लषन अरु भरत-सत्रुहन ब्याह निरखि सुख पाए।
सूर भयौ आनंद नृपति-मन, दिवि दुंदुभी बजाए ॥२४॥
॥४६८॥

कंकण-मोचन *राग आसावरी*

कर कंपै, कंकन नहिं छूटै।
राम सिया-कर-परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।
गावत नारि गारि सब दै दै, तात-भ्रात की कौन चलावै।
तब कर-डोरि छुटै रघुपति जू, जब कौसिल्या माता आवै।
पूँगी-फल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति, जिती जनक की।
धरे निसान अजिर गृह मंगल, बिप्र बेद-अभिषेक करायौ।
सूर अमित आनंद जनकपुर, सोइ सुकदेव पुराननि गायौ ॥२५॥
॥४६९॥

धनुष-भंग; पाणिग्रहण *राग नट*

ललित गति राजत अति रघुबीर।
नरपति-सभा-मध्य मनौ ठाढ़े, जुगल हंस मति धीर।
अलख-अनंत-अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तुनीर।
कर धनु, काकपच्छ सिर सोभित, अंग-अंग दोउ बीर।
भूषन बिबिध बिसद अंबर जुत, सुंदर स्याम सरीर।
देखत मुदित चरित्र सबै सुर, ब्यौम-बिमाननि भीर।

प्रमुदित जनक निरखि मुख-अंबुज, प्रगट नैन मधि नीर।
तात-कठिन-प्रन जानि जानकी, आनति नहिं उर धीर।
करुनामय जब चाप लियौ कर बाँधि सुदृढ़ कटि-चीर।
भूभृत सीस नमित जो गर्बगत, पावक सींच्यौ नीर।
डोलत महि अधीर भयौ फनिपति, कूरम अति अकुलान।
दिग्गज चलित, खलित मुनि-आसम, इंद्रादिक भय मान।
रवि मग तज्यौ, तरकि ताके हय, उत्पथ लागे जान।
सिव-बिरंचि ब्याकुल भए धुनि सुनि, जब तोर्‌यौ भगवान।
भंजन-सब्द प्रगट अति अद्‌भुत, अष्ट दिसा नभ-पूरि।
स्रवन-हीन सुनि भए अष्टकुल नाग गरब भय चूरि।
इष्ट-सुरनि बोलत नर तिहिं सुनि, दानव-सुर बड़ सूर।
मोहित बिकल जानि जिय सबहीं, महा प्रलय कौ मूर।
पानि-ग्रहन रघुबर बर कीन्हौ, जनकसुता सुख दीन।
जय-जय-धुनि सुनि करत अमरगन, नर-नारी लवलीन।
दुष्टनि दुख, सुख संतनि दीन्हौ, नृप-ब्रत पूरन कीन।
रामचंद्र दसरथहिं बिदा करि सूरदास रस-भीन ॥२६॥
॥४७०॥

दशरथ-विदा राग सारंग

दसरथ चले अवध आनंदत।
जनकराइ बहु दाइज दै करि, बार-बार पद बंदत।
तनया जामातनि कौं समदत, नैन नीर भरि आए।
सूरदास दसरथ आनंदित, चले निसान बजाए ॥२७॥
॥ ४७१ ॥

परशुराम-मिलाप राग सारग

परसुराम तेहिं औसर आए।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यौ, क्रोधित बचन सुनाए।
बिप्र जानि रघुबीर धीर दोउ, हाथ जोरि, सिर नायौ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि आयौ।
तुम तौ द्विज, कुल-पूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई?
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक-धनुष चढ़ाई।

तबहूँ रघुपति न कीन्हौ, धनुष न बान सँभास्यौ।
सूरदास प्रभु-रूप समुझि, बन परसुराम पग धास्यौ ॥२८॥
॥ ४७२ ॥

अवधपुरी-प्रवेश राग सारंग

अवधपुर आए दसरथ राइ।
राम, लषन अरु भरत, सत्रुहन, सोभित चारौ भाइ।
घुरत निसान, मृदंग-संख-धुनि, भेरि-झाँझ-सहनाइ।
उमँगे लोग नगर के निरखत, अति सुख सबहिनि पाइ।
कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहिं बनाइ।
यह सुख निरखि मुदित सुर-नर-मुनि, सूरदास बलि जाइ ॥२९॥
॥ ४७३ ॥

(अयोध्या कांड)

राम-वन-गमन राग सारंग

महाराज दसरथ मन धारी।
अवधपुरी कौ राज राम दै, लीजै ब्रत बनचारी।
यह सुनि बोली नारि कैकई, अपनौ बचन सँभारौ।
चौदह बर्ष रहैं बन राघव, छत्र भरत-सिर धारौ।
यह सुनि नृपति भयौ अति ब्याकुल, कहत कछू नहिं आई।
सूर रहे समुझाइ बहुत, पै कैकई-हठ नहिं जाई ॥३०॥
॥ ४७४ ॥

राग कान्हरौ

महाराज दसरथ यौं सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, बैदेही, सुमिरि नीर दृग मोचत।
त्रिया-चरित मतिमंत न समुझत, उठि प्रछालि मुख धोवत।
अति बिपरीत रीति कछु औरै, बार-बार मुख जोवत।
परम कुबुद्धि कह्यौ नहिं समुझति, राम-लछन हँकराए।
कौसिल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन नीर ढरकाए।

बिह्वल तन-मन, चकृत भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए !
गदगद-कंठ सूर कोसलपुर सोर सुनत दुख पाए ॥३१॥
॥४७५॥

कैकेयी-वचन, श्रीराम के प्रति *राग सारंग*

सकुचनि कहत नहीं महराज
चौदह बर्ष तुम्हैं बन दीन्हौं, मम सुत कौं निज राज ।
पितु-आयसु सिर धरि रघुनायक, कौसिल्या ढिग आए ।
सीस नाइ बन-आज्ञा माँगी, सूर सुनत दुख पाए ॥ ३२ ॥
॥४७६॥

दसरथ-विलाप *राग सारंग*

रघुनाथ पियारे, आजु रहौ (हो) ।
चारि जाम बिस्राम हमारैं, छिन-छिन मीठे बचन कहौ (हो) ।
बृथा होहु बर बचन हमारौ, कैकई जीव कलेस सहौ (हो) ।
आतुर ह्वै अब छाँड़ि अवधपुर, प्रान-जिवन कित चलन कहौ (हो) ।
बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु पुनि पंथ गहौ (हो) ।
अब सूरज दिन दरसन दुरलभ, कलित कमल कर कंठ गहौ (हो) ॥३३॥
॥४७७॥

श्रीराम-बचन, जानकी के प्रति *राग गूजरी*

तुम जानकी, जनकपुर जाहु ।
कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु ।
तजि वह जनक-राज-भोजन-सुख, कत तृन-तलप, बिपिन-फल, खाहु !
ग्रीषम कमल-बदन कुम्हिलैहै, तजि सर निकट दूरि कित न्हाहु ।
जनि कछु प्रिया, सोच मन करिहौ, मातु-पिता-परिजन-सुख लाहु ।
तुम घर रहौ सीख मेरी सुनि, नातरु बन बसिकै पछिताहु ।
हौं पुनि मानि कर्म कृत रेखा, करिहौं तात-बचन-निरबाहु ।
सूर सत्य जो पतिब्रत राखौ, चलौ संग जनि, उतहीं जाहु ॥३४॥
॥४७८॥

जानकी-बचन, श्रीराम के प्रति *राग केदारौ*

ऐसौ जिय न धरौ रघुराइ ।
तुम-सौ प्रभु तजि मो सी दासी, अनत न कहूँ समाइ ।

तुम्हरो रूप अनूप भानु ज्यौं, जब नैननि भरि देखौं।
ता छिन हृदय-कमल-प्रफुलित ह्वै, जनम सफल करि लेखौं।
तुम्हरे चरन-कमल सुख-सागर, यह ब्रत हौं प्रतिपलिहौं।
सूर सकल सुख छाँड़ि आपनौ, बन-बिपदा-सँग चलिहौं ॥३५॥
॥४७९॥

श्रीराम-वचन, लक्ष्मण के प्रति *राग गूजरी*

तुम लछिमन निज पुरहिं सिधारौ।
बिछुरन-भेँट देहु लघु बंधू, जियत न जैहै सूल तुम्हारौ।
यह भावी कछु और काज है, को जो याकौ मेटनहारौ।
याकौ कहा परेखौ-निरखौ, मधु छीलर, सरितापति खारौ।
तुम मति करौ अवज्ञा नृप की, यह दुख तौ आगे कौ भारौ।
सूर सुमित्रा अंक दीजियौ, कौसिल्याहिं प्रनाम हमारौ ॥३६॥
॥४८०॥

लक्ष्मण का उत्तर *राग सारंग*

लछिमन नैन-नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए।
अंतरजामी प्रीति जानि कै, लछिमन लीन्हे साथ।
सूरदास रघुनाथ चले बन, पिता-वचन धरि माथ ॥ ३७ ॥
॥४८१॥

महाराज दशरथ का पश्चात्ताप *राग कान्हरौ*

फिरि-फिरि नृपति चलावत बात।
कहु री! सुमति कहा तोहिं पलटी, प्रान-जिवन कैसैं बन जात!
ह्वै बिरक्त, सिर जटा धरैं, द्रुम-चर्म, भस्म सब गात।
हा हा राम, लछन अरु सीता, फल भोजन जु डसावैं पात।
बिन रथ रूढ़, दुसह दुख मारग, बिन पद-त्रान चलैं दोउ भ्रात।
इहिं बिधि सोच करत अतिहीं नृप, जानकि-ओर निरखि बिलखात।
इतनी सुनत सिमिटि सब आए, प्रेम सहित धारे अँसुपात।
ता दिन सूर सहर सब चक्रित, सबर-सनेह तज्यौ पितु-मात ॥३८॥
॥४८२॥

राम-वन-गमन 	*राग नट*

आजु रघुनाथ पयानो देत।
बिह्वल भए स्रवन सुनि पुरजन, पुत्र-पिता कौ हेत।
ऊँचे चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत-मुख देखे लेत।
रामचंद्र से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यौं यह खेत।
देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यौं केत।
तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत।
कटि तट तून, हाथ सायक-धनु, सीता बंधु समेत।
सूर गमन गह्वर कौ कीन्हौं जानत पिता अचेत ॥३९॥
॥४८३॥

लक्ष्मण-केवट-संवाद 	*राग मारू*

लै भैया केवट, उतराई।
महाराज रघुपति इत ठाढ़े, तैं कत नाव दुराई?
अबहिं सिला तैं भई देव-गति, जब पग-रेनु छुवाई।
हौं कुटुंब काहैं प्रतिपारौं, वैसी मति ह्वै जाई।
जाकी चरन-रेनु की महि मैं, सुनियत अधिक बड़ाई।
सूरदास प्रभु अगनित महिमा, बेद पुराननि गाई ॥४०॥
॥४८४॥

केवट-विनय 	*राग कान्हरौ*

नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
प्रगट प्रताप चरन कौ देखौं, ताहि कहाँ पुनि पाऊँ?
कृपासिंधु पै केवट आयौ, कंपत करत सो बात।
चरन परसि पाषान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात?
जो यह बधू होइ काहू की, दारु-स्वरूप धरे।
छूटै देह, जाइ सरिता तजि, पग सौं परस करे।
मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै।
सूरजदास चढ़ौ प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै ॥ ४१ ॥
॥ ४८५ ॥

राग रामकली

मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवनपति राई।

मो देखत पाहन तरे, मेरी काठ की नाई।
मैं खेई ही पार कौं, तुम उलटि मँगाई।
मेरौ जिय यौंही डरै, मति होहि सिलाई।
मैं निरबल बित-बल नहीं, जो और गढ़ाऊँ।
मो कुटुंब याही लग्यौ, ऐसी कहँ पाऊँ?
मैं निर्धन, कछु धन नहीं, परिवार घनेरौ।
सेमर-ढाकहि काटि कै, बाँधौं तुम बेरौ।
बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर नहिं मानै।
मन प्रतीति नहिं आवई, उड़िबौ ही जानै।
नेरैं ही जलथाह है, चलौ तुम्हैं बताऊँ।
सूरदास की बीनती, नीकैं पहुँचाऊँ ॥४२॥
॥ ४८६ ॥

पुरवधू-प्रश्न *राग रामकली*

सखी री, कौन तिहारे जात।
राजिवनैन धनुष कर लीन्हे, बदन मनोहर गात?
लज्जित होहिं पुरवधू पूछैं, अंग-अंग मुसकात।
अति मृदु चरन पंथ-बन-बिहरत, सुनियत अद्भुत बात।
सुंदर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात।
देखि मनोहर तीनौं मूरति, त्रिविध-ताप-तन जात ॥४३॥
॥ ४८७ ॥

राग गौरी

अरी अरी सुंदरि नारि सुहागिनि, लागैं तेरैं पाउँ।
किहिं ग्राँ के तुम बीर बटाऊ, कौन तुम्हारौ गाउँ।
उत्तर दिसि हम-नगर अजोध्या, है सरजू कैं तीर।
बड़ कुल, बड़े भूप, दसरथ सखि, बड़ौ नगर गंभीर।
कौनैं गुन बन चलीं बधू तुम, कहि मोसौं सति भाउ।
वह घर-द्वार छाँड़ि कै सुंदरि, चली पियादे पाँउ।
सासु की सौति सुहागिनि सो सखि, अतिहीं पिय की प्यारी।
अपने सुत कौं राज दिवायौ, हमकौं देस निकारी।
यह बिपरीति सुनी जब सबहीं, नैननि ढार्‌यौ नीर।

आजु सखी चलु भवन हमारैं, सहित दोउ रघुबीर।
बरष चतुरदस भवन न बसिहैं, आज्ञा दीन्ही राइ।
उनके बचन सत्य करि सजनी, बहुरि मिलैंगे आइ।
बिनती विहँसि सरस मुख सुंदरि, सिय सौं पूछी गाथ।
कौन बरन तुम देवर सखि री, कौन तिहारौ नाथ?
कटि तट पट पीतांबर काछे, धारे धनु-तूनीर।
गौर बरन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम सरीर।
तीनि जने सोभा त्रिलोक की, छाँड़ि सकल पुरधाम।
सूरदास-प्रभु-रूप चकित भए, पंथ चलत नर-बाम ॥४४॥
॥४८८॥

राग धनाश्री

कहि धौं सखी बटाऊ को हैं?
अद्भुत बधू लिए सँग डोलत देखत त्रिभुवन मोहैं।
परम सुसील सुलच्छन जोरी, बिधि की रची न होइ।
काकी तिनकौं उपमा दीजै, देह धरे धौं कोइ।
इनमैं को पति आहिं तिहारे, पुरजनि पूछैं धाइ।
राजिवनैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ।
गईं सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बास।
सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेतिं उसास ॥४५॥
॥४८९॥

दशरथ-तनु-त्याग

राग धनाश्री

तात बचन रघुनाथ माथ धरि, जब बन गौन कियौ।
मंत्री गयौ फिरावन रथ लै, रघुबर फेरि दियौ।
भुजा छुड़ाइ, तोरि तृन ज्यौं हित, कियौ प्रभु निठुर हियौ।
यह सुनि भूप तुरत तनु त्याग्यौ, बिछुरन-ताप-तयौ।
सुरति-साल-ज्वाला उर अंतर, ज्यौं पावकहिं पियौ।
इहिं बिधि बिकल सकल पुरबासी, नाहिंन चहत जियौ।
पसु-पंछी तृन-कन त्याग्यौ अरु बालक पियौ न पयौ।
सूरदास रघुपति के बिछुरैं, मिथ्या जनम भयौ ॥४६॥
॥४९०॥

कौशल्या-विलाप, भरत-आगमन *राग गूजरी*

रामहिं राखौ कोऊ जाइ।
जब लगि भरत अजोध्या आवैं कहति कौसिला माइ।
पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, वचन कह्यौ बिलखाइ।
दसरथ-बचन राम बन गवने, यह कहियौ अरथाइ।
आए भरत, दीन ह्वै बोले, कहा कियौ कैकइ माइ?
हम सेवक वै त्रिभुवनपति, कत स्वान सिंह-बलि खाइ।
आजु अयोध्या जल नहिं अँचवौं, मुख नहिं देखौं माइ।
सूरदास राघव-बिछुरन तैं, मरन भलौ दव लाइ ॥४७॥
॥४६१॥

भरत-वचन, माता के प्रति *राग केदारौ*

तैं कैकई कुमंत्र कियौ।
अपने कर करि काल हँकार्‌यौ, हठ करि नृप-अपराध लियौ।
श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसैं, तेरौ पाहन-कठिन हियौ।
मो अपराधी के हित कारन, तैं रामहिं बनबास दियौ।
कौन काज यह राज हमारैं, इहिं पावक परि कौन जियौ?
लोटै सूर धरनि दोउ बंधू, मनौ तपत-बिष बिषम पियौ ॥४८॥
॥४६२॥

राग सोरठ

राम जू कहाँ गए री माता?
सूनौ भवन, सिंहासन सूनौ, नाहीं दसरथ ताता।
धृग तव जन्म, जियन धृग तेरौ, कही कपट-मुख बाता।
सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखी बिधाता।
मुख अरबिंद देखि हम जीवत, ज्यौं चकोर ससि राता।
सूरदास श्रीरामचंद्र बिनु कहा अजोध्या नाता ॥४९॥
॥४६३॥

महाराज दशरथ की अंत्येष्टि *राग कान्हरौ*

गुरु बसिष्ठ भरतहिं समुझायौ।
राजा कौ परलोक सँवारौ, जुग-जुग यह चलि आयौ।

चंदन अगर सुगंध और घृत, बिधि करि चिता बनायौ।
चले बिमान संग गुरु-पुरजन, तापर नृप पौढ़ायौ।
भस्म अंत तिल-अंजलि दीन्हीं, देव बिमान चढ़ायौ।
दिन दस लौं जलकुंभ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ।
जानि एकादस बिप्र बुलाए, भोजन बहुत करायौ।
दीन्हौ दान बहुत नाना बिधि, इहिं बिधि कर्म पुजायौ।
सब करतूति कैकई कैं सिर, जिन यह दुख उपजायौ।
इहिं बिधि सूर अयोध्या-बासी, दिन-दिन काल गँवायौ ॥५०॥
॥४६४॥

भरत का चित्रकूट-गमन *राग सारंग*

राम पै भरत चले अतुराइ।
मनहीं मन सोचत मारग मैं, दई, फिरैं क्यौं राघवराइ!
देखि दरस चरननि लपटाने, गदगद कंठ न कछु कहि जाइ।
तीनौ हृदय लगाइ सूर प्रभु, पूछत भद्र भए क्यौं भाइ? ॥५१॥
॥४६५॥

राग केदारौ

भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने।
मुंडित केस-सीस, बिहवल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने।
तात-मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।
मोह-मगन, लोचन जल-धारा, बिपति न हृदय समाइ।
लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहिं समुझाई।
दारुन दुख दवारि ज्यौं तृन-बन, नाहिंन बुझति बुझाई।
दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे।
सूरदास स्वामी करुनामय, नैन न जात उघारे ॥५२॥
॥ ४६६ ॥

श्रीराम-भरत-संवाद *राग केदारौ*

तुमहिं बिमुख रघुनाथ, कौन बिधि जीवन कहा बनै।
चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै।
हठ करि रहे, चरन नहिं छाँड़े, नाथ, तजौ निठुराई।
परम दुखी कौसल्या जननी, चलौ सदन रघुराई।

चौदह बरष तात की आज्ञा, मोपै मेटि न जाई।
सूर स्वामि की पाँवरि सिर धरि, भरत चले बिलखाई॥५३॥
॥४९७॥

रामोपदेश, भरत-प्रति *राग मारू*

बंधू, करियौ राज सँभारे।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-विप्र प्रतिपारे।
कौसल्या - कैकई - सुमित्रा - दरसन साँझ - सबारे।
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, परजा-हेतु बिचारे।
भरत गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमँगि जल ढारे।
सूरदास प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे॥५४॥
॥४९८॥

भरत-बिदा *राग सारग*

राम यौं भरत बहुत समुझायौ।
कौसिल्या, कैकई, सुमित्रहिं, पुनि-पुनि सीस नवायौ।
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, अतिहीं प्रेम बढ़ायौ।
बालक प्रतिपालक तुम दोऊ, दसरथ-लाड़ लड़ायौ।
भरत-सत्रुहन कियौ प्रनाम, रघुबर तिन्ह कंठ लगायौ।
गदगद गिरा, सजल अति लोचन, हिय सनेह-जल छायौ।
कीजै यहै बिचार परसपर, राजनीति समुझायौ।
सेवा मातु, प्रजा-प्रतिपालन, यह जुग-जुग चलि आयौ।
चित्रकूट तैं चले खीन-तन, मन बिस्राम न पायौ।
सूरदास बलि गयौ राम कैं, निगम नेति जिहिं गायौ॥५५॥
॥४९९॥

(अरण्यकांड)

सूपर्णखा-नासिकोच्छेदन *राग मारू*

काम-बिवस व्याकुल-उर-अंतर, राच्छसि एक तहाँ चलि आई।
हँसि कहि कछू राम सीता सौं, तिहिं लछिमन कैं निकट पठाई।
भृकुटी कुटिल, अरुन अति लोचन, अगिनि-सिखा-मुख कह्यौ फिराई।

री बौरी, सठ भई मदन-बस, मेरैं ध्यान चरन रघुराई।
बिरह-बिथा तन गई लाज छुटि, बारंबार उठै अकुलाई।
रघुपति कह्यौ, निलज्ज निपट तू, नारि राच्छसी ह्याँ तैं जाई।
सूरदास प्रभु इक पतिनीव्रत, काटी नाक गई खिसिआई ॥५६॥
॥ ५०० ॥

खर-दूषण-वध *राग सारंग*

खर-दूषण यह सुनि उठि धाए।
तिनकैं संग अनेक निसाचर, रघुपति-आस्रम आए।
श्रीरघुनाथ-लछन ते मारे, कोउ एक गए पराए।
सुर्पनखा ये समाचार सब, लंका जाइ सुनाए।
दसकंधर-मारीच निसाचर, यह सुनि कै अकुलाए।
दंडक बन आए छल करि कै, सूर राम लखि धाए ॥५७॥
॥ ५०१ ॥

राग सारंग

राम धनुष अरु सायक साँधे।
सिय-हित मृग पाछैं उठि धाए, बलकल बसन, फ़ेंट दृढ़ बाँधे।
नव-घन, नील-सरोज बरन बपु, बिपुल बाहु, केहरि-फल-काँधे।
इंदु-बदन, राजीव-नैन बर, सीस जटा सिव-सम सिर बाँधे।
पालत, सृजत, सँहारत, सँतत, अंड अनेक अवधि पल आधे।
सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे ॥५८॥
॥ ५०२ ॥

सीता-हरण *राग केदारौ*

सीता पुहुप-बाटिका लाई।
बारंबार सराहत तरुबर, प्रेम-सहित सींचे रघुराई।
अंकुर-मूल भए सो पोषे, क्रम-क्रम लगे फूल फल आई।
नाना भाँति पाँति सुंदर मनौ कंचन की है लता बनाई।
मृग-स्वरूप मारीच धर्‌यौ तब, फेरि चल्यौ बारक जो दिखाई।
श्रीरघुनाथ धनुष कर लीन्हौ, लागत बान देव-गति पाई।
हा लछिमन, सुनि टेर जानकी, बिकल भई, आतुर उठि धाई।
रेखा खैंचि, बारि बंधन मय, हा रघुबीर कहाँ हौ भाई।

रावन तुरत बिभूति लगाए, कहत आइ, भिच्छा दै माई।
दीन जानि, सुधि आनि भजन की, प्रेम सहित भिच्छा लै आई।
हरि सीता लै चल्यौ डरत जिय, मानौ रंक महानिधि पाई।
सूर सीय पछितात यहै कहि, करम-रेख मेटी नहिं जाई॥५९॥
॥५०३॥

राग मारू

इहिं बिधि बन बसे रघुराइ।
डासि कै तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ।
जगत-जननी करी बारी, मृगा चरि चरि जाइ।
कोपि कै प्रभु बान लीन्हौं, तबहिं धनुष चढ़ाइ।
जनक-तनया धरी अगिनि मैं, छाया रूप बनाइ।
यह न कोऊ भेद जानै, बिना श्री रघुराइ।
कह्यौ अनुज सौं, रहौ ह्याँ तुम, छाँड़ि जनि कहुँ जाइ।
कनक-मृग मारीच मार्‌यौ, गिर्‌यौ, लषन सुनाइ।
गयौ सो दै रेख, सीता कह्यौ सो कहि नहिं जाइ।
तबहिं निसिचर गयौ छल करि, लई सीय चुराइ।
गीध ताकौं देखि धायौ, लर्‌यौ सूर बनाइ।
पंख काटैं गिर्‌यौ, असुर तब गयौ लंका धाइ॥६०॥
॥५०४॥

सीता का अशोक-वन-वास

राग सारंग

बन असोक मैं जनक-सुता कौं रावन राख्यौ जाइ।
भूखऽरु प्यास, नींद नहिं आवै, गई बहुत मुरझाइ।
रखवारी कौं बहुत निसाचरि, दीन्हीं तुरत पठाइ।
सूरदास सीता तिन्ह निरखत, मनहीं मन पछिताइ॥६१॥
॥५०५॥

राम-विलाप

राग केदारौ

रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत।
हाथ धनुष लीन्हे, कटि भाथा, चकित भए दिसि-बिदिसि निहारत।
निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत धर, बपु न सँभारत।
हा सीता, सीता, कहि सियपति, उमड़ि नयन जल भरि-भरि ढारत।

लगत सेष-उर बिलखि जगत गुरु, अद्भुत गति नहिं परति बिचारत।
चिंतत चित्त सूर सीतापति, मोह-मेरु-दुख टरत न टारत ॥६२॥
॥५०६॥

राग केदारौ

सुनौ अनुज, इहिं बन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी।
कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख-प्रभा धरी।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी।
चंपक-बरन, चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन लरी।
गति मराल अरु बिंब अधर-छबि, अहि अनूप कबरी।
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुग ज्यौं जाति घरी।
सूरदास प्रभु प्रिया-प्रेम-बस, निज महिमा बिसरी ॥६३॥
॥५०७॥

राग केदारौ

फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली।
अहो बंधु, काहूँ अवलोकी इहिं मग बधू अकेली?
अहो बिहंग, अहो पन्नग-नृप, या कंदर के राइ।
अबकैं मेरी बिपति मिटावौ, जानकि देहु बताइ।
चंपक - पुहुप - बरन-तन - सुंदर, मनौ चित्र-अवरेखी।
हो रघुनाथ, निसाचर कैं सँग अबै जात हौं देखी।
यह सुनि धावत धरनि, चरन की प्रतिमा पथ मैं पाई।
नैन - नीर रघुनाथ सानि सो, सिव ज्यौं गात चढ़ाई।
कहुँ हिय-हार, कहूँ कर-कंकन, कहुँ नूपुर कहुँ चीर।
सूरदास बन - बन अवलोकत, बिलख बदन रघुबीर ॥६४॥
॥ ५०८ ॥

गृद्ध-उद्धरण राग केदारौ

तुम लछिमन या कुंज-कुटी मैं देखौ जाइ निहारि।
कोउ इक जीव नाम मम लै-लै उठत पुकारि-पुकारि।
इतनी कहत कंध तैं कर गहि लीन्हौ धनुष सँभारि।

कृपानिधान नाम हित धाए, अपनी बिपति बिसारि।
अहो बिहंग, कहौ अपनौ दुख, पूछत ताहि खरारि।
किहिं मति मूढ़ हत्यौ तनु तेरौ, किधौं बिछोही नारि?
श्रीरघुनाथ - रमनि, जग - जननी, जनक-नरेस-कुमारि।
ताकौं हरन कियौ दसकंधर, हौं तिहिं लग्यौ गुहारि।
इतनी सुनि कृपालु कोमल प्रभु, दियौ धनुष कर भारि।
मानौ सूर प्रान लै रावन गयौ देह कौं डारि ॥६५॥
॥ ५०९ ॥

गृद्ध हरि-पद-प्राप्ति *राग केदारौ*

रघुपति निरखि गीध सिर नायौ।
कहिकै बात सकल सीता की, तन तजि चरन-कमल चित लायौ।
श्री रघुनाथ जानि जन अपनौ, अपनैं कर करि ताहि जरायौ।
सूरदास प्रभु दरस परस करि, ततछन हरि कैं लोक सिधायौ॥६६॥
॥ ५१० ॥

शबरी-उद्धार *राग केदारौ*

सबरी - आस्रम रघुबर आए। अरधासन दै प्रभु बैठाए।
खाटे फल तजि मीठे ल्याई। जूँठे भए सो सहज सुहाई।
अंतरजामी अति हित मानि। भोजन कीने, स्वाद बखानि।
जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत।
करि दंडवत भई बलिहारी। पुनि तन तजि हरि-लोक सिधारी।
सूरज प्रभु अति करुना भई। निज कर करि तिल-अंजलि दई।
॥ ६७ ॥ ५११॥

किष्किंधा कांड

सुग्रीव-मिलन *राग सारंग*

रिष्यमूक परवत बिख्याता।
इक दिन अनुज-सहित तहँ आए, सीतापति रघुनाथा।
कपि सुग्रीव बालि के भय तैं बसत हुतौ तहँ आइ।
आस मानि तिहिं पवन-पुत्र कौं दीनौ तुरत पठाइ।

को ये बीर फिरैं बन बिचरत, किहिं कारन ह्याँ आए।
सूरज-प्रभु कैं निकट आइ कपि, हाथ जोरि सिर नाए ॥६८॥
॥ ५१२ ॥

हनुमत-राम-संवाद राग मारू

मिले हनु, पूछी प्रभु यह बात।
महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुम किहि के तात ?
अंजनि कौ सुत, केसरि कैं कुल पवन-गवन उपजायौ गात।
तुम को बीर, नीर भरि लोचन, मीन हीन-जल ज्यौं मुरझात ?
दसरथ-सुत कोसलपुर-बासी, त्रिया हरी तातैं अकुलात।
इहिं गिरि पर कपिपति सुनियत है, बालि-त्रास कैसैं दिन जात !
महादीन, बलहीन, बिकल अति, पवन-पूत देखे बिलखात।
सूर सुनत सुग्रीव चले उठि, चरन गहे पूछी कुसलात ॥ ६९ ॥
॥५१३॥

बालि-बध राग मारू

बड़े भाग्य इहिं मारग आए।
गदगद कंठ, सोक सौं रोवत, बारि बिलोचन छाए।
महाधीर गंभीर बचन सुनि, जामवंत समुझाए।
बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब, भूषन-सिया दिखाए।
सप्त ताल सर साँधि, बालि हति, मन अभिलाष पुजाए।
सूरदास प्रभु-भुज के बलि-बलि, बिमल-बिमल जस गाए ॥ ७० ॥
॥५१४॥

सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति राग सारंग

राज दियौ सुग्रीव कौं, तिन हरि-जस गायौ।
पुनि अंगद कौं बोलि ढिग, या बिधि समुझायौ।
होनहार सो होत है, नहिं जात मिटायौ।
चतुरमास सूरज प्रभू, तिहिं ठौर बितायौ ॥७१॥
॥५१५॥

सीता-शोध राग सारंग

श्री रघुपति सुग्रीव कौं, निज निकट बुलायौ।
लीजै सुधि अब सीय की, यह कहि समुझायौ।

जामवंत-अंगद-हनू, उठि माथौ नायौ।
हाथ मुद्रिका प्रभु दई, संदेस सुनायौ।
आए तीर समुद्र के, कछु सोध न पायौ।
सूर सँपाती तहँ मिल्यौ, यह बचन सुनायौ ॥७२॥
॥५१६॥

संपाती-बानर-संवाद *राग सारंग*

बिछुरी मनौ संग तैं हिरनी।
चितवत रहत चकित चारौं दिसि, उपजी बिरह तन जरनी।
तरुवर-मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी।
बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिं बरनी।
लेति उसास नयन जल भरि-भरि, धुकि सो परै धरि धरनी।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी ॥७३॥
॥५१७॥

सुंदरकांड

राग केदारौ

तब अंगद यह बचन कह्यौ।
को तरि सिंधु सिया-सुधि ल्यावै, किहिं बल इतौ लह्यौ?
इतनौ बचन स्रवन सुनि हरष्यौ, हँसि बोल्यौ जमुवंत।
या दल मध्य प्रगट केसरि-सुत, जाहि नाम हनुमंत।
वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन मैं, अरु आइहै तुरंत।
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौ, वाके बलहिं न अंत।
जौ मन करै एक वासर मैं, छिन आवै छिन जाइ।
स्वर्ग-पताल माहिँ गम ताकौ, कहियै कहा बनाइ!
केतिक लंक, उपारि वाम कर, लै आवै उचकाइ।
पवन-पुत्र बलवंत वज्र-तनु, कापैं हटक्यौ जाइ।
लियौ बुलाइ मुदित चित ह्वैकै, कह्यौ, तँबोलहिं लेहु।
ल्यावहु जाइ जनक-तनया-सुधि, रघुपति कौं सुख देहु।
पौरि-पौरि प्रति फिरौ बिलोकत, गिरि कंदर-वन-गेहु।
समय विचारि मुद्रिका दीजौ, सुनौ मंत्र सुत एहु।

लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ चतुरगुन गात।
चढ़ि गिरि-सिखर सब्द इक उचर्‌यौ, गगन उठ्यौ आघात।
कंपत कमठ - सेष - बसुधा - नभ, रबि-रथ भयौ उतपात।
मानौ पच्छ सुमेरहिं लागे, उड़्यौ अकासहिं जात।
चकित सकल परस्पर बानर, बीच परी किलकार।
तहँ इक अदभुत देखि निसिचरी, सुरसा-मुख-बिस्तार।
पवन-पुत्र मुख पैठि पधारे, तहाँ लगी कछु बार।
सूरदास स्वामी-प्रताप-बल, उतर्‌यौ जलनिधि पार ॥७४॥
॥ ५१८॥

राग धनाश्री

लखि लोचन, सोचै हनुमान।
चहुँ दिसि लंक-दुर्ग दानवदल, कैसैं पाऊँ जान।
सौ जोजन बिस्तार कनकपुरि, चकरी जोजन बीस।
मनौ बिस्वकर्मा कर अपुनैं, रचि राखी गिरि-सीस।
गरजत रहत मत्त गज चहुँदिसि, छत्र-धुजा चहुँ दीस।
भरमित भयौ देखि मारुत-सुत, दियौ महाबल ईस !
उड़ि हनुमंत गयौ आकासहिं, पहुँच्यौ नगर मँझारि।
बन-उपबन, गम-अगम-अगोचर-मंदिर, फिर्‌यौ निहारि।
भई पैज अब हीन हमारी, जिय मैं कहै बिचारि।
पटकि पूँछ, माथौ धुनि लोटै, लखी न राघव-नारि।
नाना रूप निसाचर अद्भुत, सदा करत मद-पान।
ठौर ठौर अभ्यास महाबल करत कुंत-असि-बान।
जिय सिय-सोच करत मारुत-सुत, जियति न मेरैं जान।
कै वह भाजि सिंधु मैं डूबी, कै उहिं तज्यौ परान।
कैसैं नाथहिं मुख दिखराऊँ जौ बिनु देखे जाउँ।
बानर बीर हँसैंगे मोकौं, तैं बोर्‌यौ पितु-नाउँ।
रिच्छप तर्क बोलिहै मोसौं, ताकौ बहुत डराउँ।
भलैं राम कौं सीय मिलाई, जीति कनकपुर गाउँ।
जब मोहिं अंगद कुसल पूछिहै, कहा कहौंगो वाहि।
या जीवन तैं मरन भलौ है, मैं देख्यौ अवगाहि।
मारौं आजु लंक लंकापति, लै दिखराऊँ ताहि।
चौदह सहस जुवति अंतःपुर, लैह राघव चाहि।

मंदिर की परछाया बैठ्यौ, कर मीजे पछिताइ।
पहिलैं हूँ न लखी मैं सीता, क्यौं पहिचानी आइ।
दुर्बल दीन-छीन चिंतित अति जपत नाइ रघुराइ।
ऐसी विधि देखिहौं जानकी, रहिहौं सीस नवाइ।
बहुरि बीर जब गयौ अवासहिं, जहाँ बसै दसकंध।
नगनि जटित मनि-खंभ बनाए, पूरन बात-सुगंध।
स्वेत छत्र फहरात सीस पर, मनो लच्छि कौ बंध।
चौदह सहस नाग-कन्या-रति, पर्‌यौ सो रत मतिअंध।
बीना - झाँझ - पखाउज - आउज, और राजसी भोग।
पुहुप-प्रजंक परी नवजोवनि, सुख-परिमल-संजोग।
जिय जिय गढ़े, करै विस्वासहिं, जानै लंका लोग।
इहिं सुख-हेत हरी है सीता, राघव बिपति-वियोग!
पुनि आयौ सीता जहँ बैठी, बन असोक के माहिं।
चारौं ओर निसिचरी घेरे, नर जिहिं देखि डराहिं।
बैठ्यौ जाइ एक तरुबर पर, जाकी सीतल छाहिं।
बहु निसाचरी मध्य जानकी, मलिन बसन तन माहिं।
बारंबार बिसूरि सूर दुख, जपत नाम रघुनाहु।
ऐसी भाँति जानकी देखी, चंद गह्यौ ज्यौं राहु ॥७५॥
॥५१६॥

राग मारू

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु-पारा।
सेष के सीस लागे कमठ पीठि सौं, धँसे गिरिवर सबै तासु भारा।
लंक गढ माहि आकास मारग गयौ चहूँ दिसि बज्र लागे किवारा।
पौरि सब देखि सो असोक बन मैं गयौ, निरखि सीता छप्यौ बृच्छ-डारा।
सोच लाग्यौ करन, यहै धौं जानकी, कै कोऊ और, मोहिं नहिं चिन्हारा।
सूर आकासबानी भई तबै तहँ, यहै बैदेहि है, करु जुहारा ॥७६॥
॥५२०॥

निशिचरी-वचन, जानकी-प्रति *राग मारू*

समुझि अब निरखि जानकी मोहिं।
बड़ौ भाग गुनि, अगम दसानन, सिव वर दीनौ तोहिं।

केतिक राम कृपन, ताकी पितु-मातु घटाई कानि।
तेरौ पिता जो जनक जानकी, कीरति कहौं बखानि।
बिधि संजोग टरत नहिं टारैं, बन दुख देख्यौ आनि।
अब रावन घर बिलसि सहज सुख, कह्यौ हमारौ मानि।
इतनौ बचन सुनत सिर धुनिकै, बोली सिया रिसाइ।
अहो ढीठ, मति मुग्ध निसिचरी, बैठी सनमुख आइ।
तब रावन कौ बदन देखिहौं, दससिर-स्रोनित न्हाइ।
कै तन देउँ मध्य पावक के, कै बिलसैं रघुराइ।
जो पैं पतिब्रता ब्रत तेरैं, जीवति बिछुरी काइ?
तब किन मुई, कहौ तुम मोसौं भुजा गही जब राइ?
अब झूठौ अभिमान करति हौ, झुकति जो उनकैं नाउँ।
सुखहीं रहसि मिलौ रावन कौं, अपनैं सहज सुभाउ।
जौ तू रामहिं दोष लगावै, करौं प्रान कौ घात।
तुमरे कुल कौं बेर न लागै, होत भस्म संघात।
उनकैं क्रोध जरै लंकापति, तेरैं हृदय समाइ।
तौ पै सूर पतिब्रत साँचौ, जौ देखौं रघुराइ ॥७७॥
॥५२१॥

निशिचरी-रावण-संवाद *राग धनाश्री*

सुनौ किन कनकपुरी के राइ।
हौं बुधि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यौ न सीस उचाइ।
डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई।
नसै धर्म मन बचन काय करि, सिंधु अचंभौ करई।
अचला चलै चलत पुनि थाकै, चिरंजीवि सो मरई।
श्री रघुनाथ-प्रताप पतिब्रत, सीता-सत नहिं टरई।
ऐसी तिया हरत क्यौं आई, ताकौ यह सतिभाउ।
मन-बच-कर्म और नहिं दूजौ, बिन रघुनंदन राउ।
उनकैं क्रोध भस्म ह्वै जैहौ, करौ न सीता चाउ।
तब तुम काकी सरन उबरिहौ, सो बलि मोहिं बताउ?
"जौ सीता सत तैं बिचलै तौ श्रीपति काहि सँभारै?
'मोसे मुग्ध महापापी कौं कौन क्रोध करि तारै?

'ये जननी, वै प्रभु रघुनंदन, हौं सेवक प्रतिहार।
'सीता-राम सूर संगम बिनु कौन उतारै पार?" ॥७८॥
॥५२२॥

रावण-वचन, सीता-प्रति *राग मारू*

जनकसुता, तू समुझि चित्त मैं, हरषि मोहिं तन हेरि।
चौदह सहस किन्नरी जेती, सब दासी हैं तेरी।
कहै तौ जनक गेह दै पठवौं, अरध लंक कौ राज।
तोहि देखि चतुरानन मोहै, तू सुंदरि-सिरताज।
छाँड़ि राम तपसी के मोहैं, उठि आभूषन साजु।
चौदह सहस तिया मैं तोकौं, पटा बँधाऊँ आजु।
कठिन वचन सुनि स्रवन जानकी, सकी न वचन सँभारि।
तृन-अंतर दै दृष्टि तरौंधी, दियौ नयन जल ढारि।
पापी, जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात विचारी।
सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै, हौं समरथ की नारी।
चौदह सहस सेन खरदूषन, हतौ राम इक बान।
लछिमन-राम-धनुष-सन्मुख परि, काके रहिहैं प्रान?
मेरौ हरन मरन है तेरौ, स्यौं कुटुंब - संतान।
जरिहै लंक कनकपुर तेरौ, उदवत रघुकुल-भान।
तोकौं अबध कहत सब कोऊ, तातैं सहियत बात।
बिना प्रयास मारिहौं तोकौं, आजु रैनि कै प्रात।
यह राकस की जाति हमारी, मोह न उपजै गात।
परतिय रमैं, धर्म कहा जानैं, डोलत मानुष खात।
मन मैं डरी, कानि जिनि तोरै, मोहिं अबला जिय जानि।
नख-सिख-बसन सँभारि, सकुच तनु, कुच-कपोल गहि पानि।
रे दसकंध, अंधमति, तेरी आयु तुलानी आनि।
सूर राम की करत अवज्ञा, डारैं सब भुज भानि ॥७९॥
॥५२३॥

त्रिजटा-सीता-संवाद *राग मारू*

त्रिजटी सीता पै चलि आई।
मन मैं सोच न करि तू माता, यह कहि कै समुझाई।

नलकूबर कौ साप रावनहिं, तो पर बल न बसाई।
सूरदास मनु जरी सजीवनि श्री रघुनाथ पठाई ॥८०॥
॥ ५२४ ॥

राग कान्हरौ

सो दिन त्रिजटी, कहु कब ऐहै ?
जा दिन चरनकमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगैहै।
कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा, माइ-माइ कहि मोहिं सुनैहै।
कबहुँक कृपावंत कौसिल्या, बधू-बधू कहि मोहिं बुलैहै।
जा दिन कंचनपुर प्रभु ऐहैं बिमल ध्वजा रथ पर फहरैहै।
ता दिन जनम सफल करि मानौं, मेरी हृदय-कालिमा जैहै।
जा दिन राम रावनहिं मारैं, ईसहिं लै दससीस चढ़ैहैं।
ता दिन सूर राम पै सीता सरबस वारि बधाई देहै ॥८१॥
॥ ५२५ ॥

राग सारंग

मैं तौ राम-चरन चित दीन्हौं।
मनसा, बाचा और कर्मना, बहुरि मिलन कौं आगम कीन्हौं।
डुलै सुमेरु, सेष-सिर कंपै, पच्छिम उदै करै बासर-पति।
सुनि त्रिजटी, तौहूँ नहिं छाड़ौं मधुर मूर्त्ति रघुनाथ-गात-रति।
सीता करति बिचार मनहिं मन, आजु-काल्हि कोसलपति आवैं।
सूरदास स्वामी करुनामय, सो कृपालु मोहिं क्यौं बिसरावैं ! ॥८२॥
॥ ५२६ ॥

त्रिजटा-स्वप्न; हनुमान-सीता-मिलन *राग धनाश्री*

सुनि सीता, सपने की बात।
रामचंद्र-लछिमन मैं देखे, ऐसी बिधि परभात।
कुसुम-बिमान बैठी बैदेही, देखी राघव पास।
स्वेत छत्र रघुनाथ-सीस पर, दिनकर-किरन प्रकास।
भयौ पलायमान दानवकुल ब्याकुल सायक-त्रास।
पजरत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-अवास।
रावन-सीस पुहुमि पर लोटत, मंदोदरि बिलखाइ।
कुंभकरन-तन पंक लगाई, लंक बिभीषन पाइ।

प्रगट्यौ आइ लंक दल कपि कौ, फिरी रघुबीर दुहाइ।
या सपने कौ भाव सिया सुनि, कबहुँ विफल नहिं जाइ।
त्रिजटी बचन सुनत बैदेही अति दुख लेति उसास।
हा हा रामचंद्र, हा लछिमन, हा कौसिल्या सास।
त्रिभुवननाथ नाह जो पावै, सहै सो क्यौं वनबास?
हा कैकई, सुमित्रा जननी, कठिन निसाचर-त्रास!
कौन पाप मैं पापिनि कीन्हौ, प्रगट्यौ जो इहिं बार।
धिक धिक जीवन है अब यह तन, क्यौं न होइ जरि छार।
द्वै अपराध मोहिं ये लागे, मृग-हित दियौ हथियार।
जान्यौ नहीं निसाचर कौ छल, नाघ्यौ धनुष-प्रकार।
पंछी एक सुहृद जानत हौं, कर्‍यौ निसाचर भंग।
तातैं बिरमि रहे रघुनंदन, करि मनसा-गति पंग।
इतनौ कहत नैन उर फरके, सगुन जनायौ अंग।
आजु लहौं रघुनाथ सँदेसौ, मिटै बिरह दुख संग।
तिहिं छिन पवन-पूत तहँ प्रगट्यौ, सिया अकेली जानि।
"श्री दसरथकुमार दोउ बंधू, धरे धनुष-सर पानि।
'प्रिया-बियोग फिरत मारे मन, परे सिंधु-तट आनि।
'ता सुंदरि-हित मोहिं पठायौ, सकौं न हौं पहिचानि।"
बारंबार निरखि तरुवर तन, कर मीड़ति पछिताइ।
दनुज, देव, पसु, पच्छी, को तू, नाम लेत रघुराइ?
बोल्यो नहीं, रह्यो दुरि बानर, द्रुम मैं देहि छपाइ।
कै अपराध ओड़ि तू मेरौ, कै तू देहि दिखाइ।
तरुवर त्यागि चपल साखामृग, सन्मुख बैठ्यौ आइ।
माता, पुत्र जानि दै उत्तर, कहु किहिं बिधि बिलखाइ?
किन्नर-नाग देवि सुर-कन्या, कासौं हुति उपजाई?
कै तू जनक - कुमारि जानकी, राम - बियोगिनि आइ?
राम नाम सुनि उत्तर दीन्हौ, पिता बंधु मम होहि।
मैं सीता, रावन हरि ल्यायौ, त्रास दिखावत मोहिं।
अब मैं मरौं, सिंधु मैं बूड़ौं, चित मैं आवै कोह।
सुनौ वच्छ, धिक जीवन मेरौ, लछिमन-राम-बिछोह।
कुसल जानकी, श्रीरघुनंदन, कुसल लच्छिमन भाइ।
तुम-हित नाथ कठिन व्रत कीन्हौ, नहिं जल-भोजन खाइ।

मुरै न अंग कोउ जो काटै, निसि-बासर सम जाइ।
तुम घट प्रान देखियत सीता, बिना प्रान रघुराइ।
बानर बीर चहूँ दिसि धाए, ढूँढ़ै गिरि-वन-झार।
सुभट अनेक सबल दल साजे, परे सिंधु के पार।
उद्यम मेरौ सफल भयौ अब, तुम देख्यौ जो निहारि।
अब रघुनाथ मिलाऊँ तुमकौं सुंदरि सोक निवारि।
यह सुनि सिय मन संका उपजी, रावन-दूत बिचारि।
छल करि आयौ निसिचर कोऊ, बानर रूपहिं धारि।
स्रवन मूँदि, मुख आँचर ढाँप्यौ अरे निसाचर, चोर।
काहे कौं छल करि-करि आवत, धर्म बिनासन मोर?
पावक परौं, सिंधु महँ बूड़ौं, नहिं मुख देखौं तोर।
पापी क्यौं न पीठि दै मोकौं, पाहन सरिस कठोर।
जिय अति डर्‌यौ, मोहिं मति सापै, ब्याकुल बचन कहंत।
मोहिं बर दियौ सकल देवनि मिलि, नाम धर्‌यौ हनुमंत।
अंजनि-कुँवर राम कौ पायक, ताकैं बल गर्जंत।
जिहिं अंगद-सुग्रीव उबारे, बध्यौ बालि बलवंत।
लेहु मातु, सहिदानि मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ।
सावधान ह्वै सोक निवारहु, ओड़हु दच्छिन हाथ।
खिन मुँदरी, खिनहीं हनुमत सौं, कहति बिसूरि-बिसूरि।
कहि मुद्रिके, कहाँ तैं छाँड़े मेरे जीवन-मूरि?
कहियौ बच्छ, सँदेसौ इतनौ जब हम वै इक थान।
सोवत काग छुयौ तन मेरौ, बरहहिं कीनौ बान।
फोर्‌यौ नयन काग नहिं छाँड़्यौ सुरपति के विद्मान!
अब वह कोप कहाँ रघुनंदन, दससिर-बेर बिलान?
निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अंचर लेत बलाइ।
चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वै पाइ।
बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारैं, ये अंमृत फल खाहु।
अब की बेर सूर प्रभु मिलवहु, वहुरि प्रान किन जाहु ॥८३॥
॥५२७॥

हनुमान-कृत सीता-समाधान *राग मारू*

जननी, हौं अनुचर रघुपति कौ।
मति माता करि कोप सरापै, नहिं दानव ठग मति कौ।

आज्ञा होइ, देउँ कर-मुँदरी, कहौं सँदेसौ पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल दैयत कौ।
कहौ तौ लंक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तौ मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ।
सागर-तीर भीर बनचर कीं, देखि कटक रघुपति कौ।
अबै मिलाऊँ तुम्हैं सूर प्रभु, राम-रोष डर अति कौ ॥८४॥
॥५२८॥

राग मारू

अनुचर रघुनाथ कौ तव दरस-काज आयौ।
पवन-पूत कपिस्वरूप, भक्तनि मैं गायौ।
आयसु जौ होइ जननि, सकल असुर मारौं।
लंकेस्वर बाँधि राम-चरननि तर डारौं।
तपसी तप करैं जहाँ, सोई बन झाँखौ।
जाकी तुम बैठी छाहँ, सोई द्रुम राखौं।
चढ़ि चलौ जौ पीठि मेरी, अबहिं लै मिलाऊँ।
सूर श्री रघुनाथ जू की, लीला नित गाऊँ ॥८५॥
॥५२९॥

राग मारू

तुम्हैं पहिचानति नाहीं बीर।
इन नैननि कबहूँ नहिं देख्यौ, रामचंद्र कैं तीर।
लंका बसत दैत्य अरु दानव, उनके अगम सरीर।
तोहिं देखि मेरौ जिय डरपत, नैननि आवत नीर।
तब कर काढ़ि अँगूठी दीन्हीं, जिहिं जिय उपज्यौ धीर।
सूरदास प्रभु लंका-कारन, आए सागर-तीर ॥८६॥
॥५३०॥

राग सारंग

जननी, हौं रघुनाथ पठायौ।
रामचंद्र आए की तुमकौं देन बधाई आयौ।
हौं हनुमंत, कपट जिनि समझौ, बात कहत सतभाई।
मुँदरी दूत धरी लै आगैं, तब प्रतीति जिय आई।

अति सुख पाइ उठाइ लई तब, बार-बार उर भेंटै।
ज्यौं मलयागिरि पाइ आपनी जरनि हृदै की मेटै।
लछिमन पालागन कहि पठयौ, हेत बहुत करि माता।
दई असीस तरनि-सन्मुख ह्वै, चिरजीवौ दोउ भ्राता।
बिछुरन कौ संताप हमारौ, तुम दरसन दै काट्यौ।
ज्यौं रबि-तेज पाइ दसहूँ दिसि, दोष कुहर कौ फाट्यौ।
ठाढ़ौ बिनती करत पवन-सुत, अब जो आज्ञा पाऊँ।
आपनैं देखि चले कौ यह सुख, उनहूँ जाइ सुनाऊँ।
कल्प-समान एक छिन राघव, क्रम-क्रम करि हैं बितवत।
तातैं हौं अकुलात, कृपानिधि ह्वैहैं पैंड़ौ चितवत।
रावन हति, लै चलौं साथही, लंका धरौं अपूठी।
यातैं जिय सकुचात, नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी।
अब ह्याँ की सब दसा हमारी, सूर सो कहियौ जाइ।
बिनती बहुत कहा कहौं, जिहिं बिधि देखौं रघुपति-पाइ ॥८७॥
॥ ५३१ ॥

राग मलार

वनचर, कौन देस तैं आयौ ?
कहाँ वै राम, कहाँ वै लछिमन, क्यौं करि मुद्रा पायौ ?
हौं हनुमंत, राम कौ सेवक, तुम सुधि लैन पठायौ।
रावन मारि, तुम्हैं लै जातौ, रामाज्ञा नहि पायौ।
तुम जनि डरपौ मेरी माता, राम जोरि दल ल्यायौ।
सूरदास रावन कुल-खोवन, सोवत सिंह जगायौ ॥८८॥
॥ ५३२ ॥

राग सारंग

कहौ कपि, कैसैं उतरे पार ?
दुस्तर अति गंभीर बारि-निधि, सत जोजन बिस्तार।
इत उत दैत्य क्रुद्ध मारन कौं, आयुध धरे अपार।
हाटकपुरी कठिन पथ, बानर, आए कौन अधार ?
राम-प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार।
तिहिं अधार छिन मैं अवलंघ्यौ, आवत भई न बार।

पृष्ठभाग चढ़ि जनक-नंदिनी, पौरुष देखि हमार।
सूरदास लै जाउँ तहाँ, जहँ रघुपति कंत तुम्हार ॥८९॥
॥ ५३३ ॥

राग मारू

हनुमत, भली करी तुम आए।
बारंबार कहति वैदेही, दुख - संताप मिटाए।
श्री रघुनाथ और लछिमन के समाचार सब पाए।
अब परतीति भई मन मेरैं, संग मुद्रिका लाए।
क्यौं करि सिंधु-पार तुम उतरे, क्यौं करि लंका आए।
सूरदास रघुनाथ जानि जिय, तब बल इहाँ पठाए ॥९०॥
॥ ५३४ ॥

राग कान्हरौ

सुनु कपि, वै रघुनाथ नहीं ?
जिन रघुनाथ पिनाक पिता-गृह तोर्‌यौ निमिष महीं।
जिन रघुनाथ फेरि भृगुपति - गति डारी काटि तहीं।
जिन रघुनाथ-हाथ खर - दूषन-प्रान हरे सरहीं।
कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनौ, जोगिनि दसा गही ?
कै रघुनाथ दुखित कानन, कै नृप भए रघुकुलहीं।
कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरहीं ?
छाँड़ी नारि विचारि पवन-सुत, लंक बाग बसहीं।
कै हौं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबहीं !
सूरदास स्वामी सौं कहियौ अब बिरमाहिं नहीं ॥९१॥
॥ ५३५ ॥

सीता-संदेश, श्रीराम-प्रति

राग कान्हरौ

यह गति देखें जात, सँदेसौ कैसैं कै जु कहौं ?
सुनु कपि, अपने प्रान कौ पहरौ, कब लगि देति रहौं ?
ये अति चपल, चल्यौ चाहत हैं, करत न कछू बिचार।
कहि धौं प्रान कहाँ लौं राखौं, रोकि देह मुख द्वार ?

इतनी बात जनावति तुमसौं, सकुचति हौं हनुमंत।
नाहीं सूर सुन्यौ दुख कबहूँ, प्रभु करुनामय कंत! ॥९२॥
॥ ५३६ ॥

राग मारू

कहियौ कपि, रघुनाथ राज सौं सादर यह इक बिनती मेरी।
नाहीं सही परति मोपै अब, दारुन त्रास निसाचर केरी।
यह तौ अंध बीसहूँ लोचन, छल-बल करत आनि मुख हेरी।
आइ सृगाल सिंह बलि चाहत, यह मरजाद जाति प्रभु तेरी।
जिहिं भुज परसुराम बल कर्ष्यौ, ते भुज क्यौं न सँभारत फेरी।
सूर सनेह जानि करुनामय, लेहु छुड़ाइ जानकी चेरी ॥९३॥
॥ ५३७ ॥

राग मारू

मैं परदेसिनि नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली।
रावन भेष धर्यौ तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़-मति मेरी, राम-रेख पग पेली।
बिरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसैं दव द्रुम बेली।
सूरदास प्रभु वेगि मिलावौ, प्रान जात हैं खेली ॥९४॥
॥ ५३८ ॥

सीता-परितोष *राग मारू*

तू जननी अब दुख जनि मानहि।
रामचंद्र नहिं दूरि कहूँ, पुनि भूलिहु चित चिंता नहिं आनहिं।
अबहिं लिवाइ जाउँ सब रिपु हति, डरपत हौं आज्ञा-अपमानहिं।
राख्यौ सुफल सँवारि, सान दै, कैसैं निफल करौं वा बानहिं?
हैं केतिक ये तिमिर-निसाचर, उदित एक रघुकुल के भानहिं।
काटन दै दस सीस बीस भुज, अपनौ कृत येऊ जो जानहिं।
देहिं दरस सुभ नैननि कहँ प्रभु, रिपु कौं नासि सहित संतानहिं।
सूर सपथ मोहिं, इनहिं दिननि मैं, लै जु आइहौं कृपानिधानहिं ॥९५॥
॥ ५३९ ॥

अशोक-वन-भंग राग मारू

हनुमत बल प्रगट भयौ, आज्ञा जब पाई।
जनक-सुता-चरन बंदि, फूल्यौ न समाई।
अगनित तरु-फलसुगंध-मृदुल-मिष्ट-खाटे।
मनसा करि प्रभुहिं अर्पि, भोजन करि डाटे।
द्रुम गहि उतपाटि लिए, दै-दै किलकारी।
दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी।
विह्वल-मति कहन गए, जोरे सब हाथा।
बानर बन बिघन कियौ, निसिचर-कुल-नाथा
वह निसंक, अतिहिं ढीठ, बिडरै नहिं भाजै
मानौ बन-कदलि-मध्य उनमत गज गाजै
भानै मठ, कूप, बाइ, सरवर कौ पानी।
गौरि-कंत पूजत जहँ नूतन जल जानी।
पहुँची तब असुर-सैन साखामृग जान्यौ।
मानौ जल-जीव सिमिटि जाल मैं समान्यौ।
तरुवर तब इक उपाटि हनुमत कर लीन्यौ।
किंकर कर पकरि बान तीनि खंड कीन्यौ।
जोजन बिस्तार सिला पवन-सुत उपाटी।
किंकर करि बान लच्छ अंतरिच्छ काटी।
आगर इक लोह जटित, लीन्ही बरिबंड।
दुहूँ करनि असुर हयौ, भयौ मांस-पिंड।
दुर्धर परहस्त-संग आइ सैन भारी।
पवन-पूत दानव-दल ताड़े दिसिचारी।
रोम-रोम हनूमंत लच्छ-लच्छ बान।
जहाँ-तहाँ दीसत, कपि करत राम-आन।
मंत्री-सुत पाँच सहित अछयकुँवर सूर।
सैन सहित सबै हते झपटि कै लँगूर।
चतुरानन-बल सँभारि मेघनाद आयौ।
मानौ घन पावस मैं नगपति है छायौ।
देख्यौ जब, दिव्यबान निसिचर कर तान्यौ।
छाँड़यौ तब सूर हनू ब्रह्म-तेज मान्यौ ॥६६॥

॥५४०॥

हनुमान-रावण-संवाद राग मारू

सीतापति-सेवक तोहिं देखन कौं आयौ।
काकैं बल बैर तैं जु राम तैं बढ़ायौ?
जे-जे तुव सूर सुभट, कीट सम न लेखौं।
तोकौं दसकंध अंध, प्राननि बिनु देखौं।
नख-सिख ज्यौं मीन-जाल, जड़्यौ अंग-अंगा।
अजहुँ नाहिं संक धरत, बानर मति-भंगा!
जोइ सोइ मुखहिं कहत, मरन निज न जानै।
जैसैं नर सन्निपात भएँ बुध बखानैं।
तब तू गयौ सून भवन, भस्म अंग पोते।
करते बिन प्रान तोहिं, लछिमन जौ होते।
पाछे तैं हरी सिया, न मरजाद राखी।
जौ पै दसकंध बली, रेख क्यौं न नाखी?
अजहूँ सिय सौंपि नतरु बीस भुजा भानै।
रघुपति यह पैज करी, भूतल धरि पानैं।
ब्रह्मबान कानि करी, बल करि नहिं बाँध्यौ।
कैसैं परताप घटै, रघुपति आराध्यौ!
देखत कपि बाहु-दंड तन प्रस्वेद छूटे।
जै-जै रघुनाथ कहत, बंधन सब टूटे।
देखत बल दूरि करयौ, मेघनाद गारौ।
आपुन भयौ सकुचि सूर बंधन तैं न्यारौ॥९७॥
॥५४१॥

लंका-दहन राग मारू

मंत्रिनि नीकौ मंत्र बिचारयौ।
राजन कह्यौ, दूत काहू कौ, कौन नृपति है मारयौ?
इतनी सुनत बिभीषन बोले, बंधू पाइ परौ।
यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि, अब नई कहा करौ?
हरी बिधाता बुद्धि सबनि की, अति आतुर ह्वै धाए।
सन अरु सूत, चीर-पाटंबर, ले लंगूर बँधाए।
तेल - तूल - पावक - पुट धरिकै, देखन चहैं जरौ।
कपि मन कह्यौ भली मति दीनी, रघुपति-काज करौ।

बंधन तोरि, मोरि मुख असुरनि, ज्वालु प्रगट करी।
रघुपति-चरन-प्रताप सूर तव, लंका सकल जरी ॥६८॥
॥५४२॥

राग धनाश्री

सोचि जिय पवन-पूत पछिताइ।
अगम अपार सिंधु दुस्तर तरि, कहा कियौ मैं आइ?
सेवक कौ सेवापन एतौ, आज्ञाकारी होइ।
बिन आज्ञा मैं भवन पजारे, अपजस करिहैं लोइ।
वै रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरजामी सोइ।
या भयभीत देखि लंका मैं, सीय जरी मति होइ।
इतनो कहत गगनबानी भई, हनू सोच कत करई?
चिरंजीवि सीता तरुवर तर, अटल न कबहूँ टरई।
फिरि अवलोकि सूर सुख लीजै, पुहुमी रोम न परई।
जाकैं हिय-अंतर रघुनंदन, सो क्यौं पावक जरई ॥६९॥
॥५४३॥

राग मारू

लंका हनूमान सब जारी।
राम-काज सीता की सुधि लगि, अंगद-प्रीति बिचारी।
जा रावन की सकति तिहूँ पुर, कोउ न आज्ञा टारी।
ता रावन कैं अछत अछयसुत-सहित सैन संहारी।
पूँछ बुझाइ गए सागर-तट, जहँ सीता की बारी।
करि दंडवत प्रेम पुलकित ह्वै, कह्यौ, सुनि राघव-प्यारी।
तुम्हरेहिं तेज-प्रताप रही बचि, तुम्हरी यहै अटारी।
सूरदास स्वामी के आगैं, जाइ कहौं सुख भारी ॥१००॥
॥५४४॥

सीता का चूड़ामणि-प्रदान *राग सारंग*

मेरी कैंती बिनती करनी।
पहिलैं करि प्रनाम, पाइनि परि, मनि रघुनाथ हाथ लै धरनी।
मंदाकिनि-तट फटिक-सिला पर, मुख-मुख जोरि तिलक की करनी।
कहा कहौं, कछु कहत न आवै, सुमिरत प्रीति होइ उर अरनी।

तुम हनुमंत, पवित्र पवन-सुत, कहियौ जाइ जोइ मैं बरनी।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु, मूरति दुसह दुःख-भय-हरनी ॥१०१॥
॥ ५४५ ॥

हनुमान-प्रत्यागमन *राग मारू*

हनूमान अंगद के आगैं लंक-कथा सब भाषी।
अंगद कही, भली तुम कीनी, हम सबकी पति राखी।
हरषवंत ह्वै चले तहाँ तैं मग मैं बिलम न लाई।
पहुँचे आइ निकट रघुबर कैं, सुग्रिव आयौ धाई।
सबनि प्रनाम कियौ रघुपति कौं अंगद बचन सुनायौ।
सूरदास प्रभु-पद-प्रताप करि, हनू सीय सुधि ल्यायौ ॥१०२॥
॥ ५४६ ॥

राग मारू

हनु, तैं सबकौ काज सँवार्यौ।
बार-बार अंगद यौं भाषै, मेरौ प्रान उबार्यौ।
तुरतहि गमन कियौ सागर तैं, बीचहिं बाग उजार्यौ।
कीन्हौ मधुबन चौर चहूँदिसि, माली जाइ पुकार्यौ।
धनि हनुमत, सुग्रीव कहत हैं, रावन कौ दल मार्यौ।
सूर सुनत रघुनाथ भयौ सुख, काज आपनौ सार्यौ ॥१०३॥
॥ ५४७ ॥

हनुमान-राम-संवाद *राग मारू*

कहौ कपि, जनक-सुता-कुसलात।
आवागमन सुनावहु अपनौ, देहु हमैं सुख-गात।
सुनौ पिता, जल-अंतर ह्वै कै रोक्यौ मग इक नारि।
धर-अंबर लौं रूप निसाचरि, गरजी बदन पसारि।
तब मैं डरपि कियौ छोटौ तनु, पैठ्यौ उदर-मँझारि।
खरभर परी, दियौ उन पैंडौ, जीती पहिली रारि।
गिरि मैनाक उदधि मैं अद्भुत, आगैं रोक्यौ जान।
पवन-पिता कौ मित्र न जान्यौ, धोखैं मारी लात।
तबहूं और रह्यौ सरितापति आगैं जोजन सात।
तुव प्रताप परली दिसि पहुँच्यौ, कौन बढ़ावै बात।

लंका पौरि-पौरि मैं ढूँढ़ी अरु बन-उपबन जाइ।
तरु असोक-तर देखि जानकी, तब हौं रह्यौ लुकाइ।
रावन कह्यौ सो कह्यौ न जाई, रह्यौ क्रोध अति छाइ।
तब ही अवध जानि कै राख्यौ मंदोदरि समुझाइ।
पुनि हौं गयौ सुफलबारी मैं, देखी दृष्टि पसारि।
असी सहस किंकर-दल तेहि के, दौरे मोहिं निहारि।
तुव प्रताप तिनकौं छिन भीतर जूझत लगी न बार।
उनकौं मारि तुरत मैं कीन्ही मेघनाद सौं रार।
ब्रह्म-फाँस उन लई हाथ करि, मैं चितयौ कर जोरि।
तज्यौ कोप मरजाद राखी, बँध्यौ आपही भोरि।
रावन पै लै गए सकल मिलि, ज्यौं लुब्धक पसु जाल।
करुवौ बचन स्रवन सुनि मेरौ, अति रिस गही भुवाल।
आपुन ही मुगदर लै धायौ, करि लोचन विकराल।
चहुँदिसि सूर सोर करि धावैं, ज्यौं करि हेरि सृगाल ॥१०४॥
॥ ५४८ ॥

राग मारू

कैसैं पुरी जरी कपिराइ।
बड़े दैत्य कैसैं कै मारे, अंतर आप बचाइ?
प्रगट कपाट विकट दीन्हे हे, बहु जोधा रखवारे।
तैंतिस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुमसौं क्यौं हारे?
तीनि लोक डर जाकैं काँपै, तुम हनुमान न पेखे?
तुम्हरैं क्रोध, स्राप सीता कैं, दूरि जरत हम देखे।
हौ जगदीस, कहा कहौं तुमसौं, तुम बल-तेज मुरारी।
सूरजदास सुनौ सब संतौ, अबिगत की गति न्यारी ॥१०५॥
॥ ५४९ ॥

(लंका कांड)

सिंधु-तट-वास *राग मारू*

सीय-सुधि सुनत रघुबीर धाए।
चले तब लखन, सुग्रीव, अंगद, हनू, जामवँत, नील, नल सबै आए।

भूमि अति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी, सहस-फन सेस कौ सीस काँप्यौ।
कटक अगिनित जुर्यौ, लंक खरभर पर्यौ, सूर कौ तेज धर-धूरि-ढाँप्यौ।
जलधि-तट आइ रघुराइ ठाढ़े भए, रिच्छ-कपि गरजि कै धुनि सुनायौ।
सूर रघुराइ चितए हनूमान-दिसि, आइ तिन तुरत ही सीस नायौ।
॥ १०६ ॥ ५५० ॥

हनुमंत-वचन *राग केदारौ*

राघौ जू, कितिक बात, तजि चित।
केतिक रावन - कुंभकरन - दल, सुनियै देव अनंत।
कहौ तौ लंक लकुट ज्यौं फेरौं, फेरि कहूँ लै डारौं।
कहौ तौ परवत चाँपि चरन तर, नीर-खार मैं गारौं।
कहौ तौ असुर लँगूर लपेटौं, कहौ तौ नखनि बिदारौं।
कहौ तौ सैल उपारि पेड़ि तैं, दै सुमेरु सौं मारौं।
जेतिक सैल-सुमेरु धरनि मैं, भुज भरि आनि मिलाऊँ।
सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ।
चली जाउ सैना सब मोपर धरौं चरन रघुबीर।
मोहिं असीस जगत-जननी की, नवत न बज्र-सरीर।
जितिक बोल बोल्यौ तुम आगैं, राम, प्रताप तुम्हारैं।
सूरदास प्रभु की सौं साँचे, जन करि पैज पुकारै ॥१०७॥
॥ ५५१ ॥

राग मारू

रावन से गहि कोटिक मारौं।
जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि, तौ यह परिहस सारौं।
कहौ तौ जननि जानकी ल्याऊँ, कहौ तौ लंक बिदारौं।
कहौ तौ अबहीं पैठि सुभट हति, अनल सकल पुर जारौं।
कहौ तौ सचिव-सबंधु सकल अरि, एकहिं एक पछारौं।
कहौ तौ तुव प्रताप श्री रघुबर, उदधि पखाननि तारौं।
कहौ तौ दसौ सीस, बीसो भुज, काटि छिनक मैं डारौं।
कहौ तौ ताकौं तृन गहाइ कै, जीवत पाइनि पारौं।
कहौ सैना चारु रचौं कपि, धरनी-ब्योम-पतारौं।
सैल-सिला-द्रुम बरषि, ब्योम चढ़ि, सत्रु-समूह सँहारौं।

बार-बार पद परसि कहत हौं, हौं कबहूँ नहिं हारौं।
सूरदास प्रभु तुम्हरे बचन लगि, सिव, बचननि कौं टारौं ॥१०८॥
॥ ५५२ ॥

राग मारू

हौं प्रभु जू कौ आयसु पाऊँ।
अबहीं जाइ, उपारि लंक गढ़, उदधि-पार लै आऊँ।
अबहीं जंबू द्वीप इहाँ तैं लै लंका पहुँचाऊँ।
सोखि समुद्र उतारौं कपि-दल छिनक बिलंब न लाऊँ।
अब आवैं रघुबीर जीति दल, तौ हनुमंत कहाऊँ।
सूरदास सुभ पुरी अजोध्या, राघव सुबस बसाऊँ ॥१०९॥
॥ ५५३ ॥

राग सारंग

रघुपति, वेगि जतन अब कीजै।
बाँधै सिंधु सकल सैना मिलि, आपुन आयसु दीजै।
तब लौं तुरत एक तौ बाँधौ, द्रुम-पाखाननि छाइ।
द्वितिय सिंधु सिय-नैन-नीर ह्वै, जब लौं मिलै न आइ।
यह बिनती हौं करौं कृपानिधि, बार-बार अकुलाइ।
सूरजदास अकाल प्रलय प्रभु, मेटौ दरस दिखाइ ॥११०॥
॥ ५५४ ॥

विभीषण-रावण-संवाद

राग मारू

लंकपति कौं अनुज सीस नायौ।
परम गंभीर, रनधीर दसरथ-तनय, कोप करि सिंधु कैं तीर आयौ।
सीय कौं लै मिलौ, यह मतौ है भलौ कृपा करि मम बचन मानि लीजै।
ईस कौ ईस, करतार संसार कौ, तासु पद-कमल पर सीस दीजै।
कह्यौ लंकेस दै ठेस पग की तबै, जाहि मति-मूढ़, कायर, डरानौ।
जानि असरन-सरन सूर के प्रभू कौं, तुरतहीं आइ द्वारैं तुलानौ।
॥ १११ ॥ ५५५ ॥

राग सारंग

आइ बिभीषन सीस नवायौ।
देखतहीं रघुबीर धीर, कहि लंकापती, बुलायौ।

कह्यौ सो बहुरि कह्यौ नहिं रघुबर, यहै बिरद चलि आयौ।
भक्तबछल करुनामय प्रभु कौ, सूरदास जस गायौ ॥११२॥
॥ ५५६ ॥

राम-प्रतिज्ञा — राग मारू

तब हौं नगर अजोध्या जैहौं।
एक बात सुनि निस्चय मेरी, राज्य बिभीषन दैहौं।
कपि-दल जोरि और सब सैना, सागर सेतु बँधैहौं।
काटि दसौ सिर, बीस भुजा तब दसरथ-सुत जु कहैहौं।
छिन इक माहिं लंक गढ़ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं।
सूरदास प्रभु कहत बिभीषन, रिपु हति सीता लैहौं ॥११३॥
॥ ५५७ ॥

रावण-मंदोदरी-संवाद — राग मारू

वै लखि आए राम रजा।
जल कैं निकट आइ ठाढ़े भए, दीसति बिमल ध्वजा।
सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यौं खात दगा?
कहति मँदोदरि, सुनु पिय रावन, मेरी बात अगा।
तृन दसननि लै मिलि दसकंधर, कंठनि मेलि पगा।
सूरदास प्रभु रघुपति आए, दहपट होइ लँका ॥११४॥
॥ ५५८ ॥

राग मारू

सरन परि मन-बच-कर्म बिचारि।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन मैं, जो अब लेइ उबारि?
सुनु सिख कंत, दंत तृन धरि कै, स्यौं परिवार सिधारौ।
परम पुनीत जानकी सँग लै, कुल-कलंक किन टारौ!
ये दससीस चरन पर राखौ, मेटौ सब अपराध।
है प्रभु कृपा करन रघुनंदन, रिस न गहैं पल आध।
तोरि धनुष, मुख मोरि नृपनि कौ, सीय स्वयंबर कीनौ।
छिन इक मैं भृगुपति-प्रताप-बल करषि, हृदय धरि लीनौ।
लीला करत कनक-मृग मार्‌यौ, बध्यौ बालि अभिमानी।
सोइ दसरथ-कुलचंद अमित बल, आए सारँग पानी।

जाकैं दल सुग्रीव सुमंत्री, प्रबल जूथपति भारी।
महा सुभट रनजीत पवन-सुत, निडर वज्र-वपु-धारी।
करिहै लंक पंक छिन भीतर, वज्र-सिला लै धावै।
कुल-कुटुंब-परिवार सहित तोहिं बाँधत बिलम न लावै।
अजहूँ बल जनि करि संकर कौ, मानि बचन हित मेरौ।
जाइ मिलौ कोसल-नरेस कौं भ्रात विभीषन तेरौ।
कटक सोर अति घोर दसौं दिसि, दीसति बनचर-भीर।
सूर समुझि, रघुबंस-तिलक दोउ उतरे सागर-तीर ॥११५॥
॥ ५५९ ॥

राग मारू

काहे कौं परतिय हरि आनी ?
यह सीता जो जनक की कन्या, रमा आपु रघुनंदन-रानी।
रावन मुग्ध, करम के हीने, जनक-सुता तैं तिय करि मानी !
जिनकैं क्रोध पुहुमि-नभ पलटै, सूखै सकल सिंधु कर पानी !
मूरख सुख निद्रा नहिं आवै, लैहैं लंक बीस भुज भानी।
सूर न मिटै भाल की रेखा, अल्प मृत्यु तुव आइ तुलानी ॥११६॥
॥ ५६० ॥

राग मारू

तोहिं कवन मति रावन आई ?
जाकी नारि सदा नवजोबन, सो क्यौं हरै पराई !
लंक सौ कोट देखि जनि गरबहि, अरु समुद्र सी खाई।
आजु-काल्हि, दिन चारि-पाँच मैं, लंका होति पराई।
जाकैं हित सैना सजि आए, राम लछन दोउ भाई।
सूरदास प्रभु लंका तोरैं, फेरैं राम-दुहाई ॥११७॥
॥ ५६१ ॥

राग मारू

आयौ रघुनाथ बली, सीख सुनौ मेरी।
सीता लै जाइ मिलौ बात रहै तेरी।
तैं जु बुरौ कर्म कियौ, सीता हरि ल्यायौ।
घर बैठे बैर कियौ, कोपि राम आयौ।

चेतत क्यौं नाहिं मूढ़, सुनि सुबात मेरी।
अजहूँ नहिं सिंधु बँध्यौ, लंका है तेरी।
सागर कौ पाज बाँधि, पार उतरि आवैं।
सैना कौ अंत नाहिं, इतनौ दल ल्यावैं।
देखि तिया कैसौ बल, करि तोहिं दिखराऊँ।
रीछ कीस बस्य करौं, रामहिं गहि ल्याऊँ।
जानति हौं, बली बालि सौं न छूटि पाई।
तुम्है कहा दोष दीजै, काल-अवधि आई।
बलि जब बहु जज्ञ किए, इंद्र सुनि सकायौ।
छल करि लइ छीनि मही, बामन ह्वै धायौ।
हिरनकसिप अति प्रचंड, ब्रह्मा बर पायौ।
तब नृसिंह रूप धरयौ, छिन न बिलँब लायौ।
पाहन सौं बाँधि सिंधु, लंका गढ़ घेरैं।
सूर मिलि बिभीषनै दुहाइ राम फेरैं ॥११८॥
॥५६२॥

राग धनाश्री

रे पिय, लंका बनचर आयौ।
करि परपंच हरी तैं सीता, कंचन-कोट ढहायौ।
तब तैं मूढ़ मरम नहिं जान्यौ, जब मैं कहि समुझायौ।
बेगि न मिलौ जानकी लै कै, रामचंद्र चढ़ि आयौ।
ऊँची धुजा देखि रथ ऊपर, लछिमन धनुष चढ़ायौ।
गहि पद सूरदास कहै भामिनि, राज बिभीषन पायौ ॥११६॥
॥५६३॥

राग सारंग

सुक-सारन द्वै दूत पठाए।
बानर-बेष फिरत सैना मैं, जानि बिभीषन तुरत बँधाए।
बीचहिं मार परी अति भारी, राम-लछन तब दरसन पाए।
दीनदयालु बिहाल देखि कै, छोरी भुजा, कहाँ तैं आए?
हम लंकेस-दूत प्रतिहारी, समुद-तीर कौं जात अन्हाए।
सूर कृपाल भए करुनामय, अपनैं हाथ दून पहिराए ॥१२०॥
॥५६४॥

राम-सागर-संवाद *राग धनाश्री*

रघुपति जबै सिंधु-तट आए।
कुस-साथरी बैठि इक आसन, बासर तीनि बिताए।
सागर गरब धर्‌यौ उर भीतर, रघुपति नर करि जान्यौ।
तब रघुबीर धीर अपनैं कर, अगिनि-बान गहि तान्यौ।
तब जलनिधि खरभर्‌यौ त्रास गहि, जंतु उठे अकुलाइ।
कह्यौ, न नाथ बान मोहिं जारौ, सरन पर्‌यौ हौं आइ।
आज्ञा होइ, एक छिन भीतर, जल इक दिसि करि डारौं।
अंतर मारग होइ, सबनि कौं इहिं बिधि पार उतारौं।
और मंत्र जो करौं देवमनि, बाँध्यौ सेतु बिचार।
दीन जानि, धरि चाप, बिहँसि कै, दियौ कंठ तैं हार।
यहै मंत्र सबहीं परधान्यौ, सेतु बंध प्रभु कीजै।
सब दल उतरि होइ पारंगत, ज्यौं न कोउ इक छीजै।
यह सुनि दूत गयौ लंका मैं, सुनत नगर अकुलानौ।
रामचंद्र-परताप दसौं दिसि, जल पर तरत पखानौ।
दस सिर बोलि निकट बैठायौ, कहि धावन सति भाउ।
उद्यम कहा होत लंका कौं, कौनैं कियौ उपाउ ?
जामवंत-अंगद बंधू मिलि, कैसैं इहिं पुर ऐहैं।
मो देखत जानकी नयन भरि, कैसैं देखन पैहैं।
हौं सति भाउ कहौं लंकापति, जौ जिय आयसु पाऊँ।
सकल भेव व्यवहार कटक कौ, परगट भाषि सुनाऊँ।
बार-बार यौं कहत सकात न, तोहिं हति लैहें प्रान।
मेरैं जान कनकपुरि फिरिहै रामचंद्र की आन।
कुंभकरन हूँ कह्यौ सभा मैं, सुनौ आदि उतपात।
एक दिवस हम ब्रह्म-लोक मैं चलत सुनी यह बात।
काम-अंध ह्वै सब कुटुंब-धन, जैहै एकै बार।
सो अब सत्य होत इहिं औसर, को है मेटनहार।
और मंत्र अब उर नहिं आनौं, आजु बिकट रन माँडौं।
गहौं बान रघुपति कैं सन्मुख ह्वै करि यह तन छाँड़ौं।
यह जस जीति परम पद पावौं, उर संसै सब खोइ।
नर मर्कट्नि जौ सरन सँभारौं, छत्री-धर्म न होइ ॥ १२१ ॥

॥५६५॥

सेतु-बंधन राग धनाश्री

रघुपति चित्त बिचार कर्‌यौ।
नातौ मानि सगर सागर सौं, कुस-साथरी पर्‌यौ।
तीनि जाम अरु बासर बीते, सिंधु गुमान भर्‌यौ।
कीन्हौ कोप कुँवर कमलापति, तब कर धनुष धर्‌यौ।
ब्रह्म-वेष आयौ अति ब्याकुल, देखत बान डर्‌यौ।
द्रुम-पषान प्रभु बेगि मँगायौ, रचना सेतु कर्‌यौ।
नल अरु नील बिस्वकर्मा-सुत, छुवत पषान तर्‌यौ।
सूरदास स्वामी प्रताप तैं, सब संताप हर्‌यौ ॥१२२॥
॥५६६॥

राग मारू

आपुन तरि तरि औरनि तारत।
अस्म अचेत प्रगट पानी मैं, बनचर लै-लै डारत।
इहिं बिधि उपलै तरत पात ज्यौं, जदपि सैल अति भारत।
बुद्धि न सकति सेतु रचना रचि, राम-प्रताप बिचारत।
जिहिं जल तृन, पसु, दारु बूड़ि अपनैं सँग औरनि पारत।
तिहिं जल गाजत महावीर सब, तरत आँखि नहिं मारत।
रघुपति-चरन-प्रताप प्रगट सुर, ब्योम बिमाननि गावत।
सूरदास क्यौं बूड़त कलऊ, नाम न बूड़न पावत ॥ १२३ ॥
॥५६७॥

जलनिधि-तरण राग धनाश्री

सिंधु-तट उतरे राम उदार।
रोष बिषम कीन्हौ रघुनंदन, सिय की बिपति बिचार।
सागर पर गिरि, गिरि पर अंबर, कपि घन कैं आकार।
गरज किलक आघात उठत, मनु दामिनि पावक झार।
परत फिराइ पयोनिधि भीतर, सरिता उलटि बहाईं।
मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्यौसार पठाईं।
बाला-बिरह दुसह सबही कौं, जान्यौ राजकुमार।
बानवृष्टि, स्रोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार।
सुबरन लंक-कलस-आभूषन, मनि-मुक्ता-गन हार।
सेतु-बंध करि तिलक, सूर प्रभु रघुपति उतरे पार ॥१२४॥
॥५६८॥

मंदोदरी-वचन रावण-प्रति

राग धनाश्री

देखि रे, वह सारँगधर आयौ।
सागर-तीर भीर बानर की, सिर पर छत्र तनायौ।
संख-कुलाहल सुनियन लागे, लीला-सिंधु बँधायौ।
सोवत कहा लंक गढ़ भीतर, अति कै कोप दिखायौ।
पदुम कोटि जिहिं सैना सुनियत, जंतु जु एक पठायौ।
सूरदास हरि बिमुख भए जे, तिनि केतिक सुख पायौ! ॥१२५॥
॥५६९॥

राग मारू

मो मति अजहुँ जानकी दीजै।
लंकापति-तिय कहति पिया सौं, यामैं कछू न छीजे।
पाहन तारे, सागर बाँध्यौ तापर चरन न भीजै।
बनचर एक लंक तिहिं जारी, ताकी सरि क्यौं कीजै!
चरन टेकि दोउ हाथ जोरि कै, बिनती क्यौं नहिं कीजै?
वै त्रिभुवन पति, करहिं कृपा अति, कुटुँब-सहित सुख जीजै।
आवत देखि बान रघुपति के, तेरौ मन न पतीजै।
सूरदास प्रभु लंक जारि कै, राज बिभीषन दीजै ॥१२६॥
॥५७०॥

रावण-वचन मंदोदरी-प्रति

राग मारू

कहा तू कहति तिय, बार बारी।
कोटि तैं तीस सुर सेव अहनिसि करैं, राम अरु लच्छमन हैं कहा री।
मृत्यु कौं बाँधि मैं राखियौ कूप मैं, देहि आवन, कहा डरति नारी!
कहति मंदोदरी, मेटि को सकै तिहिं, जो रची सूर प्रभु होनहारी ॥
॥१२७॥५७१॥

अंगद-दूतत्व

राग मारू

लंकपति पास अंगद पठायौ।
सुनि अरे अंध दसकंध,लै सीय मिलि,सेतु करि बंध रघुबीर आयौ।
यह सुनत परजस्यौ, बचन नहिं मन धस्यौ, कहा तैं राम सौं मोहिं डरायौ?
सुर-असुर जीति मैं सब किए आप बस, सूर मन सुजस तिहुँ लोक छायौ ॥ १२८ ॥ ५७२ ॥

राग मारू

बालि-नंदन बली, बिकट बनचर महा, द्वार रघुबीर कौ बीर आयौ।
पौरि तैं दौरि दरवान, दससीस सौं जाइ सिर नाइ, यौं कहि सुनायौ।
सुनि स्रवन, दस-वदन सदन-अभिमान, कै नैन की सेन अंगद बुलायौ।
देखि लंकेस कपि भेप हर हर हँस्यौ, सुनौ भट, कटक कौ पार पायौ!
बिबिध आयुध धरे, सुभट सेवत खरे, छत्र की छाहँ निरभय जनायौ।
देव-दानव-महाराज-रावन-सभा, कहन कौं मंत्र इहँ कपि पठायौ!
रंक रावन कहा ऽतंक तेरौ इतौ, दोउ कर जोरि बिनती उचारौं।
परम अभिराम रघुनाथ के नाम पर, बीस भुज सीस दस वारि डारौं।
झटकि हाटक मुकुट, पटकि भट भूमि सौं, झारि तरवारि तव
सिर सँहारौं।
जानकीनाथ कैं हाथ तेरौ मरन, कहा मति-मंद तोहिं मध्य मारौं।
पाक पावक करै, बारि सुरपति भरै, पौन पावन करै द्वार मेरे।
गान नारद करै, बार सुरगुरु कहै, बेद ब्रह्मा पढ़ै पौरि टेरे।
जच्छ, मृतु, बासुकी नाग, मुनि गंधरब, सकल बसु, जीति मैं किए चेरे।
सुनि अरे संठ, दसकंठ कौं कौन डर, राम तपसी दए आनि डेरे।
तप बली, सत्य तापस बली, तप बिना, बारि पर कौन पाषान तारै?
कौन ऐसौ बली सुभट जननी जन्य, एकहीं बान तकि बालि मारै!
परम गंभीर, रनधीर दसरथ-तनय, सरन गएँ कोटि अवगुन बिसारैं।
जाइ मिलि अंध दसकंध, गहि दंत तृन, तौ भलैं मृत्यु-मुख तैं उबारैं।
कोपि करबार गहि कह्यौ लंकाधिपति, मूढ़, कहा राम कौं सीस नाऊँ।
संभु की सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपन, स्वास आकास बनचर
उड़ाऊँ।
होइ सनमुख भिरौं, संक नहिं मन धरौं, मारि सब कटक सागर बहाऊँ।
कोटि तैंतीस मम सेव निसिदिन करत, कहा अब राम नर सौं डराऊँ।
परैं भहराइ भभकंत रिपु घाइ सौं, करि कदन रुधिर भैरौं अघाऊँ।
सूर साजौं सबै, देहुँ डौंड़ी अबै, एक तैं एक रन करि बताऊँ ॥१२६॥
॥५७३॥

राग मारू

रावन तब लौं ही रन गाजत।
अब लौं सारँगधर-कर नाहीं सारँग-बान बिराजत।

जमहु कुबेर इंद्र है जानत, रचि रचि कै रथ साजत ?
रघुपति-रवि-प्रकास सौं देखौं, उडुगन ज्यौं तोहिं भाजत।
ज्यौं सहगमन सुंदरी कैं सँग बहु बाजन हैं बाजत।
तैसैं सूर असुर आदिक सब, सँग तेरे हैं गाजत ॥१३०॥
॥५७४॥

अंगद-कथित श्रीराम संदेश *राग मारू*

जानौं हौं बल तेरौं रावन !
पठवौं कुटुँब-सहित जम-आलय, नैंकु देहि धौं मोकौं आवन।
अगिनि-पुंज सित बान धनुष धरि,तोहिं असुर-कुल-सहित जरावन।
दारुन कीस सुभट बर सन्मुख, लैहौं संग त्रिदस-बल पावन।
करिहौं नाम अचल पसुपति कौ, पूजा-बिधि कौतुक दिखरावन।
दस मुख छेदि सुपक नव फल ज्यौं, संकर-उर दससीस चढ़ावन।
दैहौं राज बिभीषन जन कौं, लंकपुर रघु-आन चलावन।
सूरदास निस्तरिहैं यह जस करि करि दीन-दुखित जन गावन॥१३१॥
॥५७५॥

राग मारू

मोकौं राम रजायसु नाहीं।
नातरु सुनि दसकंध निसाचर, प्रलय करौं छिन माहीं।
पलटि धरौं नव खंड पुहुमि तल, जौ बल भुजा सम्हारौं।
राखौं मेलि भँडार सूर-ससि, नभ कागद ज्यौं फारौं।
जारौं लंक, छेदि दस मस्तक, सुर-संकोच निवारौं।
श्रीरघुनाथ-प्रताप-चरन करि उर तैं भुजा उपारौं।
रे रे चपल, बिरूप, ढीठ, तू बोलत वचन अनेरौ।
चितवै कहा पानि-पल्लव-पुट, प्रान प्रहारौं तेरौ।
केतिक संख जुगे जुग बीते मानव असुर-अहेरौ।
तीनि लोक विख्यात बिसद जस, प्रलय नाम है मेरौ।
रे रे अंध बीसहू लोचन, पर-तिय-हरन बिकारी।
सूनैं भवन गवन तैं कीन्हौ, सेष-रेख नहिं टारी।
अजहूँ कह्यौ सुनै जौ मेरौ, आए निकट मुरारी।
जनक-सुता तैं चलि, पाइनि परि, श्रीरघुनाथ-पियारी।

"संकट परैं जो सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाऊँ।
जन्महि तैं तामस आराध्यौ, कैसैं हित उपजाऊँ?
अब तौ सूर यहै बनि आई, हर कौ निज पद पाऊँ।
ये दससीस ईस-निरमायल, कैसैं चरन छुवाऊँ"? ॥१३२॥
॥५७६॥

राग मारू

मूरख, रघुपति-सत्रु कहावत?
जाके नाम, ध्यान, सुमिरन तैं, कोटि जज्ञ-फल पावत!
नारदादि सनकादि महामुनि, सुमिरत मन-वच ध्यावत।
असुर तिलक प्रहलाद, भक्त बलि, निगम नेति जस गावत।
जाकी घरनि हरी छल-बल करि, लायौ बिलँब न आवत।
दस अरु आठ पदुम बनचर लै, लीला सिंधु बँधावत!
जाइ मिलौ कौसल-नरेस कौं, मन अभिलाष बढ़ावत।
दै सीता अवधेस पाइँ परि, रहु लंकेस कहावत।
तू भूल्यौ दससीस बीस भुज, मोहिं गुमान दिखावत।
कंध उपारि डारिहौं भूतल, सूर सकल सुख पावत ॥१३३॥
॥५७७॥

राग मारू

रे कपि, क्यौं पितु-बैर बिसार्‌यौ?
तो समतुल कन्या किन उपजी, जो कुल-सत्रु न मार्‌यौ!
ऐसौ सुभट नहीं महिमंडल देख्यौ बालि-समान।
तासौं कियौ बैर मैं हार्‌यौ, कीन्हौं पैज प्रमान।
ताकौ बध कीन्हौ इहिं रघुपति, तुव देखत बिदमान।
ताकी सरन रह्यौ क्यौं भावै, सब्द न सुनियै कान!
"रे दसकंध, अंध-मति, मूरख, क्यौं भूल्यौ इहिं रूप?
सूझत नहीं बीसहू लोचन, पर्‌यौ तिमिर कैं कूप!
धन्य पिता, जापर परफुल्लित राघव-भुजा अनूप।
वा प्रताप की मधुर बिलोकनि पर वारौं सब भूप"।
"जौ तोहिं नाहिं बाहु-बल-पौरुष, अर्ध राज देउँ लंक।
मो समेत ये सकल निसाचर, लरत न मानैं संक।

जब रथ साजि चढ़ौं रन-सन्मुख, जीय न आनौं तंक।
राघव सेन समेत सँहारौं, करौं रुधिरमय पंक"।
"श्रीरघुनाथ-चरन-व्रत उर धरि, क्यौं नहिं लागत पाइ?
सबके ईस, परम करुनामय, सबही कौं सुखदाइ।
हौं जु कहत, लै चलौ जानकी, छाँड़ौ सबै ढिठान।
सनमुख होइ सूर के स्वामी, भक्तनि कृपा-निधान"॥१३४॥
॥५७८॥

राग मारू

लंकपति इंद्रजित कौं बुलायौ।
कह्यौ तिहिं, जाइ रनभूमि दल साजि कै, कहा भयौ राम कपि जोरि ल्यायौ।
कोपि अंगद कह्यौ, धरौं धर चरन मैं, ताहि जो सकै कोऊ उठाई।
तौ बिना जुद्ध किये जाहिं रघुबीर फिरि, सुनत यह उठे जोधा रिसाई।
रहे पचिहारि, नहिं टारि कोऊ सक्यौ, उठ्यौ तब आपु रावन खिस्याई।
कह्यौ अंगद, कहा मम चरन कौं गहत, चरन रघुबीर गहि क्यौं न जाई।
सुनत यह सकुचि कियौ गवन निज भवन कौं, बालि-सुतहू तहाँ तैं सिधायौ।
सूर के प्रभू कौं नाइ सिर यौं कह्यौ, अंध दसकंध कौ काल आयौ॥
॥१३५॥५७९॥

राग मारू

बालि-नंदन आइ सीस नायौ।
अंध दसकंध कौं काल सूझत न प्रभु, ताहि मैं बहुत बिधि कहि जनायौ।
इंद्रजित चढ़्यौ निज सैन सब साजि कै, रावरी सैनहूँ साज कीजै।
सूर प्रभु मारि दसकंध, थपि बंधु तिहिं, जानकी छोरि जस जगत लीजै॥१३६॥५८०॥

लक्ष्मण-वचन

राग मारू

रघुपति, जौ न इंद्रजित मारौं।
तौ न होउँ चरननि कौ चेरौ, जौ न प्रतिज्ञा पारौं।

यह दृढ़ बात जानियै प्रभु जू, एकहिँ बान निवारौँ।
सपथ राम परताप तिहारैं खंड खंड करि डारौँ।
कुंभकरन, दससीस बीसभुज, दानव-दलहिँ बिदारौँ।
तबै सूर संधान सफल हौं, रिपु कौ सीस उतारौँ ॥१३७॥
॥५८१॥

लक्ष्मण-युद्धगमन *राग मारू*

लखन दल संग लै लंक घेरी।
पृथी भइ पष्ट अरु अष्ट आकास भए, दिसि-विदिस कोउ नहिं
जात हेरी।
रीछ लंगूर किलकारि लागे करन, आन रघुनाथ की जाइ फेरी।
पाट गए टूटि, परी लूटि सब नगर मैं, सूर दरवान कह्यौ जाइ टेरी ॥
॥१३८॥५८२॥

मंदोदरी-वचन रावण के प्रति *राग मारू*

रावन, उठि निरखि देखि, आजु लंक घेरी।
कोटि जतन करि रही, सिख मानी नहिं मेरी।
गहगहात किलकिलात, अंधकार आयौ।
रबि कौ रथ सूझत नहिँ, धरनि-गगन छायौ।
पौरि-पाट टूटि परे, भागे दरवाना।
लंका मैं सोर पर्‍यौ अजहुँ तैं न जाना!
फोरि फारि, तोरि तारि, गगन होत गाजैं।
सूरदास लंका पर चक्र संख बाजैं ॥ १३९ ॥
॥५८३॥

राग मारू

लंका फिरि गइ राम-दुहाई।
कहति मँदोदरि सुनि पिय रावन, तैं कहा कुमति कमाई?
दस मस्तक मेरे बीस भुजा हैं, सौ जोजन की खाई।
मेघनाद से पुत्र महाबल, कुंभकरन से भाई।
रहि रहि अबला बोल न बोलै, उनकी करति बड़ाई।
तीनि लोक तैं पकरि मँगाऊँ, वै तपसी दोउ भाई।

तुम्हैं मारि महिरावन मारैं, देहिं बिभीषन राई।
पवन कौ पूत महाबल जोधा, पल मैं लंक जराई।
जनकसुता-पति हैं रघुबर से सँग लछिमन से भाई।
सूरदास प्रभु कौ जस प्रगट्यौ, देवनि बंदि छुड़ाई ॥१४०॥
॥५८४॥

राग मारू

मेघनाद ब्रह्मा-बर पायौ।
आहुति अगिनि जिवाइ सँतोषी, निकस्यौ रथ बहु रतन बनायौ।
आयुध धरैं समस्त कवच सजि, गरजि चढ़्यौ, रन-भूमिहिं आयौ।
मनौ मेघनायक रितु पावस, बान-बृष्टि करि सैन कँपायौ।
कीन्हौ कोप कुँवर कौसलपति, पंथ अकास सायकनि छायौ।
हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बंधु-समेत बँधायौ।
नारद स्वामी कह्यौ निकट ह्वै, गरुड़ासन काहैं बिसरायौ?
भयौ तोष दसरथ के सुत कौं, सुनि नारद कौ ज्ञान लखायौ।
सुमिरन ध्यान जानि कै अपनौ, नाग-फाँस तैं सेन छुड़ायौ।
सूर बिमान चढ़े सुरपुर सौं, आनँद अभय-निसान बजायौ ॥१४१॥
॥५८५॥

कुंभकरण-रावण-संवाद *राग मारू*

लंकपति अनुज सोवत जगायौ।
लंकपुर आइ रघुराइ डेरा दियौ, तिया जाकी सिया मैं लै आयौ।
तैं बुरी बहुत कीन्ही, कहा तोहिं कहौं, छाँड़ि जस, जगत अपजस बढ़ायौ।
सूर अब डर न करि, जुद्ध कौ साज करि, होइहै सोइ जो दई-भायौ
॥१४२॥५८६॥

राग मारू

लछन कह्यौ, करवार सम्हारौं।
कुंभकरन अरु इंद्रजीत कौं टूक-टूक करि डारौं।
महाबली रावन जिहिं बोलत, पल मैं सीस सँहारौं।
सब राच्छस रघुबीर-कृपा तैं, एकहिं बान निवारौं।

हँसि-हँसि कहत बिभीषन सौं प्रभु, महाबली रन भारौ।
सूर सुनत रावन उठि धायौ, क्रोध अनल उर धारौ ॥१४३॥
॥५८७॥

राग मारू

रावन चल्यौ गुमान भर्‌यौ।
श्रीरघुनाथ अनाथबंधु सौं, सनमुख खेत खर्‌यौ।
कोप कर्‌यौ रघुबीर धीर तब, लछिमन पाइ पर्‌यौ।
तुम्हरैं तेज-प्रताप नाथ जू, मैं कर-धनुष धर्‌यौ।
सारथि सहित अस्व बहु मारे, रावन क्रोध जर्‌यौ।
इंद्रजीत लीन्ही तब सक्ती, देवनि हहा कर्‌यौ।
छूटी बिज्जु-रासि वह मानौ, भूतल बंधु पर्‌यौ।
करुना करत सूर कोसलपति, नैननि नीर भर्‌यौ ॥१४४॥
॥५८८॥

राग मारू

निरखि मुख राघव धरत न धीर।
भए अति अरुन, बिसाल कमल-दल-लोचन मोचत नीर।
बारह बरष नींद है साधी तातैं बिकल सरीर।
बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ, बिपति-बँटावन बीर!
दसरथ-मरन, हरन सीता कौ, रन बैरिनि की भीर।
दूजौ सूर सुमित्रा-सुत बिनु, कौन धरावे धीर? ॥१४५॥
॥५८९॥

राग मारू

अब हौं कौन कौ मुख हेरौं?
रिपु-सैना-समूह-जल उमड़्यौ, काहि संग लै फेरौं?
दुख-समुद्र जिहिं वार-पार नहिं, तामैं नाव चलाई।
केवट थक्यौ, रही अधबीचहिं, कौन आपदा आई?
नाहीं भरत-सत्रुघन सुंदर, जिनसौं चित्त लगायौ।
बीचहिं भई और की औरै, भयौ सत्रु कौ भायौ।
मैं निज प्रान तजौंगौ सुनि कपि, तजिहि जानकी सुनिकै।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनि कै।

बार-बार सिर लै लछिमन कौ, निरखि गोद पर राखैं।
सूरदास प्रभु दीन बचन यौं, हनूमान सौं भाषैं ॥१४६॥
॥५६०॥

राग मारू

कहाँ गयौ मारुत-पुत्र कुमार।
ह्वै अनाथ रघुनाथ पुकारे, संकट-मित्र हमार।
इतनी बिपति भरत सुनि पावैं, आवैं साजि बरूथ।
कर गहि धनुष जगत कौं जीतैं, कितिक निसाचर जूथ।
नाहिंन और बियौ कोउ समरथ, जाहि पठावौं दूत।
को अब है पौरुष दिखरावै, बिना पौन के पूत?
इतनौ बचन स्रवन सुनि हरष्यौ, फूल्यौ अंग न मात।
लै-लै चरन-रेनु निज प्रभु की, रिपु कैं स्रोनित न्हात।
अहो पुनीत मीत केसरि-सुत, तुम हित बंधु हमारे।
जिह्वा रोम-रोम-प्रति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हारे।
जहाँ-जहाँ जिहिं काल सँभारे, तहँ-तहँ त्रास निवारे।
सूर सहाइ कियौ बन बसि कै, बन-बिपदा-दुख टारे ॥१४७॥
॥५६१॥

हनुमान-वचन श्रीराम-प्रति *राग मारू*

रघुपति, मन संदेह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यौं मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजै।
कहौ तौ सूरज उगन देउँ नहिं, दिसि-दिसि बाढ़ै ताम।
कहौ तौ गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाइ न, राम।
कहौ तौ कालहिं खंड-खंड करि टूक-टूक करि काटौं।
कहौ तौ मृत्युहिं मारि डारि कै, खोदि पतालहिं पाटौं।
कहौ तौ चंद्रहिं लै अकास तैं, लछिमन मुखहि निचोरौं।
कहौ तौ पैठि सुधा कैं सागर, जल समस्त मैं घोरौं।
श्रीरघुबर, मोसौं जन जाकैं, ताहि कहा सँकराई?
सूरदास मिथ्या नहिं भाषत, मोहिं रघुनाथ-दुहाई ॥१४८॥
॥५६२॥

राग मारू

कह्यौ तब हनुमत सौं रघुराई।
दौनागिरि पर आहि सँजीवनि, बैद सुषेन बताई।

तुरत जाइ लै आउ उहाँ तैं, बिलँब न करि मो भाई।
सूरदास प्रभु-बचन सुनतहीं, हनुमत चल्यौ अतुराई ॥१४९॥
॥५६३॥

राग मारू

दौनागिरि हनुमान सिधायौ।
संजीवनि को भेद न पायौ, तब सब सैल उठायौ।
चितै रह्यौ तब भरत देखि कै, अवधपुरी जब आयौ।
मन मैं जानि उपद्रव भारी, बान अकास चलायौ।
राम-राम यह कहत पवन-सुत, भरत निकट तब आयौ।
पूछ्यौ सूर कौन है कहि तू, हनुमत नाम सुनायौ ॥१५०॥
॥५६४॥

राग मारू

कहौ कपि रघुपति कौ संदेस।
कुसल बंधु लछिमन, बैदेही, श्रीपति सकल-नरेस।
जनि पूछौ तुम कुसल नाथ की, सुनौ भरत बलबीर।
बिलख-बदन, दुख भरे सिया के, हैं जलनिधि कैं तीर।
बन मैं बसत, निसाचर छल करि, हरी सिया मम मात।
ता कारन लछिमन सर लाग्यौ, भए राम बिनु भ्रात।
यह सुनि कौसिल्या सिर ढोर्‌यौ, सबनि पुहुमि तन जोयौ।
त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि, मातु सुमित्रा रोयौ।
धन्य सुपुत्र पिता-पन राख्यौ, धनि सुबधू कुल-लाज।
सेवक धन्य अंत अवसर जो आवै प्रभु कैं काज।
पुनि धरि धीर कह्यौ, धनि लछिमन, राम काज जो आवै।
सूर जियै तौ जग जस पावै, मरि सुरलोक सिधावै ॥१५१॥
॥५६५॥

राग मारू

धनि जननी जो सुभटहिं जावै।
भीर परैं रिपु कौ दल दलि-मलि, कौतुक करि दिखरावै।
कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा, जनि स्वामिनि दुख पावै।
लछिमन जनि हौं भई सपूती, राम-काज जो आवै।

जीवै तौ सुख बिलसै जग मैं, कीरति लोकनि गावै।
मरै तौ मंडल भेदि भानु कौ, सुरपुर जाइ बसावै।
लोह गहैं लालच करि जिय कौ, औरौ सुभट लजावै।
सूरदास प्रभु जीति सत्रु कौं, कुसल-छेम घर आवै ॥१५२॥
॥५६६॥

राग मारू

सुनौ कपि, कौसिल्या की बात।
इहिं पुर जनि आवहिं मम बत्सल, बिनु लछिमन लघु भ्रात।
छाँड़्यौ राज-काज, माता-हित, तुव चरननि चित लाइ।
ताहि बिमुख जीवन धिक रघुपति, कहियौ कपि समुझाइ।
लछिमन सहित कुसल बैदेही, आनि राज पुर कीजै।
नातरु सूर सुमित्रा-सुत पर वारि अपुनपौ दीजै ॥१५३॥
॥५६७॥

राग मारू

बिनती कहियौ जाइ पवनसुत, तुम रघुपति के आगे।
या पुर जनि आवहु बिनु लछिमन, जननी-लाजनि-लागे।
मारुतसुतहिं सँदेस सुमित्रा ऐसैं कहि समुझावै।
सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै।
जब तैं तुम गवने कानन कौं, भरत भोग सब छाँड़े।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख-समूह उर गाड़े ॥१५४॥
॥५६८॥

राग मारू

पवन-पुत्र बोल्यौ सतिभाइ।
जानि सिराति राति बातनि मैं, सुनौ भरत, चित लाइ।
श्रीरघुनाथ सँजीवनि कारन, मोकौं इहाँ पठायौ।
भयौ अकाज अर्द्धनिसि बीती, लछिमन-काज नसायौ।
त्यौं परबत [सत बैठि पवनसुत, हौं प्रभु पै पहुँचाऊँ।
सूरदास प्रभु-पाँवरि मम सिर इहिं बल भरत कहाऊँ ॥१५५॥
॥५६९॥

राग सारंग

हनूमान संजीवनि ल्यायौ।
महाराज रघुबीर धीर कौं हाथ जोरि सिर नायौ।
परवत आनि धर्यौ सागर-तट, भरत सँदेस सुनायौ।
सूर सँजीवनि दै लछिमन कौं मूर्छित फेरि जगायौ ॥१५६॥
॥६००॥

राग टोड़ी

दूसरैं कर बान न लैहौं।
सुनि सुग्रीव, प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं।
सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहारि पाप-फल-प्रेरित, सिर-माला सिव-सीस चढ़ैहौं।
मनौ तूल-गन परत अगिनि-मुख, जारि जड़नि जम-पंथ पठैहौं।
करिहौं नाहिं बिलंब कछू अब, उठि रावन सन्मुख ह्वै धैहौं।
इमि दमि दुष्ट देव-द्विज मोचन, लंक बिभीषन, तुमकौं दैहौं।
लछिमन, सिया समेत सूर कपि, सब सुख सहित अजोध्या जैहौं।
॥ १५७ ॥ ६०१ ॥

राग मारू

आजु अति कोपे हैं रन राम।
ब्रह्मादिक आरूढ़ बिमाननि, देखत हैं संग्राम।
घन तन दिब्य कवच सजि करि अरु कर धार्यौ सारंग।
सुचि करि सकल बान सूधे करि, कटि-तट कस्यौ निषंग।
सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कै, रघुपति भए सवार।
काँपी भूमि कहा अब ह्वैहै, सुमिरत नाम मुरारि।
छोभित सिंधु, सेष-सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग।
इंद्र हँस्यौ, हर हिय बिलखान्यौ, जानि बचन कौ भंग।
धर-अंबर, दिसि-बिदिसि, बढ़े अति सायक किरन-समान।
मानौ महा-प्रलय के कारन, उदित उभय षट भान।
टूटत धुजा-पताक-छत्र-रथ, चाप-चक्र-सिरत्रान।
जूझत सुभट जरत ज्यौं दव द्रुम बिनु साखा बिनु पान।
स्रोनित छिछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिनि-सिर लागि।
मानौ निकरि तरनि रंध्रनि तैं, उपजी है अति आगि।

परि कबंध महराइ रथनि तैं, उठत मनौ भर जागि।
फिरत सृगाल सज्यौ सब काटत चलत सो सिर लै भागि।
रघुपति रिस पावक प्रचंड अति, सीता-स्वास समीर।
रावन-कुल अरु कुंभकरन बन सकल सुभट रनधीर।
भए भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर।
सूरदास प्रभु आपु बाहुबल कियौ निमिष मैं कीर ॥१५८॥
॥६०२॥

राग मारू

रघुपति अपनौ प्रन प्रतिपार्‌यौ।
तोर्‌यौ कोपि प्रबल गढ़, रावन टूक-टूक करि डार्‌यौ।
कहुँ भुज, कहुँ धर, कहुँ सिर लोटत, मानौ मद-मतवारौ।
भभकत, तरफत स्रोनित मैं तन, नाहीं परत निहारौ।
छोरे और सकल सुख-सागर, बाँधि उदधि-जल खारौ।
सुर-नर-मुनि सब सुजस बखानत, दुष्ट दसानन मारौ।
डरपत, बरुन-कुबेर-इंद्र-जम, महा सुभट पन धारौ।
रह्यौ मांस कौ पिंड, प्रान लै गयौ बान अनियारौ।
नव ग्रह परे रहैं पाटी-तर, कूपहिं काल उसारौ।
सो रावन रघुनाथ छिनक मैं कियौ गीध कौ चारौ।
सिर सँभारि लै गयौ उमापति, रह्यौ रुधिर कौ गारौ।
दियौ बिभीषन राज सूर प्रभु, कियौ सुरनि निस्तारौ ॥१५९॥
॥६०३॥

राग मारू

करुना करति मँदोदरि रानी।
चौदह सहस सुंदरी उमहीं, उठै न कंत महा अभिमानी।
बार-बार बरज्यौ, नहिं मान्यौ, जनक-सुता तैं कत घर आनी।
ये जगदीस ईस कमलापति, सीता तिय करि तैं कत जानी?
लीन्हे गोद बिभीषन रोवत, कुल कलंक ऐसी मति ठानी।
चोरी करी, सजहू खोयौ, अल्प मृत्यु तब आइ तुलानी।
कुंभकरन समुझाइ रहे पचि, दै सीता, मिलि सारँगपानी।
सूर सबनि कौ कह्यौ न मान्यौ, त्यौं खोई अपनी रजधानी ॥१६०॥
॥६०४॥

राग मारू

लछिमन सीता देखी जाइ।
अति कृस, दीन, छीन-तन प्रभु बिनु, नैननि नीर बहाइ।
जानवंत-सुग्रीव-बिभीषन करी दंडवत आइ।
आभूषन बहुमोल पटंबर, पहिरौ मातु बनाइ।
बिनु रघुनाथ मोहि सब फीके, आज्ञा मेटि न जाइ।
पुहुप बिमान बैठी बैदेही, त्रिजटी सब पहिराइ।
देखत दरस राम मुख मोर्‌यौ, सिया परी मुरझाइ।
सूरदास स्वामी तिहुँ पुर के, जग-उपहास डराइ॥१६१॥
॥६०५॥

राग सोरठ

लछिमन, रचौ हुतासन भाई!
यह सुनि हनूमान दुख पायौ, मोपै लख्यौ न जाई।
आसन एक हुतासन बैठी, ज्यौं कुंदन-अरुनाई।
जैसैं रवि इक पल घन भीतर बिनु मारुत दुरि जाई।
लै उछंग उपसंग हुतासन, "निहकलंक रघुराई!"
लई बिमान चढ़ाइ जानकी, कोटि मदन छबि छाई।
दसरथ कह्यौ देवहू भाष्यौ, ब्योम बिमान टिकाई।
सिया राम लै चले अवध कौं, सूरदास बलि जाई॥१६२॥
॥६०६॥

राग मारू

सुरपतिहिं बोलि रघुबीर बोले।
अमृत की बृष्टि रन-खेत ऊपर करौ, सुनत तिन अमिय-भंडार खोले।
उठे कपि-भालु ततकाल जै-जै करत, असुर भए मुक्त, रघुबर निहारे।
सूर प्रभु अगम-महिमा न कछु कहि परति, सिद्ध गंधर्ब जै-जै उचारे।
॥ १६३ ॥ ६०७ ॥

राग सारंग

बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन-राम मिलैं अब मोकौं, दोउ अमोलक मोती।
इतनी कहत, सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ।

जब लौं हौं जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं।
दधि-ओदन दोना भरि दैहौं, अरु भाइनि मैं थपिहौं।
अब कैं जौ परचौ करि पावौं अरु देखौं भरि आँखि।
सूरदास सोने कैं पानी मढ़ौं चोंच अरु पाँखि ॥१६४॥
॥६०८॥

राग मारू

हमारी जन्मभूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-विभीषन, अवनि अजोध्या नाउँ।
देखत बन-उपबन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिए बोलत हौं, सुरपुर मैं न रहाउँ।
ह्याँ के बासी अवलोकत हौं, आनँद उर न समाउँ।
सूरदास जौ बिधि न सँकोचै, तौ बैकुंठ न जाउँ ॥१६५॥
॥६०९॥

राग बसंत

राघव आवत हैं अवध आज। रिपु जीते, साधे देव-काज।
प्रभु कुसल बंधु-सीता समेत। जस सकल देस आनंद देत।
कपि सोभित सुभट अनेक संग। ज्यौं पूरन ससि सागर-तरंग।
सुग्रीव - विभीषन - जामवंत। अंगद - सुषेन - केदार संत।
नल-नील - द्विविद-केसरि गवच्छ। कपि कहे कछुक, हैं बहुत लच्छ।
जब कही पवन-सुत बंधु-बात। तब उठी सभा सब हरष-गात।
ज्यौं पावस रितु घन-प्रथम-घोर। जल जीवक, दादर रटत मोर।
जब सुन्यौ भरत पुर-निकट भूप। तब रची नगर-रचना अनूप।
प्रति-प्रति-गृह तोरन ध्वजा-धूप। सजे सजल कलस अरु कदलि-यूप।
दधि-दूब-हरद, फल-फूल-पान। कर कनक-थार तिय करतिं गान।
सुनि भेरि-वेद-धुनि संख-नाद। सब निरखत पुलकित अति प्रसाद।
देखत प्रभु की महिमा अपार। सब बिसरि गए मन-बुधि-बिकार।
जै-जै दसरथ-कुल-कमल-भान। जै कुमुद-जननि-ससि, प्रजा-प्रान।
जै दिवि भूतल सोभा समान। जै-जै-जै सूर, न सब्द आन ॥१६६॥
॥६१०॥

राग मारू

वै देखौ रघुपति हैं आवत।
दूरिहिं तैं दुतिया के ससि ज्यौं, ब्योम बिमान महा छबि छावत।

सीय सहित वर वीर विराजत, अवलोकत आनंद बढ़ावत।
चारु चाप कर परस सरस सिर मुकुट धरे सोभा अति पावत।
निकट नगर जिय जानि धँसे धर, जन्मभूमि की कथा चलावत।
ये मम अनुज परे दोउ पाइनि, ऐसी विधि कहि कहि समुझावत।
ये बसिष्ठ कुल-इष्ट हमारे, पालागन कहि सखनि सिखावत।
ये स्वामी, सुग्रीव-विभीषन, भरतहुँ तैं हमकौं जिय भावत।
रिपु-जय, देव-काज, सुख-संपति सकल सूर इनही तैं पावत।
ये अंगद हनुमान कृपानिधि पुर पैठत जिनकौ जस गावत॥१६७॥
॥६११॥

राग मारू

देखौ कपिराज, भरत वै आए।
मम पाँवरी सीस पर जाकैं, कर-अँगुरी रघुनाथ बताए।
छीन सरीर बीर के बिछुरैं, राज-भोग चित तैं बिसराए।
तप अरु लघु-दीरघता, सेवा, स्वामि-धर्म सब जगहिं सिखाए।
पुहुप विमान दूरिहीं छाँड़े, चपल चरन आवत प्रभु धाए।
आनँद-मगन पगनि केकइ-सुत कनक-दंड ज्यौं गिरत उठाए।
भेंटत आँसू परे पीठि पर, बिरह-अगिनि मनु जरत बुझाए।
ऐसेहिं मिले सुमित्रा-सुत कौं, गदगद गिरा नैन जल छाए।
जथाजोग भेंटे पुरबासी, गए सूल, सुख-सिंधु नहाए।
सिया-राम-लछिमन मुख निरखत, सूरदास के नैन सिराए॥१६८॥
॥६१२॥

राग मारू

अति सुख कौसिल्या उठि धाई।
उदित वदन मन मुदित सदन तैं, आरति साजि सुमित्रा ल्याई।
जनु सुरभी बन बसति बच्छ बिनु, परबस पसुपति की बहराई।
चली साँझ समुहाइ स्रवत थन, उमँगि मिलन जननी दोउ आई।
दधि-फल-दूब कनक-कोपर भरि, साजत सौंज विचित्र बनाई।
अमी-बचन सुनि होत कुलाहल, देवनि दिवि दुंदुभी बजाई।
बरन-बरन पट परत पाँवड़े, बीथिनि सकल सुगंध सिंचाई।
पुलकित-रोम, हरष-गदगद-स्वर, जुवतिनि मंगल-गाथा गाई।

निज मंदिर मैं आनि तिलक दै, द्विज-गन मुदित असीस सुनाई।
सिया-सहित सुख बसौ इहाँ तुम, सूरदास नित उठि बलि जाई।
॥ १६९ ॥ ६१३ ॥

राम-दर्शन *राग बिलावल*

देखन कौं मंदिर आनि चढ़ी।
रघुपति-पूरनचंद बिलोकत, मनु पुर-जलधि-तरंग बढ़ी।
प्रिय-दरसन-प्यासी अति आतुर, निसि-बासर गुन-ग्राम रढ़ी।
रही न लोक-लाज मुख निरखत, सीस नाई आसीस पढ़ी।
भई देह जो खेह करम-बस, जनु तट गंगा अनल दढ़ी।
सूरदास प्रभु दृष्टि सुधानिधि, मानौ फेरि बनाइ गढ़ी ॥१७०॥
॥६१४॥

राग मारू

मनिमय आसन आनि धरे।
दधि-मधु-नीर कनक के कोपर आपुन भरत भरे।
प्रथम भरत बैठाइ बंधु कौं, यह कहि पाइ परे।
हौं पावौं प्रभु-पाइ पखारन, रुचि करि सो पकरे।
निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनँद-आँसु ढरे।
जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै, सुखित समोइ करे।
परसत पानि-चरन-पावन, दुख अँग-अँग सकल हरे।
सूर सहित आमोद चरन-जल लै करि सीस धरे ॥१७१॥
॥६१५॥

राग आसावरी

बिनती किहिं बिधि प्रभुहिं सुनाऊँ ?
महाराज रघुबीर धीर कौं, समय न कबहूँ पाऊँ।
जाम रहत जामिनि के बीतैं, तिहिं औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद मैं, कैसैं प्रभुहिं जगाऊँ।
दिनकर-किरनि-उदित, ब्रह्मादिक-रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि गन की, तिहिं तैं ठौर न पाऊँ।
उठत सभा दिन मधि, सैनापति-भीर देखि, फिरि आऊँ।
न्हात-खात सुख करत साहिबी, कैसैं करि अनखाऊँ।

रजनी-मुख आवत गुन-गावत, नारद तुंबुर नाऊँ।
तुमहीं कहौ कृपा निधि रघुपति, किहिं गिनती मैं आऊँ ?
एक उपाउ करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित-उधारन नाम सूर प्रभु, यह रुक्का पहुँचाऊँ ॥१७२॥
॥६१६॥

कच-देवयानी-कथा राग भैरौ

अविगत-गति कछु समुझि न परै। जो कछु प्रभु चाहै सो करै।
जिव कौ क्रियौ कछू नहिं होइ। कोटि उपाव करौ किन कोइ।
एक बार सुरपति-मन आई। सुक्र असुर कौं लेत जिवाई।
मम गुरुहू विद्या पढ़ि आवै। मृतक सुरनि कौं फेरि जिवावै।
निज गुरु सौं भाष्यौ तिन जाइ। सुक्र असुर कौं लेत जिवाइ।
तुमहूँ यह विद्या पढ़ि आवौ। मृतक सुरनि कौं तुमहुँ जिवावौ।
तब तिन कच कौं दियौ पठाइ। कह्यौ सुक्र कौं तिन सिर नाइ।
मैं आयौ तुम पै रिषिराइ। तुम मोहिं विद्या देहु पढ़ाइ।
सुक्र कह्यौ तासौं या भाइ। देहौं विद्या तोहिं पढ़ाइ।
विद्या पढ़ै करै गुरु-सेव। सब विधि सोधै ताकी टेव।
सुक्र-सुता देवयानी नाम। सब गुन-पूर्न रूप-अभिराम।
सुरगुरु-सुत कौं देखि लुभाई। देखै ताहि पुरुष की नाई।
काल बितीत कितिक जब भयौ। गाइ चावन कौं सो गयौ।
असुरनि मिलि यह कियौ विचार। सुरगुरु-सुत कौं डारैं मार।
जौ यह संजीवनि पढ़ि जाइ। तौ हम-सत्रुनि लेइ जिवाइ।
यह विचार करि कच कौं मार्‌यौ। सुक्र-सुता दिन पंथ निहार्‌यौ।
साँझ भए हूँ जब नहिं आयौ। सुक्र पास तिनि जाइ सुनायौ।
सुक्र हृदय मैं कियौ विचार। कह्यौ असुरनि उहिं डार्‌यौ मार।
सुता कह्यौ तिहि फेरि जिवावौ। मेरे जिय कौ सोच मिटावौ।
सुक्र ताहि पढ़ि मंत्र जिवायौ। भयौ तासु तनया कौ भायौ।
पुनि हति मदिरा माहिं मिलाइ। दियौ दानवनि रिपिहिं पियाइ।
तब तैं हत्या मद कौं लागी। यहै जानि सब सुर-मुनि त्यागी।
साप दियौ ताकौं इहि भाइ। जो तोहिं पियै सो नरकहिं जाइ।
कच बिनु सुक्र-सुता दुख पायौ। तब रिषि तासौं कहि समुझायौ।
मार्‌यौ कच कौं असुरनि धाइ। मदिरा मैं मोहिं दियौ पियाइ।

ताहि जिवाऊँ तौ मैं मरौं। जो तुम कहौ सो अब मैं करौं।
कह्यौ बिनय करि सुनु रिषिराइ। दोउ जीवैं सो करौ उपाइ।
संजीवनि तब कचहिं पढ़ाई। तासौं पुनि यौं कह्यौ बुझाई।
जब तुम निकसि उदर तैं आवहु। या विद्या करि मोहिं जिवावहु।
उदर फारि तिहिं बाहर कियौ। मिरतक कच ऐसी बिधि जियौ।
सो जब उदर तैं बाहर आयौ। संजीवनि पढ़ि सुक्र जिवायौ।
बहुतक काल बीति जब गयौ। कच रिषि रिषि-तनया सौं कह्यौ।
अब मैं तुम्हरी आज्ञा पाइ। तात-मातु कौं देखौं जाइ।
रिषि-तनया कह्यौ मोहिं बिवाहि। कच कह्यौ तू गुरु-भगिनी आहि।
तब तिन साप दियौ या भाइ। विद्या पढ़ी सो बिरथा जाइ।
कचहूँ ताहि कही या भाइ। बिप्र पुरुष तोहिं मिलै न आइ।
यह कहि कच अपनैं गृह आयौ। पिता-पास वृत्तांत सुनायौ।
सुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ।
॥ १७३ ॥ ६१७ ॥

देवयानी-ययाति-विवाह *राग भैरो*

दानव वृषपर्वा बल भारी। नाम स्रमिष्ठा तासु कुमारी।
तासु देवयानी सौं प्यार। रहै न तासौं पल भर न्यार।
एक बार ताकैं मन आई। न्हावन-काज तड़ाग सिधाई।
ता सँग दासी गईं अपार। न्हान लगीं सब बसन उतार।
अँधियारी आई तहँ भारी। दनुज-सुता तिहिं तैं न निहारी।
बसन सुक्र-तनया के लीन्हे। करत उतावलि परे न चीन्हे।
सुक्र-सुता जब आई बाहर। बसन न पाए तिन ता ठाहर।
असुर-सुता कौं पहिरे देखि। मन मैं कीन्हौ क्रोध बिसेषि।
कह्यौ मम बसन नहीं तुव जोग। तुम दानव, हम तपसी लोग।
मम पितु दियौ राज नृप करत। तू मम बसन हरत नहिं डरत।
तिन कह्यौ,तुव पितु भिच्छा खात। बहुरि कहति हमसौं यौं बात!
या बिधि कहि, करि क्रोध अपार। दीन्यौ ताहि कूप मैं डार।
नृपति जजाति अचानक आयौ। सुक्र-सुता कौ दरसन पायौ।
दियौ तब बसन आपनौ डारि। हाथ पकरि कै लियौ निकारि।
बहुरि नृपति निज गेह सिधायौ। सुता सुक्र सौं जाइ सुनायौ।
सुक्र क्रोध करि नगरहिं त्याग्यौ। असुर नृपति सुनि रिषि-सँग लाग्यौ।

जब बहु भाँति विनय नृप करी। तब रिषि यह बानी उच्चरी।
मम कन्या प्रसन्न ज्यौं होइ। करौ असुर-पति अब तुम सोइ।
सुक्र-सुता सौं कह्यौ तिन आइ। आज्ञा होइ सो करौं उपाइ।
जो तुम कहौ करौं अब सोइ। तव पुत्री मम दासी होइ।
नृप पुत्री दासी करि ठई। दासी सहस ताहि सँग दई।
सो सब ताकी सेवा करैं। दासी भाव हृदय मैं धरैं।
इक दिन सुक्र-सुता मन आई। देखौं जाइ फूल फुलवाई।
लै दासिनि फुलवारी गई। पुहुप-सेज रचि सोवत भई।
असुर-सुता तिहिं ब्यजन डुलावै। सोवत सेज सो अति सुख पावै।
तिहिं अवसर जजाति नृप आयौ। सुक्र-सुता तिहिं वचन सुनायौ।
नृप मम पानि-ग्रहन तुम करौ। सुक्र-सँकोच हृदय मति धरौ।
कच कौं प्रथम दियौ मैं साप। उनहूँ मोहिं दियौ करि दाप।
ताकौं कोउ न सकै मिटाइ। तातैं ब्याह करौ तुम राइ।
नृप कह्यौ कहौ सुक्र सौं जाइ। करिहौं जो कहिहैं रिषिराइ।
तब तिनि कह्यौ सुक्र सौं जाइ। कियौ ब्याह रिषि नृपति बुलाइ।
असुर-सुता ताकैं सँग दई। दासी सहस ताहि सँग भईं।
दंपति भोग करत सुख पाए। सुक्र-सुता पुनि द्वै सुत जाए।
कह्यौ सरमिष्ठा अवसर पाइ। रति कौ दान देहु मोहिं राइ।
नृप ताहू सौं कीन्यौ भोग। तीनि पुत्र भए बिधि-संजोग।
सुक्र-सुता तिन पुत्रनि देखि। मन मैं कीन्यौ क्रोध बिसेषि।
कह्यौ, सरमिष्ठा सुत कहँ पाए? उनि कह्यौ, रिषि-किरपा तैं जाए।
बहुरि कह्यौ, रिषि कौ कहि नाम? कह्यौ स्वप्न देख्यौ अभिराम।
पुनि पुत्रनि उन पूछ्यौ जाइ। पिता-नाम मोहिं कहौ बुझाइ।
बड़ैं पुत्र भाष्यौ यौं ताहि। नृपति जजाति पिता मम आहि।
सुनि नृप सौं कियौ जुद्ध बनाइ। बहुरि सुक्र सौंती कह्यौ जाइ।
पाछे तैं जजातिहूँ आयौ। रिषि तासौं यह बचन सुनायौ।
तैं जोबन मद तैं यह कीन्यौ। तातैं साप तोहिं मैं दीन्यौ।
जरा अबहिं तोहिं ब्यापै आइ। बिरध भयौ तब कह्यौ सिर नाइ।
रिषि, तुम तौ सराप मोहिं दयौ। पूरनकाम नाहिं मैं भयौ।
तातैं जो मोहिं आज्ञा होइ। आयसु मानि करौं अब सोइ।
कह्यौ, जरा तेरौ सुत लेइ। अपनौ तरुनापौ तोहिं देइ।
भोगि मनोरथ तब तू पावै। मेरौ बचन बृथा नहिं जावै।

बड़े पुत्र जदु सौं कह्यौ आइ। उन कह्यौ, बृद्ध भयौ नहिं जाइ।
नृप कह्यौ, तोहिं राज नहिं होइ। बृद्धपनौ लै राजा सोइ।
औरनिहूँ सौं नृप जब भाष्यौ। नृपति बचन काहूँ नहिं राख्यौ।
लघु सुत नृपति-बुढ़ापौ लयौ। अपनौ तरुनापौ तिहिं दयौ।
बरष सहस्र भोग नृप किये। पै संतोष न आयौ हिये।
कह्यौ, विषय तैं तृप्ति न होइ। भोग करौ कितनौ किन कोइ।
तब तरुनापौ सुत कौं दीन्हौ। बृद्धपनौ अपनौ फिरि लीन्हौ।
बन मैं करी तपस्या जाइ। रह्यौ हरि-चरननि सौं चित लाइ।
या विधि नृपति कृतारथ भयौ। सो राजा मैं तुमसौं कह्यौ।
सुक ज्यौं नृप कौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ ॥१७४॥
॥६१८॥

॥ नवम स्कंध समाप्त ॥

दशम स्कंध

राग सारंग

ब्यास कह्यौ सुकदेव सौं, श्रीभागवत बखानि।
द्वादस स्कंध परम सुभ, प्रेम-भक्ति की खानि।
नव स्कंध नृप सौं कहे, श्रीसुकदेव सुजान।
सूर कहत अब दसम कौं, उर धरि हरि कौ ध्यान ॥१॥
॥६१९॥

राग बिलावल

हरि-हरि हरि-हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
जय अरु विजय पारषद दोइ। विप्र-सराप असुर भए सोइ।
दोउ जन्म ज्यौं हरि उद्धारे। सो तौ मैं तुमसौं उच्चारे।
दंतवक्र-सिसुपाल जो भए। वासुदेव ह्वै सो पुनि हए।
औरौ लीला बहु बिस्तार। कीन्हौ जीवनि कौ निस्तार।
सो अब तुमसौं सकल बखानौं। प्रेम सहित सुनि हिरदै आनौ।
जो यह कथा सुनै चित लाइ। सो भव तरि बैकुंठहिं जाइ।
जैसैं सुक नृप कौं समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ ॥२॥
॥६२०॥

राग गौड़ मलार

आदि सनातन, हरि अविनासी। सदा निरंतर घट-घट-बासी।
पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं। चतुरानन, सिव, अंत न जानैं।
गुन-गन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै।
एक निरंतर ध्यावै ज्ञानी। पुरुष पुरातन सो निर्वानी।
जप-तप-संजम-ध्यान न आवै। सोइ नंद कैं आँगन धावै।
लोचन-स्रवन न रसना-नासा। बिनु पद-पानि करै परगासा।
बिस्वंभर निज नाम कहावै। घर-घर गोरस सोइ चुरावै।
सुक-सारद से करत बिचारा। नारद से पावहिं नहिं पारा।
अबरन, बरन सुरति नहिं धारै। गोपिनि के सो बदन निहारै।
जरा-मरन तैं रहित, अमाया। मातु, पिता, सुत, बंधु न जाया।
ज्ञान-रूप हिरदै मैं बोलै। सो बछरनि के पाछैं डोलै।

जल, धर, अनिल, अनल, नभ, छाया। पंचतत्त्व तैं जग उपजाया।
माया प्रगटि सकल जग मोहै। कारन-करन करै सो सोहै।
सिव-समाधि जिहि अंत न पावै। सोइ गोप की गाइ चरावै।
अच्युत रहै सदा जल-साई। परमानंद परम सुखदाई।
लोक रचै राखै अरु मारै। सो ग्वालनि सँग लीला धारै।
काल डरै जाकैं डर भारी। सो ऊखल बाँध्यौ महतारी।
गुन अतीत, अविगत, न जनावै। जस अपार, स्रुति पार न पावै।
जाकी महिमा कहत न आवै। सो गोपिनि सँग रास रमावै।
जाकी माया लखै न कोई। निर्गुन-सगुन धरै वपु सोई।
चौदह भुवन पलक मैं टारै। सो बन-बीथिनि कुटी सँवारै।
चरन-कमल नित रमा पलोवै। चाहति नैंकु नैन भरि जोवै।
अगम, अगोचर, लीला-धारी। सो राधा-बस कुंज-बिहारी।
बड़भागी वै सब ब्रजवासी। जिनकैं सँग खेलैं अविनासी।
जा रस ब्रह्मादिक नहिं पावैं। सो रस गोकुल-गलिनि बहावैं।
सूर सुजस कहि कहा बखानै। गोबिंद की गति गोबिंद जानै ॥३॥
॥६२१॥

राग सारंग

बाल-बिनोद भावती लीला, अति पुनीत मुनि भाषी।
सावधान ह्वै सुनौ परीच्छित, सकल देव मुनि साखी।
कालिंदी कैं कूल बसत इक मधुपुरि नगर रसाला।
कालनेमि अरु उग्रसेन-कुल, उपज्यौ कंस भुवाला।
आदि-ब्रह्म-जननी, सुर-देवी, नाम देवकी बाला।
दई बिवाहि कंस बसुदेवहिं, दुख-भंजन, सुख-माला।
हय-गय-रतन-हेम-पाटंबर, आनँद-मंगलचारा।
समदत भई अनाहत बानी, कंस-कान झनकारा।
याकी कोखि औतरै जो सुत, करै प्रान-परिहारा।
रथ तैं उतरि, केस गहि राजा, कियौ खड्ग पटतारा।
तब बसुदेव दीन ह्वै भाष्यौ, पुरुष न तिय-बध करई।
मोकौं भई अनाहत बानी, तातैं सोच न टरई।
आगैं बृच्छ फरै जो विष-फल, बृच्छ बिना किन सरई।
याहि मारि, तोहिं और बिवाहौं, अग्र-सोच क्यौं मरई।

यह सुनि सकल देव-मुनि भाष्यौ, राय, न ऐसी कीजै।
तुम्हरे मान्य वसुदेव-देवकी, जीव-दान इहिं दीजै।
कीन्यौ जज्ञ होत है निष्फल, कह्यौ हमारौ कीजै।
याकैं गर्भ अवतरैं जे सुत, सावधान ह्वै लीजै।
पहिलौ पुत्र देवकी जायौ, लै बसुदेव दिखायौ।
बालक देखि कंस हँसि दीन्यौ, सब अपराध छमायौ।
कंस कहा लरिकाई कीनी, कहि नारद समुझायौ।
जाकौ भरम करत हौ राजा, मति पहिलैं सो आयौ!
यह सुनि कंस पुत्र फिरि माँग्यौ, इहिं विधि सबनि सँहारौ।
तब देवकी भई अति ब्याकुल, कैसैं प्रान प्रहारौं।
कंस वंस को नास करत है, कहँ लौं जीव उबारौं।
यह विपदा कब मेटहिं श्रीपति अरु हौं काहिं पुकारौं।
धेनु-रूप धरि पुहुमि पुकारी, सिव-बिरंचि कैं द्वारा।
सब मिलि गए जहाँ पुरुषोत्तम, जिहिं गति अगम अपारा।
छीर-समुद्र-मध्य तैं यौं हरि, दीरघ बचन उचारा।
उधरौं धरनि, असुर-कुल मारौं, धरि नर-तन-अवतारा।
सुर, नर नाग तथा पसु-पच्छी, सब कौं आयसु दीन्हौ।
गोकुल जनम लेहु सँग मेरैं, जो चाहत सुख कीन्हौ।
जेहिं माया बिरंचि-सिव मोहे, वहै बानि करि चीन्हौ।
देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी, आप बास करि लीन्हौ।
हरि कैं गर्भ-वास जननी कौ बदन उजारौ लाग्यौ।
मानहुँ सरद-चंद्रमा प्रगट्यौ, सोच-तिमिर तन भाग्यौ।
तिहिं छन कंस आनि भयौ ठाढ़ौ, देखि महातम जाग्यौ।
अबकी बार आपु आयौ है अरी, अपुनपौ त्याग्यौ।
दिन दस गऐं देवकी अपनौ बदन बिलोकन लागी।
कंस-काल जिय जानि गर्भ मैं, अति आनंद सभागी।
सुर-नर-देव बंदना आए, सोवत तैं उठि जागी।
अबिनासी कौ आगम जान्यौ, सकल देव अनुरागी।
कछु दिन गऐं गर्भ कौ आलस, उर-देवकी जनायौ।
कासौं कहौं सखी कोउ नाहिन, चाहति गर्भ दुरायौ।
बुध-रोहिनी-अष्टमी-संगम, बसुदेव निकट बुलायौ।
सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ।

माथैं मुकुट, सुभग पीतांबर, उर सोभित भृगु-रेखा।
संख-चक्र-गदा-पद्म बिराजत, अति प्रताप सिसु-भेषा।
जननी निरखि भई तन ब्याकुल, यह न चरित कहुँ देखा।
बैठी सकुचि, निकट पति बोल्यौ, दुहुँनि पुत्र-मुख पेखा।
सुनि देवकि, इक आन जन्म की, तोकौं कथा सुनाऊँ।
तैं माँग्यौ, हौं दियौ कृपा करि, तुम सौ बालक पाऊँ।
सिब-सनकादि आदि ब्रह्मादिक ज्ञान ध्यान नहिं आऊँ।
भक्तवछल बानौ है मेरौ, बिरुदहिं कहा लजाऊँ।
यह कहि मया मोह अरुझाए, सिसु ह्वै रोवन लागे।
अहो बसुदेब, जाहु लै गोकुल, तुम हौ परम सभागे।
घन-दामिनि धरती लौं कौंधै, जमुना-जल सौं पागे।
आगैं जाउँ जमुन-जल गहिरौ, पाछैं सिंह जु लागे।
लै बसुदेव धँसे दह सूधे, सकल देव अनुरागे।
जानु, जंघ, कटि, ग्रीव, नासिका, तब लियौ स्याम उछाँगे।
चरन पसारि परसी कालिंदी, तरवा नीर तियागे।
सेष सहस फन ऊपर छायौ, लै गोकुल कौं भागे।
पहुँचे जाइ महर-मंदिर मैं, मनहिं न संका कीनी।
देखी परी जोगमाया, बसुदेब गोद करि लीनी।
लै बसुदेव मधुपुरी पहुँचे प्रगट सकल पुर कीनी।
देवकी-गर्भ भई है कन्या, राइ न बात पतीनी।
पटकत सिला गई, आकासहिं, दोउ भुज चरन लगाई।
गगन गई, बोली सुरदेवी, कंस, मृत्यु नियराई।
जैसैं मीन जाल मैं क्रीड़त, गनै न आपु लखाई।
तैसैंहि, कंस, काल उपज्यौ है, ब्रज मैं जादवराई।
यह सुनि कंस देवकी आगैं रह्यौ चरन सिर नाई।
मैं अपराध कियौ, सिसु मारे, लिख्यौ न मेट्यौ जाई।
काकैं सत्रु जन्म लीन्यौ है, बूझै मतौ बुलाई।
चारि पहर सुख-सेज परे निसि, नैंकु नींद नहिं आई।
जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, आनँद-तूर बजायौ।
कंचन-कलस, होम, द्विज-पूजा, चंदन भवन लिपायौ।
बरन-बरन रँग ग्वाल बने, मिलि गोपिनि मंगल गायौ।
बहु बिधि ब्योम कुसुम सुर बरषत, फूलनि गोकुल छायौ।

आनँद भरे करत कौतूहल, प्रेम-मगन नर-नारी ।
निर्भय अभय-निसान बजावत, देत महरि कौं गारी ।
नाचत महर मुदित मन कीन्हे, ग्वाल बजावत तारी ।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मथुरा-गर्व-प्रहारी ॥ ४ ॥
॥६२२॥

राग बिलावल

हरि-मुख देखि हो वसुदेव !
कोटि-काम-स्वरूप सुंदर, कोउ न जानत भेव ।
चारि भुज जिहिँ चारि आयुध, निरखि कै न पत्याउ ।
अजहुँ मन परतीति नाहीँ नंद-घर लै जाउ ।
स्वान सूते, पहरुवा सब, नींद उपजी गेह ।
निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरषै मेह ।
बंदि बेरी सबै छूटी, खुले बज्र-कपाट ।
सीस धरि श्रीकृष्न लीने, चले गोकुल-बाट ।
सिंह-आगैं, सेष पाछैं, नदी भइ भरिपूरि ।
नासिका लौं नीर बाढ्यौ, पार पैलो दूरि ।
सीस तैं हुंकार कीनी, जमुन जान्यौ भेव ।
चरन परसत थाह दीन्ही, पार गए बसुदेव ।
महरि-ढिग उन जाइ राखे, अमर अति आनंद ।
सूरदास बिलास ब्रज-हित, प्रगटे आनँद-कंद ॥ ५ ॥ ६२३ ॥

राग बिलावल

आनंदे आनंद बढ्यौ अति ।
देवनि दिवि दुंदुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति ।
विद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति ।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन, नाचतिँ सब सुर-नारि रसिक अति ।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जय-जयकार करत, मानत रति ।
सिव-बिरंचि-इंद्रादि अमर मुनि, फूले सुख न समात मुदित मति ॥६॥
॥ ६२४ ॥

राग बिलावल

कमल-नैन ससि-वदन मनोहर, देखौ हो पति अति बिचित्र गति ।
स्याम सुभग तन, पीत-बसन-द्रुति, सोहै बनमाला अदभुत अति ।

नव-मनि-मुकुट-प्रभा अति उद्दित, चित्त-चकित अनुमान न पावति।
अति प्रकास निसि विमल, तिमिर छर, कर मलि-मलि निज पतिहिं जगावति।
दरसन-सुखी, दुखी अति सोचति, पट सुत-सोक-सुरति उर आवति।
सूरदास प्रभु होहु पराकृत, अस कहि भुज के चिह्न दुरावति॥७॥
॥६२५॥

राग बिहागरौ

देवकी मन-मन चकित भई।
देखहु आइ पुत्र-मुख काहे न, ऐसी कहुँ देखी न दई।
सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद उर, भुज चारि धरे।
पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माँग्यौ इहिं भेप करे।
छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघर्‍यौ।
तुरत मोहिं गोकुल पहुँचावहु, यह कहि कै सिसु वेष धर्‍यौ।
तब बसुदेव उठे यह सुनतहिं, हरपवंत नँद-भवन गए।
बालक धरि, लै सुरदेवी कौं, आइ सूर मधुपुरी ठए॥८॥
॥६२६॥

राग केदारौ

अहो पति सो उपाइ कछु कीजै।
जिहिं उपाइ अपनौ यह बालक, राखि कंस सौं लीजै।
मनसा, वाचा, कहत कर्मना, नृप कबहूँ न पतीजै।
बुधि, बल, छल, कल, कैसैंहु करिकै, काढ़ि अनतहीं दीजै।
नाहिं न इतनौ भाग जो यह रस, नित लोचन-पुट पीजै।
सूरदास ऐसे सुत कौ जस, स्रवननि सुनि-सुनि जीजै॥९॥
॥६२७॥

राग केदारौ

सुनि देवकी को हितू हमारै।
असुर कंस अपवंस बिनासन, सिर ऊपर बैठे रखवारै।
ऐसौ को समरथ त्रिभुवन मैं, जो यह बालक नैंकु उबारै।
खड़्ग धरे आवै, तुव देखत, अपनैं कर छिन माहँ पछारै।

यह सुनतहिं अकुलाइ गिरी धर, नैन नीर भरि-भरि दोउ ढारे।
दुखित देखि बसुदेव-देवकी, प्रगट भए धरि कै भुज चारे।
बोलि उठे परतिज्ञा करि प्रभु, मोतैं उबरै तब मोहिं मारे।
अति दुख मैं सुख दै पितु-मातहिं, सूरज-प्रभु नँद-भवन सिधारे॥१०॥
॥६२८॥

राग केदारौ

भादौं की अध-राति अँध्यारी।
द्वार-कपाट-कोट भट रोके, दस दिसि कंत कंस-भय भारी।
गरजत मेघ, महा डर लागत, बीच बढ़ी जमुना जल-कारी।
तातैं यहै सोच जिय मोरैं, क्यौं दुरिहै ससि-बदन-उज्यारी।
तब कत कंस रोकि राख्यौ पिय, बरु वाही दिन काहैं न मारी।
कहि, जाकौ ऐसौ सुत बिछुरै, सो कैसैं जीवै महतारी?
सुनि-सुनि दीन बचन जननी के, दीनबंधु भक्तनि-भयहारी।
छोरे निगड़, कपाट उघारे, सूर सु मघवा बृष्टि निवारी॥११॥
॥६२९॥

राग धनाश्री

अँधियारी भादौं की रात।
बालक हित बसुदेव-देवकी, बैठि बहुत पछितात।
बीच नदी, घन गरजत बरषत, दामिनि कौंधति जात।
बैठत-उठत सेज-सोवत मैं कंस-डरनि अकुलात।
गोकुल बाजत सुनी बधाई, लोगनि हियैं सुहात।
सूरदास आनंद नंद कैं, देत कनक नग दात॥ १२॥
॥६३०॥

राग बिलावल

गोकुल प्रगट भए हरि आइ।
अमर-उधारन, असुर-सँहारन, अंतरजामी त्रिभुवनराइ।
माथैं धरि बसुदेव जु ल्याए, नंद-महर-घर गए पहुँचाइ।
जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाइ।
गदगद कंठ, बोल नहिं आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।
आवहु कंत, देव परसन भए, पुत्र भयौ, मुख देखौ धाइ।

दौरि नंद गए, सुत-मुख देख्यौ, सो सुख मोपै बरनि न जाइ।
सूरदास पहिलैं ही माँग्यौ, दूध-पियावन जसुमति माइ ॥१३॥
॥६३१॥

राग गांधार

उठीं सखी सब मंगल गाइ।
जागु जसोदा, तेरैं बालक उपज्यौ, कुँवर कन्हाइ।
जो तू रच्यौ-सच्यौ या दिन कौं, सो सब देहि मँगाइ।
देहि दान बंदी जन गुनि-गन, ब्रज-बासिनि पहिराइ।
तब हँसि कहति जसोदा ऐसैं, महरहिं लेहु बुलाइ।
प्रगट भयौ पूरब तप कौ फल, सुत-मुख देखौ आइ।
आए नंद हँसत तिहिं औसर, आनँद उर न समाइ।
सूरदास ब्रज बासी हरषे, गनत न राजा-राइ ॥ १४ ॥
॥६३२॥

राग नायकी

जसुदा, नार न छेदन दैहौं।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, वहै आजु हौं लैहौं।
औरनि के हैं गोप-खरिक बहु, मोहिं गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ।
बहुत दिननि की आसा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ।
मन मैं बिहँसि तबै नँदरानी, हार हिये कौ दीनौ।
जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक, सकल-बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मेटन कौं भू-भार ॥ १५ ॥
॥६३३॥

राग देवगधार

झगरिनि तैं हौं बहुत खिझाई।
कंचन-हार दिएँ नहिं मानति, तुहीं अनोखी दाई।
बेगहिं नार छेदि बालक कौ, जाति बयारि भराई।
सत संजम, तीरथ-व्रत कीन्हैं तब यह संपति पाई।
मेरौ चीत्यौ भयौ नँदरानी, नंद-सुवन सुखदाई।
दीजै बिदा, जाउँ घर अपनैं, काल्हि साँझ की आई।

इतनी सुनत मगन ह्वै रानी बोलि लए नँदराई।
सूरदास कंचन के अभरन लै झगरिनि पहिराई ॥१६॥
॥६३४॥

राग धनाश्री

जसुमति लटकति पाइ परै।
तेरौ भलौ मनैहौं झगरिनि, तू मति मनहिं डरै।
दीन्हौ हार गरैं, कर कंकन, मोतिनि थार भरै।
सूरदास स्वामी प्रगटे हैं, औसर पै झगरै ॥ १७ ॥
॥ ६३५ ॥

राग बिहागरौ

हरि कौ नार न छीनौं माई।
पूत भयौ जसुमति रानी कैं, अर्द्धराति हौं आई।
अपने मन कौ भायौ लैहौं, मोतिनि थार भराई।
यह औसर कब ह्वैहै फिरि कै, पायौ देव मनाई।
उठी रोहिनी परम अनंदित, हार-रतन लै आई।
नार छीनि तब सूर स्याम कौ, हँसि-हँसि देति बधाई ॥१८॥

राग बिलावल

नंदराइ कैं नवनिधि आई।
माथैं मुकुट, स्रवन मनि-कुंडल, पीत बसन, भुज चारि सुहाई।
बाजत ताल-मृदंग जंत्र-गति, चरचि अरगजा अंग चढ़ाई।
अच्छत दूब लिये रिषि ठाढ़े, बारनि बंदनबार बँधाई।
छिरकत हरद दही, हिय हरषत, गिरत अंक भरि लेत उठाई।
सूरदास सब मिलत परस्पर, दान देत नहिं नंद अघाई ॥ १९ ॥
॥६३७॥

राग बिलावल

आजु बन कोऊ वै जनि जाइ।
सब गाइनि बछरनि समेत, लै आनहु चित्र बनाइ।
ढोटा है रे भयौ महर कैं, कहत सुनाइ-सुनाइ।
सबहिं घोष मैं भयौ कुलाहल, आनँद उर न समाइ।

कत हौ गहर करत बिन काजैं, वेगि चलौ उठि धाइ।
अपने-आपने मन कौ चीत्यौ, नैननि देख्यौ आइ।
एक फिरत दधि दूब धरत सिर, एक रहत गहि पाइ।
एक परस्पर देत बधाई, एक उठत हँसि गाइ।
बालक-बृद्ध-तरुन-नरनाररिनि, बढ़्यौ चौगुनौ चाइ।
सूरदास सब प्रेम-मगन भए, गनत न राजा-राइ॥ २०॥
॥६३८॥

राग रामकली

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई।
द्वारैं भीर गोप-गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई।
अति आनंद होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई।
नाचत बृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, सुंदर स्याम कन्हाई॥२१॥
॥६३९॥

राग रामकली

हौं सखि, नई चाह इक पाई।
ऐसे दिननि नंद कैं सुनियत, उपज्यौ पूत कन्हाई।
बाजत पनव-निसान पंचविध, रुंज-मुरज-सहनाई।
महर-महरि ब्रज-हाट लुटावत, आनँद उर न समाई!
चलौ सखी, हमहूँ मिलि जैऐ, नैंकु करौ अतुराई।
कोउ भूषन पहिर्‌यौ, कोउ पहिरति, कोउ वैसैंहिं उठि धाई।
कंचन-थार दूब-दधि-रोचन, गावति चारु बधाई।
भाँति-भाँति बनि चलीं जुवति जन, उपमा बरनि न जाई।
अमर बिमान चढ़े सुख देखत, जै-धुनि-सब्द सुनाई।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत-हित, दुष्टनि के दुखदाई॥ २२॥
॥६४०॥

राग गूजरी

सखि री, काहैं गहरु लगावति?
सब कोऊ ऐसौ सुख सुनि कै, क्यौं नाहिन उठि धावति।

आजु सो बात विधाता कीन्ही, मन जो हुती अति भावति।
सुत कौ जन्म जसोदा कैँ गृह, ता लगि तुम्हैँ बुलावति।
कनक-थार भरि, दधि-रोचन लै, बेगि चलौ मिलि गावति।
साँचैँहि सुत भयौ नँद-नायक कैँ, हौँ नाहीँ बौरावति।
आनँद उर अंचल न सम्हारति, सीस सुमन बरषावति।
सूरदास सुनि जहाँ-तहाँ तैँ आवत सोभा पावति ॥२३॥
॥६४१॥

राग आसावरी

ब्रज भयौ महर कैँ पूत, जब यह बात सुनी।
सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल-नगक-गुनी।
अति पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी।
ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि, कीन्ही बेद-धुनी।
सुनि धाईँ सब ब्रजनारि, सहज सिँगार किये।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये।
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये।
कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल-साज लिये।
सुभ स्रवननि तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही।
मुख मंडित रोरी रंग, सैँदुर माँग छुही।
उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरँग सुही।
ते अपनैँ-अपनैँ मेल, निकसीँ भाँति भली।
मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिँजरा तोरि चली।
गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली।
मनु भोर भएँ रवि देखि, फूलीँ कमल-कली।
पिय-पहिलैँ पहुँचीँ जाइ अति आनंद भरीँ।
लईँ भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु-पाइ परीँ।
इक बदन उघारि निहारि, देहिँ असीस खरी।
चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी।
धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर घरी।
धनि-धन्य महरि की कोख, भाग-सुहाग भरी।

जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी।
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी।
सुनि ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए।
गुहि गुंजा घसि बनधातु, अंगनि चित्र ठए।
सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नँद-भवन गए।
मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही।
मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही।
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं।
सब आनँद-मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं।
इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परैं।
इक आपु आपुहीं माहिं, हँसि-हँसि मोद भरैं।
इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं।
इक दधि - गोरोचन - दूब, सबकैं सीस धरैं।
तब न्हाइ नंद भए ठाढ़, अरु कुस हाथ धरे।
नांदीमुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे।
घसि चंदन चारु मँगाइ, बिप्रनि तिलक करे।
द्विज-गुरु-जन कौं पहिराइ, सब कैं पाइ परे।
तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं।
जे चरहिं जमुन कैं तीर, दूनैं दूध चढ़ीं।
खुर ताँबैं, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ीं।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ीं।
सब इष्ट मित्र अरु बंधु, हँसि-हँसि बोलि लिये।
मथि मृगमद-मलय-कपूर, माथैं तिलक किये।
उर मनि-माला पहिराइ, बसन बिचित्र दिये।
दै दान-मान-परिधान, पूरन-काम किये।
बंदीजन - मागध - सूत, आँगन - भौन भरे।
ते बोलैं लै-लै नाउँ, नहिं हित कोउ बिसरे।
मनु बरषत मास अषाढ़, दादुर-मोर ररे।
जिन जो जाँच्यौ सोइ दीन, अस नँदराइ ढरे।
तब अंबर और मँगाइ, सारी सुरँग चुनी।
ते दीनी बधुनि बुलाइ, जैसी जाहि बनी।

ते निकसीं देति असीस, रुचि अपनी-अपनी।
बहुरीं सब अति आनंद, निज गृह गोप-धनी।
पुर घर-घर भेरि-मृदंग, पटह-निसान बजे।
बर बारनि बंदनवार, कंचन कलस सजे।
ता दिन तैं वै ब्रज लोग, सुख-संपति न तजे।
सुनि सबकी गति यह सूर, जे हरि-चरन भजे ॥२४॥
॥६४२॥

राग धनाश्री

आजु नंद के द्वारैं भीर।
इक आवत, इक जात बिदा ह्वै, इक ठाढ़े मंदिर कैं तीर।
कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरीर।
एकनि कौं गौ-दान समर्पत, एकनि कौं पहिरावत चीर।
एकनि कौं भूषन पाटंबर, एकनि कौं जु देत नग हीर।
एकनि कौं पुहुपनि की माला, एकनि कौं चंदन घसि नीर।
एकनि माथैं दूब-रोचना, एकनि कौं बोधति दै धीर।
सूरदास धनि स्याम सनेही, धन्य जसोदा पुन्य-सरीर ॥२५॥
॥६४३॥

राग गौरी

बहुत नारि सुहाग-सुंदरि और घोष कुमारि।
सजन-प्रीतम-नाम लै-लै, दै परसपर गारि।
अनंद अतिसै भयौ घर-घर, नृत्य ठावँहिं-ठावँ।
नंद-द्वारैं भेंट लै-लै उमह्यौ गोकुल-गावँ।
चौक चंदन लीपि कै, धरि आरती संजोइ।
कहति घोष-कुमारि, ऐसौ अनँद जौ नित होइ!
द्वार सथिया देति स्यामा, सात सींक बनाइ।
नव किसोरी मुदित ह्वै-ह्वै गहति जसुदा-पाइ।
करि आलिंगन गोपिका, पहिरैं अभूषन-चीर!
गाइ-बच्छ सँवारि ल्याए, भई ग्वारनि भीर।
मुदित मंगल सहित लीला करैं गोपी-ग्वाल।
हरद, अच्छत, दूब, दधि लै, तिलक करैं ब्रजबाल।

एक एक न गनत काहूँ, इक खिलावत गाइ।
एक हेरी देहिं, गावहिं, एक भेंटहिं धाइ।
एक बिरध-किसोर-बालक, एक जोवन जोग।
कृष्न-जन्म सु प्रेम-सागर, क्रीड़ैं सब ब्रज-लोग।
प्रभु मुकुंद कैं हेत नूतन होहिं घोष-बिलास।
देखि ब्रज की संपदा कौं, फूलै सूरजदास ॥२६॥
॥६४४॥

राग धनाश्री

आजु बधायौ नंदराइ कैं, गावहु मंगलचार।
आईं मंगल-कलस साजि कै, दधि फल नूतन-डार।
उर मेले नंदराइ कैं, गोप-सखनि मिलि हार।
मागध-बंदी-सूत अति करत कुतूहल बार।
आए पूरन आस कै, सब मिलि देत असीस।
नंदराइ कौ लाड़िलौ, जीवै कोटि बरीस।
तब ब्रज-लोगनि नंद जू, दीने बसन बनाइ।
ऐसी सोभा देख कै, सूरदास बलि जाइ ॥ २७ ॥
॥६४५॥

राग गौरी

धनि-धनि नंद-जसोमति, धनि जग पावन रे।
धनि हरि लियौ अवतार, सु धनि दिन आवन रे।
दसएँ मास भयौ पूत, पुनीत सुहावन रे।
संख-चक्र-गदा-पद्म, चतुरभुज भावन रे।
वनि ब्रज-सुंदरि चलीं, सु गाइ बधावन रे।
कनक-थार रोचन-दधि, तिलक बनावन रे।
नंद-घरहिं चलि गईं, महरि जहँ पावन रे।
पाइनि परि सब बधू, महरि बैठावन रे।
जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे।
भलैं सु दिन भयौ पूत, अमर अजरावन रे।
जुग-जुग जीवहु कान्ह, सबनि मन भावन रे।
गोकुल-हाट-बजार करत जु लुटावन रे।

घर-घर बजै निसान, सु नगर सुहावन रे।
अमर-नगर उतसाह, अप्सरा-गावन रे।
ब्रह्म लियौ अवतार, दुष्ट के दावन रे।
दान सबै जन देत, बरषि जनु सावन रे।
मागध, सूत, भाँट, धन लेत जुरावन रे।
चोवा-चंदन-अबिर, गलिनि छिरकावन रे।
ब्रह्मादिक, सनकादिक, गगन भरावन रे।
कस्यप रिषि सुर-तात, सु लगन गनावन रे।
तीनि-भुवन-आनंद, कंस-डरपावन रे।
सूरदास प्रभु जनमे, भक्त-हुलसावन रे॥ २८॥
॥६४६॥

राग कल्यान

सोभा-सिंधु न अंत रही री।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री।
जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं, उपजी ऐसी सबनि कही री।
सूरस्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री॥ २६॥
॥६४७॥

राग काफी

आजु हो निसान बाजै, नंद जू महर के।
आनँद-मगन नर गोकुल सहर के।
आनंद भरी जसोदा उमँगि अंग न माति, आनंदित भईँ गोपी गावतिँ चहर के।
दूध-दधि-रोचन कनक-थार लै लै चली, मानौ इंद्र-बधू जुरीँ पाँतिनि बहर के।
आनंदित ग्वाल-बाल, करत बिनोद ख्याल, भुज भरि-भरि धरि अंकम महर के।
आनंद-मगन धेनु स्रवैँ थनु पय-फेनु, उमँग्यौ जमुन-जल उछलि लहर के।

अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन-बेली प्रफुलित कलिनि कहर के।
आनंदित बिप्र, सूत, मागध, जाचक-गन, उमँगि असीस देत सब हित हरि के।
आनँद-मगन सब अमर गगन छाए पुहुप बिमान चढ़े पहर पहर के।
सूरदास प्रभु आइ गोकुल प्रगट भए, संतनि हरष, दुष्ट-जन-मन धरके॥ ३० ॥
॥ ६४८ ॥

राग काफी

(माई) आजु हो बधायौ बाजै नंद गोप-राइ के।
जदुकुल-जादौराइ जनमे हैं आइ के।
आनंदित गोपी-ग्वाल, नाचैं कर दै-दै ताल, अति अहलाद भयौ जसुमति माइ कैं।
सिर पर दूब धरि, बैठे नंद सभा-मधि, द्विजनि कौं गाइ दीनी बहुत मँगाइ कै।
कनक कौ माट लाइ, हरद-दही मिलाइ, छिरकैं परसपर छल-बल धाइ कै।
आठैं कृष्न पच्छ भादौं, महर कैं दधि कादौं, मोतिनि बँधायौ बार महल मैं जाइ कै।
ढाढ़ी औ ढाढ़िनि गावैं, ठाढ़े हुरके बजावैं, हरषि असीस देत मस्तक नवाइ कै।
जोइ-जोइ माँग्यौ जिनि, सोइ-सोइ पायो तिनि, दीजै सूरदास दर्स भक्तनि बुलाइकै॥ ३१ ॥
॥ ६४९ ॥

राग जैतश्री

आजु बधाई नंद कैं माई। ब्रज की नारि सकल जुरि आईं।
सुंदर नंद महर कैं मंदिर। प्रगट्यौ पूत सकल सुख-कंदर।
जसुमति-ढोटा ब्रज की सोभा। देखि सखी, कछु औरै गोभा।
लछिमी-सी जहँ मालिनि बोलै। बंदन-माला बाँधत डोलै।

द्वार बुहारति फिरतिं अष्टसिधि। कौरनि सथिया चीततिं नवनिधि।
गृह-गृह तैं गोपी गवनीं जब। रंग-गलिनि बिच भीर भई तब।
सुबरन-थार रहे हाथनि लसि। कमलनि चढ़ि आए मानौ ससि।
उमँगी प्रेम-नदी-छबि पावैं। नंद-सदन-सागर कौं धावैं।
कंचन-कलस जगमगैं नग के। भागे सकल अमंगल जग के।
डोलत ग्वाल मनौ रन जीते। भए सबनि के मन के चीते।
अति आनंद नंद रस भीने। परवत सात रतन के दीने।
कामधेनु तैं नैंकु न हीनी। द्वै लख धेनु द्विजनि कौं दीनी।
नंद-पौरि जे जाँचन आए। बहुरौ फिरि जाचक न कहाए।
घर के ठाकुर कैं सुत जायौ। सूरदास तब सब सुख पायौ॥३२॥
॥६५०॥

राग बिलावल

आजु गृह नंद महर कैं बधाइ।
प्रात समय मोहन मुख निरखत, कोटि चंद-छबि पाइ।
मिलि ब्रज-नागरि मंगल गावतिं, नंद-भवन मैं आइ।
देति असीस, जियौ जसुदा-सुत कोटिनि बरष कन्हाइ।
अति आनंद बढ़्यौ गोकुल मैं, उपमा कही न जाइ।
सूरदास धनि नँद की घरनी, देखत नैन सिराइ॥ ३३॥
॥६५१॥

राग जैजैवंती

(माई) आजु तौ बधाइ बाजै मँदिर महर के।
फूले फिरैं गोपी-ग्वाल ठहर ठहर के।
फूली फिरैं धेनु धाम, फूली गोपी अँग अँग,
फूले फरे तरवर आनँद लहर के।
फूले बंदीजन द्वारे, फूले फूले बंदवारे,
फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल सहर के।
फूलैं फिरैं जादौकुल आनँद समूल मूल,
अंकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के।
उमँगे जमुन-जल, प्रफुलित कुंज-पुंज,
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के।

नृत्यत मदन फूले, फूली रति अँग अँग,
मन के मनोज फूले हलधर वर के।
फूले द्विज-संत-वेद, मिटि गयौ कंस-खेद,
गावत बधाइ सूर भीतर-बहर के।
फूली है जसोदा रानी, सुत जायौ सार्ङ्गपानी,
भूपति उदार फूले भाग फरे घर के ॥३४॥
॥६५२॥

राग जैतश्री

(नंद जू) मेरैं मन आनंद भयौ, मैं गोवर्धन तैं आयौ।
तुम्हरैं पुत्र भयौ, हौं सुनि कै, अति आतुर उठि धायौ।
बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि दूरि-दूरि तैं आए।
इक पहिलैं ही आसा लागे, बहुत दिननि तैं छाए।
ते पहिरे कंचन-मनि-भूषन, नाना बसन अनूप।
मोहिं मिले मारग मैं, मानौ जात कहूँ के भूप।
तुम तौ परम उदार नंद जू, जो माँग्यौ सो दीन्हौ।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन मैं, तुम सरि साकौ कीन्हौ !
कोटि देहु तौ रुचि नहिं मानौं, बिनु देखे नहिं जैहौं।
नंदराइ, सुनि बिनती मेरी, तबहिं बिदा भल ह्वैहौं।
दीजै मोहिं कृपा करि सोई, जो हौं आयौ माँगन।
जसुमति-सुत अपनैं पाइनि चलि, खेलत आवै आँगन।
जब हँसि कै मोहन कछु बोलै, तिहिं सुनि कै घर जाऊँ।
हौं तौ तेरे घर कौ ढाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊँ ॥३५॥
॥६५३॥

राग जैतश्री

मैं तेरे घर कौ हौं ढाढ़ी, मो सरि कोउ न आन।
सोइ लैहौं जो मो मन भावै, नंद महर की आन।
धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत।
धन्य भूमि, ब्रजबासी धनि-धनि, आनँद करत अकूत।
घर-घर होत अनंद बधाए, जहँ-जहँ मागध - सूत।
मनि-मानिक, पाटंबर-अंबर, लेत न बनत बिभूत।

हय-गय खोलि भँडार दिए सब, फेरि भरे ता भाँति।
जबहिं देत तबहीं फिरि देखत, संपति घर न समाति।
ते मोहिं मिले जात घर अपनैं, मैं बूझी तब जाति।
हँसि-हँसि दौरि मिले अंकम भरि, हम तुम एकै ज्ञाति।
संपति देहु, लेहुँ नहिं एकौ, अन्न-वस्त्र किहिं काज?
जो मैं तुम सौं माँगन आयौ, सो लैहौं नँदराज।
अपने सुत कौ बदन दिखावहु, बड़े महर सिरताज।
तुम साहब, मैं ढाढ़ी तुम्हरौ, प्रभु मेरे ब्रजराज।
चंद्र-वदन-दरसन-संपति दै, सो मैं लै घर जाउँ।
जो संपति सनकादिक दुरलभ, सो है तुम्हरैं ठाउँ।
जाकौं नेति नेति स्रुति गावत, तेइ कमल-पद ध्याउँ।
हौं तेरौ जनम-जनम कौ ढाढ़ी, सूरज दास कहाउँ ॥३६॥
॥६५४॥

राग धनाश्री

(नंद जू) दुःख गयौ, सुख आयौ सबनि कौं, देव-पितर भल मान्यौ।
तुम्हरौ पुत्र प्रान सबहिनि कौ, भुवन चतुर्दस जान्यौ।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी, नाउँ सुनैं सचु पाऊँ।
गिरि-गोवर्धन बास हमारौ, घर तजि अनत न जाऊँ।
ढाढ़िनि मेरी नाचै-गावै, हौंहूँ ढाढ़ बजाऊँ।
हमरौ चीत्यौ भयौ तुम्हारैं, जो माँगौं सो पाऊँ।
अब तुम मोकौं करौ अजाची, जो कहुँ कर न पसारौं।
द्वारैं रहौं, देहु इक मंदिर, स्याम-सुरूप निहारौं।
हँसि ढाढ़िनि ढाढ़ी सौं बोली, अब तू बरनि बधाई।
ऐसौ दियौ न देहि सूर कोउ, जसुमति हौं पहिराई ॥३७॥
॥६५५॥

राग धनाश्री

ढाढ़ी दान-मान के भाई!
नंद उदार भए पहिरावत, बहुत भली बनि आई।
जब-जब नाम धरौं ढाढ़ी कौ, जनम-करम-गुन गाऊँ।
अर्थ-धर्म-कामना-मुक्ति-फल, चारि पदारथ पाऊँ।

लै ढाढ़िनि कंचन - मनि - मुक्ता, नाना बसन अनूप।
हीरा - रतन - पटंबर हमकौं दीन्हे ब्रज के भूप।
अब तौ भली भई, नारायन-दरस, निरखि, निधि पाई।
जहँ-तहँ बंदनवार बिराजित, घर-घर बजति बधाई।
जो जाँच्यौ सोई तिन पायौ, तुम्हरी भई बड़ाई।
भक्ति देहु, पालनैं झुलाऊँ, सूरदास बलि जाई ॥३८॥
॥६५६॥

राग केदारौ

नंद-उदौ सुनि आयौ हो, वृषभानु कौ जगा।
दैबे कौं बड़ौ महर, देत न लावै गहर, लाल की बधाई पाऊँ लाल
कौ झगा।
प्रफुलित ह्वै कै आनि, दीनी है जसोदा रानी, झीनीयै झगुलि तामैं
कंचन-तगा।
नाचै फूल्यौ अँगनाइ, सूर बकसीस पाइ, माथे कै चढ़ाइ लीनौ
लाल कौ बगा ॥३९॥
॥६५७॥

राग सारंग

गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो), देवी सारद तोहिं।
गावौं हरि कौ सोहिलौ (हो), मन-आखर दै मोहिं।
हरषि बधावा मन भयौ (हो), रानी जायौ पूत।
घर-बाहर माँगै सबै (हो), ठाढ़े मागध-सूत।
आठ मास चंदन पियौ (हो), नवएँ पियौ कपूर।
दसएँ मास मोहन भए (हो), आँगन बाजै तूर।
हरषीं पास-परोसिनैं (हो), हरष नगर के लोग।
हरषीं सखी-सहेलरी (हो), आनँद भयौ सुभ-जोग।
बाजन बाजैं गहगहे (हो), बाजैं मंदिर भेरि।
मालिनि बाँधै तोरना (रे), आँगन रोपैं केरि।
अनगढ़ सोना ढोलना (गढ़ि), ल्याए चतुर सुनार।
बीच-बीच हीरा लगे (नँद) लाल-गरे को हार।
जसुमति भाग-सुहागिनी (जिनि), जायौ हरि सौ पूत।
करहु ललन की आरती (री), अरु दधि काँदौ सूत।

नाइनि बोलहु नव रँगी (हो), ल्याउ महावर वेग।
लाख टका अरु झूमका (देहु), सारी दाइ कौं नेग।
अगरु चँदन कौ पालनौ (रँगि), ईंगुर ढार-सुढार।
ले आयौ गढ़ि डोलना (हो), विसकर्मा सुतहार।
धनि सो दिन, धनि सो घरी (हो), धनि-धनि जोतिष-जाग।
धन्य-धन्य मथुरापुरी (हो), धन्य महर कौ भाग।
धनि-धनि माता देवकी (हो), धनि वसुदेव सुजान।
धनि-धनि भादौं अष्टमी (हो), जनम लियौ जब कान्ह।
काढ़ौ कोरे कापरा (अरु), काढ़ौ घी के मौन।
जाति-पाँति पहिराइ कै (सब), समदि छतीसौ पौन।
काजर-रोरी आनहु (मिलि), करौ छठी कौ चार।
ऐपन की सी पूतरी (सब), सखियनि कियौ सिंगार।
क्रीट मुकुट सोभा बनी (सुभ), अंग बनी बनमाल।
सूरदास गोकुल प्रगट (भए) मोहन मदन गोपाल ॥४०॥
॥६५८॥

राग काफी

पालनौ अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया।
सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ,
बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया।
पँच रँग रेसम लगाउ, हीरा मोतिनि मढ़ाउ,
बहु विधि जरि करि जराउ, ल्याउ रे जरैया।
बिसकर्मा सूतहार, रच्यौ काम ह्वै सुनार,
मनिगन लागे अपार, काज महर-छैया।
आनि धर्यौ नंद-द्वार, अतिहीं सुंदर सुढार,
ब्रज-बधु कहैं बार-बार धन्य रे गढ़ैया।
पालनौ आन्यौ बनाइ, अति मन मान्यौ सुहाइ,
नीकौ सुभ दिन सुधाइ, झूलौ हो झुलैया।
सखियनि मंगल गवाइ, बहु बिधि बाजे बजाइ,
पौढ़ायौ महल जाइ, बारौ रे कन्हैया।
सूरदास प्रभु की माइ जसुमति, पितु नंदराइ,
जोइ जोइ माँगत सोइ देत हैं बधैया ॥४१॥
॥६५९॥

राग जैतश्री

कनक-रतन-मनि पालनौ, गढ़्यौ काम सुतहार।
बिबिध खिलौना भाँति के (बहु) गज-मुक्ता चहुँधार।
जननी उबटि न्हवाइ कै (सिसु) क्रम सौं लीन्हे गोद।
पौढ़ाए पट पालनैं (हँसि) निरखि जननि-मन-मोद।
अति कोमल दिन सात के (हो) अधर चरन कर लाल।
सूर स्याम छबि अरुनता (हो) निरखि हरष ब्रज-बाल ॥४२॥
॥६६०॥

राग धनाश्री

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद-भामिनि पावै ॥४३॥
॥६६१॥

राग कान्हरौ

पलना स्याम झुलावति जननी
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नँद-घरनी।
उमँगि-उमँगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी ॥ ४४ ॥
॥६६२॥

राग बिलावल

पालनैं गोपाल झुलावैं
सुर-मुनि-देव कोटि तैंतीसौ, कौतुक अंबर छावैं।
जाकौ अंत न ब्रह्मा जानै, सिव-सनकादि न पावैं।
सो अब देखौ नंद-जसोदा, हरषि-हरषि हलरावैं।

हुलसत, हँसत, करत किलकारी, मन अभिलाष बढ़ावैं।
सूर स्याम भक्तनि हित कारन, नाना भेष बनावैं ॥ ४५ ॥
॥६६३॥

राग गौरी

हालरौ हलरावै माता । बलि-बलि जाउँ घोष-सुख-दाता ।
जसुमति अपनौ पुन्य विचारै । बार-बार सिसु बदन निहारै ।
अँग फरकाइ अलप मुसुकाने । या छवि की उपमा को जाने ।
हलरावति गावति कहि प्यारे । बाल-दसा के कौतुक भारे ।
महरि निरखि मुख हिय हुलसानी । सूरदास प्रभु सारँगपानी ॥४६॥
॥६६४॥

राग धनाश्री

कन्हैया हालरु रे ।
गढ़ि गुढ़ि ल्यायौ बाढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे ।
इक लख माँगे बाढ़ई, दुइ लख नंद जु देहिं, बलि हालरु रे ।
रतन जटित वर पालनौ, रेसम लागी डोर, बलि हालरु रे ।
कबहुँक झूलै पालना, कबहुँ नंद की गोद, बलि हालरु रे ।
झूलैं सखी झुलावहीं, सूरदास बलि जाइ, बलि हालरु रे ॥४७॥
॥६६५॥

राग बिहागरा

कंसराइ जिय सोच परी ।
कहा करौं, काकौं ब्रज पठवौं, बिधना कहा करी ।
बारंबार बिचारत मन मैं, नींद भूख बिसरी ।
सूर बुलाइ पूतना सौं कह्यौ, करु न बिलंब घरी ॥४८॥
॥६६६॥

पूतना-वध

राग धनाश्री

आजु हौं राज-काज करि आऊँ ।
वेगि सँहारौं सकल घोष-सिसु, जौ मुख आयसु पाऊँ ।
मोहन-मुर्छन-बसीकरन पढ़ि, अगमति देह बढ़ाऊँ ।
अंग सुभग सजि, ह्वै मधु-मूरति, नैननि माहँ समाऊँ ।

घसि कै गरल चढ़ाइ उरोजनि, लै रुचि सौं पय प्याऊँ।
सूरज सोच हरौं मन अबहीं, तौ पूतना कहाऊँ ॥ ४९ ॥
॥६६७॥

राग धनाश्री

रूप मोहिनी धरि ब्रज आई।
अद्‌भुत साजि सिंगार मनोहर, असुर कंस दै पान पठाई।
कुच विष बाँटि लगाइ कपट करि, बाल-घातिनी परम सुहाई।
बैठी हुती जसोदा मंदिर, दुलरावति सुत कुँवर कन्हाई।
प्रगट भई तहँ आइ पूतना, प्रेरित काल अवधि नियराई।
आवत पीढ़ा बैठन दीनौ, कुसल बूझि अति निकट बुलाई।
पौढ़ाए हरि सुभग पालनैं, नंद-घरनि कछु काज सिधाई।
बालक लियौ उछंग दुष्टमति, हरषित अस्तन-पान कराई।
बदन निहारि प्रान हरि लीनौ, परी राच्छसी जोजन ताईं।
सूरज दै जननी-गति ताकौं, कृपा करी निज धाम पठाई ॥५०॥
॥६६८॥

राग धनाश्री

प्रथम कंस पूतना पठाई।
नंद-घरनि जहँ सुत लिये बैठी, चली-चली तिहिं धामहिं आई।
अति मोहिनी रूप धरि लीनौ, देखत सबहिनि कैं मन भाई।
जसुमति रही देखि वाकौ मुख, काकी बधू, कौन धौं आई।
नंद - सुवन तबहीं पहिचानी, असुर - घरनि, असुरनि की जाई।
आपुन बज्र-समान भए हरि, माता दुखित भई, भरमाई।
अहो महरि पालागान मेरौ, मैं तुमरौ सुत देखन आई।
यह कहि गोद लियौ अपनी तब, त्रिभुवन-पति मन-मन मुसुकाई।
मुख चूम्यौ, गहि कंठ लगायौ, विष लपट्यौ अस्तन मुख नाई।
पय सँग प्रान ऐंचि हरि लीनौ, जोजन एक परी मुरझाई।
त्राहि-त्राहि कहि ब्रज-जन धाए, अब बालक क्यौं बचै कन्हाई।
अति आनंद सहित सुत पायौ, हिरदै माँझ रहे लपटाई।
करबर बड़ी टरी मेरे की, घर - घर आनँद करत बधाई।
सूर स्याम पूतना-पछारी, यह सुनि जिय डरप्यौ नृपराई ॥५१॥
॥६६९॥

राग सारंग

कपट करि ब्रजहिं पूतना आई।
अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई।
मुख चूमति अरु नैन निहारति, राखति कंठ लगाई।
भाग बड़े तुम्हरे नँदरानी, जिहिं के कुँवर कन्हाई।
कर गहि छीर पियावति अपनौ, जानत केसवराई।
बाहर ह्वै कै असुर पुकारी, अब बलि लेहु छुड़ाई।
गइ मुरछाइ, परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई।
सूरदास प्रभु तुम्हरी लीला, भक्तनि गाइ सुनाई ॥५२॥
॥६७०॥

राग धनाश्री

देखौ यह विपरीत भई।
अद्भुत रूप नारि इक आई, कपट हेत क्यौं सहै दई?
कान्हैं लै जसुमति कोरा तैं, रुचि करि कंठ लगाए।
तब वह देह धरी जोजन लौं, स्याम रहे लपटाए!
बड़े भाग्य हैं नंद महर के, बड़भागिनि नँदरानी।
सूर स्याम उर ऊपर उबरे, यह सब घर-घर जानी ॥५३॥
॥६७१॥

राग कान्हरौ

जसुमति बिकल भई, छिन कल ना।
लेहु उठाइ पूतना-उर तैं, मेरौ सुभग साँवरौ ललना।
गोपी लै उठाइ जसुमति कौं, दीन्यौ अखिल असुर के दलना।
सूरदास प्रभु कौ मुख चूमति, हृदय लाइ पौढ़ाए पलना ॥५४॥
॥६७२॥

राग बिहागरौ

नैंकु गोपालहिं मोकौं दै री।
देखौं बदन कमल नीकैं करि, ता पाछैं तू कनियाँ लै री।
अति कोमल कर-चरन-सरोरुह, अधर-दसन-नासा सोहै री।
लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत, मनमथ कोटि वारनैं गै री।

बासर-निसा बिचारति हौं सखि, यह सुख कबहुँ न पायौ मैं री।
निगमनि-धन, सनकादिक-सरबस, बड़े भाग्य पायौ है तैं री।
जाकौ रूप जगत के लोचन, कोटि चंद्र-रवि लाजत भै री।
सूरदास बलि जाइ जसोदा, गोपिनि-प्रान, पूतना-बैरी ॥५५॥
॥६७३॥

राग जैतश्री

कन्हैया हालरौ हलरोइ।
हौं वारी तव इंदु-बदन पर, अति छवि अलस भरोइ।
कमल-नयन कौं कपट किए माई, इहिं ब्रज आवै जोइ।
पालागौं बिधि ताहि बकी ज्यौं, तू तिहिं तुरत बिगोइ।
सुनि देवता बड़े, जग-पावन, तू पति या कुल कोइ।
पद पूजिहौं, बेगि यह बालक करि दै मोहिं बड़ोइ।
दुतिया के ससि लौं बाढ़ै सिसु, देखै जननि जसोइ।
यह सुख सूरदास कैं नैननि, दिन-दिन दूनौ होइ ॥५६॥
॥६७४॥

श्रीधर-अंगभंग *राग बिलावल*

श्रीधर बाँभन करम कसाई। कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई।
प्रभु, मैं तुम्हरौ आज्ञाकारी। नंद-सुवन कौं आवौं मारी।
कंस कह्यौ, तुमतैं यह होइ। तुरत जाहु, करौ बिलँब न कोइ।
श्रीधर नंद-भवन चलि आयौ। जसुदा उठि कै माथ नवायौ।
करौ रसोई मैं बलि जाऊँ। तुम्हरे हेत जमुन-जल ल्याऊँ।
यह कहि जसुदा जमुना गई। श्रीधर कही भली यह भई।
उन अपनैं मन मारन ठान्यौ। हरि जू ताकौं तबहीं जान्यौ।
बाँभन मारैं नहीं भलाई। अँग याकौ मैं देउँ नसाई।
जबहीं बाँभन हरि ढिग आयौ। हाथ पकरि हरि ताहि गिरायौ।
गुदी चाँपि लै जीभ मरोरी। दधि ढरकायौ भाजन फोरी।
राख्यौ कछु तिहिं मुख लपटाइ। आपु रहे पलना पर आइ।
रोवन लागे कृष्न बिनानी। जसुमति आइ गई लै पानी।
रोवन देखि कह्यौ अकुलाई। कहा कर्‌यौ तैं बिप्र अन्याई?
बाँभन कैं मुख बात न आवै। जीभ होइ तौ कहि समुझावै।

बाँभन कौं घर बाहर कीन्हौ। गोद उठाइ कृष्न कौं लीन्हौ।
ब्रजवासी सब देखन आए। सूरदास हरि के गुन गाए ॥५७॥
॥६७५॥

राग बिलावल

सुन्यौ कंस, पूतना सँहारी। सोच भयौ ताकैं जिय भारी।
कागासुर कौं निकट बुलायौ। तासौं कहि सब भेद सुनायौ।
मम आयसु तुम माथैं धरौ। छल-बल करि मम कारज करौ।
यह सुनि कै तेहिं माथौ नायौ। सूर तुरत ब्रज कौं उठि धायौ॥५८॥
॥६७६॥

कागासुर-बध *राग सारंग*

काग-रूप इक दनुज धर्‍यौ।
नृप-आयसु लै धरि माथे पर, हरषवंत उर गरब भर्‍यौ।
कितिक बात प्रभु तुम आयसु तैं, वह जानौ मो जात मर्‍यौ।
इतनी कहि गोकुल उड़ि आयौ, आइ नंद-घर-छाज रह्यौ।
पलना पर पौढ़े हरि देखे, तुरत आइ नैननिहिं अर्‍यौ।
कंठ चाँपि बहु बार फिरायौ, गहि पटक्यौ, नृप पास पर्‍यौ।
तुरत कंस पूछन तिहिं लाग्यौ, क्यौं आयौ, नहिं काज कर्‍यौ?
बीतैं जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस, तब आइ सर्‍यौ।
धरि अवतार महाबल कोऊ, एकहिं कर मेरौ गर्ब हर्‍यौ।
सूरदास प्रभु कंस-निकंदन, भक्त-हेत अवतार धर्‍यौ ॥ ५९ ॥
॥६७७॥

राग बिलावल

मथुरापति जिय अतिहिं डरान्यौ।
सभा माँझ असुरनि के आगैं, सिर धुनि-धुनि पछितान्यौ।
ब्रज-भीतर उपज्यौ मेरौ रिपु, मैं जानी यह बात।
दिनहीं दिन वह बढ़त जात है, मोकौं करिहै घात।
दनुज-सुता पूतना पठाई, छिनकहिं माँझ सँहारी।
घींच मरोरि, दियौ कागासुर मेरैं ढिग फटकारी।
अबहीं तैं यह हाल करत है, दिन-दिन होत प्रकास।
सेनापतिनि सुनाइ बात यह, नृप मन भयौ उदास।

ऐसौ कौन, मारिहै ताकौं, मोहिं कहै सो आइ !
वाकौं मारि अपुनपौ राखै, सूर व्रजहिं सो जाइ ॥६०॥
॥६७८॥

सकटासुर-वध *राग गौड़ मलार*

नृपति बचन यह सबनि सुनायौ ।
मुहाँचुही सैनापति कीन्हीं, सकटैं गर्ब बढ़ायौ ।
दोउ कर जोरि भयौ उठि ठाढ़ौ, प्रभु-आयसु मैं पाऊँ ।
ह्याँ तैं जाइ तुरतहीं मारौं कहौ तौ जीवत ल्याऊँ ।
यह सुनि नृपति हरष मन कीन्हौ, तुरतहिं बीरा दीन्हौ ।
बारंबार सूर कहि ताकौं, आपु प्रसंसा कीन्हौ ॥६१॥
॥६७९॥

राग गौड़ मलार

पान लै चल्यौ नृप आन कीन्हौ ।
गयौ सिर नाइ मन गरबहि बढ़ाइ कै, सकट कौ रूप धरि असुर लीन्हौ ।
सुनत घहरानि व्रजलोग चकित भए, कहा आघात धुनि करत आवै !
देखि आकास, चहुँपास, दसहूँ दिसा, डरे नर-नारि तन-सुधि भुलावै ।
आपु गयौ तहाँ जहँ प्रभु परे पालनैं, कर गहे चरन अँगुठा चचोरैं ।
किलकि किलकत हँसत, बाल-सोभा लसत, जानि यह कपट, रिपु आयौ भोरैं ।
नैंकु फटक्यौ लात, सवद भयौ आघात, गिर्‌यौ भहरात सकटा सँहार्‌यौ ।
सूर प्रभु नँद-लाल, मार्‌यौ दनुज ख्याल, मेटि जंजाल व्रज-जन उबार्‌यौ ॥६२॥
॥६८०॥

राग बिलावल

कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रँग खेलत ।
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, वट बाढ़्यौ सागर-जल झेलत ।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत ।

मुनि मन भीत भए, भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-वासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत ॥६३॥
॥६८१॥

राग बिलावल

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत।
नंद-घरनि गावति, हलरावति, पलना पर हरि खेलत।
जे चरनारबिंद श्री-भूषन, उर तैं नैंकु न टारति।
देखौं धौं का रस चरननि मैं, मुख मेलत करि आरति।
जा चरनारबिंद के रस कौं सुर-मुनि करत बिषाद।
सो रस है मोहूँ कौं दुरलभ, तातैं लेत सवाद।
उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ।
बढ़्यौ बृच्छ बट, सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ-तहाँ आघात।
करुना करी, छाँड़ि पग दीन्हौ, जानि सुरनि मन संस।
सूरदास प्रभु असुर-निकंदन, दुष्टनि कैं उर गंस ॥६४॥
॥६८२॥

राग बिहागरौ

जसुदा मदन गुपाल सोवावै।
देखि सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै।
असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।
जनु रवि गत संकुचित कमल जुग, निसि अलि उड़न न पावै।
स्वास उदर उससित यौं, मानौ दुग्ध-सिंधु छबि पावै।
नाभि-सरोज प्रगट पदमासन उतरि नाल पछितावै।
कर सिर-तर करि स्याम मनोहर, अलक अधिक सोभावै।
सूरदास मानौ पन्नगपति, प्रभु ऊपर फन छावै ॥६५॥
॥६८३॥

राग बिलावल

अजिर प्रभातहिं स्याम कौं, पलिका पौढ़ाए।
आप चली गृह-काज कौं, तहँ नंद बुलाए।

निरखि हरषि मुख चूमि कै, मंदिर पग धारी।
आतुर नँद आए तहाँ, जहँ ब्रह्म मुरारी।
हँसे तात मुख हेरि कै, करि पग-चतुराई।
किलकि झटकि उलटे परे, देवनि-मुनि-राई।
सो छबि नंद निहारि कै, तहँ महरि बुलाई।
निरखि चरित गोपाल के, सूरज बलि जाई ॥६६॥
॥६८४॥

राग रामकली

हरषे नंद टेरत महरि।
आइ सुत-मुख देखि आतुर, डारि दै दधि-डहरि।
मथति दधि जसुमति मथानी, धुनि रही घर-घहरि।
स्रवन सुनति न महर-बातैं, जहाँ-तहँ गइ चहरि।
यह सुनत तब मातु धाई, गिरे जाने झहरि।
हँसत नँद-मुख देखि धीरज तब कर्‍यौ ज्यौ ठहरि।
स्याम उलटे परे देखे, बढ़ी सोभा लहरि।
सूर प्रभु कर सेज टेकत, कबहुँ टेकट ढहरि ॥६७॥
॥६८५॥

राग रामकली

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।
चिरजीवौ मेरौ लाड़िलौ, मैं भई सभागी।
एक पाख त्रय-मास कौ मेरौ भयौ कन्हाई।
पटकि रान उलटौ पर्‍यौ, मैं करौं बधाई।
नंद-घरनि आनँद भरी, बोलीं ब्रजनारी।
यह सुख सुनि आईं सबै, सूरज बलिहारी ॥६८॥
॥६८६॥

राग रामकली

जो सुख ब्रज मैं एक घरी।
सो सुख तीनि लोक मैं नाहीं धनि यह घोष-पुरी।
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारैं रहति खरी।
सिव-सनकादि-सुकादि-अगोचर, ते अवतरे हरी।

धन्य-धन्य बड़भागिनि जसुमति, निगमनि सही परी।
ऐसैं सूरदास के प्रभु कौं, लीन्हौ अंक भरी ॥६९॥
॥६८७॥

राग रामकली

यह सुख सुनि हरषीं ब्रजनारी। देखन कौं धाईं बनवारी।
कोउ जुवती आई, कोउ आवति। कोउ उठि चलति, सुनत सुख पावति।
घर-घर होति अनंद-बधाई। सूरदास प्रभु की बलि जाई ॥७०॥
॥६८८॥

राग रामकली

जननी देखि छबि, बलि जाति।
जैसैं निधनी धनहिं पाएँ, हरष दिन अरु राति।
बाल-लीला निरखि हरषति, धन्य धनि ब्रजनारि।
निरखि जननी-बदन किलकत, त्रिदस-पति दै तारि।
धन्य नँद, धनि धन्य गोपी, धन्य ब्रज कौ बास।
धन्य धरनी - करन - पावन - जन्म सूरजदास ॥७१॥
॥६८९॥

राग बिलावल

जसुमति भाग-सुहागिनी, हरि कौं सुत जानै!
मुख-मुख जोरि बत्यावई, सिसुताई ठानै।
मो निधनी कौ धन रहै, किलकत मन मोहन।
बलिहारी छबि पर भई, ऐसी बिधि जोहन।
लटकति बेसरि जननि की, इकटक चख लावै।
फरकत बदन उठाइ कै, मनहीं मन भावै।
महरि मुदित हित उर भरै, यह कहि, मैं वारी।
नंद-सुवन के चरित पर, सूरज बलिहारी ॥७२॥
॥६९०॥

राग आसावरी

गोद लिए हरि कौं नँदरानी, अस्तन पान करावति है।
बार-बार रोहिनि कौं कहि-कहि, पलिका अजिर मँगावति है।

प्रात समय रवि-किरनि कौंवरी, सो कहि, सुतहिं बतावति है।
आउ घाम मेरे लाल कैं आँगन, बाल-केलि कौं गावति है।
रुचिर सेज लै गइ मोहन कौं, भुजा उछंग सोवावति है।
सूरदास प्रभु सोए कन्हैया, हलरावति-मल्हरावति है ॥ ७३ ॥
॥६६१॥

राग बिलावल

नंद-घरनि आनँद भरी, सुत स्याम खिलावै।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि, बिधिहिं मनावै।
कबहिं दँतुलि द्वै दूध की, देखौं इन नैननि!
कबहिं कमल-मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि।
चूमति कर-पग-अधर-भ्रू, लटकति लट चूमति।
कहा बरनि सूरज कहै, कहँ पावै सो मति ॥७४॥
॥६६२॥

राग बिलावल

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ौ किन होहि।
इहिं मुख मधुर बचन हँसिकै धौं, जननि कहै कब मोहिं।
यह लालसा अधिक मेरैं जिय जो जगदीस कराहिं।
मो देखत कान्हर इहिं आँगन, पग द्वै धरनि धराहिं।
खेलहिं हलधर-संग रंग-रुचि, नैन निरखि सुख पाऊँ।
छिन-छिन छुधित जानि पय कारन, हँसि-हँसि निकट बुलाऊँ।
जाकौ सिव-बिरंचि-सनकादिक मुनिजन ध्यान न पाव।
सूरदास जसुमति ता सुत-हित, मन अभिलाष बढ़ाव ॥७५॥
॥६६३॥

तृणावर्त-बध

राग बिलावल

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रैंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दाँत दूध के देखौं, कब तोतरैं मुख बचन झरै।
कब नंदहिं बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिं ररै।
कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै।
कब धौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै।

कब हँसि बात कहैगौ मोसौं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े, आपु गई कछु काज घरै।
इहिं अंतर अँधवाह उठ्यौ इक, गरजत गगन सहित घहरै।
सूरदास ब्रज-लोग सुनत धुनि, जो जहँ-तहँ सब अतिहिं डरै ॥७६॥
॥६६४॥

राग सूहौ

अति बिपरीत तृनावर्त आयौ।
बात-चक्र-मिस ब्रज ऊपर परि, नंद-पौरि कैं भीतर धायौ।
पौढ़े स्याम अकेले आँगन, लेत उड्यो, आकास चढ़ायौ।
अंधाधुंध भयौ सब गोकुल, जो जहँ रह्यौ सो तहीं छपायौ।
जसुमति धाइ आइ जो देखै, स्याम-स्याम कहि टेर लगायौ।
धावहु नंद गोहारि लगौ किन, तेरौ सुत अँधवाह उड़ायौ।
इहि अंतर अकास तैं आवत, परवत सम कहि सबनि बतायौ।
मार्‍यो असुर सिला सौं पटक्यौ, आपु चढ़्यौ ता ऊपर भायौ।
दौरे नंद, जसोदा दौरी, तुरतहिं लै हित कंठ लगायौ।
सूरदास यह कहति जसोदा, ना जानौं बिधनहिं का भायौ ॥७७॥
॥६६५॥

राग बिलावल

सोभित सुभग नंद जू की रानी।
अति आनँद आँगन मैं ठाढ़ी, गोद लिए सुत सारँगपानी।
तृनावर्त की सुरति आनि जिय, पठयौ असुर कंस अभिमानी।
गरू भए, महि मैं बैठाए, सहि न सकी जननी अकुलानी।
आपुन गई भवन मैं दौरी, कछु इक काज रही लपटानी।
बौंडर महा भयावन आयौ, गोकुल सबै प्रलय करि मानी।
महा दुष्ट लै उड्यौ गुपालहिं, चल्यौ अकास कृष्न यह जानी।
चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग-रकत-प्रवाह चल्यौ अधिकानी।
पाहन सिला निरखि हरि डार्‍यौ, ऊपर खेलत स्याम बिनानी।
ब्रज-जुवतिनि उपवन मैं पाए, लयौ उठाइ कंठ लपटानी।
लै आईं गृह चूमति-चाटति, घर-घर सबनि बधाई मानी।
देतिं अभूषन वारि-वारि सब, पीवतिं सूर वारि सब पानी ॥७८॥
॥६६६॥

राग धनाश्री

उबर्‌यौ स्याम, महरि बड़भागी।
बहुत दूरि तैं आइ पर्‌यौ धर, धौं कहुँ चोट न लागी।
रोग लेउँ बलि जाउँ कन्हैया, यह कहि कंठ लगाइ।
तुमही हौ ब्रज के जीवन-धन देखत नैन सिराइ।
भली नहीं यह प्रकृति जसोदा, छाँड़ि अकेलौ जाति।
गृह कौ काज इनहुँ तैं प्यारौ, नैकहुँ नाहिं डराति।
भली भई अबकैं हरि बाँचे, अब तौ सुरति सम्हारि।
सूरदास खिझि कहति ग्वालिनी, मन मैं महरि बिचारि ॥७६॥
॥६६७॥

राग बिलावल

अब हौं बलि बलि जाउँ हरी।
निसिदिन रहति बिलोकति हरि-मुख छाँड़ि सकति नहिं एक घरी।
हौं अपने गोपाल लड़ैहौं, भौन-चाड़ सब रहौ धरी।
पाऊँ कहाँ खिलावन कौ सुख, मैं दुखिया, दुख कोखि जरी।
जा सुख कौं सिव-गौरि मनाई, तिय-ब्रत-नेम अनेक करी।
सूर स्याम पाए पैंड़े मैं, ज्यौं पावै निधि रंक परी ॥८०॥
॥६६८॥

राग धनाश्री

हरि किलकत जसुदा की कनियाँ।
निरखि-निरखि मुख कहति लाल सौं, मो निधनी के धनियाँ।
अति कोमल तन चितै स्याम कौ, बार-बार पछितात।
कैसैं बच्यौ, जाउँ बलि तेरी, तृनावर्त कैं घात।
ना जानौं धौं कौन पुन्य तैं, को करि लेत सहाइ।
वैसौ काम पूतना कीन्हौ, इहिं ऐसौ कियौ आइ।
माता दुखित जानि हरि बिहँसे, नान्ही दँतुलि दिखाइ।
सूरदास प्रभु माता चित तैं दुख डार्‌यौ बिसराइ ॥८१॥
॥६६९॥

राग धनाश्री

सुत-मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ, प्रेममगन तन की सुधि भूली।

बाहिर तैं तब नंद बुलाए, देखौ धौं सुंदर सुखदाई।
तनक-तनक सी दूध-दँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई।
आनँद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई॥८२॥
॥७००॥

राग देवगंधार

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद-रनियाँ।
घर-घर हाथ दिवावति डोलति, बाँधति गरैं बघनियाँ।
सूर स्याम की अद्भुत लीला नहिं जानत मुनिजनियाँ॥८३॥
॥७०१॥

रागिनी श्रीहठी

जननी बलि जाइ हालरु हालरौ गोपाल।
दधिहिं बिलोइ सदमाखन राख्यौ, मिश्री सानि चटावै नँदलाल।
कंचन खंभ, मयारि, मरुवा-डाँड़ी, खचि हीरा बिच लाल-प्रवाल।
रेसम बनाइ नव रतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा-लाल।
मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना, रचे बिस्वकर्मा सुतहार।
देखि-देखि किलकत दँतियाँ द्वै राजत क्रीड़त बिबिध बिहार।
कठुला कंठ बज्र केहरि-नख, मसि-बिंदुका सु मृग-मद भाल।
देखत देत असीस नारि-नर, चिरजीवौ जसुदा तेरौ लाल।
सुर नर मुनि कौतूहल फूले, झूलत देखत नंद कुमार।
हरषत सूर सुमन बरषत नभ, धुनि छाई है जै-जैकार॥८४॥
॥७०२॥

नाम-करण *राग बिलावल*

महर-भवन रिषिराज गए।
चरन धोइ चरनोदक लीन्हौ, अरघासन करि हेत दए।
धन्य आज बड़भाग हमारे, रिषि आए, अति कृपा करी।
हम कहा धनि, धनि नंद-जसोदा, धनि यह ब्रज जहँ प्रगट हरी।
आदि अनादि रूप-रेखा नहिं, इनतैं नहिं प्रभु और बियौ।
देवकि उर अवतार लेन कह्यौ, दूध पिवन तुम माँगि लियौ।

बालक करि इनकौं जनि जानौ, कंस बधन येई करिहैं।
सूर देह धरि सुरनि उधारन, भूमि-भार येई हरिहैं ॥ ८५ ॥
॥७०३॥

राग धनाश्री

(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुमहिं सुनायौ।
संवत सरस विभावन, भादौं, आठैं तिथि, बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हर्षन जोग उदार।
बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथैं सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहैं।
पचएँ बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।
छठएँ सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहिं पैहैं।
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं, सतएँ राहु परे हैं।
भाग्य-भवन मैं मकर मही-सुत, बहु ऐस्वर्य बढ़ैहैं।
लाभ-भवन मैं मीन बृहस्पति, नवनिधि घर मैं ऐहैं।
कर्म-भवन के ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहैं।
आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हरैं अवतरे आनि कै, सूरदास के स्वामी ॥ ८६ ॥
॥७०४॥

राग बिलावल

धन्य जसोदा भाग तिहारौ, जिनि ऐसौ सुत जायौ।
जाकैं दरस-परस सुख तन-मन, कुल कौ तिमिर नसायौ।
विप्र-सुजन-चारन-बंदीजन, सकल नंद गृह आए।
नूतन सुभग दूब-हरदी-दधि, हरषित सीस बँधाए।
गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन, अबिगत हैं अविनासी।
सूरदास प्रभु के गुन सुनि-सुनि, आनंदे ब्रजबासी ॥ ८७ ॥
॥७०५॥

अन्नप्राशन

राग बिलावल

कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गए।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए।

बिप्र बुलाइ नाम लै बूझ्यौ, रासि सोधि इक सुदिन धर्‌यौ।
आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान कर्‌यौ।
जुवति महरि कौं गारी गावतिं, और महर कौ नाम लिए।
ब्रज-घर-घर आनंद बढ़्यौ अति प्रेम पुलक न समात हिए।
जाकौं नेति-नेति स्रुति गावत, ध्यावत सुर-मुनि ध्यान धरे।
सूरदास तिहिं कौं ब्रज-बनिता, झकझोरतिं उर अंक भरे ॥ ८८ ॥
॥७०६॥

राग सारंग

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि-कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन।
नंद-घरनि ब्रज-बधू बुलाईं, जे सब अपनी पाँति।
कोउ ज्यौनार करति, कोउ घृत-पक, षटरस के बहु भाँति।
बहुत प्रकार किए सब व्यंजन, अमित बरन मिष्टान।
अति उज्ज्वल-कोमल-सुठि-सुंदर, देखि महरि मन मान।
जसुमति नंदहिं बोलि कह्यौ तब, महर, बुलावहु जाति।
आपु गए नँद सकल-महर-घर, लै आए सब ज्ञाति।
आदर करि बैठाइ सबनि कौं, भीतर गए नँदराइ।
जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौं, पट-भूषन पहिराइ।
तन झँगुली, सिर लाल चौतनी, चूरा दुहुँ कर-पाइ।
बार-बार मुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि लेति बलाइ।
घरी जानि सुत-मुख-जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
महर बोलि बैठारि मंडली, आनँद करत बिनोद।
कनक-थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ।
नँद लै-लै हरि मुख जुठरावत, नारि उठीं सब गाइ।
षटरस के परकार जहाँ लगि, लै-लै अधर छुवावत।
बिस्वंभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुवावत।
तनक-तनक जल अधर पोंछि कै, जसुमति पै पहुँचाए।
हरषवंत जुवती सब लै-लै, मुख चूमतिं उर लाए।
महर गोप सबही मिलि बैठे, पनवारे परसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी, जो जाकैं मन भाए।

इहिँ विधि सुख बिलसत ब्रजबासी, धनि गोकुल नर-नारी।
नंद-सुवन की या छबि ऊपर, सूरदास बलिहारी ॥ ८९ ॥
॥७०७॥

राग सारंग

हरि कौ मुख माइ, मोहिँ अनुदिन अति भावै।
चितवत चित नैननि की मति-गति बिसरावै।
ललना लै-लै उछंग अधिक लोभ लागैँ।
निरखतिँ निंदति निमेष करत ओट आगैँ।
सोभित सु-कपोल-अधर, अलप-अलप दसना।
किलकि-किलकि बैन कहत, मोहन, मृदु रसना।
नासा, लोचन बिसाल, संतत सुखकारी।
सूरदास धन्य भाग, देखतिँ ब्रजनारी ॥ ९० ॥
॥७०८॥

राग सारंग

ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लागौ इन नैननि, रोग-बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि, मोहन मसि-बिंदुका-तिलक भाल सुखकारी।
मनौ कमल-दल सावक पेखत, उड़त मधुप छबि न्यारी।
लोचन ललित, कपोलनि काजर, छबि उपजति अधिकारी।
सुख मैँ सुख औरै रुचि बाढ़ति, हँसत देत किलकारी।
अलप दसन, कलबल करि बोलनि, बुधि नहिँ परत बिचारी।
बिकसति ज्योति अधर-बिच, मानौ बिधु मैँ बिज्जु उज्यारी।
सुंदरता कौ पार न पावति, रूप देखि महतारी।
सूर सिंधु की बूँद भई मिलि मति-गति-दृष्टि हमारी ॥९१॥
॥७०९॥

राग जैतश्री

लालन, वारी या मुख ऊपर।
माई मेरिहि दीठि न लागै, तातैँ मसि-बिंदा दियौ भ्रू पर।
सरवस मैँ पहिलैँ ही वार्‌यौ, नान्हीँ-नान्हीँ दँतुली दू पर।
अब कहा करौँ निछावरि, सूरज सोचति अपनैँ लालन जू पर॥९२॥
॥७१०॥

राग जैतश्री

लाल हौं वारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक,मोहनि-मन बिहँसनि, भृकुटी बिकट ललित नैननि पर।
दमकति दूध-दँतुलिया बिहँसत, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।
लघु-लघु लट सिर घूँघरवारी, लटकन लटकि रह्यौ माथैं पर।
यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर।
नव-तन-चंद्र-रेख-मधि राजत, सुरगुरु-सुक्र-उदोत परसपर।
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुकता रदछद पर।
सूर कहा न्यौछावर करियै अपने लाल ललित लरखर पर॥ ६३॥
॥७११॥

वर्ष गाँठ *राग बिलावल*

आजु भोर तमचुर के रोल।
गोकुल मैं आनंद होत है, मंगल-धुनि महराने टोल।
फूले फिरत नंद अति सुख भयौ, हरषि मँगावत फूल-तमोल।
फूली फिरति जसोदा तन-मन, उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल।
तनक बदन, दोउ तनक-तनक कर, तनक चरन, पोंछति पट झोल।
कान्ह गरैं सोहति मनि-माला, अंग अभूषन अँगुरिनि गोल।
सिर चौतनी डिठौना दीन्हौ, आँखि आँजि पहिराइ निचोल।
स्याम करत माता सौं झगरौ, अटपटात कलबल करि बोल।
दोउ कपोल गहि कै मुख चूमति, बरष-दिवस कहि करति कलोल।
सूर स्याम ब्रज-जन-मोहन-बरष-गाँठि कौ डोरा खोल॥ ६४॥
॥७१२॥

राग धनाश्री

अरी, मेरे लालन की आजु बरष-गाँठि, सबै
सखिनि कौं बुलाइ मँगल-गान करावौ।
चंदन आँगन लिपाइ, मुतियनि चौकैं पुराइ,
उमँगि अँगनि आनँद सौं, तूर बजावौ।
मेरे कहैं बिप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ,
बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ।
अछत-दूब दल बँधाइ, लालन की गाँठि जुराइ,
इहै मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ।

पँचरँग सारी मँगाइ, बधू जननि पैहराइ,
नाचैं सब उमँगि अंग, आनँद बढ़ावौ।
नँदरानी ग्वारिनि बुलाइ, इहै रीति कहि सुनाइ,
बेगि करौ किन, बिलंब काहैं लगावौ।
जसुमति तब नँद बुलावति, लाल लिए कनियाँ दिखरावति,
लगन घरी आवति, या तैं, न्हवाइ बनावौ।
सूर स्याम छबि निहारति, तन-मन जुवति जन वारति,
अतिहीं सुख धारति, बरष-गाँठि जुरावौ ॥९५॥
॥७१३॥

राग आसावरी

उमँगीं ब्रजनारि सुभग, कान्ह बरष-गाँठि उमँग, चहति बरष बरषनि।
गावहिं मंगल सुगान, नीके सुर नीकी तान, आनँद अति हरषनि।
कंचन-मनि-जटित-थार रोचन, दधि, फूल-डार, मिलिबे की तरसनि।
प्रभु बरष-गाँठि जोरति, वा छबि पर तृन तोरति, सूर अरस परसनि।
॥९६॥७१४॥

घुटुरुवौं चलना

राग धनाश्री

खेलत नँद-आँगन गोबिंद।
निरखि-निरखि जसुमति सुख पावति, बदन मनोहर इंदु।
कटि किंकिनी चंद्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल।
परम सुदेस कंठ केहरि-नख, बिच-बिच बज्र प्रवाल।
कर पहुँची, पाइनि मैं नूपुर, तन राजत पट पीत।
घुटुरुनि चलत, अजिर महँ बिहरत, मुख मंडित नवनीत।
सूर बिचित्र चरित्र स्याम के रसना कहत न आवैं।
बाल दसा अवलोकि सकल मुनि, जोग बिरति बिसरावैं ॥९७॥
॥७१५॥

राग आसावरी

घुटुरुनि चलत स्याम मनि-आँगन, मातु-पिता दोउ देखत री।
कबहुँक किलकि तात-मुख हेरत, कबहुँ मातु-मुख पेखत री।
लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर-बिंदु भ्रुव-ऊपर री।
यह सोभा नैननि भरि देखैं, नहिं उपमा तिहुँ भू पर री।

कबहुँक दौरि घुटुरुवनि लपकत, गिरत, उठत पुनि धावै री।
इततैं नंद बुलाइ लेत हैं, उततैं जननि बुलावै री।
दंपति होड़ करत आपुस मैं, स्याम खिलौना कीन्हौ री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन, सुत हित करि दोउ लीन्हौ री ॥९८॥
॥७१६॥

राग बिलावल

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए।
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ॥९९॥
॥७१७॥

राग रामकली

खीझत जात माखन खात।
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात।
कबहुँ रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात।
कबहुँ झुकि कै अलक खैंचत, नैन जल भरि जात।
कबहुँ तोतर बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात।
सूर हरि की निरखि सोभा, निमिष तजत न मात ॥१००॥
॥७१८॥

राग ललित

(माई) बिहरत गोपाल राइ, मनिमय रचे अंगनाइ,
लरकत पररिंगनाइ, घूटुरूनि डोलै।
निरखि निरखि अपनो प्रति-बिंब, हँसत किलकत औ,
पाछैं चितै फेरि-फेरि मैया-मैया बोलै।
ज्यौं अलिगन सहित बिमल जलज जलहिं धाइ रहै,
कुटिल अलक बदन की छबि, अवनी परि लोलै।
सूरदास छबि निहारि, थकित रहीं घोष नारि,
तन-मन-धन देतिं वारि, वार-बार ओलै ॥१०१॥
॥७१९॥

राग बिलावल

बाल बिनोद खरो जिय भावत।
मुख प्रतिबिंब पकरिबे कारन हुलसि घुटुरुवनि धावत।
अखिल ब्रह्मंड-खंड की महिमा, सिसुता माहिं दुरावत।
सब्द जोरि बोल्यौ चाहत हैं, प्रगट बचन नहिं आवत।
कमल-नैन माखन माँगत हैं करि-करि सैन बतावत।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, जसुमति-प्रीति बढ़ावत ॥१०२॥
॥७२०॥

राग सारंग

मैं बलि स्याम, मनोहर नैन।
जब चितवत मो तन करि अँखियनि, मधुप देत मनु सैन।
कुंचित अलक, तिलक गोरोचन, ससि पर हरि के ऐन।
कबहुँक खेलत जात घुटुरुवनि, उपजावत सुख चैन।
कबहुँक रोवत-हँसत बलि गई, बोलत मधुरे बैन।
कबहुँक ठाढ़े होत टेकि कर, चलि न सकत इक गैन।
देखत बदन करौं न्यौछावरि, तात-मात सुख-दैन।
सूर बाल-लीला के ऊपर, वारौं कोटिक मैन ॥१०३॥
॥७२१॥

राग कान्हरौ

आँगन खेलत घुटुरुनि धाए।
नील-जलद-अभिराम स्याम तन, निरखि जननि दोउ निकट बुलाए।
बंधुक-सुमन-अरुन-पद-पंकज, अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए।
नूपुर-कलरव मनु हंसनि सुत रचे नीड़, दै बाहँ बसाए।
कटि किंकिनि बर हार ग्रीवदर, रुचिर बाहु भूषन पहिराए।
उर श्रीबच्छ मनोहर हरि-नख, हेम-मध्य मनि-गन बहु लाए।
सुभग चिबुक, द्विज-अधर-नासिका, स्रवन-कपोल मोहिं सुठि भाए।
भ्रुव सुंदर, करुना-रस-पूरन लोचन मनहु जुगल जल-जाए।
भाल बिसाल ललित लटकन मनि, बाल-दसा के चिकुर सुहाए।
मानौ गुरु-सनि-कुज आगैं करि, ससिहिं मिलन तम के गन आए।
उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत उढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए।

अंग-अंग-प्रति मार-निकर मिलि, छबि-समूह लै-लै मनु छाए।
सूरदास सो क्यौं करि बरनै, जो छबि निगम नेति करि गाए ॥१०४॥
॥७२२॥

राग धनाश्री

हौं बलि जाउँ छबीले लाल की।
धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगनि, बोलनि बचन रसाल की।
छिटकि रहीं चहुँ दिसि जु लटुरियाँ, लटकन-लटकनि भाल की।
मोतिनि सहित नासिका नथुनी, कंठ-कमल-दल-माल की।
कछुक हाथ, कछु मुख माखन लै, चितवनि नैन बिसाल की।
सूरदास प्रभु-प्रेम-मगन भईं, ढिग न तजनि ब्रजबाल की ॥१०५॥
॥७२३॥

राग कान्हरौ

आदर सहित बिलोकि स्याम-मुख, नंद अनंद-रूप लिए कनियाँ।
सुंदर स्याम-सरोज-नील-तन, अँग-अँग सुभग सकल सुखदनियाँ।
अरुन चरन नख-जोति जगमगति, रुन-झुन करति पाइँ पैजनियाँ।
कनक-रतन-मनि-जटित-रचित कटि किंकनि कुनित पीतपट तनियाँ।
पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ मंजु गज-मनियाँ।
रुचिर चिबुक-द्विज-अधर नासिका अति सुंदर राजति सुबरनियाँ।
कुटिल भृकुटि,सुख की निधि आनन, कल कपोल की छबि न उपनियाँ।
भाल तिलक मसि-बिंदु बिराजत, सोभित सीस लाल चौतनियाँ।
मन-मोहिनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन हरनि सु हँसि मुसुकनियाँ।
बाल सुभाव बिलोल बिलोचन, चोरति चितहिं चारु चितवनियाँ।
निरखतिं ब्रज-जुवती सब ठाढ़ी, नंद-सुवन-छबि चंद-बदनियाँ।
सूरदास प्रभु निरखि मगन भए, प्रेम-बिवस कछु सुधि न अपनियाँ॥
॥१०६॥७२४॥

राग कान्हरौ

गोद लिए जसुदा नँद-नंदहिं।
पीत झँगुलिया की छबि छाजति, बिज्जुलता सोहति मनु कंदहिं।
बाजीपति अग्रज अंबा तेहिं, अरक-थान-सुत माला गुंदहिं।
मानौ स्वर्गहिं तैं सुरपति-रिपु-कन्या-सौति आइ ढरि सिंदहिं।

आरि करत कर चपल चलावत, नंद-नारि-आनन छुवै मंदहिँ।
मनौ भुजंग अमी-रस-लालच, फिरि-फिरि चाटत सुभग सुचंदहिँ।
गूँगी बातनि यौँ अनुरागति, भँवर गुजरत कमल मौँ चंदहिँ।
सूरदास स्वामी धनि तप किए, बड़े भाग जसुदा अरु नंदहिँ।
॥१०७॥७२५॥

राग धनाश्री

कहाँ लौँ बरनौँ सुंदरताई ?
खेलत कुँवर कनक-आँगन मैँ नैन निरखि छवि पाई।
कुलही लसति सिर स्यामसुँदर कैँ, बहु बिधि सुरँग बनाई।
मानौ नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई।
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई।
मानौ प्रगट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई।
नील, सेत अरु पीत, लाल मनि लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई।
दूत-दंत-दुति कहि न जाति कछु अद्‌भुत उपमा पाई।
किलकत-हँसत दुरति प्रगटति मनु, घन मैँ बिज्जु छटाई।
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप-अलप जलपाई।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, सूरदास बलि जाई॥१०८॥
॥७२६॥

राग नटनारायन

हरि जू की बाल-छवि कहौँ बरनि।
सकल सुख की सीँव, कोटि-मनोज-सोभा-हरनि।
भुज भुजंग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि।
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फर्‌यौ अदभुत फरनि।
चलत पद-प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि करनि।
जलज-संपुट-सुभग-छबि भरि लेति उर जनु धरनि।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिँ बिलोकि कै नँद-घरनि।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि॥ १०९॥
॥७२७॥

राग धनाश्री

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिंब पकरिवैं धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाहँ कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक-भूमि पर कर - पग-छाया, यह उपमा इक राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा, कमल बैठकी साजति।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ॥११०॥
॥७२८॥

राग बिलावल

नंद-धाम खेलत हरि डोलत।
जसुमति करति रसोई भीतर, आपुन किलकत बोलत।
टेरि उठी जसुमति मोहन कौं, आवहु काहैं न धाइ।
बैन सुनत माता पहिचानी, चले घुटुरुवनि पाइ।
लै उठाइ अंचल गहि पोंछे, धूरि भरी सब देह।
सूरज प्रभु जसुमति रज झारति, कहाँ भरी यह खेह ? ॥१११॥
॥७२९॥

पाँवों चलना *राग सूहो बिलावल*

धनि जसुमति बड़भागिनी, लिए कान्ह खिलावै।
तनक-तनक भुज पकरि कै, ठाढ़ौ होन सिखावै।
लरखरात गिरि परत हैं, चलि घुटुरुनि धावैं।
पुनि क्रम-क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावैं।
अपने पाइनि कबहिं लौं, मोहिं देखन धावै।
सूरदास जसुमति इहै विधि सौं जु मनावै ॥११२॥७३०॥

राग कान्हरौ

हरि कौ विमल जस गावति गोपँगना।
मनिमय आँगन नंदराइ कौ, बाल गोपाल करैं तहँ रँगना।
गिरि-गिरि परत घुटुरुवनि रेंगत, खेलत हैं दोउ छगना-मगना।
धूसरि धूरि दुहूँ तन मंडित, मातु जसोदा लेति उछँगना।

बसुधा त्रिपद करत नहिं आलस तिनहिं कठिन भयौ देहरी उलँघना ?
सूरदास प्रभु ब्रज-बधु निरखतिं, रुचिर हार हिय सोहत बघना ॥११३॥
॥७३१॥

राग सूहौ बिलावल

चलन चहत पाइनि गोपाल।
लए लाइ अँगुरी नँदरानी, सुंदर स्याम तमाल।
डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नँदलाल।
जनु सिर पर ससि जानि अधोमुख, धुकत नलिनि नमि नाल।
धूरि-धौत तन, अंजन नैननि, चलत लटपटी चाल।
चरन रनित नूपुर-धुनि, मानौ बिहरत बाल मराल।
लट लटकनि सिर चारु चखौड़ा, सुठि सोभा सिसु भाल।
सूरदास ऐसौ सुख निरखत, जग जीजै बहु काल ॥११४॥
॥७३२॥

राग बिलावल

सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति, उर आनँद भरि लेति बलैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ॥११५॥
॥७३३॥

राग सूहौ बिलावल

मनिमय आँगन नंद कैं, खेलत दोउ भैया।
गौर-स्याम जोरी बनी, बलराम कन्हैया।
लटकतिं ललित लटूरियाँ, मसि-बिंदु-गोरोचन।
हरि-नख उर अति राजहीं, संतनि दुख मोचन।
सँग-सँग जसुमति-रोहिनी, हितकारिनि मैया।
चुटकी देहिं नचावहीं, सुत जानि नन्हैया।
नील-पीत पट ओढ़नी देखत जिय भावै।
बाल-बिनोद अनंद सौं, सूरज जन गावै ॥११६॥
॥७३४॥

राग धनाश्री

आँगन खेलैं नंद के नंदा। जदुकुल-कुमुद-सुखद-चारु-चंदा।
संग-संग बल-मोहन सोहैं। सिसु-भूषन भुव कौ मन मोहैं।
तन-दुति मोर-चंद जिमि झलकै। उमँगि-उमँगि अँग-अँग छबि छलकै।
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजै। पंकज पानि पहुँचिया राजै।
कठुला कंठ बघनहाँ नीके। नैन-सरोज मैन-सरसी के।
लटकति ललित ललाट लटूरी। दमकति दूध दँतुरियाँ रूरी।
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बिंदा। ललित वदन बल-बालगुविंदा।
कुलही चित्र-विचित्र झँगूली। निरखि जसोदा-रोहिनि फूली।
गहि मनि-खंभ डिभ डग डोलैं। कल बल बचन तोतरे बोलैं।
निरखत झुकि, झाँकत प्रतिबिंबहिं। देत परम सुख पितु अरु अंबहिं।
ब्रज-जन निरखत हिय हुलसाने। सूर स्याम-महिमा को जाने॥११७॥
॥७३५॥

राग नटनारायन

बलि गइ बाल-रूप मुरारि।
पाइ-पैंजनि रटति रुन-झुन, नचावति नँद-नारि।
कबहुँ हरि कौं लाइ अँगुरी, चलन सिखवति ग्वारि।
कबहुँ हृदय लगाइ हित करि, लेति अंचल डारि।
कबहुँ हरि कौं चितै चूमति, कबहुँ गावति गारि।
कबहुँ लै पाछे दुरावति, ह्याँ नहीं बनवारि।
कबहुँ अँग भूषन बनावति, राइ-लोन उतारि।
सूर सुर-नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि॥११८॥७३६॥

राग बिलावल

भावत हरि कौ बाल-विनोद।
स्याम-राम-मुख निरखि-निरखि, सुख-मुदित रोहिनी, जननि जसोद।
आँगन-पंक-राग तन सोभित, चल नूपुर-धुनि सुनि मन मोद।
परम सनेह बढ़ावत मातनि, रबकि-रबकि हरि बैठत गोद।
आनँद-कंद, सकल सुखदायक, निसि-दिन रहत केलि-रस ओद।
सूरदास प्रभु अंबुज-लोचन, फिरि-फिरि चितवत ब्रज-जन-कोद॥
॥११९॥ ॥७३७॥

राग सूहौ

सूच्छम चरन चलावत बल करि।
अटपटात, कर देति सुंदरी, उठत तबै सुजतन तन-मन धरि।
मृदु पद धरत धरनि ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै-लै भरि-भरि।
पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यौं जल मैं काँची गागरि गरि।
सूरदास सिसुता-सुख जलनिधि, कहँ लौं कहौं नाहिं कोउ समसरि।
बिबुधनि मन तर मान रमत ब्रज, निरखत जसुमति सुख छिन-पल-घरि
॥१२०॥७३८॥

राग बिलावल

बाल-बिनोद आँगन की डोलनि।
मनिमय भूमि नंद कैं आलय, बलि-बलि जाउँ तोतरे बोलनि।
कठुला कंठ कुटिल केहरि-नख, बज्र-माल बहु लाल अमोलनि।
बदन सरोज तिलक गोरोचन, लट लटकनि मधुकर-गति डोलनि।
कर नवनीत परस आनन सौं, कछुक खात, कछु लग्यौ कपोलनि।
कहि जन सूर कहाँ लौं बरनौं, धन्य नंद जीवन जग तोलनि।
॥१२१॥७३९॥

राग बिलावल

गहे अँगुरिया ललन की, नँद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत हैं, कर टेकि उठावत।
बार-बार बकि स्याम सौं, कछु बोल बुलावत।
दुहुँघाँ द्वै दँतुली भईं, मुख अति छबि पावत।
कबहुँ कान्ह-कर छाँड़ि नँद, पग द्वैक रिंगावत।
कबहुँ धरनि पर बैठि कै, मन मैं कछु गावत।
कबहुँ उलटि चलैं धाम कौं, घुटुरुनि करि धावत।
सूर स्याम-मुख लखि महर, मन हरष बढ़ावत॥१२२॥
॥७४०॥

राग धनाश्री

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी।
जो मन मैं अभिलाष करति ही, सो देखति नँद-घरनी।

रुनुक-झुनुक नूपुर पग बाजत, धुनि अतिहीं मन-हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरतहीं, सो छबि जाइ न बरनी।
ब्रज-जुवती सब देखि थकित भईं, सुंदरता की सरनी।
चिरजीवहु जसुदा कौ नंदन, सूरदास कौं तरनी ॥१२३॥
॥७४१॥

राग बिलावल

चलत स्यामघन राजत, बाजति पैंजनि पग-पग चारु मनोहर।
डगमगात डोलत आँगन मैं, निरखि बिनोद मगन सुर-मुनि-नर।
उदित मुदित अति जननि जसोदा, पाछैं फिरति गहे अँगुरी कर।
मनौ धेनु तृन छाँड़ि बच्छ-हित, प्रेम द्रवित चित स्रवत पयोधर।
कुंडल लोल कपोल बिराजत, लटकति ललित लटुरिया भ्रू पर।
सूर स्याम-सुंदर अवलोकत बिहरत बाल-गोपाल नंद-घर ॥१२४॥
॥७४२॥

राग गौरी

भीतर तैं बाहर लौं आवत।
घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत।
गिरि-गिरि परत, जात नहिं उलँघी, अति स्रम होत नघावत।
अहुँठ पैग बसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत।
मनहीं मन बलबीर कहत हैं, ऐसे रंग बनावत।
सूरदास-प्रभु-अगनित-महिमा, भगतनि कैं मन भावत ॥१२५॥
॥७४३॥

राग धनाश्री

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमुकि-ठुमुकि पग धरनी रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहीं कौं आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं नाँघत सुर-मुनि सोच करावै।
कोटि ब्रह्मंड करत छिन भीतर, हरत बिलंब न लावै।
ताकौं लिए नंद की रानी, नाना खेल खिलावै।
तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम-क्रम करि उतरावै।
सूरदास प्रभु देखि-देखि, सुर-नर-मुनि-बुद्धि भुलावै ॥१२६॥
॥७४४॥

राग भैरव

सो बल कहा भयौ भगवान ?

जिहिँ बल मीन-रूप जल थाह्यौ, लियौ निगम. हति असुर-परान।
जिहिँ बल कमठ-पीठि पर गिरि-धरि, सजल सिंधु मथि कियौ बिमान।
जिहिँ बल रूप बराह दसन पर, राखी पुहुमी पुहुप समान।
जिहिँ बल हिरनकसिप-उर फार्‌यौ, भए भगत कौं कृपानिधान।
जिहिँ बल बलि बंधन करि पठयौ, बसुधा त्रैपद करी प्रमान।
जिहिँ बल बिप्र तिलक दै थाप्यौ, रच्छा करी आप बिदमान।
जिहिँ बल रावन के सिर काटे, कियौ बिभीषन नृपति निदान।
जिहिँ बल जामवंत-मद मेट्यौ, जिहिँ बल भू-बिनती सुनी कान।
सूरदास अब धाम-देहरी चढ़ि न सकत प्रभु खरे अजान ! ॥१२७॥
॥७४५॥

राग असावरी

देखौ अद्भुत अबिगत की गति, कैसौ रूप धर्‌यौ है (हो) !
तीनि लोक जाकैं उदर-भवन, सो सूप कैं कोन पर्‌यौ है (हो) !
जाकैं नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग ब्रत साध्यौ (हो) !
ताकौ नाल छीनि ब्रज-जुवती, बाँटि तगा सौं बाँध्यौ (हो) !
जिहिँ मुख कौं समाधि सिव साधी आराधन ठहराने (हो) !
सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध-लार लपटाने (हो) !
जिन स्रवननि जन की बिपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै (हो) !
तिन स्रवननि ह्वै निकट जसोदा, हलरावै अरु गावै (हो) !
बिस्व-भरन-पोषन, सब समरथ, माखन-काज अरे हैं (हो) !
रूप बिराट कोटि प्रति रोमनि, पलना माँझ परे हैं (हो) !
जिहिँ भुज बल प्रहलाद उबार्‌यौ, हिरनकसिप उर फारे (हो) !
सो भुज पकरि कहति ब्रजनारी, ठाढ़े होहु लला रे (हो) !
जाकौ ध्यान न पायौ सुर-मुनि, संभु समाधि न टारी (हो) !
सोई सूर प्रगट या ब्रज मैं, गोकुल-गोप-बिहारी (हो) ! ॥१२८॥
॥७४६॥

राग अहीरी

साँवरे बलि-बलि बाल-गोबिंद। अति सुख पूरन परमानंद।

तीनि पैंड़ जाके धरनि न आवै। ताहि जसोदा चलन सिखावै।
जाकी चितवनि काल डराई। ताहि महरि कर-लकुटि दिखाई।
जाकौ नाम कोटि भ्रम टारै। तापर राई-लोन उतारै।
सेवक सूर कहा कहि गावै। कृपा भई जो भक्तिहिं पावै।
॥१२९॥७४७॥

राग आसावरी

आनँद-प्रेम उमंगि जसोदा, खरी गुपाल खिलावै।
कबहुँक हिलकै-किलकै जननी मन-सुख-सिंधु बढ़ावै।
दै करताल बजावति, गावति, राग अनूप मल्हावै।
कबहुँक पल्लव पानि गहावै, आँगन माँझ रिंगावै।
सिव, सनकादि, सुकादि, ब्रह्मादिक खोजत अंत न पावैं।
गोद लिए ताकौं हलरावै तोतरे बैन बुलावै।
मोहे सुर, नर, किन्नर, मुनिजन, रवि रथ नाहिं चलावै।
मोहि रहीं ब्रज की जुवती सब, सूरदास जस गावै ॥१३०॥
॥७४८॥

राग कान्हरौ

हरि हरि हँसत मेरौ माधैया।
देहरि चढ़त परत गिरि-गिरि, कर-पल्लव गहति जु मैया।
भक्ति-हेत जसुदा के आगैं, धरनी चरन धरैया।
जिनि चरननि छलियौ बलि राजा, नख गंगा जु बहैया।
जिहिं सरूप मोहे ब्रह्मादिक, रवि-ससि कोटि उगैया।
सूरदास तिन प्रभु चरननि की, बलि-बलि मैं बलि जैया ॥१३१॥
॥७४९॥

झुनक स्याम की पैजनियाँ
जसुमति-सुत कौं चलन सिखावतिं, अँगुरी गहि-गहि दोउ जनियाँ।
स्याम बरन पर पीत झँगुलिया, सीस कुलहिया चौतनियाँ।
जाकौ ब्रह्मा पार न पावत, ताहि खिलावति ग्वालिनियाँ।
दूरि न जाहु निकटहीं खेलौ, मैं बलिहारी रैंगनियाँ।
सूरदास जसुमति बलिहारी, सुतहिं खिलावति लै कनियाँ ॥१३२॥
॥७५०॥

चलत लाल पैजनि के चाइ।
पुनि-पुनि होत नयौ-नयौ आनँद, पुनि-पुनि निरखत पाइ।
छोटौ बदन छोटियै झिंगुली, कटि किंकिनी-बनाइ।
राजत जंत्र-हार, केहरि-नख, पहुँची रतन-जराइ।
भाल तिलक पख स्याम चखौड़ा जननी लेति बलाइ।
तनक लाल नवनीत लिए कर, सूरज बलि-बलि जाइ ॥१३३॥
॥७५१॥

राग सूहौ

आँगन स्याम नचावहीं, जसुमति नँदरानी।
तारी दै-दै गावहीं, मधुरी मृदु बानी।
पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै।
नान्हीं एड़ियनि अरुनता, फल-बिंब न पूजै।
जसुमति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै।
तारी बजावत देखई, पुनि आपु बजावै।
केहरि-नख उर पर रुरै, सुठि सोभाकारी।
मनौ स्याम घन मध्य मैं, नव ससि-उजियारी।
गभुआरे सिर केस हैं, बर घूँघरवारे।
लटकन लटकत भाल पर, बिधु मधि गन तारे।
कठुला कंठ चिबुक-तरैं, मुख दसन बिराजैं।
खंजन बिच सुक आनि कै मनु परयौ दुराजैं।
जसुमति सुतहिं नचावई, छबि देखति जिय तैं।
सूरदास प्रभु स्याम कौ, मुख टरत न हिय तैं ॥१३४॥
॥७५२॥

राग आसावरी

मैं देख्यौ जसुदा कौ नंदन, केलत आँगन बारौ री।
ततछन प्रान पलटि गयौ मेरौ, तन-मन ह्वै गयौ कारौ री।
देखत आनि सँच्यौ उर अंतर, दै पलकनि कौ तारौ री।
मोहिं भ्रम भयौ सखी, उर अपनैं, चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री।
जौ गुंजा सम तुलत सुमेरहिं, ताहू तैं अति भारौ री।
जैसैं बूँद परत बारिधि मैं, त्यौं गुन ग्यान हमारौ री।

हौं उन माहँ कि वै मोहिं महियाँ, परत न देह सँभारौ री।
तरु मैं बीज कि बीज माहँ तरु, दुहुँ मैं एक न न्यारौ री।
जल-थल-नभ-कानन-घर-भीतर, जहँ लौं दृष्टि पसारौ री।
तितही तित मेरे नैननि आगैं निरतत नंद-दुलारौ री।
तजी लाज कुलकानि लोक की, पति गुरुजन प्यौसारौ री।
जिनकी सकुच देहरी दुर्लभ, तिनमैं मूँड़ उघारौ री!
टोना-टामनि जंत्र मंत्र करि, ध्यायौ देव-दुआरौ री।
सासु-ननद घर-घर लिए डोलतिं, याकौ रोग बिचारौ री!
कहौं कहा कछु कहत न आवै, औ रस लागत खारौ री।
इनहिं स्वाद जो लुब्ध सूर सोइ जानत चाखनहारौ री ॥१३५॥
॥७५३॥

राग आसावरी

जब तैं आँगन खेलत देख्यौ, मैं जसुदा कौ पूत री।
तब तैं गृह सौं नातौ टूट्यो, जैसैं काँचो सूत री।
अति बिसाल बारिज-दल-लोचन, राजति काजर-रेख री।
इच्छा सौं मकरंद लेत मनु अलि गोलक के बेष री।
स्रवन सुनत उतकंठ रहत हैं, जब बोलत तुतरात री।
उमँगै प्रेम नैन-मग ह्वै कै, कापै रोक्यौ जात री।
दमकतिं दोउ दूध की दतियाँ, जगमग जगमग होति री।
मानौ सुंदरता-मंदिर मैं रूप-रतन की ज्योति री।
सूरदास देखैं सुंदर मुख, आनँद उर न समाइ री।
मानौ कुमुद कामना-पूरन, पूरन इंदुहिं पाइ री ॥१३६॥
॥७५४॥

राग आसावरी

अद्भुत इक चितयौ हौं सजनी, नंद महर कैं आँगन री।
सो मैं निरखि अपुनपौ खोयौ, गई मथानी माँगन री।
बाल-दसा मुख-कमल बिलोकत, कछु जननी सौं बोलै री।
प्रगटति हँसत दँतुलि, मनु सीपज दमकि दुरे दल ओलै री।
सुंदर भाल-तिलक गोरोचन, मिलि मसि-बिंदुका लाग्यौ री।
मनु मकरंद अचै रुचि कै, अलि-सावक सोइ न जाग्यौ री।

कुंडल लोल कपोलनि झलकत, मनु दरपन मैं झाईं री।
रही विलोकि विचारि चारु छबि, परमिति कहूँ न पाई री।
मंजुल तारनि की चपलाई, चित चतुराई करषै री।
मनौ सरासन धरे कर स्मर, भौंह चढ़ै सर बरषै री।
जलधि थकित जनु काग पोत कौ कूल न कबहूँ आयौ री।
ना जानौं किहिं अंग मगन मन, चाहि रही नहिं पायौ री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बरनि छबि, निरखत मति-गति हारी री।
सूर स्याम के एक रोम पर देउँ प्रान बलिहारी री ॥१३७॥
॥७५५॥

राग धनाश्री

जसोदा, तेरौ चिरजीवहु गोपाल।
वेगि बढ़े बल सहित विरध लट, महरि मनोहर बाल।
उपजि पर्‍यौ सिसु कर्म-पुन्य-फल, समुद-सीप ज्यौं लाल।
सब गोकुल कौ प्रान-जीवन-धन, बैरिनि कौ उर-साल।
सूर कितौ सुख पावत लोचन, निरखत घुटुरुनि चाल।
झारत रज लागे मेरी अँखियनि रोग-दोष-जंजाल ॥१३८॥
॥७५६॥

राग आसावरी

आजु गई हौं नंद-भवन मैं, कहा कहौं गृह-चैन री।
चहूँ ओर चतुरंग लच्छमी, कोटिक दुहियत धैन री।
घूमि रहीं जित-तित दधि मथनी, सुनत मेघ-धुनि लाजै री।
बरनौं कहा सदन की सोभा, बैकुंठहुँ तैं राजै री।
बोलि लई नव बधू जानि जहँ खेलत कुँवर कन्हाई री।
मुख देखत मोहिनी सी लागी, रूप न बरन्यौ जाई री।
लटकन लटकि रहे भ्रू-ऊपर, रँग-रँग मनि-गन पोहे री।
मानहुँ गुरु-सनि-सुक्र एक ह्वै, लाल भाल पर सोहे री।
गोरोचन कौ तिलक, निकटहीं काजर-बिंदुका लाग्यौ री।
मनौ कमल कौ पी पराग, अलि-सावक सोइ न जाग्यौ री।
विधु-आनन पर दीरघ लोचन, नासा लटकत मोती री।
मानौ सोम संग करि लीने, जानि आपने गोती री।
सीपज-माल स्याम-उर सोहै, बिच बघ-नहँ छबि पावै री।
मनौ द्वैज ससि नखत सहित है, उपमा कहत न आवै री।

सोभा-सिंधु अंग अंगनि प्रति, बरनत नाहिंन ओर री।
जित देखौं मन भयौ तितहिं कौ, मनौ भरे कौ चोर री।
बरनौं कहाँ अंग-अँग-सोभा, भरी भाव जल-रास री।
लाल गोपाल बाल-छबि बरनत, कबि-कुल करिहै हास री।
जो मेरी अँखियनि रसना होती कहती रूप बनाइ री।
चिरजीवहु जसुदा कौ ढोटा, सूरदास बलि जाइ री ॥१३९॥
॥७५७॥

मैं मोही तेरैं लाल री।
निपट निकट ह्वै कै तुम निरखौ, सुंदर नैन बिसाल री।
चंचल दृग अंचल-पट-दुति-छबि, झलकत चहुँ दिसि झालरी।
मनु सेवाल कमल पर अरुझे, भँवत भ्रमर भ्रम-चाल री।
मुक्ता-बिद्रुम-नील-पीत-मनि, लटकत लटकन भाल री।
मानौ सुक्र-भौम-सनि-गुरु मिलि, ससि कैं बीच रसाल री।
उपमा बरनि न जाइ सखी री, सुंदर मदन-गोपाल री।
सूर स्याम के ऊपर वारै तन-मन-धन ब्रजबाल री ॥१४०॥
॥७५८॥

राग बिलावल

कल बल कै हरि आरि परे।
नव रँग विमल नवीन जलधि पर, मानहुँ द्वै ससि आनि अरे।
जे गिरि कमठ सुरासुर सर्पहिं धरत न मन मैं नैंकु डरे।
ते भुज-भूषन-भार परत कर गोपिनि के आधार धरे।
सूर स्याम दधि-भाजन-भीतर निरखत मुख मुख तैं न टरे।
बिबि चंद्रमा मनौ मथि काढ़े, बिहँसनि मनहुँ प्रकास करे ॥१४१॥
॥७५९॥

राग बिलावल

जब दधि-मथनी टेकि अरै।
आरि करत मटुकी गहि मोहन, वासुकि संभु डरै।
मंदर डरत, सिंधु पुनि काँपत, फिरि जनि मथन करै।
प्रलय होइ जनि गहौ मथानी, प्रभु मरजाद टरै।
सुर अरु असुर ठाढ़े सब चितवत, नैननि नीर ढरै।
सूरदास मन मुग्ध जसोदा, मुख दधि-बिंदु परै ॥१४२॥
॥७६०॥

राग बिलावल

जब दधि-रिपु हरि हाथ लियौ ।
खगपति-अरि डर, असुरनि-संका, बासर-पति आनंद कियौ ।
बिदुखि सिंधु सकुचत, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ ?
अति अनुराग संग कमला-तन, प्रफुलित अँग न समात हियौ ।
एकनि दुख, एकनि सुख उपजत, ऐसौ कौन बिनोद कियौ ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे गहत ही एक-एक तैं होत बियौ ॥१४३॥
॥७६१॥

राग धनाश्री

जब मोहन कर गही मथानी ।
परसत कर दधि, माट, नेति, चित उदधि, सैल, बासुकि भय मानी ।
कबहुँक तीनि पैग भुव मापत, कबहुँक देहरि उलँघि न जानी !
कबहुँक सुर-मुनि ध्यान न पावत, कबहुँ खिलावति नंद की रानी !
कबहुँक अमर-खीर नहिं भावत, कबहुँक दधि-माखन रुचि मानी ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, परति न महिमा सेष बखानी ॥१४४॥
॥७६२॥

राग बिलावल

नंद जू के बारे कान्ह, छाँड़ि दै मथनियाँ ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नँदरानियाँ ।
नैंकु रहौ माखन देउँ मेरे प्रान-धनियाँ ।
आरि जनि करौ, बलि बलि जाउँ हौं निधनियाँ ।
जाकौं ध्यान धरैं सबै, सुर-नर-मुनि जनियाँ ।
ताकौं नँदरानी मुख चूमै लिए कनियाँ ।
सेष सहस आनन गुन गावत नहिं बनियाँ ।
सूर स्याम देखि सबै भूलीं गोप-धनियाँ ॥१४५॥
॥७६३॥

राग बिलावल

जसुमति दधि मथन करति, बैठी वर धाम अजिर,
ठाढ़े हरि हँसत नान्हि दँतियनि छबि छाजै ।

चितवत चित लै चुराइ, सोभा बरनी न जाइ,
मनु मुनि-मन-हरन-काज मोहिनी दल साजै।
जननि कहति नाचौ तुम, दैहौं नवनीत मोहन,
रुनुक-झुनुक चलत पाइ, नूपुर-धुनि बाजै।
गावत गुन सूरदास, बढ़्यौ जस भुव-अकास,
नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै॥१४६॥
॥७६४॥

राग आसावरी

(एरी) आनँद सौं दधि मथति जसोदा, घमकि मथनियाँ घूमै।
निरतत लाल ललित मोहन, पग परत अटपटे भू मैं।
चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छबि मुक्ता ताहू मैं।
मनु मकरंद-बिंदु लै मधुकर, सुत-प्यावन-हित झूमै।
बोलत स्याम तोतरी बतियाँ, हँसि-हँसि दतियाँ दूमै।
सूरदास वारी छबि ऊपर, जननि कमल-मुख चूमै॥१४७॥
॥७६५॥

राग बिलावल

त्यौं-त्यौं मोहन नाचै ज्यौं-ज्यौं रई-घमरकौ होइ (री)।
तैसियै किंकिनि-धुनि पग-नूपुर, सहज मिले सुर दोइ (री)।
कंचन कौ कठुला मनि-मोतिनि, बिच बघनहँ रह्यौ पोइ (री)।
देखत बनै, कहत नहिं आवै, उपमा कौं नहि कोइ (री)।
निरखि-निरखि मुख नंद-सुवन कौ, सुर-नर आनँद होइ (री)।
सूर भवन कौ तिमिर नसायौ, बलि गइ जननि जसोइ (री)।
॥१४८॥७६६॥

राग बिलावल

प्रात समय दधि मथति जसोदा, अति सुख कमल-नयन-गुन गावति।
अतिहिं मधुर गति, कंठ सुघर अति, नंद-सुवन-चित हितहि करावति।
नील बसन तनु, सजल जलद मनु, दामिनि बिवि भुज-दंड चलावति।
चंद्र बदन लट लटकि छबीली, मनहुँ अमृत रस ब्यालि चुरावति।
गोरस मथत नाद इक उपजत, किंकिनि-धुनि सुनि स्रवन रमावति।
सूर स्याम अँचरा धरि ठाढ़े, काम कसौटी कसि दिखरावति॥१४९॥
॥७६७॥

राग बिलावल

(माधव) तनक सौ बदन, तनक से चरन-भुज,
तनक से कर पर तनक सौ माखन।
तनक सी बात कहै तनक तनकि रहै,
तनक सौ रीझि रहै तनक से साधन।
तनक कपोल, तनक सी दँतुली,
तनक हँसनि पर हरत सबनि मन।
तनकहि तनक जु सूर निकट आवै,
तनक कृपा कै दीजै तनकहि सरन ॥१५०॥७६८॥

राग ललित

छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-ज्योती, मोती मानौ कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलै, ठुमुकि-ठुमुकि डोलै,
झुनुक-झुनुक बोलै पैजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि हाटक रतन जटि,
मृदु कर-कमलनि पहुँची रुचिर बर।
पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी,
बालक दामिनि मानौ ओढ़े बारौ बारि-धर॥
उर बघ-नहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार,
बेनी लटकन मसि-बुंदा मुनि-मनहर।
अंजन रंजित नैन, चितवनि चित चोरै,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर॥
चुटकी बजावति नचावति जसोदा रानी,
बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि-किलकि हँसै, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं,
सूरदास मन बसैं तोतरे बचन बर ॥१५१॥७६९॥

राग बिलावल

(माधव) तनक चरन अरु तनक-तनक भुज, तनक बदन बोलै
तनक सौ बोल।
तनक कपोल, तनक सी दतियाँ तनक हँसनि पर लेत हैं मोल।

तनक करनि पर तनक माखन लिए, देखत तनक जाकैं सकल भुवन।
तनक सुनैं सुजस पावत परम गति, तनक कहत तासौं नँद के सुवन।
तनक रीझ पै देत सकल तन, तनक चितै चित बित के हरन।
तनकहिं तनक तनक करि आवै सूर, तनक कृपा कै दीजै तनक सरन।
॥१५२॥७७०॥

राग कान्हरौ

गोद खिलावति कान्ह सुनी, बड़भागिनि हो नँदरानी।
आनँद की निधि मुख जु लाल कौ, छबि नहिं जाति बखानी।
गुन अपार बिस्तार परत नहिं कहि निगमागम-बानी।
सूरदास प्रभु कौं लिए जसुमति, चितै-चितै मुसुकानी ॥१५३॥
॥७७१॥

राग गौरी

मेरे माई, स्याम मनोहर जीवन।
निरखि नैन भूले जु बदन-छबि, मधुर हँसनि पय-पीवन।
कुंतल कुटिल, मकर कुंडल, भ्रुव नैन-बिलोकनि बंक।
सुधा-सिंधु तैं निकसि नयौ ससि, राजत मनु मृग-अंक।
सोभित सुमन मयूर-चंद्रिका, नील नलिन तनु स्याम।
मनहुँ नछत्र-समेत इंद्र-धनु, सुभग मेघ अभिराम।
परम कुसल कोबिद लीला-नट, मुसुकनि मन हरि लेत।
कृपा-कटाच्छ कमल-कर फेरत, सूर जननि सुख देत ॥१५४॥
॥७७२॥

राग देवगंधार

कहन लागे मोहन मैया-मैया।
नंद महर सौं बाबा-बाबा, अरु हलधर सौं भैया।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि कहति जसोदा, लै-लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, चरननि की बलि जैया ॥१५५॥
॥७७३॥

राग बिलावल

माखन खात हँसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ।
निज प्रतिबिंब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ।

मन मैं माष करत, कछु बोलत, नंद बबा पै आयौ।
वा घट मैं काहू कैं लरिका, मेरौ माखन खायौ।
महर कंठ लावत, मुख पोंछत, चूमत तिहिं ठाँ आयौ।
हिरदै दिए लख्यौ वा सुत कौं, तातैं अधिक रिसायौ।
कह्यौ जाइ जसुमति सौं ततछन, मैं जननी सुत तेरौ।
आजु नंद सुत और कियौ, कछु कियौ न आदर मेरौ।
जसुमति बाल बिनोद जानि जिय, उहीं ठौर लै आई।
दोउ कर पकरि डुलावन लागी, घट मैं नहिं छबि पाई।
कुँवर हँस्यौ आनंद-प्रेम-बस, सुख पायौ नँदरानी।
सूरज प्रभु की अद्भुत लीला, जिन जानी तिन जानी ॥१५६॥
॥७७४॥

राग आसावरी

बेद-कमल-मुख परसति जननी, अंक लिए सुत रति करि स्याम।
परम सुभग जु अरुन कोमल-रुचि, आनंदित मनु पूरन-काम।
आलंबित जु पृष्ठ बल सुंदर, परसपरहिं चितवत हरि-राम।
झाँकि-उझकि बिहँसत दोऊ सुत, प्रेम-मगन भइ इकटक जाम।
देखि सरूप न रही कछू सुधि, तोरे तबहिं कंठ तैं दाम।
सूरदास प्रभु सिसु लीला-रस, आवहु देखि नंद सुख-धाम ॥१५७॥
॥७७५॥

राग गौरी

सोभा मेरे स्यामहिं पै सोहै।
बलि-बलि जाउँ छबीले मुख की, या उपमा कौं को है।
या छबि की पटतर दीबे कौं सुकबि कहा टकटोहै?
देखत अंग-अंग-प्रति बानक, कोटि मदन-मन छोहै।
ससि-गन गारि रच्यौ बिधि आनन, बाँके नैननि जोहै।
सूर स्याम सुंदरता निरखत, मुनि-जन कौ मन मोहै ॥१५८॥
॥७७६॥

राग सारंग

बाल गुपाल खेलौ मेरे तात।
बलि-बलि जाउँ मुखारबिंद की, अमिय-बचन बोलौ तुतरात।

दुहुँ कर माट गह्यौ नँदनंदन, छिटकि बूँद-दधि परत अघात।
मानौ गज-मुक्ता मरकत पर, सोभित सुभग साँवरे गात।
जननी पै माँगत जग-जीवन, दै माखन-रोटी उठि प्रात।
लोटत सूर स्याम पुहुमी पर, चारि पदारथ जाकैं हाथ ॥ १५९ ॥
॥७७७॥

राग बिलावल

पलना झूलौ मेरे लाल पियारे।
सुसकनि की वारी हौं बलि-बलि, हठ न करहु तुम नंद-दुलारे।
काजर हाथ भरौ जनि मोहन ह्वैहैं नैना अति रतनारे।
सिर कुलही, पग पहिरि पैजनी, तहाँ जाहु जहँ नंद बबा रे।
देखत यह बिनोद धरनीधर, मात पिता बलभद्र ददा रे।
सुर-नर-मुनि कौतूहल भूले, देखत सूर सबै जु कहा रे ॥ १६० ॥
॥७७८॥

राग बिलावल

क्रीड़त प्रात समय दोउ बीर।
माखन माँगत, बात न मानत, झँखत जसोदा-जननी-तीर।
जननी मधि, सनमुख संकर्षन खैंचत कान्ह खस्यो सिर-चीर।
मनहुँ सरस्वति संग उभय दुज, कल मराल अरु नील कँठीर।
सुंदर स्याम गही कबरी कर, मुक्ता माल गही बलबीर।
सूरज भष लैबे अप अपनौ, मानहुँ लेत निबेरे सीर ॥१६१॥
॥७७९॥

राग बिलावल

कनक-कटोरा प्रातहीं, दधि घृत सु मिठाई।
खेलत खात गिरावहीं, झगरत दोउ भाई।
अरस परस चुटिया गहैं, बरजति है माई।
महा ढीठ मानैं नहीं, कछु लहुर-बड़ाई।
हँसि कै बोली रोहिनी, जसुमति मुसुकाई।
जगन्नाथ धरनीधरहिं, सूरज बलि जाई ॥१६२॥
॥७८०॥

राग बिलावल

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुपक सुकोमल रोटी।
कत हौ आरि करत मेरे मोहन तुम आँगन मैं लोटी ?
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीं, छाँड़ौ यह मति खोटी।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपर्‌यौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ, हाथ लकुटिया छोटी ॥१६३॥
॥७८१॥

राग बिलावल

हरि कर राजत माखन-रोटी।
मनु वारिज ससि बैर जानि जिय, गह्यौ सुधा ससुधौटी।
मेली सजि मुख-अंबुज-भीतर, उपजी उपमा मोटी।
मनु बराह भूधर-सह-पुहुमी धरी दसन की कोटी।
नगन गात मुसुकात तात-ढिग, नृत्य करत गहि चोटी।
सूरज प्रभु की लहै जु जूठनि, लारनि ललित लपोटी ॥१६४॥
॥७८२॥

राग बिलावल

दोउ भैया मैया पै माँगत, दै री मैया, माखन रोटी।
सुनत भावती बात सुतनि की, झूठहिं धाम के काम अगोटी।
बल जू गह्यौ नासिका-मोती, कान्ह कुँवर गही दृढ़ करि चोटी।
मानौ हंस मोर भष लीन्हे, कवि उपमा बरनै कछु छोटी।
यह छबि देखि नंद-मन आनँद, अति सुख हँसत जात हैं लोटी।
सूरदास मन मुदित जसोदा, भाग बड़े, कर्मनि की मोटी ॥१६५॥
॥७८३॥

राग आसावरी

तनक दै री माइ, माखन तनक दै री माइ।
तनक कर पर तनक रोटी, माँगत चरन चलाइ।
कनक-भू पर रतन रेखा, नेति पकर्‌यौ धाइ।
कँप्यौ गिरि अरु सेष संक्यौ, उदधि चल्यौ अकुलाइ।

तनक मुख की तनक बतियाँ, बोलत हैं तुतराइ।
जसोमति के प्रान-जीवन, उर लियौ लपटाइ।
मेरे मन कौ तनक मोहन, लागु मोहिं बलाइ।
स्याम सुंदर नँद कुँवर पर, सूर बलि-बलि जाइ ॥१६६॥
॥७८४॥

राग बिलावल

नैंकु रहौ, माखन द्यौं तुमकौं।
ठाढ़ी मथति जननि दधि आतुर, लौनी नंद-सुवन कौं।
मैं बलि जाउँ स्याम-घन सुंदर, भूख लगी तुम्हैं भारी।
बात कहूँ की बूझति स्यामहिं, फेर करत महतारी।
कहत बात हरि कछू न समुझत, झूठहिं भरत हुँकारी।
सूरदास प्रभु कैं गुन तुरतहिं, बिसरि गई नँद-नारी ॥१६७॥
॥७८५॥

राग बिलावल

बातनि ही सुत लाइ लियौ।
तब लौं मथि दधि जननि जसोदा, माखन करि हरि-हाथ दियौ।
लै-लै अधर-परस करि जेंवत, देखत फूल्यौ मात-हियौ।
आपुहिं खात प्रसंसत आपुहिं, माखन-रोटी बहुत प्रियौ।
जो प्रभु सिव-सनकादिक-दुर्लभ, सुत-हित जसुमति नंद कियौ।
यह सुख निरखत सूरज प्रभु कौ, धन्य धन्य पल सुफल जियौ ॥१६८॥
॥७८६॥

बाल-छवि-वर्णन *राग बिलावल*

बरनौं बाल-बेष मुरारि।
थकित जित-तित अमरमुनि-गन, नंद-लाल निहारि।
केस सिर बिन बपन के चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु-रूप कियौ त्रिपुरारि।
तिलक ललित ललाट केसरि-बिंदु सोभाकारि।
रोष-अरुन तृतीय लोचन, रह्यौ जनु रिपु जारि।
कंठ कठुला नील मनि, अंभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहिं भाइ भए मदनारि।

कुटिल हरि-नख हिऐं हरि के हरषि निरखति नारि ।
ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि ।
सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहिं अनुहारि ।
मनहुँ अंग-विभूति-राजित संभु सो मधुहारि ।
त्रिदस-पति-पति असन कौं, अति जननि सौं करे आरि ।
सूरदास विरंचि जाकौं जपत निज मुख चारि ॥ १६९ ॥
॥७८७॥

राग बिलावल

सखि री, नंद-नंदन देखु ।
धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु ।
नील पाट पिरोइ मनि-गन, फनिग धोखैं जाइ ।
खुनखुना कर, हँसत हरि, हर नचत डमरु बजाइ ।
जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौं बनाइ ।
मुंड-माला मनौ हर-गर, ऐसी सोभा पाइ ।
स्वाति-सुत-माला बिराजत स्याम तन इहिं भाइ ।
मनौ गंगा गौरि-डर हर लई कंठ लगाइ ।
केहरी-नख निरखि हिरदै, रहीं नारि बिचारि ।
बाल-ससि मनु भाल तैं लै, उर धर्‌यौ त्रिपुरारि ।
देखि अंग अनंग झझक्यौ, नंद-सुत हर जान ।
सूर के हिरदै बसौ नित, स्याम-सिव कौ ध्यान ॥१७०॥
॥७८८॥

राग सारंग

हरि-हर संकर, नमो नमो ।
अहिसायी, अहि-अंग-बिभूषन; अमित-दान, बल-बिष-हारी ।
नीलकंठ, बर नील कलेवर; प्रेम-परस्पर, कृतहारी ।
चंद्र-चूड़, सिखि-चंद्र-सरोरुह; जमुना-प्रिय, गंगाधारी ।
सुरभि-रेनु-तन, भस्म बिभूषित; वृष-बाहन, बन-बृष-चारी ।
अज-अनीह-अविरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी ।
सूरदास सम, रूप-नाम-गुन अंतर अनुचर-अनुसारी ॥१७१॥
॥७८९॥

राग बिलावल

देखो माई दधि-सुत मैं दधि जात।
एक अचंभौ देखि सखी री, रिपु मैं रिपु जु समात।
दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वै पात।
यह सोभा देखत पसु-पालक, फूले अँग न समात।
बारंबार बिलोकि सोचि चित, नंद महर मुसुक्यात।
यहै ध्यान मन आनि स्याम कौ, सूरदास बलि जात॥१७२॥
॥७६०॥

राग धनाश्री

दधि-सुत जामे नंद-दुवार।
निरखि नैन अरुभ्यौ मनमोहन, रटत देहु कर बारंबार।
दीरघ मोल कह्यौ ब्यौपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार।
कर ऊपर लै राखि रहे हरि, देत न मुक्ता परम सुढार।
गोकुलनाथ बए जसुमति के आँगन भीतर, भवन मँझार।
साखा-पत्र भए जल मेलत, फूलत-फरत न लागी बार।
जानत नहीं मरम सुर-नर-मुनि ब्रह्मादिक नहिं परत बिचार।
सूरदास प्रभु की यह लीला, ब्रज-बनिता पहिरे गुहि हार॥१७३॥
॥७६१॥

राग धनाश्री

कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसैं देखि और ब्रज बालक, त्यौं बल-बैस चढ़ै।
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लयौ लढ़ै।
अँचवत पय तातौ जब लाग्यौ, रोवत जीभि डढ़ै।
पुनि पीवत हीं कच टकटोरत, झूठहि जननि रढ़ै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै॥१७४॥
॥७६२॥

राग रामकली

मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी!

तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं, ह्वैहै लाँबी-मोटी।
काढ़त-गुहत-न्हवावत जैहै नागिनि सी भुइँ लोटी।
काँचौ दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।
सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी ॥१७५॥
॥७६३॥

राग सारंग

मैया, मोहिँ बड़ौ करि लै री।
दूध-दही-घृत-माखन-मेवा, जो माँगौं सो दै री।
कछू हौंस राखै जनि मेरी, जोइ-जोइ मोहिँ रुचै री।
होउँ बेगि मैं सबल सबनि मैं, सदा रहौं निरभै री।
रंगभूमि मैं कंस पछारौं, घीसि बहाऊँ बैरी।
सूरदास स्वामी की लीला, मथुरा राखौं जै री ॥१७६॥
॥७६४॥

राग रामकली

हरि अपनैं आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौं नाचत, मनहीं मनहिँ रिझावत।
बाहँ उठाइ काजरी-धौरी गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैं आवत।
माखन तनक आपनैं कर लै, तनक बदन मैं नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ मैं, लौनी लिए खवावत।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल-चरित, नित नितही देखत भावत ॥१७७॥
॥७६५॥

राग बिलावल

आजु सखी, हौं प्रात समय दधि मथन उठी अकुलाइ।
भरि भाजन मनि-खंभ निकट धरि, नेति लई कर जाइ।
सुनत सब्द तिहिँ छिन समीप मम हरि हँसि आए धाइ।
मोह्यौ बाल-बिनोद-मोद अति, नैननि नृत्य दिखाइ।
चितवनि चलनि हरयौ चित चंचल, चितै रही चित लाइ।
पुलकत मन प्रतिबिंब देखि कै, सबही अंग सुहाइ।

माखन पिंड बिभागि दुहूँ कर, मेलत मुख मुसुकाइ।
सूरदास-प्रभु-सिसुता कौ सुख, सकै न हृदय समाइ ॥१७८॥
॥७९६॥

राग बिलावल

बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु।
अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया, नंदहिं नाचि दिखावहु।
तारी देहु आपने कर की, परम प्रीति उपजावहु।
आन जंतु-धुनि सुनि कत डरपत, मो भुज कंठ लगावहु।
जनि संका जिय करौ लाल मेरे, काहे कौं भरमावहु।
बाहँ उचाइ कालिह की नाईं, धौरी धेनु बुलावहु।
नाचहु नैंकु, जाउँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु।
रतन-जटित किंकिनि पग-नूपुर, अपनैं रंग बजावहु।
कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु।
सूर स्याम मेरे उर तैं कहुँ टारे नैंकु न भावहु ॥१७९॥
॥७९७॥

कनछेदन *राग धनाश्री*

कान्ह कुँवर कौ कनछेदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की।
बिधि बिहँसत,हरि हँसत हेरि हरि, जसुमति की धुकधुकी सु उर की।
रोचन भरि लै देत सींक सौं, स्रवन-निकट अतिही चातुर की।
कंचन के द्वै दुर मँगाइ लिए, कहौं कहा छेदनि आतुर की।
लोचन भरि-भरि दोऊ माता, कनछेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी, दियौ तुरत नौआ कौं घुरकी।
हँसत नंद, गोपी सब बिहँसीं, झमकि चलीं सब भीतर दुरकी।
सूरदास नँद करत बधाई, अति आनंद बाल ब्रज-पुर की ॥१८०॥
॥७९८॥

राग धनाश्री

सुर-बनिता सब कहति परस्पर, ब्रजबासी-दासी-समसरि को?
गोपी मगन भईं सब गावति, हलरावति सुत लेति महरि कौ।
जो सुख मुनि जन ध्यान न पावत, सो सुख करत नंद सब खरिकौ।

मनि-मुकता-गन करत निछावरि, तुरतहिं देत विलंब न घरि कौ।
सूर नंद ब्रज-जन पहिरावत, उमँगि चल्यौ सुखसिंधु लहरि कौ॥१८१॥
॥७६६॥

राग धनाश्री

पाहुनी, करि दै तनक मह्यौ।
हौं लागी गृह-काज-रसोई, जसुमति विनय कह्यौ।
आरि करत मनमोहन मेरो, अंचल आनि गह्यौ।
ब्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रह्यौ।
माखन जात जानि नँदरानी, सखी सम्हारि कह्यौ।
सूर स्याम-मुख निरखि मगन भई, दुहुनि सँकोच सह्यौ॥१८२॥
॥८००॥

राग सारंग

कान्हर, वलि आरि न कीजै। जोइ-जोइ भावै सोइ लीजै।
यह कहति जसोदा रानी। को खिझवै सारँगपानी।
जो मेरैं लाल खिझावै। सो अपनौ कीनौ पावै।
तिहिं देहौं देस-निकारौ। ताको ब्रज नाहिंन गारौ।
अति रिसही तैं तनु छीजै। सुठि कोमल अंग पसीजै।
बरजत-बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहिं अकुलाने।
कर धरत धरनि पर लोटै। माता कौ चीर निखोटै।
अँग-आभूषन सब तोरै। लवनी-दधि-भाजन फोरै।
देखत सुतस जल तरसै। जसुदा के पाइनि परसै।
तब महरि बाहँ गहि आनै। लै तेल उबटनौ सानै।
तब गिरत-परत उठि भागै। कहुँ नैंकु निकट नहिं लागै।
तब नंद-घरनि चुचकारै। आवहु वलि जाउँ तुम्हारै।
नहिं आवहु तौ भलैं लाला। समुझौगे मदन गोपाला।
तुम मेरी रिस नहिं जानौ। मोकौं नहिं तुम पहिचानौ।
मैं आजु तुम्हैं गहि बाँधौं। हा-हा करि-करि अनुराधौं।
बाबा नँद उत तैं आए। कौनैं हरि अतिहिं खिझाए?
मुख चूमि हरषि लै आए। लै जसुमति पै पहुँचाए।
मोहन कत खिझत अयानी। लिए लाइ हिऐं नँदरानी।

क्यौंहूँ जतन-जतन करि पाए। तन उबटन तेल लगाए।
तातौ जल आनि समोयौ। अन्हवाइ दियौ, मुख धोयौ।
अति सरस बसन तन पोंछे। लै कर मुख-कमल अँगोछे।
अंजन दोउ दृग भरि दीन्हौ। भ्रुव चारु चखौड़ा कीन्हौ।
आभूपन अँग जे बनाए। लालहिं क्रम-क्रम पहिराए।
ऐसी रिस करौ न कान्हा। अब खाहु कुँवर कछु नान्हा।
तुतरात कह्यौ का है री। जो मोहिं भावै सो दै री।
जोइ-जोइ भावै मेरे प्यारे। सोइ-सोइ तोहिं देहुँ लला रे।
है कस्यौ सिरावन सीरा। कछु हठ न करहु बलबीरा।
सद दधि-माखन घ्यौं आनी। ता पर मधु मिसिरी सानी।
खोवा - मय मधुर मिठाई। सो देखत अति रुचि पाई।
कछु बलदाऊ कौं दीजै। अरु, दूध अधावट पीजै।
सब हेरि धरी है साढ़ी। लई ऊपर - ऊपर काढ़ी।
अति प्यौसर सरस बनाई। तिहिं सोंठ-मिरिच रुचि नाई।
दधि दूध बरा दहिरौरी। सो खात अमृत पक्कौरी।
सुठि सरस जलेबी बोरी। जिहिं जेंवत रुचि नहिं थोरी।
अरु खुरमा सरस सँवारे। ते परसि धरे हैं न्यारे।
सक्करपारे सद - पागे। ते जेंवत परम सभागे।
सेव लाड़ू रुचिर सँवारे। जे मुख मेलत सुकुमारे।
सुठि मोती लाड़ू मीठे। वै खात न कबहुँ उबीठे।
खिर - लाडु लवंगनि नाए। ते करि बहु जतन बनाए।
गूझा बहु पूरन पूरे। भरि - भरि कपूर रस चूरे।
अरु तैसियै गाल मसूरी। जो खातहिं मुख - दुख दूरी।
अरु हेसमि सरस सँवारी। अति स्वाद परम सुखकारी।
बावर बरने नहिं जाई। जिहिं देखत अति सुख पाई।
मृदु मालपुआ मधु साने। जे तुरत तपत करि आने।
सुंदर अति सरस अँदरसे। ते घृत-दधि-मधु मिलि सरसे।
घेवर अति घिरत-चभोरे। लै खाँड़ सरस रस बोरे।
मधुरी अति सरस खजूरी। सद परसि धरी घृत - पूरी।
जब पूरी सुनि हरि हरष्यौ। तब भोजन पर मन करष्यौ।
सुनि तुरत जसोदा ल्याई। अति रुचि समेत हरि खाई।
बलदाऊ टेरि बुलाए। यह सुनि हलधर तहँ आए।

षटरस परकार मँगाए। जे बरनि जसोदा गाए।
मनमोहन हलधर बीरा। जेंवत रुचि राख्यौ सीरा।
सीतल जल लियौ मँगाई। भरि झारी जसुमति ल्याई।
अँचवत तब नैन जुड़ाने। दोउ हरषि-हरषि मुसुकाने।
हँसि जननी चुरू भराए। तब कछु-कछु मुख पखराए।
तब बीरी तनक मुख नायौ। अति लाल अधर ह्वै आयौ।
छबि सूरदास बलिहारी। माँगत कछु जूठनि थारी।
हरि तनक-तनक कछु खायौ। जूठनि सब भक्तनि पायौ ॥१८३॥
॥८०१॥

राग नट नारायन

बिहरत विविध बालक-संग।
डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि-धूसर अंग।
चलत मग, पग बजति पैजनि, परसपर किलकात।
मनौ मधुर मराल - छौना बोलि बैन सिहात।
तनक कटि पर कनक-करधनि, छीन छबि चमकाति।
मनौ कनक कसौटिया पर, लीक सी लपटाति।
दुर दमंकत सुभग स्रवननि, जलज जुग डहडहत।
मनहुँ बासव बलि पठाए, जीव-कवि कछु कहत।
ललित लट छिटकाति मुख पर, देति सोभा दून।
मनु मयंकहिं अंक लीन्हौ सिंहिका कैं सून।
कबहुँ द्वारैं दौरि आवत, कबहुँ नंद-निकेत।
सूर प्रभु कर गहति ग्वालिनि चारु - चुंबन - हेत ॥१८४॥
॥८०२॥

राग बिलावल

मोहन, आउ तुम्हैं अन्हवाऊँ।
जमुना तैं जल भरि लै आऊँ, ततिहर तुरत चढ़ाऊँ।
केसरि कौ उबटनौ बनाऊँ, रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ।
सूर कहै कर नैंकु जसोदा, कैसैंहु पकरि न पाऊँ ॥१८५॥
॥८०३॥

राग आसावरी

जसुमति जबहिं कह्यौ अन्हवावन, रोइ गए हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगैं धरि, लालहिं चोटत-पोटत री।
मैं बलि जाउँ न्हाउ जनि मोहन, कत रोवत बिनु काजैं री।
पाछैं धरि राख्यौ छपाइ कै उबटन-तेल-समाजैं री।
महरि बहुत बिनती करि राखति, मानत नहीं कन्हैया री।
सूर स्याम अतिहीं बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पैया री ॥१८६॥
॥८०४॥

राग सूहौ बिलावल

देखि माई हरि जू की लोटनि।
यह छबि निरखि रही नँदरानी, अँसुवा ढरि-ढरि परत करोटनि।
परसत आनन मनु रवि-कुंडल, अंबुज स्रवत सीप-सुत जोटनि।
चंचल अधर, चरन-कर चंचल, मंचल अंचल गहत बकोटनि।
लेति छुड़ाइ महरि कर सौं कर, दूरि भई देखति दूरि ओटनि।
सूर निरखि मुसुकाइ जसोदा, मधुर-मधुर बोलति मुख होटनि ॥१८७॥
॥८०५॥

चंद्र-प्रस्ताव *राग कान्हरौ*

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं, हरिहिं लिए चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत।
चितै रहे तब आपुन ससि-तन, अपने कर लै-लै जु बतावत।
मीठौ लगत किधौं यह खाटौ, देखत अति सुंदर मन भावत।
मनहीं मन हरि बुद्धि करत हैं माता सौं कहि ताहि मँगावत।
लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि देहि रिस करि बिरुझावत।
जसुमति कहति कहा मैं कीनौ, रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर स्याम कौं जसुमति बोधति, गगन चिरैयाँ उड़त दिखावत ॥१८८॥
॥८०६॥

राग कान्हरौ

किहिं बिधि करि कान्हहिं समुझैहौं?
मैं ही भूलि चंद दिखरायौ, ताहि कहत मैं खैहौं!

अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहि तात!
यहै देत लवनी नित मोकौं, छिन-छिन साँझ-सवारे।
बार-बार तुम माखन माँगत, देउँ कहाँ तैं प्यारे?
देखत रहौ खिलौना चंदा, आरि न करौ कन्हाई।
सूर स्याम लिए हँसति जसोदा, नंदहिं कहति बुझाई ॥१८६॥
॥८०७॥

राग धनाश्री

(आछे मेरे) लाल हो, ऐसी आरि न कीजै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, जोइ भावै सोइ लीजै।
सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठौ पय पीजै।
पालागौं हठ अधिक करौ जनि, अति रिस तैं तन छीजै।
आन बतावति, आन दिखावति, बालक तौ न पतीजै।
खसि-खसि परत कान्ह कनियाँ तैं, सुसुकि सुसुकि मन खीजै।
जल-पुट आनि धर्‌यौ आँगन मैं, मोहन नैंकु तौ लीजै।
सूर स्याम हठि चंदहिं माँगै, सु तौ कहाँ तैं दीजै ॥१९०॥
॥८०८॥

राग कान्हरौ

बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तोहिं लाल बुलावै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, आपुन खैहै, तोहिं खवावै।
हाथहिं पर तोहिं लीन्हे खेलै, नैंकु नहीं धरनी बैठावै।
जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै।
जल-पुट आनि धरनि पर राख्यौ, गहि आन्यौ वह चंद दिखावै।
सूरदास प्रभु हँसि मुसुक्याने, बार-बार दोऊ कर नावैं ॥१९१॥
॥८०९॥

राग रामकली

(मेरौ माई) ऐसौ हठी बाल गोविंदा।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन कौं माँगै चंदा।
बासन मैं जल धर्‌यौ जसोदा, हरि कौं आनि दिखावै।
रुदन करत, ढूँढ़त नहिं पावत, चंद धरनि क्यौं आवै!

मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, माँगि लेहु मेरे छौना।
चकई-डोरि पाट के लटकन, लेहु मेरे लाल खिलौना।
संत-उबारन, असुर-सँहारन, दूरि करन दुख-दंदा।
सूरदास बलि गई जसोदा, उपज्यौ कंस-निकंदा ॥१६२॥
॥८१०॥

राग केदारौ

मैया, मैं तौ चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।
ह्वैहौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं।
आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहिं न जनैहौं।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौं।
तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं॥ १६३ ॥
॥८११॥

राग रामकली

मैया री मैं चंद लहौंगौ।
कहा करौं जलपुट भीतर कौ, बाहर ब्यौंकि गहौंगौ।
यह तौ झलमलात झकझोरत, कैसैं कै जु लहौंगौ।
वह तौ निपट निकटहीं देखत, बरज्यौ हौं न रहौंगौ।
तुम्हरौ प्रेम प्रगट मैं जान्यौ, बौराएँ न बहौंगौ।
सूर स्याम कहै कर गहि ल्याऊँ, ससि-तन-दाप दहौंगौ ॥१६४॥
॥८१२॥

राग धनाश्री

लै लै मोहन, चंदा लै।
कमल नैन बलि जाउँ सुचित ह्वै, नीचैं नैंकु चितै।
जा कारन तैं सुनि सुत सुंदर, कीन्ही इती अरै।
सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माहिं परै।
नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै।
लै अपने कर काढ़ि चद कौं, जो भावै सो कै।

गगन-मँडल तैं गहि आन्यौ है, पंछी एक पठै।
सूरदास प्रभु इती बात कौं, कत मेरौ लाल हठै ॥१६५॥
॥८१३॥

राग बिहागरौ

तुव मुख देखि डरत ससि भारी।
कर करि कै हरि हेर्‌यौ चाहत, भाजि पताल गयौ अपहारी।
वह ससि तौ कैसैंहु नहिं आवत, यह ऐसी कछु बुद्धि बिचारी।
बदन देखि बिधु बुधि सकात मन, नैन कंज कुंडल उजियारी।
सुनौ स्याम, तुमकौं ससि डरपत, यहै कहत मैं सरन तुम्हारी।
सूर स्याम बिरुझाने सोए, लिए लगाइ छतिया महतारी ॥१६६॥
॥८१४॥

राग केदारौ

जसुमति लै पलिका पौढ़ावति।
मेरौ आजु अतिहिं बिरुझानौ, यह कहि-कहि मधुरैं सुर गावति।
पौढ़ि गई हरुएँ करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँभुआने।
कर सौं ठौंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने।
पौढ़ौ लाल, कथा इक कहिहौं, अति मीठी, स्रवननि कौं प्यारी।
यह सुनि सूर स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी ॥१६७॥
॥८१५॥

राग केदारौ

सुनि सुत, एक कथा कहौं प्यारी।
कमल-नैन मन आनँद उपज्यौ, चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकैं प्रगट भए सुत चारी।
तिनमैं मुख्य राम जो कहियत, जनक-सुता ताकी बर नारी।
तात-बचन लगि राज तज्यौ तिन, अनुज,घरनि सँग गए बनचारी।
धावत कनक-मृगा के पाछैं, राजिव-लोचन परम उदारी।
रावन हरन सिया कौ कीन्हौ, सुनि नँद-नंदन नींद निवारी।
चाप-चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम भारी।
॥१६८॥८१६॥

राग बिहागरौ

नंद-नँदन, इक सुनौ कहानी।
पहिली कथा पुरातन सुनी हरि जननि-पास मुख बानी।
रामचंद्र दसरथ-सुत, ताकी जनक-सुता गृह-रानी।
कहैं तात के, पंचबटी बन, छाँड़ि चले रजधानी।
तहाँ बसत सीता हरि लीन्ही, रजनीचर अभिमानी।
लछिमन, धनुष देहु, कहि उठे हरि, जसुमति सर डरानी ॥१९९॥
॥८१७॥

राग केदारौ

जसुमति मन-मन यहै बिचारति।
झझकि उठ्यौ सोवत हरि अबहीं, कछु पढ़ि-पढ़ि तन-दोष निवारति।
खेलत मैं कोउ दीठि लगाई, लै-लै राई-लौन उतारति।
साँझहिं तैं अतिहीं बिरुझानौ, चंदहिं देखि करी अति आरति।
बार-बार कुलदेव मनावति, दोउ कर जोरि सिरहिं लै धारति।
सूरदास जसुमति नँदरानी, निरखि बदन, त्रयताप बिसारति।
॥२००॥८१८॥

राग ललित

नाहिंनै जगाइ सकति, सुनि सुबात सजनी।
अपनैं जान अजहुँ कान्ह मानत हैं रजनी।
जब-जब हौं निकट जाति, रहति लागि लोभा।
तन की गति बिसरि जाति, निरखत मुख-सोभा।
बचननि कौं बहुत करति, सोचति जिय ठाढ़ी।
नैननि न बिचारि परत देखत रुचि बाढ़ी।
इहिं बिधि बदनारबिंद, जसुमति जिय भावै।
सूरदास सुख की रासि, कापै कहि आवै ॥२०१॥८१९॥

राग बिलावल

जागिए, ब्रजराज कुँवर, कमल-कुसुम फूले।
कुमुद-बृंद सँकुचित भए, भृंग लता भूले।
तमचुर खग-रोर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गो खरिकनि मैं, बछरा हित धाई।

बिधु मलीन रवि प्रकास गावत नर नारी।
सूर स्याम प्रात उठौ, अंबुज - कर - धारी ॥२०२॥
॥८२०॥

राग रामकली

प्रात समय उठि, सोवत सुत कौ बदन उघार्‌यौ नंद।
रहि न सके अतिसय अकुलाने, बिरह निसा कैं द्वंद।
स्वच्छ सेज मैं तैं मुख निकसत, गयौ तिमिर मिटि मंद।
मनु पय-निधि सुर मथत फेन फटि, दयौ दिखाई चंद।
धाए चतुर चकोर सूर सुनि, सब सखि-सखा सुछंद।
रही न सुधि सरीर अरु मन की, पीवत किरनि अमंद ॥२०३॥
॥८२१॥

राग बिलावल

भोर भएँ निरखत हरि कौ मुख, प्रमुदित जसुमति, हरषित नंद।
दिनकर-किरन कमल ज्यौं बिकसत, निरखत उर उपजत आनंद।
बदन उघारि जगावति जननी, जागहु बलि गई आनँद-कंद।
मनहुँ मथत सुर सिंधु, फेन फटि, दयौ दिखाई पूरन चंद।
जाकौं ईस - सेष - ब्रह्मादिक, गावत नेति-नेति स्तुति छंद।
सोइ गोपाल ब्रज मैं सुनि सूरज, प्रगटे पूरन परमानंद ॥२०४॥
॥८२२॥

राग ललित

जागिए गोपाल लाल, आनँद-निधि नंद-बाल,
जसुमति कहै बार-बार, भोर भयौ प्यारे।
नैन कमल-दल बिसाल, प्रीति-बापिका-मराल,
मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे।
उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससाँक किरन-हीन,
दीपक सु मलीन, छीन-दुति समूह तारे।
मनौ ज्ञान-घन-प्रकास, बीते सब भव-बिलास,
आस-त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे।
बोलत खग-निकर मुखर, मधुर होइ प्रतीति सुनौ,
परम प्रान - जीवन - धन मेरे तुम बारे।

मनौ बेद बंदीजन सूत - बृंद मागध - गन,
बिरद बदत जै जै जै जैति कैटभारे।
बिकसत कमलावली, चले प्रपुंज - चंचरीक,
गुंजत कलकोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
मानौ बैराग पाइ, सकल सोक-गृह बिहाइ,
प्रेम-मत्त फिरत भृत्य, गुनत गुन तिहारे।
सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल - जाल, दुख - कदंब टारे।
त्यागे भ्रम-फंद-द्वंद निरखि कै मुखारबिंद,
सूरदास अति अनंद, मेटे मद भारे ॥२०५॥
॥८२३॥

राग ललित

प्रात भयौ, जागौ गोपाल।
नवल सुंदरी आईं, बोलत तुमहिं सबै ब्रजबाल।
प्रगट्यौ भानु, मंद भयौ उड़पति फूले तरुन तमाल।
दरसन कौं ठाढ़ी ब्रजबनिता, गूँथि कुसुम बनमाल।
मुखहिं धोइ सुंदर बलिहारी, करहु कलेऊ लाल।
सूरदास प्रभु आनँद के निधि, अंबुज-नैन बिसाल ॥२०६॥
॥८२४॥

राग ललित

जागौ, जागौ हो गोपाल।
नाहिंन इतौ सोइयत सुनि सुत, प्रात परम सुचि काल।
फिरि-फिरि जात निरखि मुख छिन-छिन, सब गोपनि के बाल।
बिन बिकसे कल कमल - कोष तैं मनु मधुपनि की माल।
जो तुम मोहिं न पत्याहु सूर प्रभु, सुंदर स्याम तमाल।
तौ तुमहीं देखौ आपुन तजि निद्रा नैन बिसाल ॥२०७॥
॥८२५॥

राग भैरव

उठौ नँदलाल भयौ भिनुसार, जगावति नंद की रानी।
झारी कैं जल बदन पखारौ, सुख करि सारँगपानी।

माखन-रोटी अरु मधु-मेवा, जो भावै लेउ आनी।
सूर स्याम मुख निरखि जसोदा, मनहीं मन जु सिहानी ॥२०८॥
॥८२६॥

राग बिलावल

तुम जागौ मेरे लाड़िले, गोकुल-सुखदाई।
कहति जननि आनंद सौं, उठौ कुँवर कन्हाई।
तुमकौं माखन-दूध-दधि, मिस्री हौं ल्याई।
उठि कै भोजन कीजिऐ, पकवान मिठाई।
सखा द्वार परभात सौं, सब टेर लगाई।
बन कौं चलिऐ साँवरे, दयौ तरनि दिखाई।
सुनत बचन अति मोद सौं, जागे जदुराई।
भोजन करि बन कौं चले, सूरज बलि जाई ॥२०९॥८२७॥

राग बिलावल

नंद कौ लाल उठत जब सोइ।
निरखि मुखारबिंद की सोभा, कहि, काकैं मन धीरज होइ ?
मुनि-मन हरत, जुवति-जन केतिक, रतिपति-मान जात सब खोइ।
ईषद हास दंत-दुति बिगसति, मानिक-मोती धरे जनु पोइ।
नागर नवल कुँवर बर सुंदर, मारग जात लेत मन गोइ।
सूरदास प्रभु मोहनि-मूरति, ब्रजबासी मोहे सब लोइ ॥२१०॥
॥८२८॥

कलेवा-वर्णन

राग भैरव

उठिऐ स्याम, कलेऊ कीजै। मनमोहन-मुख निरखत जीजै।
खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख-रस, सीरा।
श्रीफल मधुर, चिरौंजी आनी। सफरी चिउरा, अरुन खुबानी।
घेवर-फेनी और सुहारी। खोवा सहित खाहु, बलिहारी।
रचि पिराक लाडू दधि आनौं। तुमकौं भावत पुरी सँधानौं।
तब तमोल रचि तुमहिं खवावौं। सूरदास पनवारौ पावौं ॥२११॥
॥८२९॥

राग बिलावल

कमल-नैन हरि करौ कलेवा।
माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा।

खारिक, दाख, चिरौंजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम।
सफरी, सेब, छुहारे, पिस्ता, जे तरबूजा नाम।
अरु मेवा बहु भाँति-भाँति हैं षटरस के मिष्टान्न।
सूरदास प्रभु करत कलेवा, रीझे स्याम सुजान ॥२१२॥
॥८३०॥

क्रीड़न *राग रामकली*

खेलत श्याम ग्वालनि संग।
सुबल हलधर अरु श्रीदामा, करत नाना रंग।
हाथ तारी देत भाजत, सबै करि करि होड़।
बरजै हलधर, स्याम, तुम जनि चोट लागै गोड़।
तब कह्यो मैं दौरि जानत, बहुत बल मो गात।
मेरी जोरी है श्रीदामा, हाथ मारे जात।
उठे बोलि तबै श्रीदामा, चाहु तारी मारि।
आगैं हरि पाछैं श्रीदामा, धर्‍यौ स्याम हँकारि।
जानिकै मैं रह्यो ठाढ़ो, छुवत कहा जु मोहिं।
सूर हरि खीझत सखा सौं, मनहिं कीन्हौ कोह ॥२१३॥
॥८३१॥

राग गौरी

सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहिं आपु बलकि भए ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने?
बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।
हारि-जीत कछु नैंकु न समुझत, लरिकनि लावत पाप।
आपुन हारि सखनि सौं झगरत यह कहि दियौ पठाइ।
सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाइ ॥ २१४ ॥
॥८३२॥

राग गौरी

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ?
कहा करौं इहि रिस के मारैं खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।

गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात।
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥२१५॥
॥८३३॥

राग नट

मोहन, मानि मनायौ मेरौ।
हौं बलिहारी नंद-नँदन की, नैंकु इतै हँसि हेरौ।
करौ कहि-कहि तोहिं खिझावत, बरजत खरौ अनेरौ।
इंद्रनील मनि तैं तन सुंदर, कहा कहै बल चेरौ।
न्यारौ जूथ हाँकि लै अपनौ न्यारी गाइ निबेरौ।
मेरौ सुत सरदार सबनि कौ, बहुते कान्ह बड़ेरौ।
बन मैं जाइ करौ कौतूहल, यह अपनौ है खेरौ।
सूरदास द्वारैं गावत है, बिमल-बिमल जस तेरौ ॥२१६॥
॥८३४॥

राग गौरी

खेलन अब मेरी जाइ बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकनि सँग तबहिं खिझत बल भैया।
मोसौं कहत तात बसुदेव कौ, देवकि तेरी मैया।
मोल लियौ कछु दै करि तिनकौं, करि-करि जतन बढ़ैया।
अब बाबा कहि कहत नंद सौं, जसुमति सौं कहै मैया।
ऐसैं कहि सब मोहिं खिझावत, तब उठि चल्यौ खिसैया।
पाछैं नंद सुनत हे ठाढ़े, हँसत हँसत उर लैया।
सूर नंद बलरामहिं धिरयौ, तब मन हरष कन्हैया ॥२१७॥
॥८३५॥

राग रामकली

खेलन चलौ बाल गोबिंद।
सखा प्रिय द्वारैं बुलावत, घोष - बालक - बृंद।

तृषित हैं सब दरस-कारन, चतुर चातक दास।
बरषि छबि नव बारिधर तन, हरहु लोचन-प्यास।
विनय बचननि सुनि कृपानिधि, चले मनहर चाल।
ललित लघु लघु चरन-कर, उर-बाहु-नैन-बिसाल।
अजिर पद-प्रतिबिंब राजत, चलत उपमा-पुंज।
प्रति चरन मनु हेम बसुधा, देति आसन कंज।
सूर प्रभु की निरखि सोभा रहे सुर अवलोकि।
सरद चंद चकोर मानौ, रहे थकित बिलोकि ॥२१८॥
॥८३६॥

राग धनाश्री

खेलन कौं हरि दूरि गयौ री।
संग-संग धावत डोलत हैं, कह धौं बहुत अबेर भयौ री।
पलक ओट भावत नहिं मोकौं, कहा कहौं तोहिं बात!
नंदहिं तात-तात कहि बोलत, मोहिं कहत है मात।
इतनी कहत स्याम-घन आए, ग्वाल सखा सब चीन्हे।
दौरि जाइ उर लाइ सूर प्रभु, हरषि जसोदा लीन्हे ॥२१९॥
॥८३७॥

राग बिहागरौ

खेलन दूरि जात कत कान्हा ?
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा।
इक लरिका अबहीं भजि आयौ, रोवत देख्यौ ताहि।
कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि।
चलौ न, बेगि सवारैं जैयै, भाजि आपनैं धाम।
सूर स्याम यह बात सुनतही बोलि लिए बलराम ॥२२०॥
॥८३८॥

राग जैतश्री

दूरि खेलन जनि जाहु लला मेरे, बन मैं आए हाऊ!
तब हँसि बोले कान्हर, मैया, कौन पठाए हाऊ?
अब डरपत सुनि-सुनि ये बातैं, कहत हँसत बलदाऊ।
सप्त रसातल सेषासन रहे, तब की सुरति भुलाऊ।

चारि बेद लै गयौ संखासुर, जल मैं रह्यौ लुकाऊ।
मीन रूप धरि कै जब मार्‍यौ, तबहिं रहे कहँ हाऊ ?
मथि समुद्र सुर असुरनि कैं हित मंदर जलधि धसाऊ।
कमठ रूप धरि धर्‍यौ पीठि पर, तहाँ न देखे हाऊ !
जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ।
धरि बाराह रूप सो मार्‍यौ लै छिति दंत-अगाऊ।
बिकट रूप अवतार धर्‍यौ जब, सो प्रह्लाद बचाऊ।
हिरनकसिप बपु नखनि बिदार्‍यौ, तहाँ न देखे हाऊ !
बामन रूप धर्‍यौ बलि छलि कै, तीनि परग बसुधाऊ।
स्रम जल ब्रह्म-कमंडल राख्यौ, दरसि चरन परसाऊ।
मार्‍यौ मुनि बिनहीं अपराधहिं, कामधेनु लै आऊ।
इकइस बार निछत्र करी छिति, तहाँ न देखे हाऊ !
राम-रूप रावन जब मार्‍यौ, दस-सिर बीस-भुजाऊ।
लंक जराइ छार जब कीनी, तहाँ न देखे हाऊ।
भक्त-हेत अवतार धरे, सब असुरनि मारि बहाऊ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, निगम नेति नित गाऊ ॥२२१॥
॥८३९॥

राग रामकली

जसुमति कान्हहिं यहै सिखावति।
सुनहु स्याम, अब बड़े भए तुम, कहि स्तन-पान छुड़ावति।
ब्रज-लरिका तोहिं पीवत देखत, हँसत, लाज नहिं आवति।
जैहैं बिगरि दाँत ये आछे, तातैं कहि समुझावति।
अजहूँ छाँड़ि, कह्यौ करि मेरौ, ऐसी बात न भावति।
सूर स्याम यह सुनि मुसुक्याने, अंचल मुखहिं लुकावत ॥२२२॥
॥८४०॥

राग सारंग

नंद बुलावत हैं गोपाल।
आवहु बेगि बलैया लेउँ हौं, सुंदर नैन बिसाल।
परस्यौ थार धर्‍यौ मग जोवत, बोलति बचन-रसाल।
भात सिरात तात दुख पावत, बेगि चलौ मेरे लाल।

हौं वारी नान्हे पाइनि की दौरि दिखावहु चाल।
छाँड़ि देहु तुम लाल अटपटी, यह गति-मंद-मराल।
सो राजा जो अगमन पहुँचै, सूर सु भवन उताल।
जौ जैहैं बलदेव पहिलैं ही, तौ हँसिहैं सब ग्वाल॥२२३॥
॥८४१॥

राग सारंग

जेंवत कान्ह नंद इकठौरे।
कछुक खात लपटात दोउ कर बालकेलि अति भोरे।
बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे।
फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम कौं मधुर कौर दै कीन्हे तात निहोरे॥२२४॥
॥८४२॥

राग नट

हरि के बाल-चरित अनूप।
निरखि रहीं ब्रजनारि इकटक अंग-अँग-प्रति रूप।
बिथुरि अलकैं रहीं मुख पर बिनहिं बपन सुभाइ।
देखि कंजनि चंद के बस मधुप करत सहाइ।
सजल लोचन चारु नासा परम रुचिर बनाइ।
जुगल खंजन करत अबिनति, बीच कियौ बनराइ।
अरुन अधरनि दसन झाईं कहौं उपमा थोरि।
नील पुट बिच मनौ मोती धरे बंदन बोरि।
सुभग बाल मुकुंद की छबि बरनि कापै जाइ।
भृकुटि पर मसि-बिंदु सोहै सकै सूर न गाइ॥२२५॥
॥८४३॥

राग कान्हरौ

साँझ भई घर आवहु प्यारे।
दौरत कहा चोट लगिहै कहुँ पुनि खेलिहौ सकारे।
आपुहिं जाइ बाहँ गहि ल्याईं, खेह रही लपटाइ।
धूरि झारि तातौ जल ल्याईं, तेल परसि अन्हवाइ।

सरस बसन तन पोंछि स्याम कौं,भीतर गई लिवाइ।
सूर स्याम कछु करौ बियारी, पुनि राखौं पौढ़ाइ ॥२२६॥
॥८४४॥

राग बिहागरौ

कमल-नैन हरि करौ बियारी।
लुचुई लपसी, सद्य जलेबी, सोइ जैंवहु जो लगै पियारी।
घेवर, मालपुआ, मोतिलाड़ू, सधर सजूरी सरस सँवारी।
दूध बरा, उत्तम दधि बाटी, गाल-मसूरी की रुचि न्यारी।
आछौ दूध औटि धौरी कौ, लै आई रोहिनि महतारी।
सूरदास बलराम स्याम दोउ जैंवहु जननि जाइ बलिहारी ॥२२७॥
॥८४५॥

राग बिहागरौ

बल-मोहन दोउ करत बियारी।
प्रेम सहित दोउ सुतनि जिवावति, रोहिनि अरु जसुमति महतारी।
दोउ भैया मिलि खात एक सँग, रतन-जटित कंचन की थारी।
आलस सौं कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी।
दोउ माता निरखत आलस मुख, छबि पर तन-मन डारतिं वारी।
बार-बार जमुहात सूर प्रभु, इहिं उपमा कवि कहै कहा री! ॥२२८॥
॥८४६॥

राग केदारौ

कीजै पान लला रे यह लै आई दूध जसोदा मैया।
कनक-कटोरा भरि लीजै, यह पय पीजै, अति सुखद कन्हैया।
आछैं औट्यौ मेलि मिठाई, रुचि करि अँचवत क्यौं न नन्हैया।
बहु जतननि ब्रजराज लड़ैते, तुम कारन राख्यौ बलभैया।
फूँकि-फूँकि जननी पय प्यावति, सुख पावति जो उर न समैया।
सूरज स्याम राम पय पीवत दोऊ जननी लेतिं बलैया ॥२२९॥
॥८४७॥

राग केदारौ

बल-मोहन दोऊ अलसाने।
कछु-कछु खाइ दूध अँचयौ तब जम्हात जननी जाने।

उठहु लाल कहि मुख पखरायौ, तुमकौं लै पौढ़ाऊँ।
तुम सोवौ मैं तुम्हैं सुवाऊँ कछु मधुरैं सुर गाऊँ।
तुरत जाइ पौढ़े दोउ भैया, सोवत आई निंद।
सूरदास जसुमति सुख पावति पौढ़े बालगोबिंद ॥२३०॥
॥८४८॥

राग सूहौ

माखन बाल गोपालहिं भावै।
भूखे छिन न रहत मन मोहन, ताहि बदौं जो गहरु लगावै।
आनि मथानी दह्यौ बिलोवौं, जौ लगि लालन उठन न पावै।
जागत ही उठि रारि करत है, नहिं मानै जौ इंद्र मनावै।
हौं यह जानति बानि स्याम की, अँखियाँ मीचे बदन चलावै।
नंद-सुवन की लगौं बलैया, यह जूठनि कछु सूरज पावै ॥२३१॥
॥८४९॥

राग बिलावल

भोर भयौ मेरे लाड़िले, जागौ कुँवर कन्हाई।
सखा द्वार ठाढ़े सबै, खेलौ जदुराई।
मोकौं मुख दिखराइ कै, त्रय-ताप नसावहु।
तुव मुख-चंद चकोर-दृग मधु पान करावहु।
तब हरि मुख-पट दूरि कै, भक्तनि सुखकारी।
हँसत उठे प्रभु सेज तैं, सूरज बलिहारी ॥२३२॥
॥८५०॥

राग बिलावल

भोर भयौ जागे नँदनंदन। संग सखा ठाढ़े जग-बंदन।
सुरभी पय हित बच्छ पियावैं। पंछी तरु तजि दुहुँ दिसि धावैं।
अरुन गगन तमचुरनि पुकार्‌यौ। सिथिल धनुष रति-पति गहि डार्‌यौ।
निसि निघटी रवि-रथ रुचि साजी। चंद मलिन चकई रति-राजी।
कुमुदिनि सकुची बारिज फूले। गुंजत फिरत अली-गन भूले।
दरसन देहु मुदित नर नारी। सूरज प्रभु दिन देव मुरारी ॥२३३॥
॥८५१॥

राग नट

खेलत स्याम अपनैं रंग।
नंद-लाल निहारि सोभा, निरखि थकित अनंग।
चरन की छवि देखि डरप्यौ अरुन, गगन छपाइ।
जानु करभा की सबै छवि, निदरि, लई छड़ाइ।
जुगल जंघनि खंभ - रंभा, नाहि समसरि ताहि।
कटि निरखि केहरि लजाने, रहे बन - घन चाहि।
हृदय हरि-नख अति बिराजत, छवि न बरनी जाइ।
मनौ बालक बारिधर नव, चंद दियौ दिखाइ।
मुक्त-माल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ।
मनौ तारा-गननि वेष्ठित गगन निसि रह्यौ छाइ।
अधर अरुन, अनूप नासा, निरखि जन-सुखदाइ।
मनौ सुक, फल बिंब कारन, लेन बैठ्यौ आइ।
कुटिल अलक बिना बपन के मनौ अलि-सिसु-जाल।
सूर प्रभु की ललित सोभा, निरखि रहीं ब्रज-बाल ॥२३४॥
॥८५२॥

राग सारंग

न्हात नंद सुधि करी स्याम की, ल्यावहु बोलि कान्ह बलराम।
खेलत बड़ी बार कहुँ लाई, ब्रज - भीतर, काहू कैं धाम।
मेरैं संग आइ दोउ बैठैं, उन बिनु भोजन कौने काम।
जसुमति सुनत चली अति आतुर, ब्रज-घर-घर टेरति लै नाम।
आजु अबेर भई कहुँ खेलत, बोलि लेहु हरि कौं कोउ बाम।
ढूँढ़ि फिरि नहिं पावति हरि कौं, अति अकुलानी, तावति घाम।
बार - बार पछिताति जसोदा, बासर बीति गए जुग जाम।
सूर स्याम कौं कहूँ न पावति, देखे बहु बालक के ठाम ॥२३५॥
॥८५३॥

राग सारंग

कोउ माई बोलि लेहु गोपालहिं।
मैं अपने कौ पंथ निहारति, खेलत बेर भई नँदलालहिं।
टेरत बड़ी बार भई मोकौं, नहिं पावति घनस्याम तमालहिं।
सिध जँवन सिरात, नँद बैठे, ल्यावहु बोलि कान्ह ततकालहिं।

भोजन करै नंद सँग मिलि कै, भूख लगी ह्वैहै मेरे बालहिं।
सूर स्याम-मग जोवति जननी, आइ गए सुनि बचन रसालहिं।
॥२३६॥८५४॥

राग नटनारायन

हरि कौं टेरति है नँदरानी।
बहुत अबार भई कहँ खेलत, रहे मेरे सारँग पानी ?
सुनतहिं टेर, दौरि तहँ आए, कब के निकसे लाल।
जेँवत नहीँ नंद तुम्हरे बिनु, बेगि चलौ, गोपाल।
स्यामहिं ल्याई महरि जसोदा, तुरतहिं पाइँ पखारे।
सूरदास प्रभु संग नंद कैँ बैठे हैँ दोउ बारे ॥२३७॥
॥८५५॥

राग सारंग

जेँवत स्याम नंद की कनिया।
कछुक खात, कछु धरनि गिरावत, छबि निरखति नँद - रनियाँ।
बरी, बरा, बेसन, बहु भाँतिनि, ब्यंजन बिबिध, अगनिया।
डारत, खात, लेत अपनैं कर, रुचि मानत दधि दोनियाँ।
मिस्री, दधि, माखन मिस्रित करि, मुख नावत छबि धनिया।
आपुन खात, नंद - मुख नावत, सो छबि कहत न बनिया।
जो रस नंद-जसोदा बिलसत, सो नहिं तिहूँ भुवनिया।
भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनिया ॥२३८॥
॥८५६॥

राग कान्हरौ

बोलि लेहु हलधर भैया कौं।
मेरे आगैँ खेल करौ कछु, सुख दीजै मैया कौं।
मैं मूँदौं हरि आँखि तुम्हारी, बालक रहैँ लुकाई।
हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलन आँखि मुँदाई।
हलधर कह्यौ आँखि को मूँदै, हरि कह्यौ मातु जसोदा।
सूर स्याम लए जननि खिलावति, हरष सहित मन मोदा ॥२३९॥
॥८५७॥

राग गौरी

हरि तब अपनी आँखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छुपाने, जहँ-तहँ गए भगाई।
कान लागि कह्यौ जननि जसोदा, वा घर मैं बलराम।
बलदाऊ कौं आवन दैहौं, श्रीदामा सौं काम।
दौरि-दौरि बालक सब आवत, छुवत महरि कौ गात।
सब आए रहे सुबल श्रीदामा, हारे अब कैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए, गह्यौ श्रीदामा जाइ।
दै-दै सौहैं नंद बबा की, जननी पै लै आइ।
हँसि-हँसि तारी देत सखा सब, भए श्रीदामा चोर।
सूरदास हँसि कहति जसोदा, जीत्यौ है सुत मोर ॥२४०॥
॥८५८॥

राग केदारौ

चलौ लाल कछु करौ बियारी।
रुचि नाहीँ काहू पर मेरी, तू कहि, भोजन करौँ कहा री?
बेसन मिलै सरस मैदा सौं, अति कोमल पूरी है भारी।
जैंवहु स्याम मोहि सुख दीजै, तातैं करी तुम्हैं ये प्यारी।
निबुआ,सूरन,आम, अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी।
बार-बार यौं कहति जसोदा, कहि ल्यावै रोहिनि महतारी।
जननी सुनत तुरत लै आई, तनक-तनक धरि कंचन-थारी।
सूर स्याम कछु-कछु लै खायौ, अरु अँचयौ जल बदन पखारी॥२४१॥
॥८५९॥

राग केदारौ

पौढ़िऐ मैं रचि सेज बिछाई।
अति उज्वल है सेज तुम्हारी, सोवत मैं सुखदाई।
खेलत तुम निसि अधिक गई, सुत, नैननि नींद झँपाई।
बदन जँभात, अंग ऐंडावत, जननि पलोटति पाइ।
मधुरैं सुर गावत केदारौ, सुनत स्याम चित लाई।
सूरदास प्रभु नंद-सुवन कौं नींद गई तब आई॥२४२॥
॥८६०॥

राग सारंग

खेलन जाहु बाल सब टेरत।
यह सुनि कान्ह भए अति आतुर, द्वारैं तन फिरि हेरत।
बार-बार हरि मातहिं बूझत, कहि चौगान कहाँ है।
दधि-मथनी के पाछैं देखौ, लै मैं धर्यौ तहाँ है।
लै चौगान-बटा अपनैं कर, प्रभु आए घर बाहर।
सूर स्याम पूछत सब ग्वालनि, खेलौगे किहिं ठाहर॥२४३॥
॥८६१॥

राग सारंग

खेलत बनै घोष निकास।
सुनहु स्याम, चतुर सिरोमनि, इहाँ है घर पास।
कान्ह हलधर बीर दोऊ, भुजा बल अति जोर।
सुबल, श्रीदामा, सुदामा वै भए इक ओर।
और सखा बँटाइ लीन्हे, गोप-बालक-बृंद।
चले ब्रज की खोरि खेलत, अति उमँगि नँद-नंद।
बटा धरनी डारि दीनौ, लै चले ढरकाइ।
आपु अपनी घात निरखत, खेल जम्यौ बनाइ।
सखा जीतत स्याम जाने, सब करी कछु पेल।
सूरदास कहत सुदामा, कौन ऐसौ खेल॥२४४॥
॥८६२॥

राग सारंग

खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ।
जाति-पाँति हमतैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातैं जातैं अधिक तुम्हारैं गैयाँ।
रुहठि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउँ दियौ करि नंद-दुहैयाँ॥२४५॥
॥८६३॥

राग कान्हरौ

आवहु, कान्ह, साँझ की बेरिया।
गाइनि माँझ भए हौ ठाढ़े, कहति जननि, यह बड़ी कुबेरिया।

लरिकाई कहुँ नैंकु न छाँड़त, सोइ रहौ सुथरी सेजरिया।
आए हरि यह बात सुनतहीं, धाइ लए जसुमति महतरिया।
ले पौढ़ी आँगन हीं सुत कौं, छिटकि रही आछी उजियरिया।
सूर स्याम कछु कहत-कहत ही बस करि लीन्हे आइ निंदरिया॥२४६॥
॥८६४॥

राग कान्हरौ

आँगन मैं हरि सोइ गए री।
दोउ जननी मिलि कै, हरुएँ करि, सेज सहित तब भवन लए री।
नैंकु नहीं घर मैं बैठत हैं, खेलहिं के अब रंग रए री।
इहिं बिधि स्याम कबहुँ नहिं सोए बहुत नींद के बसहिं भए री।
कहति रोहिनी सोवन देहु न, खेलत दौरत हारि गए री।
सूरदास प्रभु कौ मुख निरखत हरखत जिय नित नेह नए री॥२४७॥
॥८६५॥

पाँड़े-आगमन *राग धनाश्री*

महराने तैं पाँड़े आयौ।
ब्रज घर-घर बूझत नँद-राउर पुत्र भयौ, सुनि कै, उठि धायौ।
पहुँच्यौ आइ नंद के द्वारैं, जसुमति देखि अनंद बढ़ायौ।
पाँइ धोइ भीतर बैठार्‌यौ, भोजन कौं निज भवन लिपायौ।
जो भावै सो भोजन कीजै, बिप्र मनहिं अति हर्ष बढ़ायौ।
बड़ी बैस बिधि भयौ दाहिनौ, धनि जसुमति ऐसौ सुत जायौ।
धेनु दुहाइ, दूध लै आई, पाँड़े रुचि करि खीर चढ़ायौ।
घृत, मिष्टान्न, खीर मिस्रित करि, परुसि कृष्न-हित ध्यान लगायौ।
नैन उघारि बिप्र जौ देखै, खात कन्हैया देखन पायौ।
देखौ आइ जसोदा, सुत-कृति, सिद्ध पाक इहिं आइ जुठायौ।
महरि बिनय करि दुहुँ कर जोरे, घृत-मधु-पय फिरि बहुत मँगायौ।
सूर स्याम कत करत अचगरी, बार-बार बाम्हनहिं खिझायौ।
॥२४८॥८६६॥

राग रामकली

पाँड़े नहिं भोग लगावन पावै।
करि-करि पाक जबै अर्पत है, तबहीं तब छ्वै आवै।

इच्छा करि मैं बाम्हन न्यौत्यौ, ताकौं स्याम खिझावै।
वह अपने ठाकुरहिं जिवावै, तू ऐसैं उठि धावै।
जननी दोष देति कत मोकौं, बहु बिधान करि ध्यावै।
नैन मूँदि, कर जोरि, नाम लै बारहिं बार बुलावै।
कहि, अंतर क्यौं होइ भक्त सौं, जो मेरैं मन भावै?
सूरदास बलि-बलि बिलास पर, जन्म-जन्म जस गावै ॥२४९॥
॥८६७॥

राग बिलावल

सफल जन्म, प्रभु आजु भयौ।
धनि गोकुल, धनि नंद-जसोदा, जाकैं हरि अवतार लयौ।
प्रगट भयौ अब पुन्य-सुकृत-फल, दीन-बंधु मोहिं दरस दयौ।
बारंबार नंद कैं आँगन, लोटत द्विज आनंद मयौ।
मैं अपराध कियौ बिनु जानैं, को जानै किहिं भेष जयौ।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत-बस जसुमति-गृह आनंद लयौ ॥२५०॥
॥८६८॥

राग धनाश्री

अहो नाथ जेइ-जेइ सरन आए तेइ-तेइ भए पावन।
महा पतित-कुल-तारन, एक नाम अघ जारन, दारुन दुख बिसरावन।
मोतैं को हो अनाथ, दरसन तैं भयौ सनाथ, देखत नैन जुड़ावन।
भक्त-हेत देह धरन, पुहुमी कौ भार-हरन, जनम-जनम मुक्तावन।
दीनबंधु, असरन के सरन, सुखनि जसुमति के कारन देह धरावन।
हित कै चित की मानत सबके जिय की जानत सूरदास मन भावन।
॥२५१॥८६९॥

राग बिलावल

मया करिऐ कृपाल, प्रतिपाल संसार उदधि जंजाल तैं परौं पार।
काहू के ब्रह्मा, काहू के महेस, प्रभु मेरे तौ तुमहीं अधार।
दीन के दयाल हरि, कृपा मोकौं करि, यह कहि-कहि लोटत बार-बार।
सूर स्याम अंतरजामी स्वामी जगत के कहा कहौं करौ निरवार।
॥२५२॥८७०॥

माटी-भक्षण-प्रसंग *राग बिलावल*

खेलत स्याम पौरि कैं बाहर, ब्रज लरिका सँग जोरी।
तैसेई आपु तैसेई लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी।
गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखति नँदरानी।
अति पुलकित गदगद मुख बानी मन-मन महरि सिहानी।
माटी लै मुख मेलि दई हरि, तबहिं जसोदा जानी।
साँटी लिए दौरि भुज पकर्‌यौ, स्याम लँगरई ठानी।
लरिकनि कौं तुम सब दिन झुठवत, मोसौं कहा कहौगे।
मैया मैं माटी नहिं खाई, मुख देखैं निबहौगे।
बदन उघारि दिखायौ त्रिभुवन, बनघन-नदी-सुमेर।
नभ-ससि-रवि मुख भीतर हीं सब सागर-धरनी-फेर।
यह देखत जननी मन ब्याकुल, बालक-मुख कहा आहि।
नैन उघारि, बदन हरि मूँद्यौ, माता-मन अवगाहि।
झूठैं लोग लगावत मोकौं, माटी मोहिं न सुहावै।
सूरदास तब कहति जसोदा, ब्रज-लोगनि यह भावै ॥२५३॥
॥८७१॥

राग धनाश्री

मोहन काहैं न उगिलौ माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी।
महतारी सौं मानत नाहीं कपट - चतुरई ठाटी।
बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी।
बड़ी बार भई, लोचन उघरे, भरम - जवनिका फाटी।
सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी-खाटी ॥२५४॥
॥८७२॥

राग रामकली

मो देखत जसुमति तेरैं ढोटा, अबहीं माटी खाई।
यह सुनि कै रिस करि उठि धाई, बाहँ पकरि लै आई।
इक कर सौं भुज गहि गाढ़ैं करि, इक कर लीन्ही साँटी।
मारति हौं तोहिं अबहिं कन्हैया, बेगि न उगिलै माटी।
ब्रज-लरिका सब तेरे आगैं, झूठी कहत बनाइ।
मेरे कहैं नहीं तू मानति, दिखरावौं मुख बाइ।

अखिल ब्रह्मंड-खंड की महिमा, दिखराई मुख माँहि।
सिंध-सुमेर-नदी-बन-पर्वत चकित भई मन चाहि।
कर तैं साँटि गिरत नहिं जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी।
सूर कहै जसुमति मुख मूँदौ, बलि गई सारँगपानी ॥२५५॥
॥८७३॥

राग सारंग

नंदहिं कहति जसोदा रानी।
माटी कैं मिस मुख दिखरायौ, तिहूँ लोक रजधानी।
स्वर्ग, पताल, धरनि, बन, पर्वत, बदन माँझ रहे आनी।
नदी सुमेर देखि चक्रित भई, याकी अकथ कहानी।
चितै रहे तब नंद जुवति-मुख मन-मन करत बिनानी।
सूरदास तब कहति जसोदा गर्ग कही यह बानी ॥२५६॥
॥८७४॥

राग सोरठ

कहत नंद जसुमति सौं बात।
कहा जानिऐ, कह तैं देख्यौ, मेरैं कान्ह रिसात।
पाँच बरष का मेरौ नन्हैया, अचरज तेरी बात।
बिनहीं काज साँटि लै धावति, ता पाछैं बिललात।
कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-अन्हात।
सूर स्याम कौं कहा लगावति, बालक कोमल-बात ॥२५७॥
॥८७५॥

राग बिलावल

देखौ री जसुमति बौरानी।
घर-घर हाथ दिवावति डोलति, गोद लिए गोपाल बिनानी।
जानत नाहिं जगतगुरु माधौ, इहिं आए आपदा नसानी।
जाकौ नाउँ सक्ति पुनि जाकी, ताकौं देत मंत्र पढ़ि पानी।
अखिल ब्रह्मंड उदर गत जाकैं, जाकी जोति जल-थलहिं समानी।
सूर सकल साँची मोहिं लागति, जो कुछ कही गर्ग मुख बानी ॥२५८॥
॥८७६॥

राग धनाश्री

गोपाल राइ चरननि हौं काटी।
हम अबला रिस बाँचि न जानी, बहुत लागि गई साँटी।
वारौं कर जु कठिन अति, कोमल नयन जरहु जिनि डाँटी।
मधु, मेवा, पकवान छाँड़ि कै, काहैं खात हौ माटी।
सिगरोइ दूध पियौ मेरे मोहन, बलहिं न दैहौं बाँटी।
सूरदास नँद लेहु दोहिनी दुहहु लाल की नाटी ॥२५६॥
॥८७७॥

शालिग्राम-प्रसंग

राग रामकली

करि अस्नान नंद घर आए।
लै जल जमुना कौ झारी भरि, कंज सुमन बहु ल्याए।
पाइँ धोइ मंदिर पग धारे, प्रभु-पूजा जिय दीन्ह।
अस्थल लीपि, पात्र सब धोए, काज देव के कीन्ह।
बैठे नंद करत हरि-पूजा, बिधिवत औ बहु भाँति।
सूर स्याम खेलत तैं आए, देखत पूजा न्याति ॥२६०॥
॥८७८॥

राग गूजरी

नंद करत पूजा, हरि देखत।
घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेटत।
पट अंतर दै भोग लगायौ, आरति करी बनाइ।
कहत कान्ह, बाबा तुम अरप्यौ, देव नहीं कछु खाइ।
चितै रहे तब नंद महरि-मुख सुनहु कान्ह की बात।
सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात ॥२६१॥
॥८७९॥

राग धनाश्री

जसुदा देखति है ढिग ठाढ़ी।
बाल दसा अवलोकि स्याम की, प्रेम-मगन चित बाढ़ी।
पूजा करत नंद रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई।
चुपकहिं आनि कान्ह मुख मेल्यौ, देखौं देव-बड़ाई।

खोजत नंद चकित चहुँ दिसि तैं अचरज सौ कछु भाई।
कहाँ गए मेरे इष्ट देवता को लै गयौ उठाई।
तब जसुमति सुत-मुख दिखरायौ, देखौं वदन कन्हाई।
मुख कत मेलि देवता राख्यौ, घाले सबै नसाई।
बदन पसारि सिला जब दीन्ही, तीनौ लोक दिखाए।
सूर निरखि मुख नंद चकित भए, कछू बचन नहिं आए ॥२६२॥
॥८८०॥

राग टोड़ी

हँसत गोपाल नंद के आगैं, नंद सरूप न जान्यौ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन लीलाधर, सोई सुत करि मान्यौ।
एक समय पूजा कैं अवसर, नंद समाधि लगाई।
सालिग्राम मेलि मुख भीतर, बैठि रहे अरगाई।
ध्यान बिसर्जन कियौ नंद जब, मूरति आगैं नाहीं।
कह्यौ गोपाल देवता कह भयौ, यह बिसमय मन माहीं।
मुख तैं काढ़ि तबै जदुनंदन, दियौ नंद कैं हाथ।
सूरदास स्वामी सुख-सागर खेल रच्यौ ब्रज-नाथ ॥२६३॥
॥८८१॥

प्रथम माखन-चोरी *राग गौरी*

मैया री, मोहिं माखन भावै।
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै।
ब्रज-जुवती इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात।
मन-मन कहति कबहु अपनैं घर, देखौं माखन खात।
बैठैं जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि मन की जानी ॥२६४॥
॥८८२॥

राग गौरी

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।
देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितै, चले तब भीतर।
हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ।
सूनैं सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ।

माखन भरी कमोरी देखत, लै-लै लागे खान।
चितै रहे मनि-खंभ-छाहँ-तन, तासौं करत सयान।
प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग।
आपु खात, प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग?
जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, अति मीठौ कत डारत।
तुमहिं देति मैं अति सुख पायौ, तुम जिय कहा बिचारत?
सुनि-सुनि बात स्याम के मुख की, उमँगि हँसी ब्रजनारी।
सूरदास प्रभु निरखि ग्वालि-मुख तब भजि चले मुरारी ॥२६५॥
॥८८३॥

राग गौरी

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।
पूछति सखी परस्पर बातैं, पायौ पर्‌यौ कछू कहुँ तैं री?
पुलकित रोम-रोम, गदगद, मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हमकौं क्यौं न सुनावै।
तन न्यारौ, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं देख्यौ रूप अनूप ॥२६६॥
॥८८४॥

राग गूजरी

आजु सखी मनि-खंभ-निकट हरि, जहँ गोरस कौं गो री।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु, प्रगट करै जनि चोरी।
अरध बिभाग आजु तैं हम-तुम, भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कतहिं डारत हौ, छाँड़ि देहु मति भोरी।
बाँट न लेहु, सबै चाहत हौ, यहै बात है थोरी।
मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी।
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ, तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी ॥२६७॥
॥८८५॥

राग बिलावल

प्रथम करी हरि माखन-चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज-खोरी।

मन मैं यहै विचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाउँ।
बाल-रूप जसुमति मोहिं जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज - लोग ॥२६८॥
॥८८६॥

राग रामकली

करैं हरि ग्वाल संग विचार।
चोरि माखन खाहु सब मिलि, करहु बाल - बिहार।
यह सुनत सब सखा हरषे, भली कही कन्हाइ।
हँसि परस्पर देत तारी, सौंह करि नँदराइ।
कहाँ तुम यह बुद्धि पाई, स्याम चतुर सुजान।
सूर प्रभु मिलि ग्वाल - बालक, करत हैं अनुमान ॥२६९॥
॥८८७॥

राग गौरी

सखा सहित गए माखन - चोरी।
देख्यौ स्याम गवाच्छ-पंथ ह्वै, मथति एक दधि भोरी।
हेरि मथानी धरी माट तैं, माखन हो उतरात।
आपुन गई कमोरी माँगन, हरि पाई ह्याँ घात।
पैठे सखनि सहित घर सूनैं, दधि माखन सब खाए।
छूछी छाँड़ि मटुकिया दधि की, हँसि सब बाहिर आए।
आइ गई कर लिए कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल।
माखन कर, दधि मुख लपटानौ, देखि रही नँदलाल।
कहँ आए ब्रज - बालक सँग लै, माखन मुख लपटान्यौ।
खेलत तैं उठि भज्यौ सखा यह, इहिं घर आइ छपान्यौ।
भुज गहि लियौ कान्ह एक बालक, निकसे ब्रज की खोरि।
सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि ॥२७०॥
॥८८८॥

राग गौरी

चकित भई ग्वालिनि-तन हेरौ।
माखन छाँड़ि गई मथि वैसैंहि, तब तैं कियौ अबेरौ।

देखै जाइ मटुकिया रीती, मैं राख्यौ कहुँ हेरि।
चकित भई ग्वालिनि मन अपनैं, ढूँढ़ति घर फिरि फेरि।
देखति पुनि-पुनि घर के बासन, मन हरि लियौ गोपाल।
सूरदास रस भरी ग्वालिनी, जानै हरि कौ ख्याल ॥२७१॥
॥८८९॥

राग बिलावल

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात।
दधि-माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल-सखा सँग खात।
ब्रज-बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारैं आवैं।
माखन खात अचानक पावैं, भुज हरि उरहिं छुवावैं।
मनहीं मन अभिलाष करतिं सब हृदय धरतिं यह ध्यान।
सूरदास प्रभु कौं घर तैं लै, दैहौं माखन खान ॥२७२॥
॥८९०॥

राग कान्हरौ

चली ब्रज घर-घरनि यह बात।
नंद-सुत, सँग सखा लीन्हे, चोरि माखन खात।
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ।
कोउ कहति, मोहिं देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ।
कोउ कहति, किहिं भाँति हरि कौं, देखौं अपनै धाम।
हेरि माखन देउँ आछौ, खाइ जितनौ स्याम।
कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धरौं अँकवारि।
कोउ कहति, मैं बाँधि राखौं, को सकै निरवारि।
सूर प्रभु के मिलन कारन, करतिं बुद्धि बिचार।
जोरि कर बिधि कौं मनावति, पुरुष नंद-कुमार ॥२७३॥
॥८९१॥

राग सारंग

गोपालहिं माखन खान दै।
सुनि री सखी, मौन ह्वै रहिऐ, बदन दही लपटान दै।
गहि बहियाँ हौं लैकै जैहौं, नैननि तपति बुझान दै।
याकौ जाइ चौगुनौ लैहौं, मोहिं जसुमति लौं जान दै।

तू जानति हरि कछू न जानत, सुनत मनोहर कान दै।
सूर स्याम ग्वालिनि बस कीन्हौ, राखति तन-मन-प्रान दै ॥२७४॥
॥८९२॥

राग कल्यान

ग्वालिनि घर गए जानि साँझ की अँधेरी।
मंदिर मैं गए समाइ, स्यामल तनु लखि न जाइ,
देह गेह रूप, कहौ को सकै निवेरी ?
दीपक गृह दान कर्‌यौ, भुजा चारि प्रगट धर्‌यौ,
देखत भई चकित ग्वालि इत-उत कौं हेरी।
स्याम हृदय अति बिसाल, माखन-दधि-बिंदु-जाल,
मोह्यौ मन नंदलाल, बाल हौं बझे री।
जुवती अति भई बिहाल, भुज भरि दै अंकमाल,
सूरदास प्रभु कृपाल डार्‌यौ तन फेरी।
कर सौं कर लै लगाइ, महरि पै गई लिवाइ,
आनँद उर नहिं समाइ, बात है अनेरी ॥२७५॥
॥८९३॥

राग कल्यान

जसुमति धौं देखि आनि, आगैं ह्वै लै पिछानि,
बहियाँ गहि ल्याई कुँवर और को कि तेरौ ?
अब लौं मैं करी कानि, सही दूध-दही-हानि,
अजहूँ जिय जानि मानि, कान्ह है अनेरौ।
दीपक मैं धर्‌यौ बारि, देखत भुज भए चारि,
हारी हौं धरति करति दिन - दिन कौ झेरौ।
देखियत नहिं भवन माँझ, जैसोइ तन तैसि साँझि,
छल सौं कछु करत फिरत महरि कौ जिठेरौ।
गोरस तन छींटि रही, सोभा नहिं जाति कही,
मानौ जल-जमुन बिंब उड़गन पथ केरौ।
उरहन दिन देउँ काहि, कहँ तू इतौ रिसाइ,
नाहीँ ब्रज-बास, सास, ऐसी बिधि मेरौ।
गोपी निरखति खुमार, जसुमति कौ है कुमार,
भूलीं भ्रम रूप मनौ आन कोउ हेरौ।

मन-मन विहँसत गोपाल, भक्त-पाल, दुष्ट-साल,
जानै को सूरदास चरित कान्ह केरौ ! ॥२७६॥
॥८६४॥

राग गौरी

देखि फिरे हरि ग्वाल दुवारैं।
तब इक बुद्धि रची अपनैं मन, गए नाँधि पिछवारैं।
सूनैं भवन कहूँ कोउ नाहीं, मनु याही कौ राज।
भाँड़े धरत, उघारत, मूँदत दधि माखन कैं काज।
रैनि जमाइ धर्‌यौ ह्वौ गोरस, पर्‌यौ स्याम कैं हाथ।
लै-लै खात अकेले आपुन सखा नहीं कोउ साथ।
आहट सुनि जुवती घर आई, देख्यौ नंदकुमार।
सूर स्याम मंदिर अँधियारैं, निरखति वारंवार ॥२७७॥
॥८६५॥

राग गौरी

अँधियारैं घर स्याम रहे दुरि।
अबहीं मैं देख्यौ नँदनंदन, चरित भयौ सोचति झुरि।
पुनि-पुनि चकित होति अपनैं जिय, कैसी है यह बात।
मटुकी कैं ढिग बैठि रहे हरि, करैं आपनी घात।
सकल जीव जल-थल के स्वामी, चींटी दई उपाइ।
सूरदास प्रभु देखि ग्वालिनी, भुज पकरे दोउ आइ ॥२७८॥
॥८६६॥

राग गौरी

स्याम कहा चाहत से डोलत ?
पूछे तैं तुम बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत।
पाए आइ अकेले घर मैं दधि-भाजन मैं हाथ।
अब तुम काकौ नाउँ लेउगे, नाहिंन कोऊ साथ !
मैं जान्यौ यह मेरौ घर है, ता धोखैं मैं आयौ।
देखत हौं गोरस मैं चींटी, काढ़न कौं कर नायौ।
सुनि मृदु बचन, निरखि मुख-सोभा, ग्वालिनि मुरि मुसुकानी।
सूर स्याम तुम हौ अति नागर बात तिहारी जानी ॥२७९॥
॥८६७॥

राग सारंग

जसुदा कहँ लौं कीजै कानि।
दिन-प्रति कैसैं सही परति है, दूध-दही की हानि।
अपने या बालक की करनी, जौ तुम देखौ आनि।
गोरस खाइ, खवावै लरिकनि, भाजत भाजन भानि।
मैं अपने मंदिर के कोनैं, राख्यौ माखन छानि।
सोई जाइ तिहारैं ढोटा, लीन्हौ है पहिचानि।
बूझि ग्वालि निज गृह मैं आयौ, नैंकु न संका मानि।
सूर स्याम यह उतर बनायौ, चींटी काढ़त पानि ॥२८०॥
॥८९८॥

राग सारंग

माई हौं तकि लागि रही।
जब घर तैं माखन लै निकस्यौ, तब मैं बाहँ गही।
तब हँसि कै मेरौ मुख चितयौ, मीठी बात कही।
रही ठगी, चेटक सौ लाग्यौ, परि गई प्रीति सही।
बैठौ कान्ह, जाउँ बलिहारी, ल्याऊँ और दही।
सूर स्याम पै ग्वालि सयानी सरबस दै निबही ॥२८१॥
॥८९९॥

राग गौरी

आपु गए हरुएँ सूनैं घर।
सखा सबै बाहिर ही छाँड़े, देख्यौ दधि-माखन हरि भीतर।
तुरत मथ्यौ दधि-माखन पायौ, लै-लै खात, धरत अधरनि पर।
सैन देइ सब सखा बुलाए, तिनहिं देत भरि-भरि अपनैं कर।
छिटकि रही दधि-बूँद हृदय पर, इत-उत चितवत करि मन मैं डर।
उठत ओट लै लखत सबनि कौं, पुनि लै खात लेत ग्वालनि बर।
अंतर भई ग्वालि यह देखति मगन भई, अति उर आनँद भरि।
सूर स्याम मुख निरखि थकित भई, कहत न बनै, रही मन दै हरि॥
॥२८२॥९००॥

राग धनाश्री

गोपाल दुरे हैं माखन खात।
देखि सखी सोभा जु बनी है, स्याम मनोहर गात।

उठि, अवलोकि ओट ठाढ़े ह्वै, जिहिँ विधि हैं लखि लेत।
चकित नैन चहूँ दिसि चितवत, और सखनि कौं देत।
सुंदर कर आनन समीप, अति राजत इहि आकार।
जलरुह मनौ वैर विधु सौं तजि, मिलत लए उपहार।
गिरि-गिरि परत वदन तैं उर पर हैं दधि-सुत के विंदु।
मानहुँ सुभग सुधाकन वरषत प्रियजन आगम इंदु।
बाल-बिनोद विलोकि सूर प्रभु सिथिल भईं ब्रजनारि।
फुरै न वचन वरजिवैं कारन, रहीं बिचारि-विचारि ॥२८३॥
॥९०१॥

राग कल्यान

माखन चोराइ वैठ्यो, तौलौं गोपी आई।
देखे तब वोल्यौ कान्ह, उतर यौं वनाई।
आँखैं भरि लीनी उराहनौ देन लाग्यौ।
तेरौ री सुवन मेरी मुरली लै भाग्यौ।
दै री मोकौं ल्याइ वेनु, कहि, कर गहि रोवै।
ग्वालिनी डराति जियहिं, सुनै जनि जसोवै।
तू जो कह्यौ ऐसौ वेनु, इहाँ नाहिं तेरौ।
मुरली मैं जीवन-प्रान वसत अहै मेरौ।
मेवा मिष्ठान्न और वंसी इक दीनी।
लागी तिय चरन औ वलैया झुकि लीनी ॥२८४॥९०२॥

राग सारंग

ग्वालिनि जौ घर देखै आइ।
माखन खाइ चोराइ स्याम सब, आपुन रहे छपाइ।
ठाढ़ी भई मथनियाँ कैं ढिग, रीती परी कमोरी।
अवहिँ गई, आई इनि पाइनि, लै गयौ को करि चोरी?
भीतर गई, तहाँ हरि पाए, स्याम रहे गहि पाइ।
सूरदास प्रभु ग्वालिनि आगैं, अपनौ नाम सुनाइ ॥२८५॥
॥९०३॥

राग गौरी

जौ तुम सुनहुँ जसोदा गोरी।
नंद-नँदन मेरे मंदिर मैं आजु करन गए चोरी।

हौं भई जाइ अचानक ठाढ़ी, कह्यौ भवन मैं को री।
रहे छपाइ, सकुचि, रंचक ह्वै, भई सहज मति भोरी।
मोहिं भयौ माखन पछितावौ, रीति देखि कमोरी।
जब गहि बाहँ कुलाहल कीनी, तब गहि चरन निहोरी।
लागे लैन नैन जल भरि-भरि, तब मैं कानि न तोरी।
सूरदास प्रभु देत दिनहिं दिन ऐसियै लरिक-सलोरी ॥२८६॥
॥१०४॥

राग सारंग

जानि जु पाए हौं हरि नीकैं।
चोरि-चोरि दधि-माखन मेरौ, नित प्रति गीधि रहे हो छीकैं।
रोक्यौ भवन-द्वार ब्रज-सुंदरि, नूपुर मूँदि अचानक ही कै।
अब कैसैं जैयतु अपनैं बल, भाजन भाँजि, दूध दधि पी कै!
सूरदास प्रभु भलैं परे फँद, देउँ न जान भावते जी कैं।
भरि गंडूष, छिरक दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै ॥२८७॥
॥१०५॥

राग रामकली

माखन-चोर री मैं पायौ।
बहुत दिवस मैं कौरैं लागी, मेरी घात न आयौ।
नित प्रति रीती देखि कमोरी मोहिं अति लगत भुँझायौ।
तब मैं कह्यौ, जानि हौं पाई कौन चोर है आयौ।
जब कर सौं कर गह्यौ, कह्यौ तब, मैं नहिं माखन खायौ।
बिहँसत उघरि गईं दँतियाँ, लै सूर स्याम उर लायौ ॥२८८॥
॥१०६॥

राग नट

देखी ग्वालि जमुना जात।
आपु ता घर गए पूछत, कौन है, कहि बात।
जाइ देखे भवन भीतर, ग्वाल-बालक दोइ।
भीर देखत अति डराने, दुहुँनि दीन्हौ रोइ।
ग्वाल के काँधैं चढ़े तब, लिए छींके उतारि।
दह्यौ-माखन खात सब मिलि, दूध दीन्हौ डारि।

बच्छ लै सब छोरि दीन्हे, गए बन समुहाइ।
छिरकि लरिकनि मही सौं भरि, ग्वाल दए चलाइ।
देखि आवत सखी घर कौं, सखिनि कह्यौ जु दौरि।
आनि देखे स्याम घर मैं, भई ठाढ़ी पौरि।
प्रेम अंतर, रिस भरे मुख, जुवति बूझति बात।
चितै मुख तन सुधि बिसारी, कियौ उर नख-घात।
अतिहिं रस-बस भई ग्वालिनि, गेह देह बिसारि।
सूर प्रभु भुज गहे ल्याई, महरि पै अनुसारि ॥२८९॥
॥९०७॥

राग गौरी

महरि तुम मानौ मेरी बात।
ढूँढ़ि-ढाँढ़ि गोरस सब घर कौ, हर्‌यौ तुम्हारैं तात।
कैसैं कहति लियौ छींके तैं, ग्वाल-कंध दै लात।
घर नहिं पियत दूध धौरी कौ, कैसैं तेरैं खात?
असंभाव बोलन आई है, ढीठ ग्वालिनी प्रात।
ऐसौ नाहिं अचगरौ मेरौ, कहा बनावति बात।
का मैं कहौं, कहत सकुचति हौं, कहा दिखाऊँ गात!
हैं गुन बड़े सूर के प्रभु के, ह्याँ लरिका ह्वै जात ॥२९०॥९०८॥

राग गौरी

साँवरेहिं बरजति क्यौं जु नहीं।
कहा करौं दिन प्रति की बातैं, नाहिन परतिं सही।
माखन खात, दूध लै डारत, लेपत देह दही।
ता पाछैं घरहू के लरिकनि, भाजत छिरकि मही।
जो कछु धरहिं दुराइ, दूरि लै, जानत ताहि तहीं।
सुनहु महरि, तेरे या सुत सौं, हम पचि हारि रहीं।
चोरी अधिक चतुरई सीखी जाइ न कथा कही।
ता पर सूर बछुरुवनि ढीलत, बन-बन फिरतिं बही ॥२९१॥
॥९०९॥

राग कान्हरौ

अब ये झूठहु बोलत लोग।
पाँच बरष अरु कछुक दिननि कौ, कब भयौ चोरी जोग।

इहिँ मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुँह फाटे जु गँवारि।
अनदोषे कौं दोष लगावति, दई देइगौ टारि।
कैसैँ करि याकी भुज पहुँची, कौन बेग ह्याँ आयौ ?
ऊखल ऊपर आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ।
जौ न पत्याहु चलौ सँग जसुमति देखौ नैन निहारि।
सूरदास प्रभु नैंकु न बरजौ, मन मैं महरि बिचारि ॥२६२॥
॥६१०॥

राग देवगंधार

मेरौ गोपाल तनक सौ, कहा करि जानै दधि की चोरी।
हाथ नचावत आवति ग्वारिनि, जीभ करै किन थोरी।
कब सीकैं चढ़ि माखन खायौ, कब दधि-मटुकी फोरि।
अँगुरी करि कबहूँ नहिं चाखत, घरहीँ भरी कमोरी।
इतनी सुनत घोष की नारी, रहसि चली मुख मोरी।
सूरदास जसुदा कौ नंदन, जो कछु करै सो थोरी ॥२६३॥
॥६११॥

राग सारंग

कहै जनि ग्वारिनि झूठी बात।
कबहूँ नहिं मनमोहन मेरौ, धेनु चरावन जात।
बोलत है बतियाँ तुतरौहीं, चलि चरननि न सकात।
कैसैँ करै माखन की चोरी, कत चोरी दधि खात।
देहीँ लाइ तिलक केसरि कौ, जोबन-मद इतराति।
सूरज दोष देति गौविंद कौं, गुरु लोगनि न लजाति ॥२६४॥
॥३१२॥

राग नटनारायन

मेरे लाड़िले हो तुम जाउ न कहूँ।
तेरेही काजैं गोपाल, सुनहु लाड़िले लाल, राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ।
काहे कौं पराऐं जाइ, करत इते उपाइ, दूध-दही-घृत अरु माखन तहूँ।
करति कछू न कानि, बकति हैं कटु बानि, निपट निलज बैन बिलखि सहूँ।

ब्रज की ढीठी गुवारि, हाट की बेचनहारि, सकुचैं न देत गारि
झगरत हूँ।
कहाँ लगि सहौं रिस, बकत भई हौं कूस, इहिं मिस सूर स्याम-
बदन चहूँ ॥
॥२६५॥६१३॥

राग कान्हरौ

इन अँखियनि आगैं तैं मोहन, एकौ पल जनि होहु नियारे।
हौं बलि गई, दरस देखैं बिनु, तलफत हैं नैननि के तारे।
औरौ सखा बुलाइ आपने, इहिं आँगन खेलौ मेरे बारे।
निरखति रहौं फनिग की मनि ज्यौं, सुंदर बाल-बिनोद तिहारे।
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, ब्यंजन खाटे, मीठे, खारे।
सूर स्याम जोइ-जोइ तुम चाहौ, सोइ-सोइ माँगि लेहु मेरे बारे ॥
॥२६६॥६१४॥

राग धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि-बासर मोहिं बहुत सतायौ अब हरि हाथहिं आए।
माखन-दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तौ घात परे हौ लालन, तुम्हैं भलैं मैं चीन्ही।
दोउ भुज पकरि, कह्यौ कहँ जैहौ, माखन लेउँ मँगाइ।
तेरो सौं मैं नैंकुँ न खायौ, सखा गए सब खाइ।
मुख तन चितै, बिहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ।
लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ ॥२६७॥
॥६१५॥

राग धनाश्री

मथति ग्वालि हरि देखी जाइ।
गए हुते माखन की चोरी, देखत छबि रहे नैन लगाइ।
डोलत तनु सिर-अंचल उघर्‌यौ, बेनी पीठि डुलति इहिं भाइ।
बदन-इंदु पय-पान करन कौं, मनहुँ उरग उड़ि लागत धाइ।
निरखि स्याम-अँग-अँग-प्रति-सोभा, भुज भरि धरि, लीन्हौ उर लाइ।
चितै रही जुवती हरि कौ मुख, नैन-सैन दै, चितहिं चुराइ।

तन-मन की गति-मति बिसराई, सुख दीन्हौं कछु माखन खाइ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि तुम्हरी लीला को कहै गाइ ॥२६८॥
॥६१६॥

राग बिलावल

दधि लै मथति ग्वालि गरबीली।
रुनक-झुनक कर कंकन बाजै, बाहँ डुलावत ढीली।
भरी गुमान बिलोवति ठाढ़ी, अपनैं रंग रँगीली।
छवि की उपमा कहि न परति है, या छबि की जु छबीली।
अति बिचित्र गति कहि न जाइ अब, पहिरे सारी नीली।
सूरदास प्रभु माखन माँगत नाहिं न देति हठीली ॥२६६॥
॥६१७॥

राग ललित

देखी हरि मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी।
जोवन मदमाती इतराती, बेनि ढुरति कटि लौं छवि बाढ़ी।
दिन थोरी, भोरी, अति गोरी, देखत ही जु स्याम भए चाढ़ी।
करषति है, दुहुँ करनि मथानी, सोभा-रासि भुजा सुभ काढ़ी।
इत-उत अंग मुरत झकझोरत, अँगिया बनी कुचनि सौं माढ़ी।
सूरदास प्रभु रीझि थकित भए मनहुँ काम साँचे भरि काढ़ी।
॥३००॥६१८॥

राग बिलावल

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।
देखी जाइ मथति दधि ठाढ़ी, आपु लगे खेलन द्वारे पर।
फिरि चितई, हरि दृष्टि गए परि, बोलि लए हरुएँ सूनैं घर।
लिए लगाइ कठिन कुच कैं बिच, गाढ़ैं चाँपि रही अपनैं कर।
उमँगि अंग अँगिया उर दरकी, सुधि बिसरी तन की तिहिं औसर।
तब भए स्याम बरष द्वादस के, रिझै लई जुवती वा छवि पर।
मन हरि लियौ तनक से ह्वै गए देखि रही सिसु-रूप मनोहर।
माखन लै मुख धरति स्याम कैं सूरज प्रभु रति-पति नागर-बर।
॥३०१॥६१६॥

राग रामकली

देखौ मेरे भाग की सुभ घरी।
नवल रूप, किसोर मूरति, कंठ लै भुज भरी।
जाके चरन-सरोज गंगा, संभु लै सिर धरी।
जाके चरन-सरोज परसत, सिला सुनियत तरी।
जाके बदन-सरोज निरखत आस सिगरी भरी।
सूर प्रभु के संग बिलसत सकल कारज सरी ॥३०२॥
॥९२०॥

राग बिलावल

ग्वालिनि उरहन कैं मिस आई।
नंद-नँदन तन-मन हरि लीन्हौ, बिनु देखैं छिन रह्यौ न जाई।
सुनहु महरि अपने सुत के गुन, कहा कहौं किहिं भाँति बनाई।
चोली फारि, हार गहि तोर्‍यौ, इन बातनि कहौ कौन बड़ाई।
माखन खाइ, खवायौ ग्वालनि, जो उबर्‍यौ सो दियौ लुढ़ाई।
सुनहु सूर, चोरी सहि लीन्ही, अब कैसैं सहि जाति ढिठाई ॥३०३॥
॥९२१॥

राग सारंग

झूठेंहिं मोहिं लगावति ग्वारि।
खेलत तैं मोहिं बोलि लियौ इहिं, दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि।
मेरे कर अपनैं उर धारति, आपुन ही चोली धरि फारि।
माखन आपुहिं मोहिं खवायौ, मैं धौं कब दीन्हौ है डारि।
कह जानै मेरौ बारौ भोरौ, झुकी महरि दै-दै मुख गारि।
सूर स्याम ग्वालिनि मन मोह्यौ, चितै रही इकटकहिं निहारि ॥३०४॥
॥९२२॥

राग गौरी

कबहिं करन गयौ माखन चोरी।
जानै, कहा कटाच्छ तिहारे, कमल नैन मेरौ इतनक सो री।
दै-दै दगा बुलाइ भवन मैं भुज भरि भेंटति उरज-कठोरी।
उर नख चिन्ह दिखावत डोलति, कान्ह चतुर भए तू अति भोरी?

आवति नित-प्रति उरहन कैं मिस, चितै रहति ज्यौं चंद चकोरी।
सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौ अंतर प्रीति जाति नहिं तोरी॥३०५॥
॥९२३॥

राग गौरी

कहा कहौं हरि के गुन तोसौं।
सुनहु महरि अबहीं मेरैं घर, जे रँग कीन्हे मो सौं।
मैं दधि मथति आपनैं मंदिर, गए तहाँ इहिं भाँति।
मो सौं कह्यौ बात सुनु मेरी, मैं सुनि कै मुसुकाति।
बाहँ पकरि चोली गहि फारी, भरि लीन्ही अँकवारि।
कहत न बनै सकुच की बातैं, देखौ हृदय उघारि।
माखन खाइ निदरि नीकी बिधि, यह तेरे सुत की घात।
सूरदास प्रभु तेरे आगैं, सकुचि तनक ह्वै जात॥३०६॥९२४॥

राग गौड़ मलार

स्याम तन देखि री आपु तन देखिऐ।
भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिऐ।
कहाँ मेरे कुँवर पाँचही बरष के, रोइ अजहूँ सु पै-पान माँगैं।
तू कहाँ ढीठ, जोबन-प्रमत सुंदरी, फिरति इठलाति गोपाल आगैं।
कहाँ मेरे कान्ह की तनक सी आँगुरी, बड़े बड़े नखनि के चिह्न तेरैं।
मष्ट करु, हँसैंगे लोग, अँकवारि भरि भुजा पाई कहाँ स्याम मेरैं।
नैननि झुकी सु मन मैं हँसी नागरी, उरहनौ देत रुचि अधिक बाढ़ी।
सुनि सखी सूर सरबस हर्‌यौ साँवरैं, अनउतर महरि कैं द्वार ठाढ़ी।
॥३०७॥९२५॥

राग गौरी

कत हो कान्ह काहु कैं जात।
ये सब ढीठ गरब गोरस कैं, मुख सँभारि बोलतिं नहिं बात।
जोइ-जोइ रुचै सोइ तुम मोपै माँगि लेहु किन तात।
ज्यौं-ज्यौं बचन सुनौं मुख अमृत, त्यौं-त्यौं सुख पावत सब गात।
कैसी टेव परी इन गोपिनि, उरहन कैं मिस आवतिं प्रात।
सूर सु कत हठि दोष लगावतिं घरही को माखन नहिं खात॥३०८॥
॥९२६॥

घर गोरस जनि जाहु पराए।
दूध भात भोजन घृत अंमृत अरु आछौ करि दह्यौ जमाए।
नव लख धेनु खरिक घर तेरैं, तू कत माखन खात पराए।
निलज ग्वालिनी देतिं उरहनौ, वै झूठैं करि वचन वनाए।
लघु-दीरघता कछू न जानैं, कहुँ वछरा कहुँ धेनु चराए।
लघु-दीरघता कछू न जानैं, कहुँ वछरा कहुँ धेनु चराए।
सूरदास प्रभु मोहन नागर, हँसि-हँसि जननी कंठ लगाए ॥२०६॥
॥६२७॥

राग बिलावल

(कान्ह कौं) ग्वालिनि दोष लगावति जोर।
इतनक दधि माखन कैं कारन कवहिं गयौ तेरी ओर।
तू तौ धन-जोबन की माती, नित उठि आवति भोर।
लाल कुँअर मेरौ कछू न जानै, तू है तरुनि किसोर।
कापर नैन चढ़ाए डोलति, व्रज मैं तिनुका तोर।
सूरदास जसुदा अनखानी, यह जीवन - धन मोर ॥२१०॥
॥६२८॥

राग देवगंधार

कान्हहिं बरजति किन नँदरानी।
एक गाउँ कैं बसत कहाँ लौं, करैं नंद की कानी।
तुम जो कहति हौ, मेरौ कन्हैया, गंगा कैसौ पानी।
बाहिर तरुन किसोर बयस बर, बाट घाट कौ दानी।
बचन बिचित्र, कमल-दल-लोचन, कहत सरस बर बानी।
अचरज महरि तुम्हारे आगैं, अबै जीभ तुतरानी।
कहँ मेरौ, कान्ह कहाँ तुम ग्वारिनि, यह बिपरीति न जानी।
आवति सूर उरहने कैं मिस, देखि कुँवर मुसुकानी ॥२११॥
॥६२६॥

राग धनाश्री

माखन माँगि लियौ जसुमति सौं।
माता सुनत तुरत लै आई, लगी खवावन रति सौं।

मैया मैं अपनैं कर खैहौं, धरि दै मेरैं हाथ।
माखन खात चले उठि खेलन, सखा जुरे सब साथ।
मथुरा जात ग्वालिनी देखी, चरचि लई हरि आइ।
सूर स्याम ता घर के पाछैं, बैठि रहे अरगाइ ॥३१२॥
॥६३०॥

राग धनाश्री

मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ।
मेरे घर कौ द्वार, सखी री, तबलौं देखति रहियौ।
दधि-माखन द्वै माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियौ।
और नहीं या ब्रज मैं कोऊ, नंद-सुवन सखि लहियौ।
ये सब बचन सुने मन-मोहन, वहै राह मन गहियौ।
सूर पौरि लौं गई न ग्वालिनि, कूदि परे दै धहियौ ॥३१३॥
॥६३१॥

राग नट

देख्यौ जाइ स्याम घर भीतर।
अबहीं निकसि कहत भई सोई, फिरि आई तुम्हरैं घर।
सखा साथ के चमकि गए सब, गह्यौ स्याम कर धाइ।
औरनि जानि जान मैं दीन्हौ, तुम कहँ जाहु पराइ?
बहुत अचगरी करत फिरत हौ, मैं पाए करि घात।
बाहँ पकरि लै चली महरि पै, करत रहत उतपात।
देखौ महरि, आपने सुत कौं, कबहुँ नहिं पतियाति।
बैठे स्याम भवन हीं अपनैं, चितै-चितै पछिताति।
बाहँ पकरि तू ल्याई काकौं, अति बेसरम गँवारि।
सूर स्याम मेरे आगैं खेलत, जोबन-मद-मतवारि ॥३१४॥
॥६३२॥

राग सारग

जसुदा तू जो कहति ही मोसौं।
दिन प्रति देत उरहनौ आवति, कहा तिहारैं कोसौं।
वहै उरहनौ सत्य करन कौं, गोविंदहिं गहि ल्याई।
देखन चली जसोदा सुत कौं ह्वै गए सुता पराई।

तेरे नैन, हृदय, मति नाहीं, वदन देखि पहिचानै।
सुनु री सखी कहति डोलति है या कन्या सौं कान्है।
तैं तौ नाम स्याम मेरे कौ, सूधौ करि है पायौ।
सूरदास प्रभु देखि खरिक तैं अवहीं आपै आयौ ॥३१५॥
॥९३३॥

राग गौरी

रही ग्वालि हरि कौ मुख चाहि।
कैसे चरित किए हरि अवहीं वार-वार सुमिरति करताहि।
बाहँ पकरि घर तैं लै आई, कहा चरित कीन्हे हैं स्याम।
जात न वनै कहत नहिं आवै, कहति महरि तू ऐसी वाम।
जानी वात तिहारी सबकी, जसुमति कहति इहाँ तैं जाहि।
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे, वुधि वल करि को जीतै ताहि ॥३१६॥
॥९३४॥

राग गौरी

गए स्याम ग्वालिनि घर सूनैं।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, वासन फोरि किए सब चूनै।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि कर्यौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं, हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिं औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।
दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हे, गई महरि के आगैं।
सूरदास अब बसै कौन ह्याँ, पति रहिहै ब्रज त्यागैं ॥३१७॥
॥९३५॥

राग बिलावल

ऐसो हाल मेरैं घर कीन्हौ, हौं ल्याई तुम पास पकरिकै।
फोरि भाँड़ दधि माखन खायौ, उबर्यौ सो डार्यौ रिस करिकै।
लरिका छिरकि मही सौं देखे, उपज्यौ पूत सपूत महरि कै।
बड़ौ माट घर धर्यौ जुगनि कौ, टूक-टूक कियौ सखनि पकरि कै।
पारि सपाट चले तब पाए, हौं ल्याई तुमहीं पै धरि कै।
सूरदास प्रभु कौं यौं राखौ, ज्यौं राखिए गज मत्त जकरि कै ॥३१८॥
॥९३६॥

राग कान्हरौ

करत कान्ह ब्रज-घरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि-पुनि, उरहन लै आवति हैं सगरी।
बड़े बाप के पूत कहावत, हम वै वास वसत इक बगरी।
नंदहु तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रज नगरी।
जननी कैं खीझत हरि रोए, झूठहिं मोहिं लगावति धगरी।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती हैं लँगरी॥३१६॥
॥६३७॥

राग सारंग

नितही नित उठि आवति भोर।
मेरे बारेहिं दोष लगावति, ग्वालिनि जोबन जोर।
दूध दही माखन कैं कारन, कब गयौ तेरी ओर।
धन माती इतराती डोलै सकुच नहीं करै सोर।
मेरौ कन्हैया कहाँ तनक सौ, तू है कुचनि कठोर।
तेरे मन कौ यहाँ कौन है, लह्यौ कटक कौ छोरं।
का पर नैन चलावति आवति,जाति न तिनका तोर।
सुनौ सूर ग्वालिनि की बातैं, त्रासति कान्ह जु मोर॥३२०॥
॥६३८॥

राग नट

मेरौ माई कौन कौ दधि चोरै।
मेरै बहुत दई कौ दीन्हौ लोग पियत हैं औरै।
कहा भयौ तेरे भवन गए जो पियौ तनक लै भोरै।
ता ऊपर काहैं गरजति है, मनु आई चढ़ि घोरै।
माखन खाइ, मह्यौ सब डारै, बहुरौ भाजन फोरै।
सूरदास यह रसिक ग्वालिनी, नेह नवल सँग जोरै॥३२१॥
॥६३९॥

राग रामकली

अपनौ गाउँ लेउ नँदरानी।
बड़े बाप की बेटी, पूतहिं भली पढ़ावति बानी।

सखा-भीर लै पैठत घर मैं आपु खाइ तौ सहिऐ।
मैं जब चली सासुहैं पकरन, तब के गुन कहा कहिऐ।
भाजि गए दुरि देखत कतहूँ, मैं घर पौढ़ी आइ।
हरैं-हरैं बेनी गहि पाछैं, बाँधी पाटी लाइ।
सुनु मैया, याके गुन मोसौं, इन मोहिं लयौ बुलाई।
दधि मैं पड़ी सैंत की मोपै चींटी सबै कढ़ाई।
टहल करत मैं याके घर की यह पति सँग मिलि सोई।
सूर बचन सुनि हँसी जसोदा, ग्वालि रही मुख गोई ॥३२२॥
॥६४०॥

राग सारग

महरि तैं ब्रज चाहति कछु और।
बात एक मैं कहीं कि नाहीं, आपु लगावति झौर।
जहाँ बसे पति नाहिं आपनी, तजन कह्यौ सो ठौर।
सुत के भएँ बधाई पाई, लोगनि देखत हौर।
कान्ह पठाइ देति घर लूटन, कहति करौ यह गौर।
ब्रज घर समुझि लेहु महरैटी, कहत सूर कर जोर ॥३२३॥
॥६४१॥

राग नटनारायन

लोगनि कहत झुकति तू बौरी।
दधि माखन गाँठी दै राखति, करत फिरत सुत चोरी।
जाके घर की हानि होति नित, सो नहिं आनि कहै री ?
जाति-पाँति के लोग न देखति, और बसैहै नैरी।
घर-घर कान्ह खान कौं डोलत, बड़ी कृपन तू है री।
सूर स्याम कौं जब जोइ भावै, सोइ तबहीं तू दै री ॥३२४॥
॥६४२॥

राग मलार

महरि तैं बड़ी कृपन है माई।
दूध - दही बहु बिधि कौ दीनौ, सुत सौं धरति छपाई।
बालक बहुत नहीं री तेरैं, एकै कुँवर कन्हाई।
सोऊ तौ घरहीं घर डोलतु, माखन खात चोराई।

वृद्ध वयस, पूरे पुन्यनि तैं, तैं बहुतै निधि पाई।
ताहू के खैवे-पीवे कौं, कहा करति चतुराई।
सुनहु न वचन चतुर नागरि के जसुमति नंद सुनाई।
सूर स्याम कौं चोरी कैं मिस, देखन है यह आई ॥३२५॥
॥९४३॥

राग नट

अनत सुत गोरस कौं कत जात ?
घर सुरभी कारी धौरी कौ माखन माँगि न खात।
दिन प्रति सबै उरहने कैं मिस, आवति है उठि प्रात।
अनलहते अपराध लगावति ; बिकट बनावति बात।
निपट निसंक बिवादति समुख, सुनि-सुनि नंद रिसात।
मोसौं कहति कृपन तेरैं घर ढोटाहू न अघात।
करि मनुहारि उठाइ गोद लै, बरजति सुत कौं मात।
सूर स्याम नित सुनत उरहनौ, दुख पावत तेरौ तात ॥३२६॥
॥९४४॥

राग बिलावल

भाजि गयौ मेरे भाजन फोरि।
लरिका सहस एक सँग लीन्हे, नाचत फिरत साँकरी खोरि।
मारग तौ कोउ चलन न पावत, धावत गोरस लेत अँजोरि।
सकुच न करत, फाग सी खेलत, तारी देत, हँसत मुख मोरि।
बात कहौं तेरे ढोटा की, सब ब्रज बाँध्यो प्रेम की डोरि।
टोना सौ पढ़ि नावत सिर पर, जो भावत सो लेत है छोरि।
आपु खाइ सो सब हम मानैं, औरनि देत सिकहरैं तोरि।
सुर सुतहिं बरजौ नँदरानी, अब तोरत चोली-बँद-डोरि ॥३२७॥
॥९४५॥

राग नट

हरि सब भाजन फोरि पराने।
हाँक देत पैठे दै पेला नैंकु न मनहिं डराने।
सींके छोरि, मारि लरिकनि कौं, माखन-दधि सब खाइ।
भवन मच्यौ दधि काँदौ, लरिकनि रोवत पाए जाइ।

सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरौ सौ कहुँ नाहिं।
हाटनि-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ, चलत नहीं डरपाहिं।
रितु आए कौ खेल, कन्हैया सब दिन खेलत फाग।
रोकि रहत गहि गली साँकरी, टेढ़ी बाँधत पाग।
बारे तैं सुत ये ढँग लाए, मनहीं मनहिं सिहाति।
सुनैं सूर ग्वालिनि की बातैं, सकुचि महरि पछिताति ॥३२८॥
॥९४६॥

राग सारंग

कन्हैया तू नहिं मोहिं डरात।
षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर, चोरी करि करि खात।
बकत-बकत तोसौं पचिहारी, नैंकुहुँ लाज न आई।
ब्रज-परगन-सिकदार महर, तू, ताकी करत नन्हाई।
पूत सपूत भयौ कुल मेरैं, अब मैं जानी बात।
सूर स्याम अब लौं तुहिं बकस्यौ, तेरी जानी घात ॥३२९॥
॥९४७॥

राग गौरी

सुनु री ग्वारि कहौं इक बात।
मेरी सौं तुम याहि मारियौ, जबहीं पावौ घात।
अब मैं याहि जकरि बाँधौंगी, बहुतै मोहिं खिझायौ।
साटिनि मारि करौं पहुनाई, चितवत कान्ह डरायौ।
अजहूँ मानि, कह्यौ करि मेरौ, घर-घर तू जनि जाहिं।
सूर स्याम कह्यौ, कहूँ न जैहौं, माता मुख-तन चाहि ॥३३०॥
॥९४८॥

राग बिलावल

तेरैं लाल मेरौ माखन खायौ।
दुपहर दिवस जानि घर सूनौ, ढूँढ़ि-ढँढ़ोरि आपही आयौ।
खोलि किवार, पैठि मंदिर मैं, दूध-दही सब सखनि खवायौ।
ऊखल चढ़ि, सींके कौ लीन्हौ, अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ।
दिन प्रति हानि होति गोरस की, यह ढोटा कौनैं ढँग लायौ।
सूर स्याम कौं हटकि न राखै तैं ही पूत अनोखौ जायौ ॥ ३३१ ॥
॥९४९॥

राग बिलावल

हौं वारी रे मेरे तात।
काहे कौं लाल पराए घर कौ, चोरि-चोरि दधि माखन खात ?
गहि-गहि पानि मटुकिया रीती, उरहन कैं मिस आवत-जात।
करि मनुहार, कोसिबे कैं डर, भरि-भरि देति जसोदा मात।
फूटी चुरी गोद भरि ल्यावैं, फाटे चीर दिखावैं गात।
सूरदास स्वामी की जननी, उर लगाइ हँसि पूछति बात ॥३३२॥
॥९५०॥

राग रामकली

माखन खात पराए घर कौ।
नित प्रति सहस मथानी मथिऐ, मेघ-सब्द दधि-माट घमरकौ।
कितने अहिर जियत मेरैं घर, दधि मथि लै बेंचत महि मरकौ।
नव लख धेनु दुहत हैं नित प्रति, बड़ौ नाम है नंद महर कौ।
ताके पूत कहावत हौ तुम, चोरी करत उघारत फरकौ।
सूर स्याम कितनौ तुम खैहौ, दधि-माखन मेरैं जहँ-तहँ ढरकौ।
॥३३३॥९५१॥

राग रामकली

मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसैं करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ ॥३३४॥
॥९५२॥

राग बिलावल

तेरी सौं सुनु सुनु मेरी मैया।
आवत उघटि पर्‍यौ ता ऊपर, मारन कौं दौरी इक गैया।

ब्यानी गाइ बछरुवा चाटति, हौं पय पियत पतूखिनि लैया।
यहै देखि मोकौं बिजुकानी, भाजि चल्यौ कहि दैया दैया।
दोउ सींग बिच ह्वै हौं आयौ, जहाँ न कोऊ हो रखवैया।
तेरौ पुन्य सहाय भयौ है, उबर्‌यौ बाबा नंद-दुहैया।
याके चरित कहा कोउ जानै, बूझौ धौं संकर्षन भैया।
सूरदास स्वामी की जननी, उर लगाइ हँसि लेति बलैया।
॥३३५॥६५३॥

राग रामकली

जसुमति तेरौ बारौ कान्ह अतिही जु अचगरौ।
दूध-दही-माखन लै डारि देत सगरौ।
भोरहिं नित प्रतिही उठि, मोसौं करत झगरौ।
ग्वाल-बाल संग लिए घेरि रहै डगरौ।
हम-तुम सब बैस एक, कातैं को अगरौ।
लियौ दियौ सोई कछु, डारि देहु झगरौ।
सूर स्याम तेरौ अति, गुननि माहिं अगरौ।
चोली अरु हार तोरि छोरि लियौ सगरौ॥३३६॥
॥६५४॥

राग गौरी

ह्वाँ लगि नैंकु चलौ नँदरानी।
मेरे सिर की नई बहनियाँ, लै गोरस मैं सानी।
हमैं-तुम्है रिस-बैर कहाँ कौ, आनि दिखावत ज्यानी।
देखौ आइ पूत कौ करतब, दूध मिलावत पानी।
या ब्रज कौ बसिबौ हम छाँड्‌यौ, सो अपनै जिय जानी।
सूरदास ऊसर की बरषा थोरे जल उतरानी॥३३७॥
॥६५५॥

राग रामकली

देखौ माई या बालक की बात।
बन-उपबन, सरिता-सर मोहे, देखत स्यामल गात।
मारग चलत अनीति करत है, हठ करि माखन खात।
पीतांबर वह सिर तैं ओढ़त, अंचल दै मुसुकात।

तेरी सौं कहा कहौं जसोदा, उरहन देति लजात।
जब हरि आवत तेरे आगैं सकुचि तनक ह्वै जात।
कौन-कौन गुन कहौं स्याम के, नैकु न काहुँ डरात।
सूर स्याम मुख निरखि जसोदा, कहति कहा यह बात ॥३३८॥
॥९५६॥

राग बिलावल

सुनि-सुनि री तैं महरि जसोदा तैं सुत बड़ौ लड़ायौ।
इहिं ढोटा लै ग्वाल भवन मैं, कछु बिथर्‍यौ कछु खायौ।
काकैं नहीं अनौखौ ढोटा, किहिं न कठिन करि जायौ।
मै हूँ अपनैं औरस पूतैं बहुत दिननि मैं पायौ।
तैं जु गँवारि पकरि भुज याकी बदन दह्यौ लपटायौ।
सूरदास ग्वालिनि अति झूठी बरबस कान्ह बँधायौ ॥३३९॥
॥९५७॥

राग नट

नंद-घरनि सुत भलौ पढ़ायौ।
ब्रज-बीथिनि, पुर-गलिनि, घरै-घर, घाट-बाट सब सोर मचायौ।
लरिकनि मारि भजत काहू के, काहू कौ दधि-दूध लुटायौ।
काहू कै घर करत भँड़ाई, मैं ज्यौं त्यौं करि पकरन पायौ।
अब तौ इन्हैं जकरि धरि बाँधौं, इहिं सब तुम्हरौ गाउँ भजायौ।
सूर स्याम भुज गही नँदरानी, बहुरि कान्ह अपनै ढँग लायौ॥३४०॥
॥९५८॥

उलूखल-बंधन *राग गौरी*

ऐसी रिस मैं जौ धरि पाऊँ।
कैसे हाल करौं धरि हरि के, तुमकौं प्रगट दिखाऊँ।
साँटिया लिए हाथ नँदरानी, थरथरात रिस गात।
मारे बिना आजु जौ छाँडौं, लागै मेरैं तात।
इहिं अंतर ग्वारिनि इक औरै, धरे बाँह हरि ल्यावति।
भली महरि सूधौ सुत जायौ, चोली-हार बतावति।
रिस मैं रिस अतिहीं उपजाई, जानि जननि अभिलाष।
सूर स्याम भुज गहे जसोदा, अब बाँधौं कहि माष ॥३४१॥
॥९५९॥

राग सोरठ

जसुमति रिस करि-करि रजु करषै।
सुत हित क्रोध देखि माता कैं, मनहीं मन हरि हरषै।
उफनत छीर जननि करि व्याकुल, इहिं विधि भुजा छुड़ायौ।
भाजन फोरि दही सब डार्‌यौ, माखन कीच मचायौ।
लै आई जेँवरि अब बाँधौं, गरब जानि न बँधायौ।
अंगुर द्वै घटि होति सबनि सौं, पुनि-पुनि और मँगायौ।
नारद-साप भए जमलार्जुन, तिनकौं अब जु उधारौं।
सूरदास प्रभु कहत भक्त-हित जनम-जनम तनु धारौं ॥३४२॥
॥९६०॥

राग रामकली

जसोदा एतौ कहा रिसानी।
कहा भयौ जौ अपने सुत पै, महि ढरि परी मथानी?
रोषहिं रोष भरे दृग तेरे, फिरत पलक पर पानी।
मनहुँ सरद के कमल कोष पर मधुकर मीन सकानी।
स्रम जल किंचित निरखि बदन पर, यह छबि अति मन मानी।
मनौ चंद नव उमँगि सुधा भुव ऊपर बरषा ठानी।
गृह-गृह गोकुल दई दाँवरी बाँधति भुज नँदरानी।
आपु बँधावत, भक्तनि छोरत, बेद बिदित भई बानी।
गुन लघु चरचि करति स्रम जितनौ, निरखि बदन मुसुकानी।
सिथिल अंग सब देखि सूर प्रभु-सोभा-सिंधु-तिरानी ॥३४३॥
॥९६१॥

राग सारंग

बाँधौं आजु कौन तोहिं छोरै।
बहुत लँगरई कीन्हौ मोसौं, भुज गहि रजु ऊखल सौं जोरै।
जननी अति रिस जानि बँधायौ, निरखि बदन, लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रज-जुवतीं सब धाईं कहतिं कान्ह अब क्यौं नहिं छोरै।
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा, मारन कौं साँटी कर तोरै।
साँटी देखि ग्वालि पछितानी, बिकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै।

सुनहु महरि ऐसी न बूझिऐ सुत बाँधति माखन दधि थोरैं।
सूर स्याम कौं बहुत सतायौ, चूक परी हम तैं यह भोरैं ॥३४४॥
॥९६२॥

राग आसावरी

जाहु चली अपनैं-अपनैं घर।
तुम हीं सबनि मिलि ढीठ करायौ, अब आईं छोरन बर।
मोहिं अपने बाबा की सौंहैं, कान्हहिं अब न पत्याउँ।
भवन जाहु अपनैं-अपनैं सब, लागति हौं मैं पाउँ।
मोकौं जनि बरजौ जुवती कोउ, देखौ हरि के ख्याल।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, बड़े नंद के लाल ॥३४५॥
॥९६३॥

राग सोरठ

जसुदा तेरौ मुख हरि जोवै।
कमलनैन हरि हिचिकिनि रोवै, बंधन छोरि जसोवै।
जौ तेरौ सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोखि कौ जायौ।
कहा भयौ जौ घर कैं ढोटा, चोरी माखन खायौ।
कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ, जाख न पूजन पायौ।
तिहिं घर देव पितर काहे कौं, जा घर कान्हर आयौ।
जाकौ नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै।
सोई इहाँ जेंवरी बाँधे, जननि साँटि लै डाँटै।
दुखित जनि दोउ सुत कुबेर के ऊखल आपु बँधायौ।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत ही देह धारि कै आयौ ॥३४६॥
॥९६४॥

राग बिहागरौ

देखौ माई कान्ह हिलकियनि रोवै।
इतनक मुख माखन लपटान्यौ, डरनि आँसुवनि धोवै।
माखन लागि उलूखल बाँध्यौ, सकल लोग ब्रज जोवै।
निरखि कुरुख उन बालनि की दिस, लाजनि अँखियनि गोवै।
ग्वाल कहैं धनि जननि हमारी, सुकर सुरभि नित नोवै।
बरबस ही बैठारि गोद मैं, धारैं बदन निचोवै।

ग्वालि कहैं या गोरस कारन, कत सुत की पति खोवै ?
आनि देहिं अपने घर तैं हम, चाहति जितौ जसोवै।
जब-जब बंधन छोर्यौ चाहनिं, सूर कहै यह को वै।
मन माधौ-तन, चित गोरस मैं, इहिं बिधि महरि बिलोवै।
॥३४७॥९६५॥

राग सारंग

(माई) नैंकुहूँ न दरद करति, हिलकिनि हरि रोवै।
वज्रहु तैं कठिन हियौ, तेरौ है जसोवै।
पलना पौढ़ाइ जिन्हैं बिकट बाउ काटै।
उलटे भुज बाँधि तिन्हैं लकुट लिए डाँटै।
नैंकुहूँ न थकत पानि, निरदई अहीरी।
अहो नंदरानि, सीख कौन पै लही री।
जाकौं सिव सनकादिक सदा रहत लोभा।
सूरदास प्रभु कौ मुख निरखि देखि सोभा ॥३४८॥
॥९६६॥

राग बिहागरौ

कुँवर जल लोचन भरि-भरि लेत।
बालक बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत।
छोरि उदर तैं दुसह दाँवरी, डारि कठिन कर बैंत।
कहि धौं री तोहिं क्यौं करि आवै, सिसु पर तामस एत।
मुख आँसू अरु माखन-कनुका, निरखि नैन छबि देत।
मानौ स्रवत सुधानिधि मोती, उडुगन अवलि समेत।
ना जानौं किहिं पुन्य प्रगट भए इहिं ब्रज नंद-निकेत।
तन-मन-धन न्यौछावरि कीजै सूर स्याम कैं हेत ॥३४९॥
॥९६७॥

राग केदारौ

हरि के बदन तन धौं चाहि।
तनक दधि कारन जसोदा इतौ कहा रिसाहि।
लकुट कैं डर डरत ऐसैं सजल सोभित डोल।
नील-नीरज-दल मनौ अलि-अंसकनि कृत लोल।

बात बस समृनाल जैसैं प्रात पंकज कोस।
नमित मुख इमि अधर सूचत, सकुच मैं कछु रोस।
कतिक गोरस हानि, जाकौं करति है अपमान।
सूर ऐसे बदन ऊपर वारिऐ तन-प्रान ॥ ३५० ॥
॥९६८॥

राग केदारौ

मुख-छबि देखि हो नँद-घरनि।
सरद निसि कौ अंसु अगनित इंदु आभा हरनि।
ललित श्री गोपाल-लोचन-लोल-आँसू-ढरनि।
मनहुँ वारिज बिथकि बिभ्रम, परे पर-बस परनि।
कनक-मनि-मय-जटित-कुंडल-जोति जगमग करनि।
मित्र-मोचन मनहुँ आए, तरल गति द्वै तरनि।
कुटिल कुंतल, मधुप मिलि मनु, कियौ चाहत लरनि।
बदन कांति बिलोकि सोभा सकै सूर न बरनि ॥३५१॥
॥९६९॥

राग केदारौ

मुख-छबि कहा कहौं बनाइ।
निरखि निसि-पति बदन-सोभा, गयौ गगन दुराइ।
अमृत अलि मनु पिवन आए, आइ रहे लुभाइ।
निकसि सर तैं मीन मानौ, लरत कीर छुराइ।
कनक-कुंडल-स्रवन बिभ्रम कुमुद निसि सकुचाइ।
सूर हरि की निरखि सोभा कोटि काम लजाइ ॥३५२॥
॥९७०॥

राग केदारौ

हरि-मुख देखि हो नँद-नारि।
महरि ऐसे सुभग सुत सौं, इतौ कोह निवारि।
सरद - मंजुल - जलज - लोचन लोल, चितवनि दीन।
मनहुँ खेलत हैं परस्पर, मकरध्वज द्वै मीन।
ललित कन-संजुत कपोलनि लसत कज्जल अंक।
मनहुँ राजत रजनि, पूरन कलापति सकलंक।

बेगि बंधन छोरि, तन-मन वारि, लै हिय लाइ।
नवल स्याम किसोर ऊपर, सूर जन वलि जाइ ॥३५३॥
॥९७१॥

राग बिहागरौ

कहौ तौ माखन ल्यावैं घर तैं।
जा कारन तू छोरति नाहीं, लकुट न डारति कर तैं।
सुनहु महरि ऐसी न बूझियै, सकुचि गयौ मुख डर तैं।
ज्यौं जल-रुह ससि-रस्मि पाइ कै, फूलत नाहिं न सर तैं।
ऊखल लाइ भुजा धरि बाँधी, मोहनि मूरति वर तैं।
सूर स्याम-लोचन जल बरषत जनु मुकुता हिमकर तैं ॥३५४॥
॥९७२॥

राग कल्यान

कहन लगीं अब बढ़ि-बढ़ि बात।
ढोटा मेरौ तुमहिं बँधायौ, तनकहिं माखन खात।
अब मोहिं माखन देति मँगाए, मेरैं घर कछु नाहिं!
उरहन कहि-कहि साँझ सवारैं, तुमहिं बँधायौ याहि।
रिसही मैं मोकौं गहि दीन्हौ, अब लागीं पछितान।
सूरदास अब कहति जसोदा, बूझ्यौ सबकौ ज्ञान ॥३५५॥
॥९७३॥

राग धनाश्री

कहा भयौ जौ घर कैं लरिका चोरी माखन खायौ।
अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि को जायौ।
बालक अजौं अजान न जानै केतिक दह्यौ लुठायौ।
तेरौ कहा गयौ? गोरस को गोकुल अंत न पायौ।
हा हा लकुट त्रास दिखरावति, आँगन पास बँधायौ।
रुदन करत दोउ नैन रचे हैं, मनहुँ कमल-कन छायौ।
पौढ़ि रहे धरनी पर तिरछैं बिलखि बदन मुरझायौ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, हँसि करि कंठ लगायौ ॥३५६॥
॥९७४॥

राग धनाश्री

चित दै चितै तनय मुख ओर।
सकुचत सीत भीत जलरुह ज्यौं, तुव कर लकुट निरखि सखि घोर।
आनन ललित स्रवत जल सोभित, अरुन चपल लोचन की कोर।
कमल-नाल तैं मृदुल ललित भुज ऊखल बाँधे दाम कठोर।
लघु अपराध देखि बहु सोचति, निरदय हृदय वज्र सम तोर।
सूर कहा सुत पर इतनी रिस कहि इतनै कछु माखन-चोर।
॥३५७॥९७५॥

राग बिलावल

जसुदा देखि सुत की ओर।
बाल बैस रसाल पर, रिस इती कहा कठोर।
बार बार निहारि तुव तन, नमित-मुख दधि-चोर।
तरनि किरनहिं परसि मानौ, कुमुद सकुचत भोर।
त्रास तैं अति चपल गोलक, सजल सोभित छोर।
मीन मानौ बेधि बंसी, करत जल झकझोर।
देत छवि अति गिरत उर पर अंबु-कन के जोर।
ललित हिय जनु मुक्त-माला, गिरति टूटैं डोर।
नंद-नंदन जगत-बंदन करत आँसू कोर।
दास सूरज मोहिं सुख-हित निरखि नंदकिसोर ॥३५८॥९७६॥

राग धनाश्री

चितै धौं कमल-नैन की ओर।
कोटि चंद वारौं मुख-छवि पर ए हैं साहु कै चोर।
उज्ज्वल अरुन असित दीसति हैं, दुहुँ नैननि की कोर।
मानौ सुधा पान कैं कारन, बैठे निकट चकोर।
कतहिं रिसाति जसोदा इनसौं, कौन ज्ञान है तोर।
सूर स्याम बालक मनमोहन, नाहिंन तरुन किसोर ॥३५९॥
॥९७७॥

राग नटनारायनी

देखि री देखि हरि बिलखात।
अजिर लोटत राखि जसुमति, धूरि-धूसर गात।

मूँदि मुख छिन सुसुकि रोवत, छिनक मौन रहात।
कमल मधि अलि उड़त, सकुचत, पच्छ दल-आघात।
चपल दृग, पल भरे अँसुवा, कछुक ढरि-ढरि जात।
अलप जल पर सीप द्वै लखि, मीन मनु अकुलात।
लकुट कैं डर ताकि तोहिं तब पीत पट लपटात।
सूर प्रभु पर वारियै ज्यौं, भलेहिं माखन खात ॥३६०॥
॥६७८॥

राग सारंग

कब के बाँधे ऊखल दाम।
कमल-नैन बाहिर करि राखे तू बैठी सुखधाम।
है निरदई, दया कछु नाहीं, लागि रही गृह काम।
देखि छुधा तैं मुख कुम्हिलानौ, अति कोमल तन स्याम।
छोरहु बेगि भई बड़ी बिरियाँ, बीति गए जुग जाम।
तेरैं त्रास निकट नहिं आवत बोलि सकत नहिं राम।
जन-कारन भुज आपु बँधाए, बचन कियौ रिषि ताम।
ताही दिन तैं प्रगट सूर प्रभु यह दामोदर नाम ॥३६१॥
॥६७९॥

राग गौरी

वारौं हौं वे कर जिन हरि कौ वदन छुयौ
वारौं रसना सो जिहिं बोल्यौ है तुकारि।
वारौं ऐसी रिस जो करति सिसु बारे पर
ऐसौ सुत कौन पायौ मोहन मुरारि।
ऐसी निरमोही माई महरि जसोदा भई
बाँध्यौ है गोपाल लाल बाहँनि पसारि।
कुलिसहुँ तैं कठिन छतिया चितै री तेरी
अजहूँ द्रवति जो न देखति दुखारि।
कौन जानै कौन पुन्य प्रगटे हैं तेरैं आनि
जाकौं दरसन काज जपै मुख-चारि।
केतिक गोरस हानि जाकौ सूर तोरै कानि।
डारौं तन स्याम रोम-रोम पर वारि ॥३६२॥
॥६८०॥

राग सोरठ

(जसोदा) तेरौ भलौ हियौ है माई ।
कमल-नैन माखन कैं कारन, बाँधे ऊखल ल्याई ।
जो संपदा देव - मुनि - दुर्लभ, सपनैंहु देइ न दिखाई ।
याही तैं तू गर्व भुलानी, घर बैठे निधि पाई ।
जो मूरति जल-थल मैं व्यापक निगम न खोजत पाई ।
सो मूरति तैं अपनैं आँगन, चुटकी दै जु नचाई ।
तब काहू सुत रोवत देखति, दौरि लेति हिय लाई ।
अब अपने घर के लरिका सौं इती करति निठुराई !
बारंबार सजल लोचन करि चितवत कुँवर कन्हाई ।
कहा करौं, बलि जाउँ, छोरि तू, तेरी सौंह दिवाई ।
सुर पालक, असुरनि उर सालक, त्रिभुवन जाहि डराई ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, निगम नेति नित गाई ॥३६३॥
॥९८१॥

राग केदारौ

देखि री नंद-नंदन-ओर ।
त्रास तैं तन त्रसित भए हरि, तकत आनन तोर ।
बार बार डरात तोकौं, बरन बदनहि थोर ।
मुकुर-मुख, दोउ नैन ढारत, छनहिं छन छबि-छोर ।
सजल चपल कनीनिका पल अरुन ऐसैं डोर (ल) ।
रस भरे अंबुजनि भीतर भ्रमत मानौ भौंर ।
लकुट कैं डर देखि जैसे भए स्रोनित ओर ।
लाइ उरहिं, बहाइ रिस जिय, तजहु प्रकृति कठोर ।
कछुक करुना करि जसोदा, करति निपट निहोर ।
सूर स्याम त्रिलोक की निधि, भलैंहि माखन-चोर ॥३६४॥
॥९८२॥

राग धनाश्री

तब तैं बाँधे ऊखल आनि ।
बालमुकुंदहि कत तरसावति, अति कोमल अँग जानि ।
प्रातकाल तैं बाँधे मोहन, तरनि चढ़्यौ मधि आनि ।
कुम्हिलानौ मुख चंद दिखावति, देखौ धौं नँदरानि ।

तेरैं त्रास तैं कोउ न छोरत, अब छोरौ तुम आनि।
कमलनैन बाँधेही छाँड़े, तू बैठी मनमानि।
जसुमति के मन के सुख-कारण आपु बँधावत पानि।
जमलार्जुन कौं मुक्त करन हित, सूर स्याम जिय ठानि ॥३६५॥
॥९८३॥

राग नट

कान्ह सौं आवत क्यौं-ब रिसात।
लै लै लकुट कठिन कर अपनैं परसत कोमल गात।
देखत आँसू गिरत नैन तैं यौं सोभित ढरि जात।
मुक्ता मनौ चुगन खग खंजन, चौंच पुटी न समात।
डरनि लोल डोलत हैं इहि विधि, निरखि भ्रुवनि सुनि बात।
मानौ सूर सकात सरासन, उड़िवे कौं अकुलात ॥३६६॥
॥९८४॥

राग रामकली

जसुदा यह न बूझि कौ काम।
कमलनैन की भुजा देखि धौं, तैं बाँधे हैं दाम।
पुत्रहु तैं प्यारौ कोउ है री, कुल-दीपक मनि-धाम।
हरि पर वारि डारि सब तन, मन, धन गोरस अरु ग्राम।
देखियत कमल वदन कुम्हिलानौ, तू निरमोही बाम।
बैठी है मंदिर सुख छहियाँ, सुत दुख पावत घाम।
येई हैं सब ब्रज के जीवन सुख प्राति लिएँ नाम।
सूरदास प्रभु भक्तनि कैं वस यह ठानी घनश्याम ॥३६७॥
॥९८५॥

राग धनाश्री

ऐसी रिस तोकौं नँदरानी।
भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी, बड़ी, बैस अब भई सयानी।
ढोटा एक भयौ कैसैंहु करि, कौन-कौन करबर बिधि भानी।
क्रम-क्रम करि अब लौं उबर्यौ है, ताकौं मारि पितर दै पानी!
को निरदई रहै तेरैं घर, को तेरैं सँग बैठै आनी।
सुनहु सूर कहि-कहि पचिहारीं, जुवती चलीं घरनि बिरुझानी।
॥३६८॥९८६॥

राग सारंग

हलधर सौं कहि ग्वालि सुनायौ।
प्रातहि तैं तुम्हरौ लघु भैया, जसुमति ऊखल बाँधि लगायौ।
काहू के लरिकहिं हरि मार्‍यौ, भोरहि आनि तिनहिं गुहरायौ।
तबहीं तैं बाँधे हरि बैठे, सो हम तुमकौं आनि जनायौ।
हम बरजी, बरज्यौ नहि मानति, सुनतहि बल आतुर ह्वै धायौ।
सूर स्याम बैठे ऊखल लगि, माता उर तनु अतिहिं त्रसायौ।
॥३६९॥९८७॥

राग सारंग

यह सुनि कै हलधर तहँ धाए।
देखि स्याम ऊखल सौं बाँधे, तबहीं दोउ लोचन भरि आए।
मैं बरज्यौ कै बार कन्हैया, भली करी दोउ हाथ बँधाए।
अजहूँ छाँड़ौगे लँगराई, दोउ कर जोरि जननि पै आए।
स्यामहिं छोरि मोहिं बाँधै बरु, निकसत सगुन भले नहिं पाए।
मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहिं बँधे दिखाए।
माता सौं कह करौं ढिठाई, सो सरूप कहि नाम सुनाए।
सूरदास तब कहति जसोदा दोउ भैया तुम इक मत पाए॥३७०॥
॥९८८॥

राग सारंग

एतौ कियौ कहा री मैया।
कौन काज धन दूध दही यह, छोभ करायौ कन्हैया।
आईं सिखवन भवन पराएँ स्यानि ग्वालि बौरैया।
दिन-दिन देन उरहनौ आवतिं ढुकि-ढुकि करतिं लरैया।
सूधी प्रीति न जसुदा जानै, स्याम सनेही ग्वैयाँ।
सूर स्याम सुंदरहि लगानी, वह जानै बल भैया॥३७१॥
॥९८९॥

राग केदारौ

काहे कौं कलह नाध्यौ, दारुन दाँवरि बाँध्यौ,
कठिन लकुट लै तैं, त्रास्यौ मेरैं भैया।
नाहीं कसकत मन, निरखि कोमल तन,
तनिक से दधि-काज, भली री तू मैया।

हौं तौ न भयौ री घर, देखत्यौ तेरी यौं अर,
फोरतौ बासन सब, जानति बलैया।
सूरदास हित हरि, लोचन आए हैं भरि,
बलहू कौं बल जाकौ सोई री कन्हैया ॥३७२॥
॥९९०॥

राग सोरठ

काहे कौं जसोदा मैया, त्रास्यौ तैं बारौ कन्हैया,
मोहन हमारौ भैया, केतौ दधि पियतौ।
हौं तौ न भयौ री घर, साँटी दीनी सर सर,
बाँध्यौ कर जँवरिनि, कैसैं देखि जियतौ।
गोपाल सबनि प्यारौ, ताकौं तै कीन्हौ प्रहारौ,
जाकौ है मोहूँ कौ गारौ, अजगुत कियतौ।
और होतौ कोऊ, बिन जननी जानतौ सोऊ,
कैसैं जाइ पावतौ, जौ आँगुरिनि छियतौ।
ठाढ़ौ बाँध्यौ बलबीर, नैननि गिरत नीर,
हरि जू तैं प्यारौ तोकौं, दूध दही घियतौ।
सूर स्याम गिरिधर, धरा-धर हलधर,
यह छबि सदा थिर, रहौ मेरैं जियतौ ॥३७३॥
॥९९१॥

राग बिलावल

जसुदा तोहिं बाँधि क्यौं आयौ।
कसक्यौ नाहिं नैंकु मन तेरौ यहै कोखि कौ जायौ।
सिव बिरंचि महिमा नहि जानत, सो गाइनि सँग धायौ।
तातैं तू पहचानति नाहीं, कौन पुन्य तैं पायौ !
कहा भयौ जो घर कैं लरिका, चोरी माखन खायौ ?
इतनी कहि उकसारत बाहैं, रोष सहित बल धायौ।
अपनैं कर सब बंधन छोरे, प्रेम सहित उर लायौ।
सूर सुबचन मनोहर कहि-कहि अनुज सूल बिसरायौ ॥३७४॥
॥९९२॥

राग सोरठ

काहे कौं हरि इतनौ त्रास्यौ।
सुनि री मैया, मेरैं भैया कितनौ गोरस नास्यौ।

जब रजु सौं कर गाढ़ै बाँधे, छर-छर मारी साँटी।
सूनैं घर बाबा नँद नाहीं, ऐसैं करि हरि डाँटी।
और नैंकु छ्वै देखै स्यामहिं, ताकौं करौं निपात।
तू जो करै बात, सोइ साँची, कहा कहौं तोहिं मात।
ठाढ़े बदत बात सब हलधर, माखन प्यारौ तोहि।
ब्रज-प्यारौ, जाकौ मोहिं गारो, छोरत काहे न ओहि।
काकौ ब्रज, माखन दधि काकौ, बाँधे जकरि कन्हाई।
सुनत सूर हलधर की बानी जननी सैन बताई ॥३७५॥
॥९९३॥

राग सारंग

सुनहु बात मेरी बलराम।
करन देहु इनकी मोहिं पूजा, चोरी प्रगटत नाम।
तुमहीं कहौ, कमी काहे की, नव-निधि मेरैं धाम।
मैं बरजति, सुत जाहु कहूँ जनि, कहि हारी दिन जाम।
तुमहुँ मोहिं अपराध लगायौ माखन प्यारौ स्याम।
सुनि मैया तोहि छाँड़ि कहौं किहिं को राखै तेरैं ताम।
तेरी सौं उरहन लै आवति भूठहिं ब्रज की बाम।
सूर स्याम अतिहीं अकुलाने कब के बाँधे दाम ॥३७६॥
॥९९४॥

राग सारंग

कहा करौं हरि बहुत खिझाई।
सहि न सकी, रिसही रिस भरि गई, बहुतै ढीठ कन्हाई।
मेरा कह्यौ नैंकु नहिं मानत, करत आपनी टेक।
भोर होत उरहन ले आवतिं, ब्रज की बधू अनेक।
फिरत जहाँ तहँ दुंद मचावत घर न रहत छन एक।
सूर स्याम त्रिभुवन कौ कर्त्ता, जसुमति गही निज टेक ॥३७७॥
॥९९५॥

राग गूजरी

जसोदा कान्हहु तैं दधि प्यारौ?
डारि देहि कर मथत मथानी, तरसत नंद-दुलारौ।

दूध-दही-माखन लै वारौं, जाहि करति तू गारौ।
कुम्हिलानौ मुख-चंद देखि छवि, कोह न नैंकु निवारौ।
ब्रह्म, सनक, सिव ध्यान न पावत, सो ब्रज गैयनि चारौ।
सूर स्याम पर बलि-बलि जैऐ, जीवन-प्रान हमारौ ॥३७८॥
॥९९६॥

राग रामकली

जसोदा ऊखल बाँधे स्याम।
मन मोहन बाहिर ही छाँड़े, आपु गई गृह-काम।
दह्यौ मथति, मुख तैं कछु बकरति गारी दे लै नाम।
घर-घर डोलत माखन चोरत, षट-रस मेरैं धाम।
ब्रज के लरिकनि मारि भजत हैं, जाहु तुमहु बलराम।
सूर स्याम ऊखल सौं बाँधे, निरखहिं ब्रज की बाम ॥३७९॥
॥९९७॥

राग गौरी

निरखि स्याम हलधर मुसुकाने।
को बाँधै, को छोरै इनकौं, यह महिमा येई पै जाने।
उतपति-प्रलय करत हैं येई, सेष सहस मुख सुजस बखाने।
जमलार्जुन तरु तोरि उधारन, कारन करन आपु मन माने।
असुर सँहारन, भक्तनि तारन, पावन-पतित कहावत बाने।
सूरदास प्रभु भाव-भक्ति के, अति हित जसुमति हाथ बिकाने।
॥३८०॥९९८॥

राग धनाश्री

जसुमति, किहिं यह सीख दई।
सुतहिं बाँधि तू मथति मथानी, ऐसी निठुर भई।
हरैं बोलि जुवतिनि कौं लीन्हौ, तुम सब तरुनि नई।
लरिकहिं त्रास दिखावत रहिऐ, कत मुरझाइ गई।
मेरे प्रान-जिवन-धन माधौ, बाँधे बेर भई।
सूर स्याम कौं त्रास दिखावति, तुम कहा कहति दई ॥३८१॥
॥९९९॥

राग गौरी

हरि चितए जमलार्जुन के तन।
अबहीं आजु इन्हैं उद्धारौं, ये हैं मेरे निज जन।
इनहीं के हित भुजा बँधाई, अब बिलंब नहिं लाऊँ।
परस करौं तन, तरुहिं गिराऊँ, मुनिवर-साप मिटाऊँ।
ये सुकुमार, बहुत दुख पायौ, सुत कुबेर के तारौं।
सूरदास प्रभु कहत मनहिं मन, यह बंधन निरवारौं ॥३८२॥
॥१०००॥

राग धनाश्री

तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई।
जुवती गईं घरनि सब अपनैं, गृह-कारज जननी अटकाई।
आपु गए जमलार्जुन-तरु-तर, परसत पात उठे झहराई।
दिए गिराइ धरनि दोऊ तरु सुत कुबेर के प्रगटे आई।
दोउ कर जोरि करत दोउ अस्तुति, चारि भुजा तिन्ह प्रगट दिखाई।
सूर धन्य ब्रज जनम लियौ हरि, धरनी की आपदा नसाई ॥३८३॥
॥१००१॥

राग बिलावल

धनि गोबिंद जो गोकुल आए।
धनि-धनि नंद धन्य निसि-बासर, धनि जसुमति जिन श्रीधर जाए।
धनि-धनि बाल-केलि जमुना-तट, धनि बन सुरभी-बृंद चराए।
धनि यह समौ, धन्य ब्रज-बासी, धनि-धनि बेनु मधुर धुनि गाए।
धनि धनि अनख, उरहनौ धनि-धनि, धनि माखन, धनि मोहन खाए।
धन्य सूर ऊखल तरु, गोबिंद हमहिं हेतु धनि भुजा बँधाए ॥३८४॥
॥१००२॥

राग सोरठ

धन्य-धन्य ऋषि-साप हमारे।
आदि अनादि निगम नहिं जानत, ते हरि प्रगट देह ब्रज धारे।
धन्य नंद, धनि मातु जसोदा, धनि आँगन खेलत भए बारे।
धन्य स्याम, धनि दाम बँधाए, धनि ऊखल, धनि माखन-प्यारे।

दीन-बंधु करुना-निधि हौ, प्रभु, राखि लेहु हम सरन तिहारे।
सूर स्याम कैं चरन सीस धरि, अस्तुति करि निज धाम सिधारे।
॥३८५॥१००३॥

राग बिलावल

यहै जानि गोपाल बँधाए।
साप-दग्ध है सुत कुबेर के, आनि भए तरु जुगल सुहाए।
ब्याज रुदन लोचन जल ढारत, ऊखल दाम सहित चलि आए।
बिटप भंजि, जमलार्जुन तारे, करि अस्तुति गोबिंद रिझाए।
तुम बिनु कौन दीन खल तारे, निरगुन सगुन रूप धरि आए।
सूरदास प्रभु के गुन गावत, हरषवंत, निज पुरी सिधाए॥३८६॥
॥१००४॥

राग रामकली

तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ।
जर सहित अरराइ कै, आघात सब्द सुनाइ।
भए चकित लोग ब्रज के, सकुचि रहे डराइ।
कोउ रहे आकास देखत, कोउ रहे सिर नाइ।
घरिक लौं जकि रहे जहँ-तहँ, देह-गति बिसराइ।
निरखि जसुमति अजिर देखै, बँधे नाहिं कन्हाइ।
बृच्छ दोउ धर परे देखे, महरि कीन्ह पुकार।
अबहिं आँगन छाँड़ि आई, चप्यौ तरु की डार।
मैं अभागिनि, बाँधि राखे, नंद - प्रान - अधार।
सोर सुनि नँद - द्वार आए, बिकल गोपी ग्वार।
देखि तरु सब अति डराने, हैं बड़े बिस्तार।
गिरे कैसैं, बड़ौ अचरज, नैंकु नहीं बयार।
दुहुँ तरु बिच स्याम बैठे, रहे ऊखल लागि।
भुजा छोरि उठाइ लीन्हे, महर हैं बड़भागि।
निरखि जुवती अंग हरि के, चोट जनि कहुँ लागि।
कबहुँ बाँधति कबहुँ मारति, महरि बड़ी अभागि।
नैन जल भरि ढारि जसुमति, सुतहिं कंठ लगाइ।
जरै रिस जिहिं तुमहिं बाँध्यौ, लगे मोहिं बलाइ।

नंद सुनि मोहिं कहा कहैंगे, देखि तरु दोउ आइ।
मैं मरौं, तुम कुशल रहौ दोउ, स्याम - हलधर भाइ।
आइ घर जो नंद देखे, तरु गिरे दोउ भारि।
बाँधि राखति सुतहिं मेरे, देत महरिहिं गारि।
तात कहि तब स्याम दौरे, महर लियौ अँकवारि।
कैसैं उबरे बृच्छ-तर तैं सूर है बलिहारि ॥३८७॥१००५॥

राग नट

मोहन हौं तुम ऊपर वारी।
कंठ लगाइ लिए, मुख चूमति, सुंदर स्याम बिहारी।
काहे कौं ऊखल सौं बाँध्यौ, कैसी मैं महतारी।
अहिहिं उतंग बयारि न लागत, क्यौं टूटे तरु भारी।
बारंबार बिचारति जसुमति, यह लीला अवतारी।
सूरदास स्वामी की महिमा, कापै जाति बिचारी ॥३८८॥
॥१००६॥

राग सारंग

अब घर काहू कैं जनि जाहु।
तुम्हरैं आजु कमी काहे की, कत तुम अनतहिं खाहु।
बरै जेंवरी जिहिं तुम बाँधे, परै हाथ भहराइ।
नंद मोहि अतिहीं त्रासत हैं, बाधे कुँवर कन्हाइ।
रोग जाउ मेरे हलधर के छोरत हो तब स्याम।
सूरदास प्रभु खात फिरौ जनि माखन-दधि तुव धाम ॥३८९॥
॥१००७॥

राग सारंग

ब्रज-जुवती स्यामहिं उर लावतिं।
बारंबार निरखि कोमल तनु, कर जोरतिं, बिधि कौं जु मनावतिं।
कैसैं बचे अगम तरु कैं तर, मुख चूमतिं, यह कहि पछितावतिं।
उरहन लै आवतिं जिहिं कारन, सो सुख फल पूरन करि पावतिं।
सुनौ महरि, इनकौं तुम बाँधति, भुज गहि बंधन चिन्ह दिखावतिं।
सूरदास प्रभु अति रति नागर, गोपी हरषि हृदय लपटावतिं ॥
॥३९०॥१००८॥

यमलार्जुन उद्धार की दूसरी लीला *राग बिलावल*

ग्वालि उरहनौ भोरहिं ल्याई। जसुमति कहँ तेरौ गयौ कन्हाई।
भलौ काम तैं सुतहिं पढ़ायौ। बारे ही तैं मूँड़ चढ़ायौ।
माखन मथि भरि धरी कमोरी। अबहीं सो हरि लै गयौ चोरी।
यह सुनतहिं जसुमति रिस मानी। कहाँ गयौ कहि सारँगपानी।
खेलत तैं औचक हरि आए। जननी बाहँ पकरि बैठाए।
मुख देखत जसुमति तब जान्यौ। माखन वदन कहाँ लपटान्यौ।
फिरि देखैं तो ग्वारिनि पाछैं। माता मुख चितवत नहिं आछैं।
चोरी के सब भाव बताए। माता सँटिया द्वैक लगाए।
माखन खान जात पर घर कौ। बाँधत तोहिं नैंकु नहिं धरकौ।
बाहँ गहे ढूँढ़ति फिरै डोरी। बाँधौं तोहिं सकै को छोरी।
बाँधि पची डोरी नहिं पूरै। बार-बार खोझै रिस-भूरै।
घर-घर तैं जेंवरि लै आई। मिस ही मिस देखन कौं धाई।
चकित भई देखैं ढिग ठाढ़ी। मनौ चितेरैं लिखि-लिखि काढ़ी।
जसुमति जोरि-जोरि रजु बाँधै। अंगुर द्वै-द्वै जेंवरि साधै।
जब जानी जननी अकुलानी। आपु बँधायौ सारँगपानी।
भक्त-हेत दाँवरी बँधाई। तब जमलार्जुन की सुधि आई।
माता हेत जनहिं सुखकारी। जानि बँधाए श्री बनवारी।
मुख जम्हाइ त्रिभुवन दिखरायौ। चकित कियौ तुरतहिं बिसारायौ।
बाँधि स्याम बाहिर लै आई। गोरस घर-घर खात चुराई।
ऊखल सौं गहि बाँधे कन्हाई। नितहिं उरहनौ सह्यौ न जाई।
इक कहि जाति एक फिरि आवै। रैनि-दिवस तू मोहिं खिझावै।
माखन दधि तेरैं घर नाहीं। धाम भर्यौ, चोरी करि खाहीं।
नव लख धेनु दुहत घर मेरैं। केते ग्वाल रहत गउ घेरे।
मथति नंद-घर सहस मथानी। ताकैं सुत चोरी की बानी।
मोसौं कहति आनि जब नारी। बोलि जात नहिं लाजनि मारी।
नंद महर की करत नन्हाई। बिरध वयस सुत भयौ कन्हाई।
तुम्हरे गुन सब नीके जाने। नित बरज्यौ, कबहूँ नहिं माने।
कोउ छोरै जनि ढीठ कन्हाई। बाँधे दोउ भुज ऊखल लाई।
भवन-काज कौं गई नँदरानी। आँगन छाँड़े स्याम बिनानी।
उरहन देत ग्वालि जे आई। तिन्हैं दियौ जसुदा बहुराई।
चलीं सबै मिलि सोचत मन मैं। स्यामहिं गहि बाँध्यौ इक छिन मैं।

त बात इक कही कि नाहीं। ऊखल सौं बाँध्यौ सुत वाहीं।
कहा कहौं वा छवि कौ माई। बाँबी पर अहि करत लराई।
कान्ह-बदन अतिहीं कुम्हिलायौ। मानौ कमलहिं हिम तरसायौ।
डर तैं दीरघ नैन चपल अति। बदन-सुधा-रस मीन करत गति।
यह सुनि और जुवति सब आईं। जसुमति बाँधे कतहिं कन्हाई।
भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी। ज्यौं-ज्यौं दिनी भई त्यौं निपजी।
छोरहु स्याम करहु मन लाहौ। अति निरदई भईं तुम का हौ!
देखौ स्याम-ओर नँदरानी। सकुचि रह्यौ मुख सारँगपानी।
बाहिर बाँधि सुतहिं बैठारौ। मथति दही माखन तोहिं प्यारौ।
छाँड़ि देहु वहि जाइ मथानी। सौंह दिवावति छोरहु आनी।
हाँसी करन सबै तुम आईं। अब छोरौ नहिं कुँवर कन्हाई।
तुमहीं मिलि रसबाद बढ़ायौ। उरहन दै-दै मूँड़ पिरायौ।
सबहिनि गोधन सौंह दिवाई। चितै रहे मुख कुँवर कन्हाई।
कब तुमकौं मैं बोलि बुलाई। केहि कारन तुम धाईं आईं।
यह सुनि बहुरि चलीं बिरुझाई। कहा करौं बलि जाउँ कन्हाई।
मूरख कौं कोउ कहा सिखावै। याकी मति कछु कहत न आवै।
नारि गईं फिरि भवन आतुरी। नंद-घरनि अब भई चातुरी।
ओछी बुद्धि जसोदा कीन्ही। याकी जाति अबै हम चीन्ही।
यहै कहति अपनैं घर आईं। मानै नहीं कितौ समुझाईं।
मथति जसोदा दही मथानी। तबहिं कान्ह ऐसी मति ठानी।
भक्त-बछल हरि अंतरजामी। सुत कुबेर के ये दोउ नामी।
इहिं अवतार कह्यौ इन तारन। इनकौ दुख अब करौं निवारन।
जो जिहिं ढँग तिहिं ढँग सब लाए। जमला-अर्जुन पै प्रभु आए।
बृच्छ बीच ऊखल लै अटक्यौ। आगैं निकसि नैंकु गहि झटक्यौ।
अररात दोउ बृच्छ गिरे धर। अति आघात भयौ ब्रज-भीतर।
भए चकित सब ब्रज के बासी। इहिं अंतर दोउ कुँवर प्रकासी।
संख चक्र कर सारँग धारी। भगत-हेत प्रगटे बनवारी।
देखि दरस मन हरष बढ़ायौ। तुमहिं बिना प्रभु कौन सहायौ।
धनि ब्रज कृष्न जहाँ बपुधारी। धनि जसुमति ब्रह्महिं अवतारी।
धन्य नंद, धनि-धनि गोपाला। धन्य-धन्य गोकुल की बाला।
धन्य गाइ, धनि द्रुम बन चारन। धनि जमुना हरि करत बिहारन।
धन्य उरहनौ प्रातहिं ल्याई। धनि माखन चोरत जदुराई।

धनि सो जन ऊखल गढ़ि ल्यायौ। धन्य दाम भुज कृष्न वँधायौ।
गदगद कंठ बचन मुख भारी। सरन राखि लै गर्व-प्रहारी।
बार-बार चरननि परे धाई। कृपा करी भक्तनि सुखदाई।
साधु-साधु कहि श्रीमुख बानी। बिदा भए इहिं भाँति बखानी।
जमलार्जुन कौं तारि पठाए। नंद-द्वार दोउ बृच्छ गिराए।
निकसि जसोदा आँगन आई। दुहूँ बृच्छ-बिच बचे कन्हाई।
दौरि परे ब्रज के नर-नारी। नंद-द्वार कछु होत गुहारी।
देखे आनि बृच्छ दोउ डारे। ये गुन जसुमति आहिं तुम्हारे।
तुरत छोरि ऊखल तैं ल्याए। देखत जननि नैन भरि आए।
ब्रज-देवता कोउ है री माई। जहाँ तहाँ सो होत सहाई।
प्रथम पूतना मारन आई। पय पीवत वह तहाँ नसाई।
तृनावर्त्त लै गयौ उड़ाई। आपुहिं गिरयौ सिला पर आई।
कागासुर आवत नहिं जान्यौ। सुनी कहत ज्यौं लेइ परान्यौ।
सकटासुर पलना ढिग आयौ। को जानै किहिं ताहि गिरायौ।
कौन-कौन करबर हैं टारे। जसुमति बाँधि अजिर लै डारे।
बहुतै उबरयौ आजु कन्हाई। ऊपर बृच्छ गिरे भहराई।
कहा कहौं न कहत बनि आवै। तुरत आइ हरि कौन बचावै?
सबहिनि पेलि करत मन भाई। पुन्य नंद कैं बचे कन्हाई।
मुख चूमति लै-लै उर लाए। जुवतिनि किए आपु मन भाए।
लै जननी सुत कंठ लगावति। चोरी की बातैं समुझावति।
मैं रिस ही रिस करति लाल सौं। भुज बाँधे मन हँसत ख्याल सौं।
मैं बरजे तुम करत अचगरी। उरहन कौं ठाढ़ी रहैं सिगरी।
बार-बार तन देखति माई। गिरत बृच्छ कहुँ चोट न आई।
कहत स्याम मैं अतिहिं डरान्यौ। ऊखल तर मैं रह्यौ छपान्यौ।
बात सुतहिं पूछति नँदरानी। कान्ह कहै मुख डर की बानी।
हरि के चरित कहा कोउ जानै। जसुमति अति बालक करि मानै।
अखिल ब्रह्मंड जीव के दाता। माखन कौं बाँधति है माता।
गुन अपार अविगत अबिनासी। सो प्रभु घर-घर घोष-बिलासी।
ऊखल बँध्यौ जु हेत भगत के। येइ माता येइ पिता जगत के।
जमलार्जुन कौं मोच्छ कराए। पुत्र-हेत जसुदा-गृह आए।
ऐसे हरि जन के सुखकारी। परगट रूप चतुर्भुज-धारी।
जो जिहिं भाव भजै, प्रभु तैसे। प्रेम बस्य दुष्टनि कौं नैसे।

सूरदास यह लीला गावै। कहत सुनत सबकैं मन भावै।
जो हरि चरित ध्यान उर राखै। आनँद सदा दुखित-दुख नाखै।
॥३६१॥१००६॥

राग मलार

निगम सार देखौ गोकुल हरि।
जाकौ दूरि दरस देवनि कौं, सो बाँध्यौ जसुमति ऊखल धरि।
चुटकी दै-दै ग्वालि नचावति, नाचत कान्ह बाल-लीला करि।
जिहिं डर भ्रमत पवन,रवि-ससि,जल,सो करै टहल लकुटिया सौं डरि।
छीरसमुद्र सयन संतत जिहिं, माँगत दूध पतौषी दै भरि।
सूरदास गुन के गाहक हरि, रसना गाइ अनेक गए तरि ॥३६२॥
॥१०१०॥

राग सोरठ

जाको ब्रह्मा अंत न पावै।
तापै नंद की नारि जसोदा, घर की टहल करावै।
सेष, सनक, नारद, गनेस, मुनि, जाके गुन नित गावैं।
निसि-बासर खोजत पचिहारैं, मनसा ध्यान न आवै।
धनि गोकुल, धनि-धनि ब्रज-बनिता, निरखत स्याम बधावै।
सूरदास प्रभु प्रेमहिं के बस, संतनि दरस दिखावैं ॥३६३॥
॥१०११॥

राग बिलावल

गोबिंद, तेरौ सरूप निगम नेति गावैं।
भक्ति के बस स्याम सुंदर, देह धरे आवैं।
जोगी जन ध्यान धरैं, सपनेहुँ नहिं पावैं।
नंद-घरनि बाँधि-बाँधि, कपी ज्यौं नचावैं।
गोपी जन प्रेमातुर, तिनकौं सुख दीन्हौ।
अपनैं-अपनैं रस बिलास, काहू नहिं चीन्हौ।
स्रुती,सुम्रृति,सब पुरान, कहत मुनि बिचारी।
सूरदास प्रेम कथा, सबही तैं न्यारी ॥३६४॥
॥१०१२॥

राग सारंग

भूखौ भयौ आजु मेरौ बारौ।
भोरहिं ग्वारि उरहनौ ल्याई, उहिं यह कियौ पसारौ।
पहिलेहिं रोहिनि सौं कहि राख्यौ, तुरत करहु जेवनार।
ग्वाल-बाल सब बोलि लिए मिलि, बैठे नंद-कुमार।
भोजन बेगि ल्याउ कछु मैया, भूख लगी मोहिं भारी।
आजु सबारैं कछु नहिं खायौ, सुनत हँसी महतारी।
रोहिनि चितै रही जसुमति-तन, सिर धुनि-धुनि पछितानी।
परसहु बेगि, बेर कत लावति, भूखे सारँगपानी।
बहु ब्यंजन बहु भाँति रसोई, षटरस के परकार।
सूर स्याम हलधर दोउ भैया, और सखा सब ग्वार॥३६५॥
॥१०१३॥

राग सारग

नंद-भमन मैं कान्ह अरोगैं। जसुदा ल्यावैं षटरस भोगैं।
आसन दै, चौकी आगैं धरि। जमुना-जल राख्यौ झारी भरि।
कनक-थार मैं हाथ धुवाए। सत्रह सौ भोजन तहँ आए।
लै-लै धरति सबनि के आगैं। मातु परोसै जो हरि माँगैं।
खीर, खाँड़, घृत, लावनि लाड़ू। ऐसे होहिं न अमृत खाँड़ू।
और लेहु कछु सुख ब्रज-राजा। लुचुई, लपसी, घेवर, खाजा।
पेठापाक, जलेबी, कौरी। गोंदपाक, तिनगरी, गिंदौरी।
गुझा, इलाचीपाक, अमिरती। सीरा साजौ लेहु ब्रजपती।
छोलि धरे खरबूजा, केरा। सीतल बास करत अति घेरा।
खरिक, दाख अरु गरी, चिरारी। पिंड बदाम लेहु बनवारी।
बेसन-पुरी, सुख-पुरी लीजै। आछौ दूध कमल-मुख पीजै।
मैया मोहि और क्यौं प्यावै। धोरी कौ पय मोहिं अति भावै।
बेला भरि हलधर कौं दीन्हौ। पीवत पय अस्तुति बल कीन्हौ।
ग्वाल सखा सबहीं पय अँचयौ। नीकैं औटि जसोदा रचयौ।
दोना मेलि धरे हैं खूआ। हौंस होइ तौ ल्याऊँ पूआ।
मीठे अति कोमल हैं नीके। ताते, तुरत चभोरे घी के।
फेनी, सेव, अँदरसे प्यारे। लै आवौं जेंवौ मेरे बारे।
हलधर कहत ल्याउ री मैया। मोकौं दै नहिं लेत कन्हैया।

जसुमति हरष भरी लै परसति। जैंवत हैं अपनी रुचि सौं अति।
कान्ह माँगि सीतल जल लीयौ। भोजन बीच नीर लै पीयौ।
भात पसाइ रोहिनी ल्याई। घृत सुगंधि तुरते दै ताई।
नीलावती चाँवर दिव-दुर्लभ। भात परोस्यौ माता सुरलभ।
मूँग मसूर उरद चनदारी। कनक-फटक धरि फटकि पछारी।
रोटी, बाटी, पोरी, झोरी। इक कोरी इक घीव चभोरी।
गायौ-घृत भरि धरी कटोरी। कछु खायौ कछु फेटैं छोरी।
मीठैं तेल चना की भाजी। एक मकूनी दै मोहिं साजी।
मीठे चरपर उज्ज्वल कूरा। हौंस होइ तौ ल्याऊँ सूरा।
मूँग-पकौरा पनौ पतबरा। इक कोरे इक भिजे गुरबरा।
पापर बरी मिथौरि फुलौरी। कूर बरी काचरी पिठौरी।
बहुत मिरच दै किए निमोना। बेसन के दस बीसक दोना।
बन कौरा पिंडीक चिचिंडी। सीप पिंडारू कोमल भिंडी।
चौराई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआनि निचोई।
रुचिर लजालु लोनिका फाँगी। कढ़ी कृपालु दूसरैं माँगी।
सरसौं, मेथी, सोवा, पालक। बथुआ राँधि लियौ जु उतालक।
हींग हरद म्रिच छौंके तेले। अदरख और आँवरे मेले।
सालन सकल कपूर सुबासत। स्वाद लेत सुंदर हरि ग्रासत।
आँब आदि दै सबै सँधाने। सब चाखे गोबर्धन-राने।
कान्ह कह्यौ हौं मातु अघानौ। अब मोकौं सीतल जल आनौ।
अँचवन लै तब धोए कर मुख। सेप न बरनै भोजन कौ सुख।
उज्ज्वल पान, कपूर, कस्तुरी। आरोगत मुख की छबि रूरी।
चंदन अंग सखनि कैं चरच्यौ। जसुमति के सुख कौं नहिं परच्यौ।
जूठनि माँगि सूर जन लीन्हौ। बाँटि प्रसाद सबनि कौं दीन्हौ।
जन्म-जन्म बाढ़्यौ जूठनि कौ। चेरौ नंद महर के धन कौ ॥३९६॥
॥१०१४॥

राग धनाश्री

आरोगत हैं श्रीगोपाल।
षटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचिकै कंचन-थाल।
करति बयारि निहारति हरि-मुख, चंचल नैन बिसाल।
जो भावै सो माँगि लेहु तुम, माधुरि मधुर रसाल।

जे दरसन सनकादिक दुर्लभ, ते देखतिं ब्रज-बाल।
सूरदास प्रभु कहति जसोदा, चिरजीवौ नँद-लाल ॥३९७॥
॥१०१५॥

राग कान्हरौ

मोहिं कहति जुवती सब चोर।
खेलत कहूँ रहौं मैं बाहिर, चितै रहतिं सब मेरी ओर।
बोलि लेतिं भीतर घर अपनैं, मुख चूमतिं, भरि लेतिं अँकोर।
माखन हेरि देतिं अपनैं कर, कछु कहि बिधि सौं करतिं निहोर।
जहाँ मोहिं देखतिं, तहँ टेरतिं, मैं नहिं जात दुहाई तोर।
सूर स्याम हँसि कंठ लगायौ, वै तरुनी कहँ बालक मोर ॥३९८॥
॥१०१६॥

राग केदारौ

जसुमति कहति कान्ह मेरे प्यारे, अपनैं ही आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा संग के, मेरौ कह्यौ कबहुँ जिनि पेलौ।
ब्रज-बनिता सब चोर कहतिं तोहिं, लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ।
आजु मोहिं बलराम कहत हे, झूठहिं नाम धरति हैं तेरौ।
जब मोहिं रिस लागति तब त्रासति, बाँधति, मारति, जैसैं चेरौ।
सूर हँसति ग्वालिनि दै तारी, चोर नाम कैसैंहु सुत फेरौ ॥३९९॥
॥१०१७॥

गो-दोहन

राग बिलावल

धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि।
आपुन बैठि गए तिनकैं सँग, सिखवहु मोहिं कहत गोपालनि।
काल्हि तुम्हैं गो दुहन सिखावैं, दुहीं सबै अब गाइ।
भोर दुहौ जनि नंद-दुहाई, उनसौं कहत सुनाइ।
बड़ौ भयौ अब दुहत रहौंगौ, अपनी धेनु निबेरि।
सूरदास प्रभु कहत सौंह दै, मोहिं लीजौ तुम टेरि ॥४००॥
॥१०१८॥

राग कान्हरौ

मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु।
कैसैं गहत दोहनी घुटुवनि कैसैं बछरा थन लै लावहु।

कैसैं लै नोई पग बाँधत, कैसैं लै गैया अटकावहु।
कैसैं धार दूध की बाजति, सोइ सोइ विधि तुम मोहिं बतावहु।
निपट भई अब साँझ कन्हैया, गैयनि पै कहुँ चोट लगावहु।
सूर स्याम सौं कहत ग्वाल सब, धेनु दुहन प्रातहिं उठि आवहु।
॥४०१॥१०१९॥

वृंदाबन-प्रस्थान *राग सारंग*

महर-महरि कैं मन यह आई।
गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ बृंदावन मैं जाई।
सब गोपनि मिलि सकटा साजे, सबहिनि के मन मैं यह भाई।
सूर जमुन-तट डेरा दीन्हे, पाँच बरप के कुँवर कन्हाई॥४०२॥
॥१०२०॥

राग बिलावल

जागौ हो तुम नंद - कुमार।
हौं बलि जाउँ मुखारबिंद की, गो सुत मेलौ खरिक सम्हार।
अब लौं कहा सोए मन मोहन, और बार तुम उठत सबार।
बारहिं बार जगावति माता, अंबुज-नैन भयौ भिनुसार।
दधि मथि कै माखन बहु देहौं सकल ग्वाल ठाढ़े दरबार।
उठि कै मोहन बदन दिखावहु, सूरदास के प्रान-अधार॥४०३॥
॥१०२१॥

राग बिलावल

जागहु हो ब्रजराज हरी।
लै मुरली आँगन ह्वै देखौ, दिनमनि उदित भए द्विघरी।
गो-सुत गोठ बँधन सब लागे, गो-दोहन की जून टरी।
मधुर वचन कहि सुतहिं जगावति, जननि जसोदा पास खरी।
भोर भयौ दधि-मथन होत, सब ग्वाल सखनि की हाँक परी।
सूरदास प्रभु दरसन कारन, नींद छुड़ाई चरन धरी॥४०४॥
॥१०२२॥

राग बिलावल

जागहु लाल ग्वाल सब टेरत।
कबहुँ पितंबर डारि बदन पर, कबहुँ उघारि जननि तन हेरत।

सोवत मैं जागत मनमोहन, बात सुनत सबकी, अवसेरत।
बारंबार जगावति माता, लोचन खोलि पलक पुनि गेरत।
पुनि कहि उठी जसोदा मैया, उठहु कान्ह रवि किरनि उजेरत।
सूर स्याम, हँसि चितै मातु-मुख, पट कर लै, पुनि-पुनि मुख फेरत।
॥४०५॥१०२३॥

राग सूहा बिलावल

जननि जगावति उठौ कन्हाई। प्रगट्यौ तरनि, किरनि महि छाई।
आवहु चंद्र-बदन दिखराई। बार-बार जननी बलि जाई।
सखा द्वार सब तुमहिं बुलावत। तुम कारन हम धाए आवत।
सूर स्याम उठि दरसन दीन्हौ। माता देखि मुदित मन कीन्हौ।
॥४०६॥१०२४॥

राग रामकली

दाऊ जू, कहि स्याम पुकार्‌यौ।
नीलांबर कर ऐंचि लियौ हरि, मनु बादर तैं चंद उजार्‌यौ।
हँसत-हँसत दोउ बाहिर आए, माता लै जल बदन पखार्‌यौ।
दतवनि लै दुहुँ करी मुखारी, नैननि कौ आलस जु बिसार्‌यौ।
माखन लै दोउनि कर दीन्हौ, तुरत-मथ्यौ, मीठौ अति भार्‌यौ।
सूरदास प्रभु खात परस्पर, माता अंतर-हेत बिचार्‌यौ ॥४०७॥

राग बिलावल

जागहु - जागहु नंद - कुमार।
रवि बहु चढ़्यौ, रैनि सब निघटी, उचटे सकल किवार।
वारि वारि जल पियति जसोदा, उठि मेरे प्रान-अधार।
घर-घर गोपी दह्यौ बिलोवैं, कर-कंकन झंकार।
साँझ दुहन तुम कह्यौ गाइकौं, तातैं होति अबार।
सूरदास प्रभु उठे तुरत हीं, लीला अगम अपार ॥४०८॥
॥१०२६॥

राग बिलावल

तनक कनक की दोहनी, दै-दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ, मोहिं धौरी गैया।
अटपट आसन बैठि कै, गो-थन कर लीन्हौ।
धार अनतहीं देखि कै, ब्रजपति हँसि दीन्हौ।

घर-घर तैं आईं सबै, देखन ब्रज-नारी।
चितै चतुर चित हरि लियौ, हँसि गोप-बिहारी।
बिप्र बोलि आसन दियौ, कह्यौ बेद उचारी।
सूर स्याम सुरभी दुही, संतनि हितकारी ॥४०६॥
॥१०२७॥

राग देव गंधार

बछुरा चारन चले गोपाल।
सुबल, सुदामा अरु श्रीदामा, संग लिए सब ग्वाल।
बछुरनि कौं बन माँझ छाँड़ि सब खेलत खेल अनूप।
दनुज एक तहँ आइ पहूँच्यौ धरे वत्स कौ रूप।
हरि हलधर दिसि चितै कह्यौ तुम जानत हौ इहि बीर।
कह्यौ आहि दानव इहिं मारौ धारे वत्स-सरीर।
तब हरि सींग गह्यौ इक कर सौं इक कर सौं गह्यौ पाइ।
थारेक ही बल सौं छिन भीतर दीनौ ताहि गिराइ।
गिरत धरनि पर प्रान निकसि गए फिरि नहिं आयौ स्वास।
सूरदास ग्वालनि सँग मिलि हरि लागे करन बिलास ॥४१०॥
॥१०२८॥

गो-चारण *राग रामकली*

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
वृंदावन के भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहौं।
ऐसी बात कहौ जनि बारे, देखौ अपनी भाँति।
तनक-तनक पग चलिहौ कैसैं, आवत ह्वै है राति।
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरौ कमल बदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहिं माँझ।
तेरी सौं मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत, पर्यौ आपनी टेक ॥४११॥
॥१०२६॥

राग रामकली

मैया हौं गाइ चरावन जैहौं।
तू कहि महर नंद बाबा सौं, बड़ौ भयौ न डरैहौं।

रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहि रैहौं।
वंसीवट तर ग्वालनि कैं सँग, खेलत अति सुख पैहौं।
ओदन भोजन दै दधि काँवरि, भूख लगे तैं खैहौं।
सूरदास है साखि जमुन-जल सौंह देहु जु नहैहौं ॥४१२॥
॥१०३०॥

राग रामकली

चले सब गाइ चरावन ग्वाल।
हेरी टेर सुनत लरिकनि के, दौरि गए नँदलाल।
फिरि इत-उत जसुमति जो देखै, दृष्टि न परै कन्हाई।
जान्यौ जात ग्वाल सँग दौर्‍यौ, टेरति जसुमति धाई।
जात चल्यौ गैयनि के पाछैं, वलदाऊ कहि टेरत।
पाछैं आवति जननी देखी, फिरि-फिरि इत कौं हेरत।
बल देख्यौ मोहन कौं आवत, सखा किए सब ठाढ़े।
पहुँची आइ जसोदा रिस भरि, दोउ भुज पकरे गाढ़े।
हलधर कह्यौ, जान दै मो सँग, आवहिं आज सवारे।
सूरदास बल सौं कहै जसुमति, देखे रहियौ प्यारे ॥४१३॥
॥१०३१॥

राग बिलावल

खेलत कान्ह चले ग्वालनि सँग।
जसुमति यहै कहत घर आई हरि कीन्हे कैसे रँग।
प्रातहिं तैं लागे याही ढँग अपनी टेक कर्‍यौ है।
देखौ जाइ आजु बन कौ सुख, कहा परोसि धर्‍यौ है।
माखन-रोटी अरु सीतल जल, जसुमति दियौ पठाइ।
सूर नंद हँसि कहत महरि सौं, आवत कान्ह चराइ ॥४१४॥
॥१०३२॥

राग सारंग

बृंदावन देख्यौ नँद-नंदन, अतिहिं परम सुख पायौ।
जहँ-जहँ गाइ चरतिं, ग्वालनि सँग, तहँ-तहँ आपुन धायौ।
बलदाऊ मोकौं जनि छाँड़ौ, संग तुम्हारैं ऐहौं।
कैसेहुँ आजु जसोदा छाँड़्यौ, कालिह न आवन पैहौं।

सोवत मोकौं टेरि लेहुगे, बाबा नंद-दुहाई।
सूर स्याम बिनती करि बल सौं, सखनि समेत सुनाई ॥४१५॥
॥१०३३॥

राग सारंग

हरि जू कौं ग्वालिनि भोजन ल्याई।
बृंदा बिपिन बिसद जमुना-तट, सुचि ज्यौनार बनाई।
सानि-सानि दधि भात लियौ कर, सुहृद सखनि कर देत।
मध्य-गोपाल-मंडली मोहन, छाक बाँटि कै लेत।
देवलोक देखत सब कौतुक, बाल-केलि अनुरागे।
गावत सुनत सुजस सुख करि मन, सूर दुरित दुख भागे।
॥४१६॥१०३४॥

राग गौरी

बन तैं आवत धेनु चराए।
संध्या समय साँवरे मुख पर, गो-पद-रज लपटाए।
बरह-मुकुट कैं निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलज-आनन पर, उड़त न जात उड़ाए।
बिधि-बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पहिराए।
एक बरन बपु नहिं बड़ छोटे, ग्वाल बने इक धाए।
सूरदास बलि लीला प्रभु की, जीवत जन जस गाए ॥४१७॥
॥१०३५॥

राग गौरी

जसुमति दौरि लिए हरि कनियाँ।
आजु गयौ मेरौ गाइ चरावन, हौं बलि जाउँ निछुनियाँ।
मो कारन कछु आन्यौ है बलि, बन-फल तोरि नन्हैया।
तुमहिं मिलैं मैं अति सुख पायौ, मेरे कुँवर कन्हैया।
कछुक खाहु जो भावै मोहन, दै री माखन-रोटी।
सूरदास प्रभु जीवहु जुग-जुग हरि हलधर की जोटी ॥४१८॥
॥१०३६॥

राग गौरी

माखन-रोटी ताती-ताती लेहु कन्हैया बारे।
मन मैं रुचि उपजावै, भावै, त्रिभुवन के उजियारे।

और लेहु पकवान, मिठाई, बहु बिधि ब्यंजन सारे।
औट्यौ दूध, सद्य दधि, घृत, मधु रुचि सौं खाहु लला रे।
तब हरि उठिकै करी बियारी, भक्तनि-प्रान-पियारे।
सूर स्याम भोजन करि कै, सुचि जल सौं बदन पखारे ॥४१९॥
॥१०३७॥

राग सारंग

मैं अपनी सब गाइ चरैहौं।
प्रात होत बल कैं सँग जैहौं, तेरे कहैं न रैहौं।
ग्वाल बाल गाइनि के भीतर, नैंकहुँ डर नहिं लागत।
आजु न सोवौं नंद-दुहाई, रैनि रहौंगौ जागत।
और ग्वाल सब गाइ चरैहैं मैं घर बैठो रैहौं?
सूर स्याम तुम सोइ रहौ अब, प्रात जान मैं दैहौं ॥४२०॥
॥१०३८॥

राग केदारौ

बहुतै दुख हरि सोइ गयौ री।
साँझहिं तैं लाग्यौ इहि बातहिं, क्रम-क्रम बोधि लयौ री।
एक दिवस गयौ गाइ चरावन, ग्वालनि संग सबारैं।
अब तौ सोइ रह्यौ है कहि कै, प्रातहिं कहा बिचारैं।
यह तौ सब बलरामहिं लागैं, सँग लै गयौ लिवाइ।
सूर नंद यह कहत महरि सौं, आवन दै फिरि धाइ ॥४२१॥
॥१०३९॥

राग कान्हरौ

पौढ़े स्याम जननि गुन गावत।
आजु गयौ मेरौ गाइ चरावन कहि-कहि मन हुलसावत।
कौन पुन्य तप तैं मैं पायौ ऐसौ सुंदर बाल।
हरषि-हरषि कै देति सुरनि कौं सूर सुमन को माल ॥४२२॥
॥१०४०॥

राग बिलावल

करहु कलेऊ कान्ह पियारे।
माखन-रोटी दियौ हाथ पर, बलि-बलि जाउँ जु खाहु ललारे

टेरत ग्वाल द्वार हैं ठाढ़े, आए तब के होत सबारे।
खेलहु जाइ घोष के भीतर, दूरि कहूँ जनि जैयहु बारे।
टेरि उठे बलराम स्याम कौं, आवहु जाहिं धेनु बन चारे।
सूर स्याम कर जोरि मातु सौं, गाइ चरावन कहत हहा रे ॥४२३॥
॥१०४१॥

राग बिलावल

मैया री मोहिं दाऊ टेरत।
मोकौं बन-फल तोरि देत हैं, आपुन गैयनि घेरत।
और ग्वाल सँग कबहुँ न जैहौं, वै सब मोहिं खिझावत।
मैं अपने दाऊ सँग जैहौं, बन देखैं सुख पावत।
आगैं दै पुनि ल्यावत घर कौं, तू मोहिं जान न देति।
सूर स्याम जसुमति मैया सौं हा-हा करि कहै केति ॥४२४॥
॥१०४२॥

राग सारंग

बोलि लियौ बलरामहिं जसुमति।
लाल सुनौ हरि के गुन, काल्हिहिं तैं लँगरई करत अति।
स्यामहिं जान देहि मेरैं सँग, तू काहैं डर मानति।
मैं अपने ढिग तैं नहिं टारौं जियहिं प्रतीति न आनति।
हँसी महरि बल की बतियाँ सुनि, बलिहारी या मुख की।
जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौं, कहति बीर के रुख की ॥४२५॥
॥१०४३॥

राग नट

अति आनंद भए हरि धाए।
टेरत ग्वाल-बाल सब आवहु, मैया मोहिं पठाए।
उत तैं सखा हँसत सब आवत, चलहु कान्ह बन देखहिं।
बनमाला तुमकौं पहिरावहिं, धातु-चित्र तनु रेखहिं।
गाइ लईं सब घेरि घरनि तैं, महर गोप के बालक।
सूर स्याम चले गाइ चरावन, कंस उरहिं के सालक ॥४२६॥
॥१०४४॥

बकासुर-बध राग सारंग

वन-वन फिरत चारत धेनु।
स्याम हलधर संग सँग बहु गोप-बालक-सेनु।
तृपित भए सब जानि मोहन, सखनि टेरत येनु।
बोलि ल्यावहु सुरभि-गन, सब चलौ जमुन-जल देनु।
सुनत हीं सब हाँकि ल्याए, गाइ करि इक ठैन।
हरि दै-दै ग्वाल-बालक, कियौ जमुन-तट गैन।
बकासुर रचि रूप माया, रह्यौ छल करि आइ।
चोंच इक पुहुमी लगाई, इक अकास समाइ।
आगैं बालक जात हे ते पाछैं आए धाइ।
स्याम सौं वै कहन लागे, आगैं एक बलाइ।
नितहिं आवत सुरभि लीन्हे, ग्वाल गो-सुत संग।
कबहुँ नहिं इहि भाँति देख्यौ आजु कैसौ रंग।
मनहिं मन तब कृष्न भाष्यौ, यह बकासुर अंग।
चोंच फारि बिदारि डारौं, पलक मैं करौं भंग।
निदरि चले गोपाल आगैं, बकासुर कैं पास।
सखा सब मिलि कहन लागे, तुम न जिय की आस।
अजहुँ नाहिं डरात मोहन, बचे कितनैं गाँस।
तब कह्यौ हरि, चलहु सब मिलि, मारि करहिं बिनास।
चले सब मिलि, जाइ देख्यौ, अगम तन बिकरार।
इत धरनि उत ब्योम कैं बिच, गुहा कैं आकार।
पैठि बदन बिदारि डार्‍यौ, अति भए बिस्तार।
मरत असुर चिकार पार्‍यौ, मार्‍यौ नंद-कुमार।
सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे अब न उबरै स्याम।
हमहिं बरजत गयौ, देखौ, किए कैसे काम।
देखि ग्वालनि बिकलता तब, कहिं उठे बलराम।
बका-बदन बिदारि डार्‍यौ, अबहिं आवत स्याम।
सखा हरि तब टेरि लीन्हे, सबै आवहु धाय।
चोंच फारि बका सँहार्‍यौ, तुमहु करहु सहाय।
निकट आए गोप-बालक, देखि हरि सुख पाए।
सूर प्रभु के चरित अगनित, नेति निगमनि गाए ॥४२७॥
॥१०४५॥

राग सारंग

ब्रज मैं को उपज्यौ यह भैया।
संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया।
जब तैं ब्रज अवतार धर्यौ इन, कोउ नहिं घात करैया।
तृनावर्त पूतना पछारी, तब अति रहे नन्हैया।
कितिक बात यह बका बिदार्यौ, धनि जसुमति जिनि जैया।
सूरदास प्रभु की यह लीला, हम कत जिय पछितैया ॥४२८॥
॥१०४६॥

राग धनाश्री

बका बिदारि चले ब्रज कौं हरि।
सखा संग आनंद करत सब, अंग-अंग बन-धातु चित्र करि।
बनमाला पहिरावत स्यामहिं बार-बार अँकवार भरत धरि।
कंस निपात करौगे तुमहीं, हम जानी यह बात सही परि।
पुनि-पुनि कहत धन्य नँद जसुमति, जिनि इनकौं जनम्यौ सो धनि घरि।
कहत इहै सब जात सूर प्रभु, आनँद-आँसु ढरत लोचन भरि।
॥४२९॥१०४७॥

राग कान्हरौ

ब्रज-बालक सब जाइ तुरतहीं, महर-महरि कैं पाइ परे।
ऐसौ पूत जन्यौ जग तुमहीं धन्य कोखि जिहि स्याम धरे।
गाइ लिवाइ गए बृंदाबन, चरत चलीं जमुना-तट हेरि।
असुर एक खग-रूप धरि रह्यौ, बैठ्यौ तीर, बाइ मुख घेरि।
चोंच एक पुहुमी करि राखी एक रह्यौ तो गगन लगाइ।
हम बरजत पहिलेहिं हरि धायौ, बदन चीरि पल माँहिं गिराइ।
सुनत नंद जसुमति चक्रित चित चक्रित गोकुल के नर-नारि।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, तब जननी भरि लए अँकवारि।
॥४३०॥१०४८॥

अघासुर-बध *राग धनाश्री*

नंदराइ-सुत लाड़िले, सब-ब्रज-जीवन-प्रान।
बार-बार माता कहै, जागहु स्याम सुजान।

जसुमति लेति बलाइ, भोर भयौ उठौ कन्हाई।
संग लिए सब सखा, द्वार ठाढ़े बल भाई।
सुंदर बदन दिखाइ कै, हरौ नैन कौ तापु।
नैन कमल मुख धोइ कछु करौ कलेऊ आपु।
माखन-रोटी लेहु सद्य दधि रैनि जमायौ।
षटरस के मिष्टान्न, सु जैंवहु जो रुचि आयौ।
मो पै लीजै माँगि कै, जोइ-जोइ भावे तोहिं।
सँग जैंवहु बलराम कैं, रुचि उपजावहु मोहिं।
तब हँसि चितए स्याम, सेज तैं बदन उघारयौ।
मानहुँ पय-निधि मथत, फेन फटि चंद उजारयौ।
सखा सुनत देखन चले, मानहुँ चंद चकोर।
जुगल कमल मनु इंदु पर, बैठि रहे अति भोर।
तब उठि आए कान्ह, मातु जल बदन पखारयौ।
बोलि उठे बलराम, स्याम कत उठे सवारयौ।
दाऊ जू कहि, हँसि मिले, बाहँ गही बैठाइ।
माखन-रोटी सद दही, जैंवत रुचि उपजाइ।
जल अँचयौ, मुख धोइ, उठे बल-मोहन भाई।
गाइ लईं सब घेरि, चले बन कुँवर कन्हाई।
टेर सुनत बलराम की, आए बालक धाइ।
लै आए सब जोरि कै, घर तैं बछुरा गाइ।
सखनि कान्ह सौं कह्यौ, आजु बृंदाबन जैऐ।
जमुना-तट तृन बहुत, सुरभि-गन तहाँ चरैऐ।
ग्वाल गाइ सब लै गए, बृंदाबन समुहाइ।
अतिहिं सघन बन देखिकै, हरषि उठे सब गाइ।
कोउ टेरत, कोउ हाँकि सुरभि-गन, जोरि चलावत।
कोऊ हेरी देत, परस्पर स्याम सिखावत।
अंतरजामी कहत जिय, हमहिं सिखावत टेरि।
कान्ह कहत अब गाइ जे गईं सु लीजै फेरि।
कोउ मुरली कोउ बेनु-सब्द, सृंगी कोउ पूरैं।
कृष्न कियौ मन ध्यान असुर इक बसत अँधेरैं।
बालक बछुरनि राखिहौं, एक बार लै जाउँ।
कछुक जनाऊँ अपुनपौ, अब लौं रह्यौ सुभाउ।

असुर-कुलहिँ संहारि धरनि कौ भार उतारौँ।
कपट रूप रचि रह्यौ दनुज, इहिँ तुरत पछारौँ।
गिरि समान धरि अगम तन बैठ्यौ बदन पसारि।
मुख भीतर वन घन नदी, छल माया करि भारि।
पैठि गए मुख ग्वाल धेनु वछरा सँग लीने।
देखि महावन भूमि हरे, तृन-द्रुम कृत कीने।
कहन लगे सब अपुन मैं सुरभी चरैं अघाइ।
मानहुँ पर्वत-कंदरा, मुख सब गए समाइ।
जब मुख गए समाइ, असुर तब चाब सकोर्‍यौ।
अंधकार इमि भयौ मनहुँ निसि बादर जोर्‍यौ।
अतिहिँ उठे अकुलाइ कै, ग्वाल वच्छ सब गाइ।
त्राहि-त्राहि करि कहि उठे, परे कहाँ हम आइ।
धीर-धीर कहि कान्ह, असुर यह, कंदर नाहीँ।
अनजानत सब परे अघा-मुख-भीतर माहीँ।
जिय लाग्यौ यह सुनत हीँ, अब को सकै उबारि।
बातँ दूनी देह धरी, असुर न सक्यौ सम्हारि।
सबद कर्‍यौ आघात, अघासुर टेरि पुकार्‍यौ।
रह्यौ अधर दोउ चाँपि, बुद्धि बल सुरति बिसार्‍यौ।
ब्रह्म द्वार सिर फोरि कै, निकसे गोकुलराइ।
बाहिर आवहु निकसि कै, मैं करि लियौ सहाइ।
बालक बछरा धेनु सबै मन अतिहिँ सकाने।
अंधकार मिटि गयौ देखि जहँ-तहँ अतुराने।
आए बाहिर निकसि कै, मन सब कियौ हुलास।
हम अजान कत डरत हैँ, कान्ह हमारैं पास।
धन्य कान्ह, धनि नंद, धन्य जसुमति महतारी।
धन्य लियौ अवतार, कोखि धनि, जहँ दैतारी।
गिरि-समान तन अगम अति, पन्नग की अनुहारि।
हम देखत पल एक मैं मार्‍यौ दनुज प्रचारि।
हरि हँसि बोले बैन, संग जौ तुम नहिँ होते?
तुम सब कियौ सहाइ, भयौ तब कारज मोते।
हमहुँ तुमहुँ मिलि बैठि बन, भोजन करैँ अघाइ।
बंसीवट भोजन बहुत, जसुमति दियौ पठाइ।

ग्वाल परम सुख पाइ, कोटि मुख करत प्रसंसा।
कहा बहुत जो भए, सपूतौ एकै वंसा।
चढ़ि बिमान सुर देखहीं, गगन रहे भरि छाइ।
जय-जय धुनि नभ करत हैं, हरषि पुहुप बरषाइ।
ब्रह्मा सुनी यह बात, अमर-बर-बरनि कहानी।
गोकुल लीन्हौ जन्म, कौन मैं यह नहिं जानी।
देखौं इनकौ खोज लै, सोच पर्‌यौ मन माहिं।
सूर स्याम ग्वालनि लए, चले बंसीवट - छाहिं ॥४३१॥
॥१०४९॥

राग सोरठ

गोविंद चलत देखियत नीके।
मध्य गोपाल मंडली राजत, काँधैं धरि लिए सीके।
बछरा-बृंद घेरि आगैं करि, जन-जन सृंग बजाए।
जनु बन कमल सरोवर तजि कै, मधुप उनींदे आए।
बृंदावन प्रबेसि अघ मार्‌यौ, बालक जसुमति, तेरैं।
सूरदास प्रभु सुनत जसोदा, चितै बदन प्रभु केरैं ॥४३२॥
॥१०५०॥

राग बिलावल

आजु जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक मार्‌यौ।
पन्नग-रूप गिले सिसु गो-सुत इहिं सब साथ उबार्‌यौ।
गिरि-कंदरा समान भयानक जब अघ बदन पसार्‌यौ।
निडर गोपाल पैठि मुख-भीतर, खंड-खंड करि डार्‌यौ।
याकैं बल हम बदत न काहुहिं, सकल भूमि तृन चार्‌यौ।
जीते सबै असुर हम आगैं, हरि कबहूँ नहिं हार्‌यौ।
हरषि गए सब कहत महरि सौं, अबहिं अघासुर मार्‌यौ।
सूरदास प्रभु की यह लीला ब्रज कौ काज सँवार्‌यौ ॥४३३॥
॥१०५१॥

राग नट

जसुमति सुनि-सुनि चकित भई।
मैं बरजति बन जात कन्हैया, का धौं करै दई।

कहाँ-कहाँ तैं उबरयौ मोहन, नैंकु न तऊ डरात।
आपुन कहा तनक सौ, बन मैं, सुनौं बहुत मैं घात।
मेरौ कह्यौ सुनौ जो स्रवननि कहति जसोदा खीझत।
सूर स्याम कह्यौ बन नहिं जैहौं, यह कहि मन-मन रीझत।
॥४३४॥१०५२॥

राग गौरी

अघा मारि आए नँदलाल।
ब्रज-जुवती सुनि कै उठि धाईं, घर-घर कहत फिरत सब ग्वाल।
निरखत बदन चकित भईं सुंदरि, मनहीं मन यह करि अनुमान।
कहति परस्पर, सत्य बात यह, कौन करै इनकी सरि आन!
येई हैं रति-पति के मोहन, येई हैं हमरे पति-प्रान।
सूर स्याम जननी-मन मोहत, बार-बार माँगत कछु खान ॥४३५॥
॥१०५३॥

ब्रह्मा-बालक-बत्स-हरण *राग नटनारायन*

विधि मनहीं मन सोच पर्‌यौ।
गोकुल की रचना सब देखत, अति जिय माहिं डर्‌यौ।
मैं विरंचि विरच्यौ जग मेरौ, यह कहि गर्व बढ़ायौ।
ब्रज-नर-नारि ग्वाल-बालक, कहि, कौनैं ठाटि रचायौ।
वृंदावन, वट सघन बृच्छ तर, मोहन सबै बुलाए।
सखा संग मिलि करि बन-भोजन, बिधि मन भ्रम उपजाए।
धेनु रहीं बन भूलि कहूँ है, बालक भ्रमत न पाए।
यातैं स्याम अतिहिं अतुराने, तुरत तहाँ उठि धाए।
बालक-बच्छ हरे चतुरानन, ब्रह्म-लोक पहुँचाए।
सूरदास प्रभु गर्व बिनासन, नव कृत फेरि बनाए ॥४३६॥
॥१०५४॥

राग धनाश्री

हरप भए नँदलाल बैठि तरु छाहँ के। ध्रुव।
बंसीवट अति सुखद, और द्रुम पास चहूँ हैं।
सखा लिए तहँ गए, धेनु बन चरतिं कहूँ हैं।

बैठि गए सुख पाइ कै, ग्वाल-बाल लिए साथ।
अति आनँद पुलकित हिऐं, गावत हरि-गुन-गाथ।
अहिर लिए मधु-छाक, तुरत वृंदावन आए।
ब्यंजन सहस प्रकार, जसोदा बनै पठाए।
स्याम कह्यौ बन चलत हीं, माता सौं समुझाइ।
उत तैं वै आए सबै, देखत हीं सुख पाइ।
कान्ह देखि मधु-छाक, पुलकि अँग-अंग बढ़ायौ।
हँसि-हँसि बोले तबै, प्रेम सौं जननि पठायौ।
नीकैं पहुँचे आइ तुम, भलौ बन्यौ संजोग।
बार-बार कह्यौ सखनि सौं, आजु करैं सुख-भोग।
बन-भोजन बिधि करत, कमल के पात मँगाए।
तोरे पात पलास, सरस दोना बहु लाए।
भाँति-भाँति भोजन धरे, दधि-लवनी-मिष्टान्न।
बन फल लए मँगाइ कै, रुचि करि लागे खान।
बन-भोजन हरि करत संग मिलि सुबल सुदामा।
स्याम कुँवर परसेन महर-सुत अरु श्रीदामा।
स्याम सबनि मिलि खात हैं लै-लै कौर छुड़ाइ।
औरनि लेत बुलाइ ढिग, छहकि आपु मुख नाइ।
ब्रह्मा देखि बिचारि सृष्टि कोउ नई चलाई।
मोहिं पठयौ जिहिं सौंपि, ताहि कहिहौं कहा जाई।
देखौं धौं यह कौन है, बाल-बच्छ हरि लेउँ।
ब्रह्मलोक लै जाउँ हरि, इहि बिधि करि दुख देउँ।
अंतरजामी नाथ, तुरत बिधि मन की जानी।
बालक ह्वै दए पठै, धेनु बन कहूँ हिरानी।
जहाँ-तहाँ बन ढूँढ़ि कै, फिरि आए हरि-पास।
सखा सबनि बैठारि कै, आपुन गए उदास।
हरि लै बालक-बच्छ, ब्रह्मलोकहिं पहुँचाए।
फिरि आए जो कान्ह, कहूँ कोऊ नहिं पाए।
प्रभु तबहीं जान्यौ यहै, बिधि लै गयौ चोराइ।
जो जिहिं रँग जिहिं रूप कौ, बालक बच्छ बनाइ।
तातैं कीने और ब्रह्म हद-नाल उपायौ।
अपनौ करि तिहिं जानि कियौ ताकौ मन भायौ।

उद्धारन मारन छमी, मन हरि कीन्हौ ज्ञान।
अनजानैं विधि यह करी, नए रचे भगवान।
वहै बुद्धि वहै प्रकृति, वहै पौरुष तन सब के।
वहै नाउ, वहै भाउ, धेनु बछरा मिलि रब के।
स्याम कह्यौ सब सखनि सौं, ल्यावहु गोधन घेरि।
संध्या कौ आगम भयौ, ब्रज-तन हाँकौ फेरि।
सुनत ग्वाल, ले चले, धेनु ब्रज वृंदावन तैं।
कान्हहिं बालक जानि डरे, सब ग्वाले मन तैं।
मध्य किए लै स्याम कौं, सखा भए चहुँ पास।
बच्छ-धेनु आगैं किए, आवत करत बिलास।
बाजत बेनु बिषान, सबै अपनैं रँग गावत।
मुरली-धुनि, गो-रंभ, चलत पग धूरि उड़ावत।
मोर-मुकुट सिर सोहई, बनमाला पट पीत।
गो-रज मुख पर सोहई, मनहुँ चंद कन-सीत।
देखि हरषि ब्रजनारि, स्याम पर तन-मन वारति।
इकटक रूप निहारि, रहीं मेटत चित-आरति।
कहा कहैं छबि आजु की मुख मंडित खुर-धूरि।
मानौ पूरन चंद्रमा, कुहर रह्यौ आपूरि।
गोकुल पहुँचे जाइ, गए बालक अपनैं घर।
गो-सुत अरु नर-नारि मिले, अति हेत लाइ गर।
प्रेम सहित वै मिलत हैं, जे उपजाए आजु।
जसुमति मिलि सुत सौं कहति, रैनि करत किहिं काज।
मैं घर आवन कहौं, सखा सँग कोउ नहिं आवैं।
देखत बन अति अगम डरौं वै मोहिं डरपावैं।
बार-बार उर लाइकै, लै बलाइ, पछिताइ।
कालिहहिं तैं वेई सबै, ल्यावैं गाइ चराइ।
यह सुनि कै हरि हँसे, कालिह मेरी जाइ बलैया।
भूख लगी मोहिं बहुत, तुरतहीं दै कछु मैया।
माखन दीन्हौ हाथ कै, तब लौं तुम यह खाहु।
तातौ जल है घाम कौ, तनक तेल सौं न्हाहु।
तब जसुमति गहि बाहँ, तुरत हरि लै अन्हवाए।
रोहिनि करि जेवनार, स्याम-बलराम बुलाए।

जैंवत अति रुचि पावहीँ, परुसति माता हेत।
जेँइ उठे अँचवन लियौ, दुहुँ कर वीरा देत।
स्याम उनींदे जानि, मातु रचि सेज विछाई।
तापर पौढ़े लाल अतिहिं मन हरप वढ़ाई।
अघ-मर्दन, बिधि-गर्व-हत, करत न लागी वार।
सूरदास प्रभु के चरित, पावत कोउ न पार ॥४३७॥१०५५॥

राग सारंग

कह्यौ गोपाल चरत हैँ गो-सुत हम सब वैठि कलेऊ कीजै।
सीतल छाहँ बृच्छ की सुंदर, निर्मल जल जमुना कौ पीजै।
भोजन करत सखा इक बोल्यौ, बछरू कतहूँ दूरि गए।
जदुपति कह्यौ घेरि हौं आनौं, तुम जैंवहु निहचिंत भए।
चतुरानन बछरा लै गोए फिरि माधव आए तिहि ठाउँ।
बालक-बच्छ हरे लोकेस्वर, बार-बार टेरत लै नाउँ।
जान्यौ ब्रह्मा-छल मन मोहन, गोपी गाइ, बहुत दुख पैहैं।
तजिहैं प्रान सबै मिलि निस्चय, सुत जौ गृह कौं आजु न जैहैं।
वाही भाँति, बरन, वपु वैसेहिं, सिसु सब रचे नंद-सुत आन।
आगैं बछ, पाछैँ ब्रज-बालक, करत चले मधुरैं सुर गान।
पूरब प्रीति अधिक ताहू तैं, करतीं ब्रज-बनिता अरु धेनु।
सूरज प्रभु अच्युत ब्रज-मंडल, घरहीँ घर लागे सुख देनु ॥४३८॥
॥१०५६॥

राग बिलावल

नंद महर के भावते, जागौ मेरे बारे।
प्रात भयौ उठि देखिऐ, रवि किरनि उज्यारे।
ग्वाल-बाल सब टेरहीँ, गैया वन चारन।
लाल उठौ मुख धोइऐ, लागी बदन उघारन।
मुख तैं पट न्यारौ कियौ, माता कर अपनैं।
देखि बदन चकित भई, सौंतुष की सपनैं।
कहा कहौं वा रूप की, को बरनि बतावै।
सूर स्याम के गुन अगम, नँद-सुवन कहावै ॥४३९॥
॥१०५७॥

राग रामकली

लालहिं जगाइ बलि गई माता।
निरखि मुख-चंद-छवि, मुदित भई मनहिं मन, कहत आधैं बचन भयौ प्राता।
नैन अलसात अति, बार-बार जम्हात, कंठ लगि जात, हरषात गाता।
बदन पौंछियौ जल जमुन सौं धोइ कै, कह्यौ मुसुकाइ, कछु खाहु ताता।
दूध औट्यौ आनि, अधिक मिसिरी सानि, लेहु माखन पानि प्रान-दाता।
सूर प्रभु कियौ भोजन बिबिध भाँति सौं, पियौ पय मोद करि घूँट साता ॥४४०॥१०५८॥

राग ललित

उठे नंद-लाल सुनत जननी मुख बानी।
आलस भरे नैन, सकल सोभा की खानी।
गोपी जन बिथकित ह्वै चितवतिं सब ठाढ़ी।
नैन करि चकोर, चंद-बदन प्रीति बाढ़ी।
माता जल झारी लै, कमल-मुख पखारयौ।
नैन नीर परस करत आलसहिं बिसारयौ।
सखा द्वार ठाढ़े सब, टेरत हैं बन कौं।
जमुना-तट चलौ कान्ह, चारन गोधन कौं।
सखा सहित जेंवहु, मैं भोजन कछु कीन्हौ।
सूर स्याम हलधर सँग सखा बोलि लीन्हौ ॥४४१॥१०५९॥

राग बिलावल

दोउ भैया जेंवत माँ आगैं।
पुनि-पुनि लै दधि खात कन्हाई, और जननि पै माँगैं।
अति मीठौ दधि आजु जमायौ, बलदाऊ तुम लेहु।
देखौ धौं दधि-स्वाद आपु लै, ता पाछैं मोहिं देहु।
बल मोहन दोउ जेंवत रुचि सौं, सुख लूटति नँदरानी।
सूर स्याम अब कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी ॥४४२॥ ॥१०६०॥

राग रामकली

(द्वारैं) टेरत हैं सब ग्वाल कन्हैया, आवहु बेर भई।
आवहु बेगि, बिलम जनि लावहु, गैया दूरि गई।

यह सुनतहिँ दोऊ उठि धाए, कछु अँचयौ कछु नाहिँ।
कितिक दूर सुरभी तुम छाँड़ी, बन तौ पहुँची नाहिँ।
ग्वाल कह्यौ कछु पहुँची ह्वैहैं, कछु मिलिहैं मग माहिँ।
सूरदास बल मोहन भैया, गैयनि पूछत जाहिँ ॥४४३॥
॥१०६१॥

राग बिलावल

बन पहुँचत सुरभी लईं जाइ।
जैहौ कहा सखनि कौं टेरत, हलधर संग कन्हाइ।
जेँवत परखि लियौ नहिँ हमकौं, तुम अति करी चँड़ाइ।
अब हम जैहैं दूरि चरावन, तुम सँग रहै बलाइ।
यह सुनि ग्वाल धाइ तहँ आए, स्यामहिँ अंकम लाइ।
सखा कहत यह नंद-सुवन सौं, तुम सब के सुखदाइ।
आजु चलौ वृंदावन जैऐ, गैयाँ चरैं अघाइ।
सूरदास प्रभु सुनि हरषित भए, घर तैं छाँक मँगाइ ॥४४४॥
॥१०६२॥

राग बिलावल

आजु चरावन गाइ चलौ जू, कान्ह, कुमुद बन जैऐ।
सीतल कुंज कदम की छहियाँ, छाक छहूँ रस खैऐ।
अपनी-अपनी गाइ ग्वाल सब, आनि करौ इक ठौरी।
धौरी, धूमरि, राती, रौंछी, बोल बुलाइ चिन्हौरी।
पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती।
दुलही, फुलही, भौंरी, भूरी, हाँकि ठिकाईं तेती।
बाबा नंद बुरौ मानैंगे, और जसोदा मैया।
सूरजदास जनाइ दियौ है, यह कहिकै बल भैया ॥४४५॥
॥१०६३॥

राग बिलावल

चले सब वृंदाबन समुहाइ।
नंद-सुवन सब ग्वालनि टेरत, ल्यावहु गाइ फिराइ।
अति आतुर ह्वै फिरे सखा सब, जहँ-तहँ आए धाइ।
पूछत ग्वाल, बात किहिँ कारन, बोले कुँवर कन्हाइ।

सुरभी बृंदावन कौं हाँकौ, औरनि लेहु बुलाइ।
सूर स्याम यह कही सबनि सौं, आपु चले अतुराइ ॥४४६॥
॥१०६४॥

राग धनाश्री

गैयनि घेरि सखा सब ल्याए।
देख्यौ कान्ह जात बृंदाबन, यातैं मन अति हरष बढ़ाए।
आपुस मैं सब करत कुलाहल, धौरी, धूमरि धेनु बुलाए।
सुरभी हाँकि देत सब जहँ-तहँ, टेरि-टेरि हेरी सुर गाए।
पहुँचे आइ बिपिन घन बृंदा, देखत द्रुम दुख सबनि गँवाए।
सूर स्याम गए अघा मारि जब, ता दिन तैं इहिं बन अब आए।
॥४४७॥१०६५॥

राग नटनारायन

चरावत बृंदाबन हरि धेनु।
ग्वाल सखा सब संग लगाए, खेलत हैं करि चैनु।
कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ बिषान, कोउ बेनु।
कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरी ब्रज-बालक-सेनु।
त्रिबिध पवन जहँ बहत निसादिन सुभग कुंज घन ऐनु।
सूर स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैनु ॥४४८॥
॥१०६६॥

राग धनाश्री

बृंदाबन मोकौं अति भावत।
सुनहु सखा तुम सुबल, श्रीदामा, ब्रज तैं बन गौ-चारन आवत।
कामधेनु सुरतरु सुख जितने, रमा सहित बैकुंठ भुलावत।
इहि बृंदाबन, इहिं जमुना-तट, ये सुरभी अति सुखद चरावत।
पुनि-पुनि कहत स्याम श्रीमुख सौं, तुम मेरैं मन अतिहिं सुहावत।
सूरदास सुनि ग्वाल चकृत भए, यह लीला हरि प्रगट दिखावत।
॥४४९॥१०६७॥

राग बिलावल

ग्वाल सखा कर जोरि कहत हैं, हमहिं स्याम तुम जनि बिसरावहु।
जहाँ-जहाँ तुम देह धरत हौ, तहाँ-तहाँ जनि चरन छुड़ावहु।

ब्रज तैं तुमहिं कहूँ नहिं टारौं, यहै पाइ मैं हूँ ब्रज आवत।
यह सुख नहिं कहुँ भुवन चतुर्दस, इहिं ब्रज यह अवतार बतावत।
और गोप जे बहुरि चले घर, तिनसौं कहि ब्रज छाक मँगावत।
सूरदास प्रभु गुप्त बात सब, ग्वालनि सौं कहि-कहि सुख पावत।
॥४५०॥१०६८॥

राग बिलावल

कन्हैया हेरी दै।
सुभग साँवरे गात की मैं, सोभा कहत लजाउँ।
मोर-पंख सिर-मुकुट की मुख-मटकनि की बलि जाउँ।
कुंडल लोल कपोलनि झाईं बिहँसनि चितहिं चुरावै।
दसन-दमक, मोतिनि लर ग्रीवा, सोभा कहत न आवै।
उर पर पदिक कुसुम बनमाला, अंगद खरे बिराजैं।
चित्रित बाहँ पहुँचिया पहुँचै, हाथ मुरलिया छाजै।
कटि पट पीत, मेखला मुखरित, पाइनि नूपुर सोहै।
आस-पास बर ग्वाल-मंडली, देखत त्रिभुवन मोहै।
सब मिलि आनँद प्रेम बढ़ावत, गावत गुन गोपाल।
यह सुख देखत स्याम-संग कौ, सूरदास सब ग्वाल ॥४५१॥
॥१०६९॥

राग बिलावल

कान्ह काँधे कामरिया कारी, लकुट लिए कर घेरै हो।
बृंदावन मैं गाइ चरावै, धौरी धूमरि टेरै हो।
लै लिवाइ ग्वालनि बुलाइ कै, जहँ-तहँ बन-बन हेरै हो।
सूरदास प्रभु सकल लोक-पति, पीतांबर कर फेरै हो ॥४५२॥
॥१०७०॥

राग टोडी

सोई हरि काँधे कामरि, काछ किए नाँगे पाइनि, गाइनि टहल करैं।
त्रिभुवनपति दिसिपति, नर-नारी-पति, पंछिनिपति, रबि-ससि जाहि डरैं।

सिव-बिरंचि ध्यान धरत, भक्त त्रिविध ताप हरंत, तिनहिं हित
वपु धरैं ।
सूरदास जिनके गुन, निगम नेति गावत, तेइ बन-बन मैं बिहरैं ।
॥४५३॥१०७१॥

राग नट

छाक लेन जे ग्वाल पठाए ।
तिनसौं पूछति महरि जसोदा, छाँड़ि कान्ह कित आए ।
हमहिं पठाइ दिए नँद-नंदन, भूखे अति अकुलाए ।
धेनु चरावत हैं बृंदाबन, हम इहिं कारन आए ।
यह कहि ग्वाल गए अपनैं गृह, बन की खबरि सुनाए ।
सूर स्याम बलराम प्रातहीं अधजेंवत उठि धाए ॥४५४॥
॥१०७२॥

राग सारंग

और ग्वाल सबही गृह आए, गोपालहिं बेर भई ।
अतिहिं अबेर भई लालन कौं, अजहूँ नहिं छाक गई ।
तबहीं तैं भोजन करि राख्यौ, उत्तम दूध जमाइ ।
ना जानौं धौं कान्ह कौन बन, चारत बेर लगाइ ।
राज करैं वै धेनु तुम्हारी, नंदहिं कहति सुनाइ ।
पंच की भीख सूर बल-मोहन, कहति जसोमति माइ ॥४५५॥
॥१०७३॥

राग सारंग

जोरति छाक प्रेम सौं मैया ।
ग्वालनि बोलि लियौ अधजेंवत, उठि दौरे दोउ भैया ।
तबही तैं मैं भोजन कीन्हौ, चाहति दियौ पठाइ ।
भूखे भए आजु दोउ भैया, आपुहि बोलि मँगाइ ।
सद माखन साजौ दधि मीठौ, मधु मेवा पकवान ।
सूर स्याम कौं छाक पठावति, कहति ग्वारि सौं जान ॥४५६॥
॥१०७४॥

राग सारंग

घरही की इक ग्वारि बुलाई ।
छाक समग्री सबै जोरि कै, वाकैं कर दै तुरत पठाई ।

कह्यौ ताहि बृंदावन जैऐ, तू जानति सब प्रकृति कन्हाई।
प्रेम सहित लै चली छाक वह, कहँ ह्वैहैं भूखे दोउ भाई।
तुरत जाइ बृंदावन पहुँची, ग्वाल-बाल कहुँ कोउ न बताई।
सूर स्याम कौं टेरत डोलति, कित हौ लाल छाक मैं लाई ॥४५७॥
॥१०७५॥

राग टोड़ी

आजु कौन बन गाइ चरावत, कहँ धौं भई अबेर।
बैठे कहँ, सुधि लेउँ कौन बिधि, ग्वारि करति अवसेर।
बृंदा आदि सकल बन ढूँढ्यौ, जहँ गाइनि की टेर।
सूरदास प्रभु दुरत दुराए, डुँगरनि ओट सुमेर ॥४५८॥
॥१०७६॥

राग सारंग

छाक लिए सिर, स्याम बुलावति।
ढूँढ़त फिरति ग्वारिनी हरि कौं, कितहूँ भेद न पावति।
टेर सुनति काहू को स्रवननि, तहाँ तुरत उठि धावति।
पावति नहीं स्याम बलरामहिं, ब्याकुल ह्वै पछतावति।
बृंदाबन फिरि-फिरि देखति है, बोलि उठे तहँ ग्वाल।
सूर स्याम बलराम इहाँ हैं, छाक लेहु किन लाल ॥४५९॥
॥१०७७॥

राग कान्हरौ

फिरत बननि बृंदाबन, बंसीबट, सँकेत बट
नागर कटि काछे, खौरि केसरि की किए।
पीत बसन चँदन तिलक, मोर-मुकुट कुँडल-झलक
स्याम-घन-सुरंग-छलक, यह छबि तन लिए।
तनु त्रिभंग, सुभग अंग, निरखि लजत अति अनंग
ग्वाल-बाल लिए संग, प्रमुदित सब हिए।
सूर स्याम अति सुजान, मुरली-धुनि करत गान
ब्रज-जन-मन कौं महान, संतत सुख दिए ॥४६०॥
॥१०७८॥

राग सारंग

हरि कौं टेरत फिरति गुवारि।
आइ लेहु तुम छाक आपनी, बालक बल बनवारि।
आजु कलेऊ करत बन्यौ नहिं, गैयनि सँग उठि धाए।
तुम कारन बन छाक जसोदा, मेरैं हाथ पठाए।
यह बानी जब सुनी कन्हैया, दौरि गए तिहिं काजु।
सूर स्याम कह्यौ नीकैं आई, भूख बहुत ही आजु ॥४६१॥
॥१०७६॥

राग सारंग

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई।
टेरि-टेरि मैं भई बावरी, दोउ भैया तुम रहे लुकाई।
जे सब ग्वाल गए ब्रज घर कौं, तिनसौं कहि तुम छाक मँगाई।
लवनी दधि मिष्टान्न जोरि कै जसुमति मेरैं हाथ पठाई।
ऐसी भूख माँझ तू ल्याई तेरी किहिं बिधि करौं बड़ाई।
सूर स्याम सब सखनि पुकारत, आवत क्यौं न, छाक है आई।
॥४६२॥१०८०॥

राग सारंग

गिरि पर चढ़ि गिरवर-धर टेरे।
अहो सुबल, श्रीदामा भैया, ल्यावहु गाइ खरिक कैं नेरे।
आई छाक अबार भई है, नैंसुक धैया पिएउ सबेरे।
सूरदास प्रभु बैठि सिला पर, भोजन करैं ग्वाल चहुँफेरे।
॥४६३॥१०८१॥

राग नट

बिहारी लाल, आवहु, आई छाक।
भई अवार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दै हाँक।
अर्जुन, भोजऽरु सुबल, सुदामा, मधुमंगल इक ताक।
मिलि बैठे सब जैंवन लागे, बहुत बने कहि पाक।
अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ-तहँ फेनि पिराक।
सूरदास प्रभु खात ग्वाल सँग, ब्रह्मलोक यह धाक ॥४६४॥
॥१०८२॥

रागसारंग

आई छाक, बुलाए स्याम।

यह सुनि सखा सवै जुरि आए, सुबल, सुदामा अरु श्रीदाम।
कमल-पत्र दोना पलास के, सब आगैं धरि परुसत जात।
ग्वाल-मंडली मध्य स्याम-घन, सब मिलि भोजन रुचि करि खात।
ऐसी भूख माहिं यह भोजन, पठै दियौ है जसुमति मात।
सूर स्याम अपनौ नहिं जेंवत, ग्वालनि कर तैं लै-लै खात ॥४६५॥
॥१०८३॥

राग सारंग

सखनि संग जेंवत हरि छाक।

प्रेम सहित मैया दै पठई, सबै बनाई है इक ताक।
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, सब सँग भोजन रुचि करि खात।
ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत, मुख लै मेलि सराहत जात।
जो सुख कान्ह करत बृंदावन सो सुख नहीं लोकहूँ सात।
सूर स्याम भक्तनि बस ऐसे ब्रह्म कहावत हैं नँद-तात ॥४६६॥
॥१०८४॥

राग सारंग

ग्वाल मंडली मैं बैठे मोहन बट की छाँह, दुपहर बेरिया सखनि संग लीने।
एक दूध, फल, एक झगरि चबेना लेत, निज-निज कामरी के आसननि कीने।
जेंवतऽरु गावत हैं सारँग की तान कान्ह, सखनि के मध्य छाक लेत कर छीने।
सूरदास प्रभु कौं निरखि, सुख रीझि-रीझि, सुर सुमननि बरषत रस भीने ॥४६७॥
॥१०८५॥

राग सारंग

ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत।
जूठौ लेत सबनि के मुख कौ, अपनैं मुख लै नावत।

पटरस के पकवान धरे सब, तिनमैं रुचि नहिं लावत।
हा-हा करि-करि माँगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत।
यह महिमा येई पै जानत, जातैं आपु बँधावत।
सूर स्याम सपनैं नहिं दरसत, मुनि जन ध्यान लगावत ॥४६८॥
॥१०८६॥

राग सारंग

ब्रज-बासी पटतर कोउ नाहिं।
ब्रह्म, सनक, सिव ध्यान न आवैं, इनकी जूठनि लै-लै खाहिं।
धन्य नंद धनि जननि जसोदा, धन्य जहाँ अवतार कन्हाइ।
धन्य-धन्य वृंदावन के तरु, जहँ बिहरत त्रिभुवन के राइ।
हलधर कहत छाक जेंवत सँग मीठौ लगत सराहत जाइ।
सूरदास प्रभु विस्वंभर हरि सो ग्वालनि के कौर अघाइ ॥४६९॥
॥१०८७॥

राग सारंग

सीतल छहियाँ स्याम हैं, बैठे, जानि भोजन की बिरियाँ।
बाम भुजाहिं सखा अँस दीन्हे, दच्छिन कर द्रुम-डरियाँ।
गाइनि घेरि, टेरि बलरामहिं, ल्यावहु कहत अबिरियाँ।
सूरदास प्रभु बैठि कदम तर, खात दूध की खिरियाँ ॥४७०॥
॥१०८८॥

राग सारंग

जेंवत छाक गाइ बिसराई।
सखा श्रीदामा कहत सबनि सौं, छाकहि मैं तुम रहे भुलाई।
धेनु नहीं देखियत कहुँ नियरैं, भोजन ही मैं साँझ कराई।
सुरभी काज जहाँ तहँ धाए, आपु तहाँ उठि चले कन्हाई।
ल्याए ग्वाल घेरि गो, गो-सुत, देखि स्याम मन हरष बढ़ाई।
सूरदास प्रभु कहत चलौ घर, बन मैं आजु अबार लगाई ॥४७१॥
॥१०८९॥

राग गौरी

ब्रजहिं चलौ आई अब साँझ।
सुरभी सबै लेहु आगैं करि, रैनि होइ जनि बनहीं माँझ।

भली कही यह बात कन्हाई, अतिहीँ सघन अरन्य उजारि।
गैया हाँकि चलाईँ ब्रज कौँ और ग्वाल सब लए पुकारि।
निकसि गए बन तैँ जब बाहिर, अति आनंद भए सब ग्वाल।
सूरदास प्रभु मुरलि बजावत, ब्रज आवत नटवर गोपाल ॥४७२॥
॥१०६०॥

राग कल्यान

सुंदर स्याम, सुँदर बर लीला, सुंदर बोलत बचन रसाल।
सुंदर चारु कपोल बिराजत, सुंदर उर जु बनी बनमाल।
सुंदर चरन सुँदर हैँ नख मनि, सुंदर कुंडल हेम जराल।
सुंदर मोहन नैन चपल किए, सुंदर ग्रीवा बाहु बिसाल।
सुंदर मुरली मधुर बजावत, सुंदर हैँ मोहन गोपाल।
सूरदास जोरी अति राजति ब्रज कौँ आवत सुंदर चाल ॥४७३॥
॥१०६१॥

राग कल्यान

सुंदर स्याम, सखा सब सुंदर, सुंदर बेष धरे गोपाल।
सुंदर पथ, सुंदर-गति आवन, सुंदर मुरली-सब्द रसाल।
सुंदर लोग, सकल ब्रज सुंदर, सुंदर हलधर सुंदर चाल।
सुंदर बचन, बिलोकनि सुंदर, सुंदर गुन सुंदर बनमाल।
सुंदर गोप, गाइ अति सुंदर, सुंदरि-गन सब करतिं बिचार।
सूर स्याम सँग सब सुख सुंदर, सुंदर भक्त-हेत अवतार ॥४७४॥
॥१०६२॥

राग बिलावल

सुंदर ढोटा कौन कौ, सुंदर मृदुबानी।
कहि समुझायौ ग्वालिनी, जायौ नँदरानी।
सुंदर मूरति देखि कै, घन घटा लजानी।
सुंदर नैननि हरि लियौ कमलनि कौ पानी।
सुंदरता तिहुँ लोक की, जसुमति ब्रज आनी।
सूरदास पुर मैँ भई, सुंदर रजधानी ॥४७५॥
॥१०६३॥

राग गौरी

देखि सखी वन तैं जु बने ब्रज आवत हैं नँद-नंदन।
सिखी सिखंड सीस, मुख मुरली, बन्यौ तिलक, उर चंदन।
कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन।
कमल मध्य मनु द्वै खग खंजन बँधे आइ उड़ि फंदन।
अरुन अधर-छबि दसन बिराजत, जब गावत कल मंदन।
मुक्ता मनौ नील-मनि-मय-पुट, धरे मुरकि बर बंदन।
गोप वेष गोकुल गो चारत हैं हरि असुर-निकंदन।
सूरदास प्रभु सुजस बखानत नेति नेति श्रुति छंदन ॥४७६॥
॥१०६४॥

सुनि सखि वे बड़भागी मोर।
जिनि पाँखनि कौ मुकुट बनायौ, सिर धरि नंदकिसोर।
ब्रह्मादिक सनकादि महामुनि, कलपत दोउ कर जोर।
वृंदावन के तृन न भए हम, लगत चरन कैं छोर।
बड़ो भाग नँद-जसुमति कौ है, कोऊ ठहर न और।
सूरदास गोपिन हित-कारन, कहियत माखन-चोर ॥४७७॥
॥१०६५॥

राग केदारौ

सोभा कहत कही नहिं आवै।
अँचवत अति आतुर लोचन-पुट, मन न तृप्ति कौं पावै।
सजल मेघ घनस्याम सुभग बपु, तड़ित बसन बनमाल।
सिखि-सिखंड, बन-धातु बिराजत, सुमन सुगंध प्रवाल।
कछुक कुटिल कमनीय सघन अति, गो-रज मंडित केस।
सोभित मनु अंबुज पराग-रुचि-रंजित मधुप सुदेस।
कुंडल-किरनि कपोल लोल छबि, नैन कमल-दल-मीन।
प्रति-प्रति अंग अनंग-कोटि-छबि, सुनि सखि परम प्रवीन।
अधर मधुर मुसुक्यानि मनोहर करति मदन मन हीन।
सूरदास जहँ दृष्टि परति है, होति तहीं लवलीन ॥४७८॥१०६६॥

राग गौरी

मेरे नैन निरखि सुख पावत।
संध्या समय गोप गोधन सँग बन तैं बनि ब्रज आवत।

उर गुंजा वनमाल, मुकुट सिर, वेनु रसाल बजावत।
कोटि किरनि-मनि मुख परकासित, उडुपति कोटि लजावत।
नटवर रूप अनूप छबीलौ, सबहिनि कैं मन भावत।
गोप-सखा सब बदन निहारत, उर आनँद न समावत।
चदन खौरि, काछनी काछे, देखत ही मन भावत।
सूर स्याम नागर नारिनि कौं, वासर-विरह नसावत ॥४७९॥
॥१०६७॥

राग कान्हरौ

आजु बने वन तैं ब्रज आवत।
नाना रंग सुमन की माला, नंद-नँदन-उर पर छबि पावत।
संग गोप गोधन-गन लीन्हे, नाना गति कौतुक उपजावत।
कोउ गावत, कोउ नृत्य करत, कोउ उघटत कोउ करताल बजावत।
राँभति गाइ बच्छ हित सुधि करि, प्रेम उमँगि थन दूध चुवावत।
जसुमति बोलि उठी हरषित ह्वै, कान्हा धेनु चराए आवत।
इतनी कहत आइ गए मोहन, जननी दौरि हिए लै लावत।
सूर स्याम के कृत्य, जसोमति, ग्वाल बाल कहि प्रगट सुनावत।
॥४८०॥१०६८॥

राग गौरी

मैया बहुत बुरौ बलदाऊ।
कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ।
मोहूँ कौं चुचकारि गयौ लै, जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चलौ, कहि, गयौ उहाँ तैं, काटि खाइ रे हाऊ।
हौं डरपौं, काँपौं अरु रोवौं, कोउ नहिं धीर धराऊ।
थरसि गयौं नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ।
मोसौं कहत मोल कौ लीनौ, आपु कहावत साऊ।
सूरदास बल बड़ौ चबाई, तैसेहिं मिले सखाऊ ॥४८१॥
॥१०६९॥

राग नट

हरि की लीला कहत न आवै।
कोटि ब्रह्मांड छिनहिं मैं नासै, छिनही मैं उपजावै।

बालक-बच्छ ब्रह्म हरि ले गयौ, ताकौ गर्व नवावै।
ऐसौ पुरुषारथ सुनि जसुमति, खीझति फिरि समुझावै।
सिव सनकादि अंत नहिं पावैं, भक्त-बछल कहवावै।
सूरदास प्रभु गोकुल मैं, सो, घर-घर गाइ चरावै ॥४८२॥
॥११००॥

राग सारंग

ब्रह्मा बालक-बच्छ हरे।
आदि अंत प्रभु अंतरजामी, मनसा तैं जु करे।
सोइ रूप वै बालक गो-सुत, गोकुल जाइ भरे।
एक बरष निसि-बासर रहि सँग, काहु न जानि परे।
त्रास भयौ अपराध आपु लखि, अस्तुति करत खरे।
सूरदास स्वामी मनमोहन, तामैं मन न धरे ॥४८३॥
॥११०१॥

राग कल्यान

मैं तौ जे हरे हैं, ते तौ सोवत परे हैं, ये करे हैं कौनैं आन,
अँगुरीनि दंत दै रह्यौ।
पुरुष पुरान आनि कियौ चतुरानन, कै सोई प्रभु पूरन प्रगट इहाँ
ह्वै रह्यौ ?
उतै देखि धावै, इत आवै, अचरज पावै, सूर सुरलोक ब्रजलोक
एक ह्वै रह्यौ।
बिवस ह्वै हार मानी, आपु आयौ नकवानी, देखि गोप-मंडली
कमंडली चितै रह्यौ।
॥४८४॥११०२॥

राग नट

तब हरि हर्‌यौ बिधि कौ गर्व।
बच्छ-बालक लै गयौ धरि, तुरत कीन्हे सर्ब।
ब्रह्म लोक दुराइ आयौ, चरित देखन आप।
बच्छ-बालक देखि कै, मन करत पश्चात्ताप।
तब गयौ बिधि लोक अपनैं, दृष्टि कै फिरि आइ।
जानि जिय अवतार पूरन, पर्‌यौ पाइनि धाइ।

बहुत मैं अपराध कीन्हौ, छमा कीजै नाथ।
जानि मैं यह नहीं कीन्हौ, जोरि कह्यौ दोउ हाथ।
बच्छ-बालक आनि सन्मुख, सरन-सरन पुकारि।
सूर प्रभु के चरन गहि-गहि, कहत राखि मुरारि ॥४८७॥
॥११०३॥

राग धनाश्री

ब्रज-ब्यौहार निरखि कै ब्रह्मा कौ अभिमान गयौ।
गोपी ग्वाल फिरत सँग चारन, हौं हूँ क्यौं न भयौ।
ब्यंजन वर कर वर पर राखत, ओदन मधुर दयौ।
आपुन खात खवावत औरनि, कौन विनोद ठयौ।
सखा संग पय-पान करावत अपनैं हाथ लयौ।
संकर ध्यान धरत जुग बीते, यह रस तौ न दयौ।
अहो भाग, अहो भाग नंद-सुत, तप को पुंज लियौ।
लाला सुभग सूर के प्रभु की, ब्रज मैं गाइ जियौ ॥४८८॥
॥११०४॥

राग जैतश्री

बदत बिरंचि, बिसेष सुकृत ब्रज-बासिन के।
श्री हरि तिनकैं वेष, सुकृत ब्रज-बासिन के।
ज्योति रूप, जगनाथ, जगत-गुरु, जगत-पिता, जगदीस।
जोग-जग्य-जप-तप-ब्रत-दुर्लभ, सो हरि गोकुल ईस।
इक-इक रोम बिराट किए तन, कोटि-कोटि ब्रह्मंड।
सो लीन्हौ अबछंग जसोदा, अपनैं भरि भुज-दंड।
जाकैं उदर लोक-त्रय, जल-थल, पंच तत्व चौखानि।
सो बालक ह्वै झूलत पलना, जसुमति भवनहिं आनि।
छिति मिति त्रिपद करी करुनामय, बलि छलि दियौ पतार।
देहरि उलँघि सकत नहिं, सो अब खेलत नंद दुवार।
अनुदिन सुर-तरु, पंच सुधा रस, चिंतामनि सुर धेनु।
सो तजि, जसुमति कौ पय पीवत, भक्तनि कौं सुख देनु।
रबि-ससि-कोटि कला, अवलोकत त्रिबिध ताप छय जाइ।
सो अंजन कर लै सुत-चच्छुहिं आँजति जसुमति माइ।

दाता भुक्ता, हरता-करता, बिस्वंभर जग जानि।
ताहि लाइ माखन की चोरी, बाँध्यौ जसुमति रानि।
बदत बेद-उपनिषद, छहौं रस अर्पै भुक्ता नाहिं।
गोपी ग्वालनि मंडल मैं हँसि-हँसि जूठनि खाहिं।
कमला-नायक, त्रिभुवन-दायक, दुख-सुख जिनकैं हाथ।
काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ।
बकी, बकासुर, सकट, तृनाव्रत, अघ, प्रलंब, वृषभास।
कंस-केसि कौं वह गति दीनी, राखे चरन निवास।
भक्त-बछल प्रभु पतित-उधारन, रहे सकल भरि पूर।
मारग रोकि रह्यौ द्वारैं परि, पतित-सिरोमनि सूर॥४८७॥
॥११०५॥

राग मलार

बिनवै चतुरानन कर जोरे।
तुव प्रताप जान्यौ नहिं प्रभु जू, करै अस्तुति लट छोरे।
अपराधी, मति-हीन, नाथ हौं, चूक परी निज भोरे।
हम कृत दोष छमौ करुनामय, ज्यौं भू परसत ओरे।
जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, सत्य कहत अब होरे।
सूरदास प्रभु पछिले खेवा, अब न बनै मुख मोरे॥४८८॥
॥११०६॥

राग सारंग

माधौ मोहिं करौ वृंदाबन-रेनु।
जिहिं चरननि डोलत नँद-नंदन, दिन-प्रति बन-बन चारत धेनु।
कहा भयौ यह देव-देह धरि, अरु ऊँचैं पद पाएँ ऐनु।
सब जीवनि लै उदर माँझ प्रभु महा प्रलय-जल करत हौ सैनु।
हम तैं धन्य सदा वै तृन-द्रुम, बालक-बच्छ-बिषानऽरु बेनु।
सूर स्याम जिनकैं सँग डोलत, हँसि बोलत, मथि पीवत फेनु।
॥४८९॥११०७॥

राग सारंग

ऐसैं बसिऐ ब्रज की बीथिनि।
ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि, उदर भरीजै सीथनि।

पैंड़े के सब वृच्छ विराजत, छाया परम पुनीतनि।
कुंज-कुंज-प्रति लोटि-लोटि, ब्रज-रज लागै रँग-रीतनि।
निसि दिन निरखि जसोदा-नंदन, अरु जमुना-जल पीतनि।
परसत सूर होत तन पावन, दरसन करत अतीतनि ॥४६०॥
॥११०८॥

राग सारंग

धनि यह बृंदावन की रेनु।
नंद-किसोर चरावत गैयाँ, मुखहिं बजावत बेनु।
मन-मोहन कौ ध्यान धरैं जिय, अति सुख पावत चैनु।
चलत कहाँ मन और पुरी तन, जहाँ कछु लैन न दैनु।
इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु, ब्रजबासिनि कैं ऐनु।
सूरदास ह्याँ की सरवरि नहिं, कल्पवृच्छ सुर-धेनु ॥४६१॥
॥११०६॥

बाल-बत्स-हरन की दूसरी लीला राग धनाश्री

ब्रज की लीला देखि, ज्ञान विधि कौ गयौ।
यह अति अचरज मोहिं, कहा कारन ठयौ ॥टेक॥
त्रिभुवन नायक भयौ, आनि गोकुल अवतारी।
खेलत ग्वालनि संग, रंग आनंद मुरारी।
घर-घर तैं छाकैं चलीं मानसरोवर-तीर।
नारायन भोजन करैं, बालक संग अहीर।
ब्यंजन सकल मँगाइ, सखनि के आगैं राखे।
खाटे मीठे स्वाद, सबै रस लै-लै चाखे।
रुचि सौं जेंवत ग्वाल सब, लै-लै आपुन खात।
भोजन कौ सब स्वाद लै, कहत परस्पर बात।
देखत गन-गंधर्व, सकल सुरपुर के वासी।
आपुस मैं सब कहत हँसत, येई अविनासी।
देखि सबै अचरज भए कह्यौ ब्रह्मा सौं जाइ।
जाकौं अबिनासी कहत, सो ग्वारनि सँग खाइ।
यह सुनि ब्रह्मा चले, तुरत बृंदाबन आए।
देखि सरोवर सजल, कमल तिहिं मध्य सुहाए।

परम सुभग जमुना बहै, तहँ बहै त्रिविध समीर।
पुहुप लता-द्रुम देखि कै, थकित भए मति-धीर।
अति रमनीक कदंब-छाहँ-रुचि परम सुहाई।
राजत मोहन मध्य अवलि बालक छवि पाई।
प्रेम-मगन ह्वै परस्पर, भोजन करत गोपाल।
ल्यावहु गो-सुत घेरि कै प्रभु पठए द्वै ग्वाल।
वन उपवन सब ढूँढ़ि सखा हरि पै फिरि आए।
बछरा भए अदृष्ट, कहूँ खोजत नहिं पाए।
सबै सखा बैठे रहौ, मैं देखौं धौं जाइ।
बच्छ-हरन जिय जानि प्रभु, आपु गए बहराइ।
जब गोविंद गए दूरि, बालकनि हर्‍यौ विधाता।
लैहैं तुरत मँगाइ आपु, जो हैं जग-त्राता।
ब्रह्म-लोक ब्रह्मा गए, लै बालक बछ संग।
प्रभु की लीला गम नहीं, कियौ गर्व अति अंग।
तब चिंतामनि चितै चित्त इक बुद्धि विचारी।
बालक बच्छ बनाइ रचे वेही उनिहारी।
करत कुलाहल सब गए, बृज घर अपनैं धाइ।
अति आदर करि-करि लए अपनी-अपनी माइ।
ब्रह्मा कियौ विचार, जाइ ब्रज गोकुल देखौं।
करिहैं सोक सँताप, धाइ पितु-मातहिं पेखौं।
अति आतुर ह्वै विधि चले, घर-घर देख्यौ आइ।
साँझ कुतूहल होत है, जहँ-तहँ दुहियत गाइ।
यह गोकुल किधौं और किधौं मैं ही चित भूल्यौ।
ये अविनासी होइँ, ज्ञान मेरा भ्रम भूल्यौ।
अंतरजामी जानि धौं गो-सुत ल्याए जाइ।
जगत पितामह संभ्रम्यौ, गयौ लोक फिरि धाइ।
देख्यौ जाइ जगाइ बाल गो-सुत जहँ राख्यौ।
बिधि मन चकित भयौ बहुरि ब्रज कौं अभिलाख्यौ।
छिन भूतल छिन लोक निज, छिन आवै छिन जाइ।
ऐसे बीते बरप दिन, थकित भए बिधि-पाइ।
तब जान्यौ हरि प्रगट ज्ञान मन मैं जब आयौ।
धिग-धिग मेरी बुद्धि, कृष्न सौं बैर बढ़ायौ।

लै गो-सुत गोपाल-सिसु सरन गयौ ह्वै साधु।
चारौं मुख अस्तुति करत, छमौ मोहिं अपराधु।
अनजाने मैं करी वहुत तुमसौं वरियाई।
ये मेरे अपराध छमहु, त्रिभुवन के राई।
ज्यौं वालक अपराध सत, जननी लेति सम्हारि।
सरन गएँ राखति सदा, औगुन सकल विसारि।
जोरे उदित खद्योत ताहि क्यौं तिमिर नसावै?
दीपक वहुत प्रकास, तरनि सम क्यौं कहि आवै?
मैं ब्रह्मा इक लोक कौ, ज्यौं गूलर-फल-जीव।
प्रभु तुम्हरे इक रोम-प्रति, कोटिक ब्रह्मा सींव।
मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है यह देह कहौ क्यौं हरि विसराया।
तुम जाने विन जीव सव, उतपति प्रलय समाहिं।
सरन मोहिं प्रभु राखिऐ चरन-कमल की छाहिं।
करहु मोहिं व्रज रेनु देहु वृंदावन वासा।
माँगौं यहै प्रसाद और मेरैं नहिं आसा।
जोइ भावै सोइ करहु तुम, लता सिला द्रुम, गेहु।
ग्वाल गाइ कौ भृत करौ, मानि सत्य व्रत एहु।
जो दरसन नर नाग अमर सुरपतिहुँ न पायौ।
खोजत जुग गए बीति अंत मोहूँ न लखायौ।
इहिं व्रज यह रस नित्य है, मैं अव समुझ्यौ आइ।
वृंदावन रज ह्वै रहौं, ब्रह्म लोक न सुहाइ।
माँगत वारंवार सेप ग्वालनि कौ पाऊँ।
आपु लियौ कछु जानि, भच्छ करि उदर पुराऊँ।
अव मेरैं निज ध्यान यह रहौं जूठ नित खाइ।
और विधाता कीजियै, मैं नहिं छाँड़ौं पाइ।
तव वोले प्रभु आपु वचन मेरौ अव मानौ।
और काहि विधि करौं, तुमहिं तैं कौन सयानौ।
तुम ज्ञाता सव धर्म के, तुम तैं सव संसार।
मेरी माया अति अगम, कोउ न पावै पार।
श्री मुख वानी कही विलँव अव नैंकु न लावहु।
व्रज परिकर्मा करहु देह कौ पाप नसावहु।

विदा करे निज लोक कौं इहिं विधि करि मनुहार।
करि अस्तुति ब्रह्मा चले हरि दीन्हौ उर हार।
धनि बछरा धनि बाल जिनहिं तैं दरसन पायौ।
उर मेरौ भयौ धन्य कृष्न माला पहिरायौ।
धनि जसुमति जिन बस किए, अबिनासी अवतारि।
धनि गोपी जिनकैं सदन, माखन खात मुरारि।
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य ये ब्रज के बासी।
धन्य जसोदा नंद भक्ति-बस किए अबिनासी।
धनि गो-सुत धनि गाइ ये, कृष्न चरायौ आपु।
धनि कालिंदी मधुपुरी, दरसन नासै पापु।
मथुरा आदि अनादि देह धरि आपुन आए।
धनि देवै वसुदेव पुत्र तुम माँगे पाए।
चारि बदन मैं कह कहौं, सहसानन नहिं जान।
गाइ चरावत ग्वाल सँग करत नंद की आन।
जोगी जन अवराधि फिरत जिहिं ध्यान लगाए।
ते ब्रजवासिनि संग फिरत अति प्रेम बढ़ाए।
वृंदावन ब्रज कौ महत कापै बरन्यौ जाइ।
चतुरानन पग परसि कै लोक गयौ सुख पाइ।
हरि लीला अवतार पार सारद नहिं पावै।
सतगुरु-कृपा-प्रसाद कछुक तातैं कहि आवै।
सूरदास कैसे कहै हरि-गुन कौ बिस्तार।
सेष सहस मुख रटत है तऊ न पावै पार ॥४६२॥
॥१११०॥

राग गौरी

आजु हरि धेनु चराए आवत।
मोर-मुकुट बनमाल बिराजत, पीतांबर फहरावत।
जिहिं-जिहिं भाँति ग्वाल सब बोलत, सुनि स्रवननि मन राखत।
आपुन टेर लेत ताही सुर, हरषत पुनि पुनि भाषत।
देखत नंद-जसोदा-रोहिनि, अरु देखत ब्रज-लोग।
सूर स्याम गाइनि सँग आए मैया लीन्हे रोग ॥ ४६३॥
॥१११॥

राग गौरी

माँगि लेहु जो भावै प्यारे।
बहुत भाँति मेवा सब मेरैं षटरस व्यंजन न्यारे।
सबै जोरि राखति हित तुम्हरैं मैं जानति तुम बानि।
तुरत मथ्यौ दधि माखन आछौ, खाहु देउँ सो आनि।
माखन दधि लागत अति प्यारौ, और न भावै मोहि।
सूर जननि माखन-दधि दीन्हौ, खात हँसत मुख जोहि ॥४६४॥
॥१११२॥

राग आसावरी

सुनि मैया, मैं तो पय पीवौं मोहिं अधिक रुचि आवै री।
आजु सबारैं धेनु दुही मैं, वहै दूध मोहि प्यावै री।
और धेनु कौ दूध न पीवौं, जो करि कोटि बनावै री।
जननी कहति दूध धौरी कौ, पुनि पुनि सौंह करावै री।
तुम तैं मोहिं और को प्यारौ, बारंबार मनावै री।
सूर स्याम कौं पय धौरी कौ माता हित सौं ल्यावै री ॥४६५॥
॥१११३॥

राग गौरी

आछौ दूध पियौ मेरे तात।
तातौ लगत बदन नहिं परसत, फूँक देति है मात।
औटि धर्‍यौ है अबहीं मोहन, तुम्हरैं हेत बनाइ।
तुम पीवौ, मैं नैननि देखौं, मेरे कुँवर कन्हाइ।
दूध अकेली धौरी कौ यह, तन कौं अति हितकारि।
सूर स्याम पय पीवन लागे, अति तातौ दियौ डारि ॥४६६॥
॥१११४॥

राग बिहागरौ

देखत पय पीवत बलराम।
तातौ लगत डारि तुम दीन्हौ, दावानल अँचवत नहिं ताम।
कबहूँ रहत मौन धरि जल मैं, कबहूँ फिरत बँधावत दाम।
कबहुँ अघासुर बदन समाने, कबहुँ अँध्यारैं जात न धाम।

कबहुँ करत बसुधा सब त्रैपद, कबहुँ देहरी उलँघि न जाइ।
षट-दस-सहस गोपिका बिलसत, बृंदावन रस-रास रमाइ।
यहै जानि अवतार धरत ब्रज, सुर-नर-मुनि यह भेद न पाइ।
राजा छोरि बंदि तैं ल्याए, तिहूँ लोक मैं बिदित बड़ाइ।
जुग-जुग ब्रज अवतार लेत प्रभु, अखिल लोक ब्रह्मांड के नाथ।
येई गोपी येई ग्वाल यहै सुख यह लीला कहुँ तजत न साथ।
येई कान्ह यहै बृंदावन यहै जमुना येई कुंज-बिहार।
यहै बिहार करत निसि-बासर, येई हैं जन के प्रतिपार।
येई हैं श्रीपति भुव नायक, येई हैं करता संसार।
रोम-रोम-प्रति अंड कोटि रचे, मुख चूमति जसुमति कहि बार।
इन कंसहिं कै बार सँहारयौ, धारयौ ब्रह्म कृष्न अवतार।
माखन खात चुराइ घरनि तैं, बहुत बार भए नंद-कुमार।
आदि अंत कोऊ नहिं जानत, हरता-करता सब संसार।
सूरदास प्रभु बाल-अवस्था तरुन बृद्ध कौ करै निवार ॥४६७॥
॥१११५॥

राग केदारौ

बलि बलि चरित गोकुलराइ।
दवानल कौ पान कीन्हौ, पियत दूध सिराइ।
पूतना के प्रान सोखे, आपु उर लपटाइ।
कहत जननी दूध डारत, खिझत कछु अनखाइ।
धरयौ गिरिवर, दोहनी कर धरत बाहँ पिराइ।
सकट भंजन, परसि तिय-कुच कठिन लागत पाइ।
तृनाव्रत आकास तैं पटक्यौ सिला पर जाइ।
डरत लाल हिंडोल झूलत, हरैं देत झुलाइ।
बकासुर की चोंच फारी, सखनि प्रगट दिखाइ।
कीर पिंजरैं गहत अँगुरी, ललन लेत भजाइ।
बिना दीपक, सदन सूनैं कबहुँ धरत न पाइ।
अघासुर-मुख पैठि निकसे, बाल बच्छ छुड़ाइ।
लिख्यौ काजर नाग द्वारैं, स्याम देखि डराइ।
नचत काली नाग फन पर सप्त ताल बजाइ।
जमल अर्जुन तोरि तारे, हृदय प्रेम बढ़ाइ।
हठत तोरि पलास पल्लव देहु, देत दिखाइ।

हरे बालक बच्छ नव कृत, हेत दौरी माइ।
चरत धेनु न मिलीं तिनकौं द्रुमनि ढूँढ़त जाइ।
बृषभ-गंजन, मथन-केसी, हने पूँछ फिराइ।
भजत सखनि समेत मोहन, देखि ब्याई गाइ।
गोप-नारी-संग मोहन, कियौ रास बनाइ।
कहति जननी ब्याह कौं तब रहत बदन दुराइ।
कहा बरनौं कोटि रसना हिएँ बुधि उपजाइ।
सूर प्रभु की अगम महिमा देखि अगनित भाइ ॥४९८॥
॥१११६॥

धेनुक-वध *राग भैरव*

सखा कहन लागे हरि सौं तब। चलौ ताल-बन कौं जैए अब।
ता बन मैं फल बहुत सुहाए। वैसे हम कबहूँ नहिं खाए।
धेनुक असुर तहाँ रखवारी। चलौ कह्यौ हँसि बल बनवारी।
बिहँसत हरि सँग चले गुवाला। नाचत गावत गुन-गोपाला।
सोयौ हुतौ असुर तरु-छाया। सुनत सब्द तुरतहिं उठि धाया।
हलधर कौं देख्यौ तिन आए। हाथ दोऊ बल करि जु चलाए।
पकरि पाइ बलभद्र फिरायौ। मारि ताहि तरु माहिं गिरायौ।
और बहुत ताकौ परिवारा। हरि-हलधर मिलि सबकौं मारा।
ग्वालनि बन-फल रुचि सौं खाए। बहुरौ बृंदाबनहिं सिधाए।
हरि-हलधर-छबि बरनि न जाई। सूरदास यह लीला गाई ॥४९९॥
॥१११७॥

कालीदह-जल-पान *राग सारंग*

चरावत बृंदाबन हरि गाइ।
सखा लिए सँग सुबल, सुदामा, डोलत हैं सुख पाइ।
क्रीड़ा करत जहाँ-तहँ सब मिलि, अति आनंद बढ़ाइ।
बगरि गईं गैयाँ बन-बीथिनि, देखीं अति बहुताइ।
कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोउ गए बछरु लिवाइ।
आपुहिं रहे अकेले बन मैं, कहुँ हलधर रहे जाइ।
बंसीबट सीतल जमुना-तट, अतिहिं परम सुखदाइ।
सूर स्याम तहँ बैठि बिचारत, सखा कहाँ बिरमाइ ॥५००॥
॥१११८॥

राग सारंग

बार-बार हरि कहत मनहिं मन, अबहिं रहे सँग चारत धैनु।
ग्वाल-बाल कोउ कहूँ न देखौं, टेरत नाउँ लेत दै सैनु।
आलस-गात जात मन मोहन, सोच करत, तनु नाहिँ न चैनु।
अकनि रहत कहुँ, सुनत नहीँ कछु, नहि गो-रंभन बालक-बैनु।
तृषावंत सुरभी बालक-गन, काली दह अँचयौ जल जाइ।
निकसि आइ सब तट ठाढ़े भए, बैठि गए जहँ-तहँ अकुलाइ।
बन-घन ढूँढ़ि स्याम तहँ आए, गो-सुत ग्वाल रहे मुरझाइ।
मन मैं ध्यान करत ही जान्यौ, काली उरग रह्यौ ह्याँ आइ।
गरुड़ त्रास करि आइ रह्यौ दुरि, अंतरजामी सब के नाथ।
अमृत दृष्टि भरि चितए सूर प्रभु, बोलि उठे गावत हरि गाथ।
॥५०१॥११११॥

राग सारंग

आवहु आवहु इतै, कान्ह जू पाई हैं सब धैनु।
कुंज-कुंज मैं देखि हरे तृन, चरति परम सुख चैनु।
द्रुमनि चढ़े सब सखा पुकारत, मधुर सुनावत बैनु।
जनि धावहु बलि चरन मनोहर, कठिन कंट मग ऐनु।
तुम हमकौं कहँ-कहँ न उबार्‌यौ, पियौ काली-मुँह-फैनु।
सूर स्याम संतनि-हित-कारन, प्रगट भए सुख दैनु ॥५०२॥
॥११२०॥

राग सारंग

पाई पाई है रे भैया, कुंज-पुंज मैं टाली।
अबकैं अपनी हटकि चरावहु, जैहैं भटकी घाली।
आवहु वेगि सकल दहुँ दिसि तैं कत डोलत अकुलाने ?
सुनि मृदु-बचन देखि उन्नत कर, हरषि सबै समुहाने।
तुम तौ फिरत अनत हीँ ढूँढ़त, ये बन फिरतिं अकेली।
बाँकी गई कौन पैंड़ै ह्वै, सघन बहुत द्रुम बेली।
सूरदास प्रभु मधुर बचन कहि, हरषित सबहिं बुलाए।
नृत्य करत आनँद गो चारत सबै कृष्न पै आए ॥५०३॥
॥११२१॥

राग नट नारायनी

मोहिँ बन छाँड़ि आए ग्वाल।
कहाँ तैं कहँ आइ निकसे, करे कैसे ख्याल।
मुरछि काहैं गिरे धरनी, कहा यह जंजाल।
मैं इहाँ जो आइ देखौं, परे सब वेहाल।
आनि अँचयौ जल जमुन कौ, तबहिं गए अकुलाइ।
निकसि कै जब कूल आए, गिरि परे मुरझाइ।
प्रान बिनु हम सब भए ते, तुमहिं दियौ जिवाइ।
सूर के प्रभु तुम जहाँ तहँ हमहिं लेत बचाइ ॥५०४॥११२२॥

राग गौरी

बलदाऊ कहि स्याम पुकारयौ।
आवहु बेगि चलौ घर जैऐ, बनहीं होत अँध्यारौ।
ल्याए बोलि सखा हलधर कौं, हँसे स्याम मुख चाहि।
बड़ी बेर भई बन भीतर तुम, गाइनि लेहु निवाहि।
हेरी देत चले सब बन तैं गोधन दियौ चलाइ।
सूरदास प्रभु राम स्याम दोउ ब्रजजन के सुखदाइ ॥५०५॥
॥११२३॥

ब्रज-प्रवेश-शोभा

राग गौरी

वै मुरली की टेर सुनावत।
बृंदावन सब बासर बसि निसि-आगम जानि चले ब्रज आवत।
सुबल, सुदामा, श्रीदामा सँग, सखा मध्य मोहन छबि पावत।
सुरभी-गन सब लै आगैं करि कोउ टेरत कोउ बेनु बजावत।
केकी-पच्छ-मुकुट सिर भ्राजत, गौरी राग मिलै सुर गावत।
सूर स्याम के ललित बदन पर, गोरज-छबि कछु चंद छुपावत।
॥५०६॥११२४॥

राग गौरी

हरि आवत गाइनि के पाछे।
मोर-मुकुट मकराकृति कुंडल, नैन बिसाल कमल तैं आछे।
मुरली अधर धरन सीखत हैं, बनमाला पीतांबर काछे।
ग्वाल-बाल सब बरन-बरन के, कोटि मदन की छबि किए पाछे।

पहुँचे आइ स्याम ब्रज पुर मैं, घरहिं चले मोहन-बल आछे।
सूरदास प्रभु दोउ जननी मिलि, लेतिं बलाइ बोलि मुख बाछे।
॥५०७॥११२५॥

राग कल्यान

आनँद सहित सबै ब्रज आए।
धन्य जसोदा तेरौ बारौ, हम सब मरत जिवाए।
नर-बपु धरे देव यह कोऊ, आइ लियौ अवतार।
गोकुल-ग्वाल-गाइ-गोसुत के येई राखनहार।
पय पीवत पूतना निपाती, तृनावर्त इहिं भाँत।
वृषभासुर-वत्सासुर मार्‍यौ, बल-मोहन दोउ भ्रात।
जब तैं जनम लियौ ब्रज-भीतर, तब तैं यहै उपाइ।
सूर स्याम के बल-प्रताप तैं, बन-बन चारत गाइ ॥५०८॥
॥११२६॥

राग गौरी

तुम कत गाइ चरावन जात।
पिता तुम्हारौ नंद महर सौ अरु जसुमति सी जाकी मात।
खेलत रहौ आपने घर मैं, माखन दधि भावै सो खात।
अंमृत बचन कहौ मुख अपने, रोम-रोम पुलकित सब गात।
अब काहू के जाहु कहूँ जनि, आवति हैं जुवती इतरात।
सूर स्याम मेरे नैननि आगे तैं, कत कहूँ जात हौ तात ॥५०९॥
॥११२७॥

राग गौरी

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं, मेरे पाइ पिराइँ।
जौं न पत्याहि पूछि बलदाउहिं, अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ ॥५१०॥
॥११२८॥

राग गौरी

बल मोहन बन तैं दोउ आए।
जननि जसोदा मातु रोहिनी, हरषित कंठ लगाए।
काहैं आजु अवार लगाई, कमल बदन कुम्हिलाए।
भूखे भए आजु दोउ भैया, करन कलेउ न पाए।
देखहु जाइ कहा जे वन कियौ, रोहिनि तुरत पठाई।
मैं अन्हवाए देति दुहुँनि कौं, तुम अति करौ चँड़ाई।
लकुट लियौ, मुरली कर लीन्हीं हलधर दियौ विषान।
नीलांबर पीतांबर लीन्हे, सैंति धरति करि प्रान।
मुकुट उतारि धर्‍यौ लै मंदिर, पोंछति है अँग-धातु।
अरु बनमाल उतारति गर तैं, सूर स्याम की मातु ॥५११॥
॥११२६॥

राग कल्यान

अंग-अभूषन जननि उतारति।
दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की, लै केयूर भुज स्याम निहारति।
छुद्रावली उतारति कटि तैं सैंति धरति मनहीं मन वारति।
रोहिनि भोजन करौ चँड़ाई बार-बार कहि-कहि करि आरति।
भूखे भए स्याम हलधर दोउ, यह कहि अंतर प्रेम विचारति।
सूरदास प्रभु मातु जसोदा, पट लै, दुहुनि अंग-रज झारति ॥५१२॥
॥११३०॥

राग कल्यान

ये दोऊ मेरे गाइ चरैया।
मोल बिसाहि लियौ मैं तुमकौं जब दोउ रहे नन्हैया।
तुमसौं टहल करावति निसि-दिन और न टहल करैया।
यह सुनि स्याम हँसे कहि दाऊ, झूठ कहति है मैया।
जानि परत नहिं साँच झुठाई, चारत धेनु झुरैया।
सूरदास जसुदा मैं चेरी कहि-कहि लेति बलैया ॥५१३॥
॥११३१॥

राग कल्यान

यह कहि जननि दुहुँनि उर लावति।
सुमना-सुत अँग परसि, तरनि-जल, बलि-बलि गई कहि-कहि अन्हवावति।

सरस बसन तन पोंछि गई लै, षट रस की ज्यौनार जिवावति।
सीतल जल कपूर-रस रचयौ, झारी कनक लिए अँचवावति।
भर्यौ चुरू मुख धोइ तुरतहीं, पीरे-पान-विरी मुख नावति।
सूर स्याम सुख जननि मुदित मन, सेज्जा पर सँग लै पोढ़ावति।
॥५१४॥११३२॥

राग बिहागरौ

सोवत नींद आइ गई स्यामहिं।
महरि उठी पौढ़ाइ दुहुँनि कौं, आपु लगी गृह कामहिं।
बरजति है घर के लोगनि कौं, हरुएँ लै-लै नामहिं।
गाढ़ैं बोलि न पावत कोऊ, डर मोहन बलरामहिं।
सिव सनकादि अंत नहिं पावत, ध्यावत अह-निसि-जामहिं।
सूरदास-प्रभु ब्रह्म सनातन, सो सोवत नँद-धामहिं ॥५१५॥
॥११३३॥

राग बिहागरौ

देखत नंद कान्ह अति सोवत।
भूखे भए आजु बन-भीतर, यह कहि-कहि मुख जोवत।
कह्यौ नहीं मानत काहू कौ, आपु हठी दोउ बीर।
बार-बार तनु पोंछत कर सौं, अतिहिं प्रेम की पीर।
सेज मँगाइ लई तहँ अपनी, जहाँ स्याम-बलराम।
सूरदास प्रभु कैं ढिग सोए, सँग पौढ़ी नँद-बाम ॥५१६॥
॥११३४॥

राग बिहागरौ

जागि उठे तब कुँवर कन्हाई।
मैया कहाँ गई मो ढिग तैं, सँग सोवति बल भाई।
जागे नंद, जसोदा जागी, बोलि लिए हरि पास।
सोवत झझकि उठे काहे तैं, दीपक कियौ प्रकास।
सपनैं कूदि पर्यौ जमुना-दह, काहूँ दियौ गिराइ।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, जनि हो लाल डराइ ॥५१७॥
॥११३५॥

राग गौरी

मैं बरज्यौ जमुना-तट जात।
सुधि रहि गई न्हात की तेरैं, जनि डरपौ मेरे तात।
नंद उठाइ लियौ कोरा करि, अपनैं सँग पौढ़ाइ।
बृंदाबन मैं फिरत जहाँ-तहँ, किहिं कारन तू जाइ।
अब जनि जैहौ गाइ चरावन, कहँ को रहति बलाइ!
सूर स्याम दंपति बिच सोए, नींद गई तब आइ ॥५१८॥
॥११३६॥

राग कल्यान

सपनौ सुनि जननी अकुलानी।
दंपति बात कहत आपुस मैं, सोवत सारँगपानी।
या ब्रज कौ जीवन यह ढोटा, कह देख्यौ इहिं आजु!
गाइ चरावन जान न दीजै, याकौ है कह काजु।
गृह-संपति द्वै तनक ढुटौना, इनहीं लौं सुख-भोग।
सूर स्याम बन जात चरावन, हँसी करत सब लोग ॥५१९॥
॥११३७॥

राग भैरवी

इहिं अंतर भिनुसार भयौ।
तारा गन सब गगन छपाने, अरुन उदित, अँधकार गयौ।
जागी महरि, काज-गृह लागी, निसि कौ सब दुख भूलि गयौ।
प्रातः स्नान करन जमुना कौ, नंदहिं तुरत उठाइ दयौ।
मथनहारि सब ग्वारि बुलाईं, भोर भयौ उठि मथौ दह्यौ।
सूर नंद घरनी आपुन हू, मथन मथानी-नेति गह्यौ ॥५२०॥
॥११३८॥

कमल-पुष्प मँगाना, काली-दमन लीला *राग बिलावल*

नारद सौं नृप करत बिचार। ब्रज मैं ये दोउ कोउ अवतार।
नंद-सुवन बलराम कन्हाई। इनकी गति मैं कछू न पाई।
तृनावर्त से दूत पठाए। ता पाछैं कागासुर धाए।
बकी पठाइ दई पहिलै हीं। ऐसनि कौ बल वै सब लैहीं।

उनतैं कछू भयौ नहिं काजा। यह सुनि-सुनि मोहिं आवति लाजा।
अब मुनि तुम इक बुद्धि विचारहु। सूर स्याम बलरामहिं मारहु॥
॥५२१॥११३९॥

राग बिलावल

नारद ऋषि नृप सौं यौं भाषत।
वै हैं काल तुम्हारे प्रगटे, काहैं उनकौं राखत।
काली उरग रहै जमुना मैं, तहँ तैं कमल मँगावहु।
दूत पठाइ देहु ब्रज ऊपर नंदहिं अति डरपावहु।
यह सुनि कै ब्रज लोग डरैंगे, वैं सुनिहैं यह बात।
पुहुप लैन जैहैं नँद-ढोटा, उरग करै तहँ घात।
यह सुनि कंस बहुत सुख पायो, भली कही यह मोहि।
सूरदास प्रभु कौं मुनि जानत, ध्यान धरत मन जोहि॥५२२॥
॥११४०॥

राग सूही

कंस बुलाइ दूत इक लीन्हौ।
कालीदह के फूल मँगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ।
यह कहियौ ब्रज जाइ नंद सौं, कंस राज अति काज मँगायौ।
तुरत पठाइ दिएँ ही बनिहै, भली भाँति कहि-कहि समुझायौ।
यह अंतरजामी जानी जिय, आपु रहे, बन ग्वाल पठाए।
सूर स्याम, ब्रज-जन-सुखदायक, कंस-काल, जिय हरष बढ़ाए
॥५२३॥११४१॥

राग रामकली

खेलन चले नंद-कुमार।
दूत आवत जानि ब्रज मैं, आपु दीन्ह्यौ टार।
नंद जमुना न्हाइ आए, महरि ठाढ़ी द्वार।
नृपति दूत पठाइ दीन्ह्यौ, चल्यौ ब्रज इहिं कार।
महर पैठत सदन भीतर, छींक बाईं धार।
सूर नंद कहत महरि सौं, आजु कहा विचार॥५२४॥११४२॥

राग सूही

पुनि-पुनि कंस मुदित मन कीन्हौ।
दूतहिं प्रगट कही यह बानी, पत्र नंद कौं दीन्हौ।

कालीदह के कमल पठावहु, तुरत देखि यह पाती।
जैसैं काल्हि कमल ह्याँ पहुँचै, तू कहियौ इहिं भाँती।
यह सुनि दूत तुरतहीं धायौ, तब पहुँच्यौ ब्रज जाइ।
सूर नंद-कर पाती दीन्हीं, दूत कह्यौ समुझाइ ॥५२५॥
॥११४३॥

राग सूही

पाती बाँचत नंद डराने।
कालीदह के फूल पठावहु सुनि सबही घबराने।
जौ मोकौं नहिं फूल पठावहु, तौ ब्रज देहुँ उजारि।
महर, गोप, उपनंद न राखौं, सबहिनि डारौं मारि।
पुहुप देहु तौ बनै तुम्हारी, ना तरु गए बिलाइ।
सूर स्याम-बलराम तिहारे, माँगौं उनहिं धराइ ॥५२६॥
॥११४४॥

राग बिलावल

नंद सुनत मुरझाइ गए।
पाती बाँची, सुनी दूत-मुख, यह बानी सुनि चकित भए।
बल मोहन खटकत वाकैं मन, आजु कही यह बात।
कालीदह के फूल कहौ धौं, को आनै, पछितात।
और गोप सब नंद बुलाए, कहत सुनौ यह बात।
सुनहु सूर नृप इहिं ढँग आयौ, बल मोहन पर घात ॥५२७॥
॥११४५॥

राग जैतश्री

आपु चढ़ै ब्रज-ऊपर काल।
कहाँ निकसि जैए को राखै, नंद कहत बेहाल।
मोहिं नहीं जिय कौ डर नैंकुहुँ, दोउ सुत कौं डरपाउँ।
गाउँ तजौं, कहुँ जाउँ निकसि लै, इनहीं काज पराउँ।
अब उबार नहिं दीसत कतहूँ, सरन राखि को लेइ।
सूर स्याम कौं बरजति माता, बाहिर जान न देइ ॥५२८॥
॥११४६॥

राग आसावरी

नंद-घरनि ब्रज-नारि बिचारति।
ब्रजहिं बसत सब जनम सिरानौ, ऐसी करी न आरति।
कालीदह के फूल मँगाए, को आनै धौं जाइ।
ब्रजबासी नातरु सब मारै, बाँधै बल ऽरु कन्हाइ।
यहै कहत दोउ नैन ढराने, नंद-घरनि दुख पाइ।
सूर स्याम चितवत माता-मुख, बूझत बात बनाइ ॥५२६॥
॥११४७॥

राग आसावरी

पूछौं जाइ तात सौं बात।
मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की, तुमहीं काज कंस अकुलात।
आए स्याम नंद पै धाए, जान्यौ मातु पिता बिलखात।
अबहीं दूरि करौं दुख इनकौ, कंसहिं पठै देउँ जलजात।
मोसौं कहौ बात बाबा यह, बहुत करत तुम सोच बिचार।
कहा कहौं तुमसौं मैं प्यारे, कंस करत तुमसौं कछु झार।
जब तैं जनम भयौ है तुम्हरौ, केते करबर टरे कन्हाइ।
सूर स्याम कुलदेवनि तुमकौं, जहाँ तहाँ करि लियौ सहाइ।
॥५३०॥११४८॥

राग बिलावल

तुमहिं कहत कोउ करै सहाइ।
सो देवता संगहीं मेरैं, ब्रज तैं अनत कहूँ नहिं जाइ।
वह देवता कंस मारैगौ, केस धरे धरनी घिसियाइ।
वह देवता मनावहु सब मिलि तुरत कमल जो देइ पठाइ।
बाबा नंद, झखत किहिं कारन, यह कहि मया मोह अरुझाइ।
सूरदास प्रभु मातु-पिता कौं, तुरतहिं दुख डारयौ बिसराइ।
॥५३१॥११४६॥

राग नट

खेलन चले कुँवर कन्हाइ।
कहत घोष-निकास जैयै, तहाँ खेलैं धाइ।

गेंद खेलत बहुत बनिहै, आनौ कोऊ जाइ।
सखा श्रीदामा गए घर, गेंद तुरतहिं आइ।
अपनैं कर लै स्याम देख्यौ, अतिहिं हरष बढ़ाइ।
सूर के प्रभु सखा लीन्हैं करत खेल बनाइ ॥५३२॥
॥११५०॥

राग सारंग

खेलत स्याम, सखा लिए संग।
इक मारत, इक रोकत गेंदहिं, इक भागत करि नाना रंग।
मार परसपर करत आपु मैं, अति आनंद भए मन माहिं।
खेलत ही मैं स्याम सबनि कौं, जमुना-तट कौं लीन्हे जाहिं।
मारि भजत जो जाहि, ताहि सो मारत, लेत आपनौ दाउ।
सूर स्याम के गुन को जानै कहत और कछु और उपाउ ॥५३३॥
॥११५१॥

राग गौरी

लै गए टारि जमुन-तट ग्वालनि।
आपुन जात कमल के काजहिं, सखा लिए सँग ख्यालनि।
जोरी मारि भजत उतही कौं, जात जमुन कैं तीर।
इक धावत पाछैं उनहीं के, पावत नहीं अधीर।
रौंटि करत तुम खेलत ही मैं, परी कहा यह बानी ?
सूर स्याम कौं कहत ग्वाल सब, तुमहिं भलैं करि जानी ॥५३४॥
॥११५२॥

राग नट

स्याम सखा कौं गेंद चलाई।
श्रीदामा मुरि अंग बचायौ, गेंद परी कालीदह जाई।
धाइ गहीं तब फेंट स्याम की, देहु न मेरी गेंद मँगाई।
और सखा जनि मोकौं जानौ, मोसौं तुम जनि करौ ढिठाई।
जानि-बूझि तुम गेंद गिराई, अब दीन्हैं ही बनै कन्हाई।
सूर सखा सब हँसत परसपर, भली करी हरि गेंद गँवाई ॥५३५॥
॥११५३॥

राग सोरठ

फँट छाँड़ि मेरी देहु श्रीदामा।
काहे कौं तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कैं कामा।
मेरी गेंद लेहु ता बदलैं, बाहँ गहत हौ धाइ।
छोटौ बड़ौ न जानत काहूँ, करत बराबरि आइ।
हम काहे कौं तुमहिं बराबर, बड़े नंद के पूत!
सूर स्याम दीन्हैं ही बनिहै, बहुत कहावत धूत ॥५३६॥
॥११५४॥

राग कल्यान

तोसौं कहा धुताई करिहौं।
जहाँ करी तहँ देखी नाहीं, कह तोसौं मैं लरिहौं।
मुहँ सम्हारि तू बोलत नाहीं, कहत बराबरि बात।
पावहुगे अपनौ कियौ अबहीं, रिसनि कँपावत गात।
सुनहु स्याम, तुमहूँ सरि नाहीं, ऐसे गए बिलाइ।
हमसौं सतर होत सूरज प्रभु, कमल देहु अब जाइ ॥५३७॥
॥११५५॥

राग गौरी

हमहीं पर सतरात कन्हाई।
प्रथमहिं कमल कंस कौं दीजै, डारहु हमहिं मराई।
साँच कहौ मैं तुमहिं श्रीदामा, कमल काज मैं आयौ।
कहा कंस बपुरौ, किहिं लायक, जाकौं मोहिं डरायो?
अघा, बका, केसी, सकटासुर, तृना सिला पर डार्‌यो।
बकी कपट करि प्यावन आई, ताकौं तुरत पछार्‌यौ।
कालीदह-जल-छुवत मरे सब, सोइ काली धरि ल्याऊँ।
सूरदास प्रभु देह धरे कौ, गुन प्रगट्यौ इहिं ठाऊँ ॥५३८॥
॥११५६॥

राग सोरठ

रिस करि लीन्ही फँट छुड़ाइ।
सखा सबै देखत हैं ठाढ़े, आपुन चढ़े कदम पर धाइ।

तारी दै-दै हँसत सबै मिलि, स्याम गए तुम भाजि डराइ।
रोवत चले श्रीदामा घर कौं, जसुमति आगैं कहिहौं जाइ।
सखा-सखा कहि स्याम पुकार्‌यौ, गेंद आपनौ लेहु न आइ।
सूर स्याम पीतांबर काछे, कूदि परे दह मैं भहराइ॥५३९॥
॥११५७॥

राग गौरी

हाय-हाय करि सखनि पुकार्‌यौ।
गेंद-काज यह करी श्रीदामा, नंद कौ ढोटा मार्‌यौ।
जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी।
आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरी दोष मिटाइ।
मंजारी आगैं ह्वै आई, पुनि फिरि आँगन आइ।
व्याकुल भई, निकसि गई बाहिर, कहँ धौं गए कन्हाई।
बाएँ काग, दाहिनैं खर-स्वर, व्याकुल घर फिरि आई।
खन भीतर, खन बाहिर आवति, खन आँगन इहिं भाँति।
सूर स्याम कौं टेरति जननी, नैंकु नहीं मन साँति॥५४०॥
॥११५८॥

राग गौरी

देखे नंद चले घर आवत।
पैठत पौरि छींक भई बाएँ, दहिनैं धाह सुनावत।
फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करति लराई।
माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई।
आए नंद घरहिं मन मारे, व्याकुल देखी नारि।
सूर नंद जसुमति सौं बूझत, बिनु छवि वदन निहारि॥५४१॥
॥११५९॥

राग नट

नंद घरनि सौं पूछत बात।
बदन झुराइ गयौ क्यौं तेरौ, कहाँ गए बल, मोहन तात?
"भीतर चली रसोई कारन, छींक परी तब आँगन आइ।
पुनि आगैं ह्वै गई मँजारी, और बहुत कुसगुन मैं पाइ।"

मोहिँ भए कुसगुन घर पैठत, आजु कहा यह समुझि न जाइ।
सूर स्याम गए आजु कहाँ धौं, वार-वार पूछत नँदराइ ॥५४२॥
॥११६०॥

राग गौरी

महर-महरि-मन गई जनाइ।
खन भीतर, खन आँगन ठाढ़े, खन वाहिर देखत है जाइ।
इहिँ अंतर सब सखा पुकारत, रोवत आए ब्रज कौं धाइ।
आतुर गए नंद-घरही कौं, महर-महरि सौं वात सुनाइ।
चकित भए दोउ बूझन लागे, कहौ वात हमकौं समुझाइ।
सूर स्याम खेलतहिं कदम चढ़ि, कूदि परे कालीदह जाइ।
॥५४३॥११६१॥

राग सोरठ

सुपनौ परगट कियौ कन्हाई।
सोवत ही निसि आजु डराने, हमसौं यह कहि वात सुनाई।
धरनि परीं मुरझाइ जसोदा, नंद गए जमुना-तट धाई।
वालक सब नंदहिं सँग धाए, ब्रज-घर जहँ-तहँ सोर मचाई।
त्राहि-त्राहि करि नंद पुकारत, देखत ठौर गिरे भहराई।
लोटत धरनि, परत जल-भीतर, सूर स्याम दुख दियौ वुढ़ाई।
॥५४४॥११६२॥

राग गौरी

ब्रज-वासी यह सुनि सब आए।
कहाँ परयौ गिरि कुँवर कन्हैया, वालक लै सो ठौर दिखाए।
सूनौ गोकुल कियौ स्याम तुम, यह कहि लोग उठे सब रोइ।
नंद गिरत सवहिनि धरि राख्यौ, पोंछत बदन नीर लै धोइ।
ब्रज-वासी तव कहत महर सौं, मरन भयौ सवही कौ आइ।
सूर स्याम बिनु को वसिहै ब्रज, धिक जीवन तिहुँ भुवन कहाइ।
॥५४५॥११६३॥

राग सोरठ

महरि पुकारति कुँवर कन्हाई।
माखन धरयौ तिहारेहि कारन, आजु कहाँ अवसेरि लगाई।

अति कोमल, तुम्हरे मुख लायक, तुम जैंवहु मेरे नैन जुड़ाई।
धौरी-दूध औटि है राख्यौ, अपनैं कर दुहि गए बनाई।
बरजति ग्वारि जसोदा कौं सब, यह कहि-कहि नीकैं जदुराई।
सूर स्याम सुत जीय मातु के, यह वियोग बरन्यौ नहिं जाई।
॥५४६॥११६४॥

राग गौरी

माखन खाहु लाल मेरे आई। खेलत आजु अबार लगाई।
बैठहु आइ संग दोउ भाई। तुम जैंवहु मैया बलि जाई।
सद माखन अति हित मैं राख्यौ। आजु नहीं नैंकुहुँ तुम चाख्यौ।
प्रातहिं तैं मैं दियौ जगाइ। दतुवनि करि जु गए दोउ भाइ।
मैं बैठी तुव पंथ निहारौं। आवहु तुम पर तन मन वारौं।
ब्रज-जुवती सुनि-सुनि यह बानी। रोवति धरनि परीं अकुलानी।
सोक-सिंधु बूड़ी नँदरानी। सुधि-बुधि तन की सबै भुलानी।
सूर स्याम लीला यह कीन्हौ। सुख कैं हेत जननि दुख दीन्हौ।
॥५४७॥११६५॥

राग नट

चौंकि परी तन की सुधि आई।
आजु कहा ब्रज सोर मचायौ, तब जान्यौ दह गिरयौ कन्हाई।
पुत्र-पुत्र कहिकै उठि दौरी, ब्याकुल जमुना-तीरहिं धाई।
ब्रज-बनिता सब संगहिं लागीं आइ गए बल, अग्रज भाई।
जननी ब्याकुल देखि प्रबोधत, धीरज करि नीकैं जदुराई।
सूर स्याम कौं नैंकु नहीं डर, जनि तू रोवै जसुमति माई।
॥५४८॥११६६॥

राग बिलावल

ब्रज-बासी सब उठे पुकारि। जल भीतर कह करत मुरारि।
संकट मैं तुम करत सहाइ। अब क्यौं नाहिं बचावत आइ।
मातु-पिता अतिहीं दुख पावत। रोइ-रोइ सब कृष्न बुलावत।
हलधर कहत सुनहु ब्रज-बासी। वै अंतरजामी अबिनासी।
सूरदास प्रभु आनँद-रासी। रमा सहित जल ही के बासी।
॥५४९॥११६७॥

राग सूही

अति कोमल तनु धर्‌यौ कन्हाई ।
गए तहाँ जहँ काली सोवत, उरग-नारि देखत अकुलाई ।
कह्यौ कौन कौ बालक है तू, बार-बार कही, भागि न जाई ।
छनकहि मैं जरि भस्म होइगौ, जब देखे उठि जाग जम्हाई ।
उरग-नारि की बानी सुनि कै, आपु हँसे मन मैं मुसुकाई ।
मोकौं कंस पठायौ देखन, तू याकौं अब देहि जगाई ।
कहा कंस दिखरावत इनकौं, एक फूँकहो मैं जरि जाई ।
पुनि-पुनि कहत सूर के प्रभु कौं, तू अब काहे न जाइ पराई ।
॥५५०॥११६८॥

राग गुंड मलार

कहा डर करौं इहिं फनिग कौ बावरी ।
कह्यौ मेरौ मानि, छाँड़ि अपनी बानि, टेक परिहै जानि सब रावरी ।
तोहिं देखे मया, मोहिं अतिहीं भई, कौन कौ सुवन, तू कहा आयौ ।
मरौ वह कंस, निरबंस वाकौ होइ, कह्यौ यह गंस तोकौं पठायौ ।
कंस कौं मारिहौं धरनि निरवारिहौं, अमर उद्धारिहौं उरग-घरनी ।
सूर प्रभु के बचन सुनत, उरगिनि कह्यौ, जाहि अब क्यौं न, मति
भई मरनी ॥५५१॥११६९॥

राग मारू

झिरकि कै नारि, दै गारि गिरिधारि तब, पूँछ पर लात दै अहि
जगायौ ।
उठ्यौ अकुलाइ, डर पाइ खग-राइ कौं, देखि बालक गरब अति
बढ़ायौ ।
पूँछ लीन्ही झटकि धरनि सौं गहि पटकि फुंकर्‌यौ लटकि करि
क्रोध फूले ।
पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब साँपि-अवसान
भूले ।
करत फन-घात, विष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिं
गात परसै ।
सूर के स्याम, प्रभु, लोक-अभिराम, बिनु जान अहिराज विष
ज्वाल बरसै ॥५५२॥११७०॥

राग नट

अहि कौं लै अब ब्रजहिं दिखाऊँ।
कमल-भार याही पर लादौं, याकौं आपन रूप जनाऊँ।
मात-पिता अतिहीं दुख पावत, दरसन दै मन हरष बढ़ाऊँ।
कमल पठाइ देउँ नृपराजहिं, काल्हि कह्यौ ब्रज ऊपर धाऊँ।
मन-मन करत विचार स्याम यह, अब काली कौं दाउँ बताऊँ।
सूरदास प्रभु की यह बानी, ब्रज-बासिनि कौं दुख बिसराऊँ।
॥५५३॥११७१॥

राग कान्हरौ

उरग-नारि सब कहतिं परस्पर, देखौ या बालक की बात।
विष-ज्वाला जल जरत जमुन कौ, याकैं तन लागत नहिं तात!
यह कछु तंत्र मंत्र जानत है अतिहीं सुंदर कोमल गात।
यह अहिराज महा विष ज्वाला, कितने करत सहस फन घात!
छुवत नहीं तनु याकौ विष कहुँ, अब लौं कयौ पुन्य पितु-मात।
सूर स्याम सो दाउँ बतायौ, काली अंग लपेटत जात ॥५५४॥
॥११७२॥

राग बिलावल

उरग लियौ हरि कौं लपटाइ।
गर्व-वचन कहि-कहि मुख भाषत, मोकौं नहिं जानत अहिराइ।
लियौ लपेटि चरन तैं सिख लौं, अति इहिं मोसौं करी ढिठाइ।
चाँपी पूँछ लुकावत अपनी, जुवतिनि कौं नहिं सकत दिखाइ।
प्रभु अंतरजामी सब जानत, अब डारौं इहिं सकुच मिटाइ।
सूरदास प्रभु तन विस्तारयौ, काली विकल भयौ तब जाइ ॥५५५॥
॥११७३॥

राग कान्हरौ

जबहिं स्याम तन अति विस्तारयौ।
पटपटात टूटत अँग जान्यौ, सरन-सरन सु पुकारयौ।
यह बानी सुनतहिं करुनामय, तुरत गए सकुचाइ।
यहै वचन सुनि द्रुपद-सुता-मुख, दीन्हौ बसन बढ़ाइ।

यहै वचन गजराज सुनायौ, गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए।
यहै वचन सुनि लाखा-गृह मैं पांडव जरत बचाए।
यह बानी सहि जात न प्रभु सौं, ऐसे परम कृपाल।
सूरदास प्रभु अंग सकोर्यौ, व्याकुल देख्यौ ब्याल ॥५५६॥
॥११७४॥

राग गौरी

नाथत ब्याल बिलंब न कीन्हौ।
पग सौं चाँपि धींच बल तोर्यौ, नाक फोरि गहि लीन्हौ।
कूदि चढ़े ताके माथे पर, काली करत बिचार।
स्रवननि सुनी रही यह बानी, ब्रज ह्वैहै अवतार।
तेइ अवतरे आइ गोकुल मैं, मैं जानी यह बात।
अस्तुति करन लग्यौ सहसौ मुख, धन्य-धन्य जग-तात।
बार बार कहि सरन पुकार्यौ, राखि-राखि गोपाल।
सूरदास प्रभु प्रगट भए जब, देख्यौ ब्याल बिहाल ॥५५७॥
॥११७५॥

राग बिलावल

देखि दरस मन हरष भयौ।
पूरन ब्रह्म सनातन तुमहीं, ब्रज अवतार लयौ।
श्रीमुख कह्यौ, अजहुँ लौं तुम नहिं, जान्यौ ब्रज अवतार ?
और कौन जो तुम सौं बाँचै, सहस फननि की झार !
अनजानत अपराध किए प्रभु, राखि सरन मोहिं लेहु।
सूरदास धनि-धनि मेरे फन, चरण-कमल जहँ देहु ॥५५८॥
॥११७६॥

राग गौरी

अब कीन्ह्यौ प्रभु मोहिं सनाथ।
कोटि-कोटि कीटहु सम नाहीं, दरसन दियौ जगत के नाथ।
असरन सरन कहावत हौ तुम, कहत सुनी भक्तनि मुख बात।
ये अपराध छमा सब कीजै, धिक मेरी बुधि कहत डरात।
दीन बचन सुनि काली मुख तैं, चरन धरे फन-फन-प्रति आप।
सूर स्याम देख्यौ अहि व्याकुल, खसु दीन्ह्यौ, मेटे त्रय ताप।
॥५५९॥११७७॥

राग गौरी

जसुमति टेरति कुँवर कन्हैया ।
आगैं देखि कहत बलरामहिं, कहाँ रह्यौ तुव भैया ।
मेरौ भैया आवत अबहीं तोहिं दिखाऊँ मैया ।
धीरज करहु, नैंकु तुम देखहु, यह सुनि लेति बलैया ।
पुनि यह कहति मोहिं परमोधत, धरनि गिरी मुरझैया ।
सूर बिना सुत भई अति ब्याकुल, मेरौ बाल नन्हैया ॥५६०॥
॥११७८॥

राग सारंग

जमुना तोहिं बह्यौ क्यौं भावे ।
तोमैं कृष्न हेलुवा खेले, सो सुरत्यौ नहिं आवै !
तेरौ नीर सुची जो अब लौं, खार पनार कहावै ।
हरि-बियोग कोउ पाउँ न दैहै, को तट बेनु बजावै !
भरि भादौं जो राति अष्टमी, सो दिन क्यौं न जनावै ।
सूरदास कौ ऐसौ ठाकुर, कमल-फूल लै आवै ॥५६१॥
॥११७९॥

राग सोरठ

ब्रज-बासी सब भए बिहाल ।
कान्ह-कान्ह कहि-कहि टेरत हैं, ब्याकुल गोपी-ग्वाल ।
अब को बसै जाइ ब्रज हरि-बिनु, धिक जीवन नर-नारि ।
तुम बिनु यह गति भई सबनि की, कहाँ गए बनवारि ।
प्रातहिं तैं जल-भीतर पैठे, होन लग्यौ जुग जाम ।
कमल लिए सूरज प्रभु आवत सब सौं कही बलराम ॥५६२॥
॥११८०॥

राग नट

आवत उरग नाथे स्याम ।
नंद, जसुदा, गोप-गोपी, कहत हैं बलराम ।
मोर-मुकुट, बिसाल लोचन, स्रवन कुंडल लोल ।
कटि पितंबर, बेष नटवर, नृतत फन प्रति डोल ।

देव दिवि दुंदुभि बजावत, सुमन-गन बरषाइ।
सूर स्याम बिलोकि ब्रज-जन, मातु, पितु सुख पाइ ॥५६३॥
॥११८१॥

राग नट

मातु-पिता मन हरष बढ़ायौ।
मोर-मुकुट पीतांबर काछे, देख्यौ निकट जु आयौ।
सुर दुंदुभी बजावत गावत, फन-प्रति निर्तत स्याम।
ब्रजबासी सब मरत जिवाए, हरषि उठीं सब बाम।
सोक-सिंधु बहि गयौ तुरतहीं, सुख कौ सिंधु बढ़ायौ।
सूरदास प्रभु कंस-निकंदन, कमल उरग पर लायौ ॥५६४॥
॥११८२॥

राग कान्हरौ

फन-फन-प्रति निरतत नँद-नंदन।
जल भीतर जुग जाम रहे कहुँ, मिट्यौ नहीं तन-चंदन।
उहै काछनी कटि, पीतांबर, सीस मुकुट अति सोहत।
मानौ गिरि पर मोर अनंदित, देखत ब्रज-जन मोहत।
अंबर थके अमर ललना सँग, जै-जै धुनि तिहुँ लोक।
सूर स्याम काली पर निरतत, आवत हैं ब्रज-ओक ॥५६५॥
॥११८३॥

राग सोरठ

गोपाल राइ निरतत फन-प्रति ऐसे।
गिरि पर आए बादर देखत, मोर अनंदित जैसे।
डोलत मुकुट सीस पर हरि के, कुंडल-मंडित गंड।
पीत बसन, दामिनि मनु घन पर, तापर सुर-कोदंड।
उरग-नारि आगैं सब ठाढ़ीं, मुख-मुख अस्तुति गावैं।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, हम माँगैं पति पावैं ॥५६६॥
॥११८४॥

राग कान्हरौ

बहुत कृपा इहिं करी गुसाईं।
इतनी कृपा करी नहिं काहूँ, जिनि राखे सरनाई।

कृपा करी प्रहलाद भक्त कौं, द्रुपद-सुता-पति राखी।
ग्राह ग्रसत गजराज छुड़ायौ, बेद पुराननि भाखी।
जो कछु कृपा करी काली पर, सो काहूँ नहिं कीन्हौ।
कोटि ब्रह्मंड रोम-प्रति अंगनि, ते पद फन-प्रति दीन्हौ।
धरनि सीस धरि सेस गरब धर्‍यौ, इहिं भर अधिक सँभार्‍यौ।
पूरन कृपा करी सूरज प्रभु, पग फन-फन-प्रति धार्‍यौ ॥५६७॥
॥११८५॥

राग सोरठ

ठाढ़े देखत हैं ब्रजबासी।
कर जोरे अहि-नारि बिनय करि कहति, धन्य अबिनासी।
जे पद-कमल रमा उर राखति, परसि सुरसरी आई।
जे पद-कमल संभु की संपति, फन-प्रति धरे कन्हाई।
जे पद परसि सिला उद्धरि गई, पांडव गृह फिरि आए।
जे पद-कमल-भजन महिमा तैं, जन प्रहलाद बचाए।
जे पद ब्रज-जुवतिनि सुखदायक, तिहूँ भुवन धरे बावन।
सूर स्याम ते पद फन-फन-प्रति, निरतत अहि कियौ पावन ॥५६८॥
॥११८६॥

राग सोरठ

ऐसी कृपा करी नहिं काहूँ।
खंभ प्रगटि प्रहलाद बचायौ, ऐसी कृपा न ताहूँ।
ऐसी कृपा करी नहिं गज कौं, पाइ पियादे धाए।
ऐसी कृपा तबहुँ नहिं कीन्ही, नृपतिनि बंदि छुड़ाए।
ऐसी कृपा करी नहिं भीषम-परतिज्ञा सत भाषी।
ऐसी कृपा करी नहिं, जब त्रिय नगन समय पति राखी।
पूरन कृपा नंद-जसुमति कौं, सोइ पूरन इहिं पायौ।
सूरदास प्रभु धन्य कंस, जिनि, तुमसौं कमल मँगायौ ॥५६९॥
॥११८७॥

राग कान्हरौ

सुनहु कृपानिधि, जिती कृपा तुम या काली पै कीन्ही।
इती बड़ाई कबहुँ, कैसहूँ, नहिं काहू कौं दीन्ही।

जिनि पद-कमल-सुकृत-जल-परस्यौ, अजहुँ धरैं सिव सीस।
ते पद प्रगट धरे फन-फन-प्रति, धन्य कृपा जगदीस।
एक अंड कौ भार बहत है, गरब धर्‍यौ जिय सेष।
इहिं भरु अधिक सह्यौ अपनैं सिर, अमित-अंड-मय बेष।
सुर, नर, असुर, कीट, पसु, पच्छी, सब सेवक प्रभु तेरे।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, या अपने जन केरे ॥५७०॥
॥११८८॥

राग कान्हरौ

चरन-कमल बंदौं जगदीस्वर, जे गोधन-सँग धाए।
जे पद-कमल धूरि लपटाने, गहि गोपिनि उर लाए।
जे पद-कमल जुधिष्ठिर पूजे, राजसूय चलि आए।
जे पद-कमल पितामह भीषम, भारत देखन पाए।
जे पद-कमल संभु, चतुरानन, हृद अंतर लै राखे।
जे पद-कमल रमा-उर-भूषन, बेद, भागवत भाखे।
जे पद-कमल लोक-त्रय-पावन, बलि की पीठि धरे।
ते पद-कमल सूर के स्वामी, फन-प्रति नृत्य करे ॥५७१॥
॥११८९॥

राग कान्हरौ

गिरिधर, ब्रजधर, मुरलीधर, धरनीधर, माधौ पीतांबरधर।
संख-चक्र-धर, गदा-पद्म-धर, सीस-मुकुट-धर, अधर-सुधा-धर।
कंबु-कंठ-धर, कौस्तुभ-मनि-धर, बनमाला-धर, मुक्त-माल-धर।
सूरदास प्रभु गोप-बेष-धर, काली-फन पर चरन-कमल-धर ॥५७२॥
॥११९०॥

राग कान्हरौ

गरुड़-त्रास तैं जौ ह्याँ आयौ।
तौ प्रभु-चरन-कमल फन-फन-प्रति अपनैं सीस धरायौ।
धनि रिषि साप दियौ खगपति कौं, ह्याँ तब रह्यौ छपाइ।
प्रभु-बाहन-डर भाजि बच्यौ अहि, नातरु लेतौ खाइ।
यह सुनि कृपा करी नँद-नंदन, चरन-चिह्न प्रगटाए।
सूरदास प्रभु अभय ताहि करि, उरग-द्वीप पहुँचाए ॥५७३॥
॥११९१॥

राग सारंग

अति बल करि-करि काली हारयौ ।
लपटि गयौ सब अंग-अंग-प्रति, निर्विष कियौ सकल बल झारयौ ।
निरतत पद पटकत फन-फन-प्रति, बमत रुधिर नहिं जात सम्हारयौ ।
अति बल-हीन, छीन भयौ तिहिं छन, देखियत है रज्वा सम डारयौ ।
तिय-विनती करुना उपजी जिय, राख्यौ स्याम नाहिं तिहिं मारयौ ।
सूरदास प्रभु प्रान-दान कियौ, पठयौ सिंधु उहाँ तैं टारयौ ॥५७४॥
॥११६२॥

राग कान्हरौ

सबै ब्रज है जमुना कैं तीर ।
कालिनाग के फन पर निरतत, संकर्षन कौ बीर ।
लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत, ताल मृदंग गँभीर ।
प्रेम-मगन गावत गंध्रब गन ब्यौम बिमाननि भीर ।
उरग-नारि आगैं भईं ठाढ़ी, नैननि ढारति नीर ।
हमकौं दान देइ पति छाँड़हु, सुंदर स्याम सरीर ।
आप निकसि पहिरि मनि-भूषन, पीत-बसन कटि चीर ।
सूर स्याम कौं भुज भरि भेंटत, अंकम देत अहीर ॥५७५॥
॥११६३॥

राग कान्हरौ

खेलत-खेलत जाइ कदम चढ़ि, झपि जमुना-जल लीन्हौ ।
सोवत काली जाइ जगायौ, फिरि भारत हरि कीन्हौ ।
उठि जुवती कर जोरि बिनति करी, स्वामि दान मोहिं दीजै ।
टूटत फन, फाटत तन दुहुँ दिसि, स्याम निहोरौ लीजै ।
तब अहि छाँड़ि दियौ करुनामय, मोहन-मदन, मुरारी ।
सागर-बास दियौ काली कौं, सूरदास बलिहारी ॥५७६॥
॥११६४॥

राग सोरठ

(तुम) जाहु बालक, छाँड़ि जमुना, स्वामि मेरौ जागिहै ।
अंग कारौ मुख बिषारौ, दृष्टि परैं तोहिं लागिहै ।

(तुम) केरि बालक जुवा खेल्यौ, केरि दुरत दुराइयाँ।
लेहु तुम हीरा पदारथ, जागिहै मेरौ साँइयाँ।
नाहिं नागिनि जुवा खेल्यौ, नाहि दुरत दुराइयाँ।
कंस-कारन गेंद खेलत कमल-कारन आइयाँ।
(तब) धाइ धायौ, अहि जगायौ, मनौ छूटे हाथियाँ।
सहस फन फुफुकार छाँड़े, जाइ काली नाथियाँ।
(जब) कान्ह काली लै चले, तब नारि बिनवै, देव हो!
चेरि कौं अहिवात दीजै, करै तुम्हरी सेव हो।
(तब) लादि पंकज कढ़्यौ बाहिर, भयौ ब्रज-मन-भावना।
मथुरा नगरी कृष्न राजा, सूर मनहिं बधावना ॥५७७॥
॥११६५॥

राग देवगंधार

काली-बिष-गंजन दह आइ।
देखे मृतक बच्छ बालक सब लए कटाच्छ जिवाइ।
बहु उतपात होत गोकुल मैं, मैया रही भुलाइ।
बड़ी बेर भई अजहुँ न आए, गृह-कृत कछु न सुहाइ।
नंदादिक सब गोप-गोपि मिलि, चले बिकल बन धाइ।
देखे जाइ उरग लपटाने, प्रान तजत अकुलाइ।
अति गंभीर धीर करि जानत, संकर्षन निज भाइ।
सूरदास प्रभु नाग कियौ बस, आनँद उर न समाइ ॥५७८॥
॥११६६॥

राग कल्यान

जय-जय-धुनि अमरनि नभ कीन्हौ।
धन्य-धन्य जगदीस गुसाईं, अपनौ करि अहि लीन्हौ।
अभय कियौ फन चरन-चिन्ह धरि, जानि आपुनौ दास।
जल तैं काढ़ि कृपा करि पठयौ, मेटि गरुड़ कौ त्रास।
अस्तुति करत अमर-गन बहुरे, गए आपनैं लोक।
सूर स्याम मिलि मातु-पिता कौ दूरि कियो तनु-सोक ॥५७९॥
॥११६७॥

राग कान्हरौ

लीन्हौं जननि कंठ लगाइ।
अंग पुलकित, रोम गदगद, सुखद आँसु बहाइ।

मैं तुमहिं बरजति रही हरि, जमुन-तट जनि जाइ।
कह्यौ मेरौ कान्ह कियौ नहिं, गयौ खेलन धाइ।
कंस कमल मँगाइ पठए, तातैं गयउँ डराइ।
मै कह्यौ निसि सुपन तोसौं, प्रगट भयौ सु आइ।
ग्वाल-सँग मिलि गेंद खेलत, आयौ जमुना-तीर।
काहु लै मोहिं डारि दीन्हौ, कालिया-दह-नीर।
यह कही तब उरग मोसौं, किन पठायौ तोहिं।
मैं कही, नृप कंस पठयौ कमल-कारन मोहिं।
यह सुनत डरि कमल दीन्हौ, लियौ पीठि चढ़ाइ।
सूर यह कहि जननि बोधी, देख्यौ तुमहीं आइ ॥५८०॥
॥११९८॥

राग गौरी

ब्रज-बासिनि सौं कहत कन्हाई।
जमुना-तीर आजु सुख कीजै, यह मेरैं मन आई।
गोपनि सुनि अति हरष बढ़ायौ, सुख पायौ नँदराइ।
घर-घर तैं पकवान मँगायौ, ग्वारनि दियौ पठाइ।
दधि माखन षट रस के भोजन, तुरतहिं ल्याए जाइ।
मातु-पिता-गोपी-ग्वालनि कौं, सूरज प्रभु सुखदाइ ॥५८१॥
॥११९९॥

राग गौरी

तुरत कमल अब देहु पठाइ।
सुनहु तात कछु बिलँब न कीजै, कंस चढ़ै ब्रज-ऊपर धाइ।
कमल मँगाइ लिए तट-ऊपर, कोटि कमल तब दिए पठाइ।
बहुत बिनय करि पाती पठई, नृप लीजै सब पुहुप गनाइ।
तैसी मोकौं आज्ञा दीजै, बहुप धरे जल-माँझ सजाइ।
सूरदास नृप तुव प्रताप तैं, काली आपु गयौ पहुँचाइ ॥५८२॥
॥१२००॥

राग सोरठ

सहस सकट भरि कमल चलाए।
अपनी समसरि और गोप जे, तिनकौं साथ पठाए।

औरै बहुत काँवरि दधि-माखन, अहिरनि काँधैं जोरि।
नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ, बिनती कीजौ मोरि।
मेरौ नाम नृपति सौं लीजौ, स्याम कमल लै आए।
कोटि कमल आपुन नृप माँगे, तीनि कोटि हैं पाए।
नृपति हमहिं अपनौ करि जानौ, तुम लायक हम नाहिं।
सूरदास कहियौ नृप आगैं तुमहिं छाँड़ि कहँ जाहिं! ॥५८३॥
॥१२०१॥

राग गौड़

कमल के भार, दधि भार, माखन-भार लिए, सब ग्वार, नृप-द्वार आए।
तुरतहीं टोरि, गनि, कोरि सकटनि जोरि, ठाढ़े भए पौरिया तब सुनाए।
सुनत यह बात, अतुरात और डरत मन, महल तैं निकसि नृप आपु आए।
देखि दरबार, सब ग्वार नहिं पार कहुँ, कमल के भार सकटनि सजाए।
अतिहिं चकित भयौ, ज्ञान हरि हरि लयौ, सोच मन मैं ठयौ, कहा कीन्हौ!
गोप-सिरमौर नृप ओर कर जोरि कै, पुहुप कैं काज प्रभु पत्र दीन्हौ।
यह कह्यौ नंद, नृप बंदि, अहि-इंद्र पैं गयौ मेरौ नंद, तुव नाम लीन्हौ।
उठ्यौ अकुलाइ, डरपाइ तुरतहिं धाइ, गयौ पहुँचाइ तट आइ दीन्हौ।
यह कह्यौ स्याम-बलराम, लीजौ नाम, राज कौ काज यह हमहिं कीन्हौ।
और सब गोप आवत जात नृप बात कहत, सब सूर मोहिं नहीं चीन्हौ ॥५८४॥१२०२॥

राग बिलावल

ग्वालनि हरि की बात सुनाई। यह सुनि कंस गयौ मुरझाई।

तब मनहीँ मन करत विचार। यह कोउ भलौ नहीँ अवतार।
यासौँ मेरौ नहीँ उबार। मोहिँ मारि, मारै परिवार।
दैत्य गए ते बहुरि न आए। काली तैँ ये क्यौँ बचि पाए।
ताही पर धरि कमल लदाए। सहस सकट भरि ब्याल पठाए।
एक ब्याल मैँ उनहिँ बताए। कोटि ब्याल मम सदन चलाए।
ग्वालनि देखि मनहिँ रिस काँपै। पुनि मन मैँ भय-अंकुर थापै।
आपुहिँ आपु नृपति थल त्याग्यौ। सूर देखि कमलनि उठि भाग्यौ।
॥५८५॥१२०३॥

राग नट

भीतर लिए ग्वाल बुलाइ।
हृदय दुख, मुख हलवली करि, दिए ब्रजहिं पठाइ।
नंद कौँ सिरपाव दीन्हौ, गोप सब पहिराइ।
यह कह्यौ बलराम-स्यामहिं, देखिहौँ दोउ भाइ।
अतिहिं पुरुपारथ कियौ उन, कमल दह के ल्याइ।
सूर उनकौँ देखिहौँ मैँ, एक दिवस बुलाइ ॥५८६॥१२०४॥

राग गुंडमलार

कमल पहुँचाइ सब गोप आए।
गए जमुना-तीर, भई अतिहीँ भीर, देखि नँद तीर तुरतहिं बुलाए।
दियौ सिरपाव नृपराव नै महर कौँ, आपु पहिरावने सब दिखाए।
अतिहिं सुख पाइ कै, लियौ सिर नाइ कै, हरष नँदराइ कैँ मन बढ़ाए।
स्याम-बलराम कौ नाम जब हम लियौ, सुनत सुख कियौ उन कमल ल्याए।
सूर नँद-सुवन दोउ, दिवस इक देखिहौँ, पुहुप लिए, पाइ सुख, इन बुलाए ॥५८७॥१२०५॥

राग धनाश्री

यह सुनि नंद बहुत सुख पाए।
कमल पठाइ दए, नृप लीन्हे, देखन कौँ दोउ सुतनि बुलाए।
सेवा बहुत मानि है लीन्ही, ब्रज-नारी-नर हरष बढ़ाए।
बड़ी बात भई कमल पठाए, मानहुँ आपुन जल तैँ ल्याए।

आनँद करत जमुन-तट ब्रज-जन, खेलत-खातहिं दिवस बिहाए।
इक सुख स्याम बचे काली तैं, इक सुख कंसहिं कमल पठाए।
हँसत स्याम-बलराम सुनत यह हमकौं देखन नृपति बुलाए।
सूरदास प्रभु मातु-पिता-हित, कमल कोटि दै ब्रजहिं पठाए॥
॥५८८॥१२०६॥

राग धनाश्री

नारद कही समुझाइ कंस नृपराज कौं।
तब पठयौ ब्रज दूत, पुहुप के काज कौं।ध्रुव।
तब पठयौ ब्रज दूत, सुनी नारद-मुख-बानी।
बार-बार रिषि-काज, कंस अस्तुति मुख गानी।
धन्य-धन्य मुनिराज तुम भलौ मंत्र दियौ मोहिं।
दूत चलायौ तुरतहीं, अबहिं जाइ ब्रज होहि।
यह कहियौ तुम जाइ, कमल नृप कोटि मँगाए।
पत्र दियौ लिखि हाथ, कह्यौ, बहु भाँति जनाए।
काल्हि कमल नहिं आवहीं, तौ तुमकौं नहिं चैन।
सिर नवाइ, कर जोरि कै, चल्यौ दूत सुनि बैन।
तुरत पठायौ दूत नंद घरहीं मैं पायौ।
"कमल फूल के भार कंस नृप बेगि मँगायौ।
'काल्हि न पहुँचै आइकै, तब बसिहौ ब्रज लोग!'
'गोकुल मैं जे सुख किए, ते करि दैहौं सोग।
'जौ न पठावहु पुहुप, कहौगे तैसी मोकौं।
'जानहु यह गोपनि समेत धरि ल्यावहु तोकौं।
'बल-मोहन तेरे दुहुँनि कौं, पकरि मँगाऊँ कालि।
'पुहुप बेगि पठएँ बनै, जौ रे बसौ ब्रज-पालि।"
यह सुनि नंद, डराइ, अतिहिं मन-मन अकुलान्यौ।
यह कारज क्यौं होइ, काल अपनौ करि जान्यौ।
और महर सब बोलि कह्यौ; कैसौ करैं उपाइ।
प्रात साँझ ब्रज मारिहै, बाँधि सबनि लै जाइ।
बल-मोहन कौ नाम धरयौ कह्यौ पकरि मँगावन।
तातैं अति भयौ सोच, लगत सुनि मोहिं डरावन।
यह सुनि सिर नाए सबनि, मुखहिं न आवै बात।
बार-बार नँद कहत हैं यह लरिकनि पर घात।

कै बालकनि भगाइ, जाहिँ लै आन भूमि पर।
बरु हमकौँ लै जाइ, स्याम-बलराम बचैँ घर।
महरि सबै ब्रजनारि सौँ, पूछति कौन उपाउ।
जनमहिं तैँ करबर टरी, अबकैँ नाहिं बचाउ।
कोउ कहै देहँ दाम, नृपति जेतौ धन चाहैँ।
कोउ कहै जैऐ सरन, सबै मिलि बुधि अवगाहैँ।
इहाँ सोच सब परि रहे, कहूँ नहीँ निरवार।
ब्रज-भीतर, नँद-भवन मैँ, घर-घर यहै बिचार।
अंतरजामी, जानि नंद सौँ पूछत बाता।
कहा करत हौ सोच, कहौ कछु मोसौँ ताता।
कहा कहौँ मेरे लाड़िले, कहत बड़ौ संताप।
मथुरापति कैँ जिय कछू, तुम पर उपज्यौ पाप।
कालीदह के पुहुप माँगि पठए हमसौँ उनि।
तब तैँ मो जिय सोच, जबहिं तैँ बात परी सुनि।
जौ नहिं पठवहुँ काल्हि तौ, गोकुल दवा लगाइ।
मो समेत दोउ बंधु तुम, काल्हिहिँ लेहि बँधाइ।
यह कहि पठयौ कंस, तबहिँ तैँ सोच परयौ मोहिँ।
प्रथम पूतना आइ, बहुत दुख दै जु गई तोहिँ।
तृनावर्त के घात तैँ, बहुत बच्यौ दुख पाइ।
सकटा-केसी तैँ बच्यौ, अब को करै सहाइ।
अघा-उद्र तैँ बच्यौ, बहुत दुख सह्यौ कन्हाई।
बका रह्यौ मुख बाइ, तहाँ भयौ धर्म सहाई।
एती करबर हैँ टरी, देवनि करी सहाइ।
तब तैँ अब गाढ़ी परी, मोकौँ कछु न सुझाइ।
बाबा तुमहीँ कहत, कौन धौँ तोहिं उबारै।
सोइ ब्रज-भीतर प्रगटि, कंस गहि केस पछारै।
यह जबहीँ हरि सौँ सुनी, नंद मनहिं पतियाइ।
गगन गिरत जो सँग रह्यौ, सो करि लेइ सहाइ।
नंदहिँ यह समुझाइ कान्ह, उठि खेलन धाए।
जहँ ब्रज-बालक हुते, तुरत तहँ आपुन आए।
गोप-सुतनि सौँ यह कह्यौ, खेलैँ गैँद मँगाइ।
श्रीदामा यह सुनतहीँ घर तैँ ल्याए जाइ।

सखा परस्पर मारि करैं, कोउ कानि न मानै।
कौन बड़ो को छोट, भेद अनुभेद न जानैं।
खेलत जमुना-तट गए, आपुहिं ल्याए टारि।
लै श्रीदामा हाथ तैं, गेंद दयौ दह डारि।
श्रीदामा गहि फेंट कह्यौ, हम तुम इक जोटा।
कहा भयौ जौ नंद बड़े, तुम तिनकैं ढोटा।
खेलत मैं कह छोट बड़, हमहुँ महर के पूत।
गेंद दियैं ही पै बनै, छाँड़ि देहु मति-धूत।
तुमसौं धूत्यौ कहा करौं, धूत्यौ नहिं देख्यौ।
प्रथम पूतना मारि काग सकटासुर पेख्यौ।
तृनावर्त पटक्यौ सिला, अघा बका संहारि।
तुम ता दिन सँगहीं रहे, धूत न कहत सम्हारि।
टेढ़े कहा बतात, कंस कौं, देहु कमल अब।
कालिहिं पठए माँगि पुहुप अब ल्याइ देहु जब।
बहुत अचगरी जिनि करौ, अजहूँ तजौ झवारि।
पकरि कंस लै जाइगौ, कालिहिं परै खँभारि।
कमल पठाऊँ कोटि, कंस कौ दोष मिवारौं।
तुम देखत ही जाउँ, कंस जीवत धरि मारौं।
फेंट लियौ तब झटकि कै, चढ़े कदम पर जाइ।
सखा हँसत ठाढ़े सबै, मोहन गए पराइ।
श्रीदामा चले रोइ जाइ कहिहौं नँद-आगे।
गेंद लेहु तुम आइ, मोहिं डरपावन लागे!
यह कहि कूदि परे सलिल, कीन्हे नटवर-साज।
कोमल तन धरि कै गए, जहँ सोवत अहिराज।
इहिं अंतर नँद-घरनि कह्यौ हरि भूखे ह्वैहैं।
खेलत तैं अब आइ, भूख कहि मोहिं सुनैहैं।
अति आतुर भीतर चली, जेंवन साजन आप।
छींक सुनत कुसगुन कह्यौ, कहा भयौ यह पाप।
अजिर चली पछितात छींक कौ दोष निवारन।
मंजारी गई काटि बाट, निकसत तब बारन।
जननी जिय व्याकुल भई, कान्ह अबेर लगाइ।
कुसगुन आजु बहुत भए, कुसल रहैं दोउ भाइ।

स्याम परे दह कूदि, मातु-जिय गयौ जनाई।
आतुर आए नंद घरहिं बूझत दोउ भाई।
नंद, घरनि सौं यह कहत, मोकौं लगत उदास।
इहिं अंतर हरि तहँ गए, जहँ काली कौ बास।
देख्यौ पन्नग जाइ अतिहिं निर्भय भयौ सोवत।
बैठी तहँ अहि-नारि, डरी बालक कौं जोवत।
भागि-भागि सुत कौन कौ, अति कोमल तव गात।
एक फूँक कौ नाहिं तू बिष-ज्वाला अति तात।
तब हरि कह्यौ प्रचारि, नारि, पति देइ जगाई।
आयौ देखन याहि, कंस मोहिं दियौ पठाई।
कंस कोटि जरि जाहिंगे, बिष की एक फुँकार।
कही मेरी करि जाहि तू, अति बालक सुकुमार।
इहिं अंतर सब सखा जाइ ब्रज नंद सुनायौ।
हम सँग खेलत स्याम जाइ जल माँझ धँसायौ।
बूड़ि गयौ, उचक्यौ नहीं ता बातहिं भई बेर।
कूदि पर्‌यौ चढ़ि कदम तैं, खबरि न करौ सबेर।
त्राहि-त्राहि करि नंद, तुरत दौरे जमुना-तट।
जसुमति सुनि यह बात, चली रोवति तोरति लट।
ब्रजबासी नर-नारि सब, गिरत परत चले धाइ।
बूड़्यौ कान्ह सुनी सबनि, अति ब्याकुल मुरझाइ।
जहँ-तहँ परी पुकार, कान्ह बिनु भए उदासी।
कौन काहि सौं कहै, अतिहिं ब्याकुल ब्रजबासी।
नंद-जसोदा अति बिकल, परत जमुन मैं धाइ।
और गोप उपनंद मिलि, बाहँ पकरि लै आइ।
धेनु फिरति बिललाति बच्छ थन कोउ न लगावै।
नंद जसोदा कहत, कान्ह बिनु कौन चरावै।
यह सुनि ब्रजबासी सबै, परे धरनि अकुलाइ।
हाय-हाय करि कहत सब, कान्ह रह्यौ कहँ जाइ।
नंद पुकारत रोइ बुढ़ाई मैं मोहिं छाँड़्यौ।
कछु दिन मोह लगाइ, जाइ जल-भीतर माँड़्यौ।
यह कहि कै धरनी गिरत, ज्यौं तरु कटि गिरि जाइ।
नंद-घरनि यह देखि कै, कान्हहिं टेरि बुलाइ।

निठुर भए सुत आजु, तात की छोह न आवति।
यह कहि-कहि अकुलाइ, बहुरि जल भीतर धावति।
परति धाइ जमुना-सलिल, गहि आनति ब्रजनारि।
नैंकु रहौ सब मरहिंगी, को है जीवनहारि?
स्याम गए जल बूड़ि बृथा धिक जीवन जग कौ।
सिर फोरति, गिरि जाति, अभूषन तोरति अँग कौ।
मुरछि परी, तन-सुधि गई, प्रान रहे कहुँ जाइ।
हलधर आए धाइ कै, जननि गई मुरझाइ।
नाक मूँदि, जल सींचि जबहि जननी कहि टेर्‌यौ।
बार-बार झकझोरि, नैंकु हलधर-तन हेर्‌यौ।
कहति उठी बलराम सौं, कितहिं तज्यौ लघु भ्रात।
कान्ह तुमहिं बिनु रहत नहिं, तुमसौं क्यौं रहि जात।
अब तुमहूँ जनि जाहु, सखा इक देहु पठाई।
कान्हहिं ल्यावै जाइ, आजु अवसेर कराई।
छाक पठाऊँ जोरि कै, मगन सोक-सर-माँझ।
प्रात कछू खायौ नहीं, भूखे ह्वै गई साँझ।
कबहुँ कहति बन गए, कबहुँ कहि घरहिं बतावति।
कहँ खेलत हौ लाल, टेरि यह कहति बुलावति।
जागि परी दुख-मोह तैं रोवत देखे लोग।
तब जान्यौ हरि दह गिर्‌यौ, उपज्यौ बहुरि बियोग।
धिक-धिक नंदहि कह्यौ, और कितने दिन जीहौ।
मरत नहीं मोहिं मारि, बहुरि ब्रज बसिबौ कीहौ।
ऐसे दुख सौं मरन सुख, मन करि देखहु ज्ञान।
ब्याकुल धरनी गिरि परे, नंद भए बिनु प्रान।
हरि के अग्रज बंधु; तुरतहीं पिता जगायौ।
माता कौं परमोधि, दुहुँनि धीरज धरवायौ।
मोहिं दुहाई नंद की, अबहीं आवत स्याम।
नाग नाथि लै आइहैं, तब कहियौ बलराम।
हलधर कह्यौ सुनाइ, नंद, जसुमति, ब्रजबासी।
बृथा मरत किहिं काज, मरै क्यौं वह अबिनासी?
आदि पुरुष मैं कहत हौं, गयौ कमल कैं काज।
गिरिधर कौ डर जनि करौ, वह देवनि सिरताज।

वह अविनासी आहि, करौ धीरज अपनैं मन।
काली छेदे नाक लिए आवत, निरतत फन।
कंसहिं कमल पठाइहै, काली पठवै दीप।
एक घरी धीरज धरौ, बैठौ सब तर-नीप।
ह्वाँ नागिनि सौं कहत कान्ह, अहि क्यौं न जगावै।
बालक-बालक करति कहा, पति क्यौं न उठावै।
कहा कंस कह उरग यह, अबहिं दिखाऊँ तोहिं।
दै जगाइ मैं कहत हौं, तू नहिं जानति मोहिं।
छोटैं मुँह बड़ी बात कहत, अबहीं मरि जैहै।
जो चितवै करि क्रोध, अरे, इतनेहिं जरि जैहै।
छोह लगत तोहिं देखि मोहिं, काकौ बालक आहि।
खगपति सौं सरबरि करी, तू बपुरौ को ताहि।
बपुरा मोकौं कहति, तोहिं बपुरी करि डारौं।
एक लात सौं चाँपि, नाथ तेरे कौं मारौं।
सोवत काहु न मारियै, चलि आई यह बात।
खगपति कौं मैं हीं कियौ, कहति कहा तू जात।
तुमहिं विधाता भए, और करता कोउ नाहीं।
अहि मारौगे आपु तनक से, तनक सी बाहीं।
कहा कहौं कहत न बनै, अति कोमल सुकुमार।
देती अबहिं जगाइ कै, जरि बरि होत्यौ छार।
तू धौं देहि जगाइ, तोहिं कछु दूषन नाहीं।
परी कहा तोहिं नारि, पाप अपनैं जरि जाहीं।
हमकौं बालक कहति है, आपु बड़े की नारि।
बादति है बिनु काजहीं, वृथा बढ़ावति रारि।
तुहीं न लेत जगाइ, बहुत जो करत ढिठाई।
पुनि मरिहैं पछिताइ, मातु, पितु तेरे भाई।
अजहुँ कह्यौ करि, जाहि तू, मरि लैहै सुख कौन?
पाँच बरष के सात कौ, आगैं तोकौं हौन।
झिरकि नारि, दै गारि, आपु अहि जाइ जगायौ।
पग सौं चाँपी पूँछ, सबै अवसान भुलायौ।
चरन मसकि धरनी दली, उरग गयौ अकुलाइ।
काली मन मैं तब कही, यह आयौ खगराइ।

बिषधर झटकी पूँछ, फटकि सहसौ फन काढ़ौ।
देख्यौ नैन उघारि, तहाँ बालक इक ठाढ़ौ।
बार-बार फन-घात कै, बिष-ज्वाला की झार।
सहसौ फन फनि फुंकरे, नैंकु न तिन्हैं बिकार।
तब काली मन कहत, पूँछ चाँपी इहिं पग सौं।
अतिहिं उठ्यौ अकुलाइ, डर्‌यौ हरि बाहन खग सौं।
यह बालक धौं कौन कौ, कीन्हौ जुद्ध बनाइ।
दाउँ घात बहुतै कियौ, मरत नहीं जदुराइ।
पुनि देख्यौ हरि-ओर, पूँछ चाँपी इहिं मेरी।
मन-मन करत बिचार, लेउँ याकौं मैं घेरी।
दाउँ पर्‌यौ अहि जानि कै, लियौ अंग लपटाइ।
काली तब गरबित भयौ, प्रभु दियौ दाउँ बताइ।
कहति उरग की नारि, गर्ब अतिहीं करि आयौ।
आइ पहूँच्यौ काल बस्य, पग इतहिं चलायौ।
अहि नारिनि सौं यह कही, मो समसरि कोउ नाहिं।
एक फूँक बिष ज्वाल की, जल-डूँगर जरि जाहिं।
गर्ब-बचन प्रभु सुनत, तुरतहीं तन बिस्तार्‌यौ।
हाय-हाय करि उरग, बारहीं बार पुकार्‌यौ।
सरन-सरन अब मरत हौं, मैं नहिं जान्यौ तोहिं।
चटचटात अँग फटत हैं, राखु-राखु प्रभु मोहिं।
स्रवन सरन धुनि सुनत, लियौ प्रभु तनु सकुचाई।
छमहु मोहिं अपराध, न जानैं करी ढिठाई।
ब्रजहिं कृष्न-अवतार हौ, मैं जानी प्रभु आज।
बहुत किए फन-घात मैं, बदन दुरावत लाज।
रह्यौ आनि इहिं ठौर, गरुड़ कैं त्रास गुसाईं।
बहुत कृपा मोहिं करी, दरस दीन्हौ जग-साईं।
नाक फोरि फन पर चढ़े, कृपा करी जदुराइ।
फन-फन-प्रति हरि चरन धरि, निरतत हरष बढ़ाइ।
धन्य कृष्न, धनि उरग, जानि जन कृपा करी हरि।
धन्य-धन्य दिन आजु, दरस तैं पाप गए जरि।
धन्य कंस, धनि कमल ये, धन्य कृष्न अवतार।
बड़ी कृपा उरगहिं करी, फन-प्रति चरन-बिहार।

सेस करत जिय गर्व, अंड कौ भार सीस धरि।
पूरन ब्रह्म अनंत, नाम को सकै पार करि।
फन-फन-प्रति अति भार भरि, अमित अंड-मय गात।
उरग-नारि कर जोरि कै, कहति कृष्न सौं बात।
देखत ब्रज-नर-नारि, नंद जसुदा समेत सब।
संकर्षन सौं कहत, सुनहु सुत कान्ह नहीं अब।
इहिं अंतर जल कमल विच, उठ्यौ कछुक अकुलाइ।
रोवत तैं बरजे सबै, मोहन अग्रज भाइ।
आवत हैं वे स्याम, पुहुप काली-सिर लीन्हे।
मात-पिता, ब्रज दुखित, जानि हरि दरसन दीन्हे।
निरतत काली-फननि पर, दिवि दुंदुभी बजाइ।
नटवर बपु काछे रहे, सब देखे वह भाइ।
आवत देखे स्याम, हरष कीन्हौ ब्रजवासी।
सोक-सिंधु गयौ उतरि, सिंधु आनंद प्रकासी।
जल बूड़त नौका मिलैं, ज्यौं तनु होत अनंद।
त्यौं ब्रज-जन हुलसे सबै, आवत हैं नँद-नंद।
सुत देखत पितु-मातु-रोम गदगद पुलकित भए।
उर उपज्यौ आनंद, प्रेम-जल लोचन दुहुँ स्वए।
दिवि दुंदुभी बजावहीं, फन-प्रति निरतत स्याम।
ब्रजबासी सब कहत हैं, धन्य-धन्य बलराम।
उरग-नारि कर जोरि, करति अस्तुति मुख ठाढ़ी।
गोपी जन अवलोकि, रूप वह अति रुचि बाढ़ी।
सुर अंबर ललना सहित, जै जै धुनि मुख गाइ।
बड़ी कृपा इहिं उरग कौं, ऐसी काहु न पाइ।
कृपा करी प्रहलाद, खंभ तैं प्रगट भए तब।
कृपा करी गज-काज, गरुड़ तजि धाइ गए जब।
द्रुपद-सुता कौं करी कृपा, बसन-समुद्र बढ़ाइ।
नंद जसोदा जो कृपा, सोइ कृपा इहिं पाइ।
तब काली कर जोरि, कह्यौ प्रभु गरुड़-त्रास मोहिं।
अब करिहै दंडवत, नैन भरि जब देखै तोहिं।
चरन-चिन्ह दरसन करत, महि रहिहै तुव पाइ।
उरग-द्वीप कौं करि बिदा, कह्यौ करौ सुख जाइ।

प्रभु यातैं सुख कहा, चरन ते फन-फन परसे।
रमा-हृदय जे बसत, सुरसरी सिव-सिर बरसे।
जन्म-जन्म पावन भयौ, फन पद-चिन्ह धराइ।
पाइ पर्‌यौ उरगिनि सहित, चल्यौ द्वीप समुहाइ।
काली पठयौ द्वीप, सुरनि सुर-लोक पठाए।
आपुन आए निकसि, कमल सब तटहिं धराए।
जल तैं आए स्याम तब, मिले सखा सब धाइ।
मातु पिता दोउ धाइ कै, लीन्हौ कंठ लगाइ।
फेरि जन्म भयौ कान्ह, कहत लोचन भरि आए।
जहाँ तहाँ ब्रज-नारि-गोप आतुर ह्वै धाए।
अंकम भरि-भरि मिलत हैं, मनु निधनी धन पाइ।
मिली धाइ रोहिनि जननि, चूमति लेति बलाइ।
सखा दौरि कै मिले, गए हरि हम पर रिस करि।
धनि माता, धनि पिता, धन्य सो दिन जिहिं अवतरि।
तुम ब्रज-जीवन-प्रान हौ, यह सुनि हँसे गुपाल।
कूदि परे चढ़ि कदम तैं, तुम खेलत ये ख्याल।
काली ल्याए नाथि, कमल ताही पर ल्याए।
जैसी कहि गए स्याम, प्रगट सो हमहिं दिखाए।
कंस मर्‌यौ निहचय भई, हम जानी ब्रजराज।
सिंहिनि कौ छौना भलौ, कहा बड़ौ गजराज।
हरि हलधर तब मिले, हँसे मनहीं मन दोऊ।
बंधु मिलत सब कहत, भेद नहिं जानै कोऊ।
मातु पिता ब्रज-लोग सौं, हरषि कह्यौ नँदलाल।
आजु रहहु सब बसि इहाँ, मेटहु दुख जंजाल।
सुनि सबहिनि सुख कियौ, आजु रहियै जमुना-तट।
सीतल सलिल, सुगंध पवन, सुख-तरु बंसी बट।
नँद घर तैं मिष्टान्न बहु, षट्‌रस लिए मँगाइ।
महर गोप उपनंद जे, सब कौं दिए बँटाइ।
दुख कीन्हौ सब दूरि, तुरत सुख दियौ कन्हाई।
हरष भए ब्रज-लोग, कंस कौ डर बिसराई।
कमल-काज ब्रज मारतौ, कितने लेइ गनाइ।
नृप-गज कौ अब डर कहा, प्रगट्यौ सिंह कन्हाइ।

नंद कह्यौ करि गर्व, कंस कौं कमल पठावहु।
और कमल जल धरहु, कमल कोटिक दै आवहु।
यह कहियौ मेरी कही, कमल पठाए कोटि।
कोटि द्वैक जलहीं धरे, यह विनती इक छोटि।
अपनैं सम जे गोप, कमल तिन साथ चलाए।
मन सबकैं आनंद, कान्ह जल तैं बचि आए।
खेलत-खात-अन्हात ही, बासर गयौ बिहाइ।
सूर स्याम ब्रज-लोग कौं, जहाँ तहाँ सुखदाइ ॥५८९॥
॥१२०७॥

दावानल-पान-लीला — राग मारू

कमल सकटनि भरे ब्याल मानौ।
स्याम के बचन सुनि, मनहिं मन रह्यौ गुनि,
काठ ज्यौं गयौ घुनि, तनु भुलानौ ॥
भयौ बेहाल, नँदलाल कैं ख्याल इहिं,
उरग तैं बाँचि फिरि ब्रजहिं आयौ।
कह्यौ दावानलहिं देखौं तेरे बलहिं,
भस्म करि ब्रज पलहिं, कहि पठायौ ॥
चल्यौ रिस पाइ अतुराइ तब धाइ कै,
ब्रज-जननि बन सहित जारि आऊँ।
नृपति के लै पान, मन कियौ अभिमान,
करत अनुमान चहुँ पास धाऊँ ॥
बृंदाबन आदि, ब्रज आदि, गोकुल आदि,
आदि बुन्यादि सब अहिर जारौं।
चल्यौ मग जात, कहि बात इतरात अति,
सूर-प्रभु सहित संघारि डारौं ॥५९०॥
॥१२०८॥

राग कान्हरौ

दसहुँ दिसा तैं बरत-दवानल, आवत है ब्रज-जन पर धायौ।
ज्वाला उठी अकास बराबरि, घात आपनी सब करि पायौ ॥
बीरा लै आयौ सन्मुख तैं, आदर करि नृप कंस पठायौ।
जारि करौं परलय छिन भीतर, ब्रज बपुरौ केतिक कहवायौ ॥

धरनि अकास भयौ परिपूरन, नैंकु नहीं कहुं संधि बचायौ।
सूर स्याम बलरामहिं मारन, गर्ब-सहित आतुर ह्वै आयौ॥
॥५९१॥१२०९॥

राग कान्हरौ

दावानल ब्रज-जन पर धायौ।
गोकुल ब्रज वृंदाबन तृन द्रुम, चहुँघा चहत जरायौ॥
घेरत आवत दसहुँ दिसा तैं, अति कीन्हे तनु क्रोध।
नारी नर सब देखि चकित भए, दवा लग्यौ चहुँ कोद॥
यह तौ असुर घात किए आवत, धावत बनहिं समाज।
सूरदास ब्रज-लोग कहत यह, उठ्यौ दवानल आज॥५९२॥
॥१२१०॥

राग कान्हरौ

आइ गई दव अतिहिं निकटहीं।
यह जानत अब ब्रज न बाँचिहै, कहत चलौ जल-तटहीं॥
करि बिचार उठि चलन चहत हैं, जो देखैं चहुं पास।
चकित भए नरनारि जहाँ-तहँ, भरि-भरि लेत उसास॥
झरझराति, भहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार।
देखत सूर अग्नि अधिकानी, नभ लौं पहुँची झार॥५९३॥
॥१२११॥

राग कान्हरौ

ब्रज के लोग उठे अकुलाइ।
ज्वाला देखि अकास बराबरि, दसहुँ दिसा कहुँ पार न पाइ॥
झरहरात वन-पात, गिरत तरु, धरनी तरकि तराकि सुनाइ।
जल बरषत गिरिवर-तर बाँचे, अब कैसैं गिरि होत सहाइ॥
लटकि जात जरि-जरि द्रुम-बेली, पटकत बाँस, काँस, कुस, ताल।
उचटत भरि अंगार गगन लौं, सूर निरखि ब्रज-जन बेहाल॥५९४॥
॥१२१२॥

राग कान्हरौ

नंद-घरनि यह कहति पुकारे।
कोउ बरषत, कोउ अगिनि जरावत, दई परयौ है खोज हमारे॥

तब गिरिवर कर धर्यौ कन्हैया, अब न बाँचिहैं मारत जारे।
जैंवन करन चली जब भीतर, छींक परी ती आजु सवारे॥
ताकौ फल तुरतहिं इक पायौ, सो उबर्यौ भयौ धर्म सहारे।
अब सबकौ संहार होत है, छींक किए ये काज विचारे॥
कैसेहुँ ये बालक दोउ उबरैं, पुनि-पुनि सोचति परी खभारे।
सूर स्याम यह कहत जननि सौं, रहि री मा धीरज उर धारे॥५६५॥
॥१२१३॥

राग गौड

भहरात झहरात दवा (नल) आयौ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन, धरनि आकास चहुँ पास छायौ॥
बरत बन-बाँस, थरहरत कुस काँस, जरि, उड़त है भाँस, अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूल-फल चट-चटकि, फटत, लटलटकि द्रुम द्रुमनवायौ॥
अति अगिनि-झार, भंभार धुंधार करि, उचटि अंगार झंझार छायौ।
बरत बन पात, भहरात झहरात अररात तरु महा, धरनी गिरायौ॥
भए बेहाल सब ग्वाल ब्रज-बाल तब, सरन गोपाल कहिकै पुकार्यौ।
तृना केसी सकट बकी बक अघासुर, बाम कर राखि गिरि ज्यौं उबार्यौ॥
नैंकु धीरज करौ, जियहिं कोउ जिनि डरौ, कहा इहिं सरौ, लोचन मुँदाए।
मुठी भरि लियौ, सब नाइ मुखहीं दियौ, सूर प्रभु पियौ ब्रज-जन बचाए॥५६६॥१२१४॥

राग गुंड

दवानल अँचै ब्रज-जन बचायौ।
धरनि आकास लौं ज्वाल-माला प्रबल घेरि चहुँपास ब्रजबास आयौ॥

भए बेहाल सब देखि नँदलाल तब, हँसत ही ख्याल ततकाल कीन्हौ।
सबनि मूँदे नैन, ताहि चितये सैन, तृषा ज्यौं नीर दव अँचै लीन्हौ॥
लखौ अब नैन भरि, बुझि गई अगिनि-झरि, चितै नरनारि आनंद भारी।
सूर प्रभु सुख दियौ, दवानल पी लियौ, कहत सब ग्वाल धनि-धनि मुरारी ॥५६७॥१२१५॥

राग बिहागरा

चकित देखि यह कहैं नर-नारी।
धरनि अकास बराबरि ज्वाला, झपटति लपट करारी॥
नहिं बरष्यौ, नहि छिरक्यौ काहू, कहँ धौं गई बिलाइ।
अति आघात करति बन-भीतर, कैसैं गई बुझाइ॥
तृन की आगि बरतही बुझि गई, हँसि-हँसि कहत गोपाल।
सुनहु सूर वह करनि कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल॥५६८॥
॥१२१६॥

राग बिलावल

जाकैं सदा सहाइ कन्हाई। ताहि कहौ काकौ डर भाई॥
बन घर जहाँ तहाँ सँग डोलैं। खेलत खात सबनि सौं बोलैं॥
जाकौ ध्यान न पावैं जोगी। सो ब्रज मैं माखन कौ भोगी॥
जाकी माया त्रिभुवन छावै। सो जसुमति कैं प्रेम बँधावै॥
मुनि जन जाकौ ध्यान न पावैं। ब्रज-जन लै-लै नाम बुलावैं॥
सूर ताहि सुर अंबर देखैं। जीवन जन्म सुफल करि लेखैं॥
॥५६९॥१२१७॥

राग कान्हरा

ब्रज-बनिता सब कहति परस्पर, नंद महर कौ सुत बड़ बीर।
देखौ धौं पुरुषारथ इहिंकौ, अति कोमल है, स्याम सरीर॥
गयौ पताल उरग गहि आन्यौ, ल्यायौ तापर कमल लदाइ।
कमल-काज नृप ब्रज-मारत हो, कोटि जलज तिहिं दिए पठाइ॥
दावागिनि नभ-धरनि-बराबरि, दसहुँ दिसा तैं लीन्हौ घेरि।
नैन मुँदाइ कहा तिहिं कीन्हौ, कहूँ नहीं जो देखैं हेरि॥

ये उतपात मिटत इनहीं पैं, कंस कहा बपुरौ है छार।
सूर स्याम अवतार बड़ौ ब्रज, येई हैं कर्त्ता संसार ॥६००॥
॥१२१८॥

राग सोरठ

अति सुंदर नँद महर-ढुटौना।
निरखि-निरखि ब्रजनारि कहतिं सब यह जानत कछु टौना॥
कपट रूप की त्रिया निपाती, तबहिं रह्यौ अति छौना।
द्वार सिला पर पटकि तृना कौं, ह्वै आयौ जो पौना॥
अघा बकासुर तबहिं सँहारयौ, प्रथम कियौ बन-गौना।
सूर प्रगट गिरि धरयौ बाम कर, हम जानतिं बलि बौना॥६०१॥
॥१२१९॥

राग मारू

दवा तैं जरत ब्रज-जन उबारे।
पैठि जल गए गहि उरग आने नाथि, प्रगट फन-फननि-प्रति चरन धारे॥
देखि मुनि-लोक, सुर-लोक, सिव-लोक के, नंद-जसुमति-हेत-बस मुरारी।
जहाँ तहँ करत अस्तुति मुखनि देव-नर, धन्य-जै-सब्द तिहुँ भुवन भारी॥
सुख कियौ जमुन-तट एक दिन-रैनि बसि, प्रातहीं ब्रज गईं गोप-नारी।
सूर प्रभु स्याम-बलराम नँद-धाम गए, मातु-पितु घोष-जननि सुखकारी।
॥६०२॥१२२०॥

राग रामकली

हरि ब्रज-जन के दुख-बिसरावन।
कहाँ कंस, कब कमल मँगाए, कहाँ दवानल-दावन॥
जल कब गिरे, उरग कब नाथ्यौ, नहिं जानत ब्रज-लोग।
कहाँ बसे इक दिवस रैनि भरि, कबहिं भयौ यह सोग॥

यह जानत हम ऐसेहिं ब्रज मैं, वैसेहिं करत बिहार।
सूर स्याम जननी सौं माँगत, माखन बारंबार ॥६०३॥
॥१२२१॥

प्रलंब-वध

राग आसावरी

एक दिवस दानव प्रलंब कौं, लीन्हौ कंस बुलाइ।
कह्यौ जाइ मारौ नँद-ढोटा, देहौं बहुत बड़ाइ॥
माया-बपु धरि गोप-पुत्र ह्वै, चल्यौ सु ब्रज-समुहाइ।
बल-मोहन खेलत ग्वालनि सँग, देख्यौ तिनकौं आइ॥
ग्वाल-रूप ह्वै मिल्यौ निसाचर, हलधर सैन बताई।
मनमोहन मन मैं मुसुक्याने, खेलत भलैं जनाई॥
द्वै बालक बैठारि सयाने, खेल रच्यौ ब्रज-खोरी।
और सखा सब जुरि-जुरि ठाढ़े, आपु दनुज-सँग जोरी॥
तबहिं प्रलंब बड़ौ बपु धार्‌यौ, लै गयौ पीठि चढ़ाइ।
उतरि परे हरि ता ऊपर तैं, कीन्हौ जुद्ध बनाइ॥
और सखा सब रोवत धाए, आइ गए नरनारि।
धाए नंद, जसोदा धाई, नित प्रति कहा गुहारि॥
ग्वाल-रूप इक खेलत हो सँग, लै गयौ काँधैं डारि।
ना जानियै आहि धौं को वह, ग्वाल-रूप-बपु धारि॥
जसुमति तब अकुलाइ परी, घर तन की सुधि बिसराई।
नंद पुकारत आरत, ब्याकुल, टेरत फिरत कन्हाई॥
दैत्य सँहारि कृष्न तहँ आए, ब्रज-जन दिए जिवाइ।
दौरि नंद उर लाइ लए हरि, मिली जसोमति माइ।
खेलत रह्यौ संग मिलि मेरैं, लै उड़ि गयौ अकास।
आपुन ही गिरि पर्‌यौ धरनि पर, मैं उबर्‌यौ तिहिं पास॥
उर डरात जिय बात कहत हरि, आए हैं उठि पास।
सूर स्याम जसुमति घर लै गई, ब्रज-जन-मनहि हुलास ॥६०४॥
॥१२२२॥

राग सारंग

जसुमति बूझति फिरति गोपालहिं।
साँझ की बिरियाँ भई सखी री, मैं डरपति जंजालहिं॥

जब तैं तृनावर्त्त ब्रज आयौ, तब तैं मो जिय संक।
नैननि ओट होत पल एकौ, मैं मन भरति अतंक॥
इहिं अंतर बालक सब आए, नंदहि करत गुहारि।
सूर स्याम कौं आइ कौन धौं, लै गयौ काँधे डारि॥६०५॥
॥१२२३॥

राग कान्हरा

आजु कन्हैया बहुत बच्यौ री।
खेलत रह्यौ घोष कैं बाहर, कोउ आयौ सिसु-रूप रच्यौ री॥
मिलि गयौ आइ सखा की नाईं, लै चढाइ हरि कंध सच्यौ री।
गगन उड़ाइ गयौ लै स्यामहिं, आनि धरनि पर आप दच्यौ री॥
धर्म सहाइ होत है जहँ तहँ, स्रम करी पूरब पुन्य पच्यौ री।
सूर स्याम अब कैं बचि आए, ब्रज-घर-घर सुख-सिंधु मच्यौ री॥
॥६०६॥१२२४॥

राग कान्हरा

बड़े भाग्य हैं महर महरि के।
लै गयौ पीठि चढ़ाइ असुर इक, कहा कहौं उबरन या हरि के॥
नंदघरनि कुल-देव मनावति, तुम हीं रच्छक घरी-पहर के।
जहँ-तहँ तुमहिं सहाइ सदा हौ, जीवन हैं ये स्याम सहर के॥
हरष भए नँद करत बधाई, दान देन कहा कहौं महर के।
पंच-सब्द-धुनि बाजत, नाचत, गावत मंगलचार-चहर के॥
अंकम भरि-भरि लेत स्याम कौं, ब्रज-नर-नारि अतिहिं मन हरषे।
सूर स्याम संतनि सुखदायक, दुष्टनि कै उर सालक करषे॥
॥६०७॥१२२५॥

राग सारंग

खेलन दूरि जात कत प्यारे।
जब तैं जनम भयौ है तेरौ, तबही तैं यह भाँति ललारे॥
कोउ आवति जुवती मिस करिकै, कोउ लै जात बतास-कला रे।
अब लगि बचे कृपा देवनि की, बहुत गए मरि सत्रु तुम्हारे॥
हा हा करति पाइ तेरे लागति, अब जनि दूरि जाहु मेरे बारे।
सुनहु सूर जसुमति सुत बोधति, विधि के चरित सबै हैं न्यारे॥
॥६०८॥१२२६॥

राग कल्यान

कब की टेरति कुँवर कन्हाई।
ग्वाल सखा सब टेरत ठाढ़े, अरु अग्रज बल भाई॥
दाऊ जू तुम ह्याँ नहिं आवत, करौ मुखारी आइ।
माता दुहुँनि दतौनी कर दै, जलझारी भरि ल्याइ॥
उत्तम बिधि सौं मुख पखरायौ, ओदे बसन अँगौछि।
दोउ भैया कछु करौ कलेऊ, लई बलाइ कर औंछि॥
सद माखन दधि तुरत जमायौ, मधु मेवा मिष्टान्न।
सूर स्याम बलराम संग मिलि, रुचि करि लागे खान॥६०९॥
॥१२२७॥

राग नट

चले बन धेनु चारन कान्ह।
गोप-बालक कछु सयाने, नंद के सुत नान्ह॥
हरष सौं जसुमति पठाए, स्याम-मन आनंद।
गाइ गो-सुत गोप बालक, मध्य श्री नँद-नंद॥
सखा हरि कौं यह सिखावत, छाँड़ि जिनि कहुँ जाहु।
सघन बृंदाबन अगम अति, जाइ कहुँ न भुलाहु॥
सूर के प्रभु हँसत मन मैं, सुनत ह्वाँ यह बात।
मैं कहूँ नहिं संग छाँड़ौं, बनहिं बहुत डरात॥६१०॥
॥१२२८॥

राग धनाश्री

हेरी देत चले सब बालक।
आनँद सहित जात हरि खेलत, संग मिले पशु-पालक॥
कोउ गावत, कोउ बेनु बजावत, कोउ नाचत, कोउ धावत।
किलकत कान्ह देखि यह कौतुक, हरषि सखा उर लावत॥
भली करी तुम मोकौं ल्याए, मैया हरषि पठाए।
गोधन-बृंद लिए ब्रज-बालक, जमुना-तट पहुँचाए॥
चरतिं धेनु अपनैं-अपनैं रँग, अतिहिं सघन बन चारौ।
सूर संग मिलि गाइ चरावत, जसुमति कौ सुत बारौ॥६११॥
॥१२२९॥

राग देवगंधार

द्रुम चढ़ि काहे न टेरौ कान्हा, गैयाँ दूरि गईं।
धाई जातिं सबनि के आगैं, जे वृषभानु दईं॥
घेरे घिरतिं न तुम-बिनु माधौ, मिलतिं न बेगि दईं।
बिडरतिं फिरतिं सकल बन महियाँ, एकै एक भईं॥
छाँड़ि खेड़ सब दौरि जात हैं, बोलौ ज्यौं सिखईं।
सूरदास प्रभु-प्रेम समुझि कै, मुरली सुनि आइ गईं॥६१२॥
॥१२३०॥

राग मारू

कहि-कहि टेरत धौरी कारी।
देखौ धन्य भाग गाइनि के, प्रीति करत बनवारी॥
मोटी भईं चरत बृंदावन, नंद-कुँवर की पालीं।
काहे न दूध देहिं ब्रज-पोषन, हस्त-कमल की लालीं॥
बेनु स्रवन सुनि, गोवर्धन तैं, तृन दंतनि धरि चालीं।
आईं बेगि सूर के प्रभु पै, ते क्यौं भजैं जे पालीं॥६१३॥
॥१२३१॥

राग कल्यान

जब सब गाइ भईं इक ठाईं। ग्वालनि घर कौं घेरि चलाईं॥
मारग मैं तब उपजी आगि। दसहूँ दिसा जरन सब लागि॥
ग्वाल डरपि हरि पैं कह्यौ आइ। सूर राखि अब त्रिभुवन-राइ॥
॥६१४॥१२३२॥

राग कान्हरौ

अब कैं राखि लेहु गोपाल।
दसहूँ दिसा दुसह दवागिनि, उपजी है इहिं काल॥
पटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अंगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल॥
धूम धूँधि बाढ़ी धर अंबर, चमकत बिच-बिच ज्वाल।
हरिन बराह, मोर, चातक, पिक, जरत जीव बेहाल॥
जनि जिय डरहु, नैन मूँदहु सब, हँसि बोले नँदलाल।
सूर अगिनि सब बदन समानी, अभय किए ब्रज-बाल॥६१५॥
॥१२३३॥

राग गौरी

साँवरौ मनमोहन माई।
देखि सखी बन तैं ब्रज आवत, सुंदर नंद-कुमार कन्हाई॥
मोर-पंख सिर मुकुट बिराजत, मुख मुरली-धुनि सुभग सुहाई।
कुंडल लोल, कपोलनि की छबि, मधुरी बोलनि बरनि न जाई॥
लोचन ललित, ललाट भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई।
मनु मरजाद उलंघि अधिक बल उमँगि चली अति सुंदरताई॥
कुंचित केस सुदेस, कमल पर मनु मधुपनि-माला पहिराई।
मंद-मंद मुसुक्यानि, मनौ घन, दामिनि दुरि-दुरि देति दिखाई॥
सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई।
मनु सुक सुरँग बिलोकि बिंब-फल चाखन कारन चोंच चलाई॥
॥६१६॥१२३४॥

राग गौरी

देखौ री नँद-नंदन आवत।
बृंदाबन तैं धेनु-बृंद मैं बेनु अधर धरे गावत॥
तन घन स्याम कमल-दल-लोचन अंग अंग छबि पावत।
कारी गोरी धौरी धूमरि लै लै नाम बुलावत॥
बाल गोपाल संग सब सोभित मिलि कर-पत्र बजावत।
सूरदास मुख निरखतहीं सुख गोपी प्रेम बढ़ावत॥६१७॥
॥१२३५॥

राग गौरी

रजनी-मुख बन तैं बने आवत, भावति मंद गयंद की लटकनि।
बालक-बृंद बिनोद-हँसावत, करतल लकुट धेनु की हटकनि॥
बिगसित गोपी मनो कुमुद सर, रूप-सुधा लोचन-पुट घटकनि।
पूरन कला उदित मनु उड़पति, तिहिं छन बिरह-तिमिर की झटकनि॥
लज्जित मनमथ निरखि बिमल छबि, रसिक रंग भौंहनि की मटकनि।
मोहनलाल, छबीलौ गिरिधर, सूरदास बलि नागर नटकनि॥
॥६१८॥१२३६॥

राग बिलावल

जागियै गोपाल लाल, प्रगट भई अंसु-माल,
मिट्यौ अंधकाल, उठौ जननी-सुखदाई।

मुकुलित भए कमल-जाल, कुमुद-वृंद-बन बिहाल,
मेटहु जंजाल, त्रिविध ताप तन नसाई ॥
ठाढ़े सब सखा द्वार, कहत नंद के कुमार,
टेरत हैं बार बार, आइयै कन्हाई।
गैयनि भई बड़ी बार, भरि-भरि पय थननि भार,
बछरा-गन करैं पुकार, तुम बिनु जदुराई ॥
तातैं यह अटक परी, दुहन-काज सौंह करी,
आवहु उठि क्यौं न हरी, बोलत बल-भाई।
मुख तैं पट झटकि डारि, चंद-बदन दियौ उघारि,
जसुमति बलिहारि वारि, लोचन-सुखदाई ॥
धेनु दुहन चले धाइ, रोहिनी लई बुलाइ,
दोहनि मोहिं दै मँगाइ, तबहीं लै आई।
बछरा दियौ थन लगाइ, दुहत बैठि कै कन्हाइ,
हँसत नंदराइ, तहाँ मातु दोउ आई ॥
दोहनि कहुँ दूध-धार, सिखवत नँद बार-बार,
यह छवि नहिं वार-पार, नंद-घर बधाई।
हलधर तब कह्यौ सुनाइ, धेनु बन चलौ लिवाइ,
मेवा लीन्हौ मँगाइ, विविध-रस मिठाई ॥
जेंवत बलराम-स्याम, संतनि के सुखद धाम,
धेनु-काज नहिं बिराम, जसुदा जल ल्याई।
स्याम-राम मुख पखारि, ग्वाल-बाल लिए हँकारि,
जमुना-तट मन बिचारि, गाइनि हँकराई ॥
सृंग-बेनु-नाद करत, मुरली मधु अधर धरत,
जननी-मन हरत, ग्वाल गावत सुघराई।
बृंदाबन तुरत जाइ, धेनु चरतिं तृन अघाइ,
स्याम हरष पाइ, निरखि सूरज बलि जाई ॥
॥६११॥१२२७॥

मुरली-स्तुति राग सारंग

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुना-जल न बहत ॥
खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छबि छरत।
पसु मोहैं, सुरभी बिथकित, तृन दंतनि टेकि रहत ॥

सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत।
सूरजदास भाग हैं तिनके, जे या सुखहिं लहत ॥६२०॥
॥१२३८॥

राग बिहागरा

(कहौं कहा) अंगनि की सुधि बिसरि गईं।
स्याम-अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भईं॥
जो जैसैं सो तैसैं रहि गईं, सुख-दुख कह्यौ न जाइ।
लिखी चित्र सी सूर सु ह्वै रहिं, इकटक पल बिसराइ ॥६२१॥
॥१२३९॥

राग मलार

सुनत बन मुरली-धुनि की बाजन।
पपिहा गुंज, कोकिल बन कूँजत, अरु मोरनि कियौ गाजन॥
यहै सब्द सुनियत गोकुल मैं, मोहन-रूप बिराजन।
सूरदास प्रभु मिली राधिका, अंग अंग करि साजन ॥६२२॥
॥१२४०॥

राग मारू

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी। सुनि सिध-समाधि टरी।
सुनि थके देव बिमान। सुर-बधू चित्र-समान।
ग्रह-नखत तजत न रास। बाहन बँधे धुनि-पास।
चल थाके, अचल टरे। सुनि आनँद-उमँग भरे।
चर-अचर-गति बिपरीति। सुनि बेनु-कल्पित गीति।
झरना न झरत पषान। गंधर्व मोहे गान।
सुनि खग मृग मौन धरे। फल-तृन की सुधि बिसरे।
सुनि धेनु धुनि थकि रहतिं। तृन दंतहु नहिं गहतिं।
बछुरा न पीवैं छीर। पंछी न मन मैं धीर।
बेलीद्रुम चपल भए। सुनि पल्लव प्रगटि नए।
सुनि बिटप चंचल पात। अति निकट कौं अकुलात।
आकुलित पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात।
सुनि चंचल पौन थक्यौ। सरिता जल चलि न सक्यौ।

सुनि धुनि चलीं ब्रजनारि। सुत-देह-गेह बिसारि।
अति थकित भयौ समीर। उलट्यौ जु जमुना-नीर।
मन मोह्यौ मदन गुपाल। तन स्याम, नेन बिसाल।
नवनील - तन - घनस्याम। नव पीत पट अभिराम।
नव मुकुट नव बन-दाम। लावन्य कोटिक काम।
मनमोहन रूप धर्‍यौ। तब गरब अनंग हर्‍यौ।
श्री मदन मोहन लाल। सँग नागरी ब्रज-बाल।
नव कुंज जमुना-कूल। जन सूर देखत फूल।
॥८२३॥१२४१॥

राग पूर्वी

तरु तमाल तरे त्रिभंगी कान्ह कुँवर, ठाढ़े हैं साँवरे सुबरन।
मोर-मुकुट, पीतांबर, बनमाला, राजत उर, ब्रज-जन-मन-हरन॥
सखा-अंसु पर भुज दीन्हे, लीन्हे, मुरलि, अधर मधुर, बिस्व-भरन।
सूरदास कमल-नयन को न किए, त्रिलोकि गोवर्धन-धरन॥८२४॥
॥१२४२॥

राग बिलावल

स्याम-हृदय वर मोतिनि-माला। विथकित भईं निरखि ब्रज-बाला॥
स्रवन थके सुनि बचन रसाला। नैन थके दरसन नँद-लाला॥
कंबु-कंठ, भुज नैन बिसाला। कर केयुर कंचन नग-जाला॥
पल्लव हस्त मुद्रिका भ्राजै। कौस्तुभ मनि हृदयस्थल छाजै॥
रोमावली बरनि नहिं जाई। नाभिस्थल की सुंदरताई॥
कटि किंकिनी चंद्रमनि-संजुत। पीतांबर, कटि-तट छवि अद्भुत॥
जुगल जंघ की पटतर को है। तरुनी-मन धीरज कौं जोहै॥
जानि जानु की छवि न सम्हारै। नारि-निकर मन बुद्धि बिचारै॥
रतन जटित कंचन कल नूपुर। मंद-मंद गति चलत मधुर सुर॥
जुगल कमल-पद नख मनि-आभा। संतनि-मन संतत यह लाभा॥
जो जिहिं अंग सु तहाँ भुलानी। सूर स्याम-गति काहु न जानी॥
॥८२५॥१२४३॥

राग गौरी

नंद-नँदन मुख देखौ माई।
अंग-अंग-छबि मनहुँ उये रवि, ससि अरु समर लजाई॥

खंजन मीन, भृंग, वारिज, मृग-पर दृग अति रुचि पाई।
स्रुति-मंडल कुंडल मकराकृत, बिलसत मदन सदाई॥
नासा कीर, कपोत ग्रीव, छबि, दाड़िम दसन चुराई।
द्वै सारँग-बाहन पर मुरली, आई देति दुहाई॥
मोहे थिर, चर, बिटप, बिहंगम, ब्योम बिमान थकाई।
कुसुमांजलि बरषत सुर ऊपर, सूरदास बलि जाई॥६२६॥
॥१२४४॥

राग केदार

देखि री देखि आनँद-कंद।
चित्त-चातक प्रेम-घन, लोचन चकोरनि चंद॥
चलित कुंडल गंड-मंडल झलक ललित कपोल।
सुधा सर जनु मकर क्रीड़त, इंदु डह डह डोल॥
सुभग कर आनन समीपै, मुरलिका इहिं भाइ।
मनु उभै अंभोज-भाजन, लेत सुधा भराइ॥
स्याम-देह दुकूल-दुति मिलि, लसति तुलसी-माल।
तड़ित घन संजोग मानौ, स्रेनिका सुक-जाल॥
अलक अबिरल, चारु हास-बिलास, भृकुटी भंग।
सूर हरि की निरखि सोभा, भई मनसा पंग॥६२७॥
॥१२४५॥

राग मलार

देखौ माई सुंदरता कौ सागर।
बुधि-बिवेक-बल पार न पावत, मगन होत मन-नागर॥
तनु अति स्याम अगाध अंबु-निधि, कटि पट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजति, भँवर परति सब अंग॥
नैन-मीन, मकराकृत कुंडल, भुज सरि सुभग भुजंग।
मुक्ता-माल मिलीं मानौ, द्वै सुरसरि एकै संग॥
कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख, स्रम-कन सुख देत।
जनु जल-निधि मथि प्रगट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत॥
देखि सरूप सकल गोपी जन, रहीं बिचारि-बिचारि।
तदपि सूर तरि सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचि हारि॥६२८॥
॥१२४६॥

राग भैरवी

जैसी-जैसी बातैं करैं कहत न आवै री।
स्यामरौ सुँदर कान्ह अति मन भावै री॥
मदन मोहन वेनु मृदु, मृदुल बजावै री।
तान की तरंग रस, रसिक रिझावै री॥
जंगम थावर करै, थावर चलावै री।
लहरि भुअग, त्यागि सनमुख आवै री॥
व्योम-जान फूल, अति गति बरसावै री।
कामिनि धीरज धरै, को सो कहावै री॥
नंदलाल ललना ललचि, ललचावै री।
सूरदास प्रेम हरि, हियैं न समावै री॥६२९॥
॥१२४७॥

राग कल्यान

बने बिसाल अति लोचन लोल।
चितै-चितै हरि चारु विलोकनि, मानौ माँगत हैं मन ओल॥
अधर अनूप, नासिका सुंदर, कुंडल ललित सुदेस कपोल।
मुख मुसुक्यात महा छवि लागति, स्रवन सुनत सुठि मीठे बोल॥
चितवति रहति चकोर चंद ज्यौं नैंकु न पलक लगावति डोल।
सूरदास प्रभु कैं बस ऐसैं, दासी सकल भईं बिनु मोल॥
॥६३०॥१२४८॥

राग धनाश्री

ब्रज-जुवती हरि-चरन मनावैं।
जे पद-कमल महा-मुनि-दुर्लभ, सपनेहूँ नहिं पावैं॥
तनु त्रिभंग, जुग जानु एक पग, ठाढ़े इक दरसाए।
अंकुल-कुलिस-वज्र-ध्वज परगट, तरुनी-मन भरमाए॥
वह छबि देखि रहीं इकटक हीं, मन-मन करत विचार।
सूरदास मनु अरुन कमल पर, सुषमा करति विहार॥६३१॥
॥१२४९॥

राग बिलावल

देखि सखी हरि-अंग अनूप।
जानु जुगल जुग जंघ बिराजत, को बरनै यह रूप॥

लकुट लपेटि लटकि भए ठाढ़े, एक चरन धर धारे।
मनहुँ नील-मनि-खंभ काम रचि, एक लपेटि सुधारे॥
कबहुँ लकुट तैं जानु फेरि लै, अपने सहज चलावत।
सूरदास मानहुँ कर भा, कर बारंबार डुलावत॥६३२॥१२५०॥

राग नटनारायन

कटि तट पीत बसन सुदेस।
मनौ नव घन दामिनी, तजि रही सहज, सुबेस॥
कनक मनि मेखला राजत, सुभग स्यामल अंग।
मनौ हंस-अकास-पंगति, नारि-बालक-संग॥
सुभग कटि काछनी राजति, जलज-केसरि-खंड।
सूर प्रभु-अँग निरखि, माधुरि, मदन-तन परयौ दंड॥६३३॥
॥१२५१॥

राग नट

तरुनी निरखि हरि-प्रतिअंग।
कोउ निरखि नख-इंदु भूली कोउ चरन-जुग-रंग॥
कोउ निरखि नूपुर रही थकि कोउ निरखि जुग जानु।
कोउ निरखि जुग जंघ सोभा करति मन अनुमान॥
कोउ निरखि कटि पीत कछनी मेखला रुचि कारि।
कोउ निरखि हृद-नाभि की छबि डार्यौ तन मन वारि॥
रुचिर रोमावली हरि कैं चारु उदर सुदेस।
मनौ अलि-स्रेनी बिराजति बनी एकहिं भेस॥
रहीं इक टक नारि ठाढ़ी करतिं बुद्धि बिचार।
सूर आगम कियौ नभ तैं जमुन-सूच्छम-धार॥६३४॥
॥१२५२॥

राग नट

राजति रोम-राजी रेष।
नील घन मनु धूम-धारा, रही सूच्छम सेष॥
निरखि सुंदर हृदय पर, भृगु-पाद परम सुलेख।
मनहुँ सोभित अभ्र-अंतर, संभु-भूषन बेष॥

मुक्त-माल नछत्र-गन सम, अर्द्ध चंद्र विसेप।
सजल उज्वल जलद मलयज, प्रवल वलिनि अलेप॥
केकि कच सुर-चाप की छवि दसन तड़ित सुपेख।
सूर प्रभु की निरखि सोभा, तजे नैन निमेष॥६३५॥१२५३॥

राग गौरी

हरि-प्रति-अंग नागरि निरखि।
दृष्टि रोमावली पर रही, बनत नाहीं परखि॥
कोउ कहति यह काम-सरनी, कोउ कहति नहिं जोग।
कोउ कहति अलि-वाल-पंगति, जुरी एक सँजोग॥
कोउ कहति अहि काम पठयौ, डसै जिनि यह काहु।
स्याम-रोमावली की छवि, सूर नाहिं निवाहु॥६३६॥
॥१२५४॥

राग आसावरी

चतुर नारि सव कहतिं विचारि।
रोमावली अनूप विराजति, जमुना की अनुहारि॥
उर-कलिंद तैं धँसि जल-धारा, उदर-धरनि परवाह।
जाति चली धारा ह्वै अध कौं, नाभी-ह्रद अवगाह॥
भुजा दंड तट, सुभग घाट घट, वनमाला तरु कूल।
मोतिनि-माल दुहूँधा मानौ, फेन लहरि रस-फूल॥
सूर स्याम-रोमावलि की छवि, देखत करतिं विचार।
वुद्धि रचतिं तरि सकतिं न सोभा, प्रेम विवस व्रजनार॥६३७॥
॥१२५५॥

राग कल्यान

रोमावली-रेख अति राजति।
सूच्छम वेष धूम की धारा, नव घन ऊपर भ्राजति॥
भृगु-पद-रेख स्याम-उर सजनी, कहा कहौं ज्यौं छाजति।
मनहुँ मेघ-भीतर दुतिया-ससि, कोटि-काम-दुति लाजति॥
मुक्ता-माल नंद-नंदन-उर, अर्द्ध सुधा-घट भ्राजति।
तनु श्रीखंड मेघ उज्ज्वल अति, देखि महावलि साजति॥

बरही-मुकुट इंद्र-धनु मानहुँ, तड़ित दसन-छबि लाजति ।
इकटक रहीं बिलोकि सूर प्रभु, निमिषनि की कह हाजति ॥
॥६३८॥१२५६॥

राग सारंग

मुख-छबि कहौं कहाँ लगि माई ।
भानु उदै ज्यौं कमल प्रकासित, रबि ससि दोऊ जोति छपाई ॥
अधर बिंब, नासा ऊपर, मनु सुक चाखन कौं चौंच चलाई ।
बिकसत बदन दसन अति चमकत, दामिनि-दुति दुरि देति दिखाई ॥
सोभित अति कुंडल की डोलनि, मकराकृत श्री सरस बनाई ।
निसि-दिन रटति सूर के स्वामिहिं, ब्रज-बनिता देहैं बिसराई ॥
॥६३९॥१२५७॥

राग केदार

सखी री सुंदरता कौ रंग ।
छिन-छिन माँहिं परति छबि औरै, कमल-नैन कैं अंग ॥
परमिति करि राख्यौ चाहति हैं, लागी डोलतिं संग ।
चलत निमेष बिसेष जानियत, भूलि भई मति-भंग ॥
स्याम सुभग कैं ऊपर वारौं, आली कोटि अनंग ।
सूरदास कछु कहत न आवै, भई गिरा-गति पंग ॥६४०॥
॥१२५८॥

राग बिहागरा

स्याम भुजनि की सुंदरताई ।
चंदन खौरि अनूपम राजति, सो छबि कही न जाई ॥
बड़े बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई ।
मनौ भुजंग गगन तैं उतरत, अधमुख रह्यौ झुलाई ॥
रत्न-जटित पहुँची कर राजति, अँगुरी सुंदर भारी ।
सूर मनौ फनि-सिर मनि सोभित, फन-फन की छबि न्यारी ॥
॥६४१॥१२५९॥

राग धनाश्री

गोपी तजि लाज, संग स्याम-रंग भूलीं ।
पूरन मुख-चंद देखि, नैन-कोइ फूलीं ॥

कैधौं नव जलद स्वाति, चातक मन लाए।
किधौं बारि-बूँद सीप हृदय हरष पाए॥
रबि-छबि कैधौं निहारि, पंकज बिकसाने।
किधौं चक्रवाकि निरखि, पतिहीं रति माने॥
कैधौं मृग-जूथ जुरे, मुरली-धुनि रीझे।
सूर स्याम-मुख-मंडल-छबि, के रस भीजे॥६४२॥
॥१२६०॥

राग सोरठ

बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ।
जब तैं आजु नंदनंदन-छबि, बार-बार करि पेख्यौ॥
नख, अँगुरी, पग, जानु, जंघ, कटि रचि कीन्हौ निरमान।
हृदय, बाहु, कर, अंस, अंग अँग, मुख सुंदर अति बान॥
अधर, दसन, रसना, रस बानी, स्रवन, नैन अरु भाल।
सूर रोम प्रति लोचन देत्यौ, देखत बनत गुपाल॥६४३॥
॥१२६१॥

राग गूजरी

स्याम-अँग जुवती निरखि भुलानीं।
कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहिं माँझ बिकानी॥
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौं पानी।
देह-गेह की सुधि नहिं काहूँ, हरषति कोउ पछितानी॥
कोउ निरखति रही ललित नासिका, यह काहू नहिं जानौ।
कोउ निरखति अधरनि की सोभा, फुरति नहीं मुख बानी।
कोउ चकित भई दसन-चमक पर, चकचौंधी अकुलानी।
कोउ निरखति द्युति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बिततानी॥
॥६४४॥१२६२॥

राग नट

स्याम कर मुरली अतिहिं बिराजति।
परसति अधर सुधारस बरसति, मधुर मधुर सुर बाजति॥
लटकत मुकुट, भौंह-छबि मटकति, नैन-सैन अति राजति।
ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर कोटि मदन-छबि लाजति॥

लोल कपोल झलक कुंडल की, यह उपमा कछु लागत ।
मानहुँ मकर सुधा-रस क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागत ॥
वृंदावन विहरत नँद-नंदन, ग्वाल सखा सँग सोहत ।
सूरदास प्रभु की छवि निरखत, सुर-नर-मुनि सब मोहत ।
॥६४५॥१२६३॥

राग धनाश्री

तब लगि सबै सयान रहै ।
जब लगि नवल किसोर न मुरली, बदन-समीर वहै ॥
तबहीं लौं अभिमान, चातुरी, पतिव्रत, कुलहि चहै ।
जब लगि स्रवन-रंध्र-मग, मिलि कै, नाहिं न मनहिं महै ॥
तब लगि तरुनि तरल-चंचलता, बुधि-बल सकुंचि रहै ।
सूरदास जब लगि वह धुनि सुनि नाहिं न धीर ढहै ॥६४६॥
॥१२६४॥

राग गौरी

ब्रज-ललना देखत गिरिधर कौं ।
एक एक अँग अँग पर रीझीं, अरुझीं मुरलीधर कौं ॥
मनौ चित्र की सी लिखि काढ़ीं, सुधि नाहीं मन घर कौं ।
लोक-लाज, कुल-कानि भुलानी, लुबधीं स्याम सुँदर कौं ॥
कोउ रिसाइ कोउ कहै जाइ कछु, डरैं न काहूँ डर कौं ।
सूरदास प्रभु सौं मन मान्यौ, जन्म-जन्म परतर कौं ॥६४७॥
॥१२६५॥

राग सारंग

बंसी री बन कान्ह बजावत ।
आनि सुनौ स्रवननि मधुरे सुर, राज मध्य लै नाम बुलावत ॥
सुर स्रुति तान बँधान अमित अति, सप्त अतीत अनागत-आवत ।
जुरि जुग भुज सिर, सेष सैल, मथि बदन-पयोधि, अमृत उपजावत ॥
मनौ मोहिनी बेष धारि कै, मन मोहत मधु पान करावत ।
सुर नर मुनि बस किए राग-रस, अधर-सुधा-रस मदन जगावत ॥
महा मनोहर नाद, सूर, थिर चर मोहे, कोउ मरम न पावत ।
मानहुँ मूक मिठाई के गुन, कहि न सकत मुख, सीस डुलावत ॥
॥६४८॥१२६६॥

राग बिलावल

बाँसुरी बजाइ आछे, रंग सौं मुरारी।
सुनि कै धुनि छूटि गई, संकर की तारी॥
बेद पढ़न भूलि गए, ब्रह्मा ब्रह्मचारी।
रसना गुन कहि न सकै, ऐसी सुधि बिसारी॥
इंद्र-सभा थकित भई, लगी जब करारी।
रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृत कारी॥
जमुना जू थकित भई नहीं सुधि सँभारी।
सूरदास मुरली है तीन-लोक-प्यारी ॥६४९॥१२६७॥

राग केदारौ

बंसी बनराज आजु आई रन जीति।
मेटति है अपनै बल, सबहिनि की रीति।
बिडरे गज-जूथ सील, सैन-लाज भाजी।
घूँघट पट कोट टूटे, छूटे दृग ताजी॥
काहूँ पति गेह तजे, काहू तन-प्रान।
काहूँ सुख सरन लयौ, सुनत सुजस गान॥
कोऊ पग परसि गए, अपने-अपने देस।
कोऊ रस रंक भए, हुते जे नरेस॥
देत मदन मारुत मिलि, दसौं दिसि दुहाई।
सूर श्रीगुपाल लाल, बंसी-बस माई ॥६५०॥१२६८॥

राग सारग

जब तैं बंसी स्रवन परी।
तबहीं तैं मन और भयौ सखि, मो तन-सुधि बिसरी॥
हौं अपनैं अभिमान, रूप, जोबन कैं गर्व भरी।
नैंकुन कह्यौ कियौ सुनि सजनी, बादिहिं आइ ढरी॥
बिनु देखैं अब स्याम मनोहर, जुग भरि जात घरी।
सूरदास सुनि आरज-पथ तैं, कछू न चाड़ सरी ॥६५१॥
॥१२६९॥

राग सारंग

मुरली-धुनि स्रवन सुनत, भवन रहि न परै।
ऐसी को चतुर नारि, धीरज मन धरै॥

सुर नर मुनि सुनत सुधि न, सिव-समाधि टरै।
अपनी गति तजत पवन, सरिता नहिं ढरै॥
मोहन-मुख-मुरली, मन, मोहिनि बस करै।
सूरदास सुनत स्रवन सुधा-सिंधु भरै॥६५२॥१२७०॥

राग कान्हरा

(माई री) मुरली अति गर्व काहुँ, वदति नाहिं आजु।
हरि कैं मुख-कमल-देस, पायौ सुख-राजु॥
बैठति कर पीठि ढीठि, अधर-छत्र-छाँहि।
राजति अति चँवर चिकुर, सुरद, सभा माँहि॥
जमुना के जलहिं नाहिं, जलधि जान देति।
सुरपुर तैं सुर-विमान, यह बुलाइ लेति॥
स्थावर चर, जंगम जड़, करति जीति-जीति।
विधि की विधि मेटि, करति अपनी नई रीति॥
वंसी बस सकल सूर, सुर-नर-मुनि-नाग।
श्रीपति हूँ की बिसारी, याही अनुराग॥६५३॥
॥१२७१॥

राग गौरी

मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।
अँचवति अधर-सुधा बस कीन्हे, अब हम कहा करैं री माई॥
सरवस लै हरि धरयौ सबनि कौ, औसर देति न होति अघाई।
गाजति, बाजति, चढ़ी दुहुँ कर, अपनैं सब्द न सुनत पराई॥
जिहि तन अनल दह्यौ अपनौ कुल, तासौं कैसैं होत भलाई।
अब सुनि सूर कौन बिधि कीजै, बन की ब्याधि माँझ घर आई॥
॥६५४॥१२७२॥

राग मलार

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नँदलालहिं, नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति॥

अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौंढ़ि अधर सज्जा पर, कर-पल्लव पलुटावति॥
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति॥
॥६५५॥१२७३॥

राग मलार

स्याम तुम्हारी मदन-मुरलिका, नैंसुक सी जग मोह्यौ।
जे ते जीव जंतु जल थल के, नाद स्वाद सब पोह्यौ।
जे तप व्रत किए तरनि-सुता-तट, पन गहि पीठि न दीन्ही।
ता तीरथ-तप के फल लैकै, स्याम सोहागिनि कीन्ही॥
धरनि धरी, गोवर्धन राख्यौ, कोमल पानि-अधार।
अब हरि लटकि रहत टेढ़े ह्वै, तनक मुरलि के भार॥
धन्य सुघरी सील कुल छाँड़े, राँची वा अनुराग।
अब हरि सींचि सुधा-रस, मेटत तन के पहिले दाग॥
निदरि हमैं अधरनि रस पीवति, पढ़ी दूतिका भाइ।
सूरदास कुंजनि तैं प्रगटी, चोरि सौति भई आइ॥६५६॥
॥१२७४॥

राग सारंग

सखी री, मुरली लीजै चोरि।
जिनि गुपाल कीन्हे अपनैं बस, प्रीति सबनि की तोरि॥
छिन इक घर-भीतर, निसि-बासर, धरत न कबहूँ छोरि।
कबहूँ कर, कबहूँ अधरनि, कटि कबहूँ खोंसत जोरि।
ना जानौं कछु मेलि मोहिनी, राखे अँग-अँग भोरि।
सूरदास प्रभु कौ मन सजनी, बँध्यौ राग की डोरि॥६५७॥
॥१२७५॥

राग केदारौ

मुरली अधर सजी बलबीर।
नाद सुनि बनिता विमोहीं, बिसारे उर-चीर॥
धेनु मृग तृन तजि रहे, बछरा न पीवत छीर।
नैन मूँदे खग रहे ज्यौं, करत तप मुनि-धीर॥

डुलत नहिं द्रुमपत्र बेली, थकित मंदसमीर।
सूर मुरली-सब्द सुनि, थकि रहत जमुना-नीर ॥६५८॥
॥१२७६॥

राग मलार

जब हरि मुरली अधर धरी।
गृह-ब्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी ॥
पद-रिपु पट अँटक्यौ न सम्हारति, उलट न पलट खरी।
सिव-सुत-बाहन आइ मिले हैं, मन-चित बुद्धि हरी ॥
दुरि गए कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि बिसरी।
उडुपति बिद्रुम, बिंब, खिसाने, दामिनि अधिक डरी ॥
मिलिहैं स्यामहिं हंस-सुता-तट, आनँद-उमँग भरी।
सूर स्याम कौं मिलीं परस्पर, प्रेम-प्रवाह ढरी ॥६५९॥
॥१२७७॥

गोपिका-वचन *राग सारंग*

हम न भईं बृंदाबन-रेनु।
जहँ चरननि डोलत नँद-नंदन, नित-प्रति चारत धेनु ॥
हम तैं धन्य परम ये बन, द्रुम, बालक, बच्छ ऽरु बेनु।
सूर सकल खेलत, हँसि बोलत, सँग मथि पीवत फेनु ॥
॥६६०॥१२७८॥

राग केदार

मुरली कौन सुकृत-फल पाए।
अधर-सुधा पीवति मोहन कौ, सबै कलंक गँवाए ॥
मन कठोर तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिसाल बनाए।
अंतर सून्य सदा, देखियति है, निज कुल बंस सुभाए ॥
लघुता अंग, नहीं कछु करनी, निरखत नैन लगाए।
सूरदास-प्रभु-पानि परसि नित, काम-बेलि अधिकाए ॥६६१॥
॥१२७९॥

राग सारंग

ऐसौ गोपाल निरखि, तन-मन-धन वारौं।
नव किसोर, मधुर मुरति, सोभा उर धारौं ॥

अरुन-तरुन कमल-नैन, मुरली कर राजै।
ब्रज-जन-मन-हरन बेनु, मधुर-मधुर बाजै॥
ललित वर त्रिभंग सु तनु, वनमाला सोहै।
अति सुदेस कुसुम-पाग, उपमा कौं को है॥
चरन रुनित नूपुर, कटि किंकिनि कल कूजै।
मकराकृत-कुंडल-छवि, सूर कौन पूजै॥६६२॥
॥१२८०॥

राग सारंग

सुंदर मुख की बलि बलि जाउँ।
लावनि-निधि गुन-निधि सोभा-निधि निरखि-निरखि जीवत सब गाउँ।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावहिं ठाउँ।
तामैं मृदु मुसुक्यानि मनोहर न्याइ कहत कवि मोहन नाउँ।
नैन-सैन दै दै जब हेरत ता छवि पर बिनु मोल बिकाउँ।
सूरदास प्रभु मदनमोहन-छवि सोभा की उपमा नहिं पाउँ॥
॥६६३॥१२८१॥

राग सूही

मैं बलि जाउँ स्याम-मुख-छवि पर।
बलि-बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे, बलि भृकुटी लिलाट पर॥
बलि-बलि जाउँ चारु अवलोकनि, बलि बलि कुंडल-रवि की।
बलि-बलि जाउँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छवि की॥
बलि-बलि जाउँ अरुन अधरनि की, बिद्रुम-बिंब लजावन।
मैं बलि जाउँ दसन चमकनि की, वारौं तड़ितनि सावन॥
मैं बलि जाउँ ललित ठोड़ी पर, बलि मोतिनि की माल।
सूर निरखि तन-मन बलिहारौं, बलि बलि जसुमति-लाल॥
॥६६४॥१२८२॥

राग कान्हरौ

अलकनि की छवि अलि-कुल गावत।
खंजन मीन मृगज लज्जित भए, नैननि गतिहिं न पावत॥

मुख मुसुक्यानि आनि उर अंतर, अंबुज बुधि उपजावत।
सकुचत अरु बिगसत वा छवि पर अनुदिन जनम गँवावत॥
पूजत नाहिं सुभग स्यामल तन, जद्यपि जलधर धावत।
बसन समान होत नहिं हाटक, अगिनि झाँप दै आवत॥
मुक्ता-दाम बिलोकि, बिलखि करि, अवलि बलाक बनावत।
सूरदास प्रभु ललित त्रिभंगी, मनमथ-मनहिं लजावत ॥६६५॥
॥१२८३॥

राग धनाश्री

दै री मैया दोहनी, दुहिहौं मैं गैया।
माखन खाए बल भयौ, करौं नंद-दुहैया॥
कजरी, धौरी सेँदुरी, धूमरि मेरी गैया।
दुहि ल्याऊँ मैं तुरत हीँ, तू करि दै घैया॥
ग्वालनि की सरि दुहत हौं, बूझहि बल भैया।
सूर निरखि जननी हँसी, तब लेति बलैया ॥६६६॥
॥१२८४॥

राग सारंग

बाबा मोकौं दुहन सिखायौ।
तेरैं मन परतीति न आवै, दुहत अँगुरियनि भाव बतायौ॥
अँगुरी-भाव देखि जननी तब हँसिकै स्यामहिं कंठ लगायौ।
आठ बरष के कुँवर कन्हैया, इतनी बुद्धि कहाँ तैं पायौ॥
माता लै दोहनि कर दीन्ही, तब हरि हँसत दुहन कौं धायौ।
सूरस्याम कौं दुहत देखि तब, जननी मन अति हर्ष बढ़ायौ॥
॥६६७॥१२८५॥

राग धनाश्री

जननि मथति दधि, दुहत कन्हाई।
सखा परस्पर कहत स्याम सौं, हमहूँ सौं तुम करत चँड़ाई॥
दुहन देहु कछु दिन अरु मोकौं, तब करिहौ मो समसरि आई।
जब लौं एक दुहौगे तब लौं, चारि दुहौंगो नंद दुहाई॥
झूठहिं करत दुहाई प्रातहिं, देखहिंगे तुम्हरी अधिकाई॥
सूर स्याम कह्यौ काल्हि दुहैंगे, हमहूँ तुम मिलि होड़ लगाई॥
॥६६८॥१२८६॥

श्रीराधा-कृष्ण मिलाप *राग बिलावल*

दै मैया भौंरा चक डोरी।
जाइ लेहु आरे पर राख्यौ, काल्हि मोल लै राखे कोरी॥
लै आए हँसि स्याम तुरतहीं, देखि रहे रँग-रँग बहु डोरी।
मैया बिना और को राखे, बार-बार हरि करत निहोरी॥
बोलि लिए सब सखा संग के, खेलत कान्ह नंद की पोरी।
तैसेइ हरि, तैसेइ सब बालक, कर भौंरा-चकरिनि की जोरी॥
देखति जननि जसोदा यह सुख, बार-बार बिहँसति मुख मोरी।
सूरदास प्रभु हँसि-हँसि खेलत, ब्रज-बनिता डारति तृन तोरी॥
॥६६९॥१२८७॥

राग कान्हरौ

मेरैं हिय लागै मनमोहन, लै गए री चित चोरि।
अबहीं इहिं मारग ह्वै निकसे, छबि निरखत तृन तोरि॥
मोर-मुकुट, स्रवननि मनि-कुंडल, उर बनमाल, पिछोरि।
दसन चमक, अधरनि अरुनाई, देखत परी ठगोरि॥
ब्रज-लरिकन सँग खेलत डोलत, हाथ लिए चकडोरि।
सूरस्याम चितवत गए मो तन, तन मन लियौ अँजोरि॥
॥६७०॥१२८८॥

राग टोड़ी

तब तैं मेरौ ज्यौ न रहि सकत।
जित देखौं तितहीं मृदु मूरत, नैननि मैं नित लागि रहत॥
ग्वाल-बाल सब संग लगाए, खेलत मैं करि भाव चलत।
अरुझि पर्‍यौ मेरौ मन तब तैं, कर झटकत चक-डोरि हलत॥
अब मैं कहा करौं री सजनी सुरति होति तब मदन दहत।
सूर स्याम मेरौ मन हरि लियौ, सकुच छाँड़ि मैं तोहिं कहत॥
॥६७१॥१२८९॥

राग टोड़ी

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी॥
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि बर, दसन-दमक दामिनि-छबि छोरी।
गए स्याम रबि-तनया कैं तट, अंग लसति चंदन की खोरी॥

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी॥
संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन-थोरी, अति छबि तन-गोरी।
सूर स्याम देखत हीं रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी॥६७२॥
॥१२९०॥

राग टोड़ी

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्रवननि नँद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी॥
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥
॥६७३॥१२९१॥

राग धनाश्री

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ।
नैन-नैन कीन्ही सब बातैं, गुप्त प्रीति प्रगटान्यौ॥
खेलन कबहुँ हमारैं आवहु, नंद-सदन, ब्रज गाउँ।
द्वारैं आइ टेरि मोहिं लीजौ, कान्ह हमारौ नाउँ॥
जौ कहियै घर दूरि तुम्हारौ, बोलत सुनियै टेरि।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की, प्रात-साँझ इक फेरि॥
सूधी निपट देखियत तुमकौं, तातैं करियत साथ।
सूर स्याम नागर, उत नागरि राधा, दोउ मिलि गाथ॥
॥६७४॥१२९२॥

राग टोड़ी

ठाढ़ी कुँअरि राधिका लोचन मीचत तहँ हरि आए।
अति बिसाल चंचल अनियारे, हरि-हाथनि न समाए॥
सुभग आँगुरिनि मध्य बिराजत अति आतुर दरसाए।
मानो मनिधर मनि ज्यौं छाँड्यौ फन तर रहत दुराए॥
गोसुत भयौ जु गाधि गह्यौ बर रच्यौ जु रबि सँग साए।
अपने काम न मिलत हरी जो बिरहा लेत छुड़ाए॥

अंबुज चारि कुमुद द्वै मिलि कै औ ससि-बैर गँवाए।
सूरदास अति हरि परसतहीं सकल बिथा बिसराए ॥६७५॥
॥१२६३॥

राग नट

सैननि नागरी समुझाइ।
खरिक आवहु दोहनी लै, यहै मिस छल लाइ ॥
गाइ-गनती करन जैहैं, मोहिं लै नँदराइ।
बोलि वचन प्रमान कीन्हौ, दुहुनि आतुरताइ ॥
कनक बरन सुढार सुंदरि, सकुचि वदन दुराइ।
स्याम प्यारी-नैन राँचे, अति बिसाल चलाइ ॥
गुप्त प्रीति न प्रगट कीन्ही, हृदय दुहुनि छिपाइ।
सूर प्रभु के वचन सुनि-सुनि, रही कुँवरि लजाइ ॥६७६॥
॥१२६४॥

राग सारंग

गई बृषभानु-सुता अपनैं घर।
संग सखी सौं कहति चली यह, को जैहै इन कै दर ॥
बड़ी बेर भई जमुना आए, खीझति ह्वैहै मैया।
बचन कहति मुख,हृदय-प्रेम-दुख,मन हरि लियौ कन्हैया ॥
माता कहति कहाँ ही प्यारी, कहाँ अबेर लगाई।
सूरदास तब कहति राधिका, खरिक देखि हौं आई ॥
॥६७७॥१२६५॥

राग रामकली

नागरि मन गई अरुझाइ।
अति बिरह तनु भई ब्याकुल, घर न नैंकु सुहाइ ॥
स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई।
चित्त चंचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई ॥
कबहुँ बिहँसति, कबहुँ बिलपति, सकुचि रहति लजाइ।
मातु-पितु कौ त्रास मानति, मन बिना भई बाइ ॥
जननि सौं दोहनी माँगति, बेगि दै री माइ।
सूर प्रभु कौं खरिक मिलिहौं, गए मोहिं बुलाइ ॥६७८॥
॥१२६६॥

राग धनाश्री

मोहिँ दोहनी दै री मैया।
खरिक माहिँ अबहीं ह्वै आई, अहिर दुहत सब गैया ॥
ग्वाल दुहत तब गाइ हमारी, जब अपनी दुहि लेत।
घरिक मोहिँ लगिहै खरिका मैं, तू जनि आवै हेत ॥
सोचति चली कुँवरि घर हीं तैं खरिक गई समुहाइ।
कब देखौं वह मोहन-मूरति, जिन मन लियौ चुराई ॥
देखे जाइ तहाँ हरि नाहीं, चकृत भई सुकुमारि।
कबहूँ इत, कबहूँ उत डोलति, लागी प्रीति-खँभारि ॥
नंद लिए आवत हरि देखे, तब पायौ बिस्राम।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, कीन्हौ पूरन काम ॥६७६॥
॥१२६७॥

राग धनाश्री

नंद गए खरिकहि हरि लीन्हे।
देखी तहाँ राधिका ठाढ़ी, बोलि लिए तिहि चीन्हे ॥
महर कह्यौ खेलौ तुम दोऊ, दूरि कहूँ जिनि जैहौ।
गनती करत ग्वाल गैयनि की, मोहिँ नियरैं तुम रैहौ ॥
सुनि बेटी बृषभानु महर की, कान्हहिँ लेइ खिलाइ।
सूर स्याम कौं देखे रहिहौ, मारै जनि कोउ गाइ ॥६८०॥
॥१२६८॥

राग नट

नंद बबा की बात सुनौ हरि।
मोहिँ छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याउँगी तुमकौं धरि ॥
भली भई तुम्हैं सौंपि गए मोहिँ, जान न दैहौं तुमकौं।
बाहँ तुम्हारी नैंकु न छाँड़ौं, महर खीझिहैं हमकौं ॥
मेरी बाहँ छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैं।
सूर स्याम नागर, नागरि सौं, करत प्रेम की घातैं ॥६८१॥
॥१२६६॥

राग नट

नीबी ललित गही जदुराइ।
जबहिँ सरोज धर्‌यौ श्रीफल पर, तब जसुमति गई आइ ॥

ततछन रुदन करत मनमोहन, मन मैं बुधि उपजाइ।
देखौ ढीठि देति नहिं माता, राख्यौ गैंद चुराइ॥
तब बृषभानु-सुता हँसि बोली, हम पै नाहिं कन्हाइ।
काहे कौं झकझोरत नोखे, चलहु न देउँ बताइ॥
देखि विनोद बाल सुत कौ तब, महरि चली मुसुकाइ।
सूरदास के प्रभु की लीला, को जानै इहिं भाइ॥६८२॥
॥१३००॥

राग धनाश्री

बातनि लई राधा लाइ।
चलहु जैवै विपिन बृंदा, कहत स्याम बुझाइ॥
जब, जहाँ तन बेष धारौ, तहाँ तुम हित जाइ।
नैंकुहूँ नहिं करौं अंतर, निगम भेद न पाइ॥
तुव परस तन-ताप मेटौं, काम-द्वंद गँवाइ।
चतुर नागरि हँसि रही सुनि, चंद-वदन नवाइ॥
मदनमोहन भाव जान्यौ, गगन मेघ छवाइ।
स्यामा-स्याम-गुप्त-लीला, सूर क्यौं कहै गाइ॥६८३॥
॥१३०१॥

सुख-विलास *राग गौंड मलार*

गगन घहराइ जुरी घटा कारी।
पवन-झकझोर, चपला-चमक चहुँ ओर, सुवन-तन चितै नँद डरत भारी॥
कह्यौ बृषभानु की कुँवरि सौं बोलि कै, राधिका कान्ह घर लिए जा री।
दोउ घर जाहु सँग, गगन भयौ स्याम रँग, कुँवर-कर गह्यौ बृष-भानु-बारी॥
गए बन घन ओर, नवल नंद-किसोर, नवल राधा, नए कुंज भारी।
अंग पुलकित भए, मदन तिन तन जए, सूर प्रभु स्याम स्यामा बिहारी॥
॥६८४॥१३०२॥

राग कामोद

नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुँवरि वृषभानु-किसोरी।
नयौ पितांबर, नई चूनरी, नई-नई बूँदनि भीजति गोरी॥
नये कुंज,अति पुंज नये द्रुम, सुभग जमुन-जल पवन हिलोरी।
सूरदास प्रभु नव रस बिलसत नवल राधिका जोबन-भोरी॥
॥६८५॥१३०३॥

राग कान्हरौ

नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम-रस पागे।
अंतर बन-बिहार दोउ क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागे॥
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे।
मानहुँ बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे॥
कबहुँक बैठि अंस भुज धरि कै, पीक कपोलनि पागे।
अति रस-रासि लुटावत लूटत, लालचि लाल सभागे॥
नहिं छूटति रति-रुचिर भामिनी, वा रस मैं दोउ पागे।
मनहुँ सूर कल्पद्रुम की सिधि, लै उतरी फल आगे॥
॥६८६॥१३०४॥

राग मलार

उतारत हैं कंठनि तैं हार।
हरि हिय मिलत होत है अंतर, यह मन कियौ बिचार॥
भुजा बाम पर कर-छबि लागति, उपमा अंत न पार।
मनहुँ कमल-दल नाल मध्य तैं, ज्यौं अद्भुत आकार॥
चुंबत अंग परस्पर जनु जुग, चंद करत हित-चार।
दसननि बसन चाँपि सु चतुर अति, करत रंग बिस्तार॥
गुन-सागर अरु रस-सागर मिलि, मानत सुख ब्यवहार।
सूर स्याम स्यामा नव रस रमि, रीझे नंदकुमार॥
॥६८७॥१३०५॥

राग कन्हरा

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनैं उर धरिया॥

क्रीड़ा करत तमाल-तरुन-तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु-कुँवरिया॥६८८॥
॥१३०६॥

राग गौरी

आजु नँद-नंदन रंग भरे।
बिबि लोचन सु बिसाल दुहुँनि के चितवत चित्त हरे॥
भामिनि मिले परम सुख पायौ, मंगल प्रथम करे।
कर सौं कर जु कर्‌यौ कंचन ज्यौं, अंबुज उरज धरे॥
आलिंगन दै अधर पान करि, खंजन कंज लरे।
हठ करि मान कियौ जब भामिनि, तब गहि पाइ परे॥
पुहुप मंजरी मुक्तनि माला, अँग अनुरागि धरे।
रचना सूर रची बृंदाबन, आनँद-काज करे॥६८९॥
॥१३०७॥

राग नट

हरि हँसि भामिनी उर लाइ।
सुरति अंत गोपाल रीझे, जानि अति सुखदाइ॥
हरषि प्यारी अंक भरि, पिय रही कंठ लगाइ।
हाव भाव, कटाच्छ लोचन, कोक-कला सुभाइ॥
देखि बाला अतिहिं कोमल, मुख निरखि मुसुकाइ।
सूर प्रभु रति-पति के नायक, राधिका समुदाइ॥६९०॥
॥१३०८॥

राग गौड़ मलार

नवल नेह नव पिया नयो-नयो दरस,
बिबि तन मिले पिय अधर धरो री।
प्रीति की रीति प्रान चंचल करत लखि,
नागरी नैन सौं चिबुक मोरी॥
काम की केलि कमनीय चंद्रक चकोर,
स्वाति कौ बूँद चातक परौ री।

सूरदास रसरासि रस बरसि कै चली,
जनौ हर-तिलक कुहू उग्यौ री ॥६६१॥
॥१३०६॥

गृह गमन *राग गौरी*

तुरत गए नँद-सदन कन्हाई।
अंकम दै राधा घर पठई, बादर जहँ-तहँ दिए उड़ाई॥
प्यारी की सारी आपुन लै, पीतांबर राधा उर लाई।
जो देखै जसुमति हरि ओढ़े, मन यह कहति कहाँ धौं पाई॥
जननी-नैन तुरत लखि लीन्हौ, तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई।
सूरदास जसुमति सुत सौं कहै, पीत ओढ़नी कहाँ गँवाई॥
॥६६२॥१३१०॥

राग सारंग

पीत उढ़नियाँ कहाँ बिसारी।
यह तौ लाल ढिगनि की औरै, है काहू की सारी॥
हौं गोधन लै गयौ जमुन-तट, तहाँ हुतीं पनिहारी।
भीर भई सुरभी सब बिडरीं, मुरली भली सम्हारी॥
हौं लै भज्यौ और काहू की, सो लै गई हमारी।
सूरदास प्रभु भली बनाई, बलि जसुमति महतारी॥
॥६६३॥१३११॥

राग धनाश्री

मैया री मैं जानत वाकौं।
पीत उढ़नियाँ जो मेरी लै गई, लै आनौ धरि ताकौं॥
हरि की माया कोउ न जानै, आँखि धूरि सी दीन्ही।
लाल ढिगनि की सारी ताकौं, पीत उढ़नियाँ कीन्ही॥
पीतांबर लै जननि दिखायौ, लै आन्यौ तिहिं पास।
सूर मनहिं मन कहति जसोदा, तरुनि पढ़ावति गाँस॥
॥६६४॥१३१२॥

राग धनाश्री

स्यामहिं देखि महरि मुसक्यानी।
पीतांबर काकैं घर बिसर्‌यौ, लाल ढिगनि की सारी आनी॥

ओढ़नि आनि दिखाई मोकौं, तरुनिनि की सिखई बुधि ठानी।
घर लै-लै मैरौ सुत भुरवतिं, ये ऐसी सब दिन की जानी॥
हरि अंतरजामी रति-नागर जानि, लई जननी पहिचानी।
सूर निरखि मुख सकुचि भगाने, या लीला की यहै सयानी॥
॥६६५॥१३१३॥

राग कल्यान

सुंदरि गई गृह समुहाइ।
दोहनी कर दूध लीन्हे, जननि टेरी बुलाइ॥
प्रेम पीत निचोल हरि कौ, कहूँ धरयौ छिपाइ।
और की औरै कहति कछु, मातु मनहिं डराइ।
कुँवरि कौं कहुँ दीठि लागी, निरखि कै पछिताइ॥
सूर तब बृषभानु-घरनी, राधिका उर लाइ॥
॥६६६॥१३१४॥

राग कान्हरौ

जननी कहति कहा भयौ प्यारी।
अबहीं खरिक गई तू नीकैं, आवत हीं भई कौन बिथा री॥
एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री।
मो देखत वह परी धरनि गिरि, मैं डरपी अपनैं जिय भारी॥
स्याम बरन इक ढोटा आयौ, यह नहिं जानति रहत कहाँ री।
कहत सुन्यौ नँद कौ यह बारौ, कछु पढ़ि कै तुरतहिं उहिं झारी॥
मेरौ मन भरि गयौ त्रास तैं, अब नीकौ मोहिं लागत ना री।
सूरदास अति चतुर राधिका, यह कहि समुझाई महतारी॥
॥६६७॥१३१५॥

राग गौड़ मलार

कुँवरि सौं कहति बृषभानु-घरनी।
नैंकु नहिं घर रहति, तोहिं कितनौ कहति,
रिसनि मोहिं दहति, बन भई हरनी॥
लरिकिनी सबनि घर, तोसी नहिं कोउ निडर,।
चलति नभ चितै नहिं तकति धरनी।

बड़ी करवर टरी, साँप सौं ऊबरी, बात
कैं कहत तोहिं लगति जरनी ॥
लिखी मेटै कौन, करै करता जौन,
सोइ ह्वैहै जु होनहारि करनी ।
सुता लई उर लाइ, तनु निरखि पछिताइ,
डरनि गई कुम्हिलाइ सूर बरनी ॥६६८॥
॥१३१६॥

राग गौड़ मलार

महर वृषभानु की यह कुमारी ।
देवधामी करत, द्वार द्वारैं परत,
पुत्र द्वै, तीसरैं यहै बारी ॥
भई बरष सात की, सुभ घरी जात की,
प्यारी दोउ भ्रात की, बची भारी ।
कुँवरि दई अन्हवाइ, गई तन-मुरझाइ,
बसन पहिराइ, कछु कहति खारी ॥
जाहि जनि खरिक-तन, खेलि अपनैं सदन,
यह सुनति हँसति मन स्याम-नारी ।
सूर प्रभु-ध्यान धरि, हरषि आनंद भरि,
गाँव घर खेलिहौं कहति का री ! ॥६६६॥
॥१३१७॥

राधिका जी का यशोदा-गृहागमन *राग आसावरी*

खेलन कैं मिस कुँवरि राधिका, नंद-महरि कैं आई (हो) ।
सकुच सहित मधुरे करि बोली, घर हौ कुँवर कन्हाई (हो) ॥
सुनत स्याम कोकिल सम बानी, निकसे अति अतुराई (हो) ।
माता सौं कछु करत कलह हे, रिस डारी बिसराई (हो) ॥
मैया री तू इनकौं चीन्हति, बारंबार बताई (हो) ।
जमुना-तीर काल्हि मैं भूल्यौ, बाहँ पकरि लै आई (हो) ॥
आवति इहाँ तोहिं सकुचति है, मैं दै सौंह बुलाई (हो) ।
सूर स्याम ऐसे गुन-आगर, नागरि बहुत रिझाई (हो) ॥
॥७००॥१३१८॥

राग आसावरी

को जानै हरि की चतुराई।
नैन-सैन संभाषन कीन्हौ, प्यारी की उर-तपनि मिटाई॥
मनहीं मन दोउ रीझि मगन भए, अति आनँद उर मैं न समाई।
कर पल्लव हरि भाव बतावत, एक प्रान द्वै देह बनाई॥
जननी-हृदय प्रेम उपजायौ, कहति कान्ह सौं लेहु बुलाई।
सूर स्याम गहि बाँह राधिका, ल्याये महरि बिहँसि बैठाई॥
॥७०१॥१३१९॥

राग सूही

देखि, महरि मनहीं जु सिहानी।
बोलि लई, बूझति नँदरानी कहि मधुरे मधु बानी।
ब्रज मैं तोहिं कहूँ नहिं देखी, कौन गाउँ है तेरौ।
भली काल्हि कान्हहिं गहि ल्याई, भूल्यौ तो सुर मेरौ॥
नैन बिसाल, बदन अति सुंदर, देखत नीकी, छोटी।
सूर महरि सबिता सौं, बिनवति, भली स्याम की जोटी॥
॥७०२॥१३२०॥

राग नट

नाम कहा तेरौ री प्यारी।
बेटी कौन महर की है तू, को तेरी महतारी॥
धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी।
धन्य पिता माता तेरे, छबि निरखति हरि-महतारी॥
मैं बेटी बृषभानु महर की, मैया तुमकौं जानति।
जमुना-तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिन पहिचानति॥
ऐसी कहि, वाकौं मैं जानति, वह तौ बड़ी छिनारि।
महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि॥
राधा बोलि उठी, बाबा कछु, तुमसौं ढीठौ कीन्हौ।
ऐसे समरथ कब मैं देखे हँसि प्यारिहिं उर लीन्हौ॥
महरि कुँवरि सौं यह कहि भाषति, आउ करौं तेरी चोटी।
सूरदास हरषित नँदरानी, कहति महरि हम जोटी॥७०३॥
॥१३२१॥

राग गौरी

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति ।
बड़े बार सीमंत सीस के, प्रेम सहित निरुवारति ॥
माँग पारि बेनी जु सँवारति, गूँथी सुंदर भाँति ।
गोरैं भाल बिंदु बंदन, मनु, इंदु प्रात-रबि काँति ॥
सारी चीरि नई फरिया लै, अपने हाथ बनाइ ।
अंचल सौं मुख पोंछि अंग सब, आपुहि लै पहिराइ ॥
तिल चाँवरी, बतासे, मेवा, दियौ कुँवरि की गोद ।
सूर स्याम-राधा-तनु चितवत, जसुमति मन-मन मोद ॥७०४॥
॥१३२२॥

राग कल्यान

खेलौ जाइ स्याम सँग राधा ।
यह सुनि कुँवरि हरष मन कीन्हौं, मिटि गई अंतर-बाधा ॥
जननी निरखि चकित रही ठाढ़ी, दंपति रूप-अगाधा ।
देखति भाव दुहुँनि कौ सोई, जो चित करि अवराधा ॥
सँग खेलत दोउ झगरन लागे, सोभा बढ़ी अबाधा ।
मनहुँ तड़ित घन, इंदु तरनि, ह्वै बाल करत रस-साधा ॥
निरखत बिधि भ्रमि भूलि पर्‍यौ तब, मन-मन करत समाधा ।
सूरदास प्रभु और रच्यौ बिधि, सोच भयौ तन दाधा ॥७०५॥
॥१३२३॥

राग केदारौ

बिधि कैं आन बिधि कौ सोच ।
निरखि छबि बृषभानु-तनया, सकल मम कृत पोच ॥
रमा, गौरी, उर्बसी, रति, इंद्र-बधू समेत ।
तूल दिन-मनि कहा सारँग, नाहिं उपमा देत ॥
चरन निरखि, निहारि नख-छबि, अजित देख्यौ तोकि ।
चित्त गुनि महिमा न जानत, धीर राखत रोकि ॥
सूर आन बिरंचि बिरच्यौ, भक्ति-निज-अवतार ।
अबल के बल सबल देखि, अधीन सकल सिंगार ॥७०६॥
॥१३२४॥

राधा-गृह-गमन

राग नट

राधे महरि सौं कहि चली।
आनि खेलत रहौ प्यारी, स्याम तुम हिलिमिली॥
बोलि उठे गुपाल राधा, सकुच जिय कत करति।
मैं बुलाऊँ नाहिं आवति, जननि कौं कत डरति॥
माइ जसुदा देखि तोकौं, करति कितनौ छोह।
सुनत हरि की बात प्यारी, रही मुख-तन जोह॥
हँसि चली बृषभानु-तनया, भई बहुत अबार।
सूर-प्रभु चित तैं टरत नहिं, गई घर कैं द्वार॥७०७॥
॥१३२५॥

राग बिहागरौ

बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी।
किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिं कच गूँदि माँग सिर पारी॥
खेलति रही नंद कैं आँगन, जसुमति कही कुँवरि ह्याँ आ री।
मेरौ नाउँ बूझि बाबा कौ, तेरौ बूझि दई हँसि गारी॥
तिल चाँवरी गोद करि दीनी फरिया दई फारि नव सारी।
मो-तन चितै, चितै ढोटा-तन, कछु सबिता सौं गोद पसारी॥
यह सुनि कै बृषभानु मुदित चित, हँसि-हँसि बूझत बात दुलारी।
सूर सुनत रस सिंधु बढ्यौ अति, दंपति एकै बात बिचारी॥
॥७०८॥१३२६॥

राग गौरी

मेरे आगैं महरि जसोदा, तोकौं गारी दीन्ही।
वाही घात सबै मैं जानति, वै जैसी मैं चीन्ही॥
तोकौं कहि पुनि कह्यौ बबा कौं बड़ौ धूत बृषभान।
तब मैं कह्यौ ठग्यौ कब तुमकौं, हँसि लागी लपटान॥
भली कही तू मेरी बेटी, लयौ आपनौ दाउ।
जो मोहिं कह्यौ सबै गुन उनके, हँसि-हँसि कहति सुभाउ॥
फेरि-फेरि बूझति राधा सौं सुनत हँसति सब नारि॥
सूरदास बृषभानु-घरनि, जसुमति कौं गावति गारि॥७०९॥
॥१३२७॥

राग गौरी

कहत कान्ह जननी समुझाइ।
जहँ तहँ डारे रहत खिलौना, राधा जनि लै जाइ चुराइ ॥
साँझ सवारैं आवन लागी, चितै रहति मुरली-तन आइ।
इनहीं मैं मेरे प्रान बसत हैं, तेरे भाएँ नैंकु न माइ ॥
राखि छुपाइ, कह्यौ करि मेरौ, बलदाऊ कौं जनि पतिआइ
सूरदास यह कहति जसोदा, को लैहै मोहिं लगौ बलाइ।
॥७१०॥१३२८॥

राग आसावरी

मेरे लाल के प्रेम खिलौना, ऐसौ को लै जैहै री।
नैंकु सुनत जो पैहौं ताकौं, सो कैसैं ब्रज रैहै री ॥
बिनु देखैं तू कहा करैगी, सो कैसैं प्रगटैहै री।
अजहुँ उठाइ राखि री मैया, माँगे तैं कह दैहै री ॥
आवतहीं लै जैहै राधा, पुनि पाछैं पछितैहै री।
सूरदास तब कहति जसोदा, बहुरि स्याम बिरुझैहै री ॥७११॥
॥१३२९॥

राग नट

सैंतति महरि खिलौना हरि के।
जानति टेव आपने सुत की, रोवत है पुनि लरिकै ॥
धरि चौगान, बेत, मुरली धरि, अरु भौंरा चकडोरी।
प्रेम सहित लै-लै धरि राखति, यह सब मेरे कोरी ॥
स्रवननि सुनत अधिक रुचि लागति, हरि की बतियाँ भोरी।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, दूध पियहु बलि तोरी ॥७१२॥
॥१३३०॥

राधिका का पुनरागमन

राग बिलावल

उठी प्रातहीं राधिका, दोहनि कर लाई।
महरि सुता सौं तब कह्यौ, कहाँ चली अतुराई ॥
खरिक दुहावन जाति हौं, तुम्हरी सेवकाई।
तुम ठकुराइनि घर रहौ, मोहिं चेरी पाई ॥
रीती देखी दोहनी, कत खीझति धाई।
काल्हि गई अवसेरि कै, ह्वाँ उठे रिसाई ॥

गाइ गईँ सब प्याइ कै, प्रातहिं नहिं आई।
ता कारन मैं जाति हौं, अति करति चँड़ाई॥
यह कहि जननी सौं चली, ब्रज कौं समुहाई।
सूर स्याम गृह-द्वारहीं, गो करत दुहाई॥७१३॥१३३१॥

राग बिलावल

सुता महर वृषभानु की, नँद-सदनहिं आई।
गृह-द्वारैं ही अजिर मैं, गो दुहत कन्हाई॥
स्याम चितै मुख-राधिका, मन हरप बढ़ाई।
राधा हरि-मुख देखि कै, तन-सुरति भुलाई॥
महरि देखि कीरति-सुता, तिहिं लियौ बुलाई।
दंपति कौ सुख देखि कै, सूरज बलि जाई॥७१४॥१३३२॥

राग बिलावल

आजु राधिका भोरहीं जसुमति कैं आई।
महरि मुदित हँसि यौं कह्यौ, मथि भान-दुहाई॥
आयसु लै ठाढ़ी भई, कर नेति सुहाई।
रीतौ माठ बिलौवई, चित जहाँ कन्हाई॥
उनके मन की कह कहौं, ज्यौं दृष्टि लगाई।
लैया नोई वृषभ सौं, गैया बिसराई॥
नैननि मैं जसुमति लखी, दुहुँ की चतुराई।
सूरदास दंपति-दसा, कापै कहि जाई॥७१५॥१३३३॥

राग बिलावल

महरि कह्यौ री लाड़िली, किन मथन सिखायौ।
कहँ मथनी, कहँ माठ है, चित कहाँ लगायौ॥
अपनैं घर यौंहीं मथै, करि प्रगट दिखायौ।
कै मेरैं घर आइ कै, तैं सब बिसरायौ?
मथन नहीं मोहिं आवई, तुम सौंह दिवायौ।
तिहिं कारन मैं आइ कै, तुव बोल रखायौ॥
नंद-घरनि तब मथि दह्यौ, इहिं भाँति बतायौ।
सूर निरखि मुख स्याम कौं, तहँ ध्यान लगायौ॥
॥७१६॥१३३४॥

राग सूहौ

दुहत स्यांम गैया बिसराई।
नोई लै पग बाँधि बृषभ कैं, दोहनि माँगत कुँवर कन्हाई॥
ग्वाल एक दोहनि लै दीन्ही, दुहौ स्याम अति करौ चँड़ाई।
हँसत परस्पर तारी दै दै, आजु कहाँ तुम रहे भुलाई॥
कहत सखा, हरि सुनत नहीं सो, प्यारी सौं रहे चित अरुझाई।
सूर स्याम राधा-तन चितवत, बड़े चतुर की गई चतुराई॥
॥७१७॥१३३५॥

राग रामकली

राधा ये ढँग हैं री तेरे।
वैसे हाल मथत दधि कीन्हे, हरि मनु लिखे चितेरे॥
तेरौ मुख देखत ससि लाजै, और कह्यौ क्यौं बाँचै।
नैना तेरे जलज-जीत हैं, खंजन तैं अति नाचैं॥
चपला तैं चमकति अति प्यारी, कहा करैगी स्य।
सुनहु सूर ऐसेहिं दिन खोवति, काज नहीं तेरे धामहिं ?
॥७१८॥१३३६॥

राग गूजरी

मेरौ कह्यौ नाहिंन सुनति।
तबहिं तैं इकटक रही ह्वै, कहा धौं मन गुनति॥
अबहिं तैं तू करति ये ढँग, तोहिं अबहीं होन।
स्याम कौं तू ऐसैं ठगि लियौ, कछु न जानै जौन॥
सुता है बृषभानु की री, बड़ौ उनकौ नाउँ।
सूर प्रभु नँद-सुवन निरखत, जननि कहति सुभाउ॥७१९॥
॥१३३७॥

राग सूहा

प्रगटी प्रीति, न रही छुपाई।
परी दृष्टि बृषभानु-सुता की, दोउ अरुझे, निरवारि न जाई।
बछुरा छोरि खरिक कौं दीन्हौ, आपु कान्ह तन-सुधि बिसराई॥
नोवत बृषभ निकसि गैयाँ गईं, हँसत सखा कह दुहत कन्हाई।

चारौं नैन भए इक ठाहर, मनहीं मन दुहुँ रुचि उपजाई।
सूरदास स्वामी रति-नागर, नागरि देखि गई नगराई ॥७२०॥
॥१३३८॥

राग सारंग

चितैबौ छाँड़ि दै री राधा।
हिलि-मिलि खेलि स्यामसुंदर सौं, करति काम कौ बाधा॥
कै बैठी रहि भवन आपनैं, काहे कौं वनि आवै।
मृग-नैनी हरि कौ मन मोहति, जब तू देखि दुहावै॥
कबहुँक कर तैं गिरति दोहिनी, कबहुँक बिसरति नोई।
कबहुँक बृषभ दुहत है मोहन, ना जानौं का होई॥
॥७२१॥१३३९॥

राग धनाश्री

धेनु दुहन दै मेरे स्यामहिं।
जौ आवै तौ सहज रूप सौं, बनि आवति बेकामहिं॥
सूधैं आइ स्याम सँग खेलै, बोलै, बैठै, धामहिं।
ऐसौ ढंग मोहिं नहिं भावै, लेइ न ताके नामहिं॥
घर अपनैं तू जाहि राधिका, कहति महरि मन तामहिं।
सूर आइ तू करति अचगरी, को बकिहै निसि-जामहिं ॥७२२॥
॥१३४०॥

राग जैतश्री

बार बार तू जनि ह्याँ आवे।
मैं कह करौं, सुतहिं नहिं बरजति, घर तैं मोहिं बुलावे॥
मोसौं कहत तोहिं बिनु देखैं, रहत न मेरौ प्रान।
छोह लगति मोकौं सुनि बानी, महरि तुम्हारी आन॥
मुँह पावति तबहीं लौं आवति, औरै लावति मोहिं।
सूर समुझि जसुमति उर लाई, हँसति कहति हौं तोहिं॥
॥७२३॥१३४१॥

राग गौरी

हँसत कहौ मैं तोसौं प्यारी।
मन मैं कछू बिलग जनि मानै, मैं तेरी महतारी॥

बहुतैं दिवस आजु तू आई, राधा मेरैं धाम।
महरि बड़ी मैं सुघरि सुनी है, कछु सिखयौ गृह-काम ?
मैया जब मोहिं टहल कहति कछु, खिझत बबा वृषभान।
सूर महरि सौं कहति राधिका, मानौ अतिहिं अजान ॥७२४॥
॥१३४२॥

राग रामकली

दूध-दोहनी लै री मैया।
दाऊ टेरत सुनि मैं आऊँ तब लौं करि विधि घैया॥
मुरली-मुकुट-पितांबर दै मोहिं, लै आई महतारी।
मुकुट धर्‌यौ सिर, कटि पीतांबर, मुरली कर लियौ धारी॥
राधा-राधा कहि मुरली मैं खरिकहिं लई बुलाइ।
सूरदास प्रभु चतुर-सिरोमनि, ऐसी बुद्धि उपाइ ॥७२५॥
॥१३४३॥

राग रामकली

कुँवरि कह्यौ, मैं जाति महरि, घर।
प्रातहिं आई खरिक दुहावन, कहति दोहनी लै कर॥
तब खरिकहिं कोउ ग्वाल गए नहिं, तिन कारन ब्रज आई।
जौ देखौं तौ अजिरहिं बैठे, गैया दुहत कन्हाई॥
कनक-दोहनी तनक दुहत, मोहिं देखि अधिक रुचि लागी।
तनक राधिका तनक सूर-प्रभु, देखि महरि अनुरागी ॥७२६॥
॥१३४४॥

राग गूजरी

या घर प्यारी आवति रहियौ।
महरि हमारी बात चलावत ? मिलन हमारौ कहियौ॥
एक दिवस मैं गई जमुन-तट, तहँ उन देखी आइ।
मोकौं देखि बहुत सुख पायौ मिली अंकम लपटाइ॥
यह सुनि कै चली कुँवरि राधिका, मोकौं भई अबार।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, मोहन नंद-कुमार ॥७२७॥
॥१३४५॥

राग गूजरी

सैन दै प्यारी लई बुलाइ।
खेलन कौ मिस करि कै निकसे खरिकहिँ गए कन्हाइ॥
जसुमति कौं कहि प्यारी निकसी, घर कौ नाउँ सुनाइ।
कर दोहनी लिए तहँ आई, जहँ हलधर के भाइ॥
तहाँ मिलीं सब संग-सहेली, कुँवरि कहाँ तू आई?
प्रातहिं धेनु दुहावन आई, अहिर तहाँ नहिं पाई॥
तबहिं गई मैं ब्रज उतावली, आई ग्वाल बुलाइ।
सूर स्याम दुहि देन कह्यौ, सुनि राधा गई मुसुकाइ॥७२८॥
॥१३४६॥

राग धनाश्री

धेनु दुहन जब स्याम बुलाई।
स्रवन सुनत तहँ गई राधिका, मन हरि लियौ कन्हाई॥
सखी संग की कहति परस्पर, कहँ यह प्रीति लगाई।
यह बृषभानु-पुरा, ये ब्रज मैं, कहाँ दुहावन आई॥
मुख देखत हरि कौ चकित भई, तन की सुधि बिसराई।
सूरदास प्रभु कैं रसबस भई, काम करी कठिनाई॥
॥७२९॥१३४७॥

राग गूजरी

गाउँ बसत एते दिवसनि मैं, आजु कान्ह मैं देखे।
जे दिन गए बिना हरि-दरसन ते सब बृथा अलेखे॥
कहियै जो कछु होइ सखी री, कहिबे के अनुमानैं।
सुंदर स्याम निकाई कौ सुख, नैना ही पै जानैं॥
तब तैं रूप ठगौरी लागी, जुग समान पल बितवत।
तजि कुल-लाज सूर के प्रभु के मुख-तन फिरि-फिरि चितवत॥
॥७३०॥१३४८॥

राग सारंग

बलि जाऊँ गैया दुहि दीजै।
बूँद परत रँग ह्वैहै फीकौ, सुरँग चूनरी भीजै॥

मीठौ दूध गाइ धूमरि कौ, कछु दीजै कछु पीजै।
सूर स्याम-दरसन कैं कारन, अधिक निहोरौ कीजै॥
॥७३१॥१३४९॥

राग देवगंधार

मोहनि-कर तैं दोहनि लीन्ही, गो-पद बछुरा जोरे।
हाथ धेनु-थन, बदन तिया-तन, छीर छींटि छल छोरे॥
आनन रही ललित पय छींटैं, छाजति छबि तृन तोरे।
मनौ निकसे निकलंक कला-निधि, दुग्ध-सिंधु मथि बोरे॥
दै घूँघट पट ओट नील, हँसि, कुँवरि मुदित मुख मोरे।
मनहुँ सरद-ससि कौं मिलि दामिनि, घेरि लियौ घन घोरे॥
इहिं विधि रहसत-बिलसत दंपति, हेत हियैं नहिं थोरे।
सूर उमँगि आनंद सुधा-निधि, मनु बेला बल फोरे॥
॥७३२॥१३५०॥

राग रामकली

हरि सौं धेनु दुहावति प्यारी।
करति मनोरथ पूरन मन, बृषभानु महर की बारी॥
दूध-धार मुख पर छबि लागति, सो उपमा अति भारी।
मानौ चंद कलंकहिं धोवत, जहँ-तहँ बूँद सुधा री॥
हाव-भाव रस-मगन भए दोउ, छबि निरखति ललिता री।
गो-दोहन-सुख करत सूर-प्रभु, तीनिहुँ भुवन कहा री॥७३३॥
॥१३५१॥

राग सूहौ

तुम पै कौन दुहावै गैया।
लिए रहत हौ कनक-दोहनी, बैठत हौ अधपैया॥
अति रस काम की प्रीत जानि कै, आवत खरिक दुहैया।
इत चितवत, उत धार चलावत, यहै सिखायौ मैया?
गुप्त प्रीति तासौं करि मोहन, जो है तेरी दैया।
सूरदास प्रभु झगरौ सीख्यौ, ज्यौं घर खसम गुसैंया॥७३४॥
॥१३५२॥

राग धनाश्री

करि न्यारी हरि आपुनि गैयाँ।
नाहिं न बसति लाल कछु तुम्हरैं, तुमसे सबै ग्वाल इक ठैयाँ॥
नहिं आधीन तेरे बाबा के, नहिं तुम हमरे नाथ-गुसैयाँ।
हम तुम जाति-पाँति के एकै, कहा भयौ अधिकी द्वै गैयाँ?
जा दिन तैं सचरे गोपिनि मैं, ताही दिन तैं करत लँगरैयाँ।
मानी हार सूर के प्रभु तब, बहुरि न करिहौं नंद दुहैयाँ॥७३५॥
॥१३५३॥

राग सूहा

धेनु दुहत अतिहीं रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी॥
मोहन-कर तैं धार चलति, परि मोहनि-मुख अतिहीं छवि गाढ़ी।
मनु जलधर जलधार वृष्टि-लघु, पुनि पुनि प्रेम चंद पर बाढ़ी॥
सखी संग की निरखति यह छवि, भईं ब्याकुल मन्मथ की डाढ़ी।
सूरदास प्रभु के रस-बस सब, भवन-काज तैं भईं उचाढ़ी॥
॥७३६॥१३५४॥

राग बिलावल

दुहि दीन्ही राधा की गाइ।
दोहनि नहीं देत कर तैं हरि, हा हा करि परै पाइ॥
ज्यौं ज्यौं प्यारी हा हा बोलति, त्यौं त्यौं हँसत कन्हाइ।
बहुरि करौ प्यारी तुम हा हा, देहौं नंद-दुहाइ॥
तब दीन्ही प्यारी-कर दोहनि, हा हा बहुरि कराइ।
सूर स्याम रस हाव-भाव करि, दीन्ही कुँवरि पठाइ॥७३७॥
॥१३५५॥

राग बिलावल

चलन चहति पग चलै न घर कौं।
छाँड़त बनत नहीं कैसे हूँ, मोहन सुंदर बर कौं॥
अंतर नैंकु करौं नहिं कबहूँ, सकुचति हौं पुर-नर कौं।
कछु दिन जैसैं तैसैं खोऊँ, दूरि करौं पुनि डर कौं॥

मन मैं यह बिचार करि सुंदरि, चली आपने पुर कौं।
सूरदास प्रभु कह्यौ जाहु घर, घात कर्‍यौ नख उर कौं ॥७३८॥
॥१३५६॥

राग मलार

मुरि-मुरि चितवति नंद-गली।
डग न परत ब्रजनाथ-साथ बिनु, बिरह-बिथा मैं जाति चली ॥
बार-बार मोहन-मुख-कारन, आवति फिरि-फिरि संग अली।
चली पीठि दै दृष्टि फिरावति, अंग-अंग आनंद रली ॥
कीर-कपोत-मीन-पिक-सारँग-केहरि-कदली-छबि बिदली।
सूरदास प्रभु पास दुहावति, धनि-धनि श्री बृषभानु-लली ॥७३९॥
॥१३५७॥

राग बिलावल

सिर दोहनी चली लै प्यारी।
फिरि चितवत हरि हँसे निरखि मुख, मोहन मोहनि डारी ॥
ब्याकुल भई, गई सखियनि लौं, ब्रज कौं गए कन्हाई।
और अहिर सब कहाँ तुम्हारे, हरि सौं धेनु दुहाई ?
यह सुनि कै चकित भई प्यारी, धरनि परी मुरझाइ ॥
सूरदास सब सखियनि उर भरि, लीन्ही कुँवरि उठाइ ॥७४०॥
॥१३५८॥

राग रामकली

क्यौं री कुँवरि गिरी मुरझाई ?
यह बानी कही सखियनि आगैं, मोकौं कारैं खाई ॥
चलीं लिवाइ सुता-बृषभानुहिं, घरहीं तन समुहाई।
डारि दियौ भरी दूध-दुहनियाँ, अबहीं नीकैं आई ॥
यह कारौ सुत नंदमहर कौ, सब हम फूँक लगाई।
सूर सखिनि मुख सुनि यह बानी, तब यह बात सुनाई ॥७४१॥
॥१३५९॥

राम सारंग

मोहि लई नैननि की सैन।
श्रवन सुनत सुधि-बुधि सब बिसरी, हौं लुब्धो मोहन-मुख-चैन ॥

आवत हुते कुमार खरिक तैं, तव अनुमान कियौ सखि मैन।
निरखत अंग अधिक रुचि उपजी, नख-सिख सुंदरता कौ ऐन॥
मृदु मुसुक्यानि हस्यौ मन कौ मनि, तव तैं तिल न रहति चित चैन।
सूर स्याम यह वचन सुनायौ, मेरी धेनु कही दुहि दैन॥७४२॥
॥१३६०॥

राग धनाश्री

सखियनि मिलि राधा घर लाईं।
देखहु महरि सुता अपनी कौं, कहुँ इहिं कारैं खाई॥
हम आगैं आवति, यह पाछैं, धरनि परी भहराई।
सिर तैं गई दोहनी ढरिकै, आपु रही मुरझाई॥
स्याम-भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी वुलाई।
रोवति जननि कंठ लपटानी, सूर स्याम गुन राई॥७४३॥
॥१३६१॥

राग सारंग

प्रात गई नीकैं उठि घर तैं।
मैं बरजी कहँ जाति री प्यारी, तव खीझी रिस-झर तैं॥
सीतल-अंग स्वेद सौं बूड़ी, सोच पस्यौ मन डर तैं।
अतिहिं हठीली कह्यौ न मानति, करति आपने वर तैं॥
औरै दसा भई छिन भीतर, बोले गुनी नगर तैं।
सूर गारुड़ी गुन करि थाके, मंत्र न लागत थर तैं॥७४४॥
॥१३६२॥

राग नट नारायन

चले सब गारुड़ी पछिताइ।
नैंकुहूँ नहिं मंत्र लागत, समुझि काहु न जाइ॥
बात बूझत संग सखियनि, कहौ हमहिं बुझाइ।
कहा कहि राधा सुनायौ, तुम सबनि सौं आइ?
महा बिषधर स्याम अहिबर, देखि सबहीं धाइ।
फूँक-ज्वाला हमहुँ लागी, कुँवरि उर पर खाइ॥
गिरी धरनी मुरछि तबहीं, लई तुरत उठाइ।
सूर-प्रभु कौं बेगि ल्यावहु, बड़ौ गारुड़ि राइ॥७४५॥१३६३॥

राग आसावरी

नंद-सुवन गारुड़ी बुलावहु।
कह्यौ हमारौ सुनत न कोऊ, तुरत जाहु, लै आवहु॥
ऐसौ गुनी नहीं त्रिभुवन कहुँ, हम जानति हैं नीकैं।
आइ जाइ तौ तुरत जियावहि, नैंकु छुवत उठै जी कै॥
देखौ धौं यह बात हमारी, एकहि मंत्र जिवावै।
नंद महर कौ सुत सूरज जौ, कैसेहुँ ह्याँ लौं आवै॥७४६॥
॥१३६४॥

राग आसावरी

डसी री स्याम भुअंगम कारे।
मोहन-मुख-मुसुक्यानि मनहुँ, विष, जात मैर सौं मारे॥
फुरै न मंत्र, जंत्र, गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे।
प्रेम प्रीति बिष हिरदै लाग्यौ, डारत है तनु जारे॥
निर्बिष होत नहीं कैसैंहूँ, बहुत गुनी पचि हारे।
सूर स्याम गारुड़ी बिना को, जो सिर गाढ़ उतारे? ॥७४७॥
॥१३६५॥

राग धनाश्री

वेगि चलौ पिय कुँवर कन्हाई।
जा-कारन तुम यह बन सेयौ, सो तिय मदन-भुअंगम खाई॥
नैन सिथिल, सीतल नासा-पुट, अंग तपति कछु सुधि न रहाई।
सकसकात तन भीजि पसीना, उलटि पलटि तन तोरि जम्हाई॥
अनजानत मूरनि कौं जित-तित, उठि दौरीं जिनि जहाँ बताई।
ताहि कछू उपचार न लागत, कर मीडैं सहचरि पछिताई॥
तुम दरसन इक बार मनोहर, यह औषधि इक सखी लखाई।
जौ सूरज प्रभु ज्यायौ चाहत, तो ताकौ अब देहु दिखाई॥७४८॥
॥१३६६॥

राग नट

सुनत तिहारी बातैं मोहन ह्वै चले दोऊ नैन।
छुटि गई लोक-लाज आतुर ह्वै, रहि न सकत चित चैन॥

उर काँप्यौ, तन पुलकि पसीज्यौ, बिसरि गए मुख-बैन।
ठाढ़ी ही जैसैं-तैसैं झुकि, परी धरनि तिहिं ऐन॥
कोउ सित, कोऊ कमल, कुंकुमा, कोउ धाई जल लेन।
ताहि कछू उपचार न लागत, डसी कठिन अहि-मैन॥
हौं पठई इक सखी सयानी, अनबोली दै सैन।
सूर स्याम राधिका मिलैं बिनु, कहा लगे दुख दैन॥७४९॥
॥१३६७॥

राग सारंग

तनु बिष रह्यौ है छहरि।
नंद-सुवन गारुड़ी कहत हैं पठवै धौं सु महरि॥
गए अवसान, भीर नहिं भावै, भावै नहीं चहरि।
ल्यावौ गुनी जाइ गोविंद कौं, बाढ़ी अतिहिं लहरि॥
देखी उरहिं बीचहीं खाई, माती भई जहरि॥
सूर स्याम-बिषधर कहुँ खाई, यह कहि चली डहरि॥७५०॥
॥१३६८॥

राग सुघरई

वृषभानु की घरनि जसोमति पुकार्यौ।
पठै सुत काज कौं कहति हौं लाज तजि, पाइ परिकै महरि करति आर्यौ॥
प्रात खरिकहिं गई, आइ बिहवल भई, राधिका कुँवरि कहुँ डस्यौ कारौ।
सुनी यह बात, मैं आई अतुरात, ह्याँ, गारुड़ी बड़ौ है सुत तुम्हारौ॥
यह बड़ौ धरम नँद-घरनि तुम पाइहौ, नैंकु काहैं न सुत कौं हँकारौ।
सूर सुनि महरि यह कहि उठी सहजहीं, कहा तुम कहतिं, मेरौ अतिहिं बारौ!
॥७५१॥१३६९॥

राग सुघरई

कान्हहिं पठै, महरि कौं कहति है पाइनि परि।
आजु कहूँ कारैं उहिं, खाई है काम-कुँवरि॥

सब दिन आवै सुजाइ, जहाँ-तहाँ फेरि फिरि।
अबहीं खरिक गई आइ रही है जिय बिसरि॥
निसि के उनींदे नैन, तैसे रहे ढरि ढरि।
कीधौं कहुँ प्यारी कौं, लागी टटकी नजरि॥
तेरौ सुत गारुड़ी, सुन्यौ, है बात री महरि।
सूरदास देखैं प्रभु, जैहै री गरद झरि॥
॥७५२॥१३७०॥

राग आसावरी

जंत्र-मंत्र कह जानै मेरौ ?
यह तुम जाइ गुनिनि कौं बूझौ, इहाँ करति कत भेरौ॥
आठ बरस कौ कुँवर कन्हैया, कहा कहति तुम ताहि ?
किनि बहकाइ दई है तुमकौं, ताहि पकरि लै जाहि॥
मैं तौ चकित भई हौं सुनि कै, अति अचरज यह बात।
सूर स्याम गारुड़ी कहाँ कौ, कहँ आई बितताता॥
॥७५३॥१३७१॥

राग टोड़ी

महरि, गारुड़ी कुँवर कन्हाई।
एक बिटिनियाँ कारैं खाई, ताकौं स्याम तुरतहीं ज्याई॥
बोलि लेहु अपने ढोटा कौं, तुम कहि कै देउ नैंकु पठाई।
कुँवरि राधिका प्रात खरिक गई तहाँ कहूँ धौं कारैं खाई॥
यह सुनि महरि मनहिं मुसुक्यानी, अबहिं रही मेरैं गृह आई।
सूर स्याम राधहिं कछु कारन, जसुमति समुझि रही अरगाई॥
॥७५४॥१३७२॥

राग आसावरी

तब हरि कौं टेरति नँदरानी।
भली भई सुत भयौ गारुड़ी, आजु सुनी यह बानी॥
जननी-टेर सुनत हरि आए, कहा कहति री मैया ?।
कीरति महरि बुलावन आई, जाहु न कुँवर कन्हैया॥
कहूँ राधिका कारैं जाहु न आवौ झारि।
जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम, सूर स्याम बनवारि॥
॥७५५॥१३७३॥

राग गूजरी

मैया एक मंत्र मोहिं आवै।
बिषहर खाइ मरै जो कोऊ, मोसौं मरन न पावै॥
एक दिवस राधा-सँग आई, खरिक बिटिनियाँ और।
तहाँ ताहि बिषहर नैं खाई, गिरी धरनि उहिं ठौर॥
यह बानी बृषभानु-घरनि कही तब जसुमति पतियाई।
सूर स्याम मेरे बड़ौ गारुड़ी, राधा ज्यावहु जाई॥
॥७५६॥१३७४॥

राग सुघरई

जसुमति कह्यौ सुत, जाहु कन्हाई। कुँवरि जिवायँ अतिहिं भलाई॥
आजुहिं मो गृह खेलन आई। जात कहूँ कारैं तिहिं खाई॥
कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम, करहु अतुराई॥
सूर स्याम कौ चली लिवाई। गई बृषभानु-पुरहिं समुहाई॥
॥७५७॥१३७५॥

राग देवगंधार

हरि गारुड़ी तहाँ तब आए।
यह बानी बृषभानुसुता सुनि, मन-मन हरष बढ़ाए॥
धन्य-धन्य आपुन कौं कीन्हौ अतिहिं गई मुरझाइ।
तनु पुलकित रोमांच प्रगट भए आनँद-अस्रु बहाइ॥
बिह्वल देखि जननि भई ब्याकुल अँग बिष गयौ समाइ।
सूर स्याम-प्यारी दोउ जानत अंतरगत कौ भाइ॥
॥७५८॥१३७६॥

राग रामकली

रोवति महरि फिरति बिततानी।
बार-बार लै कंठ लगावति, अतिहिं सिथिल भई पानी॥
नंद-सुवन कैं पाइ परी लै, दौरि महरि तब आइ।
ब्याकुल भई लाड़िली मेरी, मोहन देहु जिवाइ॥
कछु पढ़ि-पढ़ि कर, अंग परस करि, बिष अपनौ लियौ झारि।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर गाड़ू डारि॥
॥७५९॥१३७७॥

राग रामकली

लोचन दए कुँवरि उघारि।
कुँवर देख्यौ नंद कौ तब सकुची अंग सम्हारि॥
बात बूझति जननि सौं री कहा है यह आज।
मरत तैं तू बची प्यारी करति है कह लाज॥
तब कहति तोहिं कारैं खाई कछु न रहि सुधि गात।
सूर प्रभु तोहिं ज्याइ लीन्ही कही कुँवरि सौं मात॥
॥७६०॥१३७८॥

राग सारंग

बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगायौ, मुख चूम्यौ दियौ घरहिं पठाई॥
धन्य कोखि वह महरि जसोमति, जहाँ अवतर्‌यौ यह सुत आई।
ऐसौ चरित तुरतहीं कीन्हौं, कुँवरि हमारी मरी जिवाई॥
मनहीं मन अनुमान कियौ यह, बिधिना जोरी भली बनाई।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, ब्रज-घर-घर यह घैरु चलाई॥
॥७६१॥१३७९॥

राग सुघरई

भले कान्ह हो बिषहिं उतार्‌यो। नाम गारुड़ी प्रगट्यौ तिहारो।
जननि कहति मेरौ सुत बारौ। युवति कहतिं हम तन धौं निहारौ।
अब को निकरै साँझ सवारौ। जान्यौ ब्रजहिं बसत ऐसौ कारौ।
यह निज मंत्र न हिय तैं बिसारौ। बहुरि करौ कहुँ करै पसारौ।
सूरदास-प्रभु सबहिन प्यारौ। ताहि डसन जाकौ हियौ उजारौ॥
॥७६२॥१३८०॥

राग रामकली

नीकैं बिषहिं उतार्‌यौ स्याम।
बड़े गारुड़ी अब हम जाने, संगहिं रहत सु काम॥
ऐसौ मंत्र कहाँ तुम पायौ, बहुत कियौ यह काम।
मरी आनि राधिका जिवाई, टेरत एकहि नाम॥
हम समझीं यह बात तुम्हारी, जाहु आपनैं धाम।
सूर स्याम मनमोहन नागर, हँसि बस कीन्हीं बाम॥७६३॥
॥१३८१॥

राग रामकली

हँसि बस कीन्ही घोष-कुमारि।
बिबस भई तन की सुधि बिसरी, मन हरि लियौ मुरारि ॥
गए स्याम ब्रज-धाम आपनैं, जुवति मदन-सर मारि।
लहर उतारि राधिका-सिर तैं, दई तरुनिनि पै डारि ॥
करतिं बिचार सुंदरी सब मिलि, अब सेवहु त्रिपुरारि।
माँगहु यहै देहु पति हमकौं, सूर-सरन बनवारि ॥७६४॥
॥१३८२॥

चीर-हरन-लीला *राग जैतश्री*

भवन रवन सबही बिसरायौ।
नंद-नँदन जब तैं मन हरि लियौ, बिरथा जनम गँवायौ ॥
जप, तप, ब्रत, संजम, साधन तैं, द्रवित होत पाषान।
जैसैं मिलै स्याम सुंदर बर, सोइ कीजै, नहिं आन ॥
यहै मंत्र दृढ़ कियौ सबनि मिलि, यातैं होइ सुहोइ।
वृथा जनम जग मैं जिनि खोवहु, ह्याँ अपनौ नहिं कोइ ॥
तब प्रतीत सबहिनि कौं आई, कीन्हौ दृढ़ बिस्वास।
सूर स्यामसुंदर पति पावैं, यहै हमारी आस ॥७६५॥
॥१३८३॥

राग आसावरी

गौरी-पति पूजतिं ब्रजनारि।
नेम धर्म सौं रहति क्रिया-जुत, बहुत करतिं मनुहारि ॥
यहै कहतिं पति देहु उमापति गिरिधर नंद-कुमार।
सरन राखि लीजै सिव संकर तनहिं त्रसावत मार ॥
कमल-पुहुप मालूर-पत्र-फल नाना सुमन सुवास।
महादेव पूजति मन बच करि सूर स्याम की आस ॥७६६॥
॥१३८४॥

राग रामकली

सिव सौं बिनय करतिं कुमारि।
जोरि कर, मुख करतिं अस्तुति, बड़े प्रभु त्रिपुरारि ॥

सीत भीत न करतिँ सुंदरि, कृस भईँ सुकुमारि।
छहौं रितु तप करतिँ नीकैं, गेह-नेह बिसारि॥
ध्यान धरि, कर जोरि, लोचन मूँदि, इक-इक जाम।
बिनय अंचल छोरि रबि सौं, करतिँ हैं सब बाम॥
हमहिँ होहु दयाल दिन-मनि, तुम बिदित संसार।
काम अति तनु दहत दीजै, सूर हरि भरतार॥७६७॥
॥१३८५॥

राग नटनारायन

रबि सौं बिनय करतिँ कर जोरे।
प्रभु अंतरजामी, यह जानी, हम कारन जल खोरे॥
प्रगट भए प्रभु जलही भीतर, देखि सबनि कौ प्रेम।
मींजत पीठि सबनि के पाछैं, पूरन कीन्हौ नेम॥
फिरि देखैँ तौ कुँवर कन्हाई, मींजत रुचि सौं पीठि।
सूर निरखि सकुचीँ ब्रज-जुवतीँ, परी स्याम-तन दीठि॥७६८॥
॥१३८६॥

राग देवगंधार

अति तप देखि कृपा हरि कीन्हौ।
तन की जरनि दूरि भई सबकी, मिलि तरुनिनि सुख दीन्हौ॥
नवल किसोर ध्यान जुवतिनि मन, वहै प्रगट दरसायौ।
सकुचि गईँ अँग-बसन सम्हारतिँ, भयौ सबनि मनभायौ॥
मन-मन कहति भयौ तप पूरन, आनँद उर न समाई।
सूरदास-प्रभु लाज न आवति, जुवतिनि माँझ कन्हाई॥
॥७६९॥१३८७॥

राग सारंग

हँसत स्याम ब्रज-घर कौं भागे।
लोगनि कहतिँ सुनावतिँ, मोहन करन लँगरई लागे॥
हम अस्नान करतिँ जल-भीतर, मींडत पीठि कन्हाई।
कहा भयौ जो नंद महर-सुत हमसौं, करत ढिठाई॥
लरिकाई तबहीँ लौं नीकी चारि बरष कै पाँच।
सूर जाइ कहिहौँ जसुमति सौं, स्याम करत ये नाच॥७७०॥
॥१३८८॥

राग सारंग

प्रेम विवस सब ग्वालि भईं।
उरहन देन चली जसुमति कौं, मनमोहन के रूप रईं ॥
पुलक अंग अँगिया उर दरकी, हार तोरि कर आपु लईं।
अंचल चीरि, घात उर नख करि, यह मिस करि नँद-सदन गईं ॥
जसुमति माइ कहा सुत सिखयौ, हमकौ जैसे हाल किए।
चोली फारि हार गहि तोरे, देखौ उर नख-घात दिए ॥
अंचल चीरि अभूपन तोरे, घेरि धरत उठि भागि गए।
सूर महरि मन कहति स्याम धौं, ऐसे लायक कबहिं भए ॥७७१॥
॥१३८६॥

राग गौरी

महरि स्याम कौं बरजति काहैं न।
जैसे हाल किए हरि हमकौं, भए कहूँ जग आहैं न ॥
और बात इक सुनौ स्याम की, अतिहिं भए हैं ढीठ।
बसन बिना अस्नान करति हम, आपुन मींड़त पीठ ॥
आपु कहति मेरौ सुत बारौ, हियौ उघारि दिखाऊँ।
सुनतहु लाज कहत नहिं आवै तुमकौं कहा लजाऊँ ॥
यह बानी जुवतिनि मुख सुनि कै, हँसि बोली नँदरानी।
सूर स्याम तुम लायक नाहीं, बात तुम्हारी जानी ॥७७२॥
॥१३६०॥

राग गौरी

बात कहौ जो लहै, बहै री।
बिना भीति तुम चित्र लिखति हौ, सो कैसैं निबहै री ॥
तुम चाहति हौ गगन-तरैयाँ, माँगैं कैसैं पावहु।
आवत हीं मैं तुम लखि लीन्ही, काहि मोहिं कहा सुनावहु ॥
चोरी रही, छिनारौ अब भयौ, जान्यौ ज्ञान तुम्हारौ।
औरै गोप-सुतनि नहिं देखौ, सूर स्याम है बारौ ॥७७३॥
॥१३६१॥

राग मलार

ग्वालिनि हैं घरहीं की बाढ़ी।
निसि अरु दिन प्रति देखति हौं, अपनैं हीं आँगन ठाढ़ी ॥

कबहिं गुपाल कंचुकी फारी, कब भए ऐसे जोग।
अबहिं नैंकु खेलन सीखे हैं, यह जानत सब लोग॥
नितहीं झगरत हैं मनमोहन, देखि प्रेम-रस-चाखी।
सूरदास-प्रभु अटक न मानत, ग्वाल सबै हैं साखी ॥७७४॥
॥१३९२॥

राग गौरी

इहिं अंतर हरि आइ गए।
मोर-मुकुट पीतांबर काछे, कोमल अंग भए॥
जननि बुलाइ बाहँ गहि लीन्हौ, देखहु री मदमाती।
इनहीं कौं अपराध लगावति, कहा फिरति इतराती।
सुनिहैं लोग मष्ट अबहूँ करि, तुमहिं कहाँ की लाज।
सूर स्याम मेरौ माखन-भोगी, तुम आवतिं बेकाज ॥७७५॥
॥१३९३॥

राग केदारौ

अबहीं देखे नवल किसोर।
घर आवत हीं तनक भए हैं, ऐसे तन के चोर॥
कछु दिन करि दधि-माखन-चोरी अब चोरत मन मोर।
बिबस भई, तन-सुधि न सम्हारति, कहति बात भई भोर॥
यह बानी कहतहीं लजानी समुझ भई जिय-ओर।
सूर स्याम-मुख निरखि चली घर, आनँद लोचन लोर ॥७७६॥
॥१३९४॥

राग नटनारायन

ब्रज घर गईँ गोप-कुमारि।
नैंकहूँ कहुँ मन न लागत, काम धाम बिसारि॥
मात-पितु कौ डर न मानतिं, सुनतिं नाहिं न गारि।
हठ करतिं, बिरुझातिं, तब जिय जननि-जानतिं बारि॥
प्रातहीं उठि चलीं सब मिलि, जमुन-तट सुकुमारि।
सूर-प्रभु ब्रत देखि इनकौ, नहिंन परत सम्हारि ॥७७७॥
॥१३९५॥

राग गौरी

जमुना-तट देखे नँद-नंदन ।
मोर-मुकुट, मकराकृत-कुंडल, पीत-बसन, तन चंदन ॥
लोचन तृप्त भए दरसन तैं उर की तपति बुझानी ।
प्रेम-मगन तब भई सुंदरी, उर गदगद, मुख-बानी ॥
कमल-नयन तट पर हैं ठाढ़े, सकुचहिं मिलि ब्रज-नारी ।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, ब्रत-पूरन पगधारी ॥७७८॥
॥१३९६॥

राग नट

बनत नहीं जमुना कौ ऐबौ ।
सुंदर स्याम घाट पर ठाढ़े, कहौ कौन बिधि जैबौ ॥
कैसैं बसन उतारि उतारि धरैं हम, कैसैं जलहिं समैबौ ।
नंद-नँदन हमकौं देखैंगे, कैसैं करि जु अन्हैबौ ॥
चोली, चीर, हार लै भाजत, सो कैसैं करि पैबौ ।
अंकम भरि-भरि लेत सूर-प्रभु, काल्हि न इहिं पथ ऐबौ ॥
॥७७९॥१३९७॥

राग रामकली

कैसैं बनै जमुना-न्हान ।
नंद कौ सुत तीर बैठौ, बड़ौ चतुर सुजान ॥
हार तोरै, चीर फारै, नैन चलै चुराइ ।
काल्हि धोखैं कान्ह मेरी, पीठि मींजी आइ ॥
कहति जुवती बात, सुनि सब, थकित भईं ब्रज-नारि ।
सूर-प्रभु कौ ध्यान धरि मन, रबिहिं बाहँ पसारि ॥७८०॥
॥१३९८॥

राग गूजरी

अति तप करति घोष-कुमारि ।
कृष्न पति हम तुरत पावैं, काम-आतुर नारि ॥
नैन मूँदतिं दरस-कारन, स्रवन सब्द बिचारि ।
भुजा जोरतिं अंक भरि हरि, ध्यान उर अँकवारि ॥
सरद ग्रीषम डरति नाहीं, करतिं तप तनु गारि ।
सूर-प्रभु, सर्वज्ञ स्वामी, देखि रीझे भारि ॥७८१॥१३९९॥

राग धनाश्री

ब्रज-बनिता रबि कौं कर जोरैं।
सीत-भीति नहिं करतिं छहौं रितु, त्रिबिध काल जल खोरैं ॥
गौरी-पति पूजतिं, तप साधतिं, करत रहतिं नित नेम।
भोग-रहित निसि जागि चतुर्दसि, जसुमति-सुत कैं प्रेम ॥
हमकौं देहु कृष्न पति ईस्वर, और नहीं मन आन।
मनसा बाचा कर्म हमारैं, सूर स्याम कौ ध्यान ॥
॥७८२॥१४००॥

राग रामकली

नीकैं तप कियौ तनु गारि।
आपु देखत कदम पर चढ़ि, मानि लियौ मुरारि ॥
बर्ष भर ब्रत-नेम-संजम, स्रम कियौ मोहिं काज।
कैसे हूँ मोहिं भजै कोऊ, मोहिं बिरद की लाज ॥
धन्य ब्रत इन कियौ पूरन, सीत तपति निवारि।
काम-आतुर भजीं मोकौं, नव तरुनि ब्रज-नारि ॥
कृपा-नाथ कृपाल भए तब, जानि जन की पीर।
सूर-प्रभु अनुमान कीन्हौ, हरौं इनके चीर ॥
॥७८३॥१४०१॥

राग बिलावल

बसन हरे सब कदम चढ़ाए।
सोरह सहस गोप-कन्यनि के, अंग-अभूषन स-हित चुराए ॥
नीलांबर, पाटंबर, सारी, सेत पीत चुनरी, अरुनाए।
अति बिस्तार नीप तरु तामैं, लै-लै जहाँ-तहाँ लटकाए ॥
मनि-आभरन डार डारनि प्रति, देखत छबि मनहीं अँटकाए।
सूर, स्याम जु तिनि ब्रत पूरन, कौ फल डारनि कदम फराए ॥
॥७८४॥१४०२॥

राग सूही

आपु कदम चढ़ि देखत स्याम।
बसन अभूषन सब हरि लीन्हे, बिना बसन जल-भीतर बाम ॥

मूँदत नैन ध्यान धरि हरि कौ, अंतरजामी लीन्ही जान।
बार-बार सविता सौं माँगति, हम पावैं पति स्याम सुजान॥
जल तैं निकसि आइ तट देख्यौ, भूषन चीर तहाँ कछु नाहिं।
इत-उत देखि चकित भईं सुंदरि, सकुचि गईं फिरि जल ही माहिं॥
नाभि प्रजंत नीर मैं ठाढी, थर-थर अँग काँपतिं सुकुमारि।
को लै गयौ बसन आभूषन, सूर स्याम उर प्रीति बिचारि॥
॥७८५॥१४०३॥

राग रामकली

आवहु निकसि घोष-कुमारि।
कदम पर तैं दरस दीन्हौ, गिरिधरन बनवारि॥
नैन भरि ब्रत फलहिं देखौ, फर्‌यौ है द्रुम डार।
ब्रत तुम्हारौ भयौ पूरन, कह्यौ नंद-कुमार॥
सलिल तैं सब निकसि आवहु, बृथा सहतिं तुषार।
देत हौं किन लेहु मोसौं, चीर, चोली हार॥
बाहँ टेकि बिनै करौ मोहिं, कहत बारंबार।
सूर-प्रभु के आइ आगैं, करहु सब सिंगार॥७८६॥
॥१४०४॥

राग रामकली

ग्वालिनि अपने चीरहिं लै री।
जल तैं निकसि-निकसि तट, दोउ कर जोरि सीस दै-दै री॥
कत हौ सीत सहति ब्रज-सुंदरि, ब्रत पूरन सब भै री।
मेरे कहैं आइ पहिरौ पट, कृस तन हेम जरै री॥
हौं अंतरजामी जानत सब, अति यह पैज करै री।
करिहौं पूरन काम तुम्हारौ, रास सरद-निसि ठै री॥
संतत सूर स्वभाव हमारौ, कत भै-काम डरै री।
कौनेहुँ भाव भजै कोउ हमकौं, तिन तन-ताप हरै री॥७८७॥
॥१४०५॥

राग रामकली

हमारे अंबर देहु मुरारी।
लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल-माँझ उघारी।

तट पर बिना बसन क्यौं आवैं, लाज लगति है भारी।
चोली हार तुमहिं कौं दीन्हौं, चीर, हमहिं द्यौ डारी॥
तुम यह बात अचंभौ भाषत, नाँगी आवहु नारी।
सूर स्याम कछु छोह करौ जू, सीत गई तनु मारी॥७८८॥
॥१४०६॥

राग आसावरी

हा हा करतिँ घोष-कुमारि।
सीत तैं तन कँपत थर-थर, बसन देहु मुरारि॥
जौ पुरुष तिय-अंग देखै, कहत दूषन भारि।
नैंकु नहिं तुम छोह आनत, गईँ हिम सब मारि॥
मनहिं मन अतिहीं भयौ सुख, देखिकै गिरिधारि।
सूर-प्रभु अतिहीं निठुर भए, नंद-सुत बनवारि॥७८९॥
॥१४०७॥

राग बिलावल

लाज ओट यह दूरि करौ।
जोइ मैं कहौं करौ तुम सोई, सकुच बापुरिहिं कहा करौ॥
जल तैं तीर आइ कर जोरहु, मैं देखौं तुम बिनय करौ।
पूरन ब्रत अब भयौ तुम्हारौ, गुरुजन-संका दूरि करौ॥
अब अंतर मोसौं जनि राखहु, बार-बार हठ बृथा करौ।
सूर स्याम कहैं चीर देत हौं, मो आगैं सिंगार करौ॥७९०॥
॥१४०८॥

राग गूजरी

जल तैं निकसि तीर सब आवहु।
जैसैं सबिता सौं कर जोरे, तैसेहिं जोरि दिखावहु॥
नव बाला हम, तरुन कान्ह तुम, कैसैं अंग दिखावैं।
जलही मैं सब बाहँ टेकि कै देखहु स्याम रिझावैं॥
ऐसैं नहिं रीझौं मैं तुम सौं, तटहीं बाहँ उठावहु।
सूरदास-प्रभु कहत सबनि सौं बस्त्र हार तब पावहु॥७९१॥
॥१४०९॥

राग बिलावल

हमारे देहु मनोहर चीर।
काँपति, सीत तनहिं अति व्यापत, हिम सम जमुना-नीर॥
मानहिंगी उपकार रावरौ, करौ कृपा बलबीर।
अतिहीं दुखित प्रान, बपु परसत प्रबल प्रचंड समीर॥
हम दासी, तुम नाथ हमारे, चितवतिं जल मैं ठाढ़ी।
मानहु बिकच कुमुदिनी ससि सौं, अधिक प्रीति उर बाढ़ी॥
जौ तुम हमैं नाथ कै जान्यौ, यह हम माँगैं देहु।
जल तैं निकसि आइ बाहिर ह्वै, बसन आपने लेहु॥
कर धरि सीस गईं हरि-सन्मुख, मन मैं करि आनंद।
ह्वै कृपाल सूरज-प्रभु अंबर दीन्हे परमानंद॥७६२॥
॥१४१०॥

राग जैतश्री

तरुनीं निकसि निकसि तट आईं।
पुनि-पुनि कहत लेहु पट-भूषन, जुवती स्याम बुलाईं॥
जल तैं निकसि भईं सब ठाढ़ी, कर अँग उर पर दीन्हे।
बसन देहु आभूषन राखहु, हा हा पुनि-पुनि कीन्हे॥
ऐसैं कहा बतावति हौ मोहिं, बाहँ उठाइ निहारौ।
कर सौं कहा अंग उर मूँदौ, मेरे कहैं उघारौ॥
सूर स्याम सोइ-सोइ हम करिहैं, जोइ-जोइ तुम सब कैहौ।
सैहैं दाउँ कबहुँ हम तुमसौं, बहुरि कहाँ तुम जैहौ॥
॥७६३॥१४११॥

राग रामकली

ललन तुम ऐसे लाड़ लड़ाए।
लै करि चीर कदम पर बैठे, किन ऐसैं ढँग लाए॥
हा हा करतिं, कंचुकी माँगतिं, अंबर दिए मन भाए।
कीन्ही प्रीति प्रगट मिलिबे कौं, सबके सकुच गँवाए॥
दुख अरु हाँसी सुनौ सखी री, कान्ह अचानक आए।
सूर स्याम कौ मिलन सखी अब, कैसैं दुरत दुराए॥७६४॥
॥१४१२॥

राग नट

सोरह सहस घोष-कुमारि।
देखि सबकौं स्याम रीझे, रहीं भुजा पसारि।
बोलि लीन्हो कदम कैं तर, इहाँ आवहु नारि।
प्रगट भए तहँ सबनि कौं हरि, काम-दंद निवारि॥
बसन भूषन सबनि पहिरे, हरष भईं सुकुमारि।
सूर-प्रभु गुन भले हैं सब, ऐसे तुम बनवारि॥
॥७६५॥१४१३॥

राग नट

दृढ़ व्रत कियौ मेरैं हेत।
धन्य धनि कह्यौ नंद-नंदन, जाहु सबै निकेत॥
करौं पूरन काम तुम्हरौ, सरद-रास रमाइ।
हरष भईं यह सुनत गोपी, रहीं सीस नवाइ॥
सबनि कौं अँग परसि, कीन्हौ सुफल व्रत ब्यवहार।
सूर-प्रभु सुख दियौ मिलि कै, ब्रज चल्यौ सुकुमार॥
॥७६६॥१४१४॥

राग सूहा

व्रत पूरन कियौ नंद-कुमार। जुवतिनि के मेटे जंजार॥
जप तप करि तनु अब जनि गारौ। तुम घरनी मैं कंत तुम्हारौ॥
अंतर सोच दूरि करि डारौ। मेरौ कह्यौ सत्य उर धारौ॥
सरद-रास तुम आस पुराऊँ। अंकम भरि सबकौं उर लाऊँ॥
यह सुनि सब मन हरष बढ़ायौ। मन-मन कह्यौ कृष्न पति पायौ॥
जाहु सबै घर घोष-कुमारी। सरद-रास दैहौं सुख भारी॥
सूर स्याम प्रगटे गिरिधारी। आनँद सहित गईं घर नारी॥
॥७६७॥१४१५॥

राग आसावरी

सिव संकर हमको फल दीन्हौ।
पुहुप, पान, नाना फल, मेवा, षट-रस अर्पन कीन्हौ॥
पाइ परीं जुवतीं सब यह कहि, धन्य-धन्य त्रिपुरारी।
तुरतहिं फल पूरन हम पायौ, नंदसुवन गिरिधारी॥

विनय करतिँ सविता, तुम सरि को, पय अंजलि, कर जोरी।
सूर स्याम पति तुम तैँ पायौ, यह कहि घरहिँ बहोरी॥
॥७१८॥१५१६॥

दूसरी चीर-हरन-लीला *राग सूहो*

नंद-नँदन बर गिरिवरधारी। देखत रीझी घोष-कुमारी॥
मोर मुकुट पीतांबर काछे। आवत देखे गाइनि पाछे॥
कोटि इंदु-छबि वदन बिराजै। निरखि अंग प्रति मन्मथ लाजै॥
स्रुति कुंडल छबि रवि नहिँ तूलै। दसन-दमक-द्युति दामिनि भूलै॥
नैन-कमल मृग-सावक मोहै। सुक-नासा पटतर कौं को है॥
अधर-बिंब-फल पटतर नाहीँ। विद्रुम अरु बंधूक लजाहीँ॥
देखत रीझि रहीँ ब्रजनारी। देह गेह की सुरति बिसारी॥
यह मन मैं अनुमान कियौ तब। जप-तप-संजम-नेम करैं अब॥
बार-बार सबिताहिँ मनावैँ। नंद-नँदन पति देहुँ सुनावैँ॥
नेम-धर्म-तप-साधन कीजै। सिव सौँ माँगि कृष्न पति लीजै॥
बर्ष दिवस कौ नेम लेइ सब। रुद्रहिँ सेवहु मन-बच-क्रम अब॥
दृढ़ विस्वास बरत कौँ कीन्हौ। गौरी-पति-पूजन मन दीन्हौ॥
षट-दस-सहस जुरीँ सुकुमारी। ब्रत साधतिँ नीकैँ तन गारी॥
प्रात उठैँ जमुना-जल खोरैँ। सीत उष्न कहुँ अंग न मोरैँ॥
पति कैँ हेत नेम तप साधैँ। संकर सौँ यह कहि अवराधैँ॥
कमल-पत्र मालूर चढ़ावैँ। नैन मूँदि यह ध्यान लगावैँ॥
हमकौँ पति दीजै गिरिधारी। बड़े देव तुम हौ त्रिपुरारी॥
और कछू नहिँ तुमसौँ माँगैँ। कृष्न-हेत यह कहि पालागैँ॥
ऐसैहिँ करत बहुत दिन बीते। प्रभु अंतरजामी मन चीते॥
एक दिवस आपुन आए तहँ। नव तरुनी अस्नान करतिँ जहँ॥
बसन धरे जल-तीर उतारी। आपुन जल पैठीँ सुकुमारी॥
कृष्न-हेत अस्नान करैँ जहँ। सबके पाछैं आपुन ह्वै तहँ॥
मीँजत पीठि प्रीति अति बाढ़ी। चकृत भईँ जुवतीँ सब ठाढ़ी॥
देखे नँद-नंदन गिरिधारी। ब्रत-फल प्रगट भए बनवारी॥
सकुचि अंग जब पैठि लुकावैँ। बार-बार हरि अंकम लावैँ॥
लाज नहीँ आवति है तुमकौँ। देखत बसन बिना सब हमकौँ॥
हँसत चले तब नंद-कुमार। लोगनि सुनवतिँ करतिँ पुकार॥

हार चीर लै चले पराई। हाँक दई कहि नंद-दुहाई॥
डारि बसन भूषन तव भागे। स्याम करन अब ढीठौ लागे॥
भागैं कहाँ बचौगे मोहन। पाछैं आइ गईं तुव गोहन॥
तन की सुधि-सम्हार कछु नाहीं। बसन अभूषन पहिरति जाहीं॥
चीर फटे कंचुकि-बँद छूटे। लेत न बनत हार-लर टूटे॥
प्रेम-सहित मुख खीझति जाहीं। झूठहिं बार-बार पछिताहीं॥
गईं सबै तिय नंद महर-घर। जसुमति पास गईं सब दर-दर॥
देखौ महरि स्याम के ये गुन। ऐसे हाल करे सबके उन॥
चोली, चीर, हार बिखराए। आपुन भागि इतहिं कौं आए॥
जमुना-तट कोउ जान न पावै। संग सखा लिए पाछैं धावै॥
तुम सुत कौं बरजहु नँदरानी। गिरिधर भली करत नहिं बानी॥
लाज लगति इक बात सुनावत। अंचल छोरि हियौ दिखरावत॥
यह देखत हँसि उठीं जसोदा। कछु रिस,कछु मन मैं करि मोदा॥
आइ गए तिहिं समय कन्हाई। बाहँ गही लै तुरत दिखाई॥
तनक-तनक कर तनक अँगुरियाँ। तुम जोबन भरीं नवल बहुरियाँ॥
जाहु घरहिं तुमकौं मैं चीन्हीं। तुम्हरी जाति जानि मैं लीन्ही॥
तुम चाहति सो इहाँ न पैहौ। और बहुत ब्रज-भीतर लैहौ॥
बार बार कहि कहा सुनावति। इन बातनि कछु लाज न आवति॥
देखहु री ये भाव कन्हाई। कहाँ गई तव की तरुनाई॥
महरि तुमहिं कछु दूषन नाहीं। हमकौं देखि-देखि मुसुकाहीं॥
इनके गुन कैसैं कोउ जानै। औरै करत और धरि बानै॥
देन उरहनौ तुमकौं आईं। नीकी पहिरावनि हम पाईं॥
चलीं सबै जुवती घर-घर कौं। मन मैं ध्यान करति हैं हरि कौं॥
बरष दिवस तप पूरन कीन्हे। नंद-सुवन कौं तन-मन दीन्हे॥
प्रात होत जमुना फिरि आईं। प्रथम रहे चढ़ि कदम कन्हाई॥
तीर आइ जुवती भईं ठाढ़ी। उर-अंतर हरि सौं रति बाढ़ी॥
कह्यौ चलौ जमुना-जल खोरैं। अंग अंग आभूषन छोरैं॥
चोली छोरैं हार उतारैं। कर सौं सिथिल केस निरवारैं॥
इत-उत चितवनि लोग निहारैं। कह्यौ सबनि अब चीर उतारैं॥
बसन अभूषन धरे उतारी। जल-भीतर सब गईं कुमारी॥
माघ-सीत कौ भीत न मानैं। षट ऋतु के गुन सम करि जानैं॥
बार-बार बूड़ैं जल माहीं। नैंकहुँ जल कौं डरपति नाहीं॥

प्रातहिं तैं इक जाम नहाहीं। नेम धर्म हीं मैं दिन जाहीं॥
इतनौ कष्ट करैं सुकुमारी। पति कैं हेत गुवर्धन-धारी॥
अति तप करतिं देखि गोपाला। मन मैं कह्यौ धन्य ब्रज-बाला॥
हरि अंतर्जामी सब जानी। छिन-छिन की बहु सेवा मानी॥
व्रत-फल इनहिं प्रगट दिखरावौं। बसन हरौं लै कदम चढ़ावौं॥
तन साधन तप कियौ कुमारी। भज्यौ मोहिं कामातुर नारी॥
सोरह सहस गोप-सुकुमारी। सबके बसन हरे बनवारी॥
हरत बसन कछु बार न लागी। जल-भीतर जुवती सब नाँगी॥
भूषन बसन सबै हरि ल्याए। कदम-डार जहँ-तहँ लटकाए॥
ऐसौ नीप-वृच्छ बिस्तारा। चीर हार धौं कितक हजारा॥
सबै समाने तरुवर डारा। यह लीला रची नंद-कुमारा॥
हार चीर मान्यौ तरु फूल्यौ। निरखि स्याम आपुन अनुकूल्यौ॥
नेम सहित जुवती सब न्हाईं। मन-मन सविता विनय सुनाई॥
मूँदे नैन ध्यान उर धारे। नंद-नँदन पति होहिं हमारे॥
रवि करि विनय सिवहिं मन लीन्हौ। हृदय माँझ अवलोकन कीन्हौ॥
त्रिपुर-सदन त्रिपुरारि त्रिलोचन। गौरीपति पशुपति अघ-मोचन॥
गरल-असन, अहि-भूषन-धारी। जटा धरन, सिर गंगा प्यारी॥
करति विनय यह माँगतिं तुम सौं। करहु कृपा हँसि कै आपुन सौं॥
हम पावैं सुत-जसुमति कौ पति। यहै देहु करि कृपा देव, रति॥
नित्य नेम करि चलीं कुमारी। एक जाम तन कौं हिम गारी॥
ब्रज-ललना कह्यौ नीर जुड़ाईं। अति आतुर ह्वै तट कौं धाईं॥
जल तैं निकसि तरुनि सब आईं। चीर अभूषन तहाँ न पाईं॥
सकुचि गईं जल-भीतर धाई। देखि हँसत तरु चढ़े कन्हाई॥
बार-बार जुवती पछिताहीं। सबके बसन अभूषन नाहीं॥
ऐसौं कौन सबनि लै भाग्यौ। लेतहु ताहि बिलंब न लाग्यौ॥
माघ-तुषार जुवति अकुलाहीं। ह्याँ कहुँ नंद-सुवन तौ नाहीं॥
हम जानी यह बात बनाई। अंबर हरि लै गए कन्हाई॥
हौ कहुँ स्याम विनय सुनि लीजै। अंबर देहु कृपा करि जीजै॥
थर-थर अंग कँपतिं सुकुमारी। देखि स्याम नहिं सके सम्हारी॥
इहिं अंतर प्रभु बचन सुनायौ। व्रत कौ फल दरसन सब पायौ॥
कहा कहतिं मोसौं ब्रज-बाला। माघ-सीत कत होतिं बिहाला॥
अंबर जहाँ बताऊँ तुमकौं। तौ तुम कहा देहुगी हमकौं॥

तन मन अर्पन तुमकौं कीन्हौ। जौ कछु हुतौ सु तुमकौं दीन्हौ ॥
और कहा लैहौ जू हमसौं। मह माँगति हैं अंबर तुमसौं ॥
यह सुनि हँसे दयाल मुरारी। मेरौ कह्यौ करौ सुकुमारी ॥
जल तैं निकसि सबै तट आवहु। तबहिं भलैं अंबर तुम पावहु ॥
भुजा पसारि दीन ह्वै भाषहु। दोउ कर जोरि-जोरि तुम राखहु ॥
सुनहु स्याम इक बात हमारी। नगन कहूँ देखियै न नारी ॥
यह मति आपु कहाँ धौं पाई। आजु सुनी यह बात नवाई ॥
ऐसी साध मनहिं मैं राखहु। यह बानी मुख तैं जनि भाषहु ॥
हम तरुनी तुम तरुन कन्हाई। बिना बसन क्यौं देहिं दिखाई ॥
पुरुष जाति तुम यह कह जानौ। हा हा यह मुख मैं जनि आनौ ॥
तौ तुम बैठि रहौ जलहीं सब। बसन अभूषन नहिं चाहति अब ॥
तबहि देहुँ जल बाहर आवहु। बाँह उठाइ अंग दिखरावहु ॥
ऋत हौ सीत लहति सुकुमारी। सकुचि देहु जलहीं मैं डारी ॥
फर्‍यौ कदम ब्रत फरनि तुम्हारैं। अब कह लज्जा करति हमारैं ॥
लेहु न आइ आपुने ब्रत कौं। मैं जानत या ब्रत के घत कौं ॥
नीकैं ब्रत कीन्हौ तनु गारी। ब्रत ल्यायौ धरि मैं गिरिधारी ॥
तुम मन-कामनि पूरन करिहौं। रास-रंग रचि-रचि सुख भरिहौं ॥
यह सुनि कै मन हर्ष बढ़ायौ। ब्रत कौ पूरन फल हम पायौ ॥
छाँड़हु तुम यह टेक कन्हाई। नीर माहिं हम गईं जड़ाई ॥
आभूषन सब आपुहिं लेहू। चीर कृपा करि हमकौं देहू ॥
हा हा लागैं पाइ तिहारैं। पाप होत है जाड़नि मारैं ॥
आजुहि तैं हम दासी तुम्हारी। कैसैं दिखावैं अंग उघारी ॥
अंग दिखाएहिं अंबर पैहौ। नातरु ऐसेहिं दिवस गँवैहौ ॥
मेरे कहैं निकसि सब आवहु। थोरैंहिं हमकौ भलौ मनावहु ॥
मुहाँचही तरुनी मुसुकानी। यह आपुन थोरी करि जानी ॥
जोइ-जोइ कहौ सु तुमकौं सोहै। आज तुम्हारी पटतर को है ॥
हमरी पति सब तुम्हरैं हाथा। तुमहिं कहौ ऐसी ब्रजनाथा ॥
तप तनु गारि कियौ जिहिं कारन। सो फल लग्यौ नीप-तरु-डारन ॥
आवहु निकसि लेहु पट भूषन। यह लागै हमकौं सब दूषन ॥
अब अंतर कत राखति हमसौं। बारंबार कहत हौं तुमसौं ॥
गोपिनि मिलि यह बात बिचारी। अब तौ टेक परे बनवारी ॥
चलहु न जाइ चीर अब लेहीं। लाज छाँड़ि उनकौं सुख देहीं ॥

जल तैं निकसि तीर सब आईं । बार-बार हरि हरषि बुलाईं ॥
बैठि गईं तरुनी सकुचानी । देहु स्याम हम अतिहिं लजानी ॥
छाँड़ि देहु यह बात सयानी । वैसेहिं करौ कही जो बानी ॥
कर कुच अंग ढाँकि भईं ठाढ़ी । बदन नवाइ लाज अति बाढ़ी ॥
देहु स्याम अंबर अब डारी । हा हा दासी सबै तुम्हारी ॥
ऐसैं नहीं बसन तुम पावहु । बाहँ उठाइ अंग दिखरावहु ॥
कह्यौ मानि जुवतिनि कर जोरे । पुनि-पुनि जुवती करति निहोरे ॥
धन्य-धन्य कहि श्री गोपाला । निहचै ब्रत कीन्हौ ब्रज-बाला ॥
आवहु निकट लेहु सब अंबर । चोली हार सुरँग पाटंबर ॥
निकट गईं सुनि कै यह बानी । तरुनी नगन अंग अकुलानी ॥
भूषन बसन सबनि कौं दीन्हौ । तिनकैं हेत कृपा हरि कीन्हौ ॥
चीर अभूषन पहिरे नारी । कह्यौ तबहिं ऐसे बनवारी ॥
तब हँसि बोले कृष्न मुरारी । मैं पति तुम मेरी सब प्यारी ॥
तुमहिं हेत यह बपु ब्रज धार्‌यौ । तुम कारन बैकुंठ बिसार्‌यौ ॥
अब ब्रत करि तुम तनुहिं न गारौ । मैं तुमतैं कहुँ होत न न्यारौ ॥
मोहि कारन तुम अति तप साध्यौ । तन मन करि मोकौं आराध्यौ ॥
जाहु सदन अब सब ब्रज-बाला । अंग परसि मेटे जंजाला ॥
जुवतिनि बिदा दई गिरिधारी । गईं घरनि सब घोष-कुमारी ॥
बस्त्र-हरन-लीला प्रभु कीन्हौ । ब्रज-तरुनिनि ब्रत कौ फल दीन्हौ ॥
यह लीला स्रवननि सुनि भावै । औरनि सिखवै आपुन गावै ॥
सूर स्याम जन के सुखदाई । दृढ़ताई मैं प्रगट कन्हाई ॥
॥७९६॥१४१७॥

यज्ञ-पत्नी-लीला

राग बिलावल

इक दिन हरि हलधर-सँग ग्वारन । गए बन-भीतर गोधन चारन ॥
सकल ग्वाल मिलि हरि पैं आए । भूख लगी कहि वचन सुनाए ॥
हरि कह्यौ जज्ञ करत तहँ बाम्हन । जाहु उनहिं ढिग भोजन माँगन ॥
ग्वाल तुरत तिनकैं ढिग आए । हरि हलधर के वचन सुनाए ॥
भोजन देहु भए वै भूखे । यह सुनि कै वै ह्वै गए रूखे ॥
जज्ञ-हेत हम करी रसोई । ग्वालनि पहिलैं देहिं न सोई ॥
ग्वाल सकल हरि पैं चलि आए । हरि सौं तिनके वचन सुनाए ॥
हरि हलधर सौं हँसि कही बानी । अबिगत की गति उन नहिं जानी ॥

तब ग्वालनि सौं कह्यौ बुझाई। तियनि पास तुम माँगहु जाई ॥
उनकैं हिय दृढ़ भक्ति हमारी। मानि लेहिं वै बात तुम्हारी ॥
ग्वाल-बाल तीयनि पैं आए। हाथ जोरि कै सीस नवाए ॥
हरि भोजन माँग्यौ है तुमसौं। आज्ञा देहु कहैं सो उनसौं ॥
तिन धनि भाग आपनौ मान्यौ। जीवन जन्म सफल करि जान्यौ ॥
भोजन बहु प्रकार तिनि दीन्हौ। काहूँ अपनैं सिर धरि लीन्हौ ॥
ग्वालनि संग तुरत वै धाईं। अपने मन मैं हर्ष बढ़ाईं ॥
काहूँ पुरुष निवार्‌यौ आइ। कहाँ जाति है री अतुराइ ॥
तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानी। तन तजि चली बिरह अकुलानी ॥
धन्य-धन्य वै परम सभागी। मिलीं जाइ सबहिनि तैं आगी ॥
तब हरि तिनसौं कहि समुझाई। सुनौ तिया तुम काहैं आई ॥
नारी पतिव्रत मानै जोई। चारि पदारथ पावै सोई ॥
तियनि कह्यौ जग झूठ सगाई। हम तौ हैं तुम्हरी सरनाई ॥
प्रभु कह्यौ पतिव्रत करौ सदाई। तुमकौं यहे धर्म सुखदाई ॥
प्रभु-आज्ञा तैं घर कौं आईं। पुरुष करत तिनि की बड़ियाईं ॥
धनि-धनि तुम हरि-दरसन पायौ। हम पढ़ि-गुनि कै सब बिसरायौ॥
ब्रह्मादिक खोजत नित जिनकैं। साच्छात देख्यौ तुम तिनकौं ॥
वे हैं सकल जगत के स्वामी। और सबनि के अंतरजामी ॥
अब हम चरन सरन हैं आए। तब हरि उनके दोष छमाए ॥
ग्वालनि मिलि हरि भोजन कीन्हौ। भाव तियनि कौ मन धरि लीन्हौ॥
भक्ति भाव सौं जो हरि ध्यावै। सो नर नारि अभय-पद पावै ॥
यह लीला सुनि गावै जोई। हरि की भक्ति सूर तिहिं होई ॥

॥८००॥

॥१४१८॥

यज्ञ-पत्नी-बचन *राग बिलावल*

जान देहु गोपाल बुलाई।
उर की प्रीति प्रान कैं लालच, नाहिंन परति दुराई ॥
राखौ रोकि बाँधि दृढ़ बंधन, कैसैं हूँ करि त्रास।
यह हठ अब कैसैं छूटत हैं, जब लगि है उर स्वास ॥
साँच कहौं मन बचन कर्म करि, अपने मन की बात।
तन तजि जाइ मिलौंगी हरि सौं, कत रोकत तहँ जात ॥

अवसर गएँ बहुरि सुनि सूरज, कह कीजैगी देह।
बिछुरत हंस बिरह कैं सूलनि, झूठे सबै सनेह॥
॥८०१॥१४१९॥

राग सारंग

देखन दै पिय मदन गुपालहिं।
हा हा हो पिय पाइ लगति हौं, जाइ सुनन दै बेनु-रसालहिं॥
लकुट लिए काहैं तन त्रासत, पति बिनु-मति बिरहिनि बेहालहिं।
अति आतुर आरूढ़-अधिक-छबि, ताहि कहा डर है जम कालहिं॥
मन तौ पिय पहिलैंहीं पहुँच्यौ, प्रान तहीं चाहत चित चालहिं।
कहि धौं तू अपने स्वारथ कौं, रोकि कहा करिहै खल खालहिं॥
लेहि सम्हारि सु खेह देह की, को राखै इतने जंजालहिं।
सूर सकल सखियनि तैं आगैं, अबहीं मूढ़ मिलति नँद-लालहिं॥
॥८०२॥१४२०॥

राग सारंग

देखन दै बृंदाबन-चंदहिं।
हा हा कंत मानि बिनती यह, कुल-अभिमान छाँड़ि मति-मंदहिं॥
कहि क्यौं भूलि धरत जिय औरै, जानत नाहिं पावन नँद-नंदहिं।
दरसन पाइ आइहौं अबहीं, करन सकल तेरे दुख-दंदहिं॥
सठ समुझाएहुँ समुझत नाहीं, खोलत नहीं कपट के फंदहिं।
देह छाँड़ि प्राननि भई प्रापत, सूर सु प्रभु-आनँद-निधि-कंदहिं॥
॥८०३॥१४२१॥

राग कल्यान

रति बाढ़ी गोपाल सौं।
हा हा हरि लौं जान देहु प्रभु, पद परसति हौं भाल सौं॥
सँग की सखी स्याम-सन्मुख भईं, मोहि परीं पसु-पाल सौं॥
पर-बस देह, नेह अंतरगत, क्यौं मिलौं नैन-बिसाल सौं॥
सठ हठ करि तूही पछितैहै, यहै भेंट तोहिं बाल सौं।
सूरदास गोपी तनु तजिकै, तन्मय भई नँद-लाल सौं॥
॥८०४॥१४२२॥

राग सारंग

पिय जनि रोकहि जान दै।
हौं हरि-बिरह-जरी जाँचति हौं, इती बात मोहिं दान दै॥
बैन सुनौं, विहरत बन देखौं, इहिं सुख हृदय सिरान दै।
पाछैं जो भावै सोइ कीजौ, साँच कहति हौं आन दै॥
जौ कछु कपट किए जाँचति हौं, सुनहु कथा यह कान दै।
मन क्रम वचन सूर अपनौ प्रन, राखौंगी तन-प्रान दै॥८०५॥
॥१४२३॥

राग बिलावल

हरि देखन की साध भरी।
जान न दई स्याम सुंदर पै सुनि साँई तैं पोच करी॥
कुल-अभिमान हटकि हठि राखी, तैं जिय मैं कछु और धरी।
जज्ञ-पुरुष तजि करत जज्ञ-विधि, तातैं कहि कह चाढ़ सरी?॥
कहँ लगि समुझाऊँ सूरज सुनि, जाति मिलन की औधि टरी।
लेहु सम्हारि देह पिय अपनी, विनु प्रानिनि सब सौंज धरी॥
॥८०६॥१४२४॥

राग बिलावल

हरिहिं मिलत काहे कौं घेरी।
दरस देखि आवौं श्रीपति कौ, जान देहु हौं होति हौं चेरी॥
पालागौं छाँड़हु अब अंचल, वार-वार विनती करौं तेरी।
तिरछौ करम भयौ पूरब कौ, प्रीतम भयौ पाइ की बेरी॥
यह लै देह मारु सिर अपनैं, जासौं कहत कंत तुम मेरी।
सूरदास सो गई अगमनै, सब सखियनि सौं हरि-मुख हेरी॥
॥८०७॥१४२५॥

राग सारंग

जान दै स्यामसुँदर लौं आजु।
सुनि हो कंत लोक-लज्जा तैं, बिगरत है सब काजु॥
राखौ रोकि पाइ बंधन कै, अरु रोकौ जल नाजु।
हौं तौ तुरत मिलौंगी हरि कौं, तू घर बैठौ गाजु॥

चितवति हुती झरोखैं ठाढ़ी, किये मिलन कौ साजु ।
सूरदास तनु त्यागि छिनकु मैं, तज्यौ कंत कौ राजु ॥८०८॥
॥१४२६॥

राग कान्हरौ

आजु दीपति दिव्य दीपमालिका ।
मनहु कोटि रवि चंद्र कोटि छवि मिटि जो गई निशि कालिका ॥
गोकुल सकल विचित्र मणि मंडित सोभित झाक झव झालिका ।
गज-मोतिन के चौक पुराय विच विच लाल प्रवालिका ॥
बर श्रृंगार बिरचि राधा जू चली सकल ब्रज बालिका ।
झलमल दीप समीप सौंज भरि लेकर कंचन थालिका ॥
करि प्रगट मदन मोहन पिय थकित विलोकि विसालिका।
गावत हँसत गवाय हँसावत पटकि पटकि करतालिका ॥
नंद-द्वार आनंद बढ़्यौ अति देखियत परम रसालिका ।
सूरदास कुसुमनि सुर बरषत कर संपुट करि मालिका ॥
॥८०६॥१४२७॥

राग कान्हरौ

सुरभी कान्ह जगाय खरिकहि बल मोहन बैठे हैं हठ री।
पिस्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाझा गूँझा मटरी ॥
घर-घर तैं नर-नारि मुदित मन गोपी ग्वाल जुरे बहु ठट री ।
टेरि टेरि जब देति सबनि कौं, लै लै नाम बुलाइ निकट री ॥
देतिं असीस सकल ब्रजभामिनि यसुमति देति हरषि बहु पटरी ।
सूर रसिक गिरिधर चिरजीवौ नंद महर कौ नागर नट री ॥
॥८१०॥१४२८॥

गोबर्धन-पूजा तथा गोबर्धन-धारण

राग बिलावल

नंद महर सौं कहति जसोदा, सुरपति की पूजा बिसराई ।
जाकी कृपा बसत ब्रज-भीतर, जाकी दीन्ही भई बड़ाई ॥
जाकी कृपा दूध-दधि-पूरन, सहस मथानी मथति सदाई ।
जाकी कृपा अन्न-धन मेरैं, जाकी कृपा नवौ निधि आई ॥
जाकी कृपा पुत्र भए मेरैं, कुसल रहौ बलराम कन्हाई ।
सूर नंद सौं कहति जसोदा, दिन आए अब करहु चँड़ाई ॥८११॥
॥१४२९॥

राग गौरी

येई हैं कुलदेव हमारे।
काहूँ नहीं और मैं जानति, ब्रज गोधन रखवारे॥
दीपमालिका के दिन पाँचक गोपिनि कहौ बुलाई।
बलि सामग्री करैं चँड़ाई, अबहीं कहौ सुनाई॥
लईं बुलाइ महरि महरानी, सुनतहिं आईं धाई।
नंद-घरनि तब कहति सखिनि सौं, कत हौ रही भुलाई।
भूलीं कहा कहौ सो हमसौं, कहति कहा डरपाई।
सूरदास सुरपति की पूजा, तुम सबहिनि बिसराई॥८१२॥
॥१४३०॥

राग गौरी

चौंकि परीं सब गोकुल-नारी।
भली कही सबही सुधि भूलीं, तुमहि करी सुधि भारी॥
कह्यौ महरि सौं करौ चँड़ाई, हम अपनैं घर जाति।
तुमहूँ करौ भोग सामग्री, कुल-देवता अमाति॥
जसुमति कह्यौ अकेली हौं मैं तुमहुँ संग मोहिं दीजौ।
सूर हँसतिं ब्रज-नारि महरि सौं, ऐहैं साँच पतीजौ॥८१३॥
॥१४३१॥

राग कल्यान

कहि मोहिं भली कीन्ही महरि।
राज-काजहिं रहौं डोलत, लोभ ही की लहरि॥
छमा कीजौ मोहिं, हौं प्रभु तुमहिं गयौ भुलाइ।
ग्वाल सौं कहि तुरत पठयौ, ल्याउ महर बुलाइ॥
नंद कह्यौ उपनंद ब्रज के, अरु महर बृषभानु।
अबहिं जाइ बुलाइ आनौ, करत दिन अनुमान॥
आइ गए दिन अबहिं नेरैं, करत मन यह ज्ञान।
सूर नंद बिनै करत, कर जोरि सुरपति-ध्यान॥८१४॥
॥१४३२॥

राग बिलावल

नंद महर उपनंद बुलाए।
बहु आदर करि बैठक दीन्हीं, महर महर मिलि सीस नवाए॥

मनहीं मन सब सोच करत हैं, कंस नृपति कछु माँगि पठाए।
राज-अंस-धन जो कछु उनकौ, विन माँगैं हम सो दै आए॥
बूझत महर बात नँद महरहिं, कौन काज हम सबनि बुलाए।
सूर नंद यह कही गोपनि सौं, सुरपति-पूजा के दिन आए॥८१५॥
॥१४३३॥

राग बिलावल

हँसत गोप कहि नंद महर सौं, भली भई यह बात सुनाई।
हमहिं सबनि तुम बोलि पठाए, अपनैं जिय सब गए डराई॥
काहे कौं डरपे हम बोलत, हँसत कहत बातैं नँदराई?।
बड़ौ सँदेह कियौ हम तुमकौं, ब्रजवासी हम तुम सब भाई॥
करौ विचार इंद्र-पूजा कौ, जो चाहौ सो लेहु मँगाई।
बरष दिवस कौ दिवस हमारौ, घर-घर नेवज करौ चँड़ाई॥
अन्नकूट-बिधि करत लोग सब, नेम सहित करि-करि पकवान।
महरि-बिनै कर जोरि इंद्र सौं, सूर अमर करि दीजै कान्ह॥
॥८१६॥१४३४॥

राग बिलावल

गावत मंगलचार महर-घर।
जसुमति भोजन करति चँड़ाई, नेवज करि-करि धरति स्याम डर॥
देखें रहौ न छुवै कन्हैया, कह जानै वह देव-काज पर।
और नहीं कुलदेव हमारैं, कै गोधन, कै ये सुरपति वर॥
करति बिनय कर जोरि जसोदा, कान्हहिं कृपा करौ करुनाकर।
और देव तुम सम कोउ नाहीं सूर करौ सेवा चरननि-तर॥
॥८१७॥१४३५॥

राग सूही

बाजति नंद-अवास बधाई।
बैठे खेलत द्वार आपनैं, सात बरस के कुँवर कन्हाई॥
बैठे नंद सहित बृषभानुहिं, और गोप बैठे सब आई।
थापैं देत घरनि के द्वारैं, गावतिं मंगल नारि बधाई॥
पूजा करत इंद्र की जानी, आए स्याम तहाँ अतुराई।
बार बार हरि बूझत नंदहिं, कौन देव की करत पुजाई॥

इंद्र बड़े कुल-देव हमारे, उनतैं सब यह होति बड़ाई।
सूर स्याम तुम्हरे हित-कारन, यह पूजा हम करत सदाई॥
॥८१८॥१४३६॥

राग आसावरी

नंद कह्यौ घर जाहु कन्हाई।
ऐसे मैं तुम जाहु कहूँ जनि, अहो महरि सुत लेहु बुलाई॥
सोइ रहौ मेरी पलिका पर, कहति महरि हरि सौं समुझाई।
बरष दिवस कौ महा महोच्छव, को आवै धौं कौन सुभाई॥
और महर-ढिग स्याम बैठि कै, कीन्हौ एक बिचार बनाई।
सुपनैं आजु मिल्यौ मोकौं, इक बड़ौ पुरुष अवतार जनाई॥
कहन लग्यौ मो सौं ये बातैं, पूजत हौ तुम काहि मनाई।
गिरि गोबर्धन देवनि कौ मनि, सेवहु ताकौं भोग चढ़ाई॥
भोजन करै सबनि के आगैं, कहत स्याम यह मन उपजाई।
सूरदास प्रभु गोपनि आगैं, यह लीला कहि प्रगट सुनाई॥
॥८१९॥१४३७॥

राग धनाश्री

सुनी ग्वाल यह कहत कन्हाई।
सुरपति की पूजा कौं मेटत, गोबर्धन की करत बड़ाई॥
फैलि गई यह बात घरनि घर, हरि कह जानै देव-पुजाई।
हलधर कहत सुनहु ब्रजबासी, यह महिमा तुम काहु न पाई॥
कोउ-कोउ कहत करौ अब ऐसेहिं, कोउ यह कहत कहै को भाई।
सूरदास कोउ सुनि सुख पावत, कोउ बरजत सुरपतिहिं डराई॥
॥८२०॥१४३८॥

राग धनाश्री

मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई, तौ गोबर्धन मानौ॥
दूध दही तुम कितनौ लैहौ, गोसुत बढ़ैं अनेक।
कहा पूजि सुरपति सौं पायौ, छाँड़ि देहु यह टेक॥
मुँह माँगे फल जौ तुम पावहु, तौ तुम मानहु मोहिं।
सूरदास प्रभु कहत ग्वाल सौं, सत्य बचन करि दोहि॥८२१॥
॥१४३९॥

राग धनाश्री

छाँड़ि देहु सुरपति की पूजा।
कान्ह कह्यौ गिरि गोवर्धन तैं और देव नहिं दूजा।
गोपनि सत्य मानि यह लीन्ही, बड़ौ देव गिरिराज।
मोहिं छाँड़ि ये परवत पूजत, गरब कियौ सुरराज॥
पर्वत सहित धोइ ब्रज डारौं, देउँ समुद्र बहाइ।
मेरी बलि औरहिं लै अरपत, इनकी करौं सजाइ॥
राखौं नहीं इन्हैं भूतल पर, गोकुल देउँ बुड़ाइ।
सूरदास-प्रभु जाकौ रच्छक, संगहिं संग रहाइ॥८२२॥
॥१४४०॥

राग बिलावल

गोकुल कौ कुल-देवता, श्री गिरिधर लाल।
कमल नयन घन-साँवरौ वपु-बाहु-बिसाल॥
हलधर ठाढ़े कहत हैं, हरि के ये ख्याल।
करता हरता आपुहीं, आपुहिं प्रतिपाल॥
बेगि करौ मेरे कहैं, पकवान रसाल।
वह मघवा बलि लेत है, नित करि-करि गाल॥
गिरि गोबर्धन पूजियै, जीवन गोपाल।
जाके दीन्हैं बाढ़हीं गैया, गन-जाल॥
सब मिलि भोजन करत हैं, जहँ-तहँ पसु-पाल।
सूरदास डरपत रहैं, जातैं जम काल॥८२३॥१४४१॥

राग बिलावल

हमारी बात सुनौ ब्रजराज।
सुरपति कौ बलि-भाग न दीजै पूजौ यह गिरिराज॥
बरषैं मेघ गाइ सुख पैहै ह्वैहै ब्रज सुख साज।
सूरदास-प्रभु नंद-कुँवर कहै वेही कीजै काज॥८२४॥
॥१४४२॥

राग सारंग

तात गोवर्धन पूजहु जाइ।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई व्यंजन बहुत बनाइ॥

इहिं पर्वत तृन ललित मनोहर, सदा चरैं सुखगाइ।
कान्ह कहै सोइ कीजियै भैया, मघवा जाइ रिसाइ॥
भरि भरि सकट चले गिरि सन्मुख, अपनैं अपनैं चाइ।
सूरदास प्रभु आपुन भोगी, धरि स्वरूप गिरि राइ॥८२५॥
॥१४४३॥

राग बिलावल

ब्रज-घर-घर अति होत कुलाहल।
जहँ-तहँ ग्वाल फिरत उमँगे सब, अति आनंद उमाहल॥
मिलत परस्पर अंकम दै-दै, सकटनि भोजन साजत।
दधि लवनी मधु माट धरत लै, राम स्याम सँग राजत॥
मंदिर तैं लै धरत अजिर पर, षटरस की ज्यौनार।
डालनि भरि अरु कलस नए भरि, जोरत हैं परकार॥
सहस सकट मिष्टान्न अन्न बहु, नंद महर घरही के।
सूर चले सब लै घर-घर तैं, संग सुवन नँद जी के॥८२६॥
॥१४४४॥

राग नट

अति आनँद ब्रजबासी लोग।
भाँति-भाँति पकवान सकट भरि लै-लै चले छहूँ-रस-भोग॥
तीनि लोक कौ ठाकुर संगहिं तासौं कहत सखा हम-जोग।
आवत जात डगर नहिं पावत, गोबर्धन-पूजा-संजोग॥
कोउ पहुँचे कोउ रेंगत मग मैं कोउ घर तैं निकसे, कोउ नाहिं।
कोउ पहुँचाइ सकट घर आवत, कोउ घर तैं भोजन लै जाहिं॥
मारग मैं कोउ निर्तत आवत, कोउ गावत अपने रस माहिं।
सूर स्याम कौं जसुमति टेरति, बहुत भोर है हरि न भुलाहिं॥
॥८२७॥१४४५॥

राग कान्हरौ

सकट साजि सब ग्वाल चले मिलि गिरि-पूजा कैं काज।
घर-घर तैं मिष्टान्न चले बहु भाँति-भाँति के बाज॥
अति आनंद भरे मिलि गावत, उमड़े फिरत अहीर।
पैंड़ौ नहिं पावत तहँ कोऊ, ब्रजबासिनि की भीर॥

एक चले आवत ब्रज-तन कौं, इक ब्रज तैं बन-काज।
सूरदास तहँ स्याम सबनि कौं, देखियत है सिरताज ॥
॥८२८॥१४४६॥

राग नट नारायन

चली घर घरनि तैं ब्रजनारि।
मनौ इंद्र-बधूनि पंगति, लखति सोभा भारि ॥
पहिरि सारी सुरँग, पँचरँग, पट्ट-दस सिंगारि।
इहै इच्छा सबनि कैं मन स्याम-रूप निहारि ॥
सहित चंद्रावली ललिता राधिका करि त्यारि।
चली पूजा करन गिरि की, सूर सँग नर-नारि ॥८२६॥
॥१४४७॥

राग नट नारायन

बहुत जुरे ब्रजबासी लोग।
सुरपति-पूजा मेटि गोबर्धन-पूजा कैं संजोग ॥
जोजन बीस एक अरु अगरौ, डेरा इहिं अनुमान।
ब्रजबासी नर-नारि अंत नहिं, मानौ सिंधु-समान ॥
इक आवत ब्रज तैं इतहीं कौं, इक इततैं ब्रज जात।
नंद लिए तब ग्वाल सूर-प्रभु, आइ गए तहँ प्रात ॥८३०॥
॥१४४८॥

राग आसावरी

नंद करत गिरि की पूजा-विधि।
भोजन लै सब धरे छहूँ रस, कान्ह संग आठौ सिधि ॥
लै-लै आवत ग्वाल घरनि तैं, भोजन बहुत प्रकार।
व्यंजन देखि बहुत सुख पावत, तुरत करौ ज्यौनार।
जो हरि कहत करत सोइ-सोइ बिधि, पूजा की बहु भाँति ॥
माखन दधि पय तक्र धरत लै, जोरि जोरि सब पाँति।
को बरनै नाना बिधि व्यंजन, जे बनए नँद-नारि।
सूर स्याम की लीला अदभुत, कह बरनै मुख चारि ॥
॥८३१॥१४४६॥

राग नट नारायन

बिप्र बुलाइ लिए नँदराइ।
प्रथमारंभ जज्ञ कौ कीन्हौ, उठे बेद-धुनि गाइ॥
गोबर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ।
अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ॥
भाँति-भाँति ब्यंजन परसाए, कापै बरन्यौ जाइ।
सूर स्याम सौं कहत ग्वाल गिरि, जेवहिं कहौ बुझाइ॥
॥८३२॥१४५०॥

राग बिलावल

इंद्र सोच करि मनहिं आपनैं चक्रित बुद्धि बिचारत।
कहा करत, इनकौं मैं देखौं, कौन बिलँब पुनि मारत॥
अब ये करैं आपनैं मन सुख, मोकौं बनै सम्हारैं।
तब लौं रहौं, पूजि निबरैं ये, बचिहैं बैर हमारैं?॥
इतनौ सुख इनके कर रैहै, दुख है बहुत अगाध।
सूरदास सुरपति की बानी, मनहीं मन की साध॥
॥८३३॥१४५१॥

राग गौरी

चढ़ि बिमान सुर-गन नभ देखत।
लीला करत स्याम नूतन यह, फिरि फिरि गिरि तन पेखत॥
थकित भए सब जहँ तहँ मुनि-जन, ठौर-ठौर नर-नारि।
चिते रहे सब स्याम-बदन-तन, गति-मति सुरति बिसारि॥
पूजा मेटि इंद्र की पूजत, गोबर्धन-गिरिराज।
सूरदास सुरपति गर्बित भयौ, मैं देवनि सिर-ताज॥
॥८३४॥१४५२॥

राग केदार

कहत कान्ह नँद बाबा आवहु।
भोजन परसि धरे सब आगैं, प्रेम-सहित गिरिराज मनावहु॥
और नंद उपनंद बुलाए, कह्यौ सबनि सौं भोग लगावहु।
सुपने मैं देख्यौ इहिं मूरति, यहै रूप धरि ध्यान धियावहु॥

इक मन, इक चित अरपित करिकै, प्रगट देव-दरसन तुम पावहु।
सूर स्याम कहि प्रगट सबनि सौं, अपनैं कर लै क्यौं न जिवावहु॥
॥८३५॥१४५३॥

राग केदारौ

बिनती करत सकल अहीर।
कलस भरि-भरि ग्वाल लै-लै, सिखर ढारत छीर॥
चल्यौ बहि चहुँ पास तैं पय, सुरसरी जल ढारि।
बसन-भूषन लै चढ़ाए, भीर अति नर-नारि॥
मूँदि लोचन भोग अरप्यौ, प्रेम सौं रचि थार।
सबनि देखी प्रगट मूरति, सहस भुजा पसार॥
रुचि सहित गिरि सबनि आगैं, करनि लै-लै खाइ।
नंद-सुत महिमा अगोचर, सूर क्यौं कहि जाइ॥
॥८३६॥१४५४॥

राग नट

गिरिवर स्याम की अनुहारि।
करत भोजन अधिक रुचि यह, सहस भुजा पसारि॥
नंद कौ कर गहे ठाढ़े यहै, गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौं कहति देखि स्वरूप॥
यहै कुंडल, यहै माला, यहै पीत पिछौरि।
सिखर सोभा स्याम की छबि, स्याम-छबि गिरि जोरि॥
नारि बदरौला रही, बृषभानु-घर रखवारि।
तहाँ तैं उहिं भोग अरप्यौ, लियौ भुजा पसारि॥
राधिका-छबि देखि भूली, स्याम निरखैं ताहि।
सूर प्रभु-बस भई प्यारी, कोर लोचन चाहि॥
॥८३७॥१४५५॥

राग धनाश्री

देखहु री हरि भोजन खात।
सहस भुजा धरि उत जैंवत हैं, इतहिं कहत गोपनि सौं बात॥
ललिता कहति देखि हो राधा, जौ तेरैं मन बात समाइ।
धन्य सबै गोकुल के बासी, संग रहत त्रिभुवन के राइ॥

जेंवत देखि उतहि मुख कीनौ, अति आनँद गोकुल-नर-नारि।
सूरदास-स्वामी सुख-सागर, गुन-आगर, नागर, दैतारि॥
॥८३८॥१४५६॥

राग गौरी

यह लीला सब करत कन्हाई।
उत जेंवत गिरि गोबर्धन सँग, इत राधा सौं प्रीति लगाई॥
इत गोपनि सौं कहत जिंवावहु, उत आपुहिं जेंवत मन लाई।
आगैं धरे छहौं रस व्यंजन, बदरौला कौ लियौ मँगाई॥
अमर बिमान चढ़े नभ देखत, जै धुनि करि सुमननि बरसाई।
सूर स्याम सबके सुख-दाता, भक्त-हेतु अवतार सदाई॥
॥८३९॥१४५७॥

राग गौरी

गोपनि सौं यह कहत कन्हाई।
जो मैं कहत रह्यौ भयौ सोई, सुपनांतर प्रगट्यौ अब आई॥
जो माँग्यौ चाहौ सो माँगौ, पावहुगे जो जा मन भाई।
कहत नंद सब तुमहीं दीन्हौ, माँगतु हौं हरि की कुसलाई॥
कर जोरे नंद आगैं ठाढ़े, गोबर्धन की करत बड़ाई।
ऐसौ देव कहूँ नहिं देख्यौ, सहस भुजा धरि खात मिठाई॥
सदा तुम्हारी सेवा करिहौं, और देव नहिं करौं पुजाई।
सूर स्याम कौं नीकैं राखौ, कहत महर ये हलधर भाई॥८४०॥
॥१४५८॥

राग गौरी

अपनैं अपनैं टोल कहत ब्रजवासियाँ।
भोग भुगति लै चलौ, इंद्र के आसियाँ॥ध्रुव॥
सरद-कुहू-निसि जानि, दीपमालिका बनाई।
गोपनि कैं आनंद, फिरत उनमद अधिकाई॥
घर-घर थापैं दीजियै. घर-घर मंगलचार।
सात बरस कौ साँवरौ, खेलत नंद-दुवार॥
बैठि नंद उपनंद, बोलि बृषभानु पठाए।
सुरपति-पूजा देत, जानि तहँ गोबिंद आए॥

बार-बार हा-हा करहिँ, कहि बाबा यह बात।
घर-घर नेवज होत है, कौन देव की जात॥
कान्ह तुम्हारी कुसल, लागि इक मंत्र उपैहौं।
षटरस भोजन साजि, भोग सुरपति कौं देहौं॥
नंद कह्यौ चुचकारि कै, जाइ दमोदर सोइ।
बरस दिवस कौ दिवस है, महा महोत्सव होइ॥
तब हरि मंत्र विचार, तुरत गोपनि सौं कीन्हौ।
एक पुरुष मोहि आइ, आजु सुपनौ निसि दीन्हौ॥
सब देवनि कौ देवता, गिरि गोवर्धनराज।
ताहि भोग किन दीजियै, सुरपति कौ कह काज?॥
बाढ़ैं गोसुत-गाइ, दूध-दधि कौ कह लेखौ।
यह परचौ विदिमान, नैन अपनैं किन देखौ॥
तुम देखत बलि खाइगौ, मुहँ माँगे फल देइ।
गोप कुसल जौ चाहियै, गिरि गोवर्धन सेइ॥
गोपनि कियौ विचार, सकट सबहिनि मिलि साजे।
बहु विधि लै पकवान, चले सँग बाजत बाजे॥
इक तौ बन हीं बन चले, एक जमुन-तट भीर।
एक न पैंड़ौ पावहीं, उमड़े फिरत अहीर॥
इक घर तैं उठि चले, एक घर कौं फिरि जाहीं।
गावत गुन गोपाल, ग्वाल उमँगे न समाहीं॥
गोपनि कौ सागर भयौ, गिरि भयौ मंदर चारु।
रत्न भईं सब गोपिका, कान्ह बिलोवनहारु॥
ब्रज चौरासी कोस, फेर गोपनि के डेरा।
लाँबे चउवन कोस, आजु ब्रजबासि बसेरा॥
सबहिनि कैं मन साँवरौ, दीसै सबनि मँझारि।
कौतुक देखन देवता, आए लोक बिसारि॥
लीन्हे बिप्र बुलाइ, जग्य आरंभन कीन्हौ।
सुरपति-पूजा मेटि, भोग गोबर्धन दीन्हौ॥
दिवस दिवारी प्रातहीं, सब मिलि पूजे आइ।
आनँद प्रीति जु मानहीं, सब देखत बलि खाइ॥
प्रथम दूध अन्हाइ, बहुरि गंगाजल डार्‌यौ।
बड़ौ देवता जानि, कान्ह कौ मतौ बिचार्‌यौ॥

जैसे हैं गिरिराज जू, तैसौ अन्न कौ कोट।
मगन भए पूजा करैं, नर-नारी बड़-छोट॥
सहस भुजा गिरि धरे, करै भोजन अधिकाई।
नख सिख इक अनुहारि, मनौ दूसरौ कन्हाई॥
राधा सौं ललिता कहै, चलहु देखियै जाइ।
गहे अँगुरिया नंद की, ढोटा भोजन खाइ॥
पीत दुमालौ बन्यौ, कंठ मोतिनि की माला।
भूषन भुजा अनूप, झलमलत नैन बिसाला॥
स्याम की सोभा गिरि भयौ, गिरि की सोभा स्याम।
जैसैं परबत भात कौ, ढिग भैया बलराम॥
जैसी कनक पुरी जु, दिव्य रतननि सौं छाई।
बलि दीन्ही परभात, छाँह पूरब चलि आई॥
चहूँ ओर चक्रा धरे, चंदहिं पटतर सोइ।
ठौर ठौर बेदी रची, बहु बिधि पूजा होइ॥
जहाँ तहाँ दधि धर्‌यौ, कहौं कह उज्ज्वलताई।
उदधि सिखर ह्वै रह्यौ भात मय देह छुपाई॥
बदरौला बृषभानु कौं, रही बिलोवनहारि।
ताकी बलि वह देवता, लीन्ही भुजा पसारि॥
लै सब भोजन अरपि, गोप-गोपिनि कर जोरे।
अगिनित कीन्हे खाद, दास बरने कछु थोरे॥
इहि बिधि पूजा पूजिकै गोबिंद के गुन गाइ।
सूरदास सब सौं कही, लीला प्रगट सुनाइ॥८४१॥
॥१४५९॥

राग गौरी

स्याम कहत पूजा गिरि मानी।
जो तुम भक्ति भाव सौं अरप्यौ, देवराज सब जानी॥
तुम देखत भोजन सब कीन्हौ, अब तुम मोहि पत्याने।
बड़ौ देव गिरिराज गोबर्धन, इनहिं रहौ तुम माने॥
सेवा भली करी तुम मेरी, देव कही यह बानी।
सूर नंद मुख चूमत हरि कौ, यह पूजा तुम ठानी॥
॥८४२॥१४६०॥

राग गौरी

और नंद माँगौ कछु हमसौं।
जौ चाहौ सो देउँ तुरत हीं, कहत सबै गोपनि सौं॥
बल मोहन दोऊ सुत तेरे, कुसल सदा ये रहिहैं।
इनकौ कह्यौ करत तुम रहियौ, जब जोई ये कहिहैं॥
सेवा बहुत करी तुम मेरी, अब तुम सब घर जाहु।
भोग प्रसाद लेहु कछु मेरौ, गोप सबै मिलि खाहु॥
सुपनैं मैं हीं कह्यौ स्याम सौं, करौ हमारी पूजा।
सुरपति कौन बापुरौ, मोतैं और देव नहिं दूजा॥
इंद्र आइ बरसै जो ब्रज पर, तुम जनि जाहु डराइ।
सुनहु सूर सुत कान्ह तुम्हारौ, कहिहै मोहिं सुनाइ॥८४३॥
॥१४६१॥

राग सारंग

भली करी पूजा तुम मेरी।
बहुत भाव करि भोजन अरप्यौ, मानि लई मैं तेरी॥
सहस भुजा धरि भोजन कीन्हौं, तुम देखत बिदिमान।
मोहिं जानत है कुँवर कन्हैया, और नहीं कोउ आन॥
पूजा सब की मान लई मैं, जाहु घरनि ब्रज-लोग।
सूर स्याम अपनैं कर लीन्हे, बाँटत जूठन-भोग॥
॥८४४॥१४६२॥

राग बिलावल

बिनती करत नंद कर जोरैं, पूजा कह हम जानै नाथ।
हम हैं जीव सदा माया-बस, दरस दियौ मोहिं कियौ सनाथ॥
महा पतित मैं, तुम पावन प्रभु, सरन तुम्हारी आयौ तात।
तुमतैं देव और नहिं दूजौ, कोटि ब्रह्मंड रोम प्रति गात॥
तुम दाता, अरु तुमहिं भोगता, हरता-करता तुमहीं सार।
सूर कहा हम भोग लगायौ, तुमहीं भुलै दियौ संसार॥
॥८४५॥१४६३॥

राग बिलावल

यह पूजा मोहिं कान्ह बताई।
भूल्यौ फ़िरत द्वार देवनि कैं त्रिभुवनपति तुमकौं बिसराई॥

आपुहिं कृपा करी सुपनांतर, स्यामहिं दरस दियौ तुम आई।
ऐसे प्रभु कृपाल करुनामय, बालक की अति करी बड़ाई॥
गिरि-पाइनि लै हरि कौं पारत, हलधर कौं पाइनि तर नाई॥
सूर स्याम बलराम तुम्हारे, इनकौं कृपा करौ गिरिराई॥
॥८४६॥१४६४॥

राग बिलावल

ग्वाल कहत धनि धन्य कन्हैया।
बड़ौ देवता प्रगट बतायौ, यह कहि लेत बलैया॥
धन्य-धन्य गिरिराजनि के मनि, तुम सम और न दूजा।
तुम लायक कछु नाहिं हमरैं, को जानै तुम पूजा॥
गोप सबै मिलि कहत स्याम सौं, जौ कछु कह्यौ सो कीन्हौ।
सूर स्याम कहि-कहि यह बानी, देव मानि सुख लीन्हौ॥
॥८४७॥१४६५॥

राग गौड़ मलार

गोप उपनंद बृषभानु आए।
बिनय सब करत गिरिराज सौं जोरि कर, गए तन-ताप तुव दरस पाए॥
देवता बड़े तुम, प्रगट दरसन दियौ, प्रगट भोजन कियौ, सबनि देख्यौ।
प्रगट बानी कही, गिरिराज तुम सही, और तिहुँ भुवन नहिं कहूँ पेख्यौ॥
हँसत हरि मनहिं मन, तकत गिरिराज-तन, देव परसन भयौ करौ काजा।
सूर प्रभु प्रगट लीला कही सबनि सौं, चले घर घरनि अपने समाजा॥८४८॥१४६६॥

राग गौड़ मलार

देखि थकित गन-गंध्रव-सुर-मुनि।
धन्य नंद कौ सुकृत पुरातन, धन्य कही करि जै जै जै धुनि॥
धन्य-धन्य गोवर्धन पर्वत, करत प्रसंसा सुर-मुनि पुनि-पुनि।
आपुहिं खात कहत है गिरि कौं, यह महिमा देखी न कहूँ सुनि॥

यहै कहत अपनैं लोकनि गए, धनि ब्रजवासी बस कीन्हौ उनि।
सूर स्याम धनि-धनि ब्रज-बिहरत, धन्य-धन्य सब कहत गुननि गुनि ॥८४९॥
॥१४६७॥

राग नट नारायन

चले ब्रज-घरनि कौं नर नारि।
इंद्र की पूजा मिटाई, तिलक गिरि कौ सारि॥
पुलक अँग न समात उर मैं, महर महरि समाज।
अब बड़े हम देव पाए, गिरि गोवर्धन राज॥
इनहिं तैं ब्रज चैन रहिहै, माँगि भोजन खात।
यहै बैरा चलत ब्रज जन, सबनि मुख यह बात॥
सबै सदननि आइ पहुँचे, करत केलि बिलास।
सूर प्रभु यह करी लीला, इंद्र-रिस परकास॥८५०॥
॥१४६८॥

गिरिधारण-लीला

राग सारंग

ब्रज बासिनि मोकौं बिसरायौ।
भली करी बलि मेरी जो कछु, सो सब लै परबतहिं चढ़ायौ॥
मोसौं गर्व कियौ लघु प्रानी, ना जानियै कहा मन आयौ।
तैंतिस कोटि सुरनि कौ नायक, जानि-बूझि इन मोहिं भुलायौ॥
अब गोपनि भूतल नहिं राखौं, मेरी बलि मोहिं नहिं पहुँचायौ।
सुनहु सूर मेरैं मारत धौं, परबत कैसैं होत सहायौ॥८५१॥
॥१४६९॥

राग सोरठ

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ।
बज्र-घातनि करौं चुरकुट, देउँ धरनि मिलाइ॥
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ।
बरसि जल ब्रज धोइ डारौं लोग देउँ बहाइ॥
खात-खेलत रहे नीकैं, करी उपाधि बनाइ।
बरस दिन मोहिं देत पूजा, दई सोउ मिटाइ॥

रिस सहित सुरराज लीन्हे, प्रलय मेघ बुलाइ।
सूर सुरपति कहत पुनि-पुनि, परौ ब्रज पर धाइ ॥८५२॥
॥१४७०॥

राग मेघ मलार

सुनि मेघबर्त्त सजि सैन आए।
बल बर्त्त, वारि वर्त्त, पौन वर्त्त, बज्र, अग्नि बर्त्तक, जलद संग ल्याए ॥
घहरात गररात, दररात, हररात, तररात, झहरात माथ नाए।
कौन ऐसौ काज, बोले हम सुरराज, प्रलय के साज हमकौं बुलाए ॥
बरष-दिन-संयोग, देत हे मोहिं भोग, छुद्र-मति ब्रज-लोग, गर्व कीन्हौ।
मोहिं दयौ बिसराइ, पूज्यौ गिरिवर जाइ, परौ ब्रज धाइ आयसहि दीन्हौ ॥
कितिक ब्रज के लोग, रिस करी किहिं जोग, गिरि लियौ भोग फल तुर्त पैहै।
सूर सुरपति सुनौ, बयौ तैसौ लुनौ, प्रभु कहा गुनौ, गिरि संग बैहै ॥
॥८५३॥१४७१॥

राग मलार

बिनती सुनहु देव मघवापति।
कितिक बात गोकुल ब्रजबासी, बार-बार जो रिस अति ॥
आपुन बैठि देखियै कौतुक, बहुतै आयसु दीन्हौ।
छिन मैं बरसि प्रलय-जल पाटैं, खोज रहै नहिं चीन्हौ ॥
महा प्रलय हमरे जल बरसैं, गगन रहै भरि छाइ।
अछै बृच्छ वट बचत निरंतर, कह ब्रज गोकुल गाइ ॥
चले मेघ माथैं कर धरि कै, मन मैं क्रोध बढ़ाइ।
उमड़त चले इंद्र के पायक, सूर गगन रहे छाइ ॥८५४॥
॥१४७२॥

राग गौड़ मलार

मेघ-दल-प्रबल ब्रज-लोग देखैं।
चकित जहँ-तहँ भए, निरखि बादर नए, ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखैं ॥

ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि
अंधकाला।
चकित भए नंद, सब महर चक्रित भए, चकित नर-नारि हरि
करत ख्याला।
घटा घन घोर घहरात, अररात, दररात, थररात ब्रज लोग
डरपे।
तड़ित-आघात तररात, उतपात सुनि, नारि-नर सकुचि तन
प्रान अरपे॥
कहा चाहत होन, भई कबहूँ जौ न, कबहुँ आँगन भौन बिकल
डोलैं।
मेटि पूजा इंद्र, नंद-सुत गोबिंद, सूर-प्रभु आनँद करि कलोलैं॥
॥८५५॥१४७३॥

राग गौड़ मलार

सैन साजि ब्रज पर चढ़ि धावहिं।
प्रथम बहाइ देहिं गोबर्धन, ता पाछैं ब्रज खोदि बहावहिं॥
आहिरनि करी अवज्ञा प्रभु की, सो फल उनकौं तुरत दिखावहिं।
इंद्रहिं पेलि करी गिरि-पूजा, सलिल बरसि ब्रज-नाउँ मिटावहिं॥
बल समेत निसि-बासर बरसहिं, गोकुल बोरि पताल पठावहिं।
सूरदास सुरपति की आज्ञा, यह भूतल कहुँ रहन न पावहिं॥
॥८५६॥१४७४॥

राग मेघ मलार

बादर बहु उमड़ि घुमड़ि, बरषत ब्रज आए चढ़ि, कारे धौरे
धूमरे, धारे अति हीं जल।
चपला अति चमचमाति, ब्रज-जन सब अति डरात, टेरत सिसु-
पिता मातु, ब्रज मैं भयौ गलबल॥
गरजत धुनि प्रलय काल, गोकुल भयौ अंधजाल, चकित भए-
ग्वाल-बाल, घहरत नभ हलचल।
पूजा मेटी गुपाल, इंद्र करत यहै हाल, सूर स्याम राखौ ब्रज
हरबर अब गिरिवर बल॥
॥८५७॥१४७५॥

राग गौड़ मलार

गिरि पर बरषन लागे बादर।
मेघ वर्त्त, जल वर्त्त, सैन सजि, आए लै-लै आदर॥
सलिल अखंड धार धर टूटत, किये इंद्र मन सादर।
मेघ परस्पर यहै कहत हैं, धोइ करहु गिरि खादर॥
देखि देखि डरपत ब्रजबासी, अतिहिं भए मन कादर।
यहै कहत ब्रज कौन उबारै, सुरपति कियौ निरादर॥
सूर स्याम देखैं गिरि अपनैं, मेघनि कीन्हौ दादर।
देव आपनौ नहीं सम्हारत, करत इंद्र सौं ठादर॥
॥८५८॥१४७६॥

राग मलार

बतियाँ कहति हैं ब्रज-नारि।
धरति सैंतति धाम-बासन, नाहिं सुरति सम्हारि॥
पूजि आए गिरि गोबरधन, देतिं पुरुषनि गारि।
आपनौ कुलदेव सुरपति, धर्यौ ताहि बिसारि॥
दियौ फल यह गिरि गोबरधन, लेहु गोद पसारि।
सूर कौन उबारि लैहै, चढ़्यौ इंद्र प्रचारि॥८५९॥
॥१४७७॥

राग सोरठ

ब्रज के लोग फिरत बितताने।
गैयनि लै बन ग्वाल गए, ते, धाए आवत ब्रजहिं पराने॥
कोउ चितवत नभ-तन चकित ह्वै, कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने।
कोउ लै रहत ओट बृच्छनि की, अंध-धुंध दिसि-बिदिसि भुलाने॥
कोउ पहुँचे जैसैं-तैसैं गृह, कोउ ढूँढ़त गृह नहिं पहिचाने।
सूरदास गोवर्धन-पूजा कीन्हे कौ फल लेहु बिहाने॥८६०॥
॥१४७८॥

राग नट

तरपत नभ डरपत ब्रज-लोग।
सुरपति की पूजा बिसराई, लै दीन्हौ परवत कौं भोग॥

नंद सुवन यह बुधि उपजाई, कौन देव कह्यौ परवत जोग।
सूरदास गिरि बड़ौ देवता, प्रगट होइ ऐसैं संजोग ॥८६१॥
॥१४७९॥

राग नट

ब्रज-नर-नारि नंद जसुमति सौं, कहत स्याम ये काज करे।
कुल-देवता हमारे सुरपति, तिनकौं सब मिलि मेटि धरे॥
इंद्रहिं मेटि गोवर्धन थाप्यौ, उनकी पूजा कहा सरे।
सैंतत फिरत जहाँ-तहँ बासन, लरिकनि लै-लै गोद भरे॥
को करि लेइ सहाइ हमारी, प्रलय काल के मेघ अरे।
सूरदास सब कहत नारि नर, क्यौं सुरपति-पूजा बिसरे॥
॥८६२॥१४८०॥

राग बिलावल

राखि लेहु गोकुल के नायक।
भीँजत ग्वाल गाइ गोसुत सब, विषम बूँद लागत जनु सायक॥
बरषत मुसलधार सैनापति, महा मेघ मघवा के पायक।
तुम बिनु ऐसौ कौन नंद-सुत, यह दुख दुसह मेटिबे लायक॥
अघ-मर्दन बक-बदन-बिदारन बकी-बिनासन ब्रज सुखदायक।
सूरदास प्रभु तिनकी यह गति, जिनके तुमसे सदा सहायक॥
॥८६३॥१४८१॥

राग मलार

सरन अब राखि लै नंद-ताता।
घटा आईं गरजि, जुवति गईं मन लरजि, बीजु चमकति तरजि,
डरत गाता॥
और कोऊ नहीं, तुम धनी जहँ तहाँ, बिकल ह्वैकै कही, तुमहिं
नाता।
सूर प्रभु सुनि हँसत, प्रीति उर मैं बसति, इंद्र कौं कसत, हरि
जगत-धाता ॥८६४॥१४८२॥

राग बिलावल

राखि लेहु अब नंदकिसोर।
तुम जो इंद्र की मेटी पूजा, बरसत है अति जोर॥

ब्रजबासी तुम तन चितवत हैं, ज्यौं करि चंद चकोर।
जनि जिय डरौ, नैन जनि मूँदौ, धरिहौं नख की कोर॥
करि अभिमान इंद्र झरि लायौ, करत घटा घन घोर।
सूर स्याम कह्यौ तुम कौं राखौं बूँद न आवै छोर॥
॥८६५॥१४८३॥

राग मलार

तुम सुरपति कौ मान हर्‌यौ।
बरषत सुंड दंड धारा धर, छिति छिन इक मैं प्रलय कर्‌यौ॥
ऐरावत-आरूढ़ अग्र-घन, लघुता जानि जु रोष भर्‌यौ।
सिसु की वुद्धि करी मनमोहन, बलि मेटी कह काज सर्‌यौ।
देखे दीन दुखित नंदादिक, लीला गिरिवर करज धर्‌यौ।
सूरदास करुनामय माधौ, ब्रज सुख उनकौ गर्व हर्‌यौ॥
॥८६६॥१४८४॥

राग मलार

माधौ जू काँपत डरनि हियौ।
तुम जु इंद्र की पूजा मेटी, तातैं कोप कियौ॥
दामिनि खरग, बूँद सायक, सम घन जोधा ले संग।
हय-गय सरिस समीर दसहुँ दिसि, धनुष धुजा बहु रंग॥
सोभित सुभट प्रचारि पैज करि, भिरत न मोरत अंग।
तुम्हरैं कहत कियौ नँद-नंदन, सुरपति कौ व्रत भंग॥
बरषत प्रलय कियौ धर-अंबर, डरपत गोकुल गाउँ।
समरथ-नाथ सरन हौ, तुम बिनु और कौन पैं जाउँ॥
जैसैं अनल, व्याल-मुख, राखे, श्रीपति करौ सहाइ।
हमरैं तौ तुमहीं चिंतामनि, सब विधि दाइ उपाइ॥
जनि डर करहु सबै मिलि आवहु, या परवत की छाहँ।
बरषत मैं गोपाल बुलाए, अभय किये दै बाहँ॥
एक हाथ गोवर्धन राख्यौ, सात दिवस बल बीर।
सूरदास प्रभु ब्रज बासिनि के, ये हरता सब पीर॥
॥८६७॥१४८५॥

राग मलार

माधौ महा मेघ घिरि आयौ।
घर कौ गाइ बहोरौ मोहन, ग्वालनि टेरि सुनायौ॥

कारी घटा सुधूम देखियति, अति गति पवन चलायौ ।
चारौं दिसा चितै किन देखहु, दामिनि कौंधा लायौ ॥
अति घनस्याम सुदेस सूर-प्रभु, कर गहि सैल उठायौ ।
राखे सुखी सफल ब्रजबासी, सुरपति गरब नवायौ ॥८६८॥
॥१४८६॥

राग मलार

आजु ब्रज महा घटनि घन घेरौ ।
राखि स्याम अब कैं इहिं अवसर, सब चितवत मुख तेरौ ॥
कोटि छ्यानवे मेघ बुलाए, आनि कियौ ब्रज डेरौ ।
मुसलधार टूटें चहुँ दिसि तैं, ह्वै गयौ दिवस अँधेरौ ॥
इतनी सुनत जसोदा-नंदन, गोवर्धन-तन हेरौ ।
लियौ उठाइ सैल भुज गहि कै, महि तैं पकरि उखेरौ ॥
सात दिवस जल बरसि सिराने, हारि मानि मुख फेरौ ।
सूर सहाइ करी निज भुज-बल बूँद न आयौ नेरौ ॥
॥८६६॥१४८७॥

राग मलार

(गगन) मेघ घहरात थहरात गाता ।
चपला चमचमाति, चमकि नभ लहरात, राखि लै क्यौं न ब्रज नंद-ताता ॥
सुनत करुना बैन, उठे हरि बल-ऐन, नैन की सैन गिरि-तन निहारयौ ।
सबनि धीरज दियौ, उचकि मंदर लियौ, कह्यौ गिरिराज तुमकै उबारयौ ॥
करज कैं अग्र-भुज बाम गिरिवर धरयौ, नाम गिरिधर परयौ भक्त काजैं ।
सूर प्रभु कहत ब्रज-बासि-बासिनिनि, राखि तुम लियौ गिरिराज-राजैं ॥
॥८७०॥१४८८॥

राग गौरी

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ ।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोबर्धन करत सहाइ ॥

नंद गोप ग्वालनि के आगैं, देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौं ब्याकुल भएँ डोलत, रच्छा करै देवता आइ॥
सत्य बचन गिरि-देव कहत हैं, कान्ह लेहि मोहिं कर उचकाइ।
सूरदास नारी-नर ब्रज के, कहत धन्य तुम कुँवर कन्हाइ॥
॥८७१॥१४८९॥

राग मलार

बाम करज टेक्यौ गिरिराज।
गोपी-गाइ-ग्वाल-गोसुत कौ, दुख बिसर्‌यौ, सुख करत समाज॥
आनँद करत सकल गिरिवर-तर, दुख हार्‌यौ सबहिन बिसराइ।
चकृत भए देखत यह लीला, परत सबै हरि-चरननि धाइ॥
गिरिवर टेकि रहे बाएँ कर, दच्छिन कर लियौ सखनि उठाइ।
कान्ह कहत ऐसौ गोबर्धन, देखौ कैसौ कियौ सहाइ॥
गोप ग्वाल नंदादिक जहँ लौं, नंद-सुवन लियौ निकट बुलाइ।
सूरदास प्रभु कहत सबनि सौं, तुमहूँ मिलि टेकौ गिरि आइ॥
॥८७२॥१४९०॥

राग मलार

गिरि जनि गिरै स्याम के कर तैं।
करत बिचार सबै ब्रजबासी, भय उपजत अति उर तैं॥
लै-लै लकुट ग्वाल सब धाए, करत सहाय जु तुरतैं।
यह अति प्रबल, स्याम अति कोमल, रबकि-रबकि हरबर तैं॥
सप्त दिवस कर पर गिरि धार्‌यौ, बरसि थक्यौ अंबर तैं।
गोपी ग्वाल नंद-सुत राख्यौ, मेघ-धार जलधर तैं॥
जमलार्जुन दोउ सुत कुबेर के, तेउ उखारे जर तैं।
सूरदास प्रभु इंद्र-गर्ब हरि, ब्रज राख्यौ करवर तैं॥
॥८७३॥१४९१॥

राग मलार

नीकैं धरौ नंद-नँदन बल-बीर।
गिरि जनि परै, टरै नख तैं जनि, कौन सहैगौ भीर॥
चहुँ दिसि पवन झकोरत, घोरत मेघ-घटा गंभीर।
उनै-उनै बरषत गिरि ऊपर, धार अखंडित नीर॥

अंध-धुंध अंबर तैं गिरि पर, परत बज्र के तीर।
चमकि-चमकि चपला चकचौंधति, स्याम कहत मन धीर॥
कर जोरत, कुल देव मनावत, ब्रज के गोप-अहीर।
पय-पकवान-बिहान पूजिहैं, लै दधि-मधु-घृत-खीर॥
गोपी-ग्वाल, गाइ-गोसुत सब, रहैं सुख सहित सरीर।
सूर स्याम गिरि धर्यौ बाम कर, मेघ भए अति सीर॥
॥८७४॥१४६२॥

राग मलार

गिरिवर नीकैं धरौ कन्हैया।
देखे रहौ टरै जनि नख तैं, भुजा तनक सी भैया॥
जब जब गाढ़ परत ब्रज-लोगनि, तब करि लेत सहैया।
जननि जसोदा कर लै चापति, अति स्रम होत नन्हैया॥
देखत प्रगट धर्यौ गोबरधन, चकित भए नँदरैया।
पिता देखि ब्याकुल मनमोहन, तव इक बुद्धि उपैया॥
आवहु तात गहहु गोबरधन, गोपनि संग लेवैया।
जहाँ-तहाँ सबहिनि गिरि टेक्यौ, कान्हहिं ओत देवैया॥
स्याम कहत सब नंद गोप सौं, भलैं लियौ उचकैया।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, नंदहि हरष बढ़ैया॥
॥८७५॥१४६३॥

राग मलार

गिरिवर धर्यौ सखा सब कर तैं।
सब मिलि ग्वाल लकुटियनि टेक्यौ, अपने-अपने भुज के बर तैं॥
सात दिवस मूसल जलधारा, बरसतु है निसि दिन अंबर तैं।
अंतरिच्छ जल जात कहाँ यह, क्रोध-सहित फिरि बरसत झर तैं॥
गाइ गोप नंदादिक राख्यौ, बृथा बूँद सब नैंकु न थर तैं।
सूर गोपाल राखि गिरिवर-तर गोकुल-नर-नारी ब्रज घर तैं॥
॥८७६॥१४६४॥

बरसत मेघवर्त्त धरनी पर।
मूसलधार सलिल बरषतु है, बूँद न आवत भू-पर॥

चपला चमकि-चमकि चकचौंधति, करति सब्द-आघात ।
अंधाधुंधु पवनबर्त्तक घन, करत फिरत उतपात ॥
निसि सम गगन भयौ आच्छादित, बरषि-बरषि झर इंद ।
ब्रजबासी सुख-चैन करत सब, धरे गिरिवर गोबिंद ॥
मेघ बरषि जल सबै बढ़ाने, दिवि-गुन गए सिराइ ।
वैसोइ गिरि, वैसे ब्रजबासी, दूनौ हरष बढ़ाइ ॥
सात दिवस जल बरषि निसा दिन, ब्रज-घर-घर आनंद ।
सूरदास ब्रज राखि लियौ धरि, गिरिवर कर नँद-नंद ॥
॥८७७॥१४९५॥

राग मलार

बरषि-बरषि घन ब्रज-तन हेरत ।
मेघबर्त अपनी सैना कौं, खीझत है, फिरि टेरत ॥
कहा बरषि अब लौं तुम कीनौ, राखत जलहिं छुपाइ ।
मूसलधार बरषि जल पाटौ, सात दिवस भयौ आइ ॥
रिस करि-करि गरजत नभ, बरषत चाहत ब्रजहिं बहाइ ।
सूर स्याम गिरि गोबरधन धर्‌यौ, ब्रज जन कौं सुखदाइ ॥
॥८७८॥१४९६॥

राग मलार

बरषि-बरषि हहरे सब बादर ।
ब्रज के लोगनि धोइ बहावहु इंद्र हमहिं कह्यौ आदर ॥
कहा जाइ कैहैं प्रभु आगैं, करिहैं बहुत निरादर ।
हम बरषत परबत जल सोखत, ब्रजवासी सब सादर ॥
पुनि रिस करत, प्रलय-जल बरषत, कहत भए सब कादर ।
सूर गाइ गोसुत सब राखौ, गिरिवर धरि ब्रज-आदर ॥
॥८७९॥१४९७॥

राग धनाश्री

कहा होत जल महा प्रलै कौ ।
राख्यौ सैंति-सैंति जिहिं कारज, बचत नहीं कहुँ नैकौ ॥
भुव पर एक बूँद नहि पहुँची, निझरि गए सब मेह ।
बासर सात अखंडित धारा, बरषत हारे देह ॥

उदर भयौ बिनु नीर सबनि कौ, नाउँ रह्यौ है बादर।
सूर चले फिरि अमरराज पैं, ब्रज तैं भए निरादर ॥८८०॥
॥१४९८॥

राग मलार

मेघनि हारि मानि मुख फेर्यौ।
नीकैं गोप, बड़ै गोबर्धन, जब नीकैं ब्रज हेर्यौ॥
नीकैं गाइ, बच्छ सब नीकै, नीकैं बाल-गोपाल।
नीकैं बन, वैसीयै जमुना, मन मन भए बिहाल॥
गोकुल-ब्रज-बृंदाबन-मारग नैंकु नहीं जल-धार।
सूरदास प्रभु अगनित महिमा, कहा भयौ जलसार!
॥८८१॥१४९९॥

राग नट नारायन

मेघनि जाइ कही पुकारि।
दीन ह्वै सुरराज आगैं, अस्त्र दीन्हे डारि॥
सात दिन भरि बरसि ब्रज पर, गई नैकुँ न झारि।
अखँड धारा सलिल निझर्यौ, मिटी नाहि लगारि॥
धरनि नैकुँ न बूँद पहुँची, हरषे ब्रज-नर-नारि।
सूर घन सब इंद्र आगैं, करत यहै गुहारि॥
॥८८२॥१५००॥

राग गौरी

तुम बरषैं ब्रज कुसल पर्यौ।
तुम बरषत जल महा प्रलय कौ, यह कहि सोच कर्यौ॥
एक घरी जाके बरषे त, गगन अछादित होइ।
वे मघवा विह्वल मो आगैं, बात कहत हैं रोइ॥
सात दिवस भरि बरषि सिराने, तातैं भए निरास।
सूरदास सुरपति संकित भयौ, सुरनि बुलायौ पास॥
॥८८३॥१५०१॥

गोवर्धन की दूसरी लीला *राग बिलावल*

नंदहिं कहति जसोदा रानी। सुरपति पूजा तुमहिं भुलानी॥

यह नहिं भली तुम्हारी बानी। मैं गृह-काज रहौं लपटानी ॥
लोभहिं लोभ रहे हौ सानी। देव-काज की सुधि बिसरानी ॥
महरि कहति पुनि-पुनि यह बानी। पूजा के दिन पहुँचे आनी ॥
सूरदास जसुमति की बानी। नंदहिं खीझि-खीझि पछितानी ॥
॥८८४॥१५०२॥

राग बिलावल

नंद कह्यौ सुधि भली दिवाई। मैं तो राज-काज मन लाई ॥
नित प्रति करत यहै अधमाई। कुल-देवता-सुरति बिसराई ॥
कंस दई यह लोक बड़ाई। गाउँ दसक सरदार कहाई ॥
जलधि-बूँद ज्यौं जलधि समाई। माया जहँ की तहाँ बिलाई ॥
सूरदास यह कह नँदराई। चरन तुम्हारे सदा सहाई ॥
॥८८५॥१५०३॥

राग बिलावल

कहति महरि तब ऐसी बानी। इंद्रहिं की दीन्ही रजधानी ॥
कंस करत तुम्हरी अति कानी। यह प्रभु को है आसिष-बानी ॥
गोपनि बहुत बड़ाई मानी। जहाँ तहाँ यह चलति कहानी ॥
तुम घर मथियै सहस मथानी। ग्वारिनि रहति सदा बितितानी ॥
तृन उपजत उनहीं कैं पानी। ऐसे प्रभु की सुरति भुलानी ॥
सूर नंद मन मैं तब आनी। सत्य कहति तुम देव-कहानी ॥
॥८८६॥१५०४॥

राग बिलावल

महर दयौ इक ग्वाल चलाइ। पठयौ कहि उपनंद बुलाइ ॥
अरु आनौ बृषभानु लिवाइ। तुरत जाहु तुम करहु चँड़ाइ ॥
यह सुनि तुरत गयौ तहँ धाइ। नंद महर की कही सुनाइ ॥
नैंकु करहु अब जनि बिलमाइ। मोहिं कह्यौ सब देहु पठाइ।
यह सुनि कै सब चले अतुराइ। मन मन सोच करत पछिताइ ॥
कंस-काज जिय माँझ डराइ। राज-अंस-धन दियौ चलाइ ॥
सूर नंद-गृह पहुँचे आइ। आदर करि बैठे नँदराइ ॥
॥८८७॥१५०५॥

राग बिलावल

गोप सबै उपनंद बुलाए । कौन काज हमकौं हँकराए ॥
सुनतहिं हम सब आतुर आए । सब मिलि कह्यौ बहुत डरपाए ॥
काल्हिहिं राज-अंस दै आए । ग्वाल कहत तुरतहिं उठि धाए ॥
महर कह्यौ हम तुम डरवाए । हँसि हँसि कहत अनंद बढ़ाए ॥
हम तुमकौं सुख-काज मँगाए । बार बार यह कहि दुख पाए ॥
सूर इंद्र-पूजा बिसराए । यह सुनतहिं सिर सबनि नवाए ॥
॥८८८॥१५०६॥

राग बिलावल

पूजा सुनत बहुत सुख कीन्हौ । भली करी हमकौं सुधि दीन्हौ ॥
सुनि बानी सबहिनि सुख लीन्हौ । बड़ौ देव सब दिन कौ चीन्हौ ॥
इनहीं तैं ब्रज-बास बसीनौ । हम सब अहिर जाति-मति हीनौ ॥
पूजा की विधि करत सबै मिलि । जैसिहिं भाँति सदा आई चलि ॥
बिदा माँगि नँद सौं गृह आए । घरनि घरनि यह बात चलाए ॥
सूरदास गोपनि की बानी । ब्रज नर-नारि सबनि यह जानी ॥
॥८८९॥१५०७॥

राग बिलावल

नंद-घरनि ब्रज-बधू बुलाईं । यह सुनिकै तुरतहिं सब आईं ॥
"कौन काज हम महरि हँकारी ? तुम नहिं जानति जोबन भारी !"
बिहँसि कहति,"कह देति हौ गारी!""सुरपति-पूजा करौ सँवारी"॥
'देखौ हम सब सुरति बिसारी।" "औरौ हमहिं बूझियै गारी' ॥
यह कहि हरषित भई नँद नारी । सखियनि,बात कही तव प्यारी ॥
सूर इंद्र-पूजा अनुसारी । तुरत करौ सब भोग सँवारी ॥
॥८९०॥१५०८॥

राग बिलावल

घरनि चलीं सब कहि जसुमति सौं । देव मनावतिं बचन बिनति सौं ॥
तुम बिन और नहीं हम जानैं । मन मन अस्तुति करत बखानैं ॥
जहाँ तहाँ ब्रज मंगल गानैं । बाजत ढोल मृदंग निसानैं ॥
बहु-बहु भाँति करतिं पकवानैं । नेवज करि धरि साँझ बिहानैं ॥

छुवत नहीं देव-काज सकानै। देव-भोग कौं रहत डरानै ॥
सूरदास हम सुरपति जानैं। और कौन ऐसौ जिहिं मानैं ॥
॥८६१॥१५०९॥

राग बिलावल

नंद महर-घर होति बधाई। करत सबै बिधि देव-पुजाई ॥
नेवज करति जसोदा आतुर। आठौ सिद्धि घरहिं अति चातुर ॥
मैदा उज्ज्वल करि कै छान्यौ। बेसन दारि-चनक करि बान्यौ ॥
घृत मिष्टान्न सबै परिपूरन। मिस्त्री करत पाग कौं चूरन ॥
कदुवा करत मिठाई घृत पक। रोहिनि करति अन्न भोजन-तक ॥
संग और ब्रजनारी लागीं। भोजन करति हैं बड़ी सभागी ॥
महरि करति ऊपर तरकारी। जोरति सब बिधि न्यारी-न्यारी ॥
सूरदास जो माँगत जबहीं। भीतर तैं लै देति हैं तबहीं ॥
॥८६२॥१५१०॥

राग बिलावल

महरि सबै नेवज लै सैंतति। स्याम छुवै कहुँ ताकौं डरपति ॥
कान्हहिं कहति इहाँ, जनि आवै। लरिकनि कौं यह देव डरावै ॥
स्याम रहे आँगनहिं डराई। मन-मन हँसत मातु-सुखदाई ॥
मैया री मोहिं देव दिखैहै। इतनो भोजन सब वह खैहै ॥
यह सुनि खीझति है नँदरानी। बार बार सुत सौं बिरुझानी ॥
ऐसी बात न कहौ कन्हाई। तू कत करत स्याम लँगराई ॥
कर जोरति अपराध छमावति। बालक कौ यह दोष मिटावति ॥
सूरदास प्रभु कौं नहि जाने। हँसत चले मन मैं न रिसाने ॥
॥८६३। १५११॥

राग बिलावल

जुवती कहतिं कान्ह रिस पायौ। जान देहु सुर-काज बतायौ ॥
बालक आइ छुवै कहुँ भोजन। उनकी पूजा जानै को जन ॥
यह कहि-कहि देवता मनावति। भोग-समग्री धरति, उठावति ॥
"उनकी कृपा गऊ-गन घेरे। उनकी कृपा धाम-धन मेरे ॥"
उनकी कृपा पुत्र-फल पायौ। देखहु स्यामहिं खीझि पठायौ ॥"

सूरदास प्रभु अंतरजामी। ब्रह्म कीट आदि के स्वामी ॥
॥८९४॥१५१२॥

राग बिलावल

नंद-निकट तब गए कन्हाई। सुनत बात तहँ इंद्र-पुजाई ॥
महर नंद उपनंद तहाँ सब। बोलि लिए वृषभानु महर तब ॥
दीपमालिका रचि-रचि-साजत। पुहुप-माल-मंडली बिराजत ॥
बरष सात के कुँवर कन्हाई। खेलत मन आनंद बढ़ाई ॥
घर-घर देतिं जुवति-जन हाथा। पूजा देखि हँसत ब्रजनाथा ॥
मो आगैं सुरपति की पूजा। मोतैं और देव को दूजा ॥
सत-सत इंद्र रोम प्रति लोमनि। सत लोमनि मेरैं इक रामनि ॥
सूर स्याम ये मन सौं बातैं। लीन्हौ भोग बहुत दिन जातैं ॥
॥८९५॥१५१३॥

राग बिलावल

सुरपति-पूजा जानि कन्हाई। बार-बार बूझत नँदराई ॥
कौन देव की करत पुजाई। सो मोसौं तुम कहौ बुझाई ॥
महर कह्यौ तब कान्ह सुनाई। सुरपति सब देवनि के राई ॥
तुम्हरैं हित मैं करत पुजाई। जातैं तुम रहौ कुसल कन्हाई ॥
सूर नंद कहि भेद बताई। भीर बहुत घर जाहु सिखाई ॥
॥८९६॥१५१४॥

राग बिलावल

जाहु घरहिं बलिहारी तेरी। सेज जाइ सोवहु तुम मेरी ॥
मैं आवत हौं तुम्हरे पाछे। भवन जाहु तुम मेरे बाछे ॥
गोपनि लीन्हे कान्ह बुलाई। मंत्र कहौं इक मनहिं समाई ॥
आजु एक सपनैं कोउ आयौ। संख चक्र भुज चारि दिखायौ ॥
मोसौं वह कहि-कहि समुझायौ। यह पूजा किन तुमहि सिखायौ ॥
सूर स्याम कहि प्रगट सुनायौ। गिरि गोवरधन देव बतायौ ॥
॥८९७॥१५१५॥

राग बिलावल

यह तब कहन लगे दिविराई। इंद्रहिं पूजे कौन बड़ाई ॥

कोटि इंद्र हम छिन मैं मारैं। छिनहीं मैं पुनि कोटि सँवारैं ॥
जाके पूजैं फल तुम पावहु। ता देवहिं तुम भोग लगावहु ॥
तुम आगैं वह भोजन खैहै। मुहँ माँगे फल तुमकौं दैहै ॥
ऐसा देव प्रगट गोबरधन। जाके पूजैं बाढ़ै गोधन ॥
समुझि परी कैसी यह बानी। ग्वाल कही यह अकथ कहानी ॥
सूर स्याम यह सपनौ पायौ। भोजन कौने देवहिं खायौ ॥
॥८६८॥१५१६॥

राग बिलावल

मानहु कह्यौ सत्य यह बानी। जौ चाहौ व्रज की रजधानी ॥
जो तुम अपनैं करनि जैंवावहु। तौ तुम मुहँ माँग्यौ फल पावहु ॥
भोजन सब खैहैं मुहँ माँगे। पूजत सुरपति तिनके आगे ॥
मेरी कही सत्य करि मानहु। गोबरधन की पूजा ठानहु ॥
सूर स्याम कहि-कहि समुझायौ। नंद गोप सबकैं मन आयौ।
॥८६६॥१५१७॥

राग बिलावल

सुरपति-पूजा मेटि धराई। गोबर्धन की करत पुजाई ॥
पाँच दिननि लौं करी मिठाई। नंद महर घर की ठकुराई ॥
जाकैं घरनी महरि जसोदा। अष्ट सिद्धि नव निधि चहुँ कोदा ॥
घृतपक बहुत भाँति पकवाना। ब्यंजन बहु को करै बखाना ॥
भोग अन्न बहु भार सजायौ। अपनैं कुल सब अहिर बुलायौ ॥
सहस सकट भर भरत मिठाई। गोबरधन की प्रथम पुजाई ॥
सूर स्याम यह पूजा ठानी। गिरि गोवरधन की रजधानी ॥
॥६००॥१५१८॥

राग बिलावल

व्रज-घर-घर सब भोजन साजत। सबकैं द्वार बधाई बाजत ॥
सकट जोरि लै चले देव-बलि। गोकुल व्रजवासी सब हिलि मिलि॥
दधि लवनी मधु साजि मिठाई। कहँ लगि कहौं सबै बहुताई ॥
घर-घर तैं पकवान चलाए। निकसि गाउँ के ग्वैडैं आए ॥
व्रजवासी तहँ जुरे अपारा। सिंधु समान न वार न पारा ॥

बड़ा चलन नहीं कोउ पावत। सकट भरे सब भोजन आवत॥
सहस सकट चले नंद महर के। और सकट कितने घर-घर के॥
सूरदास प्रभु महिमा-सागर। गोकुल प्रगटे हैं हरि नागर॥
॥६०१॥१५१९॥

राग बिलावल

इक आवत घर तैं चले धाई। एक जात फिरि घर-समुहाई॥
इक टेरत इक दौरे आवत। एक गिरत इक लै जु उठावत॥
एक कहत आवहु रे भाई। बैल देत है सकट गिराई॥
कौन काहि कौं कहै सँभारैं। जहाँ-तहाँ सब लोग पुकारैं॥
कोउ गावत, कोउ निर्चंत आवैं। स्याम सखनि सँग खेलत भावैं॥
सूरदास प्रभु सबके नायक। जो मन करैं सो करिबे लायक॥
॥६०२॥१५२०॥

राग बिलावल

सजि शृंगार चलीं ब्रजनारी। जुवतिनि भीर भई अति भारी॥
जगमगात अंगनि-प्रति गहनौ। सबके भाव दरस-हरि लहनौ॥
इहिं मिस देखन कौं सब आईं। देखतिं इकटक रूप-कन्हाई॥
वै नहिं जानतिं देव-पुजाई। केवल स्यामहिं सौं लौ लाई॥
को मग जात, कहाँ को बोलत। नंद-सुवन तैं चित नहिं डोलत॥
सूर भजै हरि जो जिहिं भाऊ। मिलत ताहि प्रभु तेहि सुभाऊ॥
॥६०३॥१५२१॥

राग बिलावल

गोप, नंद, उपनंद गए तहँ। गिरि गोबरधन बड़े देव जहँ॥
सिखर देखि सब रीझे मन-मन। ग्वाल कहत आजुहिं अचरज बन॥
अति ऊँचौ गिरिराज बिराजत। कोटि मदन निरखत छबि लाजत॥
पहुँचे सकटनि भरि-भरि भोजन। कोउ आए, कोउ नहिं, कहुँ खोजन॥
तिनके काज अहीर पठाए। बिलम करौ जनि तुरत धवाए॥
आवत मारग पाए तिनकौं। आतुर करि बोले नँद जिनकौं॥
तुरत लिवाइ तिनहिं तहँ आए। महर मनहिं अति हर्ष बढ़ाए॥
सूरदास प्रभु तहं अधिकारी। बूझत हैं पूजा परकारी॥
॥६०४॥१५२२॥

राग बिलावल

आइ जुरे सब ब्रज के बासी। डेरा परे कोस चौरासी॥
एक फिरत कहुँ ठौर न पावै। एते पर आनंद बढ़ावै॥
कोउ काहू सौं बैर न ताकै। बैठत मन जहँ भावत जाकैं॥
खेलत, हँसत, करत कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल॥
नंद कह्यौ सब भोग मँगावहु। अपनैं कर सब लै-लै आवहु॥
भोग बहुत वृषभानुहि घर कौ। को कहि बरनै अतिहि बहर कौ॥
सूर स्याम जब आयसु दीन्हौ। बिप्र बुलाइ नंद तव लीन्हौ॥
॥६०५॥१५२३॥

राग बिलावल

तुरत तहाँ सब बिप्र बुलाए। जग्यारंभ तहाँ करवाए॥
सामवेद द्विज गान करत तहँ। देखत सुर बिथके अंबर महँ॥
सुरपति-पूजा तबहिं मिटाई। गिरि गोबर्धन तिलक चढ़ाई॥
कान्ह कह्यौ गिरि दूध अन्हावहु। बड़े देवता इनहिं मनावहु॥
गोवर्धन दूधहिं अन्हवाए। देवराज कहि माथ नवाए॥
नयौ देवता कान्ह पुजावत। नर-नारी सब देखन आवत॥
सूर स्याम गोबर्धन थाप्यौ। इंद्र देखि रिस करि तनु काँप्यौ॥
॥६०६॥१५२४॥

राग बिलावल

देखि इंद्र मन गर्व बढ़ायौ। ब्रज लोगनि मोकौं बिसरायौ॥
अहिर जाति ओछी मति कीन्ही। अपनी ज्ञाति प्रगट करि दीन्ही॥
पूजत गिरिहि कहा मन आई। गिरि समेत ब्रज देउँ बहाई॥
देखौं धौं कितनौ सुख पैहैं। मेरैं मारत काहि मनैहैं॥
परबत तब इनकौं क्यौं राखत। बारंबार यहै कहि भाखत॥
पूजत गिरि अति प्रेम बढ़ाए। सपनैं कौ सुख लेत मनाए॥
सूरदास सुरपति की बानी। ब्रज बोरौं परलै के पानी॥
॥६०७॥१५२५॥

राग बिलावल

स्याम कह्यौ तब भोजन ल्यावहु। गिरि आगैं सब आनि धरावहु॥

सुनत नंद तहँ ग्वाल बुलाए। भोग-समग्री सबै मँगाए॥
षट रस की बहु भाँति मिठाई। अन्य भोग अतिहीं बहुताई॥
व्यंजन बहुत भाँति पहुँचाए। दधि लवनी मधु-माट धराए॥
दही बरा बहुतै परुसाए। चंद्रहिं की पटतर ते पाए॥
अन्नकूट जैसौ गोवर्धन। अरु पकवान धरे चहुँ कोदन॥
परुसत भोजन प्रातहिं तैं सब। रवि माथे तैं ढरकि गयौ अब॥
गोपनि कह्यौ स्याम ह्याँ आवहु। भोग धर्यौ सब गिरिहिं जँवावहु॥
सूर स्याम आपुनही भोगी। आपुहिं माया आपुहिं जोगी॥
॥१०८॥१५२६॥

राग बिलावल

कान्ह कह्यौ नँद भोग लगावहु। गोप महर उपनंद बुलावहु॥
नैन मूँदि कर जोरि मनावहु। प्रेम सहित देवहिं सु चढ़ावहु॥
मन मैं नैंकु खुटक जनि राखहु। दीन बचन मुख तैं जनि भाषहु॥
ऐसी विधि गिरि परसत ह्वैहै। सहस भुजा धरि भोजन खैहै॥
सूरदास प्रभु आपु पुजावत। यह महिमा कैसैं कोउ पावत॥
॥१०९॥१५२७॥

राग बिलावल

स्याम कही सोई सब मानी। पूजा की विधि हम अब जानी॥
नैन मूँदि कर जोरि बुलायौ। भाव भक्ति सौं भोग लगायौ॥
बड़े देव गिरिवर सबहीं के। भोजन करहु कृपा करि नीके॥
सहस भुजा धरि दरसन दीन्हौ। जै-जै धुनि नभ देवनि कीन्हौ॥
भोजन करत सबनि के आगे। सुर-नर-मुनि सब देखन लागे॥
देखि थकित सब ब्रज की बाला। देखत नंद गोप सब ग्वाला॥
सूर स्याम जन के सुखदाई। सहस भुजा धरि भोजन खाई॥
॥११०॥१५२८॥

राग बिलावल

जँवत देव नंद सुख पायो। कान्ह देवता प्रगट दिखायौ॥
ब्रजबासी गिरि जँवत देख्यौ। जीवन जन्म सफल करि लेख्यौ॥
ललिता कहति राधिका आगे। जँवत कान्ह नंद कर लागे॥
मैं जानी हरि की चतुराई। सुरपति मेटि आपु बलि खाई॥

उत जेंवत इत बातनि पागे । कहत स्याम गिरि जेंवन लागे ॥
मैं जो बात कही सो आई । सहस भुजा धरि भोजन खाई ॥
और देव इनकी सरि नाहीं । इत बोधत उत भोजन खाहीं ॥
सूरदास प्रभु की यह लीला । सदा करत ब्रज मैं यह क्रीला ॥
॥९११॥१५२९॥

राग बिलावल

यह छवि देखि राधिका भूली । बाल कहति सखियनि सौं फूली ॥
आपुहि देवा, आपु पुजेरी । आपुहिं जेंवत भोजन-ढेरी ॥
इक बृषभानु बिलोवन हारी । नाम ताहि बदरौला नारी ॥
ताकी बलि लई भुजा पसारी । अति आतुर जेंवत हैं भारी ॥
उत गिरि संग खात बलिहारी । बदरौला की बलि रुचिकारी ॥
सूरदास प्रभु जेंवनहारी । गिरि बपुरे सौं को अधिकारी ॥
॥९१२॥१५३०॥

राग बिलावल

इतहिं स्याम गोपनि सँग ठाढ़े । भोजन करत अधिक रुचि बाढ़े ॥
गिरि तन सोभा स्याम बिराजै । स्यामहिं छबि गिरिवर की छाजै ॥
गिरिवर उर पीतांबर डारे । मोतिनि की माला उर भारे ॥
अँग भूषन, स्रवननि मनि कुंडल । मोर मुकुट सिर अलक सु कुंडल ॥
छबि निरखतिं सब घोष-कुमारी । गोबर्धन-छबि स्यामऽनुहारी ॥
सूर स्याम लीला-रस-नायक । जनम-जनम भक्तनि सुखदायक ॥
॥९१३॥१५३१॥

राग बिलावल

भोजन करत देव भए परसन । माँगहु नंद तुम्हारैं जो मन ॥
भली करी तुम मेरी पूजा । सेवक तुम सौं और न दूजा ॥
जोइ माँगौ सोइ फल मैं दैहौं । जहाँ भाव ताही पै रैहौं ॥
मैं सेवा बस भयौ तुम्हारैं । जोइ फल चाहौ लेहु सवारैं ॥
यह सुनि चकित भए नर नारी । भोजन कियौ प्रथमहीं भारी ॥
अब देखौ मुख बात कहत है । ऐसौ देव कहाँ त्रिजगत है ॥
कान्ह कह्यौ कछु माँगहु इनसौं । गिरि-देवता देत परसन सौं ॥

सूर स्याम देवता आपु हैं। ब्रजजन के ये हरत तापु हैं॥
॥६१४॥१५३२॥

राग बिलावल

नंद कह्यौ कह माँगौं स्वामी। तुम जानत सब अंतरजामी॥
अष्ट सिद्धि नवनिधि तुम दीन्हौ। कृपा-सिंधु तुम्हरोई कीन्हौ॥
कुसल रहैं बलराम कन्हाई। इनहीं कारन करत पुजाई॥
देवनि के मनि गिरिवर तुम हौ। जहँ-तहँ ब्यापक पूरन सम हौ॥
तुम हरता तुम करता घर के। देखि थकित नर-नारि नगर के॥
बड़ौ देवता स्याम बतायौ। प्रगट भयौ सब भोजन खायौ॥
सूर स्याम कैं जोइ मन आवै। सोइ सोइ नाना रूप बनावै॥
॥६१५॥१५३३॥

राग बिलावल

माँगि लेहु कछु और पदारथ। सेवा सबै भई अब स्वारथ॥
फल माँग्यौ बलराम कन्हाई। ये दोउ रैहैं कुसल सदाई॥
इनहीं तैं तुम हमकौं जान्यौ। तब तुम गिरि गोवर्धन मान्यौ॥
करत बृथा तुम इंद्र-पुजाई। मेरी दीन्ही है ठकुराई॥
कान्ह तुम्हारौ मोकौं जानै। इनकौं रहिया तुम सब मानै॥
इंद्र आइ चढ़िहै ब्रज ऊपर। यह कहिहै नहिं राखौं भूपर॥
नैंकु नहीं कछु वासौं ह्वैहै। स्याम उठाइ मोहिं कर लैहै॥
सूर स्याम गिरिवर की बानी। ब्रज जन सुनत सत्य करि मानी॥
॥६१६॥१५३४॥

राग बिलावल

कौतुक देखत सुर-नर भूले। रोम रोम गदगद सब फूले॥
सुरनि बिमान सुमन बरषाए। जय धुनि सब्द देव नभ गाए॥
देव कह्यौ ब्रज बासिनि सौं तब। पूजा भली करी मेरी सब॥
जाहु सबै मिलि सदन करौ सुख। स्याम कहत गिरि-गोवर्धन-मुख॥
ग्वाल करत अस्तुति सब ठाढ़े। प्रेम-भाव सब कैं चित बाढ़े॥
भवन जाहु कही श्रीमुख बानी। भोजन सेस स्याम कर आनी॥
बाँटि प्रसाद सबनि कौं दीन्हौ। ब्रज-नारी-नर आनँद कीन्हौ॥
सूर स्याम गोपनि सुखकारी। कह्यौ चलौ ब्रज कौं नर-नारी॥
॥६१७॥१५३५॥

दोउ कर जोरि भए सब ठाढ़े। धन्य धन्य भक्तनि के चाढ़े॥
तुम भुक्ता तुमहीं पुनि दाता। अखिल-ब्रह्मंड-लोक के ज्ञाता॥
तुमकौं भोजन कौन करावै। हित कैं बस तुमकौं कोउ पावै॥
तुम लायक हमरैं कछु नाहीं। सुनत स्याम ठाढ़े मुसुकाहीं॥
ललिता सखी देवता चीन्हौ। चंद्रावलि राधहिं कहि दीन्हौ॥
देव बड़ौ यह कुँवर कन्हाई। कृपा जानि हरि ताहि चिन्हाई॥
सूर स्याम कहि प्रगट सुनाई। भए तृप्त भोजन दिवराई॥
॥९१८॥१५३६॥

परसत चरन चलत सब घर कौं। जात चले सब घोष नगर कौं॥
सुख समेत मग जात चले सब। दूनी भीर भई तब तैं अब॥
कोउ आगैं कोउ पाछैं आवत। मारग मैं कहुँ ठौर न पावत॥
प्रथमहिं गए डगर तिन पायौ। पाछे के लोगनि पछितायौ॥
घर पहुँच्यौ अबहीं नहिं कोई। मारग मैं अटके सब लोई॥
डेरा परे कोस चौरासी। इतने लोग जुरे ब्रजबासी॥
पैंड़ो चलन नहीं कोउ पावत। कितिक दूरि ब्रज पूछत आवत॥
सूर स्याम गुन-सागर नागर। नूतन लीला करी उजागर॥
॥९१९॥१५३७॥

कोउ पहुँचे कोउ मारग माहीं। बहुत गए घर, बहुतक जाहीं॥
काहू कैं मन कछु दुख नाहीं। अरसि-परसि, हँसि-हँसि लपटाहीं॥
आनँद करत सबै ब्रज आए। निकटहिं आइ लोग नियराए॥
भीर भई बहु खोरि जहाँ तहँ। जैसैं नदी मिलहिं सागर महँ॥
नर-नारी सरिता सब आगर। सिंधु मनौ यह घोष उजागर॥
मथनहार हरि, रतन कुमारी। चंद्र-बदनि राधा सुकुमारी॥
सूर स्याम आए नँद-साला। पहुँचे घरनि आइ नर-बाला॥
॥९२०॥१५३८॥

बड़ौ देवता कान्ह पुजायौ। ग्वाल गोप हँसि अंकम लायौ॥
कान्ह धन्य, धनि जसुमति जायौ। ब्रज धनि-धनि तुम तैं कहवायौ॥
धन्य नंद जिनि तुम सुत पायौ। धनि-धनि देव प्रगट दरसायौ॥
मेटि इंद्र-पूजा, गिरि पूज्यौ। परसन हमहिं सदा प्रभु हूज्यौ॥

कहा इंद्र बपुरौ किहिं लायक। गिरि देवता सबहिं के नायक॥
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे। भक्तनि बस दुष्टनि कौं नैसे॥
॥६२१॥१५३६॥

हरि सबकैं मन यह उपजाई। सुरपति निंदत गिरिहिं बड़ाई॥
बरष बरष प्रति इंद्र पुजाई। कबहुँ प्रसन्न भयौ नहिं आई॥
पूजत रहे बृथाहीं सुरपति। सब मुख यह बानी घर-घर-प्रति॥
बड़ौ देव यह गिरि गोबर्धन। यहै कहत ब्रज, गोकुलपुर-जन॥
तहाँ दूत सब इंद्र पठाए। ब्रज-कौतुक देखन कौं आए॥
घर-घर कहत बात नर नारी। दूत सुन्यौ सो स्रवन पसारी॥
मानत गिरि, निंदत सुरपति कौं। हँसत दूत, ब्रज-जन-गई मति कौं॥
सूर सुनत दूतनि रिस पाए। उठि तुरतहिं सुर-लोकहिं आए॥
ब्रह्म दई जाकौं ठकुराई। त्रिदस कोटि देवनि के राई॥
गिरि पूज्यौ तिनहीं बिसराई। जाति-बुद्धि इनकैं मन आई।
सिव-बिरंचि जाकौं कहैं लायक। जाके हैं मघवा से पायक॥
यह कहतहिं आए सुरलोकहिं। पहुँचे जाइ इंद्र के ओकहिं॥
दूतनि ऐसी जाइ सुनाई। बैठे जहाँ सुरनि के राई॥
कर जोरे सनमुख भए आई। पूछि उठे ब्रज की कुसलाई॥
दूतनि ब्रज की बात सुनाई। तुमहिं मेटि पूज्यौ गिरि जाई॥
तुमहिं निंदि गिरिवरहिं बड़ाई। यह सुनतहिं रिस देह कँपाई॥
सूर स्याम यह बुद्धि उपाई। ज्यौं जानै ब्रज मैं जदुराई॥
॥६२२॥१५४०॥

ग्वालनि मोसौं करी ढिठाई। मोकौं अपनी जाति दिखाई॥
तिस कोटि सुरनि कौ राई। तिहूँ भुवन भरि चलति बड़ाई॥
साहिब सौं जो करै धुताई। ताकौं नहिं कोऊ पतियाई॥
इन अपनी परतीति घटाई। मेरैं बैर बाँचिहैं भाई?॥
नई रीति यह अबहिं चलाई। काहू इनहिं दियौ बहकाई॥
ऐसी मति अब कैं इन पाई। काकी सरन रहैंगे जाई॥
इन दीन्हौ मोकौं बिसराई। नंद आपनी प्रकृति गँवाई॥
जानी बात बुढ़ाई आई। अहिर जाति कोऊ न पत्याई॥
मातु पिता नहिं मानैं भाई। जानि बूझि इन करी ढिगाई॥

मेरी बलि परबतहिं चढ़ाई। गिरिवर सह ब्रज देहुँ बहाई॥
सूरदास सुरपति रिस पाई। कीरी तनु ज्यौं पंख उपाई॥
॥६२३॥१५४१॥

मोकौं निंदि पर्वतहिं बंदत। चारा कपट पंछि ज्यौं फंदत॥
मरन काल ऐसी बुधि होई। कछू करत कछुवै वह जोई॥
खेलत खात रहे ब्रज भीतर। नान्हे लोग तनक धन ईतर॥
समै समै बरषौं प्रति पालौं। इनकी बुद्धि इनहिं अब घालौं॥
मेरैं मारत कौन राखिहै। अहिरनि कैं मन यहै काँखिहै॥
जो मन जाकैं सोइ फल पावै। नीम लगाइ आम को खावै॥
बिष कैं बृच्छ बिषहि फल फलिहै। तामैं दाख कहौ क्यौं मिलिहै॥
अगिनि बरत देखत कर नावै। कहा करै तिहिं अगिनि जरावै॥
सूरदास यह सब कोउ जानै। जो जाकौ सो ताकौ मानै॥
॥६२४॥१५४२॥

परबत पहिलेहिं खोदि बहाऊँ। वज्रनि मारि पताल पठाऊँ॥
फूलि फूलि जिहिं पूजा कीन्हौ। नैंकु न राखौं ताकौं चीन्हौ॥
नंद गोप नैननि यह देखैं। बड़े देवता कौ सुख पेखैं॥
निंदत मोहिं करी गिरि-पूजा। जासौं कहत और नहिं दूजा॥
गरब करत गोवरधन गिरि कौ। परवत माहिं आहि सो किरिकौ॥
डूँगर कौ बल उनहिं बताऊँ। ता पाछैं ब्रज खोदि बहाऊँ॥
राखौं नहिं काहूँ सब मारौं। ब्रज गोकुल कौं खोज निवारौं॥
को जानै कहँ गिरि कहँ गोकुल। भुव पर नहिं राखौं उनकौ कुल॥
सूरदास यह इंद्र-प्रतिज्ञा। ब्रज बासिनि सब करी अवज्ञा॥
॥६२५॥१५४३॥

सुरपति क्रोध कियौ अति भारे। फरकत अधर नैन रतनारे॥
भृत्य बुलाए दै-दै गारी। मेघनि ल्यावौ तुरत हँकारी॥
एक कहत धाए सौ चारी। अति डरपे तन की सुधि हारी॥
मेघवर्त्त, जलवर्त्त बुलावहु। सैन साजि तुरतहिं ले आवहु॥
कापर क्रोध कियौ अमरापति। महाप्रलय जिय जानि डरे अति॥
तुमेघनि सौं यह बात सुनाई। रत चलौ बोले सुरराई॥

सेना सहित बुलायौ तुमकौं। रिस करि तुरत पठायौ हमकौं ॥
वेगि चलौ कछु बिलँब न लावहु। हमहि कह्यौ अवहीं लै आवहु ॥
मेघवर्त्त सब सैन्य बुलाए। महाप्रलय के जे सब आए ॥
कछु हरषे कछु मनहिं सकाने। प्रलय आहि कै हमहि रिसाने ॥
चूक परी हम तैं कछु नाहीं। यह कहि-कहि सब आतुर जाहीं॥
मेघवर्त्त, बलवर्त्त, वारिव्रत। अनिलवर्श, नलवर्श, वज्रव्रत ॥
बोलत चले आपनी बानी। प्रभु सनमुख सब पहुँचे आनी ॥
गर्जि गर्जि घहरातहिं आए। देव देव कहि माथ नवाए ॥
सूरदास डरपत सब जलधर। हम पर क्रोध किधौं काहू पर ॥
॥६२६॥१५४४॥

चितवतहीं सब गए झुराई। सकुचि कह्यौ कापर रिस पाई ॥
छमा करौ आयसु हम पावैं। जापर कहौ ताहि पर धावैं ॥
सैन सहित प्रभु हमहिं बुलाए। आज्ञा सुनत तुरत उठि धाए ॥
ऐसौ कौन जाहि प्रभु कोपे। जीव नाम सब तुम्हरेहिं रोपे ॥
सुर कही यह मेघनि बानी। यह सुनि सुनि रिस कछुक बुझानी ॥
॥६२७॥१५४५॥

मेघनि सौं बोले सुरराई। अहिरनि मोसौं करी ढिठाई ॥
मेरी दीन्ही करत बड़ाई। जानि बूझि मोहिं दियौ भुलाई ॥
सदा करत मेरी सेवकाई। अब सेवत परबत कहँ जाई ॥
इहाँ काज तुमकौं हँकराए। भली करी सैना लै आए ॥
गाइ गोप ब्रज सबै बहावहु। पहिलैं परबत खोदि ढहावहु ॥
जब यह सुनी इंद्र की बानी। मेघनि मन तब धीरज आनी ॥
सूरदास यह सुनि घन तमके। कापर क्रोध करत प्रभु जमके ॥
॥६२८॥१५४६॥

रिस लायक तापर रिस कीजै। इहिं रिस तैं प्रभु देही छीजै ॥
तुम प्रभु हमसे सेवक जाकैं। ऐसौ कौन रहै तुम ताकैं ॥
छिनहीं मैं ब्रज धोइ बहावैं। डूँगर कौ नहिं नाउँ बचावैं ॥
आपु छमा करियै दिवराई। हम करिहैं उनकी पहुनाई ॥
यह सुनिकै हरषित मन कीन्हौ। आदर सहित पान कर दीन्हौ ॥

प्रथमहिं देहु पहार बहाई। मेरी बलि ओहीं सब खाई ॥
सूर इंद्र मेघनि समुझावत। हरषि चले घन आदर पावत ॥
॥९२९॥१५४७॥

आयसु पाइ तुरतहीं धाए। अपनी सैना सबनि बुलाए ॥
कह्यौ सबनि ब्रज ऊपर आवहु। घटा घोर करि गगन छपावहु ॥
मेघबर्त्त जलवर्त्तक आगे। और मेघ सब पाछे लागे ॥
गरजि उठे ब्रज ऊपर जाई। सब्द कियौ आघात सुनाई ॥
ब्रज के लोग डरे अति भारी। आजु घटा देखियत हैं कारी ॥
देखत-देखत अति अधिकायौ। नैंकुहि मैं रवि गगन छपायौ ॥
ऐसे मेघ कबहुँ नहिं देखे। अति कारे काजर अवरेखे ॥
सुनहु सूर ये मेघ डरावन। ब्रजबासी सब कहत भयावन ॥
॥९३०॥१५४८॥

गरजि-गरजि ब्रज घेरत आवैं। तरपि-तरपि चपला चमकावैं ॥
नर नारी सब देखत ठाढ़े। ये बादर परलय के काढ़े ॥
दरदरात, घहरात प्रबल अति। गोपी-ग्वाल भए औरै गति ॥
कहा होन अबहीं यह चाहत। जहँ तहँ लोग यहै अवगाहत ॥
खन भीतर, खन बाहिर आवत। गगन देखि धीरज बिसरावत ॥
सूर स्याम यह करी पुजाई। तातैं सुरपति चढ्यौ रिसाई ॥
॥९३१॥१५४९॥

फिरत लोग जहँ तहँ बितताने। को हैं अपने कौन बिराने ॥
ग्वाल गए जे धेनु चरावन। तिनहिं पर्‍यौ बन माँझ परावन ॥
गाइ बच्छ कोऊ न सँभारैं। जिय की सबकौं परी खँभारैं ॥
भागे आवत ब्रजही तन कौं। बिपति परी अति बन ग्वालनि कौं ॥
अंध धुंध मग कहूँ न सूझै। ब्रज भीतर ब्रजहीं कौं बूझै ॥
जैसैं-तैसैं ब्रज पहिचानत। अटकरहीं अटकर करि आनत ॥
खोजत फिरैं आपने घर कौं। कहा भयौ इहिं घोष-सहर कौं ॥
रोवत डोलैं घरहिं न पावैं। घर द्वारे घर कौं बिसरावैं ॥
सूर स्याम सुरपति बिसरायौ। गिरि के पूजैं यह फल पायौ ॥
॥९३२॥१५५०॥

जमुना जलहिं गईं जे नारी। डारि चलीं सिर गागरि भारी॥
देखौं मैं बालक कल छाँड़्यौ। एक कहति आँगन दधि माँड्यौ॥
एक कहति मारग नहिं पावति। एक सामुहैं बोलि बतावति॥
ब्रजबासी सब अति अकुलाने। कालिहहिं पूज्यौ फल्यौ बिहाने॥
कहाँ रहे अब कुँवर कन्हाई। गिरि गोबरधन लेहिं बुलाई॥
जेंवन सहस भुजा धरि आवै। अब द्वै भुज हमकौं दिखरावै॥
ये देवता खात हीं लौं के। पाछे पुनि तुम कौन, कहौ के॥
सूर स्याम सपनौ प्रगटायौ। घर के देव सबनि बिसरायौ॥
॥६३३॥१५५१॥

गर्जत घन अतिहीं घहरावत। कान्ह सुनत आनंद बढ़ावत॥
कौतुक देखत ब्रज-लोगन के। निकट रहत नित ही निज जन के॥
इक सँतत घर के सब बासन। लीन्हे फिरत घरहिं के पासन॥
एक कहत जिय की नहिं आसा। देखत सबै इष्ट के नासा॥
सूर स्याम जानत ये गाँसा। कह पानी कह करै हुतासा॥
॥६३४॥१५५२॥

मेघबर्त्त मेघनि समुझावत। बार-बार गिरि तनहिं बतावत॥
पर्वत पर बरसहु तुम जाई। यहै कही हमकौं सुरराई॥
ऐसैं देहु पहार बहाई। नाउँ रहै नहिं ठौर जनाई॥
सुरपति की बलि सब इहिं खाई। ताकौ फल पावै गिरिराई॥
जेंवत काल्हि अधिक रुचि पाई। सलिल देहु जिहिं तृषा बुझाई॥
दिना चारि रहते जग ऊपर। अब न रहन पावैं या भूपर॥
सूर मेघ सुरपतिहिं पठाए। ब्रज के लोगनि तुमहिं बिहाए॥
॥६३५॥१५५३॥

बरसत हैं घन गिरि के ऊपर। देखि-देखि ब्रज लोग करत डर॥
ब्रजवासी सब कान्ह बतावत। महाप्रलय-जल गिरिहिं ढहावत॥
झरहरात झरपत झर लावत। गिरिहिं धोइ ब्रज ऊपर आवत॥
बिकल देखि गोकुल के बासी। दरस दियौ सबकौं अबिनासी॥
अबिनासी के दरसन पाए। तब सब मन परतीति बढ़ाए॥
नंद जसोदा सुत-हित जानैं। और सबै मुख अस्तुति गानैं॥

बार-बार यह कहि-कहि भाखै। अब सब ब्रज कौं येई राखै॥
बरसत गिरि झरपत ब्रज ऊपर। सो जल जहँ तहँ पूरत भू पर॥
सूरदास प्रभु राखि लेहु अब। जैसैं राखे अघा-बदन तब॥
॥६३६॥१५५४॥

राखि लेहु अब नंद-कुमार। गोसुत गाइ फिरत बिकरार॥
बरषत बूँद लगै जनु सायक। राखि लेहु ब्रज गोकुल-नायक॥
तुप बिन कौन सहाइ हमारैं। नंद-सुवन अब सरन तुम्हारैं॥
सरन सरन जब ब्रज-जन बोले। धीर-बचन दै लै दुख मोले॥
यह बोले हँसि कृष्ण मुरारी। गिरि कर धरि राखौं नर-नारी॥
सूर स्याम चितए गिरिवर तन। विकल देखि गो,गोसुत,ब्रजजन॥
॥६३७॥१५५५॥

गोवर्धन लीन्हौ उचकाई। देखि बिकल नर नारि कन्हाई॥
आपुन सुख ब्रज-जन बितताए। बूँद कयक ब्रज पर बरषाए॥
वै डरपत आपुन हरषत मन। राखे रहे जहाँ तहँ ब्रज-जन॥
घरिक देखि मनहीं सुख दीन्हौ। बाम भुजा धरि गिरिवर लीन्हौ॥
सूर स्याम गिरि करजहिं राख्यौ। धीर-धीर सब सौं कहि भाख्यौ॥
॥६३८॥१५५६॥

स्याम धर्यौ गिरि गोबरधन कर। राखि लिये ब्रज के नारी-नर॥
गोकुल ब्रज राख्यौ सब घर-घर। आनँद करत सबै ताहीं-तर॥
बरषत मुसलधार मघवा वर। बूँद न आवत नैंकहुँ भू पर॥
धार अखंडित बरषत झर-झर। कहत मेघ धोवहु ब्रज गिरिवर॥
सलिल प्रलय कौ टूटत तर-तर। बाजत सबद नीर कौ धर-धर॥
वै जानत जल जात है दर-दर। बरषत कहत गयौ गिरि कौ जर॥
सूरदास प्रभु कान्ह गर्व-हर। बीचहिं जरत जात जल अंबर॥
बोलि लिये सब ग्वाल कन्हाई। टेकहु गिरि गोवर्धनराई॥
आजु सबै मिलि होहु सहाई। हँसत देखि बलराम कन्हाई॥
लकुट लिये कर टेकत जाई। कहत परस्पर लेहु उठाई॥
बरषत इंद्र महा झर लाई। अति जल देखि सखा डरपाई॥
नंद-नँदन बिनुको गिरि धारै। ऐसे बल बिनु कौन सम्हारै॥
नप तैं गिरैं कौन गिरि राखै। बार-बार, रहि-रहि, यह भाखै॥

सूर स्याम गिरिवर कर लीन्हौ। बरषत मेघ चकित मन कीन्हौ॥
॥६३६॥१५५७॥

बात कहत आपुस मैं बादर। इंद्र पठाए हम करि आदर॥
अब देखत कछु होत निरादर। बरषि-बरषि घन भए मन कादर॥
खीझत कहत मेघ सबही सौं। बरषि कहा कीन्हौ तबही सौं॥
महा प्रलय कौ जल कह राखत। डारि देहु ब्रज पर कह ताकत॥
क्रोध सहित फिरि बरषन लागे। ब्रजबासी आनँद अनुरागे॥
ग्वाल कहत तुम धन्य कन्हाई। बाम भुजा गिरि लियौ उठाई॥
सूर स्याम तुम सरि कोउ नाहीं। बरषत घन गिरि देखि खिस्याहीं॥
॥६४०॥१५५८॥

प्रलय-मेघ लै आए बाने। आपुस ही मैं सबै रिसाने॥
सात-दिवस जल बरषि बुढ़ाने। चकृत भए, तन-सुरति भुलाने॥
फिरि देखत जल कहाँ ढराने। महा प्रलय के सब निझराने॥
झुरि-झुरि सब बादर बितताने। बूँद नहीं घन नैंकु बचाने॥
जलद अपुन कौं धिक करि माने। फिरि सब चले अतिहि बिकलाने॥
सूर स्याम गोबरधन राने। मूरख सुरपति अजहुँ न जाने॥
॥६४१॥१५५६॥

मेघ चले मुख फेरि अमरपुर। करी पुकार जाइ आगैं सुर।
स्रम तैं टूटि गए सब के उर। जल बिनु भए सबै घन धूँधुर॥
की मारौ की सरन उबारौ। हम मैं कहा रह्यौ अब गारौ॥
जहँ-तहँ बादर रोवत बोलैं। स्रम अपनौ प्रभु आगैं खोलैं॥
सात दिवस नहिं मिटी लगारा। बरष्यौ सलिल अखंडित धारा॥
महा प्रलय-जल नैंकु न उबर्यौ। ब्रजबासिनि नीकैं अब निदर्यौ॥
वैसोइ गिरि वैसेइ ब्रजबासी। नैंकु बूँद नहिं धरनि प्रकासी॥
सूर सुनत सुरपतिहिं उदासी। देख्यौ यौं आए जल-रासी॥
॥६४२॥१५६०॥

चकित भयौ ब्रज-चाह सुनाई। पुनि पुनि बूझत मेघ बुलाई॥
कहाँ गयौ जल प्रलय काल कौ। कहा कहौं सब तन बेहाल कौ॥

कहा करैं अपनौ बल कीन्हौ । ब्याकुल रोइ रोइ तब दीन्हौ ॥
दंड एक बरषैं मन लाई । पूरन होत गगन लौं आई ॥
परबत मैं कोउ है अवतारा । सुरपति मन मैं करत बिचारा ॥
सूर इंद्र सुर-गन हँकराए । आज्ञा सुनत तुरत सब आए ॥
॥९४३॥१५६१॥

सुरपति आगैं भए सब ठाढ़े । सबहिनि कैं मन चिंता डाढ़े ॥
कौन काज सुरराज बुलाए । सकुच सहित पूछत सब आए ॥
कहा कहौं कछु कहत न आवै । मेघवनि की गति सुरनि बतावै ॥
व्रजबासिनि मोकौं बिसरायौ । भोजन लै सब गिरिहिं चढ़ायौ ॥
मोकौं मेटि परबतहिं थाप्यौ । तब मैं थरथराइ रिस काँप्यौ ॥
सूरदास यह सुरनि सुनाई । ता कारन तुम लिये बुलाई ॥
॥९४४॥१५६२॥

सुरनि कही सुरपति के आगैं । सनमुख कहत सकुच हम लागैं ॥
सकुचत कत सो बात सुनावहु । नीकैं करि मोकौं समुझावहु ॥
नीकी भाँति सुनौ सुरराई । ब्रज मैं ब्रह्म प्रगट भए आई ॥
तुम जानत जब धरनि पुकारी । पापहि पाप भई अति भारी ॥
पौढ़ें सेष संग श्री प्यारी । ते ब्रज भीतर हैं बपुधारी ॥
ब्रह्म कथा कहि आदि पसारी । तिन सौं हम कीन्ही अधिकारी ॥
सूरदास प्रभु गिरि कर धारी । यह सुनि इंद्र डर्‌यौ मन भारी ॥
॥९४५॥१५६३॥

यह मोकौं तबहीं न सुनाई । मैं बहुतै कीन्ही अधमाई ॥
पूरन ब्रह्म रहे ब्रज आई । काहू तौ मोहिं सुधि न दिवाई ॥
सुरनि कही नहिं करी भलाई । आजु कह्यौ जब महत गँवाई ॥
यह सुनि अमर गए सरमाई । सुनहु राज हम जानि न पाई ॥
अब सुनियै आपुन मन लाई । ब्रजहि चलौ नहिं और उपाई ॥
वै हैं कृपा-सिंधु करुनाकर । छमा करहिंगे श्री सुंदर बर ॥
और कछू मन मैं जिनि आनहु । हम जो कहैं सत्य करि मानहु ॥
सूर सुरनि यह बात सुनाई । सुरपति सरन चल्यौ अकुलाई ॥
॥९४६॥१५६४॥

जब जान्यौ ब्रज-देव मुरारी। उतरि गई तब गर्ब-खुमारी॥
व्याकुल भयौ डर्यौ जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी॥
बैठि रहे तैं नहिं बनि आवै। ऐसौ को जो मोहिं बचावै॥
बार-बार यह कहि पछितावै। जाउँ सरन बल मनहिं धरावै॥
जाइ परौं चरननि सिर धारौं। की मारौ की मोहिं उबारौ॥
अमरनि कह्यौ करौ असवारी। ऐरावत कौं लेहु हँकारी॥
सूर सरन सुरपति चल्यौ धाई। लिये अमर-गन संग लगाई॥
॥९५७॥१५६५॥

करत विचार चल्यौ सन्मुख ब्रज। लटपटात पग धरत धरनि गज॥
कोटि इंद्र जाकैं रोमनि रज। ब्रज अवतार लियौ माया तज॥
उतरि गगन पुहुमी पर आए। ब्रजबासी सब देखन धाए॥
चकित भए सब मनहि भ्रमाए। ब्रज ऊपर आवत ये धाए॥
कहत सुनी लोगनि मुख बाता। येई हैं सुरपति सुर व्राता॥
देखि सैन ब्रज लोग सकात। यह आयौ कीन्हैं कछु घात॥
सूर स्याम कौं जाइ सुनायौ। सुरपति सैन साजि ब्रज आयौ॥
॥९५८॥१५६६॥

निकट जानि त्याग्यौ बाहनि कौं। ब्रज बाहिर राख्यौ साहनि कौं॥
सकुचत चल्यौ कृष्न कैं सन्मुख। कछु आनंद कछुक मन मैं दुख॥
पर्यौ धाइ चरननि सुरराई। कृपा-सिंधु राखौ सरनाई॥
कियौ अपराध बहुत बिन जाने। प्रभु उठाइ लिये हँसि मुसुकाने॥
श्रीमुख कह्यौ उठहु सुर-राजा। बदन उठाइ सकत नहिं लाजा॥
ये दिन वृथा गए बेकाजा। तुमकौं नहिं जान्यौ ब्रज-राजा॥
सूर स्याम लीन्हौ उरलाई। असरन सरन निगम यह गाई॥
॥९५९॥१५६७॥

हँसि-हँसि कहत कृष्न मुख बानी। हम नाहिंन रिस तुम पर आनी॥
तुम कत अति संका जिय जानी। भली करी ब्रज बरष्यौ पानी॥
यह सुनि इंद्र अतिहिं सकुचान्यौ। ब्रज अवतार नहीं मैं जान्यौ॥
राखि लेहु त्रिभुवन के नाथा। नहिं मौतैं कोउ और अनाथा॥
फिरि-फिरि चरन धरत लै माथा। छमा करहु राखहु मोहिं साथा॥

रवि आगैं खद्योत प्रकासा। मनि आगैं ज्यौं दीपक नासा॥
कोटि इंद्र रचि कोटि बिनासा। मोहिं गरीब की केतिक आसा॥
दीन बचन सुनि भव के वासा। छमा भए जल पर्यौ हुतासा॥
अमरापति चरननि तर लोटत। रही नहीं मन मैं कछु खोटत॥
उभय भुजा करि लियौ उठाई। सुरपति-सीस अभय कर नाई॥
हँसि दीन्ही प्रभु लोक-बड़ाई। श्रीमुख कह्यौ करौ सुख जाई॥
धन्य-धन्य जन के सुखदाई। जै-जै धुनि देवनि मुख गाई॥
सिव, बिरंचि चतुरानन, नारद। गौरी-सुत दोऊ सँग सारद॥
रबि,ससि,बरुन,अनल,जमराजा। आजु भए सब पूरन काजा॥
असरन सरन सदा तुव बानौ। यह लीला प्रभु तुमहीं जानौं॥
माता तौं सुत करै ढिठाई। माता फिरि ताकौं सुखदाई॥
ज्यौं धरनी हल खोदि बिनासै। सनमुख सतगुन फलहिं प्रकासै॥
कर कुठार ले तरुहिं गिरावै। यह काटै वह छाया छावै॥
जैसैं दसन जीभ दलि जाइ। तब कासौं सो करै रिसाइ॥
धनि ब्रज धनि गोकुल बृंदाबन। धनि जमुना धनि लता कुंज घन॥
धन्य नंद धनि जननि जसोदा। बाल-केलि हरिकैं रस मोदा॥
अस्तुति सुनि मन हरष बढ़ायौ। साधु-साधु कहि सुरनि सुनायौ॥
तुमहिं राखि असुरनि संहारौं। तन धरि धरनी-भार उतारौं॥
आवत जात बहुत स्रम पायौ। जाहु भवन करि कृपा पठायौ॥
कर सिर धरि-धरि चले देव-गन। पहुँचे अमर-लोक आनँद मन॥
यह लीला सुर घरनि सुनाई। गाइ उठीं सुर-नारि बधाई॥
अमरलोक आनंद भए सब। हर्ष सहित आए सुरपति जब॥
सूरदास सुरपति अति हरष्यौ। जै-जै धुनि सुमननि ब्रज बरष्यौ॥
॥९५०॥१५६८॥

हरि कर तैं गिरिराज उतार्‍यौ। सात दिवस जल प्रलय सम्हार्‍यौ॥
ग्वाल कहत कैसैं गिरि धार्‍यौ। कैसैं सुरपति-गर्व निवार्‍यौ॥
बज्रायुध जल बरषि सिरान्यौ। पर्‍यौ चरन जब प्रभु करि जान्यौ॥
हम सँग सदा रहत है ऐसैं। यह करतूति करत तुम कैसैं॥
हम हिलि-मिलि तुम गाइ चरावत। नंद-जसोदा-सुवन कहावत॥
देखि रहीं सब घोष कुमारी। कोटि काम छवि पर बलिहारी॥
कर जोरति रबि गोद पसारैं। गिरिवरधर पति होहिं हमारैं॥

ऐसौ गिरि गोवर्धन भारी। कब लीन्हौ कब धर्‌यौ उतारी॥
तनक तनक भुज तनक कन्हाई। यह कहि उठी जसोदा माई॥
कैसैं परवत लियौ उचकाई। भुज चाँपति चूमति बलि जाई॥
बारंबार निरखि पछिताई। हँसत देखि ठाढ़े बल भाई॥
इनकी महिमा काहु न पाई। गिरिवर धर्‌यौ यहै बहुताई॥
इक इक रोम कोटि ब्रह्मंडा। रवि,ससि,धरनी,धर नव खंडा॥
इहिं ब्रज जन्म लियौ कै बारा। जहाँ तहाँ जल-थल-अवतारा॥
प्रगट होत भक्तनि के काजा। ब्रह्म कीट सम सबके राजा॥
जहँ जहँ गाढ़ परै तह आवैं। गरुड़ छाँड़ि ता सनमुख धावैं॥
ब्रजही मैं नित करन बिहारन। जसुमति-भाव-भक्ति हित-कारन॥
यह लीला इनकौं अति भावै। देह धरत पुनि-पुनि प्रगटावै॥
नैंकु तजत नहिं ब्रज-नर-नारी। इनकैं सुख गिरि धरत मुरारी॥
गर्बवंत सुरपति चढ़ि आयौ। बाम करज गिरि टेकि दिखायौ॥
ऐसे हैं प्रभु गर्ब-प्रहारी। मुख चूमति जसुमति महतारी॥
यह लीला जो नितप्रति गावैं। आपुन सिखि औरनि सिखरावैं॥
भक्ति मुक्ति की केतिक आसा। सदा रहत हरि तिनके पासा॥
चतुरानन जाकौ जस गावै। सेस सहस मुख जाहि बखानै॥
आदि अंत कोऊ नहिं पावै। जाकौ निगम नेति नित गावै॥
सूरदास प्रभु सबके स्वामी। सरन राखि मोहिं अंतरजामी॥
॥९५१॥१५६९॥

गोपादि की बातचीत *राग मलार*

हा हा रे हठीले हरि जननी कौ कह्यौ करि इंद्र गौ बरषि गरि अब गिरिवर धरि।
सात द्यौस कीन्ही छाँह नैंकु न पिरानी बाँह अतिहिं कठिन कूट राख्यौ रे छतनि करि॥
सुनि कै जसोदा धाइ निकट गोपाल आइ करौ रे सबै सहाइ कहै नैन जल भरि॥
कुल के देव मनाए दौबे कौं द्विज बुलाए दियौ जाहि जोइ भाए आनँद उमंग भरि॥
भयौ इंद्र-कोप लोप कहत सबै सचोप जियौ रे कन्हैया प्यारौ जाकैं राज सुख करि॥

सूरदास प्रभु गिरिधर कौ कौतुक देखि काम धेनु आयौ लिये इंद्र
अपडर डरि ॥६५२॥१५७०॥

राग मलार

देखौ माई बदरनि की बरियाई।
कमल नैन कर भार लिए हैं, इंद्र ढीठ झरि लाई॥
जाकैं राज सदा सुख कीन्हौं, तासौं कौन बड़ाई।
सेवक करै स्वामि सौं सरवरि, इन बातनि पति जाई॥
इंद्र ढीठ बलि खात हमारी, देखौ अकिल गँवाई।
सूरदास तिहिं बन काकौ डर, जिहिं बन सिंह सहाई॥
॥६५३॥१५७१॥

राग सोरठ

जहाँ-तहाँ तुम हमहिं उबार्‌यौ।
ग्वाल सखा सब कहत स्याम सौं, धनि जसुमति अवतार्‌यौ॥
तृनावर्त्त ब्रज पर चढ़ि आयौ, लाग्यौ देन उड़ाइ।
अति सिसुता मैं ताहि सँहार्‌यौ, पर्‌यौ सिला पर आइ॥
फल-जनाइ बालक सँग खेलत, केसैं आयौ साथ।
वाहि मारि तुम हमहिं उबार्‌यौ, ऐसे त्रिभुवन नाथ॥
कागासुर, सकटासुर मार्‌यौ, पय पीवत दनु-नारि।
अघा उदर तैं हमहिं बचायौ, बका-बदन धरि फारि॥
कालीदह-जल अँचै गए मरि, तब तुम लियौ जिवाइ।
सूर स्याम सुरपति तैं राख्यौ, देतौ सबनि बहाइ॥
॥६५४॥१५७२॥

राग बिलावल

ब्रज-जुवतीं, ब्रज-जन, ब्रजबासी, कहत स्याम-सरि कौन करै।
ब्रज मारत ब्रजनाथहिं आगैं, बज्रायुध मन क्रोध करै॥
बल समेत बरषै ब्रज ऊपर, बल मोहन की सुधि न करै।
गरजि गरजि घहराइ गुसा करि, गिरि बोरौं, यह पैज करै॥
हारि मानि हहर्‌यौ, हरि-चरननि हरषि हियैं अब हेत करै।
सूरदास गिरिधर करुनामय तुम बिन को प्रभु छमा करै?॥
॥६५५॥१५७३॥

राग सोरठ

जब कर तैं गिरि धर्‌यौ उतारि।
स्याम कह्यौ बहुरौ गिरि पूजहु, ब्रज-जन लिये उबारि॥
यह सुनतहिं मन हरष बढ़ायौ, कियौ पकवान सँवारि।
बहु मिष्टान्न, बहुत विधि भोजन, बहु व्यंजन अनुहारि॥
परसि धर्‌यौ गोवरधन आगैं, जेंवत अति रुचि भारि।
सूर स्याम गिरिधर वर माँगति, रवि सौं घोष-कुमारि॥
॥६५६॥१५७४॥

राग मेघ मलार

स्याम गिरिराज क्यौं धर्‌यौ कर सौं।
अतिहिं बिस्तार, अति भार, तुम बार अति, बाम भुज टेकि लघु-
जात-कर सौं॥
कहत सब ग्वाल, धनि धन्य नँदलाल, ब्रज धन्य गोपाल, बल-
कितिक कर सौं॥
धन्य जसुमति मात, जिनि जन्यौ तुम तात, चोरि माखन खात,
बाँधे कर सौं॥
कान्ह हँसि कै कह्यौ, तुम सबनि गिरि गह्यौ, रह्यौ हौं ब्रज बह्यौ,
लकुट कर सौं॥
सूर प्रभु के चरित, कहा बल गिरि धरत, चरन-रज लेत सुरराज
कर सौं॥६५७॥१५७५॥

राग कान्हरौ

घर घर तैं ब्रज-जुवती आवतिं।
दधि अच्छत रोचन धरि थारनि, हरषि स्याम-सिर तिलक बनावतिं।
बार-बार निरखतिं अँग-अँग-छवि, स्याम रूप उर माहिं दुरावतिं॥
नंद-सुवन गिरि धर्‌यौ बाम कर, यह कहि-कहि मन हरष बढ़ावतिं।
जिहिं पूजत सब जनम गँवायौ, सो कैसेहुँ पग छुवन न पावतिं।
सूर स्याम गिरिधरन माँगि वर, कर जोरतिं कहि बिधिहिं
मनावतिं॥६५८॥१५७६॥

राग नट

करतैं धर्‌यौ गिरिवर धरनि।
देखि ब्रज-जन छवि रहे थकि, रूप रति-पति हरनि॥

लेत बेर न धरत जान्यौ, कहत ब्रज घर-घरनि।
तन ललित भुज अतिहिं कोमल, कियौ बल बहु करनि॥
मोर मुकुट, बिसाल लोचन, श्रवन कुंडल वरनि।
नव जलद, सुरचाप की छबि, जुगल खंजन तरनि॥
बरषि निझरे मेघ-पाइक बहुत कोनी अरनि।
सूर सुरपति हारि मानी तब पर्‌यौ दुहुँ चरनि॥९५९॥
॥१५७७॥

राग सोरठ

नीकैं धरनि धर्‌यौ गोपाल।
प्रलय घन जल बरषि सुरपति, पर्‌यौ चरन बिहाल॥
करत अस्तुति नारि-नर-ब्रज, नंद अरु सब ग्वाल।
जहाँ-तहाँ सहाइ हमकौं, होत हैं नँदलाल॥
जाहि पूजन डरत मन मैं, ताहि देख्यौ दीन।
त्रिदस-पति सब सुरनि नायक, सो तुमहिं आधीन॥
देखि छबि अति नंद-सुत की, नारि तन मन वारि।
सूर प्रभु कर तैं गोबर्धन, धर्‌यौ धरनि उतारि॥९६०॥१५७८॥

राग बिलावल

घरनि-घरनि ब्रज होति बधाई।
सात बरष कौ कुँवर कन्हैया, गिरिवर धरि जीत्यौ सुरराई॥
गर्व सहित आयौ ब्रज बोरन, वह कहि मेरी भक्ति घटाई॥
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, तब आयौ पाइनि तर धाई॥
कहाँ कहाँ नहिं संकट मेटत, नर-नारी सब करत बड़ाई॥
सूर स्याम अब कैं ब्रज राख्यौ, ग्वाल करत सब नंद दोहाई॥
॥९६१॥१५७९॥

राग नट

क्यौं राख्यौ गोबर्धन स्याम।
अति ऊँचौ, बिस्तार अतिहिं, वह लीन्हौ उचकि करज-भुज-बाम॥
वह आघात महा परलै-जल, डर आवत मुख लेतहिं नाम॥
नीकैं राखि लियौ ब्रज सिगरौ, ताकौं तुमहिं पठायौ धाम॥

ब्रज अवतार लियौ जब तैं तुम, यहै करत निसि-बासर-जाम ॥
सूर स्याम बन-बन हम कारन, बहुत करत स्रम नहिं बिस्राम ॥
॥६६२॥१५८०॥

राग नट

राखि लियौ ब्रज नंद किसोर।
आयौ इंद्र गर्व करिकै चढ़ि, सात दिवस बरषत भयौ भोर ॥
बाम भुजा गोबर्धन धार्यौ, अति कोमल नखहीं की कोर।
गोपी-ग्वाल-गाइ-ब्रज राखे, नैंकु न आई बूँद-झकोर ॥
अमरापति तब चरन पर्यौ लै, जब बीते जुग गुन के जोर।
सूर स्याम करुना करि ताकौं, पठै दियौ घर मानि निहोर ॥
॥६६३॥१५८१॥

राग मलार

(मेरे) मोहन जल-प्रवाह क्यौं टार्यौ।
बूझति मुदित जसोदा जननी, इंद्र कोप करि हार्यौ ॥
मेघवर्त्त जल बरषि निसा दिन, नैंकु न बेग निवार्यौ।
बार-बार यह कहति कान्ह सौं, कैसैं गिरि नख धार्यौ ॥
सुरपति आनि पर्यौ गहि पाइनि, ताकौं सरन उबार्यौ।
सूर स्याम जन के सुखदाता, कर तैं धरनि उतार्यौ ॥६६४॥१५८२॥

राग सोरठ

(तेरैं) भुजनि बहुत बल होइ कन्हैया।
बार-बार भुज देखि तनक से, कहति जसोदा मैया ॥
स्याम कहत नहिं भुजा पिरानी, ग्वालनि कियौ सहैया।
लकुटिनि टेकि सबनि मिलि राख्यौ, अरु बाबा नँदरैया ॥
मोसौं क्यौं रहतौ गोबरधन, अतिहिं बड़ौ वह भारी।
सूर स्याम यह कहि परबोध्यौ चकित देखि महतारी ॥
॥६६५॥१५८३॥

राग सोरठ

(मेरे) साँवरे मैं बलि जाउँ भुजन की।
क्यौं गिरि सबल धर्यौ कोमल कर, बूझति हौं गति तन की ॥

इंद्र कोपि आए ब्रज ऊपर, बहुत पैज करि हारे।
गोपी ग्वाल कहत जोरे कर तुम हम सबनि उबारे॥
थार तमोर, दूब, दधि, रोचन, हरषि जसोदा ल्याई।
करि सिर तिलक बदन अवलोकति, मनहुँ रंक निधि पाई॥
परसति चरन कमलनि ब्रज-सुंदरि, हरषि-हरषि मुसुकाई।
फिरि-फिरि दरस करतिं एही मिस, प्रेम न परत अघाई॥
सूरदास सुरपति संकित ह्वै, सुरनि लिये सँग आयौ।
तुम कृपालु अबिगत अबिनासी, काहूँ मरम न पायौ॥
॥९६६॥१५८४॥

राग सोरठ

गिरिवर कैसैं लियौ उठाइ।
कोमल कर चापति महतारी, यह कहि लेति बलाइ॥
महा प्रलय जल तापर, राख्यौ, एक गोबर्धन भारी।
नैंकु नहीं टारयौ नख पर तैं, मेरौ सुत अहँकारी॥
कंचन-थार दूब-दधि-रोचन, सजि तमोर लै आई।
हरषित तिलक करति, मुख निरखतिं, भुज भरि कंठ लगाई॥
रिस करिकै सुरपति चढ़ि आयौ, देतौ ब्रजहिं बहाई।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, गिरिधर बड़ौ कन्हाई॥
॥९६७॥१५८५॥

राग धनाश्री

सखी सबै मिलि कान्ह निहारौ।
जसुमति उर लावति, कर पल्लव सात दिवस गिरि धारौ॥
पूजा बिधि मेटी जु सक्र की, तिनि जिय द्रोह बिचारौ।
छाँड़े मेघ मत्त परलै के, गरजि गयँद-सुँडि धारौ॥
अति आरत जाने ब्रजबासी, सिसु गिरि नैंकु निहारौ।
अनायास अहि-छत्र छिनक मैं, खेलत माँझ उपारौ॥
सुरपति कौ कियौ मान-भंग हरि, ब्रज आपनौ उबारौ।
सूरदास कौ जीवन गिरिधर, जसुमति-प्रान-दुलारौ॥
॥९६८॥१५८६॥

राग सोरठ

धरनि-धर क्यौं राख्यौ दिन सात।
अतिहीं कोमल भुजा तुम्हारी, चापति जसुमति मात॥

ऊँचौ अति बिस्तार भार बहु, यह कहि-कहि पछितात।
वह अगाध तुव तनक-तनक कर कैसैं राख्यौ तात॥
मुख चूमति, हरि कंठ लगावति, देखि हँसत बल भ्रात।
सूर स्याम कौं कितिक बात यह, जननी जोरति गात॥
॥६६९॥१५८७॥

राग देवगंधार

सबै मिलि पूजौ हरि की बहियाँ।
जौ नहिं लेत उठाइ गोवर्धन को बाँचत ब्रज महियाँ॥
कोमल कर गिरि धर्यौ घोष पर सरद कमल की छहियाँ।
सूरदास प्रभु तुम दरसन सौं आनंद है सब कहियाँ॥
॥६७०॥१५८८॥

राग कान्हरौ

जननी चापति भुजा स्याम की ठाढ़े देखि हँसत बलराम।
चौदह भुवन उदर मैं जाके, गिरिवर धर्यौ कहा यह काम॥
कोटि ब्रह्मांड रोम-रोमनि-प्रति, जहाँ-तहाँ निसि-बासर धाम।
जोइ आवत सोइ देखि चकृत ह्वै, कहत करे हरि ऐसे काम॥
नाभि-कमल ब्रह्मा प्रगटायौ, देखि जलार्नव तज्यौ बिस्राम।
आवत जात बीचहीं भटक्यौ, दुखित भयौ खोजत निज धाम॥
तिनसौं कहत सकल ब्रजबासी कैसैं गिरि राख्यौ कर बाम।
सूरदास प्रभु जल-थल ब्यापक, फिरि-फिरि जन्म लेत नँद-धाम॥
॥६७१॥१५८९॥

राग गौरी

मातु पिता इनके नहिं कोइ।
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, त्रिगुन रहित हैं सोइ॥
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज, ये हैं ऐसे ओइ।
जल-थल, कीट-ब्रह्म के ब्यापक, और न इन सरि होइ॥
बसुधा-भार-उतारन-काजैं, आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन, भोजन माँगत रोइ॥
॥६७२॥१५९०॥

अमर-स्तुति तथा कृष्णाभिषेक *राग गौरी*

अमरराज सब अमर बुलाए।
आज्ञा सुनि घर-घर तैं आए, कछू बिलंब न लाए॥
कौन काज सुरराज हँकारे, हमकौं आयसु होइ।
देखौ मेघवर्त्तकनि की गति, ब्रज तैं आए रोइ॥
गोवरधन की पूजा कीन्हीं, मोहिं डार्‌यौ बिसराइ।
मेघवर्त्त, जलवर्त्त पठाए, आवहु ब्रजहिं बहाइ॥
धार अखंडित बरषि सात दिन, ब्रज पहुँची नहिं बुंद।
सुरनि कही गोकुल प्रगटे हैं, पूरन ब्रह्म मुकुंद॥
मोसौं क्यौं न कही तुम तबहीं, गोकुल हैं ब्रजराज।
सूरदास प्रभु कृपा करहिंगे, सरन चलौ दिवराज॥
॥९७३॥१५९१॥

राग सोरठ

सरन गए जो होइ सु होइ।
वे करता, वेई हैं हरता, अब न रहौ मुख गोइ॥
ब्रज अवतार कह्यौ है श्रीमुख, तेई करत बिहार।
पूरन ब्रह्म सनातन वेई, मैं भूल्यौ संसार॥
उनके आगैं चाहौं पूजा, ज्यौं मनि दीप प्रकास।
रवि आगैं खद्योत उज्यारी, चंदन संग कुबास॥
कोटि इंद्र छिनहीं मैं राचैं, छिन मैं करैं बिनास।
सूर रच्यौ उनहीं कौ सुरपति, मैं भूल्यौ तिहिं आस॥
॥९७४॥१५९२॥

राग सारंग

प्रगट भए ब्रज त्रिभुवन राइ।
जुग-गुन बीति त्रिगुन-बुधि व्यापी, सरन चल्यौ सुरपति अकुलाइ।
सपनैं कौ धन जागि परैं ज्यौं, त्यौं, जानी अपनी ठकुराइ।
कहत चल्यौ यह कहा कियौ मैं, जगत-पिता सौं करी ढिठाइ।
सिव-बिरंचि, रबि-चंद्र, बरुन-जम, लिये अमर-गन संग लिवाइ।
बार-बार सिर धुनत जात मग, कैहौं कहा बदन दिखराइ।
वे हैं परम कृपालु महा प्रभु रहौं सीस चरननि तर नाइ।
सूरदास प्रभु पिता मातु मैं, ओछी बुद्धि करी लरिकाइ॥
॥९७५॥१५९३॥

इंद्र-शरणागमन राग कान्हरो

सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐरावत देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत॥
अमरा-सिव-रबि-ससि-चतुरानन, हय-गय बसह-हंस-मृग-जावत।
धर्मराज, बनराज अनल दिव, सारद, नारद, सिव-सुत भावत॥
मेढ़ा, महिष, मगर, गुदरारौ, मोर, आखुमन-बाहन, गावत।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन, हरि आगैं कहि कहि जु सुनावत॥
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, आवत चल्यौ ब्रजहि अतुरावत।
घेरौ करत जहाँ तहँ ठाढ़े, ब्रजबासिनि कौं नाहिं बचावत॥
दूरहिं तैं बाहन सौं उतर्‌यौ, देवनि सहित चल्यौ सिर नावत।
आइ पर्‌यौ चरननि तर आतुर, सूरदास-प्रभु सीस उठावत॥
॥९७६॥१५९४॥

राग मलार

सुरपति चरन पर्‌यौ गहि धाइ।
सुग-गुन धोइ सेष-गुन जान्यौ, आयौ सरन राखि सरनाइ॥
तुम बिसरे तुम्हरी ही माया, तुम बिनु नाहीं और सहाइ।
सरन-सरन पुनि-पुनि कहि-कहि मोहिं, राखि-राखि त्रिभुवन के राइ॥
मोतैं चूक परी बिनु जानैं, मैं कीन्हे अपराइ बनाइ।
तुम माता तुमहीं जग धाता, तुम भ्राता अपराध छमाइ॥
ज्यौं बालक जननी सौं बिरुझै, माता ताकौं लेइ मनाइ।
ऐसेहि मोहिं करौ करुनामय, सूर स्याम ज्यौं सुत-हित माइ॥
॥९७७॥१५९५॥

राग बिलावल

ब्याकुल देखि इंद्र कौं श्रीपति, उभय भुजा करि लियौ उठाइ।
अभै निभै कर माथैं दीन्हौ, श्रीमुख बचन कह्यौ मुसुक्याइ॥
कहा भयौ करि क्रोध चढ़े ब्रज, मैं तुरतहिं करि लियौ सहाइ।
हमकौं जानि नहीं तुम कीन्हौ, बिनु जानें यह करी ढिठाइ।
अब अपनैं जिय सोच करौ जिनि यह मेरी दीन्ही ठकुराइ।
सूर स्याम गिरिधर सब लायक, इंद्रहिं कह्यौ करौ सुख जाइ।
॥९७८॥१५९६॥

राग नट

सुरगन करत अस्तुति मुखनि।
दरस तैं तनु-ताप खोयौ, मेटि अघ के दुखनि॥
अंग पुलकित रोम, गद्गद कहत बानी सुखनि।
बाम भुज गिरि टेकि राख्यौ, करज लघु के नखनि॥
प्रेम कैं बस तुमहिं कीन्हौ, ग्वाल-बालक सखनि।
जोगि जन बन तपनि जापनि, नहीं पावत मखनि॥
धन्य नँद धनि मातु-जसुमति, चलत जाकैं रुखनि।
सूर प्रभु-महिमा अगोचर, जाति कापै लखनि॥
॥६७६॥१५६७॥

राग श्री

जयति नँदलाल जय जयति गोपाल, जय जयति ब्रजबाल आनंदकारी।
कृष्न कमनीय मुख-कमल राजित-सुरभि, मुरलिका-मधुर-धुनि बन बिहारी॥
स्याम घन दिब्य तन पीत पट दामिनी, इंद्र धनु मोर कौ मुकुट सोहै।
सुभग उर माल मनि कंठ चंदन अंग, हास्य ईषद जु त्रैलोक्य मोहै।
सुरभि-मंडल-मध्य भुज सखा अंस दियैं, त्रिभँगि सुंदर लाल अति बिराजै।
बिस्व-पूरन-काम कमल लोचन खरे, देखि सोभा काम कोटि लाजै।
स्रवन कुंडल लोल, मधुर मोहन बोल, बेनु-धुनि सुनि सखनि चित्त मोदै।
कलप-तरुवर-मूल सुभग जमुना-कूल, करत क्रीड़ा-रंग सुख बिनोदै।
देव, किन्नर, सिद्ध, सेस सुक, सनक, सिव, देखि बिधि, ब्यास मुनि सुजस गायौ।
सूर कौ गोपाल सोइ सुख-निधि नाथ आपुनौ जानि कै सरन आयौ।
॥६८०॥१५६८॥

राग भैरव

जै गोबिंद माधव मुकुंद हरि। कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि।
प्रनतपाल केसव कमलापति। कृष्न कमल-लोचन अगतिनि-गति॥
रामचंद्र राजीव-नैन-बर। सरन साधु श्रीपति सारँगधर।
बनमाली बामन बीठल बल। बासुदेव बासी ब्रज भूतल॥

खर-दूषन-त्रिसिरासुर खंडन। चरन-चिन्ह-दंडक-भुव-मंडन॥
बकी-दवन बक-बदन-विदारन। बरुन-विषाद - नंद - निस्तारन।
रिषि-मष-त्रान ताड़का-तारक। बन बसि तात-बचन-प्रतिपालक।
काली-दवन केसि-कर-पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन॥
रघुपति प्रबल-पिनाक-विभंजन। जग-हित जनक-सुता मन-रंजन।
गोकुल-पति गिरिधर गुन-सागर। गोपी-रवन रास-रति-नागर॥
करुनामय कपि-कुल-हितकारी। बालि-विरोधि कपट-मृग-हारी॥
गुप्त-गोप-कन्या-ब्रत-पूरन। द्विज-नारी-दरसन-दुख - चूरन॥
रावन-कुंभकरन-सिर-छेदन। तरुवर सात एक सर भेदन॥
कंस-मूढ़-चानूर-सँहारन। सक्र कहै मम रच्छा-कारन॥
उत्तर क्रिया गीध की करी। दरसन दै सबरी उद्धरी।
जे पद सदा संभु-हितकारी। जे पद परसि सुरसरी गारी।
जे पद रमा हृदय नहिँ टारै। जे पद तिहूँ भुवन प्रतिपारैं।
जे पद अहि-फन-फन-प्रति-धारी। जे पद वृंदा विपिनि बिहारी।
जे पद सकटासुर संहारी। जे पद पांडव-गृह पग धारी।
जे पद रज गौतम-तिय तारी। जे पद भक्तनि के सुखकारी।
सूरदास सुर जाँचत ते पद। करहु कृपा अपने जन पर सद॥
॥६८१॥१५९९॥

राग आसावरी

अस्तुति करि सुर धरनि चले।
यहै कहत सब जात परसपर, सुकृत हमारे प्रगट फले॥
सिव, बिरंचि, सुरपति यह भाषत, पूरन ब्रह्महिं प्रगट मिले।
धन्य-धन्य यह दिवस आजु कौ, जात हैं मारग गरब गिले॥
पहुँचे जाइ आपनैं लोकनि, अमर-नारि अति हरष भरैं।
सूर स्याम की लीला सुनि-सुनि, अति हित मंगल गान करैं॥
॥६८२॥१६००॥

राग मलार

देखियत दोउ घन उनए।
उत मघवा-बस, भक्त-बस्य इत, दोउ रस रोष रए॥
उत सुर-चाप, कलाप-चंद्र इत, तड़ित, पट पीत नए।
उत सेनापति बरषत, ये इत अमृत-धार बितए॥

जुगल बीच गिरिराज बिराजत, करज उठाइ लए।
मनु बिबि मरकत मनि बीच महा नग, मनौ बिचित्र ठए॥
लुठत सक्र कौ सीस चरन तर, जुग-गुन-गत समये।
मानहु कनकपुरी-पति के सिर, रघुपति छत्र दये॥
भए प्रसन्न सकल, सुरपुर कौं, प्रमुदित फेरि गए।
सूरदास गिरिधर करुनामय, इंद्र थापि पठए॥
॥६८३॥१६०१॥

वरुण से नंद को छुड़ाना *राग बिलावल*

उत्तम सफल एकादसि आई। बिधिवत ब्रत कीन्हौ नँदराई॥
निराहार जल-पान बिवर्जित। पापनि रहित धर्म-फल-अर्जित॥
नारायन-हित ध्यान लगायौ। और नहीं कहुँ मन बिरमायौ॥
बासर ध्यान करत सब बीत्यौ। निसि जागरन करन मन चीत्यौ॥
पाटंबर दिवि मंदिर छायौ। पुहुप-माल मंडली बनायौ॥
देव महल चंदनहि लिपायौ। चौक देइ बैठकी बनायौ॥
सालिग्राम तहाँ बैठायौ। धूप-दीप नैवेद्य चढ़ायौ॥
आरति करि तब माथ नवायौ। ध्यान सहित मन बुद्धि उपायौ॥
आदर सहित करी नँद-पूजा। तुम तजि और न जानौं दूजा॥
तृतिय पहर जब रैनि गँवाई। नंद महरि सौं कही बुलाई॥
दंड एक द्वादसी सकारैं। पारन की बिधि करौ सवारैं॥
यह कहि नंद गए जमुना-तट। लै धोती झारी बिधि-कर्मट॥
झारी भरि जमुना-जल लीन्हौ। बाहिर जाइ देह कृत कीन्हौ॥
लै माटी कर चरन पखारी। उत्तम बिधि सौं करी मुखारी॥
अँचवन लै पैठे नँद पानी। जल बाजत दूतनि तब जानी॥
नंद बाँधि लै गए पतालहिं। बरुन पास ल्याए ततकालहिं॥
जान्यौ बरुन कृष्न के तातहिं। मनहीं मन हरषित इहिं बातहिं॥
भीतर लै राखे नँद नीकैं। अंतःपुर महलनि रानी कैं॥
रानी सबनि नँद कौं देख्यौ। धन्य जन्म अपनौ करि लेख्यौ॥
जिनके सुत त्रैलोक-गुसाईं। सुर-नर-मुनि सबही के साईं॥
बरुन कह्यौ मन हरष बढ़ाए। बड़ी बात भई नंदहि ल्याए॥
अंतरजामी जानत बाता। अब आवत ह्वैहैं जग त्राता॥
जाकौ ब्रह्मा अंत न पायौ। जाकौं मुनि जन ध्यान लगायौ॥

जाकौं निगम नेति गावत हैं। जाकौं बन मुनिवर ध्यावत हैं॥
जाकौं ध्यान धरैं सिव जोगी। जाकौं सेवत सुरपति भोगी॥
जो प्रभु हैं जल-थल सब व्यापक। जो हैं कंस-दर्प के दापक॥
गुन-अतीत, अविगत, अविनासी। सोइ ब्रज मैं खेलत सुख-रासी॥
धनि मेरे भृत नंदहिं ल्याए। करुनामय अब आवत धाए॥
महरि कही तब ग्वाल सगर कौं। बड़ो बार भई नंद महर कौं॥
गए ग्वाल तब नंद बुलावन। देख्यौ जाइ जमुन-जल पावन॥
जहँ-तहँ ढूँढ़ि ग्वाल घर आए। धोती अरु झारी वै ल्याए॥
मन-मन सोच करत अकुलाए। कही जसोदहि नंद न पाए॥
धोती झारी तट मैं पाई। सुनत महरि-मुख गयौ झुराई॥
निसा अकेले आजु सिधाए। काहूँ धौं जलचर धरि खाए॥
यह कहि जसुमति रोइ पुकारयौ। मो बरजत कत रैनि सिधारयौ॥
ब्रज-जन लोग सबै उठि धाए। जमुना कैं तट कहूँ न पाए॥
बन-बन ढूँढ़त गाउँ सझारैं। नंद-नंद कहि लोग पुकारैं॥
खेलत तैं हरि-हलधर आए। रोवत मातु देखि दुख पाए॥
कत रोवति है जसुदा मैया। पूछत जननी सौं दोउ भैया॥
कहत स्याम जनि रोवहु माता। अबहीं आवत हैं नँद ताता॥
मोसौं कहि गए अबहीं आवन। रोवै मति मैं जात बुलावन॥
सबके अंतरजामी हैं हरि। लै गयौ बाँधि बरुन नंदहिं धरि॥
यह कारज मैं वाकौं दीन्हौ। वाके दूतनि नंद न चीन्हौ॥
बरुन-लोक तबहीं प्रभु आए। सुनत बरुन आतुर ह्वै धाए॥
आनँद कियौ देखि हरि कौ मुख। कोटि जनम के गए सबै दुख॥
धन्य भाग मेरे बड़ आजू। चरन-कमल-दरसन सुभ काजू॥
पाटंबर पाँवडे डसाए। महलनि बंदनवार बँधाए॥
रत्न-खचित सिंहासन धारयौ। तापर कृष्नहिं लै बैठारयौ॥
अपनैं कर प्रभु-चरन पखारे। जे कमला-उर तैं नहिं टारे॥
जे पद परसि सुरसरी आई। तिहूँ लोक है बिदित बड़ाई॥
ते पद बरुन हाथ लै धोए। जनम-जनम के पातक खोए॥
कृपासिंधु अब सरन तुम्हारैं। इहिं कारन अपराध बिचारे॥
चले आपु हरि नंदहिं देखन। बैठे नंद राज-बर-बेषन॥
नृप-रानी सब आगैं ठाढ़ीं। मुख-मुख तैं सब अस्तुति काढ़ीं॥
पाइनि परीं कृष्न कैं रानी। धन्य जनम सबहिनि कही बानी॥

धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा। धनि-धनि तुम्हैं खिलावति गोदा ॥
धनि ब्रज धनि गोकुल की नारी। पूरन ब्रह्म जहाँ बपु-धारी ॥
सेस-सहस-मुख बरनि न जाई। सहज रूप को करै बड़ाई ! ॥
देखि नंद तब करन बिचारा। यह कोउ आहि बड़ौ अवतारा ॥
नंद मनहि अति हर्ष बढ़ायौ। कृपा-सिंधु मेरैं गृह आयौ ॥
बरुनहि दीन्ही-लोक बड़ाई। बृंदाबन-रज करौ सदाई ॥
बरुन थापि नंदहि ले आए। महर गोप सब देखन धाए ॥
नंदहि बूझत हैं सब बाता। हम अति दुखित भए सब गाता ॥
एकादसी काल्हि मैं कीन्हौ। निसि-जागरन-नेम यह लीन्हौ ॥
तीनि पहर निसि जागि गँवाई। तब लीन्ही मैं महरि बुलाई ॥
एक दंड द्वादसी सुनाई। ता कारन मैं करी चँड़ाई ॥
एक दंड द्वादसि कैयौ पल। रैनि अछत मैं गयौ जमुन-जल ॥
गयौ जमुन-भीतर कटि लौं भरि। बरुन-दूत ले गए मोहिं धरि ॥
तहँ तैं जाइ कृष्ण मोहि ल्यायौ। यह कोउ बड़ौ पुरुष है आयौ ॥
इनकी महिमा कोउ न जानै। बरुन कोटि मुख इन्हैं बखानै ॥
रानिनि सहित पर्‍यौ चरननि तर। बंदनवार बँधे महलनि घर ॥
मेरौ कह्यौ सत्य कै मानौ। इनकौं नर देही जनि जानौ ॥
जसुमति सुनि चकित यह बानी। कहत कहा यह अकथ कहानी ॥
ब्रज-नर-नारि कहत यह गाथा। इनतैं हम सब भए सनाथा ॥
मया मोह करि सबै भुलाए। नंदहि बरुन-लोक तैं ल्याए ॥
नंद इकादसि बरनि सुनाई। कहत-सुनत सब कैं मनभाई ॥
जो या पद कौं सुनै सुनावै। एकादसि ब्रत को फल पावै ॥
यह प्रताप नंदहिं दिखराई। सूरदास-प्रभु गोकुल-राई ॥
॥९८४॥१६०२॥

राग कान्हरा

नंदहि कहति जसोदा रानी।
मोहिं बरजत निसि गए जमुन-तट, पैठे इकले पानी।
अब तौ कुसल परी पुन्यनि तैं, द्विजनि करौ कछु दान ॥
बोलि लेहु बाजने बजावहिं, देहु मिठाई पान ॥
गावतिं मंगल नारि, बधाई बाजति नंद-दुवार।
सुनहु सूर यह कहति जसोदा, नंद बचे इहिं बार ॥
॥९८५॥१६०३॥

राग बिलावल

कहत नंद जसुमति सुनि बात।
अब अपनैं जिय सोच करति कत, जाके त्रिभुवन पति से तात॥
गर्ग सुनाइ कही जो बानी सोई, प्रगट होति है जात।
इनतैं नहीं और कोउ समरथ येई हैं सबही के भ्रात॥
माया रूप लगाइ मोहिनी, डारे भुलै सबै जे गाथ।
सूर स्याम खेलत तैं आए, माखन माँगत दै माँ हाथ॥
॥६८६॥१६०४॥

राग गौरी

तबहिं जसोदा माखन ल्याई।
मैं मथि कै अबहीं धरि राख्यौ, तुम हित कुँवर कन्हाई॥
माँगि लेहु याही बिधि मोसौं, मो आगैं तुम खाहु।
बाहिर जनि कबहूँ कछु खैयै, डीठि लगैगी काहु॥
तनक-तनक कछु खाहु लाल मेरे, ज्यौं बढ़ि आवै देह।
सूर स्याम अब होहु सयाने, बैरिनि कैं मुँह खेह॥
॥६८७॥१६०५॥

रास पंचाध्यायी आरंभ *राग गुंड मलार*

सरद-निसि देखि हरि हरष पायौ।
बिपिन बृंदा रमन, सुभग फूले सुमन, रास रुचि श्याम के मनहिं आयौ॥
परम उज्वल रैनि, छिटकि रही भूमि पर, सद्य फल तरुनि प्रति लटकि लागे॥
तैसोई परम रमनीक जमुना-पुलिन, त्रिबिध बहै पवन आनंद जागे॥
राधिका रमन बन-भवन-सुख देखि कै, अधर धरि बेनु सु ललित बजाई॥
नाम लै लै सकल गोप-कन्यानि के, सबनि कैं स्रवन वह धुनि सुनाई॥
सुनत उपज्यौ मैन, परत काहुँ न चैन, सब्द सुनि स्रवन भई बिकल भारी॥
सूर-प्रभु ध्यान धरि कै चलीं उठि सबै, भवन-जन-नेह तजि घोष-नारी॥६८८॥१६०६॥

राग टोड़ी

मुरली सुनत भई सब बौरी। मनहुँ परी सिर माँझ ठगौरी॥
जो जैसैं सो तैसैं दौरी। तन ब्याकुल भई बिवस किसोरी॥
कोउ धरनी, कोउ गगन निहारै। कोउ कर कर तैं बासन डारै॥
कोउ मनहीं मन बुद्धि बिचारै। कोउ बालक नहिं गोद सम्हारै॥
घर-घर तरुनी सब बितताानी। मन-मन कहति कौन यह बानी॥
छुटि सब लाज गई कुल-कानी। सुत पति आरज-पंथ भुलानी॥
लै लै नाम सबनि कौ टेरैं। मुरली-धुनि सबही के नेरैं॥
कोउ जेंवत पतिहीं तनु हेरैं। कोउ दधि मैं जावन पय फेरैं॥
कोउ उठि चली जैसैंहीं तैसैं। फिरि आवहिं घरही मैं पैसैं॥
घर पाछैं मुरली-धुनि ऐसैं। आँगन गएँ नहीं वह जैसैं॥
गृह गुरुजन तिनहूँ सुधि नाहीं। कोउ कितहूँ, कोउ कितहूँ जाहीं॥
कोउ निरखत नहिं काहू माहीं। मुरछ्यौ मदन तरुनि सब डाहीं॥
व्याकुल भई सबै ब्रजनारी। मुरली सौं बोलीं गिरिधारी॥
चलीं सबै जहँ तहँ सुकुमारी। उपजी प्रीति हृदय अति भारी॥
मुरली स्याम अनूप बजाई। बिधि-मर्जादा सबनि भुलाई॥
निसि बन कौं जुवती सब धाईं। उलटे अंग अभूषन ठाई॥
कोउ चली चरन हार लपटाई। काहूँ चौकी भुजनि बनाई॥
अँगिया कटि, लहँगा उर लाई। यह सोभा बरनी नहिं जाई॥
कोउ उठि चली, जाति है कोऊ। कोउ मग गई, मिली मग कोऊ॥
सूरदास प्रभु कुंजबिहारी। सरद-रास-रस-रीति बिचारी॥
॥९८९॥१६०७॥

राग बिहागरौ

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर-नर-नाग निरंतर, ब्रज-बनिता उठि धाईं॥
जमुना-नीर-प्रवाह थकित भयौ, पवन रह्यौ मुरझाई।
खग-मृग-मीन अधीन भए सब, अपनी गति बिसराई॥
द्रुम, बेली अनुराग-पुलक तनु, ससि थक्यौ निसि न घटाई।
सूर स्याम बृंदाबन बिहरत, चलहु सखी सुधि पाई॥
॥९९०॥१६०८॥

राग कल्यान

सुनि कै कुंज कानन बैन।
ब्रज-बधू सब बिसरि अंबर, चलीं गृह तजि चैन॥
खग्ग इहिं बिधि भयौ मोहन, सूझि और परै न।
थकित जमुना भई इहिं बिधि, मनहुँ जल कियौ सैन॥
सघन मुनि जन भए इहिं बिधि, पूजियौ पद-रैन।
सूर स्याम जु रसिक नागर, सुभट सुर उर दैन॥

॥६६१॥१६०६॥

राग बिहागरा

मुरली सुनत उपजी बाइ।
स्याम सौं अति भाव बाढ्यौ, चलीं सब अकुलाइ॥
गुरुजननि सौं भेद काहूँ, कह्यौ नाहिं उघारि।
अर्धरैनि चलीं घरनि तैं, जूथ-जूथनि नारि॥
नंद-नंदन तरुनि बोलीं, सरद-निसि कैं हेत।
रुचि सहित बन कौं चलीं वै, सूर भईं अचेत॥

॥६६२॥१६१०॥

राग केदारो

आजु बन बेनु बजावत स्याम।
यह कहि-कहि चकित भईं गोपी, सुनत मधुर सुर-ग्राम॥
कोउ ज्यौनार करति, कोउ बैठी, कोउ ठाढ़ी ही धाम।
कोउ जेंवति, कोउ पतिहिं जिवावति, कोउ सिंगार मैं बाम॥
मनौ चित्र कैसी लिखि काढ़ीं, सुनत परस्पर नाम।
सूर सुनत मुरली भईं बौरी, मदन कियौ तन ताम॥

॥६६३॥१६११॥

राग गुंड मलार

सुनत मुरली भवन डर न कीन्हौ।
स्याम पै चित्त पहुँचाइ पहिलैं दियौ, आपु उठि चली सुधि मदन दीन्हौ॥
कहत मन-कामना आज पूरन करैं, नंद-नंदन सबनि बन बुलाई।
जानि लायक भजीं, तरुनि सुत-पति तजीं, काहुँ नहिं लजीं अति प्रेम धाईं॥

तज्यौ कुल-धर्म, गोधन, भवन-जन तजे, पगीं रस कृष्न-बिनु
कछु न भावै।
सूर-प्रभु सौं प्रेम सत्य करि कै कियौ, मन गयौ तहाँ, इनकौं बुलावै॥
॥६६४॥१६१२॥

राग नट

हरि-मुख सुनत बेनु रसाल।
बिरह ब्याकुल भईं बाला, चलीं जह गोपाल॥
पय दुहावत तजि चलीं कोउ, रह्यौ धीरज नाहिं।
एक दोहनि दूध जावन कौं, सिरावत जाहिं॥
एक उफनत ही चलीं उठि, धर्‍यौ नाहि उतारि।
एक जेंवन करत त्याग्यौ, चढ़ी चूल्हैं दारि॥
एक भोजन करि सँपूरन, गई वैसैंहिं त्यागि।
सूर-प्रभु कैं पास तुरतहि, मन गयौ उठि भागि॥
॥६६५॥१६१३॥

राग सोरठ

मुरली मधुर बजाई स्याम।
मन हरि लियौ भवन नहिं भावै, ब्याकुल ब्रज की बाम॥
भोजन, भूषन की सुधि नाहीं, तनु कौ नहीं सम्हार।
गृह गुरु-लाज सूत सौं तोर्‍यौ, डरीं नहीं ब्यवहार॥
करत सिंगार बिबस भईं सुंदरि, अंगनि गईं भुलाइ।
सूर-स्याम बन बेनु बजावत, चित हित-रास रमाइ॥
॥६६६॥१६१४॥

राग केदार

मधुर धुनि बाजै सुनि सजनी (री)।
बृंदावन मधि रास रच्यौ है, नंद-नँदन अति सुख रजनी (री)॥
जित-तित रहो स्रवन दै दृग, सुधि न रही कोउ एक जनी (री)।
सुत-पति छाँड़ि चलीं ब्याकुल ह्वै, भूलि गईं कुल की लजनी (री)॥
लोक-लाज तजि चलीं प्रेम-बस, बनिता बृंद चंद-बदनी (री)।
सूरजदास आस दरसन की, सबै भईं नागर भजनी (री)॥
॥६६७॥१६१५॥

राग गुंड मलार

करत शृंगार जुवती भुलाहीं।
अंग-सुधि नहीं, उलटे बसन धारहीं, एक एकहिं कछू सुरति नाहीं॥
नैन अंजन अधर आँजहीं हरष सौं, स्रवन ताटंक उलटे सँवारैं।
सूर-प्रभु-मुख-ललित बेनु-धुनि, बन सुनत,चलीं बेहाल अंचल न धारैं॥९९८॥१६१६॥

राग रामकली

मन गयौ चित्त स्याम सौं लाग्यौ।
नाना बिधि जैंवन करि परस्यौ, पुरुष जिवावत त्याग्यौ॥
इक पय पियत चली तजि बालक, छोभ नहीं कछु कीन्हौ।
चली धाई अकुलाइ सकुच तजि, बोलि बेनु-धुनि लीन्हौ॥
इक पति-सेवा करत चली उठि, ब्याकुल तनु सुधि नाहीं।
सूर निदरि बिधि की मर्जादा, निसि बन कौं सब जाहीं॥
॥९९९॥१६१७॥

राग जैतश्री

जबहिं बन मुरली स्रवन परी।
चक्रित भई गोप-कन्या सब, काम-धाम बिसरीं॥
कुल मर्जाद बेद की आज्ञा, नैंकुहुँ नहीं डरीं।
स्याम-सिंधु, सरिता-ललना-गन, जल की ढरनि ढरीं॥
अँग-मरदन करिबे कौं लागीं, उबटन तेल धरीं।
जो जिहिं भाँति चली सो तैसैंहिं, निसि बन कौं जु खरी।
सुत-पति-नेह, भवन-जन-संका, लज्जा नाहिं करी।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी॥
॥१०००॥१६१८॥

राग केदार

मुरली-सब्द सुनि ब्रज-नारि।
करत अंग-सिंगार भूलीं, काम गयौ तनु मारि॥
चरन सौं गहि हार बाँध्यौ, नैन देखति मांहि।
कंचुकी कटि साजि, लँहगा धरति हिरदय माहिं॥

चतुरता हरि चोरि लीन्ही, भईं भोरी बाल।
सूर-प्रभु अति काम मोहन, रच्यौ रास गोपाल ॥
॥१००१॥१६१६॥

राग रामकली

व्रज-जुवतिनि मन हर्‍यौ कन्हाई।
रास-रंग-रस-रुचि मन आन्यौ, निसि बन नारि बुलाईं ॥
तप तनु गारि बहुत स्रम कीन्हौ, सो फल पूरन देन।
वेनु-नाद-रस-बिबस कराईं, सुनि धुनि कीन्हौ गैन ॥
जाकौ मन हरि लियौ स्याम घन, ताहि सम्हारै कौन।
सूरदास ज्यौं नारि कंत मिलि, करै सु भावै जौन ॥
॥१००२॥१६२०॥

राग धनाश्री

चली बन बेनु सुनत जब धाइ।
मातु-पिता-बांधव अति त्रासत, जाति कहाँ अकुलाइ ॥
सकुच नहीं, संका कछु नाहीं, रैनि कहाँ तुम जाति।
जननी कहति दई की घाली, काहे कौं इतराति ॥
मानति नहीं और रिस पावति, निकसी नातौ तोरि।
जैसैं जल-प्रवाह भादौं कौ, सो को सकै बहोरि ॥
ज्यौं केंचुरी भुअंगम त्यागत, मात-पिता यौं त्यागे।
सूर स्याम कैं हाथ बिकानी, अलि अंबुज अनुरागे ॥
॥१००३॥१६२१॥

राग गुंडमलार

सुनत मुरली न सकीं धीर धरि कै। चलीं पितु-मातु-अपमान करि कै ॥
लरति निकसीं सबै तोरि फरिकैं। भईं आतुर बदन-दरस हरि कैं ॥
जाहि जो भजै सो ताहि रातैं। कोउ कछु कहै सो बिरस मातैं॥
ता बिना ताहि कछु नाहिं भावै। और जो जोर कोटिक दिखावै ॥
प्रीति की कथा वह प्रीति जानै। और करि कोटि बातैं बखानै ॥
ज्यौं सरित सिंधु बिनु कहुँ न जाई। सूर वैसी दसा इनहुँ पाई ॥
॥१००४॥१६२२॥

राग सूही बिलावल

घर-घर तैं निकसीं ब्रज-बाला ।
लीन्हैं नाम जुवति जन जन के, मुरली मैं सुनि-सुनि ततकाला ॥
इक मारग, इक घर तैं निकरीं, इक निकरति इक भईं बिहाला ।
इक नाहिं भवननि तैं निकरीं, तिनपैं आप परम कृपाला ॥
यह महिमा वेई जानैं, कवि सों कहा बरनि यह जाई ॥
सूर स्याम-रस-रास-रीति-सुख, बिनु देखैं आवे क्यौं गाई ॥
॥१००५॥१६२३॥

राग मलार

रास-रस-रीति नहिं बरनि आवै ।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं, कहाँ यह चित्त जिय भ्रम भुलावै ॥
जौ कहौं, कौन मानै, जो निगम-अगम-कृपा बिनु नहीं या रसहि पावै ।
भाव सौं भजै, बिनु भाव मैं ये नहीं भावही माहिं ध्या नहिं बसावै ॥
यहै निज मंत्र, यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस-दंपति भजन-सार गाऊँ ।
यहै माँगौं बार-बार प्रभु सूर के, नैन दोउ रहैं, नर-देह पाऊँ ॥
॥१००६॥१६२४॥

राग केदारौ

मुरली-धुनि करी बलबीर ।
सरद निसि का इंदु पूरन, देखि जमुना-तीर ॥
सुनत सो धुनि भईं ब्याकुल, सकल घोष-कुमारि ।
अंग अभरन उलटि साजे, रही कछु न सम्हारि ॥
गईं सोरह सहस हरि पै, छाँड़ि सुत-पति-नेह ।
एक राखी रोकि कै पति, सो गई तजि देह ॥
दियौ तिहिं निर्वान पद हरि, चितै लोचन-कोर ।
सूर भजि गोविंद यौं, जग-मोह-बंधन-तोर ॥
॥१००७॥१६२५॥

राग सारंग

सुनौ सुक कह्यौ परीच्छित राउ ।
गोपिनि परम कंत हरि जान्यौ, लख्यौ न ब्रह्म-प्रभाउ ॥

गुनमय ध्यान कीन्ह निरगुन-पद, पायौ तिनि किहिं भाइ।
मेरैं जिय संदेह बड़ौ यह, मुनिवर देहु नसाइ॥
सुक कह्यौ बैर भाव मन राखैं, मुक्त भयौ सिसुपाल।
गोपी हरि की प्रिया मुक्ति लहैं, कह अचरज भूपाल॥
काम, क्रोध, भय, नेह, सुहृदता, काहु बिधि करि कोइ।
धरै ध्यान हरि कौ जो दृढ़ करि, सूर सो हरि-सम होइ॥
॥१००८॥१६२६॥

राग गुंड मलार

सुनत बन बेनु-धुनि चलीं नारी।
लोक-लज्जा निदरि, भवन तजि, सुंदरि मिलीं बन जाइ कै बन-बिहारी॥
दरस कौं लहत मन हरष सबकौं भयौ, परस की साध अति करतिं भारी।
यहै मन वच करम, तज्यौ सुत पति धरम, मेटि भव-भरम सहि लाज गारी॥
भजै जिहिं भाव जो, मिलैं हरि ताहि त्यौं, भेद भेदा नहीं पुरुष-नारी।
सूर-प्रभु स्याम ब्रज-बाम, आतुर-काम, मिलीं बन धाम गिरिराज-धारी॥१००९॥१६२७॥

राग सूही बिलावल

देखि स्याम मन हरष बढ़ायौ।
तैसियै सरद-चाँदनी निर्मल, तैसोइ रास-रंग उपजायौ॥
तैसियै कनक-बरन सब सुंदरि, इहिं सोभा पर मन ललचायौ।
तैसियै हंस-सुता पवित्र तट, तैसोइ कलपबृच्छ सुख-दायौ॥
करौं मनोरथ पूरन सबके, इहिं अंतर इक खेल उपायौ।
सूर स्याम रचि कपट-चतुरई, जुवतिनि कैं मन यह भरमायौ॥
॥१०१०॥१६२८॥

राग बिहागरौ

निसि काहैं बन कौं उठि धाईं।
हँसि-हँसि स्याम कहत हैं सुंदरि, की तुम ब्रज-मारगहिं भुलाईं॥

गई रहीं दधि बेचन मथुरा, तहाँ आजु अवसेर लगाई।
अति स्रम भयौ बिपिन क्यौं आईं, मारग वह कहि सबनि बताई॥
जाहु-जाहु घर तुरत जुवति जन, खीझत गुरुजन कहि डरपाई।
की गोकुल तैं गमन कियौ तुम, इनि बातनि है नहीं भलाई॥
यह सुनि कै ब्रज-बाम कहत भईं, कहा करत गिरिधर चतुराई।
सूर नाम लै-लै जन-जन के मुरली बारंबार बजाई॥
॥१०११॥१६२९॥

राग बिहागरौ

यह जनि कहौ घोष-कुमारि।
चतुराई हम नहीं कीन्ही, तुम चतुर सब ग्वारि॥
कहाँ हम, कहँ तुम रहीं ब्रज, कहाँ मुरली-नाद।
करति हौ परिहास हम सौं, तजौ यह रस-बाद॥
बड़े की तुम बहू-बेटी, नाम लै क्यौं जाइ।
ऐसैंहीं निसि दौरि आईं, हमहिं दोष लगाइ॥
भली यह तुम करी नाहीं, अजहुँ घर फिरि जाहु।
सूर प्रभु क्यौं निदरि आईं, नही तुम्हरे नाहु॥
॥१०१२॥१६३०॥

राग जैतश्री

मातु-पिता तुम्हरे धौं नाहीं।
बारंबार कमल-दल-लोचन, यह कहि-कहि पछिताहीं॥
उनकैं लाज नहीं, बन तुमकौं आवन दीन्ही राति।
सब सुंदरी, सबै नवजोबन, निठुर अहिर की जाति॥
की तुम कहि आईं, की ऐसेहिं कीन्ही कैसी रीति।
सूर तुमहिं यह नहीं बूझियै, करी बड़ी बिपरीति॥
॥१०१३॥१६३१॥

राग रामकली

अब तुम कही हमारी मानौ।
बन मैं आइ रैनि-सुख देख्यौ, यहै लह्यौ सुख जानौ॥
अब ऐसी कीजौ जनि कबहूँ, जानति हौ मन तुमहूँ।
यह धौं सुनै कहूँ जो कोऊ, तुमहिं लाज अरु हमहूँ॥

हम तौ आजु बहुत सरमाने, मुरली टेरि बजायौ।
जैसौ कियौ लह्यौ फल तैसौ, हमहीं दूषन आयौ॥
अब तुम भवन जाहु, पति पूजहु परमेस्वर की नाईं।
सूर स्याम जुवतिनि सौं यह कहि, करी अपराध छमाई॥
॥१०१४॥१६३२॥

राग सूही बिलावल

यह जुवतिनि कौ धरम न होइ।
धिक् सो नारि पुरुष जो त्यागै, धिक् सो पति जो त्यागै जोइ॥
पति कौ धर्म यहै प्रतिपालै, जुवती सेवाही कौ धर्म।
जुवती सेवा तऊ न त्यागै; जौ पति करै कोटि अपकर्म॥
बन मैं रैनि-बास नहिं कीजै, देख्यौ बन बृंदाबन आइ।
बिबिध सुमन, सीतल जमुना-जल, त्रिबिध-समीर-परस सुखदाइ॥
घरही मैं तुव धर्म सदाई, सुत-पति दुखित होत तुम जाहु।
सूर स्याम यह कहि परमोधत, सेवा करहु जाइ घर नाहु॥
॥१०१५॥१६३३॥

राग बिहागरौ

इहिं बिधि बेद-मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ॥
कंत मानहु भव तरौगी, और नाहिं उपाइ।
ताहि तजि क्यौं बिपिन आईं, कहा पायौ आइ॥
बिरध अरु बिन भागहूँ कौ, पतित जौ पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाहीं जोइ॥
यहै मैं पुनि कहत तुम सौं, जगत मैं यह सार।
सूर पति-सेवा बिना क्यौं, तरौगी संसार॥
॥१०१६॥१६३४॥

राग बिहागरौ

कहा भयौ जौ हम पैं आईं, कुल की रीति गँवाइ।
हमहूँ कौं बिधि कौ डर भारी अजहूँ जाउ चँड़ाइ॥
तजि भरतार और जौ भजियै, सो कुलीन नहिं होइ।
मरैं नरक, जीवत या जग मैं, भलौ कहै नहिं कोइ॥

हम जो कहत सबै तुम जानति, तुमहूँ चतुर सुजान।
सुनहु सूर घर जाहु, हमहुँ घर जैहैं, होत बिहान॥
॥१०१७॥१६३५॥

राग बिलावल

निठुर बचन सुनि स्याम के, जुवती बिकलानी।
चकृत भईं सब सुनि रहीं, नहिं आवति बानी॥
मनु तुषार कमलनि परयौ, ऐसैं कुम्हिलानी।
मनौ महानिधि पाइ कै, खोएँ पछितानी॥
ऐसी ह्वै गई तनु-दसा, पियकी सुनि बानी।
सूर बिरह ब्याकुल भईं, बूड़ीं बिनु पानी॥
॥१०१८॥१६३६॥

राग मारू

स्याम-उर प्रीति मुख कपट-बानी।
जुवति ब्याकुल भईं, धरनि सब गिरि गईं, आस गई टूटि नहिं भेद जानी॥
हँसत नँदलाल, मन-मन करत ख्याल, ये भईं बेहाल ब्रज-बाल भारी।
रुदन-जल नदी-सम बहि चल्यौ उरज-बिच, मनौ गिरि फोरि सरिता पनारी॥
अंग थकि पथिक नहिं चलत कोउ पंथ के, नाव-रस-भाव हरि नहीं आनै।
सूर-प्रभु निठुर करिया कहा ह्वै रहे, उनहिं बिनु और को खेइ जानै॥१०१९॥१६३७॥

राग जैतश्री

निठुर बचन जनि बोलहु स्याम।
आस निरास करौ जनि हमरी, बिकल कहति हैं बाम॥
अंतर कपट दूरि करि डारौ, हम तन कृपा निहारौ।
कृपा-सिंधु तुमकौं सब गावत अपनौ नाम सम्हारौ॥
हमकौं सरन और नहिं सूझै, कापै हम अब जाहिं।
सूरदास प्रभु निज दासिनि की, चूक कहा पछिताहिं!॥
॥१०२०॥१६३८॥

राग गौरी

तुम पावत हम घोष न जाहिं।
कहा जाइ लैहैं हम ब्रज, यह दरसन त्रिभुवन नाहिं॥
तुमहूँ तैं ब्रज हितू न कोऊ, कोटि कहौ नहिं मानैं।
काके पिता, मातु हैं काकी, काहू हम नहिं जानैं॥
काके पति, सुत-मोह कौन कौ, घरही कहा पठावत।
कैसौ धर्म, पाप है कैसौ, आस निरास करावत॥
हम जानैं केवल तुमहीं कौं, और बृथा संसार।
सूर स्याम निठुराई तजियै, तजियै बचन-बिकार॥
॥१०२१॥१६३६॥

राग जैतश्री

तुम हौ अंतर जामि कन्हाई।
निठुर भए कत रहत इते पर, तुम नहिं जानत पीर पराई॥
पुनि-पुनि कहत जाहु ब्रज सुंदरि, दूरि करौ पिय यह चतुराई।
आपुहिं कही करौ पति-सेवा, ता सेवा कौं हैं हम आईं॥
जो तुम कहौ तुमहिं सब छाजै, कहा कहैं हम प्रभुहिं सुनाई।
सुनहु सूर हाँईं तनु त्यागैं, हम पैं घोष गयौ नहिं जाई॥
॥१०२२॥१६४०॥

राग बिहागरौ

कैसैं हमकौं ब्रजहिं पठावत।
मन तौ रह्यौ चरन लपटान्यौ, जो इतनी यह देह चलावत॥
अँटके नैन माधुरी मुसुकनि, अमृत-बचन स्रवननि कौं भावत।
इंद्री सबै मनहिं के पाछैं, कहा धर्म कहि कहा बतावत॥
इनकौं करि लीन्हें अपने तुम, तौ क्यौं हम नाहीं जिय भावत।
सूर सैन दै जरबस लूट्यौ, मुरली लै-लै नाम बुलावत॥
॥१०२३॥१६४१॥

राग कान्हरौ

भवन नहीं अब जाहिं कन्हाई।
स्वजन बंधु तैं भईं बाहिरी, वै क्यौं करैं बड़ाई॥
जौ कबहूँ वै लेहिं कृपा करि, धिक वे, धिक हम नारि।
तुम बिछुरत जीवन राखैं धिक, कहौ न आपु बिचारि॥

धिक यह लाज, विमुख की संगति, धनि जीवन तुम-हेत ।
धिक माता, धिक पिता, गेह धिक, धिक सुत-पति कौ चेत ॥
हम चाहतिं मृदु-हँसनि-माधुरी, जातैं उपज्यौ काम ।
सूर स्याम अधरनि रस सींचहु, जरतिं बिरह सब बाम ॥
॥१०२४॥१६४२॥

राग कान्हरौ

सुनहु स्याम अब करहु चतुराई, क्यौं तुम बेनु बजाइ बुलाई ?
बधि-मरजाद, लोक की लज्जा, सबै त्यागि हम धाई आईं ॥
अब तुमकौं ऐसी न बूझियै, आस निरास करौ जनि साईं ।
सोइ कुलीन सोई बड़भागिनी, जो तुव सन्मुख रहै सदाईं ॥
धनि पुरुष, नारि धनि तेई, पंकज चरन रहै दृढ़ताई ।
सूरदास कहि कहा बखानैं, यह निसि, यह अँग सुंदरताई ॥
॥१०२५॥१६४३॥

राग रामकली

बिनती सुनी स्याम सुजान ।
अतिहिं मुख अपमान कीन्हौं, दृढ़ न इनतैं आन ॥
अब करौं दुख दूरि इनकौ, भज्यौ तजि अभिमान ।
बिरह-दंद निवारि डारौं, अधर-रस दै पान ॥
मनहिं मन यह सुख करत हरि, भए कृपानिधान ।
सूर निस्चय भजीं मोकौं, नहीं जानतिं आन ॥१०२६॥१६४४॥

राग गुंड मलार

तजौ नँद-लाल अति निठुरई गहि रहे कहा पुनि कहत धर्म हमकौं ।
एक ही ढंग रहे, बचन सब कटु कहे, बृथा जुवतिनि दहे, मेटि प्रन कौं ॥
बिमुख तुम तैं रहैं, तिनहिं हम क्यौं गहैं, तहाँ कह लहैं, दुख दहैं भारी ।
कहा सुत-पति, कहा मातु-पितु, कुल कहा, कहा संसार बिनु-बन-बिहारी ।
हमहिं समुझाइ यह कहौ मूरख नारि, कहौ तुम कहा नहिं मर्म जानैं ।
सुनहु प्रभु सूर तुम भले की वै भले, सत्य करि कहौ हम अबहिं मानैं ॥
॥१०२७॥१६४५॥

राग रामकली

तुमहिं बिमुख धक-धिक नर नारि।
हम जानति हैं तुव महिमा कौं, सुनियै हे गिरिधारि॥
साँची प्रीति करी हम तुमसौं, अंतरजामी जानौ।
गृह-जन की नहिं पीर हमारैं, बृथा धर्म-हठ ठानौ॥
पाप पुन्य दोऊ परित्यागे, अब जो होइ सो होइ।
आस निरास सूर के स्वामी!, ऐसी करै न कोइ॥
॥१०२८॥१६४६॥

राग जैतश्री

आस जनि तोरहु स्याम हमारी।
बेनु-नाद-धुनि सुनि उठि धाईं प्रगटत नाम मुरारी॥
क्यौं तुम निठुर नाम प्रगटायौ, काहैं बिरद भुलाने?
दीन आजु हम तैं कोउ नाहीं, जानि स्याम मुसुकाने॥
अपनैं भुज दंडनि करि गहियै, बिरह-सलिल मैं भासी।
बार-बार कुल-धर्म बतावत, ऐसे तुम अबिनासी॥
प्रीति बचन नौका करि राखौ, अंकम भरि बैठावहु।
सूर स्याम तुम बिनु गति नाहीं, जुवतिनि पार लगावहु॥
॥१०२६॥१६४७॥

राग नट

चित दै सुनौ अंबुज-नैन।
कृपन कौ गथ भयौ तुमकौं, सरस अंमृत बैन॥
हम गुनी नव बाल अच्युत, तुम तरुन धन-रासि।
कैसेहूँ सुख-दान दीजै, बिरह-दारिद नासि॥
करहु यह जस प्रगट, त्रिभुवन निठुर-कोठी खोलि।
कृपा चितवनि भुज उठावहु, प्रेम-बचननि बोलि॥
दीन बानी स्रवन सुनि-सुनि, द्रवे परम कृपाल।
सूर एकहु अँग न काँची, धन्य-धनि ब्रज-बाल॥
॥१०३०॥१६४८॥

राग बिहागरौ

हरि सुनि दीन बचन रसाल।
बिरह ब्याकुल देखि बाला, भरे नैन बिसाल॥

चारु आनन लोर-धारा, बरनि कापैं जाइ।
मनहुँ सुधा तड़ाग उछलै, प्रेम प्रगट दिखाइ॥
चंद मुख पर निडर बैठे, सुभग जोर-चकोर।
पियत मुख भरि-भरि सुधा-रस, गिरत तापर भोर॥
हरष-बानी कहत पुनि-पुनि, धन्य-धनि ब्रज-बाल।
सूर प्रभु करि कृपा जोह्यौ, सदय भए गोपाल॥
॥१०३१॥१६४६॥

राग बिलावल

मोहिं बिना ये और न जानैं।
बिधि-मरजाद लोक की लज्जा, तृनहू तैं घटि मानैं॥
इनि मोकौं नीकैं पहिचान्यौ, कपट नहीं उर राख्यौ।
साधु-साधु पुनि-पुनि हरषित ह्वै, मनहीं मन यह भाष्यौ॥
पुनि हँसि कह्यौ निठुरता धरि कै, क्यौं त्याग्यौ कुल-धर्म।
सूर स्याम मुख कपट, हृदय रति, जुवतिनि कैं अति भर्म॥
॥१०३२॥१६५०॥

राग बिहागरौ

स्याम हँसि बोले प्रभुता डारि।
बारंबार बिनय कर जोरत, कटि-पट गोद पसारि॥
तुम सनमुख, मैं बिमुख तुम्हारौ, मैं असाधु, तुम साध।
धन्य-धन्य कहि-कहि जुवतिनि कौं, आपु करत अनुराध॥
मोकौं भजीं एक चित ह्वै कै, निदरि लोक-कुल-कानि।
सुत-पति-नेह तोरि तिनुका सौं, मोहीं निज करि जानि॥
जाकैं हाथ पेड़ फल ताकौ, सो फल लेहु कुमारि।
सूर कृपा पूरन सौं बोले, गिरि-गोबरधन-धारि॥
॥१०३३॥१६५१॥

राग सूही बिलावल

कहत स्याम श्रीमुख यह बानी।
धन्य-धन्य दृढ़ नेम तुम्हारौ, बिनु दामनि मो हाथ बिकानी॥
निरदय बचन कपट के भाखे, तुम अपनैं जिय नैंकु न आनी।
भजीं निसंक आइ तुम मौकौं, गुरुजन की संका नहिं मानी॥

सिंह रहै जंबुक सरनागत, देखी सुनी न अकथ कहानी।
सूर स्याम अंकम भरि लीन्हीं, बिरह-अग्नि-भर तुरत बुझानी॥
॥१०३४॥१६५२॥

राग मारू

कियौ जिहिं काज तप घोष-नारी।
देहु फल हौं तुरत लेहु तुम अब घरी, हरष चित करहु दुख देहु डारी॥
रास रस रचौं, मिलि संग बिलसौ, सबै बस्त्र हरि कहि जो निगम बानी।
हँसत मुख मुख निरखि, बचन अंमृत बरषि, कृपा-रस-भरे सारंग-पानी॥
ब्रज-जुवति चहुँ पास, मध्य सुंदर स्याम, राधिका बाम, अति छबि बिराजै।
सूर नव-जलद-तनु, सुभग स्यामल कांति, इंदु-बहु-पाँति-बिच अधिक छाजै॥१०३५॥१६५३॥

राग नट

हरि-मुख देखि भूले नैन।
हृदय-हरषित प्रेम गदगद, मुख न आवत बैन॥
काम-आतुर भजीं गोपी, हरि मिले तिहिं भाइ।
प्रेम बस्य कृपाल केसव, जानि लेत सुभाइ॥
परसपर मिलि हँसत रहसत, हरषि करत बिलास।
उमँगि आनँद-सिंधु उछल्यौ, स्याम कैं अभिलाष॥
मिलति इक-इक भुजनि भरि-भरि, रास-रुचि जिय आनि।
तिहिं समय सुख स्याम-स्यामा, सूर क्यौं कहै गानि॥
॥१०३६॥१६५४॥

राग बिहागरौ

रास रुचि जबहिं स्याम मन आनी।
करहु सिंगार सँवारि सुंदरी, कहत हँसत हरि बानी॥
जब देखैं अँग उलटे भूषन, तब तरुनी मुसुक्यानी।
बार-बार पिय देखि-देखि मुख, पुनि-पुनि जुवति लजानी॥

नव-सत साजि भईं सब ठाढ़ी, को छबि सकै बखानी।
वह छबि निरखि अधीर भई तनु, काम नारि बितितानी॥
कुच भुज-परसि करी मन इच्छा, कछु तनु-तृषा बुझानी।
सुनहु सूर रस-रास नायिका, सुंदरि राधा रानी॥
॥१०३७॥१६५५॥

राग सोरठ

अंचल चंचल स्याम गह्यौ।
लै गए सुभग पुलिन जमुना कैं, अँग-अँग भेष लह्यौ॥
कल्पतरोवर-तर बंसीबट, राधा-रति-गृह-धाम।
तहाँ रास-रस-रग उपायौ, सँग सोभित ब्रज-बाम॥
मध्य स्याम घन तड़ित भामिनी, अति राजति सुभ जोरी।
सूरदास प्रभु नवल छबीले, नवल छबीली गोरी॥
॥१०३८॥१६५६॥

राग टोड़ी

जहाँ स्याम घन रास उपायौ। कुंकुम-जल सुख-वृष्टि रमायौ॥
धरनी-रज कपूर-मय भारी। बिबिध-सुमन-छबि न्यारी-न्यारी॥
जुवती जुरि मंडली बिराजैं। बिच-बिच कान्ह तरुनि-बिच भ्राजैं॥
अनुपम लीला प्रगट दिखाई। गोपिनि की कीन्ही मन भाई॥
बिच श्री स्याम नारि बिच गोरी। कनक-खंभ मरकत खचि ढोरी॥
सोभा-सिंधु-हिलोर हिलोरी। सूर कहा बरनै मति थोरी॥
॥१०३९॥१६५७॥

राग गुंड मलार

रास-मंडल बने स्याम स्यामा।
नारि दुहुँपास, गिरिधर बने दुहुँनि बिच, ससि सहस-बीस द्वादस उपामा॥
मुकुट की छबि निरखि कहा उपमा कहौं, बैन जानै नहीं नैन जानै॥
सुभग नव मेघ ता बीच चपला चमक, निरखि नृत्यत मोर हरष मानै॥
करत आनंद पिय-संग-ललना पुंज, बढ़त रस-रंग छिन छिनहिं औरै।
सूर प्रभु रास रस नागरी मध्य, दोउ परसपर नारि-पति मनहिं चोरैं॥१०४०॥१६५८॥

राग गुंड मलार

परसपर स्याम ब्रज-बाम सोहैं।
सीस सीखंड, कुंडल जटित-मनि स्रवन, निरखि छबि-स्याम, मन-
तरुनि मोहैं ॥
नासिका ललित बेसरि बनी अधर-तट, सुभग-तार्टक-छबि कहि
न जाई ॥
धरनि पग पटकि, कर झटकि, भौंहनि मटकि, अटकि मन तहाँ
रीझे कन्हाई।
तब चलत हरि मटकि, रहीं जुवती भटकि, लटकि लटकनि छटकि,
छबि बिचारैं।
कहति प्रभु-सूर, बहुरौ चलौ वैसैंहीं, हमहुँ वैसैं चलैं, जो निहारैं॥
॥१०४१॥१६५६॥

राग गुंड मलार

निरखि ब्रज-नारि छबि स्याम लाजै।
बिबिध बेनी रची, माँग-पाटी सुभग, भाल बैंदी-बिंदु इंदु लाजै ॥
स्रवन-तार्टक, लोचन, चारु नासिका, हंस-खंजन-कीर, कोटि
लाजै ॥
अधर बिद्रुम, दसननहिं छबि दामिनी, सुभग बेसरि निरखि
काम लाजै ॥
चिबुक-तर कंठ श्रीमाल मोतीनि छबि, कुच उँचनि हेम-गिरि
अतिहि लाजै।
सूर की स्वामिनी, नारि ब्रज-भामिनी, निरखि प्रिय, प्रेम सोभा
सु लाजै ॥१०४२॥१६६०॥

राग बिहागरौ

बनी ब्रज-नारि-सोभा भारि।
पगनि जेहरि, लाल लँहगा, अंग पँच-रँग सारि॥
किंकिनी कटि, क्वनित कंकन, कर चुरी झनकार।
हृदय चौकी चमकि बैठी, सुभग मोतिन हार॥
कंठश्री दुलरी बिराजति, चिबुक स्यामल बिंद।
सुभग बेसरि ललित नासा, रीझि रहे नँद-नंद॥

स्रवन बर ताटंक की छबि, गौर ललित कपोल।
सूर-प्रभु बस अति भए हैं, निरखि लोचन लोल॥
॥१०४३॥१६६१॥

राग जैतश्री

सुरगन चढ़ि विमान नभ देखत।
ललना सहित सुमन गन बरषत, धन्य जन्म-ब्रज लेखत॥
धनि ब्रज-लोग, धन्य ब्रज-बाला, बिहरत रास गुपाल।
धनि बंसीबट, धनि जमुना-तट, धनि धनि लता-तमाल॥
सब तैं धन्य-धन्य बृंदावन, जहाँ कृष्न कौ बास।
धनि-धनि सूरदास के स्वामी, अद्भुत राच्यौ रास॥
॥१०४४॥१६६२॥

राग बिलावल

नैन सफल अब भए हमारे।
देव लोक नीसान बजाए, बरषत सुमन सुधारे॥
जै जै धुनि किन्नर-मुनि गावत, निरखत जोग बिसारे।
सिव-सारद-नारद यह भाषत, धनि-धनि नंद-दुलारे॥
सुर-ललना पति-गति बिसराए, रहीं निहारि-निहारि।
जात न बनै देखि सुख हरि कौ, आईं लोक बिसारि॥
यह छबि तिहूँ भुवन कहुँ नाहीं, जो बृंदावन-धाम।
सुंदरता रस गुन की सीवाँ, सूर राधिका स्याम॥
॥१०४५॥१६६३॥

राग आसावरी

हमकौं विधि ब्रज-बधू न कीन्ही, कहा अमरपुर बास भए।
बार-बार पछितातिं यहै कहि, सुख होतौ हरि संग रहैं॥
कहा जनम जो नहीं हमारौ, फिरि-फिरि ब्रज-अवतार भलौ।
बृंदावन द्रुम-लता हूजियै, करता सौं माँगियै चलौ॥
यह कामना होइ क्यौं पूरन, दासी ह्वै वह ब्रज रहियै।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, तिनहिं बिना कासौं कहियै!॥
॥१०४६॥१६६४॥

राग बिहागरौ

धन्य नंद जसुदा के नंदन।
धनि सीखंड-पीड़ सिर-लटकनि, धनि कुंडल, धनि मृगमद चंदन ॥
धनि राधिका, धन्य सुंदरता, धनि मोहन की जोरी।
ज्यौं घन मध्य दामिनी की छबि, यह उपमा कहौं थोरी ॥
धनि मंडली जुरी गोपिनि की, ता बिच नंद-कुमार।
राधा-सम सब गोप-कुमारी, क्रीड़ति रास-बिहार ॥
षट-दस सहस घोष-सुकुमारी, षट-दस सहस गुपाल
काहू सौं कछु अंतर नाहीं, करत परस्पर ख्याल ॥
धनि ब्रज बास, आस यह पूरन, कैसैं होति हमारी।
सूर अमर-ललना-गन अंबर, बिथकीं लोक बिसारी ॥
॥१०४७॥१६६५॥

राग मलार

मानौ माई घन घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि ॥
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि।
सुंदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि ॥
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भईं गुन ग्रामिनि।
रूप-निधान स्याम सुंदर घन, आनँद मन बिस्रामिनि ॥
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज-गामिनि।
को गति गनै सूर मोहन सँग, काम बिमोह्यौ कामिनि ॥
॥१०४८॥१६६६॥

राग मलार

देखौ माई रूप सरोवर साज्यौ।
ब्रज-बनिता-बर-बारि बृंद मैं, श्री ब्रजराज बिराज्यौ ॥
लोचन जलज, मधुप अलकावलि, कुंडल मीन सलोल।
कुच चकवाक बिलोकि बदन-बिधु, बिछुरि रहे अनबोल ॥
मुक्ता-माल बाल-बग-पंगति, करत कुलाहल कूल।
सारस हंस मोर सुक-स्रेनी, बैजयंति सम-तूल ॥
पुरइनि कपिस निचोल, बिबिध अँग, बहु रति रुचि उपजावैं।
सूर स्याम आनंद कंद की, सोभा कहत न आवै ॥
॥१०४९॥१६६७॥

राग सूही

लखु तमाल गोपाल लाल बने, माल ग्रीव धर हृदय बिसाल।
गोधन सँग बालक लिए कबहुँक, विहरत संग सखा सब ग्वाल॥
धन्य-धन्य ब्रज कौ यह नायक, कीन्हौ महरि पोष प्रतिपाल।
कबहुँक बन हरि रहैं जाइकै, गोरस दान लेत ततकाल॥
पैठि पताल नाथि काली कौं, फन-फन पर निरतत दै ताल।
भूषन मुकुट जराइ जस्यौ, मनु सूर स्याम सँग बनिता-जाल॥
॥१०५०॥१६६८॥

राग कान्हरौ

भाल तिलक सोभित सिर केसरि नैना बिबिध बने।
कटि काछनी, चंदन खौरि, स्याम बरन-सुंदर घन ऐसे नट नागर के जैये वारने॥
द्वै त्रिभंगि नृत्य करत, ब्रज जुवतिनि मंडली मध्य, दुहुँ-दुहुँ बीच अंग-अंग स्याम घने।
मोर मुकुट वर सीस धरे राजत हैं, सूरज प्रभु, निरखि-निरखि अमरनि नभ जै जै धुनि भने॥१०५१॥१६६९॥

राग धनाश्री

रास-मंडल-मध्य स्याम राधा।
मनो घन बीच दामिनी कौंधति सुभग, एक है रूप, द्वै नाहिं बाधा॥
नायिका अष्ट अष्टहु दिसा सोहहीं, बनी चहुँ पास सब गोप-कन्या।
मिले सब संग नहिं लखत कोउ परसपर, बने षट-दस सहस कृष्न सन्या॥
सजे शृंगार नव-सात जगमगि रहे अंग-भूषन, रैनि बनी तैसी।
सूर-प्रभु नवल गिरिधर, नवल राधिका, नवल ब्रज-नारि-मंडली जैसी॥१०५२॥१६७०॥

राग भैरव

जुवति अंग-छबि निरखत स्याम।
नंद कुँवर श्री अंग माधुरी, अवलोकति ब्रज-बाम॥
परी दृष्टि उच कुचनि पिया की, वह सुख कह्यौ न जाइ।
अँगिया नील, माँड़नी राती, निरखत नैन चुराइ॥
वै निरखति पिय-उर-भुज की छवि पहुँचनि पहुँची भ्राजति।
कर-पल्लवनि मुद्रिका सोहति, ता छवि पर मन लाजति॥

चंदन-बिंदु निरखि हरि रीझे, ससि पर बाल-बिभास।
नंदलाल-ब्रजबाल-सु छवि क्यौं, बरनै सूरजदास॥
॥१०५३॥१६७१॥

राग गौरी

स्याम तनु राजति पीत पिछौरी।
उर बनमाल काछनी काछे, कटि किंकिनि छबि-रौरी॥
बेनी सुमन नितंबनि डोलति, मंद गामिनी नारी।
सूथन जँघन बाँधि नारा बँद, तिरिनी पर छबि भारी॥
नखनि रंग जावक की सोभा, देखत पिय-मन भावत।
सूरदास-प्रभु तनु-त्रिभंग ह्वै, जुवतिनि मनहिं रिझावत॥
॥१०५४॥१६७२॥

राग सारंग

नीलांबर पहिरे तनु भामिनि, जनु घन दमकति दामिनि।
सेस, महेस, गनेस, सुकादिक, नारदादि की स्वामिनि॥
ससि-मुख तिलक दियौ मृगमद कौ, खुभी जराइ जरी है।
नासा-तिल- प्रसून वेसरि-छबि, मोतिनि माँग भरी है॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित, गूँथे सुमन रसालहिं।
कबरी अति कमनीय सुभग सिर, राजति गोरी बालहिं॥
सकरी-कनक, रतन-मुक्तामय लटकन, चितहिं चुरावै।
मानौ कोटि कोटि सत मोहिनि, पाँइनि आनि लगावै॥
काम कमान-समान भौंह दोउ, चंचल नैन सरोज।
अलि-गंजन अंजन-रेखा दै, बरषत बान मनोज॥
कंबु कंठ नाना मनि भूषन, उर मुकुता की माल।
कनक-किंकिनी-नूपुर-कलरव, कूजत बाल मराल॥
चौकी-हेम, चंद्र-मनि-लागी, रतन जराइ खचाई।
भुवन चतुर्दस की सुंदरता, राधे मुखहिं रचाई॥
सजल-मेघ-घन-स्यामल-सुंदर, बाम-अंग अति सोहै।
रूप अनूप मनोहर मोहै, ता उपमा कहि को है॥
सहज माधुरी अंग-अंग-प्रति, सुबस किये ब्रज-धनी।
अखिल-लोक-लोकेस बिलोकत, सब लोकनि के गनी॥

कबहुँक हरि-सँग नृत्यति स्यामा, झमकन हैं राजत यौं।
मानहुँ अधर सुधा के कारन, ससि पूज्यौ मुक्ता सौं॥
रमा, उमा अरु सची अरुंधति, दिन प्रति देखन आवैं।
निरखि कुसुमगन बरषत सुरगन, प्रेम मुदित जस गावैं॥
रूप-रासि, सुख-रासि राधिके, सील महा गुन-रासी।
कृष्न-चरन ते पावहिं स्यामा, जे तुव चरन उपासी॥
जग-नायक, जगदीस-पियारी, जगत-जननि जगरानी।
नित विहार गोपाललाल-सँग, वृंदावन रजधानी॥
अगतिनि की गति, भक्तनि की पति राधा मंगलदानी।
असरन-सरनी, भव-भय-हरनी, वेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित अपार।
कृष्न-भक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहार॥

॥१०५५॥१६७३॥

राग बिहागरौ

नृत्यत स्याम नाना रंग।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, धरे नटवर अंग॥
चलत अति कटि कुनित किंकिनि, घूँघुरू झनकार।
मनौ हंस रसाल-बानी, अरस-परस बिहार॥
लसति कर पहुँची उपाजै, मुद्रिका अति जोति।
भाव सौं भुज फिरत जबहीं, तबहि सोभा होति॥
कबहुँ नृत्यत नारि-गति पर, कबहुँ नृत्यत आपु।
सूर के प्रभु रसिक के मनि, रच्यौ रास प्रतापु॥

॥१०५६॥१६७४॥

राग बिहागरौ

गति सुघंग नृत्यति ब्रज-नारि।
हाव भाव नैननि सैननि दै, रिझवति गिरिवर धारि॥
पग-पग पटकि भुजनि लटकावति, फूँदा करनि अनूप।
चंचल चलत झूमका, अंचल, अद्भुत है वह रूप॥
दुरि निरखत अँग, रूप परस्पर दोउ मनहीं मन रीझत।
हँसि-हँसि वदन बचन-रस बरषत, अंग स्वेद-जल भीजत॥

बेनी छूटि लटैं बगरानी, मुकुट लटकि लटकानौ।
फूल खसत सिर तैं भए न्यारे, सुभग स्वाति-सुत मानौ॥
गान करति नागरि, रीझे पिय, लीन्ही अंकम लाइ।
रस बस ह्वै लपटाइ रहे दोउ, सूर सखी बलि जाइ॥
॥१०५७॥१६७५॥

राग गौरी

नृत्यत, अंग-अभूषन बाजत।
गति सुधंग सौं भाव दिखावत, इक तैं इक अति राजत॥
कहत न बनै रच्यौ रस ऐसौ, बरनत बरनि न जाइ।
जैसेइ बने स्याम, तैसीयै गोपी, छवि अधिकाइ॥
कंकन, चुरी, किंकिनी, नूपुर, पैंजनि, बिछिया सोहति।
अद्भुत धुनि उपजति इनि मिलि कै, भ्रमि-भ्रमि इत-उत जोहति॥
सुनि-सुनि स्रवन रीझी मनहीं मन, राधा रास-रसज्ञा।
सूर स्याम सबके सुखदायक, लायक, गुननि गुनज्ञा॥
॥१०५८॥१६७६॥

राग केदारौ

उघटत स्याम नृत्यति नारि।
धरे अधर उपंग उपजैं, लेत हैं गिरिधारि॥
ताल, मुरज, रबाब, बीना, किन्नरी, रस सार।
सब्द संग मृदंग मिलवत, सुघर नंद कुमार॥
नागरी सब गुननि आगरि, मिलि चलति पिय-संग।
कबहुँ गावति, कबहुँ नृत्यति, कबहुँ उघटति रंग॥
मंडली गोपाल-गोपी, अंग-अँग अनुहारि।
सूर प्रभु घन, नवल भामिनि, दामिनि छवि डारि॥
॥१०५९॥१६७७॥

राग बिहागरौ

नृत्यत हैं दोउ स्यामा-स्याम।
अंग मगन पिय तैं प्यारी अति, निरखि चकित ब्रज बाम॥
तिरप लेत चपला सी चमकति, झमकत भूपन अंग।
या छवि पर उपमा कहुँ नाहीं, निरखत बिबस अनंग॥

श्री राधिका सकल गुन पूरन, जाके स्याम अधीन।
सँग तैं होत नहीं कहुँ न्यारे, भए रहत अति लीन॥
रस समुद्र मानौ उछलित भयौ, सुंदरता की खानि।
सूरदास-प्रभु रीझि थकित भए, कहत न कछू बखानि॥
॥१०६०॥१६७८॥

राग कल्यान

कबहुँ पिय हरषि हिरदै लगावै।
कबहुँ लै लै तान नागरी सुघर अति, सुघर नँद-सुवन कौ मन रिझावै॥
कबहुँ चुंबन देति, आकरषि जिय लेति, गिरति बिनु चेत, बस-हेत अपनैं।
मिलति भुज कंठ दै, रहति अँग लटकि कै, जात दुख दूरि ह्वै झझकि सपनैं॥
लेति गहि कुचनि बिच, देति अधरनि अमृत, एक कर चिबुक इक सीस धारै॥
सूर की स्वामिनी, स्याम सनमुख होइ, निरखि मुख नैन इक टक निहारै॥१०६१॥१६७९॥

राग बिहागरी

रस बस स्याम कीन्ही ग्वारि।
अधर-रस अँचवत परसपर, संग सब ब्रजनारि॥
काम-आतुर भजीं बाला, सबनि पुरई आस।
एक इक ब्रजनारि, इक-इक आपु करयौ प्रकास॥
कबहुँ नृत्यत कबहुँ गावत, कबहुँ कोक-बिलास।
सूर के प्रभु रास-नायक, करत सुख-दुख नास॥
॥१०६२॥१६८०॥

राग कल्यान

हरषि मुरली-नाद स्याम कीन्हौ।
करषि मन तिहुँ भुवन सुनि, थकि रह्यौ पवन, ससिहिं भूल्यौ गवन, ध्यान लीन्हौ॥

तारका गन लजे, बुद्धि मन-मन सजे, तबहिं तनु-सुधि तजे,
सब्द लाग्यौ ।
नाग-नर-मुनि थके, नभ-धरनि तन तके, सारदा-स्वामि, सिव
ध्यान जाग्यौ ॥
ध्यान-नारद टरयौ, सेस-आसन चल्यौ, गई बैकुंठ धुनि मगन
स्वामी ।
कहत श्री प्रिया सौं राधिका रमन, ये सूर-प्रभु स्याम के दरस-
कामी ॥१०६३॥१६८१॥

राग बिहागरौ

मुरली-धुनि बैकुंठ गई ।
नारायन-कमला सुनि दंपति, अति रुचि हृदय भई ॥
सुनौ प्रिया यह बानी अद्भुत, बृंदावन हरि देखौ ।
धन्य-धन्य श्रीपति मुख कहि-कहि, जीवन ब्रज कौ लेखौ ॥
रास-बिलास करत नँद-नंदन, सो हमतैं अति दूरि ।
धनि वन-धाम, धन्य ब्रज-धरनी, उड़ि लागै जो धूरि ॥
यह सुख तिहूँ भुवन मैं नाहीं, जो हरि-सँग पल एक ।
सूर निरखि नारायन इकटक, भूले नैन निमेष ॥
॥१०६४॥१६८२॥

राग आसावरी

जो सुख स्याम करत बृंदावन, सो सुख तिहुँ पुर नाहीं ।
हमकौं कहा मिलति रज उनकी, यह कहि-कहि पछिताहीं ॥
सुनहु प्रिया श्री सत्य कहत हौं, मोतैं और न कोई ।
नंदकुमार-रास-रस-सुख बिनु, बृंदाबन नहिं होई ॥
हरता-करता कौ प्रभु मैं हौं, वह सुख मोतैं न्यारौ ।
सूर धन्य राधा बर गिरिधर, धनि सुख नंद-दुलारौ ॥
॥१०६५॥१६८३॥

राग कल्यान

जब हरि मुरली-नाद प्रकास्यौ ।
जंगम जड़, थावर चर कीन्हे, पाहन जलज बिकास्यौ ॥

स्वर्ग-पताल दसौं दिसि पूरन, ध्वनि-आच्छादित कीन्हौ।
निसि हरि कल्प समान बढ़ाई, गोपिनि कौं सुख दीन्हौ॥
मैमत भए जीव जल-थल के, तनु की सुधि न सम्हार।
सूर स्याम-मुख बेनु मधुर सुनि, उलटे सब व्यवहार॥
॥१०६६॥१६८४॥

राग पूरबी

मुरली गति बिपरीति कराई।
तिहूँ भुवन भरि नाद समान्यौ, राधा-रमन बजाई॥
बछरा थन नाहीं मुख परसत, चरति नहीं तृन धेनु।
जमुना उलटी धार चलीं बहि, पवन थकित सुनि बेनु॥
बिह्वल भए नहीं सुधि काहूँ, सुर-गंध्रब, नर-नारि।
सूरदास सब चकित जहाँ-तहँ, ब्रज-जुवतिनि सुखकारि॥
॥१०६७॥१६८५॥

राग केदारौ

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल बृच्छ फले॥
पय स्रवत गोधननि थन तैं, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव, बिटप चंचल पात॥
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि न माति उर मैं, जती जोग बिसारि॥
ग्वाल गृह-गृह सबै सोवत, उहै सहज सुभाइ।
सूर-प्रभु रस रास के हित, सुखद रैनि बढ़ाइ॥
॥१०६८॥१६८६॥

राग केदारौ

रास-रस मुरली ही तैं जान्यौ।
स्याम-अधर पर बैठि नाद कियौ, मारग चंद्र हिरान्यौ॥
धरनि जीव जल-थल के मोहे, नभ-मंडल सुर थाके।
तृन-द्रुम-सलिल-पवन गति भूले, स्रवन सब्द पर्‌यौ जाके॥
बच्यौ नहीं पाताल-रसातल, कितिक उदै लौं भान।
नारद-सारद-सिव यह भाषत, कछु तनु रह्यौ न स्यान॥

यह अपार रस रास उपायौ, सुन्यौ न देख्यौ नैन।
नारायन धुनि सुनि ललचाने, स्याम अधर रस बेनु॥
कहत रमा सौं सुनि-सुनि प्यारी, बिहरत हैं वन स्याम।
सूर कहाँ हमकौं वैसौ सुख, जो बिलसतिं ब्रज-बाम॥
॥१०६६॥१६८७॥

राग केदारौ

जीती जीती है रन वसी।
मधुकर सूत, वदत बंदी पिक, मागध मदन प्रसंसी॥
मथ्यौ मान-बल-दर्प, महीपति जुवति-जूथ गहि आने।
ध्वनि-कोदंड ब्रह्मंड भेद करि, सुर-सन्मुख सर ताने॥
ब्रह्मादिक, सिव, सनक-सनंदन, बोलत जै-जै-बाने।
राधा-पति सर्वस अपनौ दै, पुनि ता हाथ बिकाने॥
खग-मृग-मीन सुमार किये सब जड़ जंगम जित वेष।
छाजत छुत मद मोह कवच कटि छूटे नैन निमेष॥
अपनी-अपनिहिं ठकुराइति की, काढ़ति है भुव रेष।
बैठी पानि-पीठि गर्जति है, देति सबनि अवसेष॥
रवि कौं रथ लै दियौ सोम कौं, पट-दस कला समेत।
रच्यौ जन्य रस-रास राजसू, बृंदा-बिपिन-निकेत॥
दान-मान परधान प्रेम-रस, बढ्यौ माधुरी हेत।
अधिकारी गोपाल तहाँ हैं, सूर सबनि सुख देत॥
॥१०७०॥१६८८॥

श्रीकृष्ण-विवाह-वर्णन

राग सारंग

जाकौं ब्यास बरनत रास।
है गंधर्व बिबाह चित दै, सुनौ बिबिध बिलास॥
कियौ प्रथम कुमारिकनि ब्रत, धरि हृदय बिस्वास।
नंद-सुत पति देहु देवी, पूजि मन की आस॥
दियौ तब परसाद सबकौं, भयौ सबनि हुलास।
मिहिर-तनया-पुलिन बर-तर, बिमल जल उछ्वास॥
धरी लगन जु सरद-निसि की, सोधि करि गुरु रास।
मोर मुकुट सुमौर मानौ, कटक कंगन-भास॥

बेनु-धुनि सुनि स्रवन धाईं, कमल-बदन-प्रकास।
रूप प्रति-प्रति रूप कीन्हे, भुजा अंसनि वास॥
अधर-मधु मधुपरक करि कै, करत आनन हास।
फिरत भाँवरि करत भूषन, अग्नि मनौ उजास॥
नारि-दिवि कौतुकहिं आईं, छाँड़ि सुत-पति-पास।
जिय परी ग्रँथि कौन छोरै, निकट ननद न सास॥
बरषि सुरपति कुसुम अंजुलि, निरखि त्रिदस अकास।
लेत या रस-रास कौ रस, रसिक सूरजदास॥
॥१०७१॥१६८६॥

राग सूही

चौपाई

यह ब्रत हिय धरि देबी पूजी। है कछु मन अभिलाष न दूजी॥
दीजै नंद-सुवन पति मेरैं। जौ पै होइ अनुग्रह तेरैं॥

छंद

तब करि अनुग्रह बर दियौ, जब बरष जुवतिनि तप कियौ।
त्रैलोक्य-भूषन पुरुष सुंदर, रूप-गुन नाहिंन बियौ॥
इत उबटि खोरि सिंगारि सखियनि, कुँवरि चौरी आनियौ।
जा हित कियौ ब्रत नेम-संजम, सो घरी बिधि बानियौ॥

चौपाई

मोर मुकुट रचि मौर बनायौ। माथे पर धरि हरि बर आयौ॥
तनु स्यामल पट पीत दुकूले। देखत घन-दामिनि मन भूले॥

छंद

बर दामिनी-घन कोटि वारौं, जब निहारौं वह छवी।
कुंडल बिराजत गंड मंडल, नहीं सोभा ससि रवी॥
अब और कौन समान त्रिभुवन, सकल गुन जिहिं माहियाँ।
मन मोर नाचत संग डोलत, मुकुट की परछाहियाँ॥

चौपाई

गोपी जन सब नेवते आईं। मुरली धुनि तैं पठइ बुलाईं॥
बहु विधि आनँद मंगल गाए। नव फूलनि के मंडप छाए॥

छंद

छाए जु फूलनि कुंज-मंडप, पुलिन मैं बेदी रची।
बैठे जु स्यामा स्याम बर, त्रैलोक की सोभा सची॥

उत कोकिला-गन करैं कुलाहल, इत सकल ब्रज-नारियाँ।
आईं जु नेवते दुहूँ दिसि तैं, देति आनँद गारियाँ॥

चौपाई

मिलि मन दै सुख आसन बैसे। चितवनि चारि किये सब तैसे।
ता परि पानि-ग्रहन विधि कीन्ही। तब मंडप भ्रमि भाँवरि दीन्ही॥

छंद

तब देत भाँवरि कुंज-मंडप, प्रीति-ग्रंथि हियैं परी।
अति रुचिर परम पवित्र राका, निकट बृंदा सुभ घरी॥
गाए जु गीत पुनीत बहु विध, वेद-रुचि-सुंदर-ध्वनी।
श्री नंद-सुत बृषभानु-तनया रास मैं जोरी बनी॥

चौपाई

मनमथ सैनिक भए बराती। द्रुम फूले बन अनुपम भाँती॥
सुर बंदीजन मिलि जस गाए। मघवा बाजन अनँद बजाए॥

छंद

बाजहिं जु बाजन सकल सुर नभ पुहुप-अंजलि बरषहीं।
थकि रहे व्योम-विमान, मुनि-जन जय-सबद करि हरषहीं॥
सुनि सूरदासहिं भयौ आनँद, पूजी मन की साधिका।
श्रीलाल गिरिधर नवल दूलह, दुलहिनी श्री राधिका॥
॥१०७२॥१६९०॥

राग बिहागरौ

थम ब्याह विधि होइ रह्यौ हो कंकन-चार विचारि।
रचि रचि पचि पचि गूँथि बनायौ नवल निपुन ब्रजनारि॥
बड़े हुहो तौ छोरि लेहु जौ, सकल घोष के राइ।
कै कर जोरि करौ बिनती, कै छुवौ राधिका-पाइ॥
यह न होइ गिरि कौ धरिबौ हो, सुनहु कुँवर-ब्रजनाथ।
आपुन कौं तुम बड़े कहावत, काँपन लागे हाथ॥
बहुरि सिमिटि ब्रज-सुंदरि सब मिलि दीन्ही गाँठि घुराइ।
छोरहु बेगि कि आनहु अपनी, जसुमति माइ बुलाइ॥
सहज सिथिल पल्लव तैं हरि जू, लीन्हौ छोरि सँवारि।
किलकि उठीं तब सखी स्याम की, तुम छोरौ सुकुमारि॥
पचिहारी कैसँहु नहिं छूटत, बँधी प्रेम की डोरि।
देखि सखी यह रीति दुहुनि की, मुदित हँसीं मुख मोरि॥

अब जिनि करहु लहाइ सखी री, छाँड़हु सकल सयान।
दुलहिनि छोरि दुलह कौ कंकन, बोलि यवा वृषभान ॥
कमल कमल करि वरनत हैं हो, पानि प्रिया के लाल।
अब कचि कुल साँचे से लागत, रोम कँटीले नाल ॥
लीला-रहस गुपाल लाल की, जो रस रसिक बखान।
सदा रहै यह अविचल जोरी, चलि बलि सूर सुजान ॥
॥१०७३॥१६६१॥

राग काफी

सनकादिक नारद मुनि, सिव विरंचि जान।
देव-दुंदुभी मृदंग, बाजे वर निसान ॥
वारन तोरन बँधाइ, हरि कीन्ह उछाह।
व्रज की सब रीति भई, बरसानैं ब्याह ॥
डोरनि कर छोरन कौं, आई सकल धाइ।
फूलीं फिरैं सहचरि उर, आनँद न समाइ ॥
गज बर गति आवन मग, धरनि धरत पाउ।
लटकत सिर सेहरो मनु, सिखि सिखंड भाउ ॥
सोभित सँग नारि अंग, सबै छवि विराजि।
गज रथ बाजी बनाइ, चँवर छत्र साजि ॥
दुलहिनि वृषभानु-सुता, अंग-अंग भ्राज।
सूरदास देखौ श्री, दूलह व्रजराज ॥
॥१०७४॥१६६२॥

राग सारग

(दुलह देखौंगी जाइ) उतरे संकेत बटहिं किहिं मिस लखि पाउँ।
फूल गूँथि माला लै, मालिनी ह्वै जाउँ।
नंद नँदन प्यारे कौं, बीरा करि लेउँ।
चोलिनि ह्वै जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ।
वृंदावन चंद कौं मैं, भूषन गढ़ि लेउँ।
ह्वै सुनारि जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ।
अपने गोपाल के मैं, बागे रचि लेउँ।
दरजिनि ह्वै जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ ॥

चंदन अरगजा सूर केसरि धरि लेउँ।
गंधिनि ह्वै जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ॥
॥१०७५॥१६६३॥

राग बिहागरौ

वृषभानु-नंदिनी अति सुछबि मयी बनी।
बृंदाबन-चंद राधा निरमल चाँदनी॥
स्याम अलकनि सुबीच मोती-दुति मंगा।
मानहुँ झलमलति संभु के सीस गंगा॥
स्रवन तारंक सोहै चिकुरनि की काँति।
उलटि चल्यौ है राहु चक्र की सु भाँति॥
गोरैं ललाट सोहै सेंदुर कौ बिंद।
ससिहिं उपमा देइ को कबि को है निंद॥
आलस उनींदे नैन, लागत सुहाए।
नासिका चंपक कली कौं अली भाए॥
वदन-मंजन तैं अँजन गयौ ह्वै दूरि।
कलँक रहित ससि पून्यौ ज्यौं कला पूरि॥
गिरि तैं लता हैं भई यह तौ हम सुनि।
कंचन लता तैं भए ह्वै गिरि वर पुनि॥
कचन से तनु सोहै नीलांवर सारी।
कुहूँ-निसा-मध्य मनौ दामिनी उज्यारी॥
नख सिख सोभा मोपै वरनी नहिं जाइ।
तुम सी तुमहीं राधा स्यामहिं मन-भाइ॥
यह छबि सूरदास मन नित रहै बानी।
नंद के नँदन राजा राधिका रानी॥
॥१०७६॥१६६४॥

राग जैतश्री

चंदन के स्यंदन बैठे हरि, सँग श्री राधा गोरी।
अति आनंद निरखि जुवती-जन, डारत हैं तृन तोरी॥
तनु घनस्याम, मुकुट, बनमाला, कुँडल-किरनि अति चमकत।
पीतांबर कटि-तट, उपरैना, नभ दामिनि मनु दमकति॥

बाजत ताल, पखाउज, झालरि, गुन गावत ज्यौं हरषत।
नाचति नटी सुलय गति उमँगत, सूर सुमन सुर बरषत ॥
॥१०७७॥१६९५॥

राग देवगधार

दोऊ राजत स्यामा स्याम।
ब्रज-जुवती-मंडली विराजति, देखति सुरगन-बाम ॥
धन्य धन्य वृंदावन कौ सुख, सुरपुर कौनैं काम।
धनि वृषभानु-सुता, धनि मोहन, धनि गोपिनि कौ नाम ॥
इनकी को दासी-सरि ह्वै है, धन्य सरद की जाम।
कैसेहुँ सूर जनम ब्रज पावैं, यह सुख नहिं तिहुँ धाम ॥
॥१०७८॥१६९६॥

राग रामकली

स्यामा स्याम रिझावति भारी।
मन मन कहति और नहिं मोसी, कोऊ पिय की प्यारी ॥
दोहा-छंद-ध्रुपद जस हरि कौ, हरिहिं गाइ सुनावति।
आपुन रीझि कंत कौं रिझवति, यह जिय गर्व बढ़ावति ॥
नृत्यति, उघटति, गति-सँगीत-पद, सुनत कोकिला लाजत।
सूर स्याम नागर अरु नागरि, ललना-मंडली राजत ॥
॥१०७९॥१६९७॥

राग रामकली

रिझवति पियहिं बारंबार।
निरखि नैन लजाति हरि के, नहीं सोभा-पार ॥
चलि सुलप गज, हंस, मोहति, कोक-कला-प्रवीन।
हँसि परस्पर तान गावति, करति पियहिं अधीन ॥
सुनत बन-मृग होत ब्याकुल, रहत चकित आइ।
सूर प्रभु बस किये नागरि, महा जाननि-राइ ॥
॥१०८०॥१६९८॥

राग रामकली

प्यारी स्याम लई उर लाइ।
उरज उर सौं परस कौ सुख, बरनि कापै जाइ ॥

कनक-छबि तन मलय-लेपन, निरखि भामिनि-अंग।
नासिका सुभ बास लै-लै, पुलक स्याम-अनंग॥
देति चुंबन, लेति सुख कौं, मानि पूरन भाग।
सूर-प्रभु बस किये नागरि, बदति धन्य सुहाग॥
॥१०८१॥१६९९॥

राग बिहागरौ

रीझे परसपर बर-नारि।
कंठ भुज-भुज धरे दोऊ, सकत नहीं निवारि॥
गौर स्याम कपोल सुललित, अधर अंमृत-सार।
परस्पर दोउ पीय प्यारी, रीझि लेत उगार॥
प्रान इक, द्वै देह कीन्हे, भक्ति-प्रीति-प्रकास।
सूर-स्वामी स्वामिनी मिलि, करत रंग-विलास॥
॥१०८२॥१७००॥

राग बिहागरौ

गावत स्याम स्यामा-रंग।
सुघर गति नागरि अलापति, सुर भरति पिय-संग॥
तान गावति कोकिला मनु, नाद अलि मिलि देत।
मोर संग चकोर डोलत, आपु अपने हेत॥
भामिनी अँग जोन्ह मानौ, जलद स्यामल गात।
परस्पर दोउ करत क्रीड़ा, मनहिं-मनहि सिहात॥
कुचनि बिच कच परम सोभा, निरखि हँसत गुपाल।
सूर कंचन-गिरि बिचनि मनु, रह्यौ है अँधकाल॥
॥१०८३॥१७०१॥

राग टोड़ी

नंद कुमार रास रस कीन्हौ। ब्रज तरुनिनि मिलि कै सुख दीन्हौ॥
अद्भुत कौतुक प्रगट दिखायौ। कियौ स्याम सबहिनि मन भायौ॥
बिच गोपी, बिच मिले गुपाल। मनि कंचन सोभित सुभ माल॥
राधा-मोहन मध्य बिराजैं। त्रिभुवन की सोभा ये भ्राजैं॥
रास-रंग-रस राख्यौ भारी। हाव-भाव नाना गति-न्यारी॥

रूप गुननि करि परम उजागरि । नृत्यत अंग-थकित भई नागरि ॥
उमँगि स्याम स्यामा उर लाई । वारंवार कह्यौ स्रम पाई ॥
कंठ कंठ, भुज भुज दोउ जोरे । घन-दामिनि छूटत नहिं छोरे ॥
सूर स्याम जुवतिनि सुखदाई । तिनके जिय अति गर्व बढ़ाई ॥
॥१०८४॥१७०२॥

राग रामकली

गरब भयौ ब्रजनारि कौं, तवहीं हरि जाना ।
राधा प्यारी सँग लिये, भए अंतर्धाना ॥
गोपिनि हरि देख्यौ नहीं, तव सव अकुलाई ।
चकि होई पुछन लगीं, कहँ गए कन्हाई ॥
कोउ मम जान नहीं, व्याकुल सव वाला ।
सूर स्याम ढूँढ़ति फिरैं, जित-तित ब्रज-वाला ॥
॥१०८५॥१७०३॥

श्रीकृष्ण का अंतर्धान होना *राग कान्हरौ*

हुते कान्ह अबहीं सँग वन मैं, मोहन-मोहन कहि-कहि टेरैं ।
ऐसौ सँग तजि दूरि भए क्यौं, जानि परत अब गैयनि घेरैं ॥
चूक मानि लीन्ही हम अपनी, कैसेहुँ लाल बहुरि फिरि हेरैं ।
कहियत हौ तुम अंतरजामी, पूरन कामी सबही केरैं ॥
ढूँढ़ति हैं द्रुम वेली वाला, भईं विहाल करतिं अवसेरैं ।
सूरदास प्रभु रास-बिहारी, वृथा करत काहे कौं भेरैं ॥
॥१०८६॥१७०४॥

राग अड़ाना

अहो कान्ह यह बात तिहारी, सुख ही मैं भए न्यारे ।
इक सँग एक समीप रहत हैं, तिन तजि कहाँ सिधारे ॥
अब करि कृपा मिलौ करुनामय, कहियत हौ सुखकारी ।
सूर स्याम अपराध छमहु, अब समुझीं, चूक हमारी ॥
॥१०८७॥१७०५॥

राग धनाश्री

बिकल ब्रजनाथ-बियोगिनि नारि ।
हा हा नाथ, अनाथ करौ जिनि, टेरति बाँह पसारि ॥

हरि कौं लाड़, गरब जोबन कौं, सकीं न बचन सम्हारि।
जनियत हैं अपराध हमारौ, नहिं कछु दोष-मुरारि॥
ढूँढ़ति बाट-घाट बन घन मैं, मुरछि, नैन जल ढारि।
सूरदास अभिमान देह कौं, बैठीं सरबस हारि॥
॥१०८८॥१७०६॥

राग काफी

कोउ कहुँ देखे री नँदलाल। साँवरौ ढोटा नैन बिसाल॥
मोर-मुकुट बनमाल रसाल। पीतांबर सोहै मनि-माल॥
निसि बन गईं सबै ब्रज-बाल। अंतर्धान भए रचि ख्याल॥
द्रुम-द्रुम ढूँढ़त भईं बिहाल। सूर स्याम-बिनु बिरह जँजाल॥
॥१०८९॥१७०७॥

राग सारंग

तुम कहुँ देखे स्याम बिसासी।
तनक बजाइ बाँस की मुरली, लै गए प्रान निकासी॥
कबहुक आगैं, कबहुँक पाछैं, पग-पग भरति उसासी।
सूर स्याम-दरसन के कारन, निकसीं चंद-कला सी॥
॥१०९०॥१७०८॥

राग रामकली

कहि धौं री बन बेलि कहूँ तैं, देखे हैं नँद-नंदन।
बूझहु धौं मालती कहूँ तैं, पाए हैं तन-चंदन॥
कहि धौं कुंद, कदंब बकुल, बट, चंपक, ताल, तमाल।
कहि धौं कमल कहाँ कमलापति, सुंदर नैन बिसाल॥
कहि धौं री कुमुदिनि, कदली कछु, कहि बदरी कर बीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घनस्याम सरीर॥
कहि धौं मृगी मया करि हमसौं, कहि धौं मधुप मराल।
सूरदास-प्रभु के तुम संगी, हैं कहँ परम कृपाल॥
॥१०९१॥१७०९॥

राग रामकली

कहूँ न देख्यौ मधुबन माधौ।
कहाँ गमन कियौ, कहाँ बिलमि रहे, नयन सरत दरसन-रस-साधौ॥

जब तैं बिछुरे रह्यौ न जाई, यह तौ मेरौई अपराधौ।
सूरदास-प्रभु बिनु कैसैं जियैं घटि घटि प्रान रह्यौ घट आधौ॥
॥१०६२॥१७१०॥

राग आसावरी

कहूँ न पाउँ ढूँढ़ि सब बन-घन, स्याम सुँदर पर वारौं तन-मन।
नैन चटपटी लागी तब तैं, कहाँ प्रान प्यारौ निधनी-धन॥
चंपक, जाहि गुलाब बकुल प्रति, पूछतिं कहुँ देखे नँद-नंदन।
सूरदास-प्रभु रास-रसिक-बिनु, रास रसिकिनी भईं बिकल मन॥
॥१०६३॥१७११॥

राग श्री

कान्ह प्यारौ नहिं पायौ री।
स्याम-स्याम यह कहति फिरति हैं, धुनि बृंदावन छायौ री॥
गरब जानि पिय अंतर ह्वै रहे, सो मैं बृथा बढ़ायौ री।
अब बिनु देखे कल न परति छिनु, स्याम सुँदर गुन-रायौ री॥
मृग-मृगिनी, द्रुम-बन, सारस पिक, काहूँ नहीं बतायौ री।
सूरदास-प्रभु मिलहु कृपा करि, जुवतिनि टेर सुनायौ री॥
॥१०६४॥१७१२॥

राग बिलावल

अति ब्याकुल भईं गोपिका, ढूँढ़त गिरिधारी।
बूझति हैं बन बेलि सौं, देखे बनवारी॥
जाही, जूही, सेवती, करना, कनिआरी।
बेलि, चमेली, मालती, बूझतिं द्रुम-डारी॥
कूजा, मरुआ, कुंद सौं, कहैं गोद पसारी।
बकुल, बहुलि, बट, कदम पैं, ठाढ़ीं ब्रजनारी॥
बार-बार, हा-हा करैं, कहुँ हौ गिरिधारी।
सूर स्याम कौ नाम लै, लोचन जल ढारी॥
॥१०६५॥१७१३॥

राग बिलावल

स्याम सबनि कौं देखहीं, वै देखतिं नाहीं।
जहाँ तहाँ ब्याकुल फिरैं, धीर न तनु माहीं॥

कोउ बंसीबट कौं चलीं, कोउ बन घन जाहीं।
देखि भूमि वह रास की, जहँ-तहँ पग-छाहीं॥
सदा हठीली लाड़िली, कहि-कहि पछिताहीं।
नैन सजल जल ढारहीं, ब्याकुल मन माहीं॥
एक-एक ह्वै ढूँढ़हीं, तरुनी बिकलाहीं।
सूरज-प्रभु कहुँ नहिं मिले, ढूँढ़ति द्रुम पाहीं॥
॥१०९६॥१७१४॥

राग बिहागरौ

ब्याकुल भईं घोष-कुमारि।
स्याम सँग तजि कै कहाँ गए, यह कहतिं ब्रजनारि॥
दसौं दिसि, बन द्रुमनि देखतिं, चकित भईं बिहाल।
राधिका नहिं तहाँ देखी, कह्यौ वाके ख्याल॥
कछुक दुख कछु हरष कीन्हौ, कुंज लै गई स्याम।
सूर-प्रभु-सँग देखि हमकौं, करे ऐसे काम॥
॥१०९७॥१७१५॥

राग बिहागरौ

वन-कुंजनि चलीं ब्रजनारि।
सदा राधा करति दुबिधा, देतिं रस की गारि॥
संगहीं लै गई हरि कौं, सुख करति बन-धाम।
कहाँ जैहै, ढूँढ़ि लैहैं, महा रसकिनि बाम॥
चरन चिन्हनि चलीं देखति, राधिका-पग नाहिं।
सूर-प्रभु-पग परसि गोपी, हरषि मन मुसुकाहिं॥
॥१०९८॥१७१६॥

राग कान्हरौ

हँसि हँसि गोपी कहतिं परस्पर, प्यारी कौं उर लाइ गए री।
स्याम काम-तनु-आतुरताई, ऐसे स्यामा-बस्य भए री॥
पुनि देखति राधिका-चिन्ह-पग, पिय-पग-चिन्ह न पावैं।
की पिय कौं प्यारी लीन्हौ, यह कहि भ्रम उपजावैं॥
उहिं गिरिधर उर धरि ज्यौं लीन्हौ, उहि गिरिधर उर लीन्हौ।
सूर आतुर ब्रजनारी, पिय-प्यारी-पग चीन्हौ॥
॥१०९९॥१७१७॥

राग सूही

तब नागरि जिय गर्ब बढ़ायौ।
मो समान तिय और नहीं कोउ, गिरिधर मैं हीं बस करि पायौ॥
जोइ-जोइ कहति करत पिय सोइ-सोइ मेरैं ही हित रास उपायौ।
सुंदर, चतुर और नहिं मोसी, देह धरे कौ भाव जनायौ॥
कबहुँक बैठि जाति हरि-कर धरि, कबहुँ कहति मैं अति स्रम पायौ।
सूर स्याम गहि कंठ रही तिय, कंध चढ़ौं यह बचन सुनायौ॥
॥११००॥१७१८॥

राग बिलावल

कहै भामिनी कंत सौं, मोहिं कंध चढ़ावहु।
नृत्य करत अति स्रम भयो, ता स्रमहिं मिटावहु॥
धरनी धरत बनै नहीं, पग अतिहिं पिराने।
तिया-बचन सुनि गर्ब के पिय मन मुसुकाने॥
मैं अबिगत, अज, अकल हौं, यह मरम न पायौ।
भाव बस्य सब पैं रहौं, निगमनि यह गायौ॥
एक प्रान द्वै देह हैं, द्विविधा नहिं यामैं।
गर्ब कियौ नरदेह तैं, मैं रहौं न तामैं॥
सूरज-प्रभु अंतर भए, संग तैं तजि प्यारी।
जहँ की तहँ ठाढ़ी रही, वह घोष-कुमारी॥
॥११०१॥१७१९॥

राग बिहागरौ

तब हरि भए अंतरधान।
जब कियौ मन गर्ब प्यारी, कौन मोसी आन॥
अति थकित भई चलत मोहन, चलि न मोपैं जाइ।
कंठ भुज गहि रही यह कहि, लेहु कंध चढ़ाइ।
गए संग बिसारि रस मैं, बिरस कीन्हौ बाल॥
सूर-प्रभु दुरि चरित देखत, तुरत भई बिहाल॥
॥११०२॥१७२०॥

राग नट

बाएँ कर द्रुम टेके ठाढ़ी।
बिछुर मदन गोपाल रसिक मोहिं, बिरह-ब्यथा तनु बाढ़ी॥

लोचन सजल, बचन नहिं आवै, स्वास लेति अति गाढ़ी।
नंद लाल हमसौं ऐसी करी, जल तैं मीन धरि काढ़ी॥
तब कत लाड़ लड़ाइ लड़ैते, बेनी कर गुही गाढ़ी।
सूर स्याम प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब न चलत डग आढ़ी॥
॥११०३॥१७२१॥

राग सारंग

अकेली भूलि परी बन माहिं।
कोऊ बाउ बही कतहूँ की, छूटि गई पिय-बाहिं॥
जहँ-जहँ जाउँ तहाँ डर लागत, डगर बतावत नाहिं।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बेह कदम बेइ छाहिं॥
॥११०४॥१७२२॥

राग टोड़ी

स्याम गए जुवतिनि सँग त्यागि। चकित भईं तरुनी सब जागि॥
प्यारी संग लगाइ बिहारी। कुंजलता-तर कतहूँ डारी॥
संग नहीं तहँ गिरिवरधारी। दसहु-दिसा-तन दृष्टि पसारी॥
परी मुरछि धरनी सुकुमारी। काम बैर लीन्हौ सर मारी॥
त्राहि-त्राहि, कहि-कहि बनवारी। भईं ब्याकुल तनु-दसा बिसारी॥
नैन सलिल भीजी सब सारी। सूर संग तजि गए मुरारी॥
॥११०५॥१७२३॥

राग बिलावल

जौ देखैं द्रुम के तरैं, मुरझी सुकुमारी।
चकित भईं सब सुंदरी, यह तौ राधा री॥
याही कौं खोजति सबै, यह रही कहाँ री।
धाइ परीं सब सुंदरी, जो जहाँ-तहाँ री।
तन की तनकहुँ सुधि नहीं, ब्याकुल भईं बाला।
यह तौ अति बेहाल है, कहँ गए गोपाला।
बार-बार बूझति सबै, नहिं बोलति बानी॥
सूर स्याम काहैं तजी, कहि सब पछितानी॥
॥११०६॥१७२४॥

राग सारंग

मंद सुजोति मुखारबिंद की, चकित चहूँ दिसि जोवति।
द्रुम साखा अवलंबि, बेलि गहि, नख सौं भूमि खनोवति॥
मुकुलित कच, तन घन की ओट ह्वै, अँसुवनि चीर निचोवति।
सूरदास प्रभु तजी गर्ब तैं, भई प्रेम गति गोवति॥
॥११०७॥१७२५॥

राग भैरव

क्यौं राधा नहिं बोलति है !
काहैं धरनि परी ब्याकुल ह्वै, काहैं नैन न खोलति है !
कनक-बेलि सी क्यौं मुरझानी, क्यौं बन माँझ अकेली है !
कहाँ गए मन मोहन तजि कै, काहैं बिरह दुहेली है।
स्याम-नाम स्रवननि धुनि सुनि कै, सखियनि कंठ लगावति है।
सूर स्याम आए यह कहि-कहि, ऐसैं मन हरषावति है॥
॥११०८॥१७२६॥

राग बिहागरौ

कहाँ रहे अब लौं तुम स्याम।
नैन उघारि, निहारि रही तहँ, जौ देखै ब्रज-बाम॥
लागी करन बिलाप सबनि सौं, स्याम गए मोहिं त्यागि।
तुमकौं नहाँ मिले नँद-नंदन, पूछति यह तब जागि॥
निरखि बदन बृषभानु-कुँवरि कौ, मनौ सुधा-बिनु चंद।
राधा बिरह देखि बिरहानी, यह गति बिनु नँद-नंद॥
या बन मैं कैसैं तुम आईं, स्याम संग हैं नाहिं।
कछु जानति कहँ गए कन्हाई, तहाँ तोहिं लै जाहिं॥
मैं हठ कियौ बृथा री माई, जिय उपज्यौ अभिमान।
सूर स्याम ह्याँ पै मोहिं आनी, ह्वै गए अंतरधान॥
॥११०९॥१७२७॥

राग बिहागरौ

मैं अपनैं मन गरब बढ़ायौ।
यहै कह्यौ पिय कंध चढ़ौंगी, तब मैं भेद न पायौ॥

यह बानी सुनि हँसे, कंठ भरि, भुजनि उछंग लई।
तब मैं कह्यौ कौन है मो सी, अंतर जानि लई॥
कहाँ गए गिरिधर तजि मोकौं, ह्याँ कैसैं मैं आई।
सूर स्याम अंतर भए मोतैं, अपनी चूक सुनाई॥
॥१११०॥१७२८॥

राग परासी

केहिं मारग मैं जाउँ सखी री, मारग मोहिं बिसर्यौ।
ना जानौं कित ह्वै गए मोहन, जात न जानि पर्यौ॥
अपनौ पिय ढूँढ़ति फिरौं, मोहिं मिलिबे कौ चाव।
काँटो लाग्यौ प्रेम कौ, पिय यह पायौ दाव॥
बन डोंगर ढूँढ़त फिरी, घर-मारग तजि गाउँ।
बूझौं द्रुम, प्रति बेलि कोउ, कहै न पिय कौ नाउँ॥
चकित भई, चितवत फिरी, ब्याकुल अतिहिं अनाथ।
अब कैं जौ कैसहुँ मिलौं, पलक न त्यागौं साथ॥
हृदय माँझ पिय-घर करौं, नैननि बैठक देउँ।
सूरदास प्रभु सँग मिलौं, बहुरि रास-रस लेउँ॥
॥११११॥१७२९॥

राग बिहागरौ

रुदन करति वृषभानु-कुमारी।
बार-बार सखियनि उर लावति, कहाँ गए गिरिधारी॥
कबहूँ गिरति धरनि पर ब्याकुल, देखि दसा ब्रजनारी।
भरि अँकवारि धरतिं, मुख पोंछतिं, देतिं नैन जल ढारी॥
त्रिया पुरुष सौं भाव करति है, जानै निठुर मुरारी।
सूर स्याम कुल-धरम आपनो, लए रहत बनवारी॥
॥१११२॥१७३०॥

राग गौरी

नंद-नँदन उनकौं हम जानतिं।
ग्वालनि संग रहत जे माई, यह कहि-कहि गुन गानतिं॥
बन-बन धेनु चरावत बासर, तिया बधत डर नाहीं।
देखि दसा वृषभानु-सुता की, ब्रज-तरुनी पछिताहीं॥

कहा भयौ तिय जौ हठ कीन्हौं, यह न बूझियै स्यामहिं।
सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि, दूरि करौ मन तामहिं॥
॥१११३॥१७३१॥

राग काफी

सखी मोहिं मोहनलाल मिलावै।
ज्यौं चकोर चंदा कौं, कीटक भृंगी ध्यान लगावै॥
बिनु देखैं मोहिं कल न परति है, यह कहि सबनि सुनावै।
बिनु कारन मैं मान कियौ री, अपनेहिं मन दुख पावै॥
हा-हा करि-करि, पायनि परि-परि, हरि-हरि-टेर लगावै।
सूर स्याम बिनु कोटि करौ जौ, और नहीं जिय आवै॥
॥१११४॥१७३२॥

राग आसावरी

हौं तौ ढूँढ़ि फिरि आई, सिगरोई बृंदावन, कहुँ नहिं पाए माई,
प्यारे नंदनंदना।
अन्तहिं रहे जाइ, कौने धौं राखे छपाइ, मोकौं न कछू सुहाइ,
करै काम-कंदना॥
मोहीं तैं परी री चूक, अंतर भए हैं जातैं, तुम सौं कहति बातैं,
मैं ही कियौ दंदना।
सूरदास प्रभु-बिनु, भई हौं बिकल आली, कहाँ रहे बनमाली,
सुर-मुनि-बंदना॥
॥१११५॥१७३३॥

राग बिलावल

मिलहु स्याम मोहिं चूक परी।
तिहिं अंतर तनु की सुधि नाहीं, रसना रट लागी न टरी॥
कृष्न-कृष्न करि टेरि उठति है, जुग सम बीतति पलक-घरी।
धरनि परी ब्याकुल भइ बोलति, लोचन धारा-आँसु झरी॥
कबहुँ मगन, कबहु सुधि आवति, सरन सरन कहै बिरह-जरी।
सूर निरखि ब्रजनारि दसा यह, चकित भईं जहँ-तहाँ खरी॥
॥१११६॥१७३४॥

राग बिहागरौ

अहो कान्ह तुम्हैं चहौं, काहैं नहिं आवहु।
तुमहीं तन, तुमहीं धन, तुमहीं मन भावहु॥
कियौ चहौं अरस-परस, करौं नहीं माना।
सुन्यौ चहौं स्रवन, मधुर मुरली की ताना॥
कुंज-कुंज जपत फिरौं, तेरी गुन-माला।
सूरज प्रभु बेगि मिलौ, मोहन नँदलाला॥
॥१११७॥१७३५॥

राग बिलावल

देखि दसा सुकुमारि की, जुवती सब धाईं।
तरु तमाल बूझति फिरैं, कहि-कहि मुरझाईं॥
नंद-नँदन देखे कहूँ, मुरली कर-धारी।
कुंडल, मुकुट, बिराजई, तनु-स्यामल-भा री॥
लोचन चारु बिसाल हैं, नासा अति लोनी।
अरुन अधर दसनावली-छबि चारु चकोनी॥
बिंब, प्रवालनि लाजहीं, दामिनि-दुति थोरी।
ऐसे हरि हमकौं कहौ, कहुँ देखे हो री॥
अंग-अंग छबि कह कहौं, देखैं बनि आवै।
सूर स्याम देखे नहीं, कोउ काहि बतावै॥
॥१११८॥१७३६॥

राग कल्यान

राधिका सौं कह्यौ धीर धरि री।
मिलैंगे स्याम, व्याकुल दसा जिनि करै, हरष जिय धारि, दुख दूरि करि री॥
आपु जहँ-तहँ गईं, बिरह सब पगि रहीं, कुवँरि सौं कहि गईं, स्याम ल्यावैं।
फिरत बन-बन बिकल, सहस सोरह सकल, ब्रह्म पूरन अकल, नाहिं पावैं॥
कहँ गए यह कहति सबै मग जोवहीं, काम तनु दहत सब घोष-नारी।
सूर-प्रभु स्याम स्यामा-चरित देखहीं, करत अंतर हृदय हेत प्यारी॥१११९॥१७३७॥

राग बिलावल

कहूँ न पावैं स्याम कौं, बूझति घन-बेली।
सबै भईं व्याकुल फिरैं, तन मदन-दुहेली॥
मृग-नारी सौं बूझहीं, बूझैं सुक-सारी।
कमल सरोवर बूझहीं, बिरहा तन मारी॥
कनक बेलि सी सुंदरी, द्रुम कैं तर डारी।
मानौ दामिनि घर परी, की सुधा-पनारी॥
इत-उत तैं फिरि आवहीं, जहँ राधा प्यारी।
सूर स्याम अजहूँ नहीं, करि मिलत कृपा री॥

॥११२०॥१७३८॥

राग बिहागरौ

करति हैं हरि-चरित ब्रज-नारि।
देखहीं अति बिकल राधा, यहै बुद्धि बिचारि॥
इक भई गोपाल कौ वपु, इक भई बनवारि।
इक भई गिरिधरन समरथ, इक भई दैत्यारि॥
एक इक भईं धेनु-बछरा, इक भई नँदलाल।
इक भई जमला-उधारन, इक त्रिभंग-रसाल॥
इक भई छबि-रासि मोहन, कहति राधा नारि।
इक कहति उठि मिलहु भुज भरि, सूर-प्रभु की प्यारि॥

॥११२१॥१७३९॥

राग जैतश्री

सुनि धुनि स्रवन उठी अकुलाइ।
जो देखै नँद-नंद नहीं वै, सखियनि वेष बनाइ॥
कहा कपट करि मोहिं दिखावतिं, कहाँ स्याम सुखदाइ।
कृष्ण-कृष्ण सरनागत कहि-कहि, बहुरि गिरी भहराइ॥
पुनि दौरीं जहँ-तहँ ब्रजबाला, बन-द्रुम सोर लगाइ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, बिरहिनि लेहु जिवाइ॥

॥११२२॥१७४०॥

राग कान्हरौ

कृपा सिंधु हरि कृपा करौ हो।
अनजानैं मन गर्व बढ़ायौ, सो जिनि हृदय धरौ हो॥

सोरह सहस पीर तनु एकै, राधा जिव, सब देह।
ऐसी दसा देखि करुनामय, प्रगटौ हृदय-सनेह॥
गर्व-हत्यौ तनु, बिरह प्रकास्यौ, प्यारी व्याकुल जानि।
सुनहु सूर अब दरसन दीजै, चूक लई इनि मानि॥
॥११२३॥१७४१॥

राग केदारौ

अहो तुम आनि मिलौ नँदलाल।
दुर्बल, मलिन फिरति हम बन-बन, तुम बिनु मदनगोपाल॥
द्रुम-बेली पूछति सब उझकति, देखति ताल-तमाल।
खेलत रास-रंग भरि छाँड़ीं, लै जु गए इक बाल॥
सूरदास सब गोपी पछिली क्रीड़ा करति रसाल।
गोपी बृंद मध्य जग जीवन, प्रगट भए तिहिं काल॥
॥११२४॥१७४२॥

राग केदारौ

हरि बिनु लागत है बन सूनौ।
ढूँढत फिरतिं सकल ब्रज-जुवती, दहत काम-दुख दूनौ॥
तजि सुत-पति सुनि स्रवननि धाईं, मुरलि-नाद मृदु कीनौ॥
ब्यापित मकरध्वज अति आतुर, मनहु मीन जल-हीनौ॥
चितवतिं, चकित दिसनि दिसि हेरतिं, मन मोहन हरि लीनौ।
द्रुम-बेली पूछैं सब सुंदरि, नवल जात कहुँ चीनौ॥
कदली-ओट निचोरत अंचल, अधर-सुधा-रस भीनौ।
सूर स्याम पिय-प्रेम-उमँगि रस, हँसि आलिंगन दीनौ॥
॥११२५॥१७४३॥

राग बिहागरौ

राधा भूलि रही अनुराग।
तरु तर रुदन करति मुरझानी, ढूँढ़ि फिरी बन-बाग॥
कबरी ग्रसत सिखंडी अहि भ्रम, चरन सिलीमुख लाग।
बानी मधुर जानि पिक बोलति, कदम करारत काग॥
कर-पल्लव किसलय कुसुमाकर, जानि ग्रसत भए कीर।
राका चंद चकोर जानि कै, पिवत नैन कौ नीर॥

बिहबल, बिकल जानि नँदनंदन, प्रगट भए तिहिं काल।
सूरदास प्रभु प्रेमांकुर उर, लाय लई भुज माल॥
॥११२६॥१७४४॥

राग कल्यान

न्याय तजी स्यामा गोपाल।
थोरी कृपा बहुत गरबानी, ओछी बुधि ब्रजवाल॥
तैं कछु कपट सबनि सौं कीन्यौ, अपजस तैं न डरानी।
हम एकहि सँग एकहि मति सब, कोऊ नहिं बिलगानी॥
हम चातकि, घन हरि नँदनदन, वरषनि लगि हित कीन्यौ।
तुव मद प्रबल पवन सम सजनी, प्रेम बीच दुख दीन्यौ॥
जानी दीन दुखित सब सुख-निधि, मोहन बेनु बजायो।
सूर स्याम तब दरस-परस करि, मिलि संताप नसायो॥
॥११२७॥१७४५॥

गोपी-गीत

राग कान्हरौ

प्रगट भए नँदनंदन आइ।
प्यारी निरखि बिरह अति ब्याकुल, धर तैं लई उठाइ॥
उभय भुजा भरि अंकम दीन्हौं, राखी कंठ लगाइ।
प्रानहु तैं प्यारी तुम मेरैं, यह कहि दुख बिसराइ॥
हँसत भए अंतर हम तुम सौं, सहज खेल उपजाइ।
धरनी मुरझि परीं तुम काहैं, कहाँ गई चतुराइ॥
राधा सकुचि रही मन जान्यौ, कह्यौ न कछू सुनाइ।
सूरदास-प्रभु मिलि सुख दीन्यौ, दुख डार्‌यौ बिसराइ॥
॥११२८॥१७४६॥

राग कान्हरौ

नंद-नँदन उर लाइ लई।
नागरि प्रेम प्रगट तनु ब्याकुल, तब करुना हरि-हृदय भई॥
देखि नारि तरु-तर मुरझानी, देह-दसा सब भूलि गई।
प्रिया जानि अंकम भरि लीन्ही, कहिं-कहि ऐसी काम हई॥
वदन विलोकि कंठ उठि लागी, कनक-वेलि आनंद जई।
सूर स्याम फल कृपा दृष्टि भएँ, अतिहिं भई आनंदमई॥
॥११२९॥१७४७॥

राग सूही

अंतर तैं हरि प्रगट भए।
रहत प्रेम के बस्य कन्हाई, जुवतिनि कौं मिलि हर्ष दए॥
वैसोइ सुख सबको फिरि दीन्हौं, वहै भाव सब मानि लियौ।
वै जानति हरि संग तबहिं तैं, वहै बुद्धि सब, वहै हियौ॥
वहै रास-मंडल-रस जानतिं, बिच गोपी, बिच स्याम धनी।
सूर स्याम स्यामा मधि नायक, वहै परस्पर प्रीति बनी॥
॥११३०॥१७४८॥

राग बिहागरौ

स्याम छवि निरखति नागरि नारि।
प्यारी छवि निरखत मन मोहन, सकत न नैन पसारि॥
पिय सकुचत, नहिं दृष्टि मिलावत, सन्मुख होत लजात।
श्री राधिका निडर अवलोकति, अतिहि हृदय हरषात॥
अरस-परस मोहनि मोहन मिलि, सँग गोपी गोपाल।
सूरदास प्रभु सब गुन लायक, दुष्टनि के उर-साल॥
॥११३१॥१७४९॥

रास-नृत्य तथा जल-क्रीड़ा *राग सारंग*

बहुरि स्याम सुख-रास कियौ।
भुज-भुज जोरि जुरीं ब्रजबाला, वैसेई रस उमँगि हियौ॥
वैसैंहि मुरली नाद प्रकास्यौ, वैसैंहि सुर-नर बस्य भए।
वैसैंहि उडुगन-सहित निसापति, वैसैंहि मारग भूलि गए॥
वैसिहि दसा भई जमुना की, वैसैंहि गति तजि पवन थक्यौ।
वैसैंहि नृत्य तरंग बढ़ायौ, वैसैंहि बहुरौ काम जक्यौ॥
वहै निसा, वैसैंहि मन जुवती, वैसैंही हरि सबनि भजे।
सूर स्याम वैसेइ मन-मोहन, वैसैंहि प्यारी निरखि लजे॥
॥११३२॥१७५०॥

राग नट

मोहन रच्यौ अदभुत रास।
संग मिलि वृषभानु-तनया, गोपिका चहुँ पास।

एकही सुर सकल मोहे, मुरलि सुधा-प्रकास।
जलहु थल के जीव थकि रहे, मुनिनि मनहिं उदास॥
थकित भयौ समीर सुनि कै, जमुना उलटी धार।
सूर-प्रभु ब्रज-बाम मिलि बन, निसा करत बिहार॥
॥११३३॥१७५१॥

राग नट

बिहरत रास रंग गोपाल।
नवल स्यामा संग सोहति, नवल सब ब्रज-बाल॥
सरद निसि अति नवल उज्ज्वल, नवलता बन धाम।
परम निर्मल पुलिन जमुना, कल्प तरु बिस्राम॥
कोस द्वादस रास परिमित, रच्यौ नंदकुमार।
सूर-प्रभु सुख दियौ निसि रमि, काम-कौतुक-हार॥
॥११३४॥१७५२॥

राग गुंड मलार

संग ब्रजनारि हरि रास कीन्हौ।
सबनि की आस पूरन करी स्याम लै, तियनि पिय हेत सुख मानि लीन्हौ॥
मेटि कुलकानि मरजाद बिधि-बेद को, त्यागि गृह नेह, सुनि बेनु धाईं।
फबी जे-जे करी, मनहिं सब जे धरी, संक काहु न करी आपु भाई॥
ज्यौं महामत्त गज जूथ-कुरिनी लिये, कूल-सर फोरि डर नाहिं मानै।
सूर-प्रभु नंद-सुत निदरि निसि रस कर्यौ, नाग-नर-लोक-सुर सबै जानै॥११३५॥१७५३॥

राग केदारौ

बिराजत मोहन मंडल-रास।
स्यामा स्याम सुधा-सर मानौ, क्रीड़त बिमल बिलास॥
ब्रज-बनिता सत जूथ मंडली, मिलि कर-परस करे।
भुज-मृनाल-भूषन तोरन जुत, कंचन-खंभ खरे॥

मृदु-पद-न्यास, मद-मलयानिल-बिगलित सीस-निचोल।
पीत-अरुन-सित-सेत ध्वजा चल, सीत-समीर-झकोल॥
बिपुल पुलक कंचुकि बँद छूटे, अति आनंद भई।
कुच जुग चक्रवाक करुना मिटी, अंतर रैनि गई॥
दसन-कुंद-दाड़िम, दुति दामिनि, प्रगटत अरु दुरि जात।
अधर-बिंब बर, मधुर सुधाकन, प्रीतम बदन समात॥
गिरत कुसुम कबरी केसनि तैं, टूटत है उर हार।
सरद जलद अति मंद करत मनु कहूँ-कहूँ जलधार॥
सुंदर बदन, बिलोल बिलोचन, अति रस-रंग रँगे।
पुष्कर-पुंडरीक पर मानहुँ, खंजन-जुगल खगे॥
पृथु नितंब करभोरु कमल पद, नख-मनि चंद अनूप।
मानहुँ लुब्ध भयौ बारिज-दल, इंदु किये दस रूप॥
स्रुति कुंडल धर गिरत न जाने, हृदै अनंद भरे।
पाइ परस तैं चलत चहूँ दिसि, मानहुँ मीन तरे॥
चरन रुनित नूपुर, कटि किंकिनि, कंकन करतल ताल।
मनु तिय-तनय-समेत, सहज-सुख, मुखरित मधुर मराल॥
बाजत ताल मृदंग बाँसुरी, उपजति तान-तरंग।
निकट बिटप मनु द्विज-कुल कूजत, बाढ़त प्रबल अनंग॥
देखि बिनोद सहित सुर-ललना, मोहे सुर-नर-नाग।
बिथकित उड़पति ब्योम बिराजत, श्री-गुपाल-अनुराग॥
जाँचत दास, आस चरननि की, अपनी सरन बसावहु।
मन अभिलाष स्रवन जस पूरित, सूरहिं सुधा पियावहु॥
॥११३६॥१७५४॥

राग सूही

रास रसिक गोपाल लाल, ब्रजबाल-संग बिहरत बृंदावन।
सप्त सुरनि मुरली बाजति, धुनि सुनि मोहे सुर-नर-गंध्रब-गन॥
तरुन कान्ह अरु तरुन गोपिका, पीतांबर नीलांबर तन-तन।
नृत्य करत उघटत सँगीत पद, निरखि सूर रीझत मन ही मन॥
॥११३७॥१७५५॥

राग बिहागरा

आजु निसि सोभित सरद सुहाई।
सीतल मंद सुगंध पवन बहै, रोम-रोम सुखदाई॥

जमुना-पुलिन पुनीत, परम रुचि, रचि मंडली बनाई।
राधा बाम अंग पर कर धरि, मध्यहिं कुँवर कन्हाई।
कुंडल सँग ताटंक एक भए, जुगल-कपोलनि झाईं।
एक उरग मानौ गिरि ऊपर, द्वै ससि उदै कराई॥
चारि चकोर परे मनु फंदा, चलत हैं चंचलताई।
उड़पति गति तजि रह्यौ निरखि लजि, सूरदास बलि जाई॥

॥११३८॥१७५६॥

राग केदारौ

आजु हरि ऐसौ रास रच्यौ।
स्रवन सुन्यौ न, कहूँ अवलोक्यौ यह सुख अब लौं कहाँ सँच्यौ॥
प्रथमहिं सँचे, समाज साज सुर, सब मोहे, कोऊ न बच्यौ।
एकहिं बार थकित थिर चर कियौ, को जानै को कबहिं नच्यौ!॥
गत गुन-मद-अभिमान, अधिक रुचि लै लोचन मन तहँइ खच्यौ।
सिव-नारद-सारदा कहत यौं, हम इतने दिन बादि पच्यौ॥
निरखि नैन रस-रीति रजनि रुचि, काम-कटक फिर कलह मच्यौ।
सूर धनुष-धीरज न धस्यौ तब, उलटि अनंग अनंग तच्यौ॥

॥११३६॥१७५७॥

राग केदारौ

आजु हरि अद्भुत रास उपायौ।
एकहिं सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली-नाद सुनायौ॥
अचल चले, चल थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चंचल पवन थक्यौ नहिं डोलत, जमुना उलटि बहायौ॥
थकित भयौ चंद्रमा सहित-मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायौ।
सूर स्याम गोपिनि सुखदायक, लायक दरस दिखायौ॥

॥११४०॥१७५८॥

राग सोरठ

मोहन यह सुख कहाँ धस्यौ।
जो सुख-रासि रैनि उपजायौ, त्रिभुवन-मनहिं हस्यौ॥
मुरली-सब्द सुनत ऐसौ को, जो ब्रत तैं न टस्यौ!
बचे न कोउ मोहित सब कीन्हे, प्रेम उदोत कस्यौ॥

उलटि काम तनु काम प्रकास्यौ, अद्भुत रूप धरयौ।
सूरदास सिव-नारद-सारद कहत, न कह्यौ परयौ॥
॥११४१॥१७५९॥

राग बिहागरौ

आजु निसि रास रंग हरि कीन्हौ।
ब्रजवनिता-बिच स्याम मंडली, मिलि सबकौं सुख दीन्हौ॥
सुर-ललना सुर सहित बिमोहीं, रच्यौ मधुर सुर गान।
नृत्य करत, उघटत नाना-बिधि, सुनि मुनि बिसरयौ ध्यान॥
मुरली सुनत भए सब व्याकुल, नभ-धरनी-पाताल।
सूर स्याम को को न किये बस, रचि रस-रास रसाल॥
॥११४२॥१७६०॥

राग केदारौ

बनावत रास-मँडल प्यारौ।
मुकुट की लटक, झलक कुंडल की, निरतत नंद-दुलारौ॥
उर बनमाल सोह सुंदर बर, गोपिनि कैं सँग गावै।
लेत उपज नागर नागरि सँग, बिच-बिच तान सुनावै॥
बंसीवट-तट रास रच्यौ है, सब गोपिनी सुखकारौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन सौं, भक्तनि प्रान अधारौ॥
॥११४३॥१७६१॥

राग बिहागरौ

दुलहिनि दूलह स्यामा स्याम।
कोक-कला-व्युतपन्न परस्पर, देखत लज्जित काम॥
जा फल कौं ब्रजनारि कियौ ब्रत, सो फल सबहिनि दीन्हौ।
मनकामना भई परिपूरन, सबहिनि मानि जु लीन्हौ॥
राग-रागिनी प्रगट दिखायौ, गायौ जो जिहिं रूप।
सप्त सुरनि के भेद बतावति, नागरि रूप-अनूप॥
अतिहिं सुघर पिय कौ मन मोहति, अपबस करति रिझावति।
सूर स्याम-मोहनि-मूरति कौं, बार-बार उर लावति॥
॥११४४॥१७६२॥

राग बिहागरौ

मोहन मोहिनी रस भरे।
भौंह मोरनि, नैन फेरनि, तहाँ तैं नहिं टरे॥
अंग निरखि अनंग लज्जित, सकै नहिं ठहराइ।
एक की कह चलै, सत-सत कोटि रहत लजाइ॥
इते पर हस्तकनि गति-छबि, नृत्य-भेद अपार।
उड़त अंचल, प्रगटि कुच दोउ, कनकघट-रससार॥
दरकि कंचुकि, तरकि माला, रही धरनी जाइ।
सूर-प्रभु करी निरखि करुना, तुरत लई उचाइ॥

॥११४५॥१७६३॥

राग जैतश्री

प्रेम सहित माला कर लीन्ही।
प्यारी-हृदय रहति यह जानी, भूपर परन न दीन्ही॥
पीत बसन लै स्रम-जल पोंछत, पुनि लै कंठ लगाई।
चरननि कर परसत हैं अपनैं, कहत अतिहिं स्रम पाई॥
स्रम-कन देखि पवन मुखही कैं, फूँकि झुरावत अंग।
सूरदास-प्रभु भौंह निहारत, चलत तिया कैं रंग॥

॥११४६॥१७६४॥

राग भैरौ

हा हा हो पिय नृत्य करौ।
जैसैं करि मैं तुमहिं रिझाई, त्यौं मेरौ मन तुमहु हरौ॥
तुम जैसैं स्रम-बायु करत हौ, तैसैं मैंहुँ डुलावौंगी।
मैं स्रम देखि तुम्हारे अँग कौ, भुज भरि कंठ लगावौंगी॥
मैं हारी त्यौंही तुम हारौ, चरन चापि स्रम मेटौंगी।
सूर स्याम ज्यौं उछँग लई मोहिं, त्यौं मैं हूँ हँसि भेंटौंगी॥

॥११४७॥१७६५॥

राग रामकली

नृत्यत स्याम स्यामा-हेत।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, नारि-मन सुख देत॥
कबहुँ चलत सुघंग गति सौं, कबहुँ उघटत बैन।
लोल कुंडल गंड-मंडल, चपल नैननि सैन॥

स्याम की छवि देखि नागरि, रही इकटक जोहि ।
सूर-प्रभु उर लाइ लीन्ही, प्रेम-गुन करि पोहि ॥
॥११४८॥१७६६॥

राग मलार कमोद

अरुझी कुंडल लट, बेसरि सौं पीतपट, बनमाल बीच आनि उरझे हैं दोउ जन ।
आननि सौं आन, नैन नैननि अँटकि रहे, चटकीली छवि देखि लपटात स्याम घन ॥
होड़ा-होड़ी नृत्य करैं, रीझि-रीझि अंक भरैं, ता ता थेई थेई उघटत हैं हरषि मन ।
सूरदास प्रभु प्यारी, मंडली-जुवति भारी, नारि कौ अँचल लै लै, पोंछत हैं स्रमकन ॥११४९॥१७६७॥

राग अड़ाना

मोहन लाल के सँग, ललना यौं सोहैं ज्यौं, तमाल-ढिग तरु सुभ सुमन जरद कौ ।
बदन अनूप कांति, नीलांबर इहिं भाँति, नवघन बीच ससि मानहु सरद कौ ॥
मुक्ता-लर तारागन, प्रतिबिंब बेसरि कौ, चूनैं मिलि रंग जैसैं होत है हरद कौ ।
सूरदास-प्रभु मोहन-गोहन छवि बाढ़ी, मेटति निरखि दुख मैन के दरद कौ ॥११५०॥१७६८॥

राग पूरबी

नंद-नँदन सुघराई, बाँसुरी बजाई ।
सरगम सुनीकैं साधि, सप्त सुरनि गाई ॥
अतीत अनागत सँगीत, बिच तान मिलाई ।
सुर ताल‿रु नृत्य ध्याइ, पुनि मृदँग बजाई ॥
सकल कला गुन प्रवीन, नवल बाल भाईं ।
सूरज प्रभु अरस परस, रीझि सब रिझाईं ॥
॥११५१॥१७६९॥

राग बिहागरौ

पिय-सँग खेलत अधिक भयौ स्रम, अब ढाँकौं हौं आउ बयारि।
अपनौ अंचल लै सुखऊँ री, रुचिर बदन स्रमकन के बारि॥
निरतन उलटि गए अँग-भूषन, बाँधौं बिथुरी अलक सँवारि।
सूरदास ललिता की बानी, सुनि चित हरष कियौ सुकुमारि॥
॥११५२॥१७७०॥

राग केदारौ

प्यारी देखि बिह्वल गात।
नंद-नंदन देखि रीझे, अंक भरि लपटात॥
कबहुँ लेहिं उछंग बाला, कहि परस्पर बात।
प्रेम रस करारि भरे दोऊ, नैन मिलि मुसुकात॥
रास-रस-कामना-पूरन, रैनि नाहिं बिहात।
सूर-प्रभु-सँग ब्रज-तरुनि मिलि, करत सुख न सिरात॥
॥११५३॥१७७१॥

राग कल्यान

रच्यो रास रंग स्याम सबहिनि सुख दीन्हौ।
मुरली-सुर करि प्रकास, खग-मृग सुनि रस-उदास, जुवतिनि
तजि गेह बास, बनहिं गवन कीन्हौ॥
मोहे सुर-असुर-नाग, मुनिजन-गन भए जाग, सिव सारद नार-
दादि चकित भए ज्ञानी॥
अमरनि सह अमर-नारि, आईं लोकनि बिसारि, ओक ओक
त्यागि, कहतिं धन्य-धन्य बानी॥
थकित-गति भयौ समीर, चंद्रमा भयौ अधीर, तारागन लज्जित
भए, मारग नहिं पावैं।
उलटि बहति जमुन-धार, बिपरित सबही बिचार, सूरज-प्रभु
सँग-नारि, कौतुक उपजावैं॥११५४॥१७७२॥

राग बिहागरौ

रचि रस-रास स्याम सुजान।
प्रथम मुरली-नाद करि, हरि हर्‌यौ सबकौ ज्ञान॥

सबनि उलटी रीति कीन्ही, देव-सुर-नर आदि।
ब्रज बधू मन-काम पूरन, कियौ पुरुष अनादि॥
सहज सुख निसि ग्वाल सोवत, सो रची षट् मास।
हेतु जुवती सुख-बढ़ावन, कियौ पूरन रास॥
मेटि अंतर ध्यान कौ दुख, वहै राख्यौ भाव।
सूर-प्रभु महिमा अगोचर, निगम अंत न पाव॥
॥११५५॥१६७३॥

राग मलार

रास रस स्रमित भईं ब्रजबाल।
निसि सुख दै जमुना-तट ले गए, भोर भयौ तिहिं काल॥
मनकामना भई परिपूरन, रही न एकौ साध।
षोड़स सहस नारि सँग मोहन, कीन्हौ सुख अवगाधि॥
जमुना-जल बिहरत नँद-नंदन, संग मिलीं सुकुमारि।
सूर धन्य धरनी बृंदावन, रवि-तनया सुखकारि॥
॥११५६॥१६७४॥

राग गुंडमलार

रैनि रस-रास-सुख करत बीती।
भोर भए गए पावन जमुन कैं सलिल, न्हात सुख करत अति बढ़ी प्रीती॥
एक इक मिलति हँसि, एक हरि संग रसि, एक जल मध्य, इक तीर ठाढ़ी।
एक इक दुरति, इक अंक भरि कै चलति, एक सुख करति अति नेह बाढ़ी।
काहु नहिं डरति, जल-थलहु क्रीड़ा करति, हरति मन निडर, ज्यौं कंत नारी।
सूर प्रभु स्याम-स्यामा संग गोपिका, मिटी तनु-साध भईं मगन भारी॥११५७॥१६७५॥

राग गौरी

जमुना-जल क्रीड़त नँद-नंदन।
गोपी-बृंद मनोहर चहुँ दिसि, मध्य अरिष्ट निकंदन॥

सोभित सलिल परस्पर छिरकन, सिथिल होत भुज-बंदन।
ज्यौं अहिपनि कैंचुरि कौं, लघु-लघु छोरत है अँग-चंदन॥
कच-भर कुटिल सुदेस अंबुकनि, चुवत अग्र गनि मंदन।
मानहु भरि गंडूष कमल तैं डारत अलि आनंदन॥
भुज भरि अंक अगाध चलत लै, ज्यौं लुब्धक खग फंदन।
सूरदास स्वामी श्रीपति के गुन गावत श्रुति-छंदन॥
॥११५८॥१७७६॥

राग रामकली

स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निर्भ्रम करत बिहार।
पीत कमल इंदीवर पर मनु भोर भएँ नीहार॥
श्रीराधा अंबुज कर भरि-भरि, छिरकति बारंबार।
कनक-लता मकरंद झरत मनु, हालत पवन सँचार॥
अतिसी-कुसुम-कलेवर बूँदैं प्रतिबिंबित निरधार।
जोतिसचक्र गगन सौं डोलत, सखि सब करतिं बिचार॥
धाइ धरे बृषभानु-सुता हरि, मोहे सकल सिंगार।
तड़ित जलद सूरज मानौ मिलि, बरषत अंमृत-धार॥
॥११५६॥१७७७॥

राग ललित

राधे छिरकति छींट छबीली।
कुच कुंकुम कंचुकि-बँद छूटे, लटकि रही लट गीली॥
चंदन सिर ताटंक गंड पर, रतन जटित मनि नीली।
गति गयंद, मृगराज सुकटि पर, सोभित किंकिनि ढीली॥
मच्यौ खेल जमुना-जल-अंतर, प्रेम मुदित रस-भीली।
नंद-सुवन-भुज ग्रीव बिराजति, भाग-सुहाग भरीली॥
बरषत सुमन देवगन हरषत, दुंदुभि सरस बजीली।
सूर स्याम-स्यामा रस क्रीड़त, जमुन-तरंग थकीली॥
॥११६०॥१७७८॥

राग सारंग

देखि री उमँग्यौ सुख आजु।
जलबिहार-बिनोदमय-सुख रुचिर तनु को साजु॥

भीजि पट लपट्यौ सुभग उर, रही केसरि-चय न।
सरस-परस सुभाव त्याग्यौ, जगे निसि के नयन॥
कछुक कुंचित केस माई, सरस-सोभा भ्राज।
सुभग मानौ काम-द्रुम कौ, नयौ अंकुर राज॥
जुयति गन सब जूथ जित, कित भरत अंजुलि नीर।
सूर सुभग गुपाल-तन-रुचि, सुखद स्याम-सरीर॥
॥११६१॥१७७९॥

राग कान्हरौ

बिहरत हैं जमुना-जल स्याम।
राजत हैं दोउ बाहाँ-जोरी, दंपति अरु ब्रज-बाम॥
कोउ ठाढ़ीं जल जानु जंघ लौं, कोउ कटि हिरदय ग्रीव।
यह सुख बरनि सकै ऐसौ को, सुंदरता की सींव॥
स्याम अंग चंदन की आभा, नागरि केसरि अंग।
मलयज-पंक कुकुमा मिलिकै, जल-जमुना इक रंग॥
निसि-स्रम मिट्यौ, मिट्यौ तन-आलस परसि जमुन भई पावन।
सूर स्याम जल-मध्य जुवति-गन, जन-जन के मन-भावन॥
॥११६२॥१७८०॥

राग कान्हरौ

जल क्रीड़ा-सुख अति उपजायौ।
रास रंग मन तैं नहिं भूलत, वहै भेद मन आयौ॥
जुवती कर-कर जोरि मंडली, स्याम नागरी बीच।
चंदन अंग-कुंकुमा छूटत, जल मिलि तट भई कीच॥
जो सुख स्याम करत जुवतिनि सँग, सो सुख तिहुँ पुर नाहीं।
सूर स्याम देखत नारिनि कौं, रीझि-रीझि लपटाहीं॥
॥११६३॥१७८१॥

राग बिलावल

बिहरति नारि हँसत नँद-नंदन। निर्मल देह छूटि तन-चंदन॥
अति सोभा त्रिभुवन-जन-बंदन। पावत नहिं गावत स्रुति छंदन॥
कंचन पेड़ नारि-अँग-सोभा। वे उनकौं वे उनकौं लोभा॥

कबहुँ अंक भरि चलत अगाधहिं अरस-परस भेटत मन-साधहिं ॥
कोउ आगे कोउ पाछैं धावैं। जुवतिनि सौं कहि ताहि मँगावैं ॥
ताकौं गहि अथाह जल डारैं। मुख-व्याकुलता-रूप निहारैं ॥
कंठ लगाइ लेत पुनि ताहीं। देत अलिंगन रीझत जाहीं ॥
सूर स्याम ब्रज जुवतिनि भोगी। जाकौं ध्यावत सिव मुनि जोगी ॥
॥११६४॥१७८२॥

राग टोडी

ऐसे स्याम बस्य राधा के। नाम लेन पावन आधा के ॥
तिया स्याम-तन अंजुलि डारै। वा छबिकौं चित लाइ निहारै ॥
मनौ जलद जल डारत धारै मन मनहीं तन मन धन वारै ॥
निरखि रूप नहि धीर सम्हारै। सूर स्याम कौं अंकम धारै ॥
॥११६५॥१७८३॥

राग रामकली

रीझे स्याम नागरि-रूप।
बैसियैं लट बगरि उर पर, स्रवत नीर अनूप ॥
स्रवत जल कुच परति धारा, नहीं उपमा पार।
मनौ उगिलत राहु अंमृत, कनक-गिरि पर धार ॥
उरज परसत स्याम सुंदर, नागरी सरमाइ।
सूर-प्रभु तन-काम-व्याकुल, किये मनहिं सुहाइ।
॥११६६॥१७८४॥

राग रामकली

स्यामा स्याम अंकम भरी।
उरज उर परसाइ, भुज-भुज जोरि गाढ़ैं धरी ॥
तुरत मन सुख मानि लीन्हो, नारि तिहिं रँग ढरी।
परस्पर दोउ करत क्रीड़ा, राधिका नव हरी ॥
ऐसेहीं सुख दियौ मोहन, सबै आनँद भरी।
करत रंग हिलोर जमुना, प्रेम आनँद झरी ॥
रास-निसि-स्रम दूरि कीन्हौ, धन्य भनि यह घरी।
सूर-प्रभु तट निकसि आए, नारि सँग सब खरी ॥
॥११६७॥१७८५॥

राग गूजरी

ठाढ़े स्याम जमुना-तीर ।
धन्य पुलिन पवित्र पावन, जहाँ गिरिधर धीर ॥
जुवति बनि-बनि भईं ठाढ़ीं और पहिरे चीर ।
राधिका सुख-स्याम-दायक, कनक-बरन सरीर ॥
लाल चोली, नील उढ़िया, संग जुवतिनि भीर ।
सूर-प्रभु छवि निरखि रीझे, मगन भयौ मन-कीर ॥
॥११६८॥१७८६॥

राग नट

ललकत स्याम मन ललचात ।
कहत हैं घर जाहु सुंदरि, मुख न आवति बात ॥
षट सहस्र दस गोप-कन्या, रैनि भोगीं रास ।
एक छिन भईं कोउ न न्यारी, सबनि पूजी आस ॥
बिहँसि सब घर-घर पठाईं ब्रज गईं ब्रज-बाल ।
सूर-प्रभु नँद-धाम पहुँचे, लख्यौ काहु न ख्याल ॥
॥११६९॥१७८७॥

राग बिलावल

ब्रजबासी सब सोवत पाए ।
नँद-सुवन मति ऐसी ठानी, उनि घर लोग जगाए ॥
उठे प्रात-गाथा मुख भाषत, आतुर रैनि बिहानी ।
पँडत अंग जम्हात बदन भरि, कहत सबै यह बानी ॥
जो जैसे सो तैसे लागे, अपनैं-अपनैं काज ।
सूर स्याम के चरित अगोचर, राखी कुल की लाज ॥
॥११७०॥१७८८॥

राग जैतश्री

ब्रज-जुवती रस-रास पगीं ।
कियौ स्याम सब कौ मन भायौ, निसि रति-रंग जगीं ॥
पूरन ब्रह्म, अकल, अबिनासी, सबनि संग सुख चीन्हौ ।
जितनी नारि भेष भए तितने, भेद न काहू कीन्हौ ॥

वह सुख टरत न काहूँ मन तैं, पति-हित-साध पुराईं ।
सूर स्याम दूलह सब दुलहिनि, निसि भाँवरि दै आईं ॥
॥११७१॥१७८९॥

राग सोरठ

साध नहीं जुवतिनि मन राखी ।
मन वांछित सबहिनी फल पायौ, बेद-उपनिषद साखी ॥
भुज भरि मिले, कठिन कुच चाँपे, अधर-सुधा रस चाखी ।
हाव-भाव नैननि सैननि दै, बचन-रचन मुख भाषी ॥
सुक भागवत प्रगट करि गायौ, कछू न दुविधा राखी ।
सूरदास ब्रजनारि संग-हरि, बाकी रही न काखी ॥
॥११७२॥१७९०॥

राग कान्हरौ

धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ ॥
धन्य स्याम बृंदाबन कौ सुख, संत मया तैं जान्यौ ।
जो रस-रास-रंग हरि कीन्हौ, बेद नहीं ठहरान्यौ ॥
सुर-नर-मुनि मोहित भए सबही, सिवहु समाधि भुलान्यौ ।
सूरदास तहँ नैन बसाए, और न कहूँ पत्यान्यौ ॥
॥११७३॥१७९१॥

राग धनाश्री

मैं कैसैं रस रासहिं गाऊँ ।
श्री राधिका स्याम की प्यारी, कृपा बास ब्रज पाऊँ ॥
आन देव सपनेहुँ न जानौ, दंपति कौं सिर नाऊँ ।
भजन-प्रताप, चरन-महिमा तैं गुरु की कृपा दिखाऊँ ॥
नव निकुंज बन-धाम-निकट इक, आनँद-कुटी रचाऊँ ।
सूर कहा बिनती करि बिनवै, जनम-जनम यह ध्याऊँ ॥
॥११७४॥१७९२॥

राग बिलावल

गोपी-पद-रज महिमा, बिधि भृगु सौं कही ।
बरष सहस तप कियौ, तऊ मैं ना लही ॥

यह सुनि कै भृगु कह्यौ, नारदादिक हरि भक्ता।
माँगौ तिनकी चरन रेनु, तौ है यह जुक्ता॥
सो निज गोपी-चरन-रज, वछत हौ तुम देव।
मेरैं मन ससय भयौ, कहौ कृपा करि भेव॥
ब्रज सुंदरि नहिं नारि, रिचा स्रुति की सब आहीं।
मैं अरु सिव पुनि सेष, लच्छमी तिन सम नाहीं॥
अद्भुत है तिनकी कथा, कहौं सु मैं अब गाइ।
याहि सुनै जो प्रीति करि, सो हरि-पदहि समाइ॥
प्रकृति पुरुष लय भई, जगत सब प्रकृति समाया।
रह्यौ एक वैकुंठ लोक, जहँ त्रिभुवन-राया॥
अछर अच्युत अविकार है, निराकार है जोइ।
आदि अंत नहिं जानियत, आदि अंत प्रभु सोइ॥
स्रुति विनती कार कह्यौ, सर्ब तुमहीं हौ देवा।
दूरि निरतर तुमहि, तुमहिं जानत सब भेवा॥
इहिं विधि वहु अस्तुति करी तब भइ गिरा अकास।
माँगौ बर मन भावते, पुरवौं सो तुम आस॥
स्रुतिनि कह्यौ कर जोरि, सच्चिदानंद देव तुम।
जो नारायन आदि रूप तुम्हरे सो लखे हम॥
त्रिगुन रहित निज रूप जो, लख्यौ न ताकौ भेव।
मन बानी तैं अगम जो, दिखरावहु सो देव॥
बृंदावन निज धाम, कृपा करि तहाँ दिखायौ।
सब दिन जहाँ बसंत, कल्प-बृच्छनि सो छायौ॥
कुँज अतिहि रमनीक तहँ, बेलि सुभग रहीं छाइ।
गिरि गोवर्धन धातुमय, झरना झरत सुभाइ॥
कालिंदी जल अमृत, प्रफुल्लित कमल सुहाए।
नगनि जटित दोउ कूल, हंस सारस तहँ छाए॥
क्रीड़त स्याम किसोर तहँ, लिए गोपिका साथ।
निरखि सु छवि स्रुति थकित भईं, तब बोले जदुनाथ॥
जो मन इच्छा होइ, कहौ सो मोहिं प्रगट कर।
पूरन करौं सु काम, देउँ तुमकौं मैं यह बर॥
स्रुतिनि कह्यौ ह्वै गोपिका, केलि करैं तुम संग।
एव मस्तु निज मुख कह्यौ, पूरन परमानंद॥

कल्पसार सत ब्रह्मा, जब सब सृष्टि उपावै।
अरु तिहुँ लोकनि बरन-आसरम धरम चलावै॥
बहुरि अधर्मी होहिं नृप, जग अधर्म बढ़ि जाइ।
तब बिधि, पृथ्वी, सुर सकल, बिनय करैं मोहिं आइ॥
मथुरा-मंडल भरत-खंड, निज धाम हमारौ।
धरौं तहाँ मैं गोप-वेष, सो पंथ निहारौ॥
तब तुम ह्वै कै गोपिका, करिहौ मो सौं नेह।
करौं केलि तुम सौं सदा, सत्य वचन मम एह॥
स्रुति सुनि कै यह बचन, भाग्य अपनौ बहु मान्यौ।
चितवन लगीं तिहिं समय, द्यौस सो जात न जान्यौ॥
भार भयौ जब पृथी पर, तब हरि लियौ अवतार।
वेद ऋचा ह्वै गोपिका, हरि सँग कियौ बिहार॥
जो कोउ भरता-भाव, हृदय धरि हरि-पद ध्यावै।
नारि पुरुष कोउ होइ, स्रुति-ऋचा-गति सो पावै॥
तिनकी पदरज कोउ जो, बृंदावन भू माँह।
परसै सोउ गोपिका-गति पावै संसय नाहिं॥
भृगु, तातैं मैं चरन-रेनु गोपिनि की चाहत।
स्रुति-मति बारंबार, हृदय अपनैं अवगाहत॥
महिमा पद-रज-गोपिका, बिधि जब दई सुनाइ।
तब भृगु आदिक रिषि-सकल, रहे हरि पद चित लाइ॥
सर्व सास्त्र कौ सार, सार-इतिहास-सर्व जो।
सर्व पुराननि सार, सार जो सर्व स्रुतिनि कौ॥
बेदन-रज-बिधि सबै बिधि, दियौ रिषिनि समुझाइ।
ब्यास जु कह्यौ पुरान मैं, सूर कह्यौ सो गाइ॥
॥११७५॥१७९३॥

राग रामकली

(श्री) जमुना पतित पावन कर्‌यौ।
प्रथमहीं जब दियौ दरसन, सकल पापनि हर्‌यौ॥
जल तरंगनि परसि कै, पय पान सौं मुख भर्‌यौ।
नाम सुमिरत गई दुरमति, कृष्न रस बिस्तर्‌यौ॥

गोप-कन्या कियौ मज्जन, लाल गिरिधर बर्यौ।
सूर श्री गोपाल सुमिरत, सकल कारज सर्यौ॥

॥११७६॥१७६४॥

राग बिलावल

तुमहीं मोकौं ढीठ कियौ।
नैन सदा चरननि तर राखे, मुख देखत न बियौ॥
प्रभु मेरी तुम सकुच मिटाई, जोइ-सोइ माँगत पेलि।
माँगौं चरन-सरन बृंदाबन, जहाँ करत नित केलि॥
यह बानी जु भुजंग स्रवन बिनु, सुनत बहुत सरमाऊँ।
श्री वृषभानु-सुता-पति सौं हित, सूर जगत भरमाऊँ॥

॥११७७॥१७६५॥

राग बिहागरौ

रास रस लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि, तिहिं चरननि सिर नाऊँ॥
कहा कहौं बक्ता स्रोता फल, इक रसना क्यौं गाऊँ।
अष्ट सिद्धि नवनिधि सुख-संपति, लघुता करि दरसाऊँ॥
जौ परतीति होइ हिरदै मैं, जग-माया धिक देखै।
हरि-जन दरस हरिहिं सम बूझै अंतर कपट न लेखै॥
धनि बक्ता, तेई धनि स्रोता, स्याम निकट हैं ताकैं।
सूर धन्य तिहिं के पितु-माता, भाव-भगति है जाकैं॥

॥११७८॥१७६६॥

राग बिलावल

बृंदाबन हरि रास उपायौ। देखि सरद-निसि रुचि उपजायौ॥
अद्भुत मुरली-नाद सुनायौ। जुवति सुनत तनु दसा गँवायौ॥
मिलि धाईं मन कौ फल पायौ। जंगम चले चलत ठहरायौ॥
उलटी जमुना धार बहायौ। सुनि धुनि चंचल पवन थकायौ॥
सुर नर मुनि कौ ध्यान भुलायौ। चंद्र गगन मारग बिसरायौ॥
रूप देखि मन काम लजायौ। रस मैं अंतर बिरस जनायौ॥
जुवतिनि कैं तनु बिरह बढ़ायौ। बहुरि मिले अति हित उपजायौ॥
फेरि रास मंडली बनायौ। हाव भाव करि सबनि रिझायौ॥

कल्प रैनि रस हेत उपायौ। प्रात समय जमुना-तट आयौ॥
नारिनि के निसि-स्रमहिं मिटायौ। जुवतिनि प्रति प्रतिरूप बनायौ॥
सिय नारद सारद यह गायौ। ध्यान टर्‌यौ चित तहाँ चलायौ॥
रमाकंत जा सुख कौं ध्यायौ। सो सुख नंद-सुवन ब्रज आयौ॥
राधा बर निज नाम कहायौ। सूरदास कछु कहि कहि गायौ॥
॥११७६॥१७६७॥

राग धनाश्री

सरद सुहाई आई राति। दहुँ दिसि फूलि रही बन-जाति॥
देखि स्याम मन सुख भयौ।
ससि गो मंडित जमुना-कूल। बरषत बिटप सदा फल फूल॥
त्रिबिध पवन दुख दवन है।
राधा-रवन बजायौ बेनु। सुनि धुनि गोपिनि उपज्यौ मैनु॥
जहाँ तहाँ तैं उठि चलीं।
चलत न काहुहिं किया जनाव। हरि प्यारे सौं बाढ़्यौ भाव॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
घर-डर बिसर्‌यौ बढ्यौ उछाह। मन चीतौ पायौ हरि नाह॥
ब्रज नायक लायक सुने।
दूध पूत की छाँड़ी आस। गोधन भर्त्ता करे निरास॥
साँचौ हित हरि सौं कियौ।
खान पान तनु की न सम्हार। हिलग छुँड़ायौ ग्रह-ब्यवहार॥
सुधि बुधि मोहन हरि लई।
अंजन मंजन अँगन सिंगार। पट भूषन छूटे सिर-बार॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
एक दुहावत तैं उठि चली। एक सिरावत मग मैं मिली॥
उतकंठा हरि सौं बढ़ी।
उफनत दूध न धर्‌यौ उतारि। सोझी थूली चूल्हैं डारि॥
पुरुष तजे जेंवत हुते।
पय प्यावत बालक धरि चली। पति सेवा कछु करी न भली॥
धर्‌यौ रह्यौ जेंवन जितौ।
तेल उबटनौ त्याग्यौ दूरि। भागनि पाई जीवन-मूरि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

अंजत ही इक नैन बिसाख्यौ। कटि कंचुकि लँहगा उर धाख्यौ॥
हार लपेट्यौ चरन सौं।
स्रवननि पहिरे उलटे तार। तिरनी पर चौकी श्रृंगार॥
चतुर चतुरता हरि लई।
जाकौ मन जहँ अँटकै जाइ। ता बिनु ताकौं कछु न सुहाइ॥
कठिन प्रीति कौ फंद है।
स्यामहिं सूचत मुरली-नाद। सुनि धुनि छूटे बिषय-सवाद॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
एक मातु पितु रोकी आनि। सही न हरि-दरसन की हानि॥
सबही कौ अपमान कै।
जाकौ मन मोहन हरि लियौ। ताकौ काहू कछू न कियौ।
ज्यौं पति सौं तिय रति करै।
जैसैं सरिता सिंधुहिं भजै। कोटिक गिरि भेदत नहिं लजै॥
तैसी गति तिनकी भई।
इक जे घर तैं निकसीं नहीं। हरि करुना करि आए तहीं॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
नीरस कवि न कहै रस-रीति। रसिकहिं रस-लीला पर प्रीति॥
यह मत सुक मुख जानिबौ।
ब्रज-बनिता पहुँची पिय-पास। चितवत चंचल भ्रकुटि-बिलास॥
हँसि बूझी हरि मान दै।
कैसैं आईं मारग माँझ। कुल की नारि न निकसैं साँझ॥
कहा कहैं तुम जोग हौ।
ब्रज की कुसल कहौ बड़ भाग। क्यौं तुम छाँडे सुवन सुहाग॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
अजहूँ फिरि अपनैं घर जाहु। परमेस्वर करि मानौ नाहु॥
बन मैं निसि बसियै नहीं।
बृंदावन तुम देख्यौ आइ। सुखद कुमोदिनि प्रफुलित जाइ॥
जमुना-जल सीकर घनौ।
घर मैं जुवती धर्महिं फबै। ता बिनु सुत पति दुःखित सबै॥
यह बिधना रचना रची।
भर्ता की सेवा सत सार। कपट तजे छूटै संसार॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

विरध अभागी जो पति होइ। मूरष रोगी तजै न जोइ॥
पतित बिलछि करि छाँड़ियै।
तजि भर्त्ता रहि जारहिं लीन। ऐसी नारि न होइ कुलीन॥
जस बिहीन नरकहिं परैं।
बहुत कहा समुझाऊँ आजु। हमहूँ कछु करिबे गृह-काज॥
तुम तैं को अति जान है।
श्री मुख बचन सुनत बिलखाइ। ब्याकुल धरनि परीं मुरझाइ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
दारुन चिंता बढ़ी न थोर। क्रूर बचन कहे नंद-किसोर॥
और सरन सूझै नहीं।
रुदन करत नदि बढ़ी गँभीर। हरि करिया नहिं जानै पीर॥
कुच थंभन अवलंब है।
तुम्हरी रही बहुत पिय आस। बिनु अपराधन करहु निरास॥
कितौ रुखाई छाँड़िये।
निठुर वचन जनि बोलहु नाथ। निज दासिनि जनि करहु अनाथ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
मुख देखत सुख पावत नैन। स्रवन सिरात सुनत मृदु बैन॥
सैननि हीं सरबस हर्यौ।
मंद हँसनि उपजायौ काम। अधर सुधा धुनि करि बिस्राम॥
बरषि सींचि बिरहानला।
जब तैं हम पेखे ये पाइ। तब तैं और न कछू सुहाइ॥
कहौ घोष हम जाहिं क्यौं?
सजन बंधु की करिहैं कानि। तुम बिछुरत पिय आतम हानि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
बेनु बजाइ बुलाईं नारि। सहि आईं कुल सबकी गारि॥
मन मधुकर लंपट भयौ।
सोऊ सुंदर चतुर-सुजान। आरज-पंथ तजै सुनि गान॥
तिनि देखत पुरुषहुँ लजै।
बहुत कहा बरनौं यह रूप। और न त्रिभुवन सरिस अनूप॥
बलिहारी या राति की।
सुनु मोहन बिनती दै कान। अपजस होइ कियैं अपमान॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

तुम हमकौं उपदेस्यौ धर्म। ताकौ कछू न पायौ मर्म॥
हम अबला मतिहीन हैं।
दुख-दाता सुत-पति-गृह-बंधु। तुम्हरी कृपा बिनु सब जग अंधु॥
तुमतैं प्रीतम और को।
तुम सौं प्रीति करहिं जे धीर। तिनहिं न लोक बेद की पीर॥
पाप पुन्य तिनकैं नहीं।
आसा-पास बँधीं हम बाल। तुमहिं बिमुख ह्वै हैं बेहाल॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
बिरद तुम्हारौ दीनदयाल। कर सौं कर धरि करि प्रतिपाल॥
भुज दंडनि खंडहु ब्यथा।
जैसैं गुनी दिखावै कला। कृपन कबहुँ नहिं मानै भला॥
सदय हृदय हम पर करो।
ब्रज की लाज बड़ाई तोहि। करहु कृपा करुना करि जोहि॥
तुमहि हमारै गति सदा।
दीन बचन जब जुवतिनि कहे। सुनत स्रवन लोचन जल बहे॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
हँसि बोले हरि बोली ओड़ि। कर जोरे प्रभुता सब छोड़ि॥
हौं असाधु तुम साधु हौ।
मो कारन तुम भईं निसंक। लोक बेद बपुरा को रंक।
सिंह सरन जंबुक बसै।
बिनु दमकनि हौं लीन्हौ मोल। करत निरादर भई न लोल॥
आवहु हिलि मिलि खेलियै।
ब्रज-जुवतिनि घेरे ब्रजराज। मनहुँ निसाकर किरनि-समाज॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
हरि-मुख देखत भूले नैन। उर उमँगे कछु कहत न बैन॥
स्यामहिं गावत काम-बस।
हँसत हँसावत करि परिहास। मन मैं कहत करैं अब रास॥
अंचल गहि चंचल चल्यौ।
ल्यायौ कोमल पुलिन मँझार। नख सिख भूषन अंग सँवार॥
पट भूषन जुवतिनि सजे।
कुच परसत पुजई सब साध। रस सागर मनु मगन अगाध॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

रस मैं बिरस जु अंतरधान। गोपिनि के उपजै अभिमान॥
बिरह-कथा मैं कौन सुख।
द्वादस कोस रास परमान। ताकौं कैसैं होत बखान॥
आस पास जमुना फिली।
तासैं मान सरोवर ताल। कमल बिमल जल परम रसाल॥
सेवहिं खग मृग सुख भरे।
निकट कलप तरु बंसी वटा। श्रीराधा रति कुंजनि अटा॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
नव कुसकुस रज बरपत जहाँ। उड़त कपूर धूरि तहँ तहाँ॥
और फूल फल को गने।
तहँ घन स्याम रास रस रच्यौ। मरकत मनि कंचन सौं खँच्यौ॥
अद्भुत कौतुक प्रगट कियौ।
मंडल जोरि जुवति जहँ बनी। दुहुँ दुहुँ बीच स्याम-घन धनी॥
सोभा कहत न आवई।
घूँघट मुकुट बिराजत सीस। सोभित ससि मनु सहस-बतीस॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
मनि कुंडल ताटंक बिलोल। बिहँसत लज्जित ललित कपोल॥
अलक तिलक केसरि बनी।
कंठसिरी गज मोतिनि हार। चंचरि चुहि किंकिनि झनकार॥
चौकी चमकति उर लगी।
कौस्तुभ मनि राजनि रुचि पोति। दसन चमक दामिनि तैं ज्यौति॥
सरस अधर पल्लव बने।
चिबुक मध्य स्यामल रुचि बिंद। देखि सबनि रीझे गोबिंद॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
सघन बिमान गगन भरि रहे। कौतुक देखन सुर उमहे॥
नैन सुफल सबके भए।
बजे देवलोक नीसान। बरषत सुमन करत सुर गान॥
मुनि-किन्नर जय ध्वनि करैं।
जुवतिनि बिसरे पति गति गेह। प्रेम-मगन सब सहित सनेह॥
यह सुख हमकौं हो कहाँ।
सुंदरता सब सुख की खानि। रसना एक न परत बखानि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

नील कंचुकी माँडनि लाल। भुजनि नवै आभूषन माल॥
पीत पिछौरी स्याम तनु।
अँगुरिनि मुँदरी पहुँची पानि। कछि कटि कछनी किंकिनि-बानि॥
उर नितंब बेनी रुरै।
तारा बंदन सूथन जंघन। पाइनि नूपुर बाजत संघन॥
नखनि महावर खुलि रह्यौ।
राधा मोहन मंडल माँझ। मनहुँ बिराजत चंदा साँझ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
पग पटकत लटकत लट बाहु। मटकत भौंहनि हस्त उछाह॥
अंचल चचल झूमका।
दुरि-दुरि देखत नैननि सैन। मुख की हँसी कहत मृदु बैन॥
मंडित गंड प्रस्वेद कन।
चोरी डोरी बिगलित केस। झूमत लटकत मुकुट सुदेस॥
फूल खसत सिर तैं घने।
कृष्न बधू पावन जस गाइ। रीझत मोहन कंठ लगाइ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
बाजत भूषन ताल मृदंग। अंग दिखावत सरस सुधंग॥
रंग रह्यौ न कह्यौ परै।
नूपूर किंकिनि कंकन चुरी। उपजत मिलित ध्वनि माधुरी।
सुनत सिराने स्रवन मन।
मुरली मुरज रबाब उपंग। उघटत सब्द बिहारी संग॥
नागरि सब गुन आगरी।
गोपी मंडल मंडित स्याम। कनक नील मनि जनु अभिराम॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
तिरप लेति सुंदर भामिनी। मनहुँ बिराजत घन दामिनी॥
या छबि की उपमा नहीं।
राधा की गति परत न लखी। रस सागर की सींवा नखी॥
बलिहारी वा रूप की।
लेति सुघर औघर गति तान। दे चुंबन आकर्षति प्रान॥
भैंटति मेटति दुख सबै।
राखति पियहि कुचनि बिच आनि। दै अधरामृत सिर पर पानि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

हरषित बेनु बजायौ छैल। चंद्रहिं बिसरी नभ की गैल॥
तारा गन मन मैं लज्यौ।
मुरली-धुनि बैकुंठहिं गई। नारायन सुनि प्रीति जु भई॥
कहत बचन कमला सुनौ।
कुंजबिहारी बिहरत देखि। जीवन जन्म सफल करि लेखि॥
यह सुख तिहुँ पुर है कहाँ।
श्री बृंदाबन हम तैं दूरि। कैसे धौं उड़ि लागै धूरि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
कोलाहल ध्वनि दहुँ दिसि जाति। कल्प समान भई सुख राति॥
जीव जंतु मैं मत सबै।
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीर। बालक बच्छ न पीवैं छीर॥
राधारवन ठगे सबै।
गिरिवर तरुवर पुलकित गात। गोधन-थन तैं दूध चुचात॥
सुनि खग मृग मुनि ब्रत धर्‍यौ।
महि फूली भूल्यौं रति पौन। सोवत ग्वाल तजत नहिं भौन॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
राग रागिनी मूरतिवंत। दूलह दुलहिनि सरस बसंत॥
कोक कला संगीत गुर।
रास मुरलि की जाति अनेक। नीकैं मिलवति राधा एक॥
मन मोह्यौ पिय को सुघर।
छंद प्रबंधनि के भेद अपार। नाचति कुँवरि मिले झपतार॥
कह्यौ सबै संगीत मैं।
पिकनि रिझावति सुंदर सुपद। सरस स्वल्प ध्वनि उघटत सुखद॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
चलति सु मोहति गति गज हंस। हँसत परस्पर गावत गंस॥
तान मान मृग मन थके।
गोरी चंदन चर्चित बाहु। लेन सुबास पुलक तनु नाहु॥
दै चुंबन हरि सुख लियौ।
स्यामल गौर कपोल सुचारु। रीझि परस्पर लेत उगारु॥
एक प्रान द्वै देह हैं।
नाचत गावत गुन की खानि। स्रमित भए टेकत पिय पानि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

पिक गावत अलि नादहिं देत। मोर चकोर फिरत सँग हेत॥
सघन जुन्हाई है मनौ।
कच कुच-बिच देखे हँसि स्याम। चलत भौंह नैननि अभिराम॥
अंगनि कोटि अनंग छबि।
हस्तक भेद ललित गति लई। अंचल उड़त अधिक छबि भई॥
कुच बिगलित माला गिरी।
हरि करुना करि लई उठाइ। पोंछत स्रम-जल कंठ लगाइ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
तिनहिं लिवाइ जमुन जल गए। पुलिन पुनीत निकुंजनि ठए॥
अंग स्रमित सब के भए।
जैसैं मद गज कुल बिदारि। तैसैं सँग लै खेली नारि॥
संक न काहू की करी।
मेटी लोक-बेद-कुल-मेंड़ि। निकसि कुँवरि खेल्यौ करि पेंड़ि॥
फबी सबै जो मन धरी।
जल-थल क्रीड़त ब्रीड़त नहीं। तिनकी लीला परत न कही॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
कह्यौ भागवत सुक अनुराग। कैसैं समुझैं बिनु बड़ भाग॥
श्री गुरु सकल कृपा करी।
सूर आस करि बरन्यौ रास। चाहत हौं बृंदाबन बास॥
राधा (बर) इतनी करि कृपा।
निसि दिन स्याम सेउँ मैं तोहिं। यहै कृपा करि दीजे मोहिं॥
नव निकुंज सुख पुंज मैं।
हरि बंसी हरि-दासी जहाँ। हरि करुना करि राखहु तहाँ॥
नित बिहार आभार दै।
कहत सुनत बाढ़त रस रीति। बक्ता स्रोता हरि पद प्रीति॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

॥११८०॥१७९८॥

राग बिहागरौ

(तो पर वारी हौं नँदलाल।) टेक

सरद-चाँदनी रजनी सोहै, बृंदाबन श्री कुंज।
प्रफुलित सुमन बिबिध-रँग, जहँ-तहँ कूजत कोकिल-पुंज॥

जमुना-पुलिन स्याम-घन सुंदर, अद्‌भुत रास उपायौ।
सप्त सुरनि बंधान-सहित हरि, मुरली टेरि सुनायौ॥
थक्यौ पवन, सुर थकित भए नभ-मंडल, ससि-रथ थाक्यौ।
अचल चले, चल थकित भए, सुनि धरनि उमँगि धर काँप्यौ॥
खग मृग मीन जीव-जल-थल के, सब तन-सुरति बिसारी।
सूखैं द्रुम पल्लव फल लागे, नव-नव साखा डारी॥
सुनि ब्रज-बधू तज्यौ आरज-पथ, सुत-पति-नेह न कीन्हौ।
प्रगट्यौ अंग अनंग विकल भईं तन मन हरि सब लीन्हौ॥
इक जेंवनार करत ही छाँड़ी, इक जेंवत पति त्याग्यौ।
इक बालक पय पियत सुवावति, प्रेम बिवस तनु जाग्यौ॥
जो जैसैं, तैसैं उठि धाईं, तन-मन सुरति बिसारी।
मुरलि-नाद करि टेरि लईं हरि, ब्रज-नव-जुवति-कुमारी॥
आँजत नैन अधर दुहुँ कैं बिच, सारँग-सुत तहँ लाग्यौ।
मानहु अलि बैठ्यौ बंधुक पर, पियत सुमन-रस पाग्यौ॥
कटि कंचुकी, उरज लहँगा कसि, चरननि हार सँवारयौ।
उलटे भूषन अंगनि साजे, फेर न काहु निहारयौ॥
चलीं सबै तिय आधी रतियाँ, जहँ नव-कुंज-बिहारी।
आनि हजूर भईं कानन मैं, जहाँ स्याम सुखकारी॥
देखि सबै ब्रज-नारि स्याम-घन, चितये बुद्धि सँवारी।
क्यौं आईं बृंदाबन-भीतर, तुम सब पिय की प्यारी॥
तुम कुल-बधू भवनहीं नीकी, रैनि कहाँ सब आईं।
अपनैं अपनैं घर पति-जन सौं, कैसैं निकसन पाईं॥
बेनु-सब्द स्रवननि मग ह्वै उर, पैठि हमहिं लै आयौ।
आस तुम्हारी जानि चपल चित, चंचल तुरत चलायौ॥
अपनौ पुरुष छाँड़ि जो कामिनि अन्य पुरुष मन लावै।
अपजस होइ जगत जीवन भरि बहुरि अधम गति पावै॥
अजहुँ जाहु सब घोष-तरुनि फिरि, तुम तौ भली न कीन्ही।
रैनि बिपिन नहिं बास कीजियै, अबलनि कौं नहिं लीन्ही॥
घर कैसैं फिरि जाहिं स्याम जू, तन इहईं सब त्यागैं।
तुम तैं कहौ कौन ह्याँ प्रीतम, जा सँग मिलि अनुरागैं॥
हम अनाथ, ब्रजनाथ-नाथ तुम, चरन-सरन तकि आईं।
निठुर बचन जनि कहौ पीय तुम जानत पीर पराई॥

दीन बचन सुनि स्रवन कृपानिधि, लोचन जल बरषाए।
धन्य धन्य कहि कहि नँद-नंदन हरषित कंठ लगाए॥
हम कीन्हौ अपमान तुम्हारौ, तुम नहिं जिय कछु आन्यौ।
सरिता जैसैं सिंधु भजै ढरि, तैसैं तुम मोहिं जान्यौ॥
द्वादस कोस रास परामत भई, ताकौ कहा बखानौ।
बोलि लईं ब्रज-बधू बिहँसि सब, तब मंडल बिधि बानौ॥
पानि-पानि सौं जोरि जुवति, द्वै द्वै बिच स्याम बिराजै।
कंचम-खंभ खचित मरकत मनि, यह उपमा कछु छाजै॥
अँग-प्रति कोटि-काम-छबि लज्जित, मधि नायक गिरिधारी।
नृत्य करत रस-बस भए दोऊ, मोहन राधा प्यारी॥
ब्रज बनिता मंडली बनी यौं, सोभा अधिक बिराजै।
नूपुर कटि किंकिनी चलत गति, अरस-परस पर बाजै॥
मोर-चंद्रिका सिर पर सोहै, जब हरि रुनझुन नाचै।
अंग-अंग-प्रति और-और-गति कोटि-मदन-छबि राचे॥
जमुना जल उलटी बही धारा, चंदा रथ न चलावै।
बानक अतिहिं बन्यौ मनमोहन, मन्मथ पकरि नचावै॥
नृत्य करत रीझत मन-मोहन, राधा कंठ लगाई।
रास बिलास करत सुख उपज्यौ, सब बस किये कन्हाई॥
अंतर ध्यान करत सुख बाढ़ै, राधा बर सुखकारी।
सूरदास प्रभु भक्त-बछलता प्रगट करी गिरिधारी॥
॥११८१॥१७६६॥

राग बिहागरौ

सरद निसा आई जोन्ह सुहाई।
बृंदावन घन मैं जदुपति राई॥
सप्त सुरनि बिधि सौं मुरलि बजाई।
सुनि धुनि नारि चली ब्रज तजि आईं॥

छंद

(धुनि) सुनत ब्याकुल भई जुवती, मदन तन आतुर करी।
बिबस भई तन-मन भुलानी, भवन कारज परिहरी॥
उलटि भूषन सब बनाए, अंग की सुधि बीसरी।
नंद-सुत चित बित चुरायौ, आइ भई सब हाजिरी॥

हाजिर आइ भईँ जहँ बनवारी।
निसि कहँ धाइ चलीँ घोष-कुमारी॥
बचन सुनाए मोहन नागरि कौं।
पति गृह त्यागे, गुरुजन-बागरि क्यौं॥

छंद

गेह सुत पति त्यागि आईँ, नाहिनैं जु भली करी।
पाप पुन्य न सोच कीन्हौ, कहा तुम जिय यह धरी॥
अजहुँ घर फिरि जाहु कामिनी, काहु सो जो हम कहैं।
लोक-बेदनि बिदित गावत, पर पुरुष नहिं धनि लहैं।
निठुर बचन सुनि ग्वालिनि निठुर भई।
मुरझाइ रहीँ सुधि बुधि सबै गईँ॥
बिनय बचन कहि कै ग्वारि सुनाए।
तुव चरननि मन दै सब बिसराए॥

छंद

तुव दरस की आस पिय ब्रत नेम दृढ़ यह है धर्‌यौ।
कौन सुत को मातु को पति कौन तिय को किनि कर्‌यौ॥
कहाँ पठवत जाहिं काकैं, कहौ कहँ मन मानिहैं।
यहाँ वरु हम प्रान त्यागैं आईँ जहँ सोइ जानिहैं॥
हरि तब हँसि बोले धनि ब्रजनारी।
मैं तुम बहुत कसी दृढ़-ब्रतधारी॥
मुख बहुत कही अंतर तुमहीँ रहीँ।
जब जहँ देह धरौं तहँ तुम सँगहीँ॥

छंद

कहा कसि कोउ तुमहिं देखै, कनक बारह बानि हौ।
मेरे तौ तुम प्रान जानहु, और मन नहिं जानि हौ॥
तबहिं हिलि मिलि रास कीन्हौ, जुवति बहु मंडलि-जुरी।
कनक मरकत खंभ रचि, विच कान्ह बिच-बिच नागरी॥
अद्‌भुत रास रच्यौ गिरिधर लाड़िले।
श्री वृषभानु-सुता सौं हरि चाड़िले॥
अति आनँद बढ़्यौ गोपी हरष भईँ।
निर्तत रीझे, भुज भरि स्याम लईँ॥

जल थल पवन थक्यौ। खग मृग तरु बिथक्यौ॥
देखत मदन जक्यौ। चरननि सरन तक्यौ॥

छंद

जीव सब तिहुँ भुवन मोहे, अमर नभ बिथकित छए।
चंद्रमा-रथ मध्य थाक्यौ, रास-बस मोहन भए॥
और तरु फल और लागे, और भए पल्लव कली।
स्याम स्यामा रास-नायक, गोपिका गन मंडली॥

दोहा

रास रंग रस अति बढ्यौ, मन गर्बित सुकुमारि।
लेहु कंध प्रभु सौं कह्यौ, अंतर भए दैतारि॥
तब अंतर भए दैत्यारी। श्री राधा सँग तैं डारी॥
प्रभु संतनि के सुखकारी। दुष्टनि मन गर्ब प्रहारी॥
येई भक्त बछल वपुधारी। धरनी उद्धारनकारी॥

दोहा

चहुँ दिसि चितवत चकित ह्वै, स्याम संग कहुँ नाहिं।
आपु अकेले देखि कै, मुरछि परी धर माहिं॥
धर मुरछि परत नहिं जानी। दुख-सागर-माँझ समानी॥
हा कृष्न-कृष्न-रट लागी। हरि-अधर-पान अनुरागी॥
ललिता गहि बाहँ जगाई। तब चौंकि उठी अकुलाई॥
यह कहति उठी हरि आए। जियो मनौ रंक निधि पाए॥

दोहा

सावधान तिहिं छिनु भई, नैना दिये उघारि।
ललिता कौ मुख देखि कै, भई बिरह तनु-भारि॥
अति बिकल भई बेहाला। कहुँ देखे श्री गोपाला॥
मोहिं त्यागि गए नँदलाला। तन करत मदन जंजाला॥
मुख-सुंदर-बचन-रसाला। बर-लोचन-कमल-बिसाला॥
मिलि करहु न मोहि निहाला। ढूँढ़ति बन बीथिनि बाला॥

दोहा

जहाँ तहाँ खोजति फिरै, चरन-चिन्ह कहुँ पाइ।
बार बार अवलोकि कै, नैन चले ढहराइ॥
बन बेली बूझति जाई। कहुँ नाहिन मिले कन्हाई॥
चंपक अरु बकुल बट बूझे। तनु बिरह ब्यथा हिय गूझे॥

खोजे बन बारंबारा। कहि कहि मुख नंदकुमारा॥
मोहिं नंदनँदन क्यौं त्यागी। मैं अतिहीं परम अभागी॥

दोहा

नंदनँदन बस प्रेम के, प्रगट भए तिहिं काल।
प्यारी कौं मिलि सुख दियौ, मेटि बिरह दुख जाल॥

मिलि मनमोहन ब्रजबाला। फिरि आपुहिं भए कृपाला॥
पुनि रास-मँडल-बिधि ठाट्यौ। सब काम-द्वंद-दुख काट्यौ॥
सुर असुर नारि नर मोहे। इहिं रस बिलास सब पोहे॥
दिवि दुंदुभि देव बजाई। सुरनारि सुमन बरषाई॥
जै जै धुनि लोकनि गाए। जस तिहूँ भुवन भरि छाए॥
रस रास रसिक गुन भारी। श्री राधा मोहन प्यारी॥
सहसानन कहत न आवै। जिहिं निगम नेति नित गावै॥
सुख-आनँद-पुंज बढ़ायौ। क्यौं जात सूर पै गायौ॥
॥११८२॥१८००॥

राग जैतश्री

सुनियै सुनियै हो धरि ध्यान, सुधारस मुरली बाजै।
स्याम-अधर पर बैठि बिराजति, सप्त सुरनि मिलि साजै॥
बिसरी सुधि बुधि गति सबहिनि, सुनि बेनु मधुर कल गान।
मन-गति-पंगु भईं ब्रज-जुवती, गध्रब मोहे तान॥
खग-मृग थके, फलनि तृन तजिकै, बछरा पियत न छीर।
सिद्धि समाधि थके चतुरानन, लोचन मोचत नीर॥
महादेव की नारी छूटी, अति ह्वै रहे अचेत।
ध्यान टर्‌यौ धुनि सो मन लाग्यौ, सुर-मुनि भए सचेत॥
जमुना उलटि बही अति ब्याकुल, मीन भए बलहीन।
पसु पच्छी सब थकित भए हैं, रहे इकटक लौलीन॥
इंद्रादिक, सनकादिक, नारद, सारद, सुनि आवेस।
घोष-तरुनि आतुर उठि धाईं, तजि पति-पुत्र-अदेस॥
श्री बृंदाबन कुंज-कुंज प्रति, अति बिलास आनंद॥
अनुरागी पिय प्यारी कैं सँग, रस राँचे सानंद॥
तिहूँ भुवन भरि नाद प्रकास्यौ, गगन धरनि पाताल।
थकित भए तारागन सुनि कै, चंद भयौ बेहाल॥

नटवर वेष धरे नँद-नंदन, निरखि बिबस भयौ काम।
उर बनमाल चरन पंकज लौं, नील जलद तनु स्याम ॥
जटित जराव मकर कुंडल छबि, पीत बसन सोभाइ।
बृंदावन रस रास माधुरी, निरखि सूर बलि जाइ॥
॥११८३॥१८०१॥

सुदर्शन विद्याधर-शाप-मोचन तथा शंखचूड़ बध

विद्याधर-शाप-मोचन *राग बिलावल*

नंद सब गोपी ग्वाल समेत।
गए सरस्वति-तट इक दिन, सिव अँबिका पूजा हेत॥
पूजा करत सकल दिन बीत्यौ, ह्वै आई तहँ साँझ।
ब्रजवासी सब स्नमित होइ कै, सोइ रहे बन माँझ॥
अर्ध निसा इक उरग आइ कै, लपटि गयौ नँद-पाइ।
चौंकि पर्‌यौ, दुख पाइ पुकार्‌यौ, हा-हा कृष्न छुड़ाइ॥
ग्वालनि मिलि श्रीकृष्न जगाए, छुवत पाइ दियौ छोड़।
विद्याधर कौ रूप धारि कह्यौ, करै को तुम्हरी होड़॥
सब देवनि के देव तुमहिं हौ, मैं अब देख्यौ जोइ।
रिषि अंगिरा साप मोहिं दीन्हौ, भयौ अनुग्रह सोइ॥
हरि-आज्ञा कौं पाइ, नाइ सिर, गयौ आपनैं ओक।
सूरदास हरि के गुन गावत, ब्रज आए ब्रज-लोक॥
॥११८४॥१८०२॥

बृंदावन-बिहार *राग बिलावल*

जागौ मोहन भोर भयौ।
वदन उघारि स्याम तुम देखौ, रबि की किरनि प्रकास कयौ॥
संगी सखा ग्वाल सब ठाढ़े, खेलत हैं कछु खेल नयौ॥
आँगन ठाढ़ी कुवँरि राधिका, उनकौं कहा दुराइ लयौ॥
हँसि मोहन मुसुकाइ कहौ, कब हौं बृषभानु कैं गेह गयौ ?॥
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, सर्बस लै हरि आपु दयौ॥
॥११८५॥१८०३॥

राग बिलावल

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुनि जसुमति सँग छाँड़ि आपनो, कुँवर जगाइ दैन हौं आई॥

सुनतहिँ बचन बिहँसि उठि बैठे, अंतरजामी कुँवर कन्हाइ।
याकैं संग हुती मेरी पहुँची, दै राधे बृषभानु-दुलाई॥
मैं नाहिंन चित लाइ निहाऱ्यौ, चलौ ठौर सब देउँ बताई।
सूरदास प्रभु मिली अंतर गति, दुहुँनि पढ़ी एकै चतुराई॥
॥११८६॥१८०४॥

राग कान्हरौ

विहरत कुंजनि कुंज-विहारी।
पिक, सुक, बिहँग, पवन, थकि थिर रहे, तान अलापत जब गिरिधारी॥
सरिता थकित, थकित द्रुम-बेली, अधर धरत मुरली जब प्यारी।
रवि अरु ससि देखैं दोउ चोरिनि, संका गहि तब बदन-उज्यारी॥
आभूषन सब साजि आपने, थकित भईं ब्रज की कुल-नारी।
सूरदास-स्वामी की लीला, अब जोवै बृषभानु-दुलारी॥
॥११८७॥१८०५॥

राग गौड मलार

गगन उठी घटा कारी, तामैं बग-पंगति अति न्यारी।
सुरधनु की छबि रुचिर देखियत, बरन बरन रँगधारी॥
बीच-बीच दामिनि कौंधति है, मानौ चंचल नारी।
दुरि-दुरि जाति बहुरि फिर आवति, बिकल मदन की जारी॥
बन बरही चातक रटै द्रुम-द्रुम, प्रति-प्रति सघन सँचारी।
सूर, स्याम-हित काम सुकोविद, निज कर कुटी सँवारी॥
॥११८८॥१८०६॥

राग सारंग

अद्‌भुत कौतुक देखि सखी री बृंदाबन नभ होड़ परी।
उत घन उदित सहित सौदामिनि, इतहिं मुदित राधिका-हरी॥
उत बग-पाँति, सु इतहिं स्वाति-सुत-दाम, बिसाल सुदेस खरी।
हाँ घन-गरज, इहाँ मुरली-धुनि, जलधर उत, इत अमृत भरी।
उतहिं इंद्र-धनु, इत बनमाला, अति बिचित्र हरि कंठ धरी।
सूरदास प्रभु-कुँवरि राधिका, गगन की सोभा दूरि करी॥
॥११८९॥१८०७॥

राग सारंग

खैंचि भुज-बंध बल बिहँसि भीतर चली, मुरि अधर दुहुँनि के नैंकु डोलैं।
झूमत झूमत सेज निकट नवतन चढ़े, मन मनहिं मुसिकाइ कोउ न बोलैं॥
सूर-सकल सहचरि देखि, तजी बिकलता, परम फल प्रानपति सुरति आयौ।
आपु आदर कियौ, सुमुषि बहु सुख दियौ, एक तैं एक अति मोद पायौ॥११९०॥१८०८॥

राग सोरठ

नवल नागरि, नवल नागर किसोर मिलि, कुंज कोमल-कमल-दलनि सज्या रची।
गौर साँवल अंग रुचिर तापर मिले, सरस मनि मृदुल कंचन सु आभा खची॥
सुँदर नीवी बंध रहति पिय पानि गहि पीय के भुजनि मैं कलह मोहन मची।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत, हुँकारि, रोषि, करि गर्ब, दृग भंगि, भामिनि लची॥
कोक-कोटिक रभस, रसिक हरि सूरज, बिबिध कल माधुरी किमपि नाहिंन बची।
प्रान-मन-रसिक, ललितादि, लोचन-चषक, पिवति मकरंद, सुख-रासि-अंतर-सची॥११९१॥१८०९॥

राग नट

राधे जल-सुत कर जु धरे।
अतिहीं अरुन, अधिक छबि उपजत, तजत हंस सगरे॥
चुगन चकोर चले ह्वै सनमुख, झझके रहे खरे।
तब बिहँसी बृषभानु-नंदिनी, दोऊ मिलि झगरे॥
रबि अरु ससि दोऊ एकै रथ, सन्मुख आनि अरे।
सूरदास-प्रभु कुंजबिहारी, आनँद उमँगि भरे॥
॥११९२॥१८१०॥

राग कान्हरौ

स्यामा-बदन देखि हरि लाज्यौ।
यहै अपूर्व जानि जिय लघुता, खीन इंदु, याही दुख भाज्यौ।
क्रीड़त कुंज-अटा रजनी-मुख, प्रेम-मुदित नवसत अँग साज्यौ॥
बिधु लच्छन जानत सुर नर सब, मृगमद-तिलक देखि सो लाज्यौ॥
बिथकित रथ चकित अवलोकत, सुंदरि-सँग हरि-राज बिराज्यौ।
बिस्मय मिटी ससि पेखि समीपहिं, कहि अब सूर उभय हरि गाज्यौ॥
॥११६३॥१८११॥

राग बिलावल

कंदुक केलि करति सुकुमारी।
अति सूछम कटि तट आड़े जिमि, बिसद नितंब पयोधर भारी॥
अंचल चंचल, फटी कंचुकी, बिलुलित बर कुच-सटी उघारी।
मनु नव जलद बंध कीनौ बिधु, निकसी नभ कसली अनियारी॥
तिलक तरल, ताटंक निकट तट, उभय परस्पर सोभ सिंगारी।
जलरुह हंस मिले मनु नाचत, ब्रज-कौतुक बृषभानु-दुलारी॥
मुक्तावलि कौ हार लोल गति, ता पर लटपटाति लट कारी।
तामैं सो लर मनौ तरंगिनि, निसिनायक तम मोचन हारी॥
अरु कंकन-किंकिनि-नूपुर-छबि, निसा-पान सम दुति रत नारी।
श्रीगोपाल लाल उर लाई, बलि-बलि सूर मिथुन-कृत भारी।
॥११६४॥१८१२॥

राग नट

देखे चारि कमल इक साथ।
कमलहिं कमल गहे लावत है, कमल कमल ही मध्य समात॥
सारँग पर सारँग खेलत है, सारँग ही सौं हँसि-हँसि जात।
सारँग 'स्याम' औरहू सारँग, सारँग सारँग सौं करैं बात॥
अरि सारंग राखि सारँग कौं, सारँग गहि सारँग कौं जात।
तौ लै राखि सारँग सारँग कौं, सारँग लै आऊँ वा हात॥
सोइ सारँग चतुरानन दुर्लभ, सोइ सारग संभु मुनि ध्यान।
सेवत सूरदास सारँग कौं, सारँग ऊपर बलि बलि जात॥
॥११६५॥१८१३॥

राग नट

हरि-उर मोहिनि-बेलि लसी ।
तापर उरग असित तव, सोभित पूरन-अंस ससी ॥
चापति कर भुज दंड रेख-गुन, अंतर बीच कसी ।
कनक-कलस मधु-पान मनौ करि भुजगिनि उलटि धँसी ॥
तापर सुंदर अंचल झाँप्यौ, अंकित दंसत सी ।
सूरदास-प्रभु तुमहिं मिलत, जनु दाड़िम बिगसि हँसी ॥
॥११९६॥१८१४॥

राग कान्हरौ

मोहिनी मोहन की प्यारी ।
रूप-उदधि मथि कै विधि, हठि पचि रची जुवति यह न्यारी ॥
चंपक कनक कलेवर की दुति, ससि न बदन समता री ।
खंजरीट मृग मीन की गुरुता, नैननि सबै निवारी ॥
भ्रकुटी कुटिल सुदेस सोभित अति, मनहुँ मदन-धनु धारी ।
भाल विसाल, कपोल अधिक छवि, नासा द्विज मदगारी ॥
अधर बिंब-बंधूक-निरादर, दसन कुंद-अनुहारी ।
परम रसाल, स्याम, सुखदायक बचननि सुनि, पिक हारी ॥
कवरी अहि जनु हेम-खंभ लगी, ग्रीव कपोत बिसारी ।
बाहु मृनाल जु उरज कुंभ-गज निम्न नाभि सुभ गारी ॥
मृग-नृप खीन सुभग कटि राजति जंघ जुगल रंभा री ।
अरुन रुचिर जु बिड़ाल-रसन सम चरन-तली ललिता री ॥
जहँ तहँ दृष्टि परति तहँ अरुझति, भरि नहि जाति निहारी ॥
सूरदास-प्रभु रस-वस कीन्हे, अंग-अंग सुखकारी ॥
॥११९७॥१८१५॥

राग नट

उर पर देखियत हैं ससि सात ।
सोवत ह्वै तैं कुँवरि राधिका, चौंकि परी अधिरात ॥
खंड खंड ह्वै गिरे गगन तैं, बासपतिनि के भ्रात ।
कै बहु रूप किये मारग तैं, दधि-सुत आवत जात ॥

बिधु बिहुरे, बिधु किये सिखंडी सिव मैं सिव-सुत जात।
सूरदास धारै को धरनी, स्याम सुनै यह बात॥
॥११६८॥१८१६॥

राग बिलावल

आजु बन राजत जुगल किसोर।
दसन-बसन खंडित मुख मंडित, गंड तिलक कछु थोर॥
डगमगात पग धरत सिथिल गति, उठे काम-रस-भोर।
रति-पति सारँग अरुन महा छवि, उमँगि पलक लगे भोर॥
स्नुति अवतंस बिराजत हरि-सुत, सिद्ध-दरस-सुत ओर।
सूरदास-प्रभु रस-बस कीन्ही, परी महा रन जोर॥
॥११६६॥१८१७॥

राग सारंग

देखौ माई माधौ राधा क्रीरत।
सुरत समय संतोष न मानत, फिरि-फिरि अंक भरत॥
मुख कैं अनिल सुखावत स्रम-जल, यह छवि मनहिं हरत।
मानहुँ काम-अगिनि निरज्वल भई, ज्वाला फेरि करत॥
छितिय प्रेम की रासि लाड़िली, पलकनि बीच धरत।
सूर स्याम स्यामा सुख क्रीड़त, मनसिज पाइ परत॥
॥१२००॥१८१८॥

राग केदारौ

नागरता की रासि किसोरी।
नव-नागर-कुल-मूल साँवरौ, बरबस कियौ चितै मुख मोरी॥
रूप रुचिर अंग-अंग माधुरी, बिनु भूषन भूषित ब्रज-गोरी।
छिन-छिन कुसल सुगंध अंग मैं, कोक-रभस रस-सिंधु झकोरी॥
चंचल रसिक मधुप मोहन मन, राखे कनक कमल कुच कोरी।
प्रीतम नैन जुगल खंजन खग, बाँधे बिबिध निबंधनि डोरी॥
अवनी उदर, नाभि सरसी मैं, मनहुँ कछुक मादक मधुरी री।
सूरदास पीवत सुंदर बर, सीव सुहद निगमनि की तोरी॥
॥१२०१॥१८१६॥

राग केदारौ

आजु तन राधा सज्यौ सिंगार।
नीरज-सुत-सुत-वाहन कौ भख, स्याम अरुन रँग कौन विचार॥
मुद्रा-पति-अँचवन-तनया-सुत, ताके उरहिं बनावहि हार।
गिरि-सुत तिन पति विवस करन कौं, अच्छुत लै पूजत रिपु मार॥
पंथ-पिता आसन-सुत सोभित, स्याम घटा वन-पंक्ति अपार।
सूरदास-प्रभु अंसु-सुता-तट, क्रीड़त राधा नदकुमार॥
॥१२०२॥१८२०॥

राग ललित

देखि सखि साठि कमल इक जोर।
वीस कमल परगट देखियत हैं, राधा नंद किसोर॥
सोरह कला सँपूरन मोह्यौ, व्रज अरुनोदय भोर।
तामैं सखि द्वैक मधु लागि रहे, चितवत चारि चकोर॥
मैंमत द्वै गजराज अरे हैं, कोटि-मदन-भय-भोर।
सूरदास वलि वलि या छवि की, अलकनि की झकझोर॥
॥१२०३॥१८२१॥

राग सारंग

मोरन के चँदवा माथैं वने, राजत रुचिर सुदेस।
वदन कमल पर अलिगन मानौ, घूँघरवारे केस॥
भौंहैं धनुष दृग पनच सखी री, भाल तिलक जनु बान।
भोर होत रवि अंधकार कौं, कियौ मनौ संधान॥
मनि गन जटित मनोहर कुंडल, राजत लोल कपोल।
कालिंदी मैं रवि प्रतिविंवित, चंचल पवन हिंडोल॥
सुभग नासिका मुक्ता सोभित, झलमलाति छवि होत।
भृग-सुत मानौ अमल विमल सखि, घन मैं कियौ उदोत।
अरुन अधर सखि मुख मृदु वोलत, ईषद कछु मुसुकात।
मनहु सुपक विंव तैं सजनी, रस अनुराग चुचात॥
दसन दमक दामिनि सी चमकति, सोभा कहत न आवै।
याही तैं दाड़िम उर फाटत, तिनकी सरि नहिं पावै॥
चिवुक चारु मरकत मनि-दुति, सखि राजति त्रिवली ग्रीव।
मानहुँ सैंती तीनि रेख करि, काम रूप की सींव॥

उन्नत बिसद हृदय राजत है, तापर मुक्ता-हार।
मनहुँ नील गिरिवर तैं सुरसरि, अध आवति द्वै-धार॥
भुज बिसाल चंदन सौं चरचित, कर गहे मुख मृदु बंस।
मानहुँ सुधा-सरोवर कैं ढिग, क्रीड़त जुग कलहंस॥
कंचन बरन पीत उपरैना, सोभित साँवल अंग।
मानहुँ आवत आगैं पाछैं, निसि बासर इक संग॥
नाभि गँभीर सुधा-सरसी जनु, त्रिबली सीढी बनाई।
ब्रज-बधु-नैन मृगी आतुर ह्वै, अति प्यासी ढिग आई॥
कटि प्रदेस सुंदर सुदेस सखि, ता पर किंकिनि राजै।
अति नितंब, जंघनि प्रति सोभा, देखत गजपति लाजै॥
पीन पिंडुरिया स्याम लसी री, चरनांबुज नख लाल।
मद-मंद गति वै आवत हैं मत्त दुरद की चाल॥
बृंदावन मैं बिहरत दोऊ मम प्रभु स्यामा स्याम।
सूरदास-उर बसहु निरंतर, मनमोहन अभिराम॥
॥१२०४॥१८२२॥

राग सारंग

देखि हरि जू के नैननि की छबि।
इहै जानि दुख मानि जु अनुदिन, मानहुँ अंबुज सेवत है रबि॥
खंजरीट अति बृथा चपल भए, गए बन मृग जलमीन रहे दबि।
तहँउ जानि तनु तजत, जबहिं कछु, पटतर देवैं कहत कबहुँ कबि।
इनसे येई, पचिहारि रही हौं, आवै नहीं कहत कछु वै फबि।
सूर सकल उपमा जु रहीं यौं, ज्यौं आवै कहि होमत मैं हबि॥
॥१२०५॥१८२३॥

राग गूजरी

किसोरी देखत नैन सिरात।
बलि बलि सुखद मुखारबिंद की, चंद्र-बिंब दुरि जात॥
अघ-मोचन लोचन रतनारे, फूले ज्यौं जलजात।
राजत निकट निपट स्रवननि कैं, पिसुन कहत मन-बात॥
गौर ललाट-पाट पर सोभित, कुंचित कच अरुझात।
मानौ कनक-कमल-मकरंदहिं, पीवत अलि न अघात॥

नकबेसरि बंसी कै संभ्रम, नैन मीन अकुलात।
अरु ताटंक कमठ घूँघट उर, जाल बाभि अफनात॥
स्याम कंचुकी तामैं सोभित, कंचन कलस न मात।
मानहु मत्त गयँद कुंभनि पर, नील धुजा फहरात॥
नख सिख लौं रस रूप किसोरी, विलसत साँवल-गात।
यह सुख देखत सूर और सुख, उड़े पुराने पात॥
॥१२०६॥१८२४॥

राग गूजरी

बसौ मेरे नैननि मैं यह जोरी।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, सँग वृषभानु-किसोरी॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, पीतांबर झकझोरी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, का बरनौं मति थोरी॥
॥१२०७॥१८२५॥

शंखचूड-वध *राग बिलावल*

संखचूड़ तिहिं अवसर आयौ।
गोपी हुतीं प्रेम-रस-मातीं, तिन कछु सोध न पायौ॥
चल्यौ पराइ सकल गोपी लै, दूरि गएँ सुधि आई।
को यह लिये जात कहँ हमकौं, कृष्न कृष्न गुहराई॥
गोपी-टेर सुनत हरि पहुँचे, दानव देखि डरायौ।
मुष्टिक मारि गिराइ दियौ तिहिं, गोपिनि हरष बढ़ायौ॥
मनि अमोल ताकैं सिर पाई, दई हलधरहिं आई।
सूर चले बन तैं गृह कौं प्रभु, बिहँसत मिलि समुदाई॥
॥१२०८॥१८२६॥

राग सोरठ

सो सुख नंद भाग्य तैं पायौ।
जो सुख ब्रह्मादिक कौं नाहीं, सोई जसुमति गोद खिलायौ॥
सोइ सुख सुरभि बच्छ बृंदावन, सोइ सुख ग्वालनि टेरि बुलायौ।
सोइ सुख जमुना-कूल-कदँब चढ़ि, कोप कियौ काली गहि ल्यायौ॥
सुखही सुख डोलत कुंजनि मैं, सब-सुख-निधि बन तैं ब्रज आयौ।
सूरदास-प्रभु सुख-सागर अति, सोइ सुख सेस सहस मुख गायौ॥
॥१२०९॥१८२७॥

राग बिलावल

भोर भयौ जागौ नँद-नंद।
तात निसि बिगत भई, चकई आनंदमयी, तरनि की किरनी तैं
चंद भयौ मंद ॥
तमचूर खग-रोर, अलि करैं बहु सोर, बेगि मोचन करहु सुरभि
गल फंद।
उठहु भोजन करहु, खोरि उतारि धरहु, जननि प्रति देहु सिसु
रूप निज कंद ॥
तीय दधि मथन करैं, मधुर धुनि स्रवन परैं, कृष्न-जस-बिमल गुनि
करति आनंद।
सूर-प्रभु हरि नाम उधारत जग-जननि, गुननि कौं देखि कै छकित
भयौ छंद ॥१२१०॥१८२८॥

राग बिलावल

कौन परी मेरे लालहिं बानि।
प्रात समय जागन की बिरियाँ सोवत है पीतांबर तानि ॥
संग सखा ब्रज-बाल खरे सब, मधुबन धेनु-चरावन-जान।
मातु जसोदा कब की ठाढ़ी, दधि-ओदन भोजन लिये पान ॥
तुम मोहन जीवन-धन मेरे, मुरली नैंकु सुनावहु कान।
यह सुनि स्रवन उठे नँदनंदन, बंसी निज माँग्यौ मृदु बानि ॥
जननी कहति लेहु मनमोहन, दधि ओदन घृत आन्यौ सानि।
सूर सु बलि-बलि जाउँ बेनु की, जिहिं लगि लाल जगे हित मानि ॥
॥१२११॥१८२९॥

राग बिलावल

जागिये गुपाल लाल ग्वाल द्वार ठाढ़े।
रैनि-अंधकार गयौ, चंद्रमा मलीन भयौ, तारागन देखियत नहिं
तरनि-किरनि बाढ़े ॥
मुकुलित भए कमल-जाल, गुंज करत भृंग-माल; प्रफुलित बन पुहुप
डाल, कुमुदिनि कुँभिलानी।
गंध्रबगन गान करत, स्नान दान नेम धरत, हरत सकल पाप,
बदत बिप्र बेद-बानी ॥

बोलत नँद बार-बार देखैं मुख तुव कुमार, गाइनि भई बड़ी बार, वृंदावन जैवैं।
जननि कहति उठौ स्याम, जानत, जिय रजनि ताम, सूरदास-प्रभु कृपाल, तुमकौं कछु खैवैं ॥१२१२॥१८३०॥

राग बिलावल

भोजन भयौ भावते मोहन। तातोइ जैंइ जाहु गो-गोहन।
खीर, खाँड़, खीचरी सँवारी। मधुर महेरी गोपनि प्यारी ॥
राइ भोग लियौ भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई ॥
सद माखन तुलसी दै तायौ। घिरत सुवास कचोरा नायौ ॥
पापर बरी अँचार परम सुचि। अदरख अरु निबुअनि ह्वै है रुचि ॥
सूरन करि तरि सरस तोरई। सेम सींगरी छौंकि झोरई ॥
भरता भंटा खटाई दीनी। भाजी भली भाँति दस कीन्ही।
साग चना मरुसा चौराई। सोवा अरु सरसौं सरसाई ॥
बथुआ भली भाँति रचि राँध्यौ। हींग लगाइ राइ दधि साँध्यौ ॥
पोई परवर फाँग फरी चुनि। टेटी ढेंढ़स छोलि कियौ पुनि ॥
कुनरू और ककोरा कौरे। कचरी चारु चिचींड़ा जोरे।
भले बनाइ करेला कीने। लौन लगाइ तुरत तरि लीने ॥
फूले फूल सहिजना छौंके। मन रुचि होइ नाज के औंके ॥
फूल करील कली पाकर नम। फरी अगस्त करी अंमृत सम ॥
अरुइहिं इमली दई खटाई। जेंवत षटरस जात लजाई ॥
पैंठा बहुत प्रकारनि कीन्हे। तिन सौं सबै स्वाद हरि लीन्हे ॥
खीरा राम तरोई तामैं। अरुचिनि रुचि अंकुर जिय जामैं ॥
सुंदर रूप रतालू रातौ। तरि करि लीन्हौ अबहीं तातौ ॥
ककरी कचरी अरु कचनार्‌यौ। सरस निमोननि स्वाद सँवार्‌यौ ॥
कितिक भाँति केला करि लीने। दै करवँदा हरदि-रँग भीने ॥
बरी बरिल अरु बरा बहुत बिधि। खारे खट्टे मीठे हैं निधि ॥
पानौरा राइता पकौरी। उभकौरी मुँगछी सुठि सौरी ॥
अंमृत इँडहर है रस सागर। बेसन सालन अधिकौ नागर ॥
खाटी कढ़ी बिचित्र बनाई। बहुत बार जेवत रुचि आई ॥
रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधो मिलाइ धरि ॥
अबहीं अँगाकरि तुरत बनाईं। जे भजि भजि ग्वालनि सँग खाईं ॥

माँड़े माँड़ि दुनेरे चुपरे । बहु घृत पाइ आपहीं उपरे ॥
पूरी पूरि कचौरी कौरी । सदल सउज्जल सुंदर सौरी ॥
लुचुई ललित लापसी सोहै । स्वाद सुबास सहज मन मोहै ॥
मालपुआ माखन मथि कीन्हे । ग्राह असित रवि सम रँग लीन्हे ॥
लावन लाडू लागत नीके । सेव सुहारी घेवर घी के ॥
गोभा गूँधे गाल मसूरी । मेवा मिलै कपूरनि पूरी ॥
ससि सम सुंदर सरस अँदरसे । ऊपर कनी अमी जनु बरसे ॥
बहुत जलेब जलेबी बोरी । नाहिन घटत सुधा तैं थोरी ॥
देखत हरष होत है समी । मनहुँ बुदबुदा उपजै अमी ॥
फेनी घुरि मिसि मिली दूध सँग । मिस्री मिस्रित भई एक रँग ॥
साज्यौ दही अधिक सुखदाई । ता ऊपर पुनि मधुर मलाई ॥
खोवा खाँड़ औटि है राख्यौ । साहै मधुर सीठे रस चाख्यौ ॥
बासौंधी सिखरन अति सौंधी । मिले मिरिच्च मेटत चकचौंधी ॥
छाँछ छबीली धरी धुँगारी । झर है उठति झार की न्यारी ॥
इतने व्यंजन जसोदा कीन्हे । तब मोहन बालक सँग लीन्हे ॥
बैठे आइ हँसत दोउ भैया । प्रेम-मुदित परसति है मैया ॥
थार कटोरा जरित रतन के । भरि सब सालन विविध जतन के ॥
पहिलैं पनवारौ परसायौ । तब आपुन कर कौर उठायौ ॥
जेँवत रुचि अधिकौ अधिकैया । भोजन हूँ बिसरति नहिं गैया ॥
सीतल जल कपूर रस रचयौ । सो मोहन अति रुचि करि अँचयौ ॥
महरि मुदित नित लाड़ लड़ावे । ते सुख कहाँ देवकी पावै ॥
धरि तष्टी झारी जल ल्याई । भरयौ चुरू खरिका लै आई ॥
पीरे पान पुराने बीरा । खात भई दुति दाँतनि हीरा ॥
मृगमद-कन कपूर कर लीने । बाँटि-बाँटि ग्वालनि कौं दीने ॥
चंदन और अरगजा आन्यौ । अपनैं कर बल कैं अँग बान्यौ ॥
ता पाछैं आपुन हूँ लायौ । उबरयौ बहुत सखनि पुनि पायौ ॥
सूरदास देख्यौ गिरिधारी । बोलि दई हँसि जूठनि थारी ॥
यह ज्यौनार सुनै जो गावै । सो निज-भक्ति अभै-पद पावै ॥
॥१२१३॥१८३१॥

राग बिलावल रामकली

भोजन करत मोहन राइ ।
पाक अमृत बिबिध षट बिधि, रचि किये हित माइ ॥

गोप ग्वाल सखाहु ते सब, लिये निकट बुलाइ ।
हरषि मुख तन देत मोहन, आपु लेत छुँड़ाइ ॥
देखहीँ सुख नंद कौतुक, अनँद उर न समाइ ॥
निरखि प्रभु की प्रगट लीला, जननि लेति बलाइ ॥
नंद-नंदन नीर सीतल, अँचै उठे अघाइ ।
सूर जूठनि भक्त पाई, देव लोक लुभाइ ॥
॥१२१४॥१८३२॥

राग बिलावल

देखि सखी ब्रज तैं बन जात ।
रोहिनि-सुन, जसुमति सुत की छबि, गौर, स्याम हरि-हलधर-गात ॥
नीलांबर पीतांबर ओढ़े, यह सोभा कछु कही न जात ।
जुगल जलज, जुग तड़ित मनहुँ मिलि, अरस-परस जोरत हैं नात ॥
सीस मुकुट, मकराकृत कुंडल झलकत बिबिध कपोलनि भाँति ।
मनहु जलद-जुग-पास जुगल रबि, तापर इंद्र-धनुष की काँति ॥
कटि कछुनी, कर लकुट मनोहर, गो चारन चले मन अनुमानि ।
ग्वाल सखा बिच श्री नँद-नंदन, बोलत बचन मधुर मुसुकानि ॥
चितै रहीँ ब्रज की जुवती सब, आपुस ही मैं करत बिचार ।
गोधन-बृंद लिये सूरज-प्रभु, बृंदाबन गए करत बिहार ॥
॥१२१५॥१८३३॥

राग गौरी

छबीले मुरली नैंकु बजाउ ।
बलि बलि जात सखा यह कहि कहि, अधर-सुधा-रस प्याउ ॥
दुरलभ जनम लहब बृंदाबन, दुर्लभ प्रेम-तरंग ।
ना जानियै बहुरि कब ह्वैहै, स्याम तिहारो संग ॥
बिनती करत सुबल श्रीदामा, सुनहु स्याम दै कान ।
या रस कौ सनकादि सुकादिक, करत अमर मुनि ध्यान ॥
कब पुनि गोप-वेष ब्रज धरिहौ, फिरिहौ सुरभिनि साथ ।
कब तुम छाक छीनि कै खैहौ, हो गोकुल के नाथ ॥
अपनी-अपनी कंध कमरिया, ग्वालनि दई डसाइ ।
सौँह दिवाइ नंद बाबा की, रहे सकल गहि पाइ ॥

सुनि-सुनि दीन गिरा मुरलीधर, चितयौ मृदु मुसकाइ।
गुन गंभीर गुपाल मुरलि प्रिय, लीन्ही तबहि उठाइ॥
धरिकै अधर बेनु मन मोहन, कियौ मधुर धुनि गान।
मोहे सकल जीव जल-थल के, सुनि वारे तन प्रान॥
चलत अधर भृकुटी कर पल्लव, नासा पुट जुग नैन।
मानहुँ नर्तक भाव दिखावत, गति लिये नायक मैन॥
चमकत मोर चंद्रिका माथैं, कुंचित अलक सुभाल।
मानहुँ कमल-कोष-रस चाखन, उड़ि आई अलि माल॥
कुंडल लोल कपोलनि झलकत, ऐसी सोभा देत।
मानहुँ सुधा-सिंधु मैं क्रीड़त, मकर पान कौं हेत॥
उपजावत गावत गति सुंदर, अनाघात के ताल।
सरबस दियौ मदन मोहन कौं, प्रेम-हरषि सब ग्वाल॥
लोलित बैजंती चरननि पर, स्वासा-पवन-झकोर।
मनहुँ गर्वि सुरसरि बहि आई, ब्रह्म-कमंडल फोरि॥
डुलति लता नहिं, मरुत मंद गति, सुनि सुंदर मुख बैन।
खग मृग मीन अधीन भए सब, कियौ जमुन-जल सैन॥
झलमलाति भृगु-पद की रेखा, सुभग साँवरैं गात।
मनु षट बिधु एकै रथ बैठे, उदय कियौ अधिरात॥
बाँके चरन-कमल, भुज बाँके, अवलोकनि जु अनूप।
मानहुँ कलप-तरोवर-बिरवा, अवनि रच्यौ सुर-भूप॥
अति सुख दियौ गुपाल सबनि कौं, सुखदायक जिय जान।
सूरदास चरननि-रज माँगत, निरखत रूप-निधान॥
॥१२१६॥१८३४॥

राग सारंग

रीझत ग्वाल रिझावत स्याम।
मुरलि बजावत, सखनि बुलावत, सुबल सुदामा लै-लै नाम॥
हँसत सखा सब तारी दै-दै, नाम हमारौ मुरली लेत।
स्याम कहत अब तुमहुँ बुलावहु, अपने कर तैं ग्वालनि देत॥
मुरली लै-लै सबै बजावत, काहू पै नहिं आवै रूप।
सूर स्याम तुम्हरे मुख बाजत, कैसैं देखौ राग अनूप॥
॥१२१७॥१८३५॥

राग टोडी

हरि के बराबरि बेनु, कोऊ न बजावै।
जग-जीवन बिदित मुनिनि, नाच जो नचावै॥
चतुरानन, पंचानन, सहसानन ध्यावै।
ग्वाल बाल लिये जमुन-कच्छ बच्छ चरावै॥
सुर नर मुनि अखिल लोक, कोउ न पार पावै।
तारन-तरन अगिनित-गुन, निगम नेति गावै॥
तिनकौं जसुमति आँगन, ताल दै नचावै।
सूरज-प्रभु कृपा-धाम, भक्त - बस कहावै॥
॥१२१८॥१८३६॥

राग टोडी

मुरली सुनत देह-गति भूलीं। गोपी प्रेम-हिंडोरैं झूलीं॥
कबहूँ चकित होहिं सयानी। स्वेद चलै द्रवि जैसैं पानी॥
धीरज धरि इक इकहिं सुनावहि। इक कहि कै आपुहिं बिसरावहि॥
कबहूँ सुधि, कबहूँ सुधि नाहीं। कबहूँ मुरली-नाद समाहीं॥
कबहूँ तरुनी सब मिलि बोलैं। कबहूँ रहैं धीर नहिं डोलैं॥
कबहूँ चलैं, कबहुँ फिरि आवैं। कबहुँ लाज तजि लाज लजावैं॥
मुरली स्याम-सुहागिनि भारी। सूरदास-प्रभु की बलिहारी॥
॥१२१९॥१८३७॥

राग बिहागरौ

अधर धरि मुरली स्याम बजावत।
सारँग, गौड़ी, नटनारायन, गौरी सुरहिं सुनावत॥
आपु भए रस-बस ताही कैं, औरनि बस करवावत।
ऐसौ को त्रिभुवन जल-थल मैं, जो सिर नहीं धुनावत॥
सुभग मुकुट कुंडल-मनि स्रवननि, देखत नारिनि भावत।
सूरदास-प्रभु गिरिधर नागर, मुरलीधरन कहावत॥
॥१२२०॥१८३८॥

राग सारंग

अधर-रस मुरली लूटन लागी।
जा रस कौं षट रितु तप कीन्हौ, सो रस पियति सभागी॥

कहाँ रही, कहँ तैं इहँ आई, कौनैं याहि बुलाई ?
चकित भई कहति ब्रजवासिनि, यह तौ भली न आई ॥
सावधान क्यौं होति नहीं तुम, उपजी बुरी बलाइ ।
सूरदास-प्रभु हम पर ताकौं, कीन्हौ सौति बजाइ ॥
॥१२२१॥१८३९॥

राग नट

जनि बोलै पपिहा, हौं डाढ़ी ।
पैले पार कान्ह बँसुरी बजावे, उले पार बिरहिनि ठाढ़ी ॥
कहा करौं, कैसैं आवौं सखि, नैन-नीर-जमुना बाढ़ी ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मैन-प्रीति अतिहीं गाढ़ी ॥
॥१२२२॥१८४०॥

राग मलार

अधर मधु कत मूँदै हम राखि ।
संचित किये रहीं स्रद्धा सौं, सकीं न सकुचनि चाखि ॥
सहि-सहि सीत, जाइ जमुना-जल, दीन वचन मुख भाषि ।
पूजि उमापति वर पायौ हम, मनहीं मन अभिलाषि ॥
सोइ अब अमृत पिवति है मुरली, सबहिनि कैं सिर नाखि ।
लियौ छँडाइ सकल सुनि सूरज, वेनु धूरि दै आँखि ॥
॥१२२३॥१८४१॥

राग बिलावल

मुरली भई आजु अनूप ।
अधर बिंब बजाइ कर धरि, मोहे त्रिभुवन रूप ॥
देखि गोपी ग्वाल गाइनि, देखि बन गृह यूप ।
देखि मुनि जन नाग चंचल, देखि सुंदर रूप ॥
देखि धरनि अकास सुर नर, देखि सीतल धूप ।
देखि सूर अगाध महिमा, भए दादुर कूप ॥
॥१२२४॥१८४२॥

राग केदारौ

मुरली नाम गुन बिपरीति ।
स्रीन मुरली गहैं मुर-अरि, रहत निसि-दिन प्रीति ॥

कहत बंसी छिद्र परगट, हृदै छूछे अंग।
विदित जग हरि अधर पीवत, करत मनसा पंग॥
चलत ते सब अचल कीन्हे, अचल चलत नगेस।
अमर आने मृत्यु लोकहिं, चलत भुव पर सेप॥
नैनहू मन मगन ऐसौ, काल गुननि वितीत।
सूर त्रै सौं एक कीन्हे, रीझि त्रिगुन अतीत॥
॥१२२५॥१८४३॥

राग पूर्वी

स्याम मुख मुरली अनुपम राजत।
सुभंग स्रीखंड पोड़ सिर सोहत, स्रवननि कुंडल भ्राजत॥
नील जलद पर सुभग चाप सुर मंद-मंद रव वजत।
पीतांबर कटि तड़ित भाव जनु नारि, विवस मन लाजत॥
ठाढ़े तरु तमाल तर सुंदर, नंद-नँदन वन-आली।
सूर निरखि व्रजनारि चकित भईं, लगी मदन की भाली॥
॥१२२६॥१८४४॥

राग गौरी

मोहन मुरली अधर धरी।
कंचन मनि मय रचित, खचित अति, कर गिरिधरन परी॥
उघटत तान बँधान सप्त स्वर, सुनि रस उमँगि भरी।
आकर्षति तन मन जुवतिनि के, गति विपरीत करी॥
पिय-मुख-सुधा-बिलास-बिलासिनि, गीत-समुद्र तरी।
सूरदास त्रैलोक्य-विजय कर रति पति-गर्व हरी॥
॥१२२७॥१८४५॥

राग केदारौ

मुरली अधर बिंब रमी।
लेति सरवस जुवति जन कौ, मदन विदित अमी॥
पीय प्यारी, कृत्य कारे, करत नाहिं नमी।
बोलि सब्द सुसप्त सुर, गति नाग सु नाद दमी॥
महा कठिन कठोर आली, बाँस वंस जमी।
सूर पूरन परसि श्री मुख नैंकु नाहिं भमी॥
॥१२२८।१८४६॥

राग सारंग

बंसी बैर परी जु हमारैं।
अधर पियूष अंस सबहिनि कौ, इन पीयौ सब दिन निज न्यारैं॥
इक धुनि हरि मन हरति माधुरी, दूजैं बचन हरति अनियारैं।
बाँस बंस हिय बेध महा सठ, अपने छिद्र न जानत गारैं॥
सौंप्यौ सुपति जानि ब्रज कौ पति, सो अपनाइ लियौ रखवारैं॥
सब दिन लही अनीति सूर-प्रभु, श्री गुपाल जिय अपनैं धारैं॥
॥१२२९॥१८४७॥

राग बिहागरौ

मुरली स्याम अधर नहिं टारत।
बारंबार बजावत, गावत, उर तैं नहीं बिसारत॥
यह तौ अति प्यारी है हरि की, कहतिं परस्पर नारी।
याकैं बस्य रहत हैं ऐसे, गिरि-गोवर्धन-धारी॥
लटकि रहत मुरली पर ठाढ़े, राखत ग्रीव नवाइ।
सूर स्याम बस ताकैं डोलत, पलक नहीं बिसराइ॥
॥१२३०॥१८४८॥

राग रामकली

मुरली कैं बस स्याम भए री।
अधरनि तैं नहिं करत निनारी, वाकैं रंग रए री॥
रहत सदा तन-सुधि बिसराए, कहा करन धौं चाहति।
देखी, सुनी न भई आजु लौं, बाँस बँसुरिया दाहति॥
स्यामहिं निदरि, निदरि हमहूँ कौं, अबहीं तैं यह रूप।
सुनहु सूर हरि कौ मुहँ पाएँ, बोलति बचन अनूप॥
॥१२३१॥१८४९॥

राग जैतश्री

मुरली स्याम कहाँ तैं पाई।
करत नहीं अधरनि तैं न्यारी कहा ठगारी लाई॥
ऐसी ढीठि मिलतहीं ह्वै गई, उनके मनहीं भाई।
हम देखत वह पियति सुधा-रस, देखौ री अधिकाई॥

कहा भयौ मुँह लागी हरि कैं, बचननि लिये रिझाई।
सूर स्याम कौं बिबस करावति, कहा सौति सी आई ॥
॥१२३२॥१८५०॥

राग गूजरी

स्याम मुरलि कैं रंग ढरे।
कर पल्लव ताकौं बैठावत, आपुन रहत खरे ॥
बारंबार अधर-रस प्यावत, उपजावत अनुराग।
जे बस करत देव-मुनि-गंध्रब, ते करि मानत भाग ॥
बन मैं रहति डरी को जानै, कब आनी धौं जाइ।
सूरज-प्रभु की बड़ी सुहागिनि, उपजी सौति बजाइ ॥
॥१२३३॥१८५१॥

राग नट

मुरली भई सौति बजाइ।
कहूँ बन मैं रहति डारी, ताहि यह सुघराइ ॥
बचन हीं हरि रिझै लीन्हे, अधर पूरत नाद।
दिनहि दिन अधिकान लागी, अब करैगी बाद ॥
सुनहु री इहिं दूरि कीजै, यहै करौ बिचार।
अबहि तैं करनी करी यह, बहुरि कहा लगार ॥
ढंग याके भले नाहीं, बहुत गई डराइ।
सूर स्याम सुजान रीझे, देह-गति बिसराइ ॥
॥१२३४॥१८५२॥

राग सोरठ

मुरली दूरि कराऐं बनिहै।
अबहीं तैं ऐसे ढंग याके, बहुरि काहि यह गनिहै ॥
लागी यह कर-पल्लव बैठन, दिन-दिन बाढ़ति जाति।
अबहीं तैं तुम सजग होहु री, मैं जु कहति अकुलाति ॥
यह ब्रज मैं नहिं भली बात है, देखौ हृदय बिचारि।
सूर स्याम वाही के ह्वै गए, सब ब्रजनारि बिसारि ॥
॥१२३५॥१८५३॥

राग बिहागरौ

अबहीं तैं हम सबनि बिसारी।
ऐसे बस्य भए हरि वाके, जाति न दसा बिचारी॥
कबहूँ कर पल्लव पर राखत, कबहुँ अधर लै धारी।
कबहुँ लगाइ लेत हिरदै सौं, नैंकहुँ करत न न्यारी॥
मुरली स्याम किए बस अपनैं, जे कहियत गिरिधारी।
सूरदास प्रभु कैं तन-मन-धन, बाँस बँसुरिया प्यारी॥
॥१२३६॥१८५४॥

राग रामकली

मुरली भई स्याम-तन-मन-धन।
अब वाकौं तुम दूरि करावति, जाके बस्य भए नँद-नंदन॥
कबहुँ अधर, कबहूँ राखत कर, कबहूँ गावत हैं हिरदैं धरि।
कबहुँ बजाइ मगन आपुन ह्वै, लटकि रहत मुख धरि तापर ढरि॥
ऐसे पगे रहत हैं जासौं, ताहि करति कैसैं तुम न्यारी।
सूर स्याम हम सबनि बिसारी, वह कैसैं अब जाति बिसारी॥
॥१२३७॥१८५५॥

राग सूहौ

मुरली हरि कौं भावै री।
सदा रहति मुखहीं सौं लागी, नाना रंग बजावै री॥
छहौं राग, छत्तीसौ रागिनि, इक इक नीकैं गावै री।
जैसेहिं मन रीझत है हरि कौ, तैसिहिं भाँति रिझावै री॥
अधरनि कौ अंमृत पुनि अँचवति, हरि के मनहिं चुरावै री।
गिरिधर कौं अपनैं बस कीन्हे नाना नाच नचावै री॥
उनकौ मन अपनौ करि लीन्हौ, भरि-भरि वचन सुनावै री।
सूरज-प्रभु ढिग तैं कहि वाकौं, ऐसौ कौन टरावै री॥
॥१२३८॥१८५६॥

राग भैरव

मुरली हरि तैं छूटति है।
माधौ कैं बस भए निरंतर, वह अधरनि रस लूटति है॥

तुम तैं निठुर भए वह बोलत, तिन तैं मन उचटावति है।
आरज-पथ, कुल कानि मिटावति, सबकौं निलज करावति है॥
निदरे रहति, डरति नहिं काहूँ, मुहँ पाएँ वह फूलति है।
अब वह हरि तैं होति न न्यारी, तू काहे कौं भूलति है॥
रोम-रोम नख-सिख रस पागी, अनुरागिनि हरि प्यारी है।
सूर स्याम वाकैं रस लुबधे, जानी सौति हमारी है॥
॥१२३६॥१८५७॥

राग बिहागरौ

मुरली हम कहँ सौति भई।
नैंकु न होति अधर तैं न्यारी, जैसैं तृषा डई॥
इहँ अँचवति, उहँ डारति लै-लै, जल थल बननि बई।
जा रस कौं ब्रत करि तनु गार्‌यौ, कीन्ही रई-रई॥
पुनि-पुनि लेति, सकुच नहिं मानति, कैसी भई दई।
कहा धरै वह बाँस साँस की, आस निरास गई॥
ऐसी कहूँ गई नहिं देखी, जैसी भई नई।
सूर वचन याके टोना से, सुनत मनोज जई॥
॥१२४०॥१८५८॥

राग सारठ

मुरली वचन कहति जनु टोना।
जल-थल-जीव बस्य करि लीन्हे, रिझए स्याम सलोना॥
नैंकु अधर तैं करत न न्यारी, प्यारी तियनि लजौना।
ऐसी ढीठि वदति नहिं काहूँ, रहति बननि बन जौना॥
ताकी प्रभुता जाति कही नहिं, ऐसी भई न होना।
सूर स्याम-मुद-नाद प्रकासति, थकित होत सुनि पौना॥
॥१२४१॥१८५६॥

राग सारग

मुरली हम पर रोष भरी।
अंस हमारौ आपुन अँचवत, नैंकुहुँ नहीं डरी॥
बार-बार अधरनि सों परसति, देखति सबै खरी।
ऐसी ढीठि टरी न उहाँ तैं, जउ हम रिसनि भरी॥

यह तौ कियौ अकाज हमारौ, अब हमँ जानि परी ।
सूरज-प्रभु इन निठुर करायौ, ऐसी करनि करी ॥
॥१२४२॥१८६०॥

राग धनाश्री

मुरली के ऐसे ढँग माई ।
जब तैं स्याम परे बस वाकैं, हम सबहिनि बिसराई ॥
अपनौ गुन यह प्रगट करायौ, निठुर काठ की जाई ।
अपनिहि आगि दह्यौ कुल अपनौ, यह गुनि-गुनि पछिताई ॥
जौ है निठुर आपने घर कौं, औरनि तैं क्यौं मानै ।
सूर बड़ी यह आपु स्वारथिनि, कपट राग करि गानै ॥
॥१२४३॥१८६१॥

राग कल्यान

बाँस-बंस-बंसी-बस सबै-जगत-स्वामी ।
जाकैं बस सुर नर मुनि, ब्रह्मादिक गुन गुनि गुनि, बासर निसि
कथत निगम, नेति नेति बानी ॥
जाकी महिमा अपार, सिव न लहत वार-पार, करता-संसार-सार
ब्रह्म रूप ये हैं ।
सूर नंद-सुवन स्याम, जे कहियतऽनंत नाम, अतिहीं आधीन
बस्य, मुरली के ते हैं ॥
॥१२४४॥१८६२॥

राग कान्हरौ

जा दिन तैं मुरली कर लीन्ही ।
ता दिन तैं स्रवननि सुनि-सुनि सखि, मन की बात सबै लै दीन्ही ॥
लोक वेद कुल-लाज कानि तजी, अरु मरजाद-वचन-मिति खीनी ।
तबहीं तैं तन-सुधि बिसराई, निसि-दिन रहति गुपाल अधीनी ॥
सरद-सुधा-निधि-सरद अंस ज्यौं, सींचति अमी प्रेम रस भीनी ।
ता ऊपर सुभ दरस सूर-प्रभु श्री गुपाल लोचन-गति छीनी ॥
॥१२४५॥१८६३॥

राग नट

मुरली तौ यह बाँस की ।
बाजति स्वास परति नहिं जानतिं, भई रहति पिय पास की ॥

चेतन कौ चित हरति अचेतन, भूली डोलति माँस की।
सूरदास सब ब्रज-बासिनि सौं, लिये रहति है गाँस की॥
॥१२४६॥१८६४॥

राग मलार

बाँसुरी बिधि हूँ तैं परबीन।
कहियै काहि आहि को ऐसौ, कियौ जगत आधीन॥
चारि बदन उपदेस बिधाता, थापी थिर-चर नीति।
आठ बदन गरजति गरबीली, क्यौं चलिहै यह रीति॥
बिपुल बिभूति लही चतुरानन, एक कमल करि थान॥
हरि-कर कमल जुगल पर बैठी, बाढ्यौ यह अभिमान॥
एक बेर श्रीपति के सिखऐं, उन आयौ गुरु ज्ञान।
याकैं तौ नँदलाल लाड़िलौ, लग्यौ रहन नित कान॥
एक मराल-पीठि आरोहन, बिधि भयौ प्रबल प्रसंस।
इन तौ सकल बिमान किये, गोपी-जन-मानस-हंस॥
श्री बैकुंठनाथ-पुरवासी, चाहत जा पद-रैनु।
ताकौ मुख सुखमय सिंहासन, करि बैठी यह बैनु॥
अधर-सुधा पी कुल-ब्रत टार्‌यौ, नहीं सिखा नहिं ताग।
तदपि सूर या नंद-सुवन कौं, याही सौं अनुराग॥
॥१२४७॥१८६५॥

राग कल्यान

मुरली नहिं करत स्याम अधरनि तैं न्यारी।
ठाढ़े ह्वै एक पाइ रहत तनु त्रिभंग, करत भरत नाद, मुरली सुनि, बस्य पुहुमि सारी॥
थावर चर, चर थावर जंगम जड़, जड़ जंगम, सरिता उलटै प्रवाह, पवन थकित भारी।
सुनि सुनि मुनि थकित तान, स्वेद गए ह्वै पषान, तरु डोंगर धावत खग-मृगनि सुधि बिसारी॥
उकठे तरु भए पात, पाथर पर कमल जात, आरज पथ तज्यौ नात, ब्याकुल नर-नारी।
रीझे प्रभु सूर स्याम, बंसी-रव सुखद धाम, बासरहू जाम नहीं जाति कतहुँ टारी॥१२४८॥१८६६॥

राग सारंग

यह मुरली मोहिनी कहावै।
सप्त सुरनि मधुरी कहि बानी, जल-थल-जीव रिझावै॥
उहिं रिझए सुर असुर कपट रचि, तिनकौ बस्य करावै।
पुट एकै इत मद उत अंमृत, आपु अँचै अँचवावै॥
याके गुन ये, सब सुख पावत, हमकौं बिरह बढ़ावै।
सूरदास याकी यह करनी, स्यामहिं नीकैं भावै॥
॥१२४६॥१८६७॥

राग सारग

मुरली तैं हरि हमहिं बिसारी।
बन की ब्याधि कहा यह आई, देतिं सबै मिलि गारी॥
घर-घर तैं सब निठुर कराईं महा अपत यह नारी।
कहा भयौ जो हरि-मुख लागी, अपनी प्रकृति न टारी॥
सकुचति हौ याकौं तुम काहैं, कहौं न बात उघारी।
नोखी सौति भई यह हमकौं, और नहीं कहुँ का री॥
इनहूँ तैं अरु निठुर कहावति, जो आई कुल जारी।
सूरदास ऐसी को त्रिभुवन, जैसी यह अनखारी॥
।१२५०॥१८६८॥

राग मारू

आई कुल दाहि निठुर, मुरली यह माई।
याकौं रीझे गुपाल, काहूँ न लखाई॥
जैसी यह करनि करी, ताहि यह बड़ाई।
कैसैं बस रहत भए, यह तौ टुनहाई॥
दिन-दिन यह प्रबल होति, अधर अमृत पाई।
मोहन कौं इहिं तौ कछु, मोहिनी लगाई॥
कबहुँ अधर, कबहूँ कर, टारत न कन्हाई।
सूरज-प्रभु कौं ता बिनु, और नहि सुहाई॥
॥१२५१॥१८६६॥

राग बिलावल

मुरली हरि कौं आपनौ, करि लीन्हौ माई।
जोइ कहै सोई करैं, अति हरष बढ़ाई।

घर बन सँग लीन्हे फिरैं, कहुँ करत न न्यारी।
राधा आधा अंग है, तातैं यह प्यारी॥
सोवत जागत चलत हूँ, बैठत रस वासौं।
दूरि कौन सौं होइगी, लुबधे हरि जासौं॥
अब काहे कौं भखति हौ, वह भई लड़ैती।
सूर स्याम की भावती, वह अतिहिं चढ़ैती॥
॥१२५२॥१८७०॥

राग जैतश्री

मुरली भई रहति लड़बौरी।
देखति नहीं रैनिहू बासर, कैसी लावति ढोरी॥
कर पर धरी अधर के आगैं, राखति ग्रीव निहोरी।
पूरत नाद स्वाद सुख पावत, तान बजावत गौरी॥
आयसु लिये रहत ताही कौ, डारी सीस ठगौरी।
सूर स्याम की बुधि-चतुराई, लीन्ही सबै अँजोरी॥
॥१२५३॥१८७१॥

राग गौरी

मुरली प्रगट भई धौं कैसे।
कहाँ हुती, कैसैं धौं आई, गीधे स्याम अनैसे॥
मातु पिता कैसे हैं याके, याकी गति मति ऐसी।
ऐसे निठुर होहिगे तेऊ, जैसे की यह तैसी॥
यह तुम नहीं सुनी हो सजनी, याके कुल कौ धर्म।
सूर सुनत अबहीं सुख पैहौ, करनी उत्तम कर्म॥
॥१२५४॥१८७२॥

राग भैरव

याके गुन मैं जानति हौं।
अब तौ आइ भई ह्याँ मुरली, औरहिं नातैं मानति हौं॥
हरि की कानि करति, यह को है, कहा करौं अनुमानति हौं।
अबहीं दूरि करौं गुन कहिकै, नैंकु सकुच जिय मानति हौं॥
यातैं लगी रहति मुख हरि के, सुख पावत पहिचानति हौं।
सूरदास यह निठुर जाति की अब मैं यासौं ठानति हौं॥
॥१२५५॥१८७३॥

राग नट

सुनहु री मुरली की उतपत्ति।
बन मैं रहति, बाँस कुल याकौ, यह तौ याकी जत्ति॥
जलधर पिता, धरनि है माता, अवगुन कहौं उघारि।
बनहूँ तैं याकौ घर न्यारौ, निपटहिं जहाँ उजारि॥
इक तैं एक गुननि हैं पूरे, मातु पिता अरु आपु।
नहि जानिये कौन फल प्रगट्यौ, अतिहीं कृपा प्रताप॥
बिसवासिनि पर काज न जानै, याके कुल कौ धर्म।
सुनहु सूर मेघनि की करनी अरु धरनी के कर्म॥
॥१२५६॥१८७४॥

राग गौरी

सुनहु सखी याके कुल-धर्म।
तैसोइ पिता, मातु तैसी, अब देखौ याके कर्म॥
वै बरषत धरनी संपूरन, सर सरिता अवगाह।
चातक सदा निरास रहत है, एक बूँद की चाह॥
धरनी जनम देति सबही कौं, आपुन सदा कुमारी।
उपजत फिरि ताही मैं बिनसत, छोह न कहुँ महतारी।
ता कुल मैं यह कन्या उपजी, याके गुननि सुनाऊँ।
सूर सुनत सुख होइ तुम्हारैं, मैं कहिकै सुख पाऊँ॥
॥१२५७॥१८७५॥

राग जैतश्री

मातु पिता गुन कह्यौ बुझाई
अब याहू के गुन सुनि लेहु न, जातैं स्रवन सिराई।
उनके वै गुन, निठुर कहावत, मुरली के गुन देखौ।
तब याकौं तुम औगुन मानौ, जब कछु अचरज पेखौ॥
जा कुल मैं उपजी, ता कुल कौं, जारि करति है छार।
तनहीं तन मैं अगिनि प्रकासति, ऐसी याकी झार॥
यह जो स्याम सुनैं स्रवननि भरि, कर तैं देहिं डारि।
सूरदास प्रभु धोखैं याकौं, राखत अधरनि धारि॥
॥१२५८॥१८७६॥

राग नट

यह मुरली सखि ऐसी है।
रीझे स्याम बात सुनि मीठी, नहिं जानत यह नैसी है॥
देखौ याके भेद सखी री, कैसैं मन दै पैसी है।
हम पर रहति भौंह सतराए, चतुर चतुरई जैसी है॥
वै गुन रहति चुराए हरि सौं, देखौ ऐसी गैसी है।
सुनहु सूर बैरनि भई हमकौं, प्रगट सौति ह्वै वैसी है॥
॥१२५९॥१८७७॥

राग नट

यह तौ भली उपजी नाहिं।
निदरि वैसी सौति ह्वैकै, देखि-देखि रिसाहिं॥
कहा याकी सकुच मानति, कहौ बात सुनाइ।
तबहिं बस करि लियौ हरि कौं, हम सबनि बिसराइ॥
प्रबल पावस सरद ग्रीषम, कियौ तप तनु गारि।
तिन्हैं तू लै आपु वैसी, प्रानपति बनवारि॥
जो भई सो भई अब यह, छाँड़ि दै रस-बाद।
सूर-प्रभु कैं अधर लगि लगि, कहा बोलति नाद॥
॥१२६०॥१८७८॥

राग कान्हरा

ऐसैं कहौ निदरि मुरली सौं, कृपा करी अब बहुत भई।
सकुचैं नहीं बनत री माई घर-घर करिहौ दई दई॥
देखति नहीं चतुरई वाकी, मुँह पाएँ ज्यौं फूलि गई।
अधर सुधा सरबस जु हमारौ, सो याकौं सब लूट भई॥
ओछी-जाति डोम के घर की, कहा मंत्र करि हरि बसई।
सूरदास-प्रभु बड़े कहावत, ऐसी कौं धरि अधर लई॥
॥१२६१॥१८७९॥

राग बिहागरौ

याकी जाति स्याम नहिं जानी।
बिन बूझैं, बिनहीं अनुमानैं, करि बैठे पटरानी॥

बारहिं बार लेत आलिंगन, सुनि-सुनि मधुरी बानी।
गाउँ न ठाउँ बाँस-बंसी कौ, जाइ कहाँ तैं आनी॥
जिनि कुल दाहत बिलँब न कीन्हौ, कौन धर्म ठहरानी।
सुनहु सूर, यह करनी, यह सुख, जात न कछू बखानी॥
॥१२६२॥१८८०॥

राग केदार

मुरली अपने सुख कौं धाई।
सुंदर स्याम प्रवीन कहावत, कहाँ गई चतुराई॥
यह देखौं मन समुझि आपनैं, दाहि कुलहिं जो आई।
तातैं सिद्धि कहा पुनि ह्वै है, जाके ये गुन माई॥
जो अपने स्वारथ कौं धावै, तातैं कौन भलाई।
सूर स्याम के अधर सुधा कौं, व्याकुल आई धाई॥
॥१२६३॥१८८१॥

राग धनाश्री

मुरली आपुस्वारथिनि नारि।
ताकी हरि प्रतीति मानत हैं, जीति न जानत हारि॥
ऐसे बस्य भए हरि वाके, कहा ठगौरी डारि।
लूटति है अधरनि कौ अंमृत, खात देति है ढारि॥
को बकि मरै, बनी है जोरी, तृन तोरति हैं वारि।
सूर स्याम कौं भले कहति हौं, देउँ कहा अब गारि॥
॥१२६४॥१८८२॥

राग सोरठ

हम तप करि तनु गार्यौ जाकौं।
सो फल तुरत मुरलिया पायौ, करी कृपा हरि ताकौं॥
कपटी कुटिल और नहिं कोई, जैसे हैं ब्रजराज।
जो सन्मुख सो बिमुख कहावै, बिमुख करै सुखराज॥
बूझी बात नंद-नंदन की, मुरली कैं रस पागे।
सूर अधर-रस आहि हमारौ, ताकौं बकसन लागे॥
॥१२६५॥१८८३॥

राग रामकली

मुरली हम सौं बैर बढ़ायौ।
चली निपट इतराइ नैंकुहीं, हरि अधरनि परसायौ॥
फूली फिरति स्याम-कर बैठी, अतिहीं गर्व बढ़ायौ।
ज्यौं निधनी धन पाइ अचानक, नैन अकास चढ़ायौ॥
सूर स्याम देखत सिहात हैं, ताकौं गाइ रिझायौ।
त्रिभुवन-पति श्रीपति जे कहावत, तिन मुरली बस पायौ॥
॥१२६६॥१८८३॥

राग नट

मुरली अति चली इतराइ।
अछय निधि जिनि लूटि पाई, क्यौं नहीं सतराइ॥
आदि जो यह बड़ी होती, चलति सीस नवाइ।
सबनि कौं लै संग चलती, दौरि मिलती आइ॥
बाँस तैं उतपत्ति जाकी, कहा बुधि ठहराइ।
सूर-प्रभु ता वस्य जैसैं, रहे तनु बिसराइ॥
॥१२६७॥१८८४॥

राग बिहागरौ

स्याम सुहागिनी मुरली।
भेद नाना करति, हरषति, उन हरपि उर ली॥
सदा तासौं रहत पागे, मंद मधु सुर ली।
रैनि-बासर टरति नाहीं, रहति जहँ दुरली॥
भईं ब्याकुल चरित देखत, नारि ब्रजपुर ली।
सूर आरज पंथ बिसर्‌यौ, भवन डर गुर ली॥
॥१२६८॥१८८६॥

राग केदार

मुरली एते पर अति प्यारी।
जद्यपि नाना भाँति नचावति, सुख पावत गिरिधारी॥
रहत हजूर एक पग ठाढ़े, मानत हैं अति त्रास।
कर तैं कबहुँ नैंकु नहिं टारत, सदा रहत ता पास॥

बारंबार देति आयसु, हरि पर राखति अधिकार।
सूर स्याम कौं अपबस कीन्हौ, रहत रही यनझार ॥

॥१२६९॥१८८७॥

राग गौरी

मुरली स्यामहिं मूँड़ चढ़ाई।
बारंबार अधर धरि याकौं, काहैं गर्व कराई ॥
तब तैं गनति नहीं यह काहुहिं, जब तैं उन मुँह लाई।
ना जानियै और कह करिहै, देखति नहीं भलाई ॥
अपने वस्य किये नँद-नंदन, वैरिनि हम कहँ आई।
सूरज-प्रभु एते पर माई, मानत बहुत बड़ाई ॥

॥१२७०॥१८८८॥

राग नट

बड़े की मानियै जो कानि।
कहा ओछे की बड़ाई, जाहि ओछी बानि ॥
बड़ौ निदरै नाहिं काहूँ, ओछोई इतराइ।
नीर नारी नीचेहीं कौं, चलै जैसैं धाइ ॥
रही बन मैं घरहिं ल्याए, महा बुरी बलाइ।
निदरि कै यह सबनि वैसी, सौति उपजी आइ ॥
दिनहिं दिन अधिकार बाढ़्यौ, आँगे रहत कन्हाइ।
सूरदास उपाधि बिधना, कहा रची बनाइ ॥

॥१२७१॥१८८९॥

राग गौरी

मुरली हमहिं उपाधि भई।
नंद-नँदन हम सबनि भुलाई, उपजी कहा दई ॥
कैसैं अब यह दूरि होति है, नोखी मिली नई।
देखौ री संबंध पाछिलौ, घर बिष बेलि बई ॥
जारैं जरै न काटैं सूखे, ह्वै गई अमृत मई।
सूर स्याम भरुहाई, याकौं ब्रज मैं आनि छई ॥

॥१२७२॥१८९०॥

राग गौरी

दिन-दिन मुरली ढीठि भई।
रहति रही बनझार पात मैं, सो भई सुधामई॥
प्रगटहि भाग सुहागिनि हरि की, अनुरागी हरि याके।
धनि-धनि बंसी, भए रहत हैं, स्याम सुँदर बस जाके॥
वाकौ भाग सुहाग साँचिलौ, नैंकु नहीं सँग त्यागत।
सूर स्याम राजा, वह रानी, वाकी सरि को लागत॥
॥१२७३॥१८९१॥

राग अड़ानौ

मुरली की सरि कौन करै।
नंद-नँदन त्रिभुवन-पति नागर सो जो बस्य करै॥
जबहीं जब मन आवत तब तब अधरनि पान करै।
रहत स्याम आधीन सदाई आयसु तिनहिं करै॥
ऐसी भई मोहिनी माई मोहन मोह करै।
सुनहु सूर याके गुन ऐसे ऐसी करनि करै॥
॥१२७४॥१८९२॥

राग केदार

मुरली मोहिनी अब भई।
करी जु करनि देव-दनुजनि प्रति वह बिधि फेरि ठई॥
उन पय-निधि हम ब्रज-सागर मथि पाई पियुष नई।
अधर-सुधा हरि-बदन इंदु की इहिं छलि छीनि लई॥
आपु अचै अँचवाइ सप्त सुर कीन्हे दिग बिजई।
एकहिं पुट उत अमृत सूर इत मदिरा मदन-मई॥
॥१२७५॥१८९३॥

राग गौरी

मुरलिया अपनौ काज कियौ।
आपुन लूटति अधर-सुधा-हरि, हमकौं दूरि कियौ॥
नंद-नँदन बस भए बचन सुनि, तिनहिं बिमोह कियौ।
स्थावर चर, जंगम जड़ कीन्हे, मदन बिमोह कियौ॥

जाकी दसा रही नहिं वाही, सबहीं चकृत कियौ।
सूरदास-प्रभु-चतुर-सिरोमनि, तिनकौं हाथ कियौ॥
॥१२७६॥१८९४॥

राग गौरी

मुरलिया स्यामहिं और कियौ।
औरै दसा, और मति ह्वै गई और विवेक हियौ॥
तब तैं निठुर भए हरि हम सौं, जब तैं हाथ लई।
निसि-दिन हम उन संगहिं रहतीं, मनु ह्वै गई नई॥
इहिं औरै करि डारे भारे, हम कहँ दूरि करी।
घर कौ बन, बन कौ घर कीन्ही, सूर सुजान हरी॥
॥१२७७॥१८९५॥

राग कल्यान

सजनी स्याम सदाई ऐसे।
एक अंग की प्रीति हमारी, वै जैसे के तैसे॥
ज्यौं चकोर चंदा कौं चाहै, चंदा नैंकु न मानै।
जल कैं तीर मीन तन त्यागै, नीर निठुर नहिं जानै॥
ज्यौं पतंग उड़ि परै ज्योति तकि, वाके नैंकु न भाएँ।
चातक रटि-रटि जनम गँवावै, जल वै डारत खाएँ॥
उनहूँ तैं निर्दयी बड़े वै, तैसियै मुरली पाई।
सूर स्याम जैसे तैसी वह, भली बनी अब माई॥
॥१२७८॥१८९६॥

राग रामकली

मुरली कौ मन हरि सौं मान्यौ।
हरि कौ मन मुरली सौं मिलि गयौ, जैसैं पय अरु पान्यौ॥
जैसैं चोर चोर सौं रातै, ठठा ठठा पकै जानि।
कुटिल कुटिल मिलि चलैं एक ह्वै, दुहुनि बनी पहिचानि॥
वै बन बन नित धेनु चरावत, वह बनही की आहि।
सूर गढ़ी जोरी बिधना की, जैसी तैसी ताहि॥
॥१२७९॥१८९७॥

राग धनाश्री

काहैं न मुरली सौं हरि जोरै।
काहैं न अधरनि धरैं जु पुनि-पुनि, मिली अचानक भोरैं॥
काहैं नहीं ताहि कर धारैं, क्यौं नहिं ग्रीव नवावैं।
काहैं न तनु त्रिभंग करि राखैं, ताके मनहिं चुरावैं॥
काहैं न यौं आधीन रहैं ह्वै, वै अहीर वह बेनु।
सूर स्याम कर तैं नहिं टारत, बन-बन चारत धेनु॥
॥१२८०॥१८९८॥

राग बिलावल

याही कैं बल धेनु चरावत।
यहै लकुट जाकी वह मुरली, यातैं वै सुख पावत॥
वह अति निठुर निठुर वै बातैं, मिलि कै घात बतावत।
उनहीं बन मैं रहत निरंतर, ताहि बजावत गावत॥
वाके बचन अमृत हैं इनकौं, ताहि अधर-रस प्यावत।
सूर स्याम बनवारि कहावत, वह बन-बाँसि कहावत॥
॥१२८१॥१८९९॥

राग रामकली

बैर सदा हमसौं हरि कीन्हौ।
प्रथमहिं रोकि रहे गहि मारग, दधि लै जान न दीन्हौ॥
पुनि मन हर्‍यौ भेदहीं भेदहि, इंद्री संगहिं लीन्हौ।
ता पाछैं ये नैन बुलाए, इन उनहीं कौं चीन्हौ॥
अब मुरली वैरिनि उपजाई, निपट भईं हम भीन्हौ।
सूर परे हरि खोज हमारैं, ऐसे पर मन गीन्हौ॥
॥१२८२॥१९००॥

राग बिलावल

सुनि सजनी यह साँची बानी, बारेहिं तैं नगधर कहवायौ।
धन्य धन्य कवि, ता पितु माता, जिन कहि-कहि उपमा यह गायौ॥
इंदु बदन, तन स्याम सुभग घन, तड़ित बसन सति भाव बतायौ।
अलक भृंग पटतर कौं साँचे, कर मुख चरन कमल करि गायौ॥

ये उपमा इनहीं कौं छाजैं, अब मुरली अधरनि परसायौ।
सूर अंस यह आहि हमारौ, मुरली सबै अकेली पायौ॥
॥१२८३॥१९०१॥

राग रामकली

सजनी अब हम समुझि परी।
अंग-अंग उपमा जे हरि के, कविता बनै धरी॥
नव जलधर तन कहियत, सोभा दामिनि पट फहरी।
भँवर कुटिल कुंतल की सोभा, सो हम सही करी॥
सुख-छवि ससि-पटतर उनि दीन्हौ, यह सुनि अधिक डरी।
सूर सहाइ भई यह मुरली अपनैं कुलहिं-जरी॥
॥१२८४॥१९०२॥

राग रामकली

तातैं मुरली कैं बस स्याम।
जैसे कौं तैसोई मिलवै, विधना के ये काम॥
नैंकु न करतैं करत निनारी, कुल-जारी भई बाम।
निसि वासर वाकैं रस पागे, बैठे-ठाढ़े जाम॥
वाके सुख कौं बन-बन डोलत, जहँ-तहँ, छाँह न घाम।
सूरदास प्रभु की हितकारिनि, हम पर राखति ताम॥
॥१२८५॥१९०३॥

राग धनाश्री

विधना मुरली सौति बनाई।
कुटिल बाँस की, बंस-बिनासिनि, आस निरास कराई॥
जौ यह ठाट ठाटिबोहि राख्यौ, कुल की होती कोऊ।
तौ इतनौ दुख हमहिं न होतौ, औगुन-आगर दोऊ॥
ये निरदई, निठुर वह बन की, घर अब भयौ प्रकास।
सूरदास ब्रजनाथ हमारे, जे, से भए उदास॥
॥१२८६॥१९०४॥

राग सारँग

अब मुरली-पति क्यौं न कहावत।
राधा-पति काहे कौं कहियै, सुनत लाज जिय आवत॥

वह अनखाति नाउँ सुनि हमरौ, इत हमकौं नहिं भावत।
कै मिलि चलैं फेरि हमही कौं, कै बनहीं किन छावत॥
काहे कौं द्वै नाव चढ़त है, अपनी बिपति करावत।
सुनहु सूर यह कौन भलाई, हँसि-हँसि बैर बढ़ावत॥
॥१२८७॥१६०५॥

राग नट

और कहौ हरि कौं समुझाइ।
अब यह दुविधा काहैं राखत, वाही मिलियै जाइ॥
हम अपनौ मन निठुर करायौ, बात तुम्हारैं हाथ।
भली भई अब सकुचन लागे, कबि गावत ब्रजनाथ॥
अब मुरलीपति जाइ कहावहु, वह बाँसी तुम काठ।
सूरदास-प्रभु नई चतुरई, मुरली पढ़ये पाठ॥
॥१२८८॥१६०६॥

राग भैरव

मुरली कौ कह लागै री।
देखौ चरित जसोदा-सुत कौ, वह जुवतिनि अनुरागै री॥
यह दृढ़ नहीं, कहाँ तिहिं दोवल, ये उचटैं, वह पागै री।
कर धरि अधर परसि आलिंगन, देत कहा उठि भागै री॥
वह लंपट, धूतिनि, ढुनहाई, जानि-बूझि ज्यौं खागै री।
सुनहु सूर वह यहई चाहै, ता पर यह रिस पागै री॥
॥१२८९॥१६०७॥

राग सारंग

बावरी कहा धौं अब बाँसुरी सौं तू लरै।
उनहीं सौं प्रेम-नेम, तुम सौं नाहिन आली, यातैं गिरिधारीलाल
लै लै अधरा धरै॥
जौ लौं मधु पीवति रहति, तौलौं जीवित है, घरी घरी पल पल
छिनु नहिं बिसरै।
सूरदास प्रभु वाकैं रस-बस भए रहैं, तातैं वाकी सरबरि कहौ
कौन धौं करै॥१२९०॥१६०८॥

राग बिलावल

यह मुरली बन-भार की, बिनु ल्याएँ आई।
हमहीं कौं दुख देन कौं, ब्रज भए कन्हाई॥
औरहि तैं हमसौं लरैं, करते बरियाई।
गागरि फोरैं घाट मैं, दधि-माट ढराई॥
पुनि रोकत हैं दान कौं, अँग-भूषन माई।
सीखी चोरी आदि तैं, मन लिया चोराई॥
पुनि लोचन अँटके रहैं अजहूँ नहिं आए।
हमसौं उचटे रहत हैं, मुरली चित लाए॥
दोष कहा वाकौ सखी, इनके गुन ऐसे।
सूर परसपर नागरी, कहैं स्याम अनैसे॥

॥१२६१॥१६०६॥

राग सोरठ

सजनी नख सिख तैं हरि खोटे।
ये गुन तबहीं तैं जानति हम, जब जननी कहै छोटे॥
अंबर हरे जाइ जमुनातट, राखे कदम चढ़ाइ।
तब के चरित सबै जानति हौं, कीन्ही निलज बनाइ॥
जब हम तप करि करि तनु गार्‍यौ, अधर-सुधा-रस-काज।
सो मुरली निदरे अँचवति है, ऐसे हैं ब्रजराज॥
हमकौं यौं औरनि कौं ऐसैं, निधरक दीन्हौ डारि।
सूर इते पर चतुर कहावत, कहा दीजियै गारि॥

॥१२६२॥१६१०॥

राग केदारौ

इहिं बँसुरी सखि सबै चुरायौ, हरि तो चुरायौ इकलौ चीर।
मनहिं चोरि, चित बितहिं चुरायौ, गई लाज कुल-धरम ऽरु धीर॥
तब तैं भई फिरति हौं ब्याकुल, अति आकुलता भई अधीर।
सूरदास-प्रभु निठुर, निठुर वह, नहिं जानत पर-हिरदै पीर॥

॥१२६३॥१६११॥

राग गौरी

तुम अब हरि कौं दोष लगावति।
नँद-नँदन खोटे तुम कीन्हे, मुरली भली कहावति!॥

यह छिनारि, लंपट अन्याइनि, कुल दाहत नहिं बार।
मधुर-मधुर बानी कहि रिझए, साजि तान-सिंगार॥
वह आई टोना सिर डारति, सप्त सुरनि कल गान।
ऐसैं बनि-ठनि मिली आइ कै, ह्वै गए स्याम अजान॥
पुरुष भँवर उन कहँ कह लागै, नारि भजै जब आइ।
सूरज प्रभु तब कहा करैं री, ऐसी मिली बलाइ॥
॥१२६४॥१८१२॥

राग बिहागरौ

मुरली को करि साधु धरी।
जिन रिझए मनहरन हमारे, ह्वै मोहिनी ढरी॥
ऐसी कहूँ भई नहि होनी, जैसी इनहिं करी।
रहति सदा बन-झारनि, झारनि, देखहु ज्यौं उघरी॥
अब जहँ-तहँ धनि-धनि कहवावति, यह सुनि रिसनि जरी।
सूर स्याम-अधरनि के लागैं, खोटी भई खरी॥
॥१२६५॥१८१३॥

राग मारू

मुरली नहि धरत धरनि, करतैं कहुँ टरति नाहिं, अधरनि धरि रहत खरे, ढरत स्याम भारी।
कबहुँ नाद भरत करत, अपनौ मन बस्य तहाँ, कबहुँ रीझि मगन होत, देखति ब्रजनारी॥
कबहुँ लटकि जात गात, ताननि जब कहति बात, सुनत स्रवन रस-अघात लागति अति प्यारी।
जा हित तप कियौ गारि, सो रस लै देति डारि, धरनी-जल-डोंगर-बन-द्रुमनि मैं वृथा री॥
ऐसे ढँग किये आइ, हमकौं उपजी बलाइ, ताकौं तुम भली कहति, नाहिं आदि जानी।
देखौ याकौ उपाइ, जै जै तिहुँ-भुवन गाइ सूर स्याम अपनौ करि, दिन-दिन इतरानी ॥१२६६॥१८१४॥

राग धनाश्री

वृथा तुम स्यामहि दूषन देति।
जो कछु कहौ सबै मुरली कौं, मन धौं देखौ चेति॥

पहिलैं आइ प्रतीति बढ़ाई, को जानै यह घात ।
बन बोली हम धाई आईं, तजि गृह-जन, पितु मात ॥
जैसैं मधु पखान लपटान्यौ, तैसेइ याके बोल ।
सूर मिली जिहिं भाँति आई कै, त्यौं रहती अनमोल ॥
॥१२९७॥१९१५॥

राग नट

मुरली प्रगट कीन्ही जाति ।
तनकहीं इतराइ बोली, बाँस-बस कुजाति ॥
अहरनिसि रस अधर अँचवति, तऊ नहिं तृपिताति ।
निदरि बैठी सबनि कौं यह, पुलकि अँग न समाति ॥
छहौं ऋतु तप करि पचीं हम, अधर-रस कैं लोभ ।
सूर-प्रभु सो याहि बकस्यौ, कछु न कीन्हौ छोभ ॥
॥१२९८॥१९१६॥

राग सारंग

क्यौं तुम स्यामहि दोष लगावति ।
क्यौं मुरली की करति प्रसंसा, यह तौ मोहिं न भावति ॥
याकी जाति नहीं जो जानति कहि-कहि मैं समुझावति ।
कपटिनि, कुटिल, काठ की संगिनि, ताकौं भली बतावति ॥
याकौ नाम भोर नहिं लीजै, कहि कहि ताहि सुनावति ।
सूर स्याम इनहीं बहकाए, भई उदासिनि गावति ॥
॥१२९९॥१९१७॥

राग धनाश्री

यह मुरली जरि गई न तबहीं ।
अब अपनौ कुल-दाह करायौ, तब कैसैं करि निबही ॥
ऐसी चतुर चतुरई कीन्ही, आपु बची सब जारी ।
कैसैं मिली सूर के प्रभु कौं, बिधना की गति न्यारी ॥
॥१३००॥१९१८॥

राग सारंग

यह हमकौं बिधना लिखि राख्यौ ।
गाउँ न गाउँ, कहाँ तैं आई, स्याम-अधर-रस चाख्यौ ॥

यह दुख कहँ काहि, को जानै, ऐसौ कौन ? निवारै ।
जो रस धरयौ कृपिन की नाईं सो सब ऐसैंहि डारै ॥
यह दूषन वाही कौ कहियै, कै हरिहू कौं दीजै ।
सुनहु सूर कछु बच्यौ अधर रस, सो कैसैं करि लीजै ॥
॥१३०१॥१६१६॥

राग नट

अधर-रस अपनौई करि लीन्हौ ।
जो भावै सो अँचवति निधरक, अरु सबहिनि कौं दीन्हौ ॥
मुरली हमहिं तुच्छ करि जानति, बैर इते पर मानै ।
जैसी वह तैसी सब जानै, कुटिल, कुटिल पहिचानै ॥
अवगुन सानि गढ़ी नख-सिख लौं, तैसियै बुद्धि बिकासै ।
सूरदास-प्रभु के मुख आगैं, मीठे बचन प्रकासै ॥
॥१३०२॥१६२०॥

राग गौरी

यह मुरली ऐसी है माई ।
निदरि सौति यह भई हमारी, कहा कहौं अधिकाई ॥
ऐसैं पियति अधर-रस निधरक, जैसे बदन लगाई ।
हम देखत वह गरजति बैठी, फेरति आपु दुहाई ॥
याकी स्याम प्रतीति करत हैं, कछु पढ़ि टोना लाई ।
सूर सुनत इहिं बचन माधुरी, स्याम दसा बिसराई ॥
॥१३०३॥१६२१॥

राग गौरी

मुरलिया कपट चतुरई ठानी ।
कैसैं मिलि गई नंद-नँदन कौं, उन नाहिंन पहिचानी ॥
इक वह नारि, बचन मुख मीठे, सुनत स्याम ललचाने ।
जाति-पाँति की कौन चलावै, वाकैं रंग भुलाने ॥
जाकौ मन मानत है जासौं, सो तहँई सुख मानै ।
सूर स्याम वाके गुन गावत, वह हरि के गुन गानै ॥
॥१३०४॥१६२२॥

राग गौरी

मुरलिया यह तौ भली न कीन्ही।
कहा भयौ जो स्याम हेत सौं, अधरनि पर धरि लीन्ही॥
अँगुरी गहत गह्यौ जिहिं पहुँचौ, कैसैं दुरति दुराएँ।
ओछी तनिकहिं मैं भरुहानी, तनिकहिं वदन लगाएँ॥
जो कुल नेम धर्म की होती, दिन-दिन होतौ भार।
सूरदास न्यारे भएँ हमतैं, डोलत नंद-कुमार॥
॥१३०५॥१९२३॥

राग सारग

इहिं मुरली कछु भलौ न कीनौ।
अधर-सुधा-रस अंस हमारौ, बाँटि-बाँटि सबहिनि कौं दीनौ॥
बीरुध, तृन द्रुम सैल सरिति तट, सींचति है बसुधा मृग मीनौ।
जातै स्वाद कहा श्री मुख कौ, छूँछौ हियौ सार-बिनु हीनौ॥
जा रस कौं कालिंदी कैं तट, पूजत गौरि भयौ तन छीनौ।
सूर सु रस इहिं परसि कुटिल-मति, सबहिन कैं देखत हरि लीनौ॥
॥१३०६॥१९२४॥

राग कान्हरौ

मुरली जौ अधरनि तट लागी।
ज्यौं मरकट कर होत नारियर तैसैं इहौ अभागी॥
अमृत लेति रहै यह हिरदौ, द्रवत साँस कैं मारग।
पै रुचि सौं अँचवावत, यह लै डारति बन-बन सारग॥
यह बिपरीति नहीं कहुँ देखी, स्याम चढ़ाई सीस।
ना तरु सूर देखती मुरली, कहा बाहि कर बीस?॥
॥१३०७॥१९२५॥

राग गौरी

अधर-रस मुरली लूट करावति।
आपुन बार-बार लै अँचवति, जहाँ-तहाँ ढरकावति॥
आजु महा चढ़ि बाजी वाकी, जोइ जोइ करै बिराजै।
कर-सिंहासन बैठि, अधर-सिरछत्र धरे वह गाजै॥

गनति नहीं अपनैं बल काहुहिं, स्यामहि ढीठि कराई ।
सुनहु सूर बन की बसबासिनि, ब्रज मैं भई रजाई ॥
॥१३०८॥१९२६॥

राग बिलावल

यह मुरली कुल-दाहनहारी । सुनहु स्रवन दै सब ब्रजनारी ॥
कपटिनि कुटिल बाँस की जाई । बन तैं कहाँ घरहिं यह आई ॥
जो अपनैं घर बैर बढ़ावै । तनहीं तन मिलि आगि लगावै ॥
ऐसी की संगति हरि कीन्ही । जाति नहीं बाकी उन चीन्ही ॥
जैसे ये तैसी वह आई । बिधना जोरी भली बनाई ॥
मुरली कैं सँग मिले मुरारी । भाग सुहागिनि पिय अरु प्यारी ॥
अहँ कुलट कुलटा ये दोऊ । इक तैं एक नहीं घटि कोऊ ॥
अधरनि धरत सबनि के आगैं । कर तैं नैंकु कहूँ नहि त्यागैं ॥
इनके गुन कहियै सो थोरे । सूर स्याम बंसी-बस भोरे ॥
॥१३०९॥१९२७॥

राग बिलावल

हरि मुरली कैं हाथ बिकाने । वह अपमान करति न लजाने ॥
उहिं ऐसे करि लिये दिवाने । बार-बार वा जसहिं बखाने ।
ठाढ़े रहत न पाइ पिराने । एते पर मन रहत डेराने ॥
आयसु देति सुनत मुसुकाने । जीवन जन्म सुफल करि माने ॥
वह गरजति ये हरैं बताने । बार बार अधरनि पर ठाने ॥
त्रिभुवन पति जे कहियत बाने । ते ता बस तन-दसा भुलाने ॥
वा आगैं हम सबनि सुगाने । वह गावति ये सुनत पगाने ॥
सूर नेति निगमनि जे गाने । ते मुरली कैं नाद ठगाने ॥
॥१३१०॥१९२८॥

राग बिलावल

मुरली निदरै स्याम कौं, स्यामहि निदराई ।
मधुर बचन सुनि कै ठगे, ठगमूरी खाई ॥
रहत बस्य वाके भए, सब मेटि बड़ाई ।
वह तन मन धन ह्वै रही, रसना रस माई ॥
वह कर, वह अधरनि रहै, देखौ अधिकाई ।

वहै कहति सो सुनत हैं, ये कुँवर कन्हाई ॥
बन की बाढ़ी बापुरी, घर यह ठकुराई ।
सूर स्याम कौं वा बिना, कछु नहीं सुहाई ॥
॥१३११॥१९२९॥

राग नट

सखी री माधोहिं दोष न दीजै ।
जो कछु करि सकियै सोई सब, या मुरली कौं कीजै ॥
बार-बार बन बोलि मधुर धुनि, अति प्रतीत उपजाई ।
मिलि स्रवननि मन मोहि महा रस, तन की सुधि बिसराई ॥
मुख मृदु बचन, कपट उर अंतर, हम यह बात न जानी ।
लोक-बेद-कुल छाँड़ि आपनौ, जोइ-जोइ कही सु मानी ॥
अजहूँ वहै प्रकृति याकैं जिय लुब्धक-सँग ज्यौं साधी ।
सूरदास क्यौं हूँ करुना मैं, परति नहीं अवराधी ॥
॥१३१२॥१९३०॥

राग धनाश्री

स्यामहिं दोष देहु जनि माई ।
कहौ याहि किन बाँस जाति की, कौनैं तोहि बुलाई ? ॥
उनकी कथा मनहिं दै राख्यौ, याकी चलति ढिठाई ।
वै जो भले बुरे तौ अपने, यह लंगरि दुनहाई ॥
ऐसी रिस अब आवति मोकौं, दूरि करौं झहराई ।
सूर स्याम की कानि करति हौं, ना तरु करति बड़ाई ॥
॥१३१३॥१९३१॥

राग धनाश्री

स्यामहिं दोष कहा कहि दीजै ।
कहा बात मुरली सौं कहियै, सब अपनेहिं सिर लीजै ॥
हमहीं कहति बजावहु मोहन, यह नाहीं तब जानी ।
हम जानी यह बाँस बँसुरिया, को जानै पटरानी ॥
बारे तैं मुँह लागत-लागत, अब ह्वै गई सयानी ।
सुनहु सूर हम भोरी-भारी, याकी अकथ कहानी ॥
॥१३१४॥१९३२॥

राग धनाश्री

सुनु री सखी बात यह मोसौं।
तुम अपनैं सिर मानि लई क्यौं, मैं वाही कौं कोसौं॥
जौ वह भली नैंकुहूँ होती, तौ मिलि सबनि बताती।
वह पापिनी दाहि कुल आई, देखि जरति है छाती॥
वैसी की कह कानि मानियै वह हत्यारिनि नारी।
सूर स्याम वा गुन कह जानैं, धोखैं कीन्ही प्यारी॥
॥१३१५॥१९३३॥

राग आसावरी

बिनु जानैं हरि वाहि बढ़ाई।
वह तौ मिली वचन मधुरे कहि, सुनतहि दई बड़ाई॥
रिझै लिया हरि कौं टोना करि, तुरतहिं बिलँब न लाई।
उन लै कर अधरनि पर धारी, अनुपम राग बजाई॥
मानहुँ एकहि संग रहे ते, ऐसैं मिले कन्हाई।
सूर स्याम हम सबनि बिसारी, जबहीं तैं वह आई॥
॥१३१६॥१९३४॥

राग बिलावल

सुनु सजनी इक कथा कहौं री, करम करै सो कोउ न करै।
यह महिमा करता की अगनित, कौनैं बिधि धौं काहि ढरै॥
बन-झारनि की घर बैठाई, स्याम-अधर सिर छत्र धरै॥
हमकौं घर-कुलकानि छुँड़ाई, ऐसी उलटी रीति जरै॥
अधर-सुधा-रस अपनो जानति, दिनही दिन यह आस भरै।
सूर स्याम ताकौं करि लीन्हौ, वहै सुधा सबतहिं भरै॥
॥१३१७॥१९३५॥

राग आसावरी

यह मुरली बहि गई न नारैं।
निदरे हमहिं सुधा-रस अँचवति, टरति नहीं कहुँ टारैं॥
देखहु भाग जरत तैं उबरी, मिली आनि हरि-पास।
इन तौ ताहि लूटि सी पाई, हम करि दई निरास॥

अब वह भई स्याम-पटरानी, स्याम भए बस वाके।
सुनहु सूर ये चरित करति है, लखै कौन गुन ताके॥
॥१३१८॥१९३६॥

राग कान्हरौ

मुरली कहै सु स्याम करैं री।
वाही कैं बस भए रहत हैं, वाकैं रंग ढरैं री॥
घर-बन, रैनि-दिना सँग डोलत, कर तैं करत न न्यारी।
आई बन बलाइ यह हमकौं, कहा दीजियै गारी॥
अब लौं रहे हमारे माई, इहि अपने अब कीन्हे।
सूर स्याम नागर यह नागरि, दुहुँनि भलैं करि चीन्हे॥
॥१३१९॥१९३७॥

राग गौरी

मुरलिया हरि कौं कहा कियौ।
इनकौं नहीं और कछु भावे, यौं अपनाइ लियौ॥
औरै दसा भई मोहन की, कहा मोहिनी लाई।
अधर-सुधा-रस देत निरंतर, राखत ग्रीव नवाई॥
कर जोरे आज्ञा प्रतिपालत, कहाँ रही दुखदाई।
सुनहु सूर ऐसी नान्हीं कौं, काहे लाड़ लड़ाई॥
॥१३२०॥१९३८॥

राग मलार

ज्यौं-ज्यौं मुरलिहिं महत दियौ।
त्यौं-त्यौं निदरि स्याम कोमल-तन, वदन-पियूष पियौ॥
राखे रहति पानि पल्लव गहि, होत न काज बियौ।
पौढति आपु अधर-सेज्या, पर सकुचत नाहिं हियौ॥
जग जान्यौ रति-पति सिव जार्‍यौ, सो इहिं सब्द जियौ।
मेटी बिधि मरजाद सूर इहिं, जो भायौ सो कियौ॥
॥१३२१॥१९३९॥

राग गौरी

मुरली महत दियैं इतरानी।
निदरि पियति पीयूष अधर कौ, स्याम नहीं यह जानी॥

कर गहि रही टरति नहिं नैंकुहुँ, दूजौ काज न होइ ।
लाज नहीं आवति अति निधरक, रहति वदन पर सोइ ॥
सिव कौ दह्यौ काम इहिं ज्यायौ, सबद सुनत अकुलाई ।
आरज-पथ बिधि की मरजादा, सूर सबनि बिसराई ॥
॥१३२२॥१९४०॥

राग मलार

जब-जब मुरली कैं मुख लागत ।
तब-तब कान्ह कमल-दल-लोचन, नख-सिख तैं रस पागत ॥
पलकहिं माँझ पलटि से लीजत, प्रगटत प्रीति अनागत ।
फरकत अधर बिंब, नासा पुट, सुधी चितवनि त्यागत ॥
बात न कहत, रहत टेढ़े ह्वै, नहिं आलिंगन माँगत ।
सूरदास-स्वामी बंसी बस, मुरछे नैंकु न जागत ॥
॥१३२३॥१९४१॥

राग रामकली

जबहीं मुरली अधर लगावत ।
अंग-अंग रस भरि उमगत हैं, जातैं पुनि-पुनि भावत ॥
औरै दसा होति पलकहिं मैं, अगम-प्रीति परकासत ।
तब चितवत काहूँ तन नाहीं, जबहिं नाद मुख भाषत ॥
ग्रीव नवाइ देत हैं चुंबन, सुनि धुनि दसा बिसारत ।
सूर मुरछि लटकत ताही पर, ताही रसहिं बिचारत ॥
॥१३२४॥१९४२॥

राग रामकली

मुरली हरि कौं नाच नचावति ।
एते पर यह बाँस-बँसुरिया, नंद-नँदन कौं भावति ॥
ठाढ़े रहत बस्य ऐसे ह्वै, सकुचत बोलत बात ।
वह निदरे आज्ञा करवावति, नैकुँहुँ नाहिं लजात ॥
जब जानति आधीन भए हैं, देखति ग्रीव नवावत ।
पौढ़ति अधर, चलित कर-पल्लव रंध्र-चरन पलुटावत ॥
हम पर रिस करि-करि अवलोकत, नासा-पुट फरकावत ।
सूर-स्याम जब-जब रीझत हैं, तब-तब सीस डुलावत ॥
॥१३२५॥१९४३॥

राग जैतश्री

मुरली मोहि लिये गोपाल।
बस करि आपु अधर-रस अँचवति, करि पाए हरि ख्याल॥
सर्वस अधर-सुधा-रस सबकौ, कोउ देखन नहिं पावति।
आपुहिं पियति अघाति न तौहूँ, पुनि-पुनि लोभ बढ़ावति॥
दुहुँ कर बैठि गर्व सौं गरजति, बादति सुनति न बात।
जो कुल-दही डरै सो कौनैं, अतिहिं निर्दयी गात॥
बारे तैं तप कियौ जौन हित, सो गँवाइ पछितानी।
सूरदास बन-ब्याधि माँझ-घर, देखि-देखि अकुलानी॥
॥१३२६॥१६४४॥

राग मलार

माई, मुरली है चित चोर्‌यौ।
बदति नहीं अपन बल काहूँ, नेह स्याम सौं जोर्‌यौ॥
करत सनेह सहत तन अपने, देखत अंगनि मोर्‌यौ।
स्रवन सुनत सुर नर मुनि मोहे, सागर जाइ झकोर्‌यौ॥
गोपी कहति परस्पर ऐसैं, सबहुनि कौ मन मोर्‌यौ।
सूरदास-प्रभु की अरधंगी, इहिं बिधि स्याम अँकोर्‌यौ॥
॥१३२७॥१६४५॥

राग गौरी

सखी री मुरली भई पटरानी।
अधर सदा सुख करति स्याम कैं, सुधा पियति इतरानी॥
मोहे पसु पंछी द्रुम बेली, जमुना उलटि बहानी।
सुर-नर-मुनि बस भए नाद कैं, सबै बस्य मन ध्यानी॥
तिहूँ भुवन मैं चली बड़ाई, अस्तुति मुख-मुख गानी।
सूर स्याम की अब अर्धंगिनि, रही भार लपटानी॥
॥१३२८॥१६४६॥

राग गौरी

स्याम नृपति, मुरली भई रानी।
बन तैं ल्याइ सुहागिन कीन्हौ, और नारि उनकौं न सुहानी॥

कबहुँ अधर धरि देत अलिंगन, बचन सुनत तन दसा भुलानी ।
सूरदास-प्रभु गिरिधर नागर, नागरि बन भीतर तैं आनी ॥
॥१३२६॥१६४७॥

मुरली-बचन गोपियों के प्रति *राग मलार*

ग्वालिनि तुम कत उरहन देहु ?
पूछहु जाइ स्याम सुंदर कौं, जिहिं दुख जुर्‌यौ सनेहु ॥
जन्मत ही तैं भई बिरत चित, तज्यौ गाउँ, गुन गेहु ।
एकहि पाउँ रही हौं ठाढ़ी, हिम-ग्रीषम-ऋतु मेहु ॥
तज्यौ मूल साखा-सुपत्र सब, सोच सुखानी देहु ।
अगिनि सुलाकत मुर्‌यौ न तन मन, विकट बनावन बेहु ॥
बकतीं कहा बाँसुरी कहि-कहि, करि-करि तामस तेहु ।
सूर स्याम इहिं भाँति रिझै, किलि, तुमहुँ अधर रस लेहु ॥
॥१३३०॥१६४८॥

राग मलार

ग्वारिनि मोहीं पर सतरानी ।
जौ कुलीन अकुलीन भईं हम, तुम तौ बड़ी सयानी ॥
नाना रूप बखान करति हौ, काहैं बृथा रिसानी ।
तुमहिं कहौ कह दोष हमारो ? खोटो क्यौं पहिचानी ? ॥
जो स्रम मैं अपनैं तन कीन्हौ, सो सब कहौं बखानी ।
सूरदास-प्रभु बन-भीतर तैं, तब अपनैं घर आनी ॥
॥१३३१॥१६४९॥

राग सूहौ

जब सुनिहौ करतूति हमारी ।
तब मन-मन तुमहीं पछितैहौ, बृथा दई हम याकौं गारी ।
तुम तप कियौ सुन्यौ मैं सोऊ, रिस पावहुगी और कहा री ।
मो समान तप तुम नहिं कीन्हौ, सुनहु करौ जनि सोर बृथा री ॥
मैं कह कहौं, सुनौगी तुमहीं, जगत-विदित यह बात हमारी ।
सूर स्याम आपुन ही कहियै, सुनत कहा मुसुकात मुरारी ॥
॥१३३२॥१६५०॥

राग कान्हरौ

मो पर ग्वालि कहा रिसाति।
कहा गारी देति मोकौं, कहा उघटति जाति॥
जौ बड़ी तुम आपुही कौं, तुमहि होहु कुलीन।
मैं बँसुरिया बाँस की जौ, तौ भई अकुलीन॥
पीर मेरी कौन जानै, छाँड़ि इक करतार।
सूर-प्रभु-सँग देखि काहैं, खिझति बारंबार॥
॥१३३३॥१६५१॥

राग बिहागरौ

मैं अपनैं बल रहति स्याम सँग, तुम काहैं दुख पावति री।
मो पर रिस पावति हौ पुनि पुनि, कछु, काहुँहिं बतरावति री॥
तुमहुँ करौ सुख, मैं बरजति हौं, ऐसेहि सोर लगावति री।
कहा करौं मोहिं स्याम निवाजी, काहैं न दूरि करावति री॥
वृथा बैर तुम करति निसादिन, आछौ जनम गँवावति री।
सूर सुनहु ब्रजनारि सयानी, मूरख ह्वै, समुझावति री!॥
॥१३३४॥१६५२॥

राग रामकली

सुनौ इक बात हो ब्रजनारि।
रिस कियैं पावति कहा हौ, कहा दीन्है गारि॥
जाति उघटति, पाँति उघटति, लेति हौं सब मानि।
तुम कहति, मैं हूँ कहति सोइ, मोहिं बन तैं आनि!॥
कर्म कौ यह बहुत नाहीं, स्याम अधरनि धारि।
सूर-प्रभु जौ कृपा कीन्ही, कहा रही बिचारि॥
॥१३३५॥१६५३॥

राग बिलावल

रिझै लेहु तुमहूँ किन स्यामहिं।
काहे कौं बकवाद बढ़ावति, सतर होति बिनु कामहिं॥
मैं अपने तप कौ फल भोगवति, तुमहूँ करि फल लीजौ।
तब धौं बीच बोलिहै कोऊ, ताहि दूरि धरि कीजौ॥

अपनौ भाग नहीं काहू सौं, आपु आपनैं पास ।
जो कछु कहौ सूर के प्रभु कौं, मो पर होति उदास ॥
॥१३३६॥१९५४॥

राग बिलावल

मेरे दुख कौ ओर नहीं ।
षट रितु सीत उष्न बरषा मैं, ठाढ़े पाइ रही ॥
कसकी नहीं नैकुहूँ काटत, घामैं राखी डारि ।
अगिनि-सुलाक देत नहिं मुरकी, बेह बनावत जारि ॥
तुम जानति मोहिं बाँस बाँसुरिया, अगिनि छाप दै आई ।
सूर स्याम ऐसैं तुम लेहु न, खिझति कहा हौ माई ॥
॥१३३७॥१९५५॥

राग बिलावल

स्रम करिहौ जब मेरी सी ।
तब तुम अधर-सुधा-रस बिलसहु, मैं ह्वै रहिहौं चेरी सी ॥
बिना कष्ट यह फल न पाइहौ, जानति हौ अवडेरी सी ।
षट रितु सीत तपनि तन गारौ, बाँस बँसुरिया केरी सी ॥
कहा मौन ह्वै ह्वै जु रही हौ, कहा करति अवसेरी सी ।
सुनहु सूर मैं न्यारी ह्वैहौं, जब देखौं तुम मेरी सी ॥
॥१३३८॥१९५६॥

गोपी-बचन परस्पर *राग सारंग*

मुरली तौ अधरनि पर गाजति ।
कैसैं बैठी दुहूँ करनि चढ़ि, अँगुरी रंध्रनि राजति ॥
स्यामहिं मिलि हम सबनि दिखावति, नैकु नहीं मन लाजति ।
नाद सवाद मोद सौं उपजत, मधुरे-मधुरे बाजति ॥
कबहुँ मौन ह्वै रहति, कबहुँ कछु कहति, रहति नहिं हाजति ।
सूर स्याम वाकौ सुर साजत, वह उनहीं सौं भ्राजति ॥
॥१३३९॥१९५७॥

राग नट

मुरली तप कियौ तनु गारि ।
नैकुहूँ नहिं अंग मुरकी, जब सुलाकी जारि ॥

सरद, ग्रीषम, प्रबल पावस, खरी इक पग भारि ।
कटत हूँ नहिं अंग मोर्‌यौ, साहसिनि अति नारि ॥
रिझै लीन्हे स्याम सुंदर, देति हौ कत गारि ।
सूर प्रभु तव ढरे हैं री, गुननि कीन्ही प्यारि ॥
॥१३४०॥१९५८॥

राग सारंग

मुरलिया ऐसैं स्याम रिझाए ।
नंद-नँदन के गुन नहिं जानति, अति स्रम तैं इहिं पाए ॥
तुव व्रत कौ फल उहै दिखायौ, चीर कदंब चढाए ।
कह्यौ कहा सब वैसेहिं आवहु, जुवतिनि लाज छुँड़ाए ॥
तब दै चीर अभूषन बोले, धनि-धनि सबद सुनाए ।
सुनहु सूर ब्रजनारी भोरी, इतनेहिं हरष बढ़ाए ॥
॥१३४१॥१९५९॥

राग बिलावल

मुरली जैसैं तप कियौ, कैसैं तुम करिहौ ।
षटरितु इक पग क्यौं रहौ अबहीं लरखरिहौ ॥
वह काटत मुरकी नहीं, तुम तौ सब मरिहौ ।
वह सुलाक कैसैं सहौ, परसत हीं जरिहौ ॥
तुम अनेक वह एक है, वासौं जनि लरिहौ ।
सूर स्याम जिहिं ढरि मिले, नहिं जीतौ हरिहौ ॥
॥१३४२॥१९६०॥

राग बिलावल

मुरली की सरि जनि करौ, वह तप अधिकारिनि ।
एते पर तुम बोलि हौ, कह भई बनजारिनि ॥
धीर धरैं मरजाद है, नातौ लघु ह्वै हौ ।
नैंकु दरस की आस है, ताहू तैं जैहौ ॥
झगरैं झगरोई रहै, तिहिं कहा बड़ाई ।
वह अपनौ फल भोगवै, तुम देखौ माई ॥
देखौ वाके भाग कौं, ताकौं न सराहौ ।
सूरदास झझकौं कहा, नीकैं किन चाहौ ॥
॥१३४३॥१९६१॥

राग रामकली

मुरली सौं अब प्रीति करौ री ।
मेरी कही मानि मन राखौ, उर-रिस दूरि धरौ री ॥
तुमहिं सुनीं मुरली की बातैं, दीन होइ बतरानी ।
काहैं न डरैं स्याम ता ऊपर, क्यौं न होइ पटरानी ॥
हम जान्यौ यह गर्व भरी है, साधु न यातैं और ।
रिझै लियौ हरि कौं तप कैं बल, वृथा करौ तुम सोर ॥
सूर स्याम बहुनायक सजनी, यहौ मिली इक आइ ।
तुम अपने जौ नेम रहौगी, नेम न कर तैं जाइ ॥
॥१३४४॥१९६२॥

राग कान्हरौ

नेमहिं मैं हरि आइ रहैंगे ।
मुरली सौं तुम कछू कहौ जनि, ऐसेहिं तुमहिं मिलैंगे ॥
वै अंतरजामी सब जानत, घट-घट की जो प्रीति ।
जाकौ जैसौ भाव सखी री, ताहि मिलैं तिहिं रीति ॥
मातु-पिता-कुलकानि-लाज तजि, भजी जनम तैं जाहि ।
काहे कौं मुरली की डाहनि अब तजियै री ताहि ॥
सोरह सहस एक मन आगरि, नागरि मुरली जानि ।
सूर स्याम कौं भजौ निरंतर, जासौं है पहिचानि ॥
१३४५॥१९६३॥

राग कान्हरौ

मुरली की जनि बात चलावौ ।
वह बल करति आपने तप कौ, तुम काहैं बिसरावौ ॥
कहा रही एकहि पग ठाढ़ी, कहा काटि जो डारी ।
कहा सुलाक सह्यौ उहिं गाढ़े, कर सौं स्याम सँवारी ॥
निमिष एक भरि कष्ट सह्यौ जो, तुरत अधर मधु सींची ।
सूर सुनौ, जनि बात कहौ तेहिं, बड़ी आहि जौ नीची ॥
॥१३४६॥१९६४॥

राग कान्हरौ

हम तैं तप मुरली न करै री ।
कहा सुलाक सह्यौ जो इक पल, नित प्रति बिरह जरै री ? ॥

किरिया सी करि कै भई ठाढ़ी, तुरत अधर-तट लागी।
हमकौं निसि दिन मदन जरावत, वाही रस अनुरागी॥
यहै बात कमहुँ तैं मोटी, तातैं हम सरि नाहीं।
सूर स्याम की महिमा न्यारी, कृपा करी ता माहीं॥
॥१३४७॥१९६५॥

राग कान्हरौ

तुम अपने तप की सुधि नाहीं, जो तनु गारि कियौ।
संवत पाँच-पाँच की सवहीं, अजहूँ प्रगट हियौ॥
वह तुषार, वह तपनि तपस्या, वह पावस झकझोर।
वह लरिकई मातु-पितु कौ हित, वैसी प्रीतिहि तोर॥
तवहीं तैं तनु विरह जरत है, निसि-वासर यौं जात।
कैसैं तप निरफलहिं जाइगौ, सुनहु सूर यह बात॥
॥१३४८॥१९६६॥

राग गौरी

मुरलिया एकै वात कही।
भाग आपनौ अपने माथैं, मानी यह मनहिं सही॥
हम तैं वहुत तपस्या नाहीं, विरह जरी वह नाहीं।
कहा निमिष करि प्रेम सुलाकी, देखहु गुनि जिय माहीं॥
वात कहति कछु निंदति नाहीं, भाग वड़े हैं वाके।
सूरदास-प्रभु चतुर सिरोमनि, वस्य भए हैं जाके॥
॥१३४९॥१९६७॥

राग गौरी

मुरली सौं कह काम हमारौ।
अधर धरैं, सिर पर किन राखैं, तुम जनि कवहुँ विगारौ॥
जा कारन तुम जन्म भई व्रज, ध्यावहु नंद-दुलारौ।
वीचहिं कहूँ और सौं अँटके, तामैं कहा तुम्हारौ॥
वह मुसुकनि, वह स्याम सुभग छवि, नैननि तैं जनि टारौ।
सूरज-प्रभु व्रजनाथ कहावत, ते तुम छितु न विसारौ॥
॥१३५०॥१९६८॥

राग बिहागरौ

मुरली स्याम बजावन लागे।
अधर-सुधा-रस है वह पागी, आपुन ता रस पागे॥
धन्य-धन्य बड़ भागिनि नागरि, धनि हरि के मुख लागी।
धनि वह बन, धनि-धनि वह उपबन, जहँ बाँसुरी सोहागी॥
धनि वह रंध्र, धन्य वह अँगुरी, बारंबार चलावत।
सूर सुनत ब्रजनारि परस्पर, दुख-सुख दोऊ पावत॥
॥१३५१॥१९६९॥

रग पूरबी

मुरली कैसैं बजै रस सानी, गरजि धुँकार अमृत बानी।
नाद प्रवाह तरै भरै रीझै, इतनौ रस कहँ तैं जानी॥
सप्त सुरनि गति जति उपजति अति, विपरित थावर पवन पानी।
सूरदास गिरिधर बहुलायक, याहीं सौं निसिदिन रति मानी॥
॥१३५२॥१९७०॥

राग रामकली

मुरलिया बाजति है बहु बान।
तीनि ग्राम, इकईस मूर्छना, कोटि उनंचास तान॥
सर्व कला व्युत्पन्न सुघर अति, या समसरि को आन।
अति सुकंठ गावति, मन भावति, रीझे स्याम सुजान॥
ऐसी सौं नहिं बैर कीजियै, दूरि करौ रिस-ज्ञान।
सूर स्याम कैं अधर बिराजति, सबहीं अंग-निधान॥
॥१३५३॥१९७१॥

राग रामकली

मुरलिया स्याम अधर पर बैसी।
सुनहु सखी यह है तिहिं लायक, अतिहिं भली, नहिं नैसी॥
कैसैं नंद-नँदन कर धरते, जो पै होती गैसी।
तुमही बृथा कहति जोइ सोई, यह जैसी की तैसी॥
सुनहु कहा कहि-कहि मुख गावति, हृदय स्याम कैं पैसी।
सूरदास-प्रभु क्यौं न मिलैं हरि, तिहूँ भुवन जै जै सी॥
॥१३५४॥१९७२॥

राग बिलावल

आपु भलाई सबै भले री ।
जो वह भली गुननि की पूरी, तौ ढरि स्याम मिले री ॥
इक जुवती, अरु मधुरैं गावति, बानी ललित कहै री ।
जब-जब स्याम अधर पर राखत, तब तब सुधा बहै री ॥
एते पर हम सौं सनमुख है, तुम काहैं रिस पावति ।
सूरदास-प्रभु कमल नयन कौं, एते पर वह भावति ॥
॥१३५५॥१९७३॥

राग केदारौ

जौ पै मुरली कौ हित मानौ ।
तौ तुम बार-बार ऐसैं कहिं, मन मैं दोष न आनौ ॥
बासर-याम-बिरह अहि-ग्रासित, छूजत मृतक समान ।
लेति जिवाइ सु-मंत्र सुरस कहि, करति न डर-अपमान ॥
निज संकेत लेखावति अजहूँ, मिलवति सारँग पानि ।
सरद-निसा रस-रास करायौ, बोलि-बोलि मृदु बानि ॥
परकृत-सील सुकृत-उपमा-रमी तासौं यौं कत कहियै ।
पर कौ सूरजदास मेटि कृत, न्याइ इतौ दुख सहियै ॥
॥१३५६॥१९७४॥

राग रामकली

मुरली स्याम बजावन दै री ।
स्रवननि सुधा पियति काहैं नहि, इहिं तू जनि बरजै री ॥
सुनति नहीं वह कहति कहा है, राधा राधा नाम ।
तू जानति हरि भूलि गए मोहिं, तुम एकै पति बाम ॥
वाही कैं मुख नाम धरावत, हमहिं मिलावत ताहि ।
सूर स्याम हमकौं नहिं बिसरे, तुम डरपति हौ काहि ॥
॥१३५७॥१९७५॥

राग जैतश्री

जब जब मुरली कान्ह बजावत ।
तब-तब राधा नाम उचारत, बारंबार रिझावत ॥
तुम रमनी, वह रमन तुम्हारे, वैसेहिं मोहिं जनावत ।
मुरली भई सौति जो माई, तेरी टहल करावत ॥

वह दासी तुम हरि-अर्धांगिनि, यह मेरैं मन आवत ।
सूर प्रगट ताही सौं कहि-कहि, तुमकौं स्याम बुलावत ॥
॥१३५८॥१९७६॥

राग केदारौ

यह मुरली ऐसी है माई ।
हम यासौं रिस वृथा करति हीं, तब इहिं कदरि न पाई ।
बानी ललित सुनत स्रवननि हित, चित मेरैं अति भाई ।
गाजति, बाजति स्याम-अधर पर, लागति तान सुहाई ॥
मैं जानी यह निठुर काठ की, नरम बाँस की जाई ।
सूरदास ब्रजनारि परस्पर, ताकी करति बड़ाई ॥
॥१३५९॥१९७७॥

राग कान्हरौ

अब मुरली कछु नीकैं बाजति ।
ज्यौं अधरनि, ज्यौं कर पर बैठति, त्यौं अतिहीं अति राजति ॥
अब लौं जानी बाँस बँसुरिया, यातैं और न बंस ।
कैसैं बजि रजि चली सबनि कौं, राधा करति प्रसंस ॥
यह कुलीन, अकुलीन नहीं री, धनि याके पितु-मात ।
सुनहु सूर नाते की भैनी, कहति बात हरषात ॥
॥१३६०॥१९७८॥

राग कान्हरौ

मुरलिया मोकौं लागति प्यारी ।
मिली अचानक आइ कहूँ तैं, ऐसी रही कहाँ री ॥
धनि याके पितु-मातु, धन्य यह, धन्य-धन्य मृदु बोलनि ।
धन्य स्याम गुन गुनि कै ल्याए, नागरि चतुर अमोलनि ॥
यह निरमोल मोल नहिं याकौ, भली न यातैं कोई ।
सूरदास याके पटतर कौ, तौ दीजै जौ होई ॥
॥१३६१॥१९७९॥

राग रामकली

मुरली दिन-दिन भली भई ।
बन की रहनि नहीं अब यामैं, मधु हीं पागि गई ॥

अमिय समान कहति है बानी, नीकैं जानि लई ।
जैसी संगति बुधि तैसियै, ह्वै गई सुधामई ॥
जब आई तब औरै लागी, सो निठुरई हई ।
सूर स्याम अधरनि के परसैं, सोभा भई नई ॥
॥१३६२॥१९८०॥

राग गौड़ मलार

भली अनभली करतूति संगतिहिं तैं, बाँस बनभार को भई मुरली ।
कहाँ तब लहति ही निठुरताई, अबै वचन अमृत कहति, सुरनि सुरली ॥
सुधा अधरनि संग भई आपुहिं सुधा, कहा अब प्रीति मैं इन गँवायौ ।
सूर-प्रभु मिले अरु हम मिलीं धाइ कै, इते पर धन्य चहुँ जुग कहायौ ॥
॥१३६३॥१९८१॥

राग गौड़ मलार

धन्य मुरली, धन्य तप तुम्हारौ ।
धन्य-धनि मातु, धनि धन्य भ्राता-पिता, बहुरि धनि धन्य तुव-भगति-सारौ ॥
धन्य-वह बाँस, धनि धन्य जहँ तू रही, धन्य बनभार, तो तैं बड़ाई ।
धन्य तप कियौ षट रितु रही एक पग, डुली नहिं धन्य मन की दृढ़ाई ॥
कटतहू मुरी नहिं, रंध्रहू जरी नहिं, नेम तैं टरी नहिं, तुही जानै ।
तैसेई मिले प्रभु सूर तोकौं तुरत, सींचि अमृत अधर नेह मानै ॥
॥१३६४॥१९८२॥

राग हमीर

आजु बजाई मुरली मनोहर, सुधि न रही कछु तन मन मैं ।
मैं जमुना-तट सहज जाति ही, ठाढ़े कान्ह बृंदाबन मैं ॥
नाना राग रागिनी गावत, धरे अमृत मृदु बैननि मैं ।
सूर निरखि हरि-अंग त्रिभंगी, वा छबि भरि लियौ नैननि मैं ॥
॥१३६५॥१९८३॥

राग पूरबी

मुरली बाजै मुख मोहन कैं, सुनि रीझी रस-ताननि।
अतिहिं दूरि ही धुनि सँग आई, भई मगन दै कानन ॥
तब तैं और कछू नहिं भावत, मन भावति छवि-वाननि।
सूरदास प्रभु नवल छबीलौ, हरत नवेलिनि-ज्ञाननि ॥
॥१३६६॥१९८४॥

राग काफी

(माई) मोहन की मुरली मैं मोहिनी बसत है।
जब तैं सुनी स्रवन, रह्यौ न परै भवन, देह तैं मनहुँ प्रान अब निकसत है ॥
कहा करौं मेरी आली, बाँसुरी की धुनि साली, माता-पिता पति बधु अतिही त्रसत है।
मदन अगिनि अरु विरह की ज्वाल जरी जैसैं जल-हीन मीन तट दरसत है ॥
अतिहि तपति छाती लागति है प्रेम काँती फूलनि की माला मनौ व्याल ह्वै डसत है।
सूर स्याम मिलत कौं आतुर ब्रज की बाल, एक-एक पल जुग-जुग ज्यौं खसत है ॥१३६७।१९८५॥

श्रीकृष्ण का ब्रजागमन *राग गौरी*

नटवर-वेष धरे ब्रज आवत।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कुटिल अलक मुख पर छबि पावत ॥
भ्रुकुटी विकट नैन अति चंचल इहिं छबि पर उपमा इक धावत।
धनुष देखि खंजन बिबि डरपत, उडि न सकत उड़िबै अकुलावत ॥
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत, गौरी राग अलापि बजावत।
सुरभी-वृंद गोप-बालक-संग, गावत अति आनद बढ़ावत ॥
कनक-मेखला कटि पीतांबर, निर्तत मंद-मंद सुर गावत।
सूर स्याम-प्रति-अंग-माधुरी, निरखत ब्रज-जन कैं मन भावत ॥
॥१३६८॥१९८६॥

राग कल्यान

ब्रज जुवती सब कहति परस्पर, बन तैं स्याम बने ब्रज आवत।
सीपे छबि मैं कबहुँ न पाई, सखी सखी सौं प्रगट दिखावत ॥

मोर मुकुट सिर, जलज-माल उर, कटि-तट पीतांबर छवि पावत ।
नव जलधर पर इंद्र चाप मनु, दामिनि-छबि, बलाक घन धावत ॥
जिहिं जो अंग अवलोकन कीन्हौ, सो तन मन तहँई बिरमावत ।
सूरदास-प्रभु मुरली अधर धरे, आवत राग कल्यान बजावत ॥
॥१२७९॥१९८७॥

राग गुन सारंग

मेरे नैन निरखि सचु पावैं ।
बलि बलि जाउँ मुखारबिंद की बन तैं बनि ब्रज आवैं ॥
गुंजा-फल अवतंस, मुकुट मनि, वेनु रसाल बजावैं ।
कोटि-किरनि-मनि मंजु प्रकासित, उडुपति बदन लजावैं ॥
नटवर रूप अनूप छबीले, सबहिनि कैं मन भावैं ।
सूरदास-प्रभु चलत मंद गति, बिरहिनि ताप नसावैं ॥
॥१२७०॥१९८८॥

राग गौरी

बलि बलि मोहिनि सूरति की, बलि बलि कुंडल, बलि नैन बिसाल ।
बलि भ्रकुटी, बलि तिलक बिराजत, बलि मुरली, बलि सब्द रसाल ॥
बलि कुंतल, बलि पाग लटपटी, बलि कपोल, बलि उर बनमाल ॥
बलि मुसुकानि महामुनि मोहति, बलि उपरैना-गिरिधर लाल ॥
बलि भुज सखा-अंस पर मेले, निरखत मगन भईं ब्रज-बाल ॥
बलि दरसन ब्रह्मादिक दुरलभ, सूरदास बलि चरन गुपाल ॥
॥१२७१॥१९८९॥

राग जैतश्री

एरे सुंदर साँवरे, तैं चित लियौ चुराइ ।
संग सखा संध्या समय, द्वारैं निकस्यौ आइ ॥
देखि रूप अदभुत तेरौ, रहे नैन उरझाइ ।
पाग ऊपर गोसमावल, रँग रँग रची बनाइ ॥
अति सुंदर सुकनासिका, राजत लोल कपोल ।
रत्न जटित कुंडल मनौ, झख सर करत कलोल ॥
कटि तट काछनि राजई, पीतांबर छबि देत ।
अमृत बचन मुख भाषई, तन-मन बस करि लेत ॥

भौंह धनुष वर नैन द्वै, मनौ मदन सर साँधि।
जाहि लगै सो जानई, संग लेन बल बाँधि॥
अंग-अंग पर बलि गई, मुरली नैकु बजाइ।
सुनि पावैं सचु गोपिका, सूरदास बलि जाइ॥
॥१३७२॥१९९०॥

राग बिलावल

स्याम कछु मो तन हीं मुसुकात।
पहिरि पितंबर, चरन पाँवरी, ब्रज बीथिनि मैं जात॥
अदभुत बिंद-चँदन, नख-सिख लौं, सौंधे भीने गात।
अलकावली, अधर मुख बीरा, लिये कर कमल फिरात॥
धन्य भाग या ब्रज के सखि री धनि धनि जननी तात।
धनि जे सूरदास प्रभु निरखत, लोचन नाहिं अघात॥
॥१३७३॥१९९१॥

राग अडानौ

स्याम सुंदर आवत बन तैं बने, भावत आजु देखि देखि छबि, नैन रीझे।
सीस पै मुकुट डोल, स्रवन कुंडल लोल, भ्रकुटि धनुष, नैन खंज खीझे।
दसत दामिनी ज्योति, उर पर माल मोति, ग्वाल बाल संग, आवैं रंग भीजे।
सूर-प्रभु राम-स्याम, संतनि के सुखधाम, अंग-अंग प्रति छबि, देखि जीजे॥१३७४॥१९९२॥

राग कान्हरौ

राजत री बनमाल गरे हरि आवत बन तैं।
फूलनि सौं लाल पाग, लटकि रही बाम भाग, सो छबि लखि सानुराग, टरति न मन तैं॥
मोर मुकुट सिर श्रीखंड, गोरज मुख मंजु मंड, नटवर बर बेष धरैं आवत छबि तैं।
सूरदास-प्रभु की छबि ब्रज-ललना निरखि थकित तन मन न्यौछावर करैं, आनँद बहु तैं॥१३७५॥१९९३॥

राग गौरी

ब्रज कौं देखि सखी हरि आवत।
कटि तट सुभग पीतपट राजत, अदभुत वेष बनावत ॥
कुंडल तिलक चिकुर रज मंडित, मुरली मधुर बजावत ।
हँसि मुसुकानि, बंक अवलोकनि, मन्मथ कोटि लजावत ॥
पीरी धौरी धूमरि गौरी, लै-लै नाउँ बुलावत ।
कबहूँ गान करत अपनी रुचि, करतल तार बजावत ॥
कुसुमित दाम मधुप-कुल गुंजत, संग सखा मिलि गावत ।
कबहुँक नृत्य करत कौतूहल, सप्तक भेद दिखावत ॥
मंद-मंद गति चलत मनोहर, जुवतिनि रस उपजावत ।
आनँद कंद जसोदा-नंदन, सूरदास मन भावत ॥
॥१३७६॥१९९४॥

राग गौरी

कमल-मुख सोभित सुंदर वेनु ।
मोहन राग बजावत गावत, आवत चारे धेनु ॥
कुंचित केस सुदेस बदन पर, जनु साज्यौ अलि सैन ।
सहि न सकत मुरली मधु पीवत, चाहत अपनौ ऐन ॥
भ्रकुटि मनौ कर चाप आपु लै, भयौ सहायक मैन ।
सूरदास-प्रभु-अधर-सुधा-लगि, उपज्यौ कठिन कुचैन ॥
॥१३७७॥१९९५॥

राग केदारौ

नैननि निरखि हरि कौ रूप ।
चित्त दै मुख चितै माई, कमल ऐन अनूप ॥
कुटिल केस सुदेस अलिगन, नैन सरद-सरोज ।
मकर-कुंडल-किरनि की छबि, दुरत फिरत मनोज ॥
अरुन अधर, कपोल, नासा सुभग, ईषद हास ।
दसन दामिनि, लजत नव ससि, भ्रकुटि मदन-बिलास ॥
अंग अंग अनंग जीते, रुचिर उर बनमाल ।
सूर सोभा हृदय पूरन, देत सुख गोपाल ॥
॥१३७८॥१९९६॥

राग केदारौ

हरि कौ बदन रूप-निधान।
दसन दाड़िम-बीज राजत, कमल-कोष समान॥
नैन पंकज रुचिर द्वै दल, चलन भौंहनि बान।
मध्य स्याम सुभाग मानौ, अली बैठ्यौ आन॥
मुकुट कुंडल-किरनि करननि, किये किरनि की हान।
नासिका, मृग-तिलक ताकत, चिबुक चित्त भुलान॥
सूर के प्रभु निगम बानी, कौन भाँति बखान॥
॥१३७९॥१९९७॥

राग नट

माधौ जु के बदन की सोभा।
कुटिल कुंतल कमल प्रति, मनु मधुप रस-लोभा॥
भ्रकुटि इमि नव कंज पर जनु, सरत् चंचल मीन।
मकर-कुंडल-छवि किरनि-रवि, परसि बिगसित कीन॥
सुरभि रेनु पराग-रंजित, मुरलि-धुनि, अलि-गुंज।
निरखि सुभग सरोज मुदित, मराल-सम सिसु-पुंज॥
दसन दामिनि बीच मिलि, मनु जलद मध्य प्रकास।
निगम बानी नेति क्यौं कहि सकै सूरजदास॥
॥१३८०॥१९९८॥

राग नट

देखि री देखि मोहन-ओर।
स्याम-सुभग-सरोज-आनन, चारु, चित के चोर॥
नील तनु मनु जलद की छवि, मुरलि-सुर घन-घोर।
दसन दामिनि लसति बसननि, चितवनी झकझोर॥
स्रवन कुंडल गंड मंडल, उदित ज्यौं रवि भोर।
बरहि-मुकुट बिसाल माला, इंद्र-धनु-छवि-थोर॥
धातु-चित्रित बेष-नटवर, मुदित नवल किसोर।
सूर स्याम सुभाइ आतुर, चितै लोचन-कोर॥
॥१३८१॥१९९९॥

राग कल्यान

माधौ जू के तन की सोभा, कहत नहीं बनि आवै।
अँचवत सादर दोउ लोचन-पुट, मन नाहीं तृपितावै॥

सघन मेघ अति स्याम सुभग बपु, तड़ित बसन, बन माल।
सिर-सिपंड, बन-धातु बिराजत सुमन सुरंग प्रवाल॥
कछुक कुटिल कमनीय सघन अति गोरज-मंडित केस।
अंबुज रुचि पराग पर मानौ, राजत मधुप सुदेस॥
कुंडल लोल कपोल किरनि-गन, नैन कमल-दल, मीन।
अधर मधुर मुसुकानि मनोहर, करत मदन-मन हीन॥
प्रति प्रति अंग अनंग-कोटि-छबि, सुनि सखि परम-प्रबीन।
सूर दृष्टि जहँ जहाँ परति, तहँ तहीं रहति ह्वै लीन॥
॥१३८२॥२०००॥

राग हमीर

चितवनि, मैं कि चंद्रिका मैं किधौं, मुरली माँझ ठगौरी।
देखत सुनत मोहैं जिहिं, सुर, नर, मुनि मृग और खगौरी॥
जब तैं दृष्टि परे मन मोहन, गृह मेरौ मन न लगौरी।
सूर स्याम-बिनु छिनु न रहौं मैं, मन उन हाथ पगौ री॥
॥१३८३॥२००१॥

राग कल्यान

लाल कौ रूप माधुरी, निरखि नैंकु सखी री।
मनसिज-मनहरनि हाँसि, साँवरौ सुकुमार रासि, नख सिख अँग
अंग निरखि,सोभा-सीव नखी री॥
रँग मँगि सिर सुरँग पाग, लटकि रही बाम भाग, चंपकली
कुटिल अलक, बीच-बीच रखी री।
आयत दृग अरुन लोल, कुंडल मंडित कपोल, अधर दसन दीपति-
छबि क्यौंहुँ न जाति लखी री।
अभपद भुजदंड मूल, पीन अंस सानुकूल, कनक-मेखला दुकूल,
दामिनी धरखी री।
उर पर मंदार-हार, मुक्ता-लरबर सुढार, मत्त-द्विरद-गति तियनि
की देह दसा करषी री।
मुकुलित बय नव किसोर, बचन-रचन चितहिं चोर, माधुरी
प्रकास मंजरी अनूप चखी री।
सूर स्याम अति सुजान, गावत कल्यान तान, सप्त सुरनि कल
तिहि पर मुरलिका बरषी री॥१३८४॥२००२॥

राग गौरी

आवत वन तैं साँझ, देख्यौ मैं गाइनि माँझ, काहू कौ ढोटा री
जाकैं सीस मोर-पखियाँ ।
अतिसी कुसुम तन, दीरघ चंचल नैन, मानौ रिस भरि के लरति
जुग झखियाँ ॥
केसरि की खौरि किये, गुंजा वनमाल हियैं, उपमा न कहि आवै
जेती तेती नखियाँ ।
राजति पीत पिछौरी, मुरली बजावै गौरी, धुनि सुनि भईं बौरी,
रहौं तकि अँखियाँ ॥
चल्यौ न परत पग, गिरि परी सूधैं मग, भामिनी भवन ल्याई
कर गहे कँखियाँ ।
सूरदास प्रभु चित चोरि लियौ मेरैं जान, और न उपाउ दाँउ
सुनौ मेरी सखियाँ ॥१३८५॥२००३॥

वृषभासुर-वध *राग देवगधार*

इक दिन हरि हलधर सँग ग्वारन । प्रात चले गोधन वन चारन ॥
कोउ गावत, कोउ वेनु बजावत । कोउ सिंगी कौ नाद सुनावत ॥
खेलत हँसत गए वन महियाँ । चरन लगीं जित तित सब गइयाँ ॥
हरि ग्वालनि मिलि खेलन लागे । सूर अमंगल जग के भागे ॥
॥१३८६॥२००४॥

राग सोरठ

इहिं अंतर वृषभासुर आयौ ।
देखे नंद-सुवन बालक सँग, यहै घात उहिं पायौ ॥
गयौ समाइ धेनु-पति ह्वै कै, मन मैं दाउँ विचारे ।
हरि तबहीं लखि लियौ दुष्ट कौं, डोलत धेनु बिडारै ॥
गइयाँ विझुकि चलीं जित तित कौं, सखा जहाँ तहँ घेरैं ।
वृषभ शृंग सौं धरनि उकासत, बल-मोहन-तन हेरै ॥
आवत चल्यौ स्याम कैं सन्मुख, निदरि आपु अगुसारी ।
कूदि पर्‌यौ हरि ऊपर आयौ, कियौ जुद्ध अति भारी ॥
धाइ परे सब सखा हाँक दै, वृषभ स्याम कौं मार्‌यौ ।
पाउँ पकरि भुज सौं गहि फेर्‌यौ, भूतल माहिं पछार्‌यौ ॥

परथौ असुर पर्बत समान ह्वै, चकित भए सब ग्वाल।
बृषभ जानि कै हम सब धाए, यह तो कोउ बिकराल॥
देखि चरित्र जसोमति सुत के, मन मैं करत बिचार।
सूरदास-प्रभु असुर-निकंदन, संतनि-प्रान-अधार॥
॥१३८७॥२००५॥

राग गौरी

धन्य कान्ह धनि धनि ब्रज आए।
आजु सबनि धरि कै यह खातौ, धनि तुम हमहिं बचाए॥
यह ऐसौ तुम अतिहिं तनक से, कैसैं भुजनि फिरायौ।
पलकहिं माँझ सबनि कैं देखत, मारथौ, धरनि गिरायौ॥
अब लौं हम तुमकौं नहिं जान्यौ, तुमहिं जगत-प्रतिपालक।
सूरदास-प्रभु असुर-निकंदन, ब्रज-जन के दुख-घालक॥
॥१३८८॥२००६॥

राग कल्यान

आवत मोहन धेनु चराए।
मोर-मुकुट सिर, उर बनमाला, हाथ लकुट, गो-रज लपटाए॥
कटि कछनी किंकिनि-धुनि बाजति, चरन चलत नूपुर रव लाए।
ग्वाल-मंडली-मध्य स्यामघन, पीत बसन दामिनिहिं लजाए॥
गोप सखा आवत गुन गावत, मध्य स्याम हलधर छबि छाए।
सूरदास-प्रभु असुर सँहारे, ब्रज आवत मन हरष बढ़ाए॥
॥१३८९॥२००७॥

राग कल्यान

ये लखि आवत मोहनलाल।
स्याम सुभग घन, तड़ित बसन, बग-पंगति, मुक्ता-माल॥
गो-पद-रज मुख पर छबि लागति, कुंडल नैन बिसाल।
बल मोहन बन तैं बने आवत लीन्हे गैया जाल॥
ग्वाल मंडली मध्य बिराजत, बाजत बेनु रसाल।
सूर स्याम बन तैं ब्रज आए, जननि लिये अँक माल॥
॥१३९०॥२००८॥

राग कान्हरौ

तेरौ माई गोपाल रन-सूरौ।
जहँ-जहँ भिरत प्रचारि, पैज करि, तहीं परत है पूरौ॥
वृषभ-रूप दानव इक आयौ, सो छन माहिं सँहारयौ।
पाउँ पकरि भुज सौं गहि वाकौं, भूतल माहिं पछारयौ॥
कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया, बड़ौ पूत तैं जायौ।
यह कोउ आहि पुरुष अवतारी, भाग हमारैं आयौ॥
चरन-कमल रज वंदत रहियै, अनुदित सेवा कीजै।
वारंवार सूर के प्रभु की, हरपि बलैया लीजै॥
॥१३६१॥२००९॥

राग सोरठ

जसुमति वार-वार पछितानी।
सुनी करतूति वृषासुर की, जब ग्वाल कही मुख वानी॥
गैयनि भीतर आइ समान्यौ, कान्हहिं मारन ताक्यौ।
मैं नहि काहू को कछु घाल्यौ, पुन्यनि करवर नाक्यौ॥
सुनि जसुमति मैया, कत खीझति, हरि के भाएँ ख्याल।
परवत तुल्य देह धारी कौं, पल में कियौ विहाल॥
तुम्हरी रच्छा कौं यह नाहीं, यह ब्रज कौ रखवार।
सूरदास मन मोह्यौ सब कौ, मोहन नंद-कुमार॥
॥१३६२॥२०१०॥

राग सारं

हमहिं उर कौन कौ रे भैया।
डोलत फिरत सकल बृंदावन, जाके मीत कन्हैया॥
जब-जब गाढ़ परति है हमकौं, तब करि लेत सहैया।
चिरजीवहु जसुमति सुत तेरे, हरि-हलधर दोउ भैया॥
इनतैं बड़ौ और नहिं कोऊ, येइ सब देत बड़ैया।
सूर स्याम सन्मुख जे आए, ते सब स्वर्ग चलैया॥
॥१३६३॥२०११॥

राग कान्हरौ

हँसि जननी सौं बात कहत हरि, देख्यौ मैं बृंदावन नीके।
अति रमनीक भूमि द्रुम वेली, कुंज सघन निरखत सुख जी के॥

जमुना कैं तट धेनु चराई, कहत बात माता-मन नीके।
भूख मिटी बन-फल के खाएँ, मिटी प्यास जमुना-जल पीके॥
सुनति जसोदा सुत की बातैं, अति आनंद मगन तब ही के।
सूरदास-प्रभु बिस्व-भरन ये, चोर भए ब्रज तनक दही के॥
॥१३६४॥२०१२॥

राग कान्हरौ

गोबिंद गोकुल जीवन मेरे।
जाहि लगाइ रही तन-मन-धन, दुख भूलत मुख हेरै॥
जाके गर्व बढ्यौ नहिं सुरपति, रह्यौ सात दिन घेरे।
ब्रज-हित नाथ गोबर्धन धार्‌यौ, सुभग भुजनि नख नेरैं॥
जाकौ जस रिषि गर्ग बखान्यौ, कहत निगम नित टेरे।
सोइ अब सूर सहित सकर्षन, पाए जतन घनेरे॥
॥१३६५॥२०१३॥

केशी-बध

राग मारू

असुर-पति अतिहीं गर्व धर्‌यौ।
सभा-माँझ बैठ्यौ गर्जत है, बोलत रोष भर्‌यौ॥
महा-महा जे सुभट दैत्य-कुल, बैठे सब उमराव।
तिहूँ भुवन भरि गम है मेरौ, मो सन्मुख को आउ॥
मो समान सेवक नहिं मेरैं, जाहि कहौं कछु दाउ।
काहि कहौं, को ऐसौ लायक, तातैं मोहिं पछिताउ॥
नृपतिराइ आयसु दै मोकौं, ऐसौ कौन बिचार।
तुम अपनैं चित सोचत जाकौं, असुरनि के सरदार॥
ज्यौं करि क्रोध जाहि तन ताकौ, ताकौ है संहार।
मथुरा-पति यह सुनि हरषित भयौ, मनहिं धर्‌यौ आभार॥
स्वेत छत्र फहरात सीस पर, धुज पताक, बहु बान।
ऐसौ को जो मोहिं न जानत, तिहूँ भुवन मो आन॥
असुर बंस जे महाबली सब, कहौं काहि ह्वाँ जान।
तनक-तनक से महर-ढुटौना, करि। आवै बिनु प्रान॥
यह कहि कंस चितै केसी-तन, कह्यौ जाइ करि काज।
तृनावर्त, सकटाऽरु पूतना, उनके कृत सुनि लाज॥

तो तैं कछु ह्वै है मैं जानत, धरि आनै ज्यौं वाज ।
छल बल छल करि मारि तुरत हीं, लै आवहु अब आज ॥
अति गर्वित ह्वै कह्यो असुर भट, कितिक वात यह आहि ।
कै मारौं, जीवत धरि ल्यावौं, एक पलक मैं ताहि ॥
आज्ञा पाइ असुर तब धायौ, मन मैं यह अवगाहि ।
देखौं जाइ कौन यह ऐसौ, कंस डरत है जाहि ॥
यह कहि कै आयौ व्रज भीतर, करत बड़ौ उतपात ।
नर-नारी सब देखत डरपे, भयौ बड़ौ संताप ॥
हरि ताकौ दै सैन बुलायौ, मो पै काहे न आवत ।
तब वह दोऊ हाथ उठाएँ, आयौ हरि दिसि धावत ॥
हरि दोउ हाथ पकरि कै ताकौं, दियौ दूरि फटकारि ।
गिर्‌यौ धरनि पर अति बिह्वल ह्वै, रही न देह सँभारि ॥
बहरौ उठ्यौ सँभारि असुर वह, धायौ निज मुख बाई ।
देखि भयानक रूप असुर का, सुर नर गए डराइ ॥
दाउँ-घात सब भाँति करत है, तब हरि बुद्धि उपाइ ।
एक हाथ मुख-भीतर नायौ, पकरि केस घिसियाइ ॥
चहुँधा फेरि, असुर गहि पटक्यौ, सब्द उठ्यौ आघात ।
चौंकि पर्‌यौ कंसासुर सुनिकै, भीतर चल्यौ परात ॥
यह कोउ भलौ नहीं व्रज जनम्यौ, यातैं बहुत डरात ।
जान्यौ कंस असुर गहि पटक्यौ, नंद महर कैं तात ॥
पुहुप वृष्टि देवनि मिलि कीन्ही, आनँद मोद बढ़ाए ।
व्रज-जन, नंद-जसोदा हरषे, सूर सुमंगल गाए ॥
॥१२१६॥२०१४॥

ब्योमासुर-बध — *राग बिलावल*

हरि ग्वालनि मिलि खेलन लागे, बन मैं आँखि मिचाई ।
सिसु ह्वै ब्योमासुर तहँ आयौ, काहूँ जानि न पाई ॥
ग्वाल-रूप धरि खेलन लाग्यौ, ग्वालनि कौं लै जाई ।
धरै दुराइ कंदरा-भीतर, जानी बात कन्हाई ॥
गुदी चाँपिकै ताहि निपात्यौ, धरनि पर्‌यौ मुरछाई ॥
सूर ग्वाल मिलि हरि गृह आए, दिव दुंदुभी बजाई ॥
॥१२१७॥२०१५॥

राग कान्हरी

कहति जसोदा बात सयानी।
भावी नहीँ मिटै काहू की, करता की गति जाति न जानी॥
जन्म भयौ जब तैँ ब्रज हरि कौ, कहा कियौ करि करि रखवानी।
कहाँ कहाँ तैँ स्याम न उबर्‌यौ, किहिँ राख्यौ तिहि औसर आनी॥
केसी सकट ऽरु वृषभ पूतना, तृनावर्त की चलति कहानी।
को मेरैँ पछिताइ मरै अब, अनजानत सब करी अयानी॥
लै बलाइ छाती सौं लाए, स्याम राम हरषित नँद-रानी।
भूखे गए प्रात अधखातहिँ, तातैं आजु बहुत पछितानी॥
रोहिनि लियौ न्हवाइ दुहुँनि कौं, भोजन कौं माता अतुरानी।
ल्याई परसि दुहुँनि की थारी, जैँवत बल मोहन रुचि मानी॥
माँगि लियौ सीतल जल अँचयौ, मुख धोयौ चुरुवनि लै पानी।
बीरा खात दोउ बीरा जब, दोउ जननी मुख देखि सिहानी॥
रत्न-जटित पलिका पर पौढ़े, बरनि न जाइ कृष्न-रजधानी।
सूरदास कछु जूठनि माँगत, तब पाऊँ कहि दीजै बानी॥
॥१३६८॥२०१६॥

पनघट-लीला

राग बिलावल

हरि त्रिलोक-पति पूरनकामी। घट-घट व्यापक अंतरजामी॥
ब्रज-जुवतिनि को हेत बिचार्‌यौ। जमुना कैँ तट खेल पसार्‌यौ॥
काहू की गगरी ढरकावैँ। काहू की इँडुरी फटकावैँ॥
काहू की गागरि धरि फोरैँ। काहू के चित चितवत चोरैँ॥
या बिधि सबके मनहिं मनावैँ। सूर स्याम-गति कोउ न पावैँ॥
॥१३९९॥२०१७॥

राग अडाना

हौं गई जमुन-जल साँवरे सौं मोही।
केसरि की खौरि, कुसुम की दाम अभिराम, कनक-दुलरि कंठ, पीतांबर खोही॥
नान्ही नान्ही बूँदनि मैं, ठाढ़ौ गावै मीठी तान, मैं तौ लालन की छवि, नैंकहू न जोही।
सूर स्याम सुरि मुसुक्यानि, छवि अँखियानि रही हौं न जान्यौ री कहाँ ही और कोही॥१४००॥२०१८॥

राग अड़ाना

चटकीलौ पट लपटानौ कटि पर, वंसीवट जमुना कैं तट
राजत नागर नट।
मुकुट की लटक, मटक भृकुटी की लोल, कुंडल चटक आछी,
सुवरन की लुकट॥
उर सोहै वनमाल, कर टेके द्रुम डाल टेढ़े ठाढ़े नंदलाल सोभा भई
घट घट।
सूरदास-प्रभु की वानक देखैं गोपी ग्वाल निपट निकट, पट आवै
सौंधे की लपट॥१४०१॥२०१६॥

राग सुघरई

मृदु मुरली की तान सुनावै, इहिं विधि कान्ह रिझावै।
नटवर-वेष वनाए ठाढ़ौ, वन-मृग निकट बुलावै॥
ऐसौ को जो जाइ जमुन तैं, जल भरि घर लै आवै।
मोर-मुकुट, कुंडल, वनमाला, पीतांवर फहरावै॥
एक अंग सोभा अवलोकन, लोचन जल भरि आवै।
सूर स्याम के अंग-अंग-प्रति, कोटि काम-छवि छावै॥
॥१४०२॥२०२०॥

राग पूर्वी

पनघट रोके रहत कन्हाई।
जमुना-जल कोउ भरन न पावै, देखत हीं फिरि जाई॥
तवहिं स्याम इक बुद्धि उपाई, आपुन रहे छपाई।
तट ठाढ़े जे सखा संग के, तिनकौं लियौ बुलाई॥
वैठारयौ ग्वालनि कौं द्रुम-तर, आपुन फिरि-फिरि देखत।
वड़ी वार भई कोउ न आई, सूर स्याम मन लेखत॥
॥१४०३॥२०२१॥

राग देवगंधार

जुवति इक आवति देखी स्याम।
द्रुम कैं ओट रहे हरि आपुन, जमुना-तट गई वाम॥
जल हलोरि गागरि भरि नागरि, जवहीं सीस उठायौ।
घर कौं चली जाइ ता पाछैं, सिर तैं घट ढरकायौ॥

चतुर ग्वालि कर गह्यौ स्याम कौ कनक-लकुटिया पाई।
औरनि सौं करि रहे अचगरी, मोसौं लगत कन्हाई ॥
गागरि लै हँसि देत ग्वारि-कर, रीतौ घट नहिं लैहौं।
सूर स्याम ह्याँ आनि देहु भरि, तबहिं लकुट कर दैहौं ॥
॥१४०४॥२०२२॥

राग कल्यान

घट मेरौ जबहीं भरि दैहौ, लकुटी तबहीं दैहौं।
कहा भयौ जौ नंद बड़े, वृषभानु-आन न डरैहौं ॥
एक गाँवँ इक ठाँवँ बास, तुम कै हौ क्यौं मैं सैहौं ?
सूर स्याम मैं तुम न डरैहौं, ज्वाब स्वाल कौ दैहौं ॥
॥१४०५॥२०२३॥

राग कल्यान

घट भरि देहु लकुट तब दैहौं।
हौं हूँ बड़े महर की बेटी, तुम सौं नहीं डरैहौं ॥
मेरी कनक-लकुटिया दै री, मैं भरि दैहौं नीर।
बिसरि गई सुधि ता दिन की तोहिं, हरे सबनि के चीर ॥
यह बानी सुनि ग्वारि बिबस भई तनकी सुधि बिसराई।
सूर लकुट कर गिरत न जानी, स्याम ठगौरी लाई ॥
॥१४०६॥२०२४॥

राग हमीर

घट भरि दियौ स्याम उठाइ।
नैंकु तन की सुधि न ताकौं, चली ब्रज-समुहाइ ॥
स्याम सुंदर नैन-भीतर, रहे आनि समाइ।
जहाँ-जहँ भरि दृष्टि देखै, तहाँ-तहाँ कन्हाइ ॥
उतहिं तैं इक सखी आई, कहति कहा भुलाइ।
सूर अबहीं हँसत आई, चली कहा गवाँइ ॥
॥१४०७॥२०२५॥

राग टोड़ी

री हौं स्याम मोहिनी घाली।
अबहिं गई जल भरन अकेली, हरि-चितवनि उर साली ॥

कहा कहौं कछु कहत न आवै, लगी मरम की भाली।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, बिबस भई हौं आली॥
॥१४०८॥२०२६॥

राग धनाश्री

सुनत बात यह सखि अतुरानी।
ताहि॰ बाहँ गहि घर पहुँचाई, आपु चली जमुना कौं पानी॥
देखे आइ वहाँ हरि नाहीं, चितवति जहाँ-तहाँ वितत्तानी।
जल भरि ठठुकति चली घरहिं तन, बार-बार हरि कौं पछितानी॥
ग्वालिनि बिकल देखि हरि प्रगटे, हरष भयौ तन-तपति बुझानी।
सूर स्याम अंकम भरि लीन्ही, गोपी-अंतरगत की जानी॥
॥१४०६॥२०२७॥

राग आसावरी

मिलि हरि सुख दियौ तिहिं बाल।
तपति मिटि गई प्रेम छाकी, भई रस बेहाल॥
मग नहीं डग धरति नागरि, भवन गई भुलाइ।
जल भरन ब्रजनारि आवति, देखि ताहि बुलाइ॥
जाति कित ह्वै डगर छाँड़े, कह्यौ इत कौं आइ।
सूर प्रभु कैं रंग राँची, चितै रही चितलाइ॥
॥१४१०॥२०२८॥

राग धनाश्री

काहू तोहिं ठगौरी लाई।
बूझति सखी सुनति नहिं नैंकुहुँ, तुहीं किधौं ठगमूरी खाई॥
चौंकि परी सपनैं जनु जागी, तब बानी कहि सखिनि सुनाई।
स्याम बरन इक मिल्यौ ढुटौना, तिहिं मोकौं मोहिनी लगाई॥
मैं जल भरे इतहिं कौं आवति, आनि अचानक अंकम लाई।
सूर ग्वारि सखियनि के आगैं, बात कहति सब लाज गँवाई॥
॥१४११॥२०२६॥

राग टोड़ी

आवति ही जमुना भरि पानी।
स्याम बरन काहू कौ ढोटा, निरखि बदन घर-गैल भुलानी॥

मैं उन तन उन मोतन चितयौ, तबहीं तैं उन हाथ बिकानी।
उर धकधकी, टकटकी लागी, तन व्याकुल, मुख फुरति न बानी॥
कह्यौ मोहन मोहिनि तू को है, मोहि नाहीं तोसौं पहिचानी।
सूरदास-प्रभु मोहन देखत, जनु बारिध जल-बूँद हिरानी॥
॥१४१२॥२०३०॥

राग धनाश्री

नैंकु न मन तैं टरत कन्हाई।
इक ऐसैंहि छकि रही स्याम-रस, तापर इहिं यह बात सुनाई॥
वाकौं सावधान करि पठयौ, चली आपु जल कौं अतुराई।
मोर मुकुट पीतांबर काछे, देख्यौ कुँवर नंद कौ जाई॥
कुंडल झलकत ललित कपोलनि, सुंदर नैन बिसाल सुहाई।
कह्यौ सूर-प्रभु ये ढंग सीखे, ठगत फिरत हौ नारि पराई॥
॥१४१३॥२०३१॥

राग धनाश्री

"कहा ठग्यौ, तुम्हरौ ठगि लीन्हौ ?"
क्यौं नहिं ठग्यौ और कह ठगिहौ, औरहि के ठग चीन्हौ" ॥
"कहौ नाम धरि कहा ठगायौ, सुनि राखैं यह बात।
ठग के लच्छन माहिं बतावहु, कैसे ठग के घात ?"
"ठग के लच्छन हमसौं सुनियै, मृदु मुसुकनि चित चोरत।
नैन-सैन दै चलत सूर-प्रभु, तन त्रिभंग करि मोरत॥"
॥१४१४॥२०३२॥

राग सूही

अतिहिं करत तुम स्याम अचगरी।
काहू की छीनत हौ इँडुरी, काहू की फोरत हौ गगरी॥
भरन देहु जमुना-जल हमकौं, दूरि करो ये बातैं लँगरी।
पँड़े चलन न पावै कोऊ, रोकि रहत लरिकनि लै डगरी॥
घाट-बाट सब देखति आवति, जुवती डरनि मरति हैं सगरी।
सूर स्याम तेहिं गारी दीजै, जो कोउ आवै तुम्हरी बगरी॥
॥१४१५॥२०३३॥

राग रामकली

नीकैं देहु न मेरी गिंडुरी।
लै जैहैं धरि जसुमति आगैं, आवहु री सब मिलि इक झुँड री ॥
काहूँ नहीं डरात कन्हाई, बाट-घाट तुम करत अचगरी।
जमुना-दह गिंडुरी फटकारी, फोरी सब मटुकी अरु गगरी ॥
भली करी यह कुँवर कन्हाई, आजु मेटिहैं तुम्हरी लँगरी।
चलीं सूर जसुमति के आगैं, उरहन लै ब्रज-तरुनी सगरी ॥
॥१४१६॥२०३४॥

राग टोड़ी

आनि देहु गेंडुरी पराई।
तेरौ कोऊ कहा करैगौ, लरिहैं हम सौं भगिनी माई ॥
मेरे सँग की और गईं लै जल भरि, धरि, घर तैं फिरि आईं।
सूर स्याम गेंडुरी दीजियै, न तु जसुमति सौं कैहौं जाई ॥
॥१४१७॥२०३५॥

राग धनाश्री

आपुन चढ़े कदम पर धाई।
बदन सकोरि भौंह मोरत हैं, हाँक देत करि नंद-दुहाई ॥
जाइ कहौ मैया के आगैं, लेहु सबै मिलि मोहिं बँधाई।
मोकौं जुरि मारन जब आईं, तब दीन्ही गेंडुरी फटकाई ॥
ऐसैं करि मोकौं तुम पायौ, मनु इनकी मैं करौं चेराई।
सूर स्याम वे दिन बिसराए, जब बाँधे तुम ऊखल लाई ॥
॥१४१८॥२०३६॥

राग आसावरी

इहँइ रहौ तौ बदौं कन्हाई।
आपु गईं जसुमतिहिं सुनावन, दै गईं स्यामहिं नंद-दुहाई ॥
महरि मथति दधि सदन आपनैं, इहिं अंतर जुवती सब आईं।
चितै रही जुवतिनि कौं आवत, कह आवति हैं भीर लगाई ! ॥
मैं जानति इनकौं हरि खिझयौ, तातैं सब उरहन लै धाईं।
सूरदास रिस भरी ग्वालिनी, ऐसौ ढीठ कियौ सुत माई ॥
॥१४१९॥२०३७॥

राग बिलावल

सुनहु महरि तेरौ लाड़िलौ, अति करत अचगरी।
जमुन भरन जल हम गईँ, तहँ रोकत डगरी॥
सिरतैं नीर ढराइ दै, फोरी सब गगरी।
गेंडुरि दई फटकारि कै, हरि करत जु लँगरी॥
नित प्रति ऐसे ढँग करै, हमसौं कहै धगरी।
अब बस-बास बनै नहीं, इहिं तुव ब्रज-नगरी॥
आपु गयौ चढ़ि कदम पर, चितवत रहीं सगरी।
सूर स्याम ऐसैंहि सदा, हम सौं करै झगरी॥
॥१४२०॥२०३८॥

राग रामकली

सुत कौं बरजि राखहु महरि।
डगर चलन न देत काहुँहिं, फोरि डारत डहरि॥
स्याम के गुन कछु न जानति, जाति हम सौं गहरि।
इहै लालच गाइ दस लिये, बसति हैं ब्रज-ठहरि॥
जमुन-तट हरि देखि ठाढ़े, डरनि आवैं बहरि।
सूर स्यामहिं नैंकु बरजौ करत हैं अति चहरि॥
॥१४२१॥२०३९॥

राग रामकली

तुम सौं कहत सकुचतिं महरि।
स्याम के गुन कछु न जानति, जाति हम सौं गहरि।
नैकुहूँ नहिं सुनति स्रवनति, करत हैं हरि चहरि।
जल भरन कोउ नाहिं पावति, रोकि राखत डहरि॥
अजगरी अति करत मोहन, फटकि गेंडुरि दहरि।
सूर प्रभु कौं कहा सिखयौ, रिसनि जुवती झहरि॥
॥१४२२॥२०४०॥

राग धनाश्री

कहा करौं मोसौं कहौ सबहीं।
जौ पाऊँ तौ तुमहिं दिखाऊँ, हा हा करिहै अबहीं॥

तुमहूँ गुन जानति हौ हरि के ऊखल बाँधे जबहीं।
साँटिया लै मारन जब लागी, तब बरज्यौ मोहिं सबहीं॥
लरिकाई तैं करत अचगरी, मैं जाने गुन तबहीं।
सूर हाल कैसे करि हौं धरि, आवै तौ हरि अबहीं॥
॥१४२३॥२०४१॥

राग सारंग

मैं जानति हौं ढीठ कन्हाई।
आवन तौ घर देहु स्याम कौं, कैसी करौं सजाई॥
मोसौं करत ढिठाई मोहन, मैं वाकी हौं माई।
और न काहू कौं वह मानै, कछु सकुचत बल भाई॥
अब जौ जाउँ कहा तिहिं पाऊँ, कासौं देइ धराई।
सूर स्याम दिन दिन लंगर भयौ, दूरि करौं लँगराई॥
॥१४२४॥२०४२॥

राग सूही

जुवति बोधि सब घरहिं पठाई।
यह अपराध मोहिं बकसौ री, यहै कहति हौं मेरी माई॥
इत तैं चलीं घरनि सब गोपी, उत तैं आवत कुँवर कन्हाई।
बीचहिं भेंट भई जुवतिनि हरि, नैननि जोरत गईं लजाई॥
जाहु कान्ह महतारी टेरति, बहुत बड़ाई करि हम आईं।
सूर स्याम मुख निरखि कह्यौ हँसि, मैं कैहौं जननी समुझाई॥
॥१४२५॥२०४३॥

राग नट

सकुचत गए घर कौं स्याम।
द्वारेहीं तैं निरखि देख्यौ, जननि लागी काम॥
यहै बानी कहति मुख तैं, कहाँ गयौ कन्हाइ।
आपु ठाढ़े जननि-पाछैं, सुनत हैं चित लाइ॥
जल भरन जुवती न पावैं, घाट रोकत जाइ।
सूर सब की फोरि गागरि, स्याम जाइ पराइ॥
॥१४२६॥२०४४॥

राग नट नारायन

जसुमति यह कहि कै रिस पावति ।
रोहिनि करति रसोई भीतर, कहि-कहि ताहि सुनावति ॥
गारी देत बहु बेटिनि कौं, वे धाई ह्याँ आवति ।
हा हा करति सबनि सौं मैं हीं, कैसैंहु खूँट छुड़ावति ॥
जाति पाँति सौं कहा अचगरी, यह कहि सुतहिं घिरावति ।
सूर स्याम कौं सिखवति हारी, मारेहुँ लाज न आवति ॥
॥१४२७॥२०४५॥

राग सारंग

तू मोहीं कौं मारन जानति ।
उनके चरित कहा कोउ जानै, उनहिं कही तू मानति ॥
कदम-तीर तैं मोहिं बुलायौ, गढ़ि-गढ़ि बातैं बानति ।
मटकत गिरी गागरी सिर तैं, अब ऐसी बुधि ठानति ॥
फिरि चितई तू कहाँ रह्यौ कहि, मैं नहिं तोकौं जानति ।
सूर सुतहिं देखतही रिस गई, मुख चूमति उर आनति ॥
॥१४२८॥२०४६॥

राग गौरी

झूठहिं सुतहिं लगावति खोरि ।
मैं जानति उनके ढँग नीके, बातैं मिलवति जोरि ॥
वै सब जोबन-मद की माती, मेरौ तनक कन्हाई ।
आपुन फोरि गागरी सिर तैं, उरहन लीन्हे आईं ॥
तू उनकैं ढिग जात कनाहि है, वे पापिनि सब नारि ।
सूर स्याम अब कह्यौ मानि तू, हैं सब ढीठि गँवारि ॥
॥१४२९॥२०४७॥

राग अड़ानौ

मोहन बालगुबिंदा माई, मेरौ कह जानै खोरि ।
उरहन लै जुवती सब आवतिं, झूठी बतियाँ जोरि ॥
कोऊ कहति गेंडुरी लीन्ही, कोउ कहैं गागरि फोरी ।
कोऊ चोली हार बतावति, कान्हहुँ तैं ये भोरी ॥

अब आवैं जौ उरहन लै कै, तौ पठवौं मुख मोरि।
सूर कहाँ मेरौ तनक कन्हाई, आपुन जोबन-जोरि॥
॥१४३०॥२०४८॥

राग कान्हरौ

ब्रज-घर-घर यह बात चलावत।
जसुमति कौ सुत करत अचगरी, जमुना-जल कोउ भरन न पावत॥
स्याम बरन नटवर बपु काछे, मुरली राग मलार बजावत॥
कुंडल-छबि रबि-किरनहुँ तैं दुति, मुकुट इंद्र-धनुहूँ तैं भावत॥
मानत काहु न करत अचगरी, गागरि धरि जल भुइँ ढरकावत॥
सूर स्याम कौं मात पिता दोउ, ऐसे ढँग आपुनहिं पढ़ावत॥
॥१४३१॥२०४९॥

राग गौरी

करत अचगरी नंद महर कौ।
सखा लिये जमुना-तट बैठ्यौ, निबह न लोग डगर कौ॥
कोउ खीझौ, कोऊ किन बरजौ, जुवतिनि कैं मन ध्यान।
मन-बच-कर्म स्याम सुंदर तजि, और न जानतिं आन॥
यह लीला सब स्याम करत हैं, ब्रज-जुवतिनि कैं हेत।
सूर भजै जिहिं भाव कृष्न कौं, ताकौं सोइ फल देत॥
॥१४३२॥२०५०॥

राग गौरी

जमुना-जल कोउ भरन न पावै।
आपुन बैठ्यौ कदम-डार चढ़ि, गारी दै-दै सबनि बुलावै॥
काहू की गगरी गहि फोरै काहूँ सिर तैं नीर ढरावै।
काहू सौं करि प्रीति मिलत है, नैन-सैन दै चितहिं चुरावै॥
बरबस ही अँकवारि भरत धरि, काहू सौं अपनौ मन लावै।
सूर स्याम अति करत अचगरी, कैसैहुँ काहू हाथ न आवै॥
॥१४३३॥२०५१॥

राग धनाश्री

ब्रज-ग्वैंड़ैं कोउ चलन न पावत।
ग्वाल सखा सँग लीन्हे डोलत दै-दै हाँक जहाँ-तहँ धावत॥

काहू की इँडुरी फटकारत, काहू की गगरी ढरकावत।
काहू कौं गारी दै भाजत, काहू कौं अंबर भरि लावत॥
काहूँ मोहिं मानत ब्रज-भीतर, नंद महर कौ कुँवर कहावत।
सूर स्याम नटवर-वपु काछे, जमुना कैं तट मुरलि बजावत॥
॥१४३४॥२०५२॥

राग टोड़ी

गोकुल के च्वैंड़ैं एक साँवरौ सौ ढोटा माई, आँखिनि कैं पैंड़ैं पैठि
जीके पैंड़े पर्यौ है।
फल न परत छिन गृह भयौ बन-सम, तन-मन-धन-प्रान सरबस
हर्यौ है॥
भवन न भावै माई, आँगन न रह्यौ जाइ, करैं हाय हाय, देखौ
जैसे हाल कर्यौ है।
सूरदास-प्रभु नीकैं गावत मधुर सुर, मानौ मुरली मैं लै पीयूष-
रस भर्यौ है॥१४३५॥२०५३॥

राग नट

राधा सखिनि लई बुलाइ।
चलौ जमुना-जलहिं जैयै, चलीं सब सुख पाइ॥
सबनि इक-इक कलस लीन्हौ, तुरत पहुँची जाइ।
तहाँ देख्यौ स्याम सुंदर, कुँवरि मन हरषाइ॥
नंद-नंदन देखि रीझे, चितै रहे चितलाइ।
सूर प्रभु की प्रिया राधा, भरति जल मुसुकाइ॥
॥१४३६॥२०५४॥

राग गूजरी

घरहिं चलीं जमुना-जल भरि कै।
सखिनि बीच नागरी बिराजति, भई प्रीति उर हरि कैं॥
मंद-मंद गति चलत अधिक छबि, अंचल रह्यौ फहरि कै।
मोहन कौं मोहिनी लगाई, संगहिं चले डगरि कै॥
बेनी की छबि कहत न आवै, रही नितंबनि ढरि कै।
सूर स्याम प्यारी कैं बस भए, रोम-रोम रस भरि कै॥
॥१४३७॥२०५५॥

राग जैतश्री

नागरि गागरि जल भरि ल्यावै।
सखियनि बीच भरयौ घट सिर पर, तापर नैन चलावै॥
डुलत ग्रीव, लटकति नक-बेसरि, मंद-मंद गति आवै।
भृकुटी धनुष, कटाच्छ बान, मनु पुनि-पुनि हरिहिं लगावै॥
जाकौं निरखि अनंग अनंगित, ताहि अनंग बढ़ावै।
सूर स्याम प्यारी-छवि निरखत, आपुहिं धन्य कहावै॥
॥१४३८॥२०५६॥

राग जैतश्री

गागरि नागरि लै पनघट तैं, चली घरहिं कौं आवै।
ग्रीवा डोलति, लोचन लोलति, हरि के चितहिं चुरावै॥
ठठकति चलै, मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै।
मनहुँ काम-सेना अँग-सोभा, अंचल धुज फहरावै॥
गति गयंद, कुच कुंभ, किंकिनी मनहुँ घंट झहनावै।
मोतिनि हार जलाजल मानौ, खुभी दंत झलकावै॥
चंदक मनहुँ महाउत मुख पर, अंकुस बेसरि लावै।
रोमावली सूँड तिरनी लौं, नाभि-सरोवर आवै॥
पग जेहरि जंजीरनि जकरयौ, यह उपमा कछु भावै।
घट-जल छलकि कपोलनि कनिका, मानौ मदहिं चुवावै॥
बेनी डोलति दुहुँ नितंबनि, मानहुँ पुच्छ हलावै।
गज-सरदार सूर कौ स्वामी, देखि देखि सुख पावै॥
॥१४३९॥२०५७॥

राग जैतश्री

सखियनि बीच नागरी आवै।
छवि निरखत रीझयौ नँद-नंदन, प्यारी मनहिं रिझावै॥
कबहुँक आगैं, कबहुँक पाछैं, नाना भाव बतावै।
राधा यह अनुमान करै, हरि, मेरे चितहिं चुरावै॥
आगैं जाइ कनक लकुटी लै, पंथ सँवारि बनावै।
निरखत जहाँ छाह प्यारी की, तहँ लै छाँह छुवावै॥
छवि निरखत तन वारत अपनौ, नागरि-जियहिं जनावै।
अपने सिर पीतांबर वारत, ऐसैं रुचि उपजावै॥

ओढ़ि उढ़नियाँ चलत दिखावत, इहिं मिस निकटहिं आवै।
सूर स्याम ऐसे भावनि सौं, राधा-मनहिं रिझावै॥
॥१४४०॥२०५८॥

राग सारंग

लगन लागन नहिं पावत स्याम।
अब इक भाव कियौ कछु ऐसौ, प्यारी-तन उपजायौ काम॥
मिस करि निकट आइ मुख हेर्‌यौ, पीतांबर डार्‌यौ सिर वारि॥
यह छल करि मन हर्‌यौ कन्हाई, काम-विबस कीन्ही सुकुमारि॥
पुलकि अंग, अँगिया दरकानी, उर आनँद अंचल फहरात।
गागरि ताकि काँकरी मारै, उचटि-उचटि लागति प्रिय-गात॥
मोहन मन मोहिनी लगाई, सखिनि संग पहुँची घर जाइ।
सूरदास प्रभु सौं मन अँटक्यौ, देह-गेह की सुधि बिसराइ॥
॥१४४१॥२०५९॥

राग नट

ग्वारिनि जमुन चलीं बहोरि।
ताहि सब-मिलि कहति आवहु, कछुक कहति निहोरि॥
ज्वाब देति न हमहि नागरि, रही आनन मोरि।
लगि रही, मन कहा सोचति, काहु लियौ कछु चोरि।
भुजा धरि कर कह्यौ चलहि न आवैं अबहीं खोरि।
सूर प्रभु के चरित सखियनि, कहति लोचन ढोरि॥
॥१४४२॥२०६०॥

राग मलार

गैल न छाँड़ै साँवरौ, क्यौं करि पनघट जाउँ।
इहिं सकुचनि डरपति रहौं, धरे न कोऊ नाउँ॥
जित देखौं तित देखियै, रसिया नंद-कुमार।
इत उत नैन चुराइ कै, पलकनि करत जुहार।
लकुट लियै आगैं चलै, पंथ सँवारत जाइ।
मोहिं निहोरौ लाइकै, फिरि चितवै मुसुकाइ॥
जमुना-जल भरि गागरी, जब सिर धरौं उठाइ।
क्यौं कंचुकि अँचरा उड़ै, हियरा तकि ललचाइ॥

गागरि मारे काँकरी, लागै मेरैं गात।
गैल माँझ ठाढ़ौ रहै, खूटै आवत जात॥
हौं सकुचनि बोलौं नहीं, लोक-लाज की संक।
मोतन छूवै वैहर चलै, ताहि भरत है अंक॥
निकट आइ मुख निरखि कै, सकुचै बहुरि निहारि॥
औ ढँग ओढ़ै ओढ़नी, पीतांबर सुहि वारि॥
जब कहुँ लग लागै नहीं, वाकौ जिय अकुलाइ।
तब हाठि मेरी छाँह सौं, राखे छाँह छुवाइ॥
को जानै कित होत है, घर गुरुजन कौ सोर।
मेरौ जिय गाँठो बँध्यौ, पीतांबर कौं छोर।
अब लौं सकुच अँटकि रही, प्रगट करौं अनुराग।
हिलि मिलि कै सँग खेलिहौं, मानि आपनो भाग।
घर घर ब्रजबासी सबै, कोउ किन कहै पुकारि।
गुप्त प्रीति परगट करौं, कुल की कानि निवारि।
जब लगि मन मिलयौ नहीं नची चोप कै नाच।
सूर स्याम-सँगही रहौं करौं, मनोरथ साँच॥
॥१४४३॥२०६१॥

राग कान्हरौ

मोहन बिन मन न रहै, कहा करौं माई (री)
कोटि भाँति करि रही नहीं, मानै समुझाई (री)
लोक-लाज कौन काज, मन मैं नहिं आई (री)
हिरदे तैं टरत नाहिं, ऐसी मोहनि लाई (री)
सुंदर बर त्रिभंगी नवरंगी सुखदाई (री)
सूरदास प्रभु बिनु रह्यौ, मोपै नहिं जाई (री)
॥१४४४॥२०६२॥

राग सूही

नंद कौ नंदन साँवरौ, मेरौ मन चोरे जाइ।
रूप अनूप दिखाइ कै, सखि वह औचक गयौ आइ।
मोर मुकुट कुंडल स्रवन, सिर पीतांबर फहराइ।
अधरनि पर मुरली धरे, मृदु मधुरी तान बजाइ॥

चंदन की खौरी किये तन, कटि काछनी बनाइ।
सूरज-प्रभु बैठे लखे मैं जमुना-तीर कन्हाइ ॥
॥१४४५॥२०६३॥

राग गौरी

परी तब तैं ठगमूरि ठगौरी।
देख्यौ मैं जमुना-तट बैठौ, ढोटा जसुमति कौरी ॥
अति साँवरो भरयौ सौ साँचैं, कीन्हे चंदन-खौरी।
मनमथ कोटि-कोटि गहि वारौं, ओढ़े पीत पिछौरी ॥
दुलरी कंठ, नयन रतनारे, मो मन चितै हरयौ री।
विकट भृकुटि की ओर कोर तैं, मन्मथ-बान धरयौ री ॥
दमकत दसन कनक-कुडल-मुख, मुरली गावत गौरी।
स्रवननि सुनत देह-गति भूली, भई विकल मति-बौरी ॥
नहिं कल परति बिना दरसन तैं, नैननि लगी ठगौरी।
सूर स्याम तैं चित न टरत कहुँ, निसि-दिन रहत लगौ री॥
॥१४४६॥२०६४॥

राग कल्यान

जुवति इक जमुना-जल कौं आई।
निरखत अंग-अंग-प्रति सोभा, रीझे कुँवर कन्हाई ॥
गोरे बदन, चूनरी सारी, अलकैं मुख बगराई।
डारनि चरि चरि चुरी विराजति, कर-कंकन झलकाई ॥
सहज सिंगार उठत जोबन तन, विधि निज हाथ बनाई।
सूर स्याम आए ढिग आपुन, घट भरि चली झमकाई ॥
॥१४४७॥२०६५॥

राग गौरी

ग्वारि घट भरि चली झमकाइ।
स्याम अचानक लट गहि कही अति, कहा चली अतुराइ।
मोहन कर तिय-मुख की अलकैं, यह उपमा अधिकाइ।
मनौ सुधा ससि राहु चुरावत, धरयौ ताहि हरि आइ ॥
कुच परसे, अंकम भरि लीन्ही, अति मन हरष बढ़ाइ।
सूर स्याम मनु अमृत-घटनि कौं, देखत हैं कर लाइ ॥
॥१४४८॥२०६६॥

राग कल्यान

छाँड़ि देहु मेरी लट मोहन।
कुच परसत पुनि-पुनि सकुचत नहिं, कत आई तजि गोहन॥
जुवती आनि देखिहै कोऊ, कहति बंक करि भौंहन।
बार-बार कही बीर-दुहाई, तुम मानत नहिं सौंहन॥
इतनै हीं कौं सौंह दिवावति, मैं आयौ मुख जोहन।
सूर स्याम नागरि बस कीन्ही, विबस चली घर कोह न॥
॥१४४९॥२०६७॥

राग धनाश्री

चली भवन मन हरि हरि लीन्हौं।
पग द्वै जाति ठठकि फिरि हेरति, जिय यह कहति कहा हरि कीन्हौं॥
मारग भूलि गई जिहिं आई, आवत कै नहिं पावति चीन्हौं।
रिस करि खीझि-खीझि लट झटकति, स्याम-भुजनि छुटकायौ ईन्हौं।
प्रेम-सिंधु मैं मगन भई तिय, हरि कैं रंग भयौ उर लीनौ।
सूरदास-प्रभु सौं चित अँटक्यौ, आवत नहिं इत उतहिं पतीनौ॥
॥१४५०॥२०६८॥

राग गौरी

घर गुरुजन की सुधि जब आई।
तब मारग सूझ्यौ नैननि कछु, जिय अपनैं तिय गई लजाई।
पहुँची आइ सदन ज्यौं-त्यौं करि, नैकु न चित तैं टरत कन्हाई।
सखी संग की बूझन लागीं, जमुना-तट अति गहर लगाई॥
औरै दसा भई कछु तेरी, कहति नहीं हमसौं समुझाई।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, सूर स्याम मोहिनी लगाई॥
॥१४५१॥२०६९॥

राग गौरी

सुनहु सखी री वा जमुना-तट।
हौं जल भरति अकेली पनिघट, गही स्याम मेरी लट॥

लै गगरी सिर, मारग डगरी, उन पहिरे पीरे पट ।
देखत रूप अधिक रुचि उपजी, काछ्रु बनी किंकिनि-रट ॥
फूल हिएँ ग्वालिनि कैं, ज्यौं रन जीते फिरे महाभट ।
सूर लह्यौ गोपाल-अलिंगन, सुफल किये कंचन-घट ॥
॥१४५२॥२०७०॥

राग सोरठ

कैसैं जल भरन मैं जाउँ ।
गैल मेरी पर्‌यौ सखि री, कान्ह जाकौ नाउँ ॥
घर तैं निकसत बनत नाहीं, लोक-लाज लजाउँ ।
तन इहाँ, मन जाइ अँटक्यौ, नंद-नंदन-ठाउँ ॥
जौ रहौं घर बैठि कै तौ, रह्यौ नाहिन जाइ ।
सीख तैसी देहु तुमहीं, करौं कहा उपाइ ॥
जात बाहिर बनत नाहीं, घर न नैकु सुहाइ ।
मोहिनी मोहन लगाई, कहति सखिनि सुनाइ ॥
लाज अरु मरजाद जिय लौं, करति हौं यह सोच ।
जाहि बिनु तन प्रान छाँड़े, कौन बुधि यह पोच ॥
मनहिं यह परतीति आनी, दूरि करिहौं दोच ।
सूर प्रभु हिलि मिलि रहौंगी, लाज डारौं मोच ॥
॥१४५३॥२०७१॥

राग आसावरी

कहा कहौं सखि कहत बनै नहिं, नंद-नँदन मेरौ मन जु हर्‌यौ ।
मात-पिता-पति-बंधु-सकुच तजि, मगन भई नहि सिंधु तर्‌यौ ॥
अरुन अधर, जुग नैन रुचिर रुचि, मदन मुदित मन संग लर्‌यौ ।
देह-दसा, कुल-कानि-लाज तजि, सहज सुभाउ रह्यौ सु धर्‌यौ ॥
आनँद-कंद चंद-मुख निसि दिन अवलोकन यह अमल पर्‌यौ ।
सूरदास प्रभु-सौं मेरी गति, जनु लुब्धक-कर मीन चर्‌यौ ॥
॥१४५४॥२०७२॥

राग नट

मेरौ हरि नागर सौं मन मान्यौ ।
मन मोह्यौ सुंदर ब्रज-नायक, भली भई सब जग जान्यौ ॥

बिसरी देहु, गेह सुधि बिसरी, बिसरि गई कुल की कान्यौ।
सूर आस पूजौं या मन की, तब भावै भोजन पान्यौ॥
॥१४५५॥२०७३॥

राग रामकली

सखी मोहि हरि दरस कौ चाउ।
साँवरे सौं प्रीति बाढ़ी, लाख लोग रिसाउ॥
स्यामसुंदर कमल-लोचन, अंग अगनित भाउ।
सूर हरि कैं रूप राँची, लाज रहौ कि जाउ॥
॥१४५६॥२०७४॥

राग काफी

मोही सजनी साँवरैं (मोहिं) गृह बन कछु न सुहाइ।
जमुन भरन जल मैं (तहँ) स्याम मोहिनी लाइ।
ओढ़े पीरी पामरी (हो) पहिरे लाल निचोल।
भौंहैं काँट कटीलियाँ (मोहिं) मोल लियौ बिनु मोल॥
मोर-मुकुट सिर राजई (हो) अधर धरे मुख-चैन।
हरि की मूरति माधुरी (तिहिं) लागि रहे दोउ नैन॥
मदन-मुरति कैं बस भई (अब) भलौ बुरौ कहै कोइ।
सूरदास प्रभु कौं मिली (करि) मन एकै तन दोइ॥
॥१४५७॥२०७५॥

राग रामकली

मेरैं जिय ऐसी आनि बनी।
बिनु गोपाल और नहिं जानौं, सुनि मोसौं सजनी॥
कहा काँच के संग्रह कीन्हैं, डारि अमोल मनी।
बिष-सुमेरु कछु काज न आवै, अंमृत एक कनी।
मन-बच-क्रम मोहिं और न भावै, मेरे स्याम धनी।
सूरदास-स्वामी कैं कारन, तजी जाति अपनी॥
॥१४५८॥२०७६॥

राग गूजरी

दृढ़ करि धरी अब यह बानि।
कहा कीजै सो नफा, जिहिं होइ जिय की हानि॥

लोक-लज्जा काँच किरचैं, स्याम-कंचन-खानि।
कौन लीजै, कौन तजियै, सखि तुमहिं कहौ जानि॥
मोहिं तौ नहिं और सूझत बिना मृदु मुसुक्यानि॥
रंग कापै होत न्यारौ, हरद चूनौ सानि।
इहै करिहौं और तजिहौं, परी ऐसी आनि।
सूर प्रभु पतिवर्त्त राखौं, मेटि कै कुल-कानि॥
॥१४५६॥२०७७॥

दान-लीला *राग बिलावल*

भक्तनि के सुखदायक स्याम। नारी पुरुष नहीं कछु काम॥
संकट मैं जिनि जहाँ पुकार्यौ। तहाँ प्रगटि तिनकौं उद्धार्यौ॥
सुख भीतर जिनि सुमिरन कीन्हौ। तिनकौं दरस तहाँ हरि दीन्हौ॥
दुख सुख मैं जो हरि कौं ध्यावैं। तिनकौं नैंकु न हरि बिसरावैं॥
चित दै भजै कौनहूँ भाउ। ताकौं तैसौ त्रिभुवन-राउ॥
कामातुर गोपी हरि ध्यायौ। मन-बच-क्रम हरि सौं चित लायौ॥
षट ऋतु तप कीन्हौ तनु गारी। होहिं हमारे पति गिरिधारी॥
अंतरजामी जानी सबकी। प्रीति पुरातन पाली तब की॥
बसन हरे गोपिनि सुख दीन्हौ। सुख दै सब कौ मन हरि लीन्हौ॥
जुवतिनि कैं यह ध्यान सदाई। नैंकु न अंतर होहिं कन्हाई॥
घाट बाट जमुना-तट रोकैं। मारग चलत जहाँ तहँ टोकैं॥
काहू की गागरि धरि फोरैं। काहू सौं हँसि बदन सकोरैं॥
काहू कौं अंकम भरि भेटैं। काम बिथा तरुनिनि की मेटैं॥
ब्रह्मा कीट आदि के स्वामी। प्रभु हैं निर्लोभी, निहकामी॥
भाव-बस्य सँगहीं सँग डोलैं। खेलैं हँसैं तिनहिं सौं बोलैं॥
ब्रज-जुवती नहिं नैंकु बिसारैं। भवन-काज, चित हरि सौं धारैं॥
गोरस लै निकसैं ब्रज-बाला। तहाँ तिनहिं देखैं गोपाला॥
अँग-अँग सजि सिंगार वर कामिनि। चलैं मनौ जूथनि जुरि दामिनि॥
कटि किंकिनि नूपुर बिछिया-धुनि। मनहुँ मदन के गज-घंटा सुनि॥
जाति माट मटुकी सिर धरि कै। मुख-मुख गान करत गुन हरि कै॥
चंद-बदनि तन अति सुकुमारी। अपनैं मन सब कृष्न-पियारी॥
देखि सबनि रीझे बनवारी। तब मन मैं इक बुद्धि बिचारी॥
अब दधि-दान रचौं इक लीला। जुवतिनि संग करौं रस-क्रीला॥

सूर स्याम सँग सखनि बुलायौ। यह लीला कहि सुख उपजायौ ॥
॥१४६०॥२०७८॥

राग धनाश्री

सुनत हँसी सुख होहिं, दान दही कौ लाग्यौ।
निसि दिन मथुरा बेचैं, स्याम दान अब माँग्यौ ॥
प्रात होत उठि कान्ह, टेरि सब सखा बुलाए।
तेइ तेइ लीन्हे साथ, मिले जे प्रकृति बनाए ॥
डगरि गए अनजानहीं, गह्यौ जाइ बन-घाट।
पेड़ पेड़ तर कै लगे, ठाढ़ि ठगनि कौ ठाट ॥
इहाँ ग्वालि बनि बानि, जुरीं सब सखी सहेली।
सिरनि लिए दधि दूध, सबै जोबन अलबेली ॥
हँसति परस्पर आपु मैं, चली जाहिं जिय भोर।
जबहिं आनि घातहिं परीं, (तब) छेंकि लिए चहुँ ओर ॥
देखि अचानक भीर भई, सब चकित किसोरी।
ज्यौं मृग-सावक-जूथ मध्य बागुर चहुँ ओरी ॥
संकित ह्वै ठाढ़ी भईं, हाथ-पाँव नहिं डोल।
मनहु चित्र की सी लिखी, मुखहिं न आवे बोल।
तब उठि बोले ग्वाल, डरहु जिनि कान्ह-दुहाई।
ठग तसकर कोउ नाहिं, दानि जदुपति सुखदाई।
आवत निसि दिनहीं रहौ, स्याम-राज भय नाहिं।
जो कछु लागै दान कौ, घाटि देहु तिहिं माहिं ॥
तब हँसि बोलीं ग्वालि, नाम जब कान्ह सुनायौ।
चोरी भर्यौ न पेट, आनि अब दान लगायौ ॥
तब उलटी पलटी फबी, जब सिसु रहे कन्हाइ।
अब कछु उहि धोखैं करौ (तौ) छिनक माहि पति जाइ ॥
तब उठि बोले कान्ह, रहीं तुम पोच सदाई।
महर-महरि-मुख पाइ, संक तजि करहु ढिठाई ॥
अब वह धोखौ मेटि कै, छाँड़ि देहु अभिमान।
करि लेखौ अब दान कौ, दियैं पाइ हौ जान ॥
तब हँसि बोलीं ग्वालि, डरनि तुम तजी ढिठाई।
बहुतै नंद निकाज, भयौ तुव तप-अधिकाई ॥

काल्हिहिं घर-घर डोलते, खाते दही चुराइ।
राति कछू सपनौ भयौ, प्रात भई ठकुराइ॥
भली कही नहिं ग्वारि, बात कौ भेद न पायौ।
पिता-रचित धन धाम, पुत्र के काजहि आयौ॥
तुमसे प्रजा बसाइ कै, राखे हैं इहिं ठाइ॥
ते तुम हम सरबस भई (अब) मिलहु छाँड़ि चतुराइ॥
तब झुकि बोली ग्वालि, बात किन कहौ सँभारैं।
ऐसौ को बढ़ि गयौ, प्रजा ह्वै बसै तुम्हारैं॥
हमहूँ तुम नृप कंस के, बसैं वास इक ठाउँ।
देखौ धौं घर जाइकै, (हम) तजैं तुम्हारौ गाउँ॥
गाउँ हमारौ छाँड़ि, जाइ बसिहौ किहिं केरैं।
तीनि ल कौन, जीव नाहिंन बस मेरैं॥
कंसहिं को गनती गनै, जाकौ हमहि कहाहु।
दिये दान पै बाँचिहौ, नातरु नहीं निबाहु॥
छोटे मुँह बड़ी बात, कहौ किन आपु सम्हारे।
तीन लोक अरु कंस, कबहि बस भए तुम्हारे॥
यह बानी तासौं कहौ, जो कोउ होइ अजान।
जैसे हौ जू रावरे, हम जानतिं परवान॥
लेखौ जैहै भूलि, कहूँ की बात चलावत।
झूठी मिलवत आनि, सुनत हमकौं नहिं भावत॥
हम सौं लीजै दान के, दाम सबै परखाइ।
थैली माँगि पठाइयै, पीतांबर फटि जाइ॥
काहे कौं सतराति, बात मैं साँची भाषत।
झूठहि सब तुम ग्वारि, बात मेरी गहि नाखत॥
कह्यौ मानि लेखौ करौ देहु हमारौ दान।
सौंह बबा मोहिं नंद की, ऐसैं देहुँ न जान॥
नंद-दुहाई देत, कहा तुम कंस-दुहाई।
काहे कौं अँठिलात, कान्ह छाँड़ो लरिकाई॥
पहिली परिपाटी चलौ, नई चले क्यौं आजु।
नृपति जानि जो पावही, बहुरौ होइ अकाजु॥
लरिका मोकौं कहति, नाहिं देखी लरिकाई।
पय पीवत संहारि पूतना स्वर्ग पठाई॥

अघा बका सकटा हने, केसी मुख कर नाइ।
गिरि गोबर्धन कर धस्यौ, यह मेरी लरिकाइ॥
सबै भली तुम करी, हमैं अब कहत कहा हो।
हमकौं होति अवार, दही लै जाहि इहा हो॥
हँसी पलक द्वै चारि की, बीतन लागे जाम।
बन मैं राखीं रोकि कै, नारि पराई स्याम॥
हँसी करति हो तुमहिं, भली गई मति ब्रजनारी।
तुम हमकौं, हम तुमहिं, दई बिनु काजहिं गारी॥
बात कहौ कछु जानि कै, बृथा बढ़ावति सोर।
सदा जाहु चोरटि भई, आजु परीं फग मोर॥
माँगि लेहु दधि देहिं, दान कौ नाम मिटावहु।
ऐसे देहि न नैंकु, कहा हमकौं डरपावहु॥
हमहिं कहत हौ चोरटी, आपु भए अब साहु।
चोरी करत बड़े भए, मही छाँछ लै खाहु॥
दही लेत हौं छीनि, दान अंगनि कौ लेहौं।
लैहौं रूपहि दान, दान जोबन पै कैहौं॥
तुम सब कंचन-भार ले, मेरैं मारग जाहु।
मही दही दिखरावहू, कैसें होत निबाहु॥
जाहु भले हो कान्ह, दान अँग अँग कौ माँगत।
हमरौ जोबन-रूप, आँखि इनकी गड़ि लागत॥
सबै चलीं झहराइ कै, मटुकी सीस उठाइ॥
रिस कसि कटि पीत पट, ग्वालि गही हरि धाइ।
मटुकी लई छुड़ाइ, हार चोली-बँद तोस्यो।
भुज भरि धरि अँकवारि, बाँह गहि कै झकझास्यो॥
माखन दधि लियौ छीनि कै, कह्यौ ग्वाल सब खाहु।
मुख झिगरति आनंद उर, धिरवति हैं घर जाहु।
देखौ हरि कौ काम, हार चाली-बँद तोस्यो।
हम कौं भरि अँकवारि, बाँह धरि-धरि झकझोस्यौ॥
जसुमति सौं कहियै चलौ, अब प्रगटो तरुनाइ।
दधि माखन सब छीनि लै, ग्वालिनि दए खवाइ॥
जाइ कहौ जू भली, बात सैया के आगैं।
तुम क्यौं जोबन-रूप-दान, देतीं नहिं माँगैं॥

तुम जो कैहौ जाइकै जननी नहीं पत्याइ।
सूर सुनहु री ग्वालिनी आवहुगी पछिताइ॥
॥१४६१॥२०७६॥

राग काफी

ऐसौ दान माँगियै नहिं जौ, हम पैं दियौ न जाइ।
बन मैं पाइ अकेली जुवतिनि, मारग रोकत धाइ॥
घाट बाट औघट जमुना-तट, बातैं कहत बनाइ।
कोऊ ऐसौ दान लेत है, कौनैं पठए सिखाइ॥
हम जानतिं तुम यौं नहि रैहौ, रहिहौ गारी खाइ।
जो रस चाहौ सो रस नाहीं, गोरस पियौ अघाइ॥
औरनि सौं लै लीजै मोहन, तब हम देहिं बुलाइ।
सूर स्याम कत करत अचगरी, हम सौं कुँवर कन्हाइ॥
॥१४६२॥२०८०॥

राग नट

दान लेहु घर जान देहु, काहे कौं कान्ह देत हौ गारी।
जो कछु कहै करैं हम सोई, इहिं मारग आवैं बजमारी॥
भली करी दधि माखन खायौ, चोली हार तोरि सब डारी।
जोबन-दान कहूँ कोउ माँगत, यह सुनि-सुनि अति लाजनि मारी॥
होति अबार दूरि घर जैबौ, पैयाँ लगैं डरति हैं भारी।
सूर स्याम काहे कौं झगरौ, तुम सुजान हम ग्वारि गँवारी॥
॥१४६३॥२०८१॥

राग भैरव

भोरहिं कान्ह करत कत झगरौ।
औरनि छाँड़ि परे हठ हमसौं दिन प्रति कलह करत गहि डगरौ॥
बिनु बोहनी तनक नहिं दैहौं, ऐसैं छीनी लेहु बरु सगरौ।
सब कोउ जात मधुपुरी बेंचन, कौनैं दियौ दिखावहु कगरौ॥
इहाँ दान काहे कौं लागत, कौनैं दियौ अबै धौं पगरौ।
आँचर ऐंचि ऐंचि राखत हौ, जान देहु अब होत है दगरौ॥
सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौ, छाँड़िहु दए परत नहिं डगरौ।
परम मगन ह्वै रही चितै मुख, सब तैं भाग याहि कौ अगरौ॥
॥१४६४॥२०८२॥

राग कान्हरौ

लैहौं दान सब अंगनि कौ।
अति मद गलित ताल-फल तैं गुरु, इन जुग उरज उतंगनि कौ ॥
खंजन, कंज, मीन, मृग-सावक, भँवरज बर भुव भंगनि कौ।
कुंदकली, बंधूक, बिंब-फल बर, ताटंक तरंगनि कौ।
सूरदास-प्रभु हँसि बस कीन्हौ, नायक कोटि अनंगनि कौ ॥
॥१४६५॥२०८३॥

राग काफी

कान्ह भले हौ भले हौ।
अंग-दान हमसौं तुम माँगत, उलटी रीति चले हौ ॥
कौन दोष तुम माखन छीन्यौ, औरहिं भाव मिले हौ।
दान लेन कछु कहत हौ, कौनी प्रकृति हिले हौ ॥
तोर्‍यौ हार चीर गहि फार्‍यौ, बोलत बोल ठिले हौ।
ऐसौ हाल हमारौ कीन्हौ, जाति हुतौं दहि लै हौ ॥
हम हैं तुम्हरे गाँव ठाँव की, याही तैं गहिले हौ।
सूरदास प्रभु और भए अब, तुम न होहु पहिले हौ ॥
॥१४६६॥२०८४॥

राग पूरबी

तू मोसौं (दधि) दान माँगि किन, (सूधैं) लेइ नद के लाला।
ऐसी बातनि झगरौ ठानत, मूरख तेरौ कौन हवाला ॥
नंद महर की कानि करति हौं, छाँड़ि देहु तुम ऐसे ख्याला।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, हँसत नैंकु भई ग्वारि बिहाला ॥
॥१४६७॥२०८५॥

राग गूजरी

सूधैं दान न काहैं लेत।
और अटपटी छाँड़ि नंद-सुत, रहहु कँपावत बेत ॥
बृंदाबन की बीथिनि तकि-तकि, रहत गुमान समेत ॥
इन बातनि पति नाहिंन पैयत, जानि न होहु अचेत ॥
अबलनि रबकि-रबकि पकरत हौ, मारग चलन न देत।
सो तो तुम कछु कहि न जनावत, कहा तुम्हारौ हेत ॥

आजु न जान देउँ री ग्वारिनि, बहुत दिननि कौ नेत।
सूरदास-प्रभु कुंज-भवन चले, जोरि उरनि नख देत ॥
॥१४६८॥२०८६॥

राग कान्हरौ

जोवन-दान लेउँगौ तुम सौं।
जाकैं बल तुम बदति न काहुहिं, कहा दुरावति हमसौं ॥
ऐसौ धन तुम लिये फिरति हौ, दान देत सतराति।
अतिहिं गर्ब तैं कह्यौ न मोसौं, नित प्रति आवति जाति ॥
कंचन-कलस महारस भारे, हमहूँ तनक चखावहु।
सूर सुनौ बिन दिये दान के, जान नहीं तुम पावहु ॥
॥१४६९॥२०८७॥

राग कान्हरौ

कहा कहत तू नंद-ढुटौना।
सखी सुनहु री बातैं जैसी, करत अतिहिं अचँभौना ॥
बदन सकोरत, भौंह मरोरत, नैननि मैं कछु टौना।
जोवन-दान कहा धौं माँगत, भई कहूँ नहिं होना ॥
हम कहैं बात सुनहु मनमोहन, कालिह रहे तुम छौना।
सूर स्याम गारी कह दीजै, यह बुधि है घर-खोना ॥
॥१४७०॥२०८८॥

राग पूरबी

ऐसैं जनि बोलहु नँद-लाला।
छाँड़ि देहु अँचरा मेरौ नीकैं, जानत और सी बाला ॥
बार-बार मैं तुमहिं कहति हौं, परिहौ बहुरि जँजाला।
जोवन, रूप देखि ललचाने, अबहीं तैं ये ख्याला ॥
तरुनाई तनु आवन दीजै, कत जिय होत बिहाला।
सूर स्याम उर तैं कर टारहु, टूटै मोतिनि-माला ॥
॥१४७१॥२०८९॥

राग सुघरई

कहा प्रकृति परी कान्ह तुम्हारी, कत राखत हौ घेरे।
जे बतियाँ तुम हँसि-हँसि भाषत, ह्वै है चलैं चहुँफेरे ॥

अब सुनिहैं यह बात आजु की, कान्ह जुवति सब नेरे।
सकुचति हैं घर घर घैरा कौं, नैकुँ लाज नहिं तेरे॥
अतिहिं अबेर भई घर छाँड़े, चितै हँसति मुख हेरे।
सूरदास-प्रभु भुकत कहा हो, चेरी हैं कहु केरे॥
॥१४७२॥२०६०॥

राग टोड़ी

कहा कहत तुम सौं मैं ग्वारिनि।
दान देहु सब जाहु चली घर अति, कत होति गँवारिनि॥
कबहूँ बातनि हीं घर खोवति, कबहुँ उठति दै गारिनि।
लीन्हे फिरति रूप त्रिभुवन कौ, री नोखी बनजारिनि॥
पैलौ करति, देति नहिं नीकैं, तुम हौ बड़ी बजारिनि।
सूरदास ऐसौ गथ जाकैं, ताकैं बुद्धि पँसारिनि?॥
॥१४७३॥२०६१॥

राग पुरिय

कान्ह अब लँगराई हौं जानी।
माँगत दान दही कौ अबलौं, अब कछु औरै ठानी॥
औरनि सौं तुम कहा लियौ है, हमहिं दिखावहु आनी।
माँगत हे दधि सो हम दीन्हौ, कहा कहत यह बानी॥
छाँड़ि देहु अँचरा फटि जैहै, तुमकौं हम पहिचानी।
सूर स्याम तुम रति-पति-नागर, नागरि अतिहिं सयानी॥
॥१४७४॥२०६२॥

राग कान्हरौ

लैहौं दान सब अंग अंग कौ।
गोरैं भाल लाल सेंदुर छबि, मुक्ता बर सिर सुभग मंग कौ॥
नकबेसरि खुटिला, तरिवनि कौ, गर हमेल, कुच जुग उतंग कौ।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी-उर, मानिक-मोती-हार रंग कौ॥
बहु नग जरे जराऊ अँगिया, भुजा बहूँटनि, बलय संग कौ।
कटि किंकिनि कौ दान जु लैहौं, जिनही रीझत मन अनंग कौ॥
जेहरि पग जकर्‌यौ गाढ़ैं मनु, मंद-मंद गति इहिं मतंग कौ।
जोबन रूप अंग पाटंबर, सुनहु सूर सब इहिं प्रसंग कौ॥
॥१४७५॥२०६३॥

राग टोड़ी

(अरी यह) ढीठ कन्हाई बोलि न जानै, बरबस झगरौ ठानै।
ओछ आवत सोई कहि डारत, अति निधरक अनुमानै॥
अंग-अंग के दान लेत, नहिं घर के कौं पहिचानै।
हम दधि बेचन जाति हैं मारग, रोकि रहत नहिं मानै॥
ऐसी बात सम्हारि कहौ, हरि, हम तुमकौं पहिचानै।
सूर स्याम जो हमसो माँगत, और तियनि सो बानै॥
॥१४७६॥२०६४॥

राग मलार

तोहि कारी कामरि लकुटि अब भूलि गई, नव पीतांबर दुहुँ करनि विलासी।
गोकुल की गायनि चराइबौ है छाँड़ि दयो, नवलनि संग डोलै परम बिलासी॥
गोरस चुरा खाइ वदन दुराइ राखै, मन न धरत बृंदावन कौ मवासी।
सूर स्याम तोहि घर-घर सब जानत है, इहाँ बलि को है सो तिहारी जो है दासी॥
॥१४७७॥२०६५॥

राग मलार

नंद महर के सुत करत अचगरी।
बन-बन फिरत गो चारत बजाइ बेनु, बातैं वे भुलाईं दानी भए गहि डगरी॥
बन मैं पराई नारि, रोकि राखी बनवारि, जान नहिं देत हौ जू कौन ऐसी लँगरी।
माँगत जोबन दान, भले हौ जू भले कान्ह, मानत न कंस-आन, बसि ब्रज-नगरी।
कबहुँ गहत दधि-मटुकी अचानक ही, कबहुँ गहत हौ अचानक ही गगरी।
सूर स्याम ब्रज-बाम जहँ तहँ खिझावत, ज्यौं मन भावत दूरि करी लग सगरी॥ १४७८॥२०६६॥

राग पूरबी

तुम कबके जु भए हौ दानी ।
मटुकी फोरि, हार गहि तोर्‌यौ, इन बातनि पहिचानी ॥
नंद महर की कानि करति हौं, न तु करती मेहमानी ।
भूलि गए सुधि ता दिन की, जब बाँधे जसुदा रानी ॥
अब लौं सह्यौ तुम्हारौ ढीठौ, तुम यह कहत डरानी ।
सूर स्याम कछु करत न बनिहै, नृप पावै कहुँ जानी ॥
॥१४७६॥२०६७॥

राग पूरबी

दधि-मटुकी हरि छीनि लई ।
हार छोरि चोली-बँद तोर्‌यो, जोबन कैं बल ढीठि भई ॥
ज्यौंहीं ज्यौं हम सूधैं बोलत, त्यौंहीं त्यौं अति सतरि गई ।
बाद करति अबहीं रोवहुगी, बार-बार कहि दई-दई ।
अंस परायौ देहु न नीकैं माँगत हीं सब करति खई ।
सूर सुनहु मैं कहत अजहुँ लौं, प्रीति करहु, जु भई सुभई ॥
॥१४८०॥२०६८॥

राग काफी

कन्हैया हार हमारौ देहु ।
दधि, लवनी, घृत जो कछु चाहौ, सो तुम ऐसैंहि लेहु ॥
कहा करौं दधि-दूध तिहारौ, मोसौं नाहिंन काम ।
जोबन-रूप दुराइ धर्‌यौ है, ताकौ लेति न नाम ॥
नीके मन ह्वै माँगत तुम सौं, बैर नहीं तुम नाखति ।
सूर सुनहु री ग्वारि अयानी, अंतर हमसौं राखति ॥
॥१४८१॥२०६९॥

राग गौरी

हमकौं लाज न तुमहिं कन्हाई ।
जौ हम इहिं मारग सब आईं, तौ तुम हम सौं करत ढिठाई ॥
हा हा करतिं, पाइ तुव लागतिं, रीती मटुकी देहु मँगाई ।
काकौ बदन प्रातहीं देख्यौ, घर तैं हम छींकतहु न आईं ॥

उतहिं जाति हौं सखी सहेली, मैं हौं सबकौं इतहिं फिराई।
सूर स्याम अधमई हमहिं सब, लागै तुमकौं सकल भलाई ॥
॥१४८२॥२१००॥

राग बिलावल

मैं भरुहाएँ लागत हौं।
कनक-कलस-रस मोहिं चखावहु, मैं तुमसौं माँगत हौं ॥
उहीं ढंग तुम रहे कन्हाई, उठीं सबै झिझकारि।
लेहु असीस सबनि के मुख तैं, कतहिं दिवावति गारि ॥
नीकैं देहु हार दधि-मटुकी, बात कहन नहिं जानत।
कैहैं जाइ जसोदा सौं, प्रभु सूर अचगरी ठानत ॥
॥१४८३॥२१०१॥

राग बिलावल

हार तोरि बिथराइ दयौ।
मैया पै तुम कहन चलीं कत, दधि-माखन सब छीनि लयौ ॥
रिस करि धाइ कंचुकि फारी, अब तौ मेरौ नाउँ भयौ।
कालिह नहीं इहिं मारग ऐहौ, ऐसौ मोसौं बैर ठयौ ॥
भली बात घर जाहु आजु तुम, माँगत जोबन-दान नयौ।
सूरदास मुख हीं रिस जुवतिनि, अरु उर-अंतर काम छयौ ॥
॥१४८४॥२१०२॥

राग नट

मोहिं तोहिं जानबि नँद-नंदन, जब बन तैं गोकुल जैबौ।
सखियनि सहित छीनि लै मेरी, दधि मटुकी गारी दैबौ ॥
मुख मोरिबौ जु आउ-बाउ कहि, दान अधिकई सौं लैबौ।
एक गाउँ एकहि सँग बसियै, कैसैं अब इहि मग ऐबौ ॥
जुवतिनि के मुख देखि रहत हौ, ललचाने कैसैं पैबौ।
कैसैं हार तोरि मेरौ डारयौ, बिसरति नहिं रिस करि धैबौ ॥
सुनि री सखी ढीठ नँद-नंदन, चलि सब जसुमति सौं लैबौ।
सूर स्याम दधि माखन लीन्हौ, हारहु बैर समुझि कैबौ ॥
॥१४८५॥२१०३॥

राग बिलावल

सुनहु स्याम हम अब चलीं, जसुमति के आगैं।
तौ बदियौ हमकौं अबै, तुमकौं धरि माँगैं॥
इक-इक करि बिथुराइ कै, मोतिनि लर तोर्‌यौ।
यह सुनि-सुनि मुसुक्याइ कै, हरि भौंह सकोर्‌यौ॥
चली महरि पैं सुंदरी, उरहन लै हरि कौ।
अबहीं बोलि बँधाइयै, लंगर यह लरिकौ॥
गईं नंद-घर कौं सबै, जसुमति जहँ भीतर।
देखि महरि कौं कहि उठीं, सुत कीन्हौ ईतर॥
मारग चलन न पाइयै, री, हरि के आगैं।
सूरदास-प्रभु-त्रास तैं, ब्रज तजि हम भागैं॥
॥१४८६॥२१०४॥

राग सारग

तैं कत तोर्‌यौ हार नौ सरि कौ।
मोती बगरि रहे सब बन मैं, गयौ कान कौ तरिकौ॥
ये अवगुन जु करत गोकुल मैं तिलक दिये केसरि कौ।
ढीठ गुवाल दही कौ मातौ, ओढ़नहार कमरि कौ॥
जाइ पुकारैं जसुमति आगैं, कहति जु मोहन लरिकौ।
सूर स्याम जानी चतुराई, जिहिं अभ्यास महुअरि कौ॥
॥१४८७॥२१०५॥

राग नट

अपने कुँवर कन्हाई सौं तू माई कहति बात धौं काहे न।
बहुत बचत ब्रजराज की काननि, हँसति कहा, यह तौ सहि जाहि न॥
ऐसो भयौ कौन कुल तेरैं, जोबन दान लयौ, हम चाहि न।
अनुदिन अति उत्पात कहाँ लगि, दीजै पीपर कौ बन दाहिन॥
आन की आन कहत नित हम सौं, उनके मन कछु जानति नाहिन।
कहा बिलोकनि बानि सिखायौ, मैं नैंकहु पहिचानतु ताहि न॥
बूझि देखि धौं कौन सयानी, हरि चोर्‌यौ मन जाकैं पाहि न।
जाइ न मिलहु सूर के प्रभु कौं, कहहु अरूझिन सौं अरुझाहि न॥
॥१४८८॥२१०६॥

राग सुघरई

जसुमति तेरौ वारौ, अतिहिं है अचगरौ ।
दूध दही माखन लै, ढारि दियौ सगरौ ॥
भोर होत नितहीं प्रति, करत रहै झगरौ ।
ग्वाल बाल संग लए, जाइ गहै डगरौ ॥
हम तुम हैं एकै सम, कौन कातैं अगरौ ।
लियौ दियौ कछू सोउ डारि देहु कगरौ ॥
और कहूँ जाइ रहैं, छाँड़ि ब्रज बगरौ ।
सूरदास को प्रभु सब, गुननि माहिं अगरौ ॥

॥१४८६॥२१०७॥

राग सूही

मैं तुम्हरे मन की सब जानी ।
आपु सबै इतराति फिरति हौ, दूषन देति स्याम कौं आनी ॥
मेरौ हरि कहँ दसहिं बरस कौ, तुम री जोबन-मद उमदानी ।
लाज नहीं आवति इन लँगरिनि, कैसैं धौं कहि आवति बानी ॥
आपुहिं तोरि हार चोली-बँद, उर नख-घात बनाइ निसानी ।
कहाँ कान्ह की तनक अँगुरियाँ, यह कहि बार-बार पछितानी ॥
देखहु जाइ और काहू कौं, हरि पर सबहिं रहसि मँड़रानी ।
सूरदास-प्रभु मेरौ नान्हौ, तुम तरुनी डोलतिं अठिलानी ॥

॥१४९०॥२१०८॥

राग जैतश्री

जब दधि बेंचन जाहिं, मारग रोकि रहै ।
ग्वारिनि देखत धाइ, अंचल आइ गहै ॥ टेक० ॥
अहो नंद की नारि, डारि ऐसी क्यौं दीजै ।
एक ठौर बस बास, सुनहु ऐसी नहिं कीजै ॥
सुत वैसौ तुम तौ खिझतिं, कौ रैहै इहिं गाउँ ।
जैहैं ब्रज तजि अनत हीं, बहुरि सुनौ नहिं नाउँ ॥
कहा कहति डरपाइ, कछू मेरौ घटि जैहै ।
तुम बाँधति आकास बात झूठी को सैहै ॥
जोबन दिन द्वै सबहिं को, तुम ऐसी इतरातिं ।
झूठैं कान्हहिं दोष दै, तुमहीं ब्रज तजि जातिं ॥

हम यह झूठी कही, और सौं बूझि न देखौ।
हमसौं माँगत दान, करत गौवनि कौ लेखौ॥
मटुकी डारे सीस तैं, मर्कट लेइ बुलाइ।
महा ढीठ मानै नहीं, सखनि सहित दधि खाइ॥
ग्वारिनि ढीठि गँवारि, कान्ह मेरो अति भोरौ।
तेरैं गोरस बहुत भयौ, री मेरैं थोरौ॥
बोलत लाज नहीं तुमहिं, सबहीं भईं गँवारि।
ऐसी कैसैं हरि करै, कतहिं बढ़ावति रारि॥
अहो जसोदा महरि, पूत की मामी पीवै।
हमहिं कहा है होत, बहुत दिन मोहन जीवै॥
सुत के कर्म न जानई, करै आपुनी टेक।
दस गैयनि करि को बड़ौ, अहिर-जाति सब एक॥
कह गैयनि की चली, कहा अब चली जाति की।
चकृत भई मैं तुम जु कहत, अनमिलत बात की॥
जैसी मोसौं कहति हौ, को सुनि कै पतियाइ।
कौन प्रकृति तुमकौं परी, मोहिं कहौ समुझाइ॥
अहो जसोदा बात, काल्हि की सुनी कि नाहीं।
बंसीबट की छाहँ, गही हरि मेरी बाहीं॥
हौं सकुचनि बोली नहीं, बहु सखियनि की भीर।
गहि बहियाँ मोहिं लै चले, हंस-सुता कैं तीर॥
परी मदमन ग्वालि, फिरति जोबन-मद-माती।
गोरस-बेंचनहारि, गूजरी अति इतराती॥
अनमिलती बातैं कहति, तातैं सुनियत नाहिं।
कहँ मोहन कहँ तू रहै, कबहिं गही तेरी बाहिं॥
साँची सब मैं कहति, झूठ नहिं कहिहौं तुम सौं।
सुत की राखति कानि, विलग मानति हौ हमसौं॥
कुंजनि मैं क्रीड़ा करै, मनु वाही कौ राज।
संक सकुच नहिं मानई, रहत भयौ सिरताज॥
ऐसी बातैं कहति, मनहुँ हरि बरष बीस कौ।
दुसह सही नहिं जाइ, नैंकु डर करहु ईस कौ॥
धनि धनि तुम यह कहति हौ, मोकौं आवै लाज।
माखन माँगत रोइ तिहिं, दोष देतिं बिनु काज॥

हरि जानत हैं मंत्र जंत्र सीख्यौ कहुँ टौना।
बन मैं तरुन कन्हाइ, घरहिं आवत ह्वै छौना॥
एक दिवस किन देखहु, अंतर रहौ छपाइ।
दस कौ है धौं बीस कौ, नैननि देखौ जाइ॥
जाहु चली घर आपु, नैन भरि हम देख्यौ है।
तीस, बीस, दस बरष, एक एक दिन लेख्यौ है॥
दीठि लगावतिं कान्ह कौं, जरैं बरैं वे आँखि।
धींगरि धिग चाँचरि करैं, मोहिं बुलावति साखि॥
धींग तुम्हारौ पूत, धींगरी हमकौं कीन्ही।
सुत कौं हटकतिं नाहिं, कोटि इक गारी दीन्ही॥
महतारी सुत दोउ बने, वे मग रोकत जाइ।
इनहिं कहत दुख आइयै, (ये) सब कौं उठतिं रिसाइ॥
कहा करौं तुम बात, कहूँ की कहूँ लगावति।
तरुनिनि यहै सुहाति, मोहिं कैसैं यह भावति॥
बहुत उरहनौ मोहिं दियौ, अब ऐसौ जिनि देहु।
तुम तरुनी हरि तरुन नहिं, मन अपनैं गुनि लेहु॥
निरउत्तर भई ग्वालि, बहुरि कछु कहत न आयौ।
मन उपजी कछु लाज, गुप्त हरि सौं चित लायौ॥
लीला ललित गुपाल की, कहत सुनत सुखदाइ।
दान-चरित-सुख देखि कै, सूरदास बलि जाइ॥

॥१४६१॥२१०६॥

राग रामकली

नंद-नँदन इक बुद्धि उपाई।
जे-जे सखा प्रकृति के जाने, ते सब लए बुलाई॥
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, और महर-सुत आए।
जो कछु मंत्र हृदय हरि कीन्हौ, ग्वालनि प्रगट सुनाए॥
ब्रज-जुवती नित प्रति दधि-बेंचन, बनि बनि मथुरा जातिं।
राधा, चंद्रावलि, ललितादिक, बहु तरुनी इक भाँति॥
कालिंदी-तट कालिह प्रातहीं, द्रुम चढ़ि रहौ लुकाइ।
गोरस लै जबहीं सब आवैं, मारग रोको जाइ॥

भली बुद्धि यह रची कन्हाई, सखनि कह्यौ सुख पाइ।
सूरदास प्रभु-प्रीति हृदय की, सब मन गई जनाइ॥
॥१४६२॥२११०॥

राग रामकली

प्रातहिं उठीं गोप-कुमारि।
परसपर बोलीं जहाँ-तहँ, यह सुनी बनवारि॥
प्रथमहीं उठि सखा आए, नंद कैं दरबार।
आइयै उठि कै कन्हाई, कह्यौ बारंबार॥
ग्वाल-टेरत सुनि जसोदा, कुँवर दियौ जगाइ।
रहे आपुन मौन साधे, उठे तब अकुलाइ॥
मुकुट सिर, कटि पीत अंबर, मुरलि लीन्ही हाथ।
सूर-प्रभु कालिंदि-तट गए, सखा लीन्हे साथ॥
॥१४६३॥२१११॥

राग रामकली

भली करी उठि प्रातहिं आए।
मैं जानत सब ग्वालि उठीं जब, तब तुम मोहिं बुलाए॥
अब आवति ह्वैहैं दधि लीन्हे, घर-घर तैं ब्रज-नारी।
हँसे सबै कर तारी दै-दै, आनँद कौतुक भारी॥
प्रकृति-प्रकृति अपनैं ढिग राखे, संगी पाँच हजार।
और पठाइ दिये सूरज-प्रभु, जे-जे अतिहिं कुमार॥
॥१४६४॥२११२॥

राग बिलावल

हँसत सखनि यह कहत कन्हाई।
जाइ चढ़ौ तुम सघन द्रुमनि पर, जहँ-तहँ रहौ छपाई॥
तब लौं बैठि रहौ मुख मूँदे जब जानहु सब आईं।
कूदि परौ तब द्रुमनि द्रुमनि तैं, दै दै नंद-दुहाई॥
चकित होहिं जैसैं जुवती-गन, डरनि जाहिं अकुलाई।
बेनु-बिषान-मुरलि-धुनि कीजौ संख-सब्द घहनाई॥
नित प्रति जाति हमारैं मारग, यह कहियो समुझाई।
सूर स्याम माखन-दधि-दानी, यह सुधि नाहिन पाई?॥
॥१४६५॥२११३॥

राग बिलावल

स्याम सखनि ऐसैं समुझावत ।
ब्रज-बनिता राधा, ललितादिक, देखि बहुत सुख पावत ॥
काल्हि जात इहिं मारग देखीं, तब यह बुद्धि उपाई ।
अब आवतिं ह्वै हैं बनि-बनि सब, मोहीं सौं चित लाई ॥
तुमसौं कछू दुरावत नाहीं, कहत प्रगट करि बात ।
सुनहु सूर लोचन मेरे, बिनु राधा-मुख अकुलात ॥
॥१४९६॥२११४॥

राग बिलावल

ब्रज-जुवती मिलि करतिं बिचार ।
चलौ आजु प्रातहिं दधि बेंचन, नित तुम करतिं अबार ॥
तुरत चलौ अबहीं फिरि आवैं, गोरस बेंचि सबारैं ।
माखन, दधि, घृत साजतिं मटुकी, मथुरा जान बिचारैं ॥
षट-दस- सहित सिंगार करति हैं, अँग अँग निरखि सँवारतिं ।
सूरदास-प्रभु-प्रीति सबनि कैं, नैकु न हृदय बिसारतिं ॥
॥१४९७॥२११५॥

राग धनाश्री

जुवती अंग-सिंगार सँवारति ।
बेनी गूँथि, माँग मोतिनि की, सीसफूल सिर धारति ॥
गोरैं भाल बिंदु सेंदुर पर, टीका धर्‌यौ जराउ ।
बदन चंद पर रवि तारा-गन, मानौ उदित सुभाउ ॥
सुभग स्रवन तरिवन मनि-भूषित इहिं उपमानहिं पार ।
मनहु काम विवि फंद बनाए, कारन नंद-कुमार ॥
नासा नथ-मुकुता के भारहिं, रह्यौ अधर-तट जाइ ।
दाड़िम-कन सुक लेत बन्यौ नहिं, कनक-फंद रह्यौ आइ ॥
दमकत दसन अरुन अधरनि तर, चिबुक डिठौना भ्राजत ।
दुलरी अरु तिलरी-बँद तातर, सुभग हुमेल बिराजत ॥
कुच कंचुकी, हार मोतिनि के भुज बाजूबँद सोहत ।
डारनि चुरी करनि फुँदना-बने, कंज पास अलि जोहत ।
छुद्रघंटिका कटि लँहगा रँग, तन तनसुख की सारी ।
सूर ग्वालि दधि बेंचन निकरीं, पग-नूपुर-धुनि भारी ॥
॥१४९८॥२११६॥

राग नटनारायणी

बेंचन चलीं दधि ब्रजनारि।
सीस धरि-धरि माट मटुकी, बढ़ी सोभा भारि॥
निकसि ब्रज के गईं ग्वैंड़ैं, हरष भईं सुकुमारि।
चलीं गावनिं कृष्ण के गुन, हृदय ध्यान विचारि॥
सबनि कैं मन जौ मिलै हरि, कोउ न कहति उघारि।
सूर-प्रभु घट घटहिं व्यापी, जानि लईं बनवारि॥
॥१४९९॥२११७॥

राग जैतश्री

हरि देखीं जुवती आवत जब।
सखनि कह्यौ तुम जाइ चढ़ौ द्रुम, बैठि रहौ दुरि दुरि सब॥
चढ़े सबै द्रुम-डार ग्वाल-गन, सुनत स्याम-मुख-बानी।
धोखैं धोखैं रहे सबै हम, स्याम भली यह जानी॥
नव-सत साजि सिंगार जुवति सब, दधि-मटुकी लिये आवत।
सूर स्याम छबि देखत रीझे, मन-मन हरष बढ़ावत॥
॥१५००॥२११८॥

राग धनाश्री

और सखा सँग लिये कन्हाई।
आपुहिं निकसि गए आगे कौं, मारग रोक्यौ जाई॥
इहिं अंतर जुवती सब आईं, बन लाग्यौ कछु भारी।
पाछैं जुवति रहीं तिन टेरति, अबहिं गईं तुम हारी॥
तरुनी जुरि इक संग भईं सब, इत उत चलीं निहारत।
सूरदास-प्रभु सखा लिये सँग ठाढ़े यहै विचारत॥
॥१५०१॥२११९॥

राग गौरी

ग्वारिनि जब देखे नँद-नंदन।
मोर-मुकुट पीतांबर काछे, खौरि किये तन चंदन॥
तब यह कह्यौ कहाँ अब जैहौ, आगैं कुँवर कन्हाई।
यह सुनि मन आनंद बढ़ायौ, मुख कहैं, बात डराई।
कोउ-काउ कहति चलौ री जैयै, कोउ कहै घर फिरि जैयै।
कोउ-कोउ कहति कहा करिहैं हरि, इनसौं कहा परैयै॥

कोउ-कोउ कहति कालिहीं हमकौं, लूटि लई नँद-लाल।
सूर स्याम के ऐसे गुन हैं, घरहिं फिरीं ब्रज-बाल॥
॥१५०२॥२१२०॥

राग सोरठ

ग्वालनि सैन दई तब स्याम।
कूदि-कूदि सब परहु द्रुमनि तैं, जाति चलीं घर बाम॥
सैन जानि तब ग्वाल जहाँ तहँ, द्रुम-द्रुम डार हलायौ।
बेनु-बिषान-संख-मुरली-धुनि, सब इक सब्द बजायौ॥
चकित भईं तरु-तरु-प्रति देखत, डारनि-डारनि ग्वाल।
कूदि-कूदि सब परे धरनि मैं घेरि लईं ब्रज-बाल॥
नित प्रति जाति दूध-दधि बेंचन, आजु पकरि हम पाई।
सूर स्याम कौं दान देहु तब, जैहौ नंद-दुहाई॥
॥१५०३॥२१२१॥

राग नट

ग्वालिनि यह भली नहिं करति।
दूध दधि घृत नितहिं बेंचति, दान देतैं डरति॥
प्रातहीं लै जाति गोरस, बेंचि आवति राति।
कहौ कैसैं जानियै तुम, दान मारे जाति॥
कालिंदी-तट स्याम बैठे, हमहिं दियौ पठाइ।
यह कह्यौ हरि दान माँगहु, जाति नितहि चुराइ॥
तुम सुता बृषभानु की, वै बड़े नंद-कुमार।
सूर-प्रभु कौं नाहि जानति, दान हाट बजार!॥
॥१५०४॥२१२२॥

राग कान्हरौ

यह सुनि हँसीं सकल ब्रजनारि।
आइ सुनौ री बात नई इक, सिखए हैं महतारि॥
दधि माखन खैबे कौं चाहत, माँगि लेहु हम-पास।
सूधैं बात कहौ सुख पावैं, बाँधन कहत अकास॥
अब समुझीं हम बात तुम्हारी, पढ़े एक चटसार।
सुनहु सूर यह बात कहौ जनि, जानति नंद-कुमार॥
॥१५०५॥२१२३॥

राग धनाश्री

बात कहति ग्वालिनि इतराति ।
हम जानी अब बात तुम्हारी, सूधैं नहिं बतराति ॥
यहै बड़ौ दुख गाउँ-बास कौ, चीन्हैं कोउ न सकात ।
हरि माँगत हैं दान आपनौ, कहति माँगि किन खात ॥
हाट-बाट सब हमहिं उगाहत, अपनौ दान जगात ।
सूर दान कौ लेखौ दीजै, कोउ न कहै पुनि बात ॥
॥१५०६॥२१२४॥

राग कान्हरौ

कौन कान्ह, को तुम, कह माँगत ?
नीकैं करि सबकौं हम जानति, बातैं कहत अनागत ॥
छाँड़ि देहु हमकौ जनि रोकहु, वृथा बढ़ावत रारि ।
जैहै बात दूरि लौं ऐसी, परिहै बहुरि खँभारि ॥
आजुहिं दान पहिरि ह्याँ आए, कहा दिखावहु छाप ।
सूर स्याम वैसैंहिं चलौ, ज्यौं चलत तुम्हारौ बाप ॥
॥१५०७॥२१२५॥

राग कान्हरौ

कान्ह कहत, दधि-दान न दैहौ ? ।
लैहौं छीनि दूध दधि माखन, देखति ही तुम रैहौ ॥
सब दिन कौ भरि लेउँ आजु हीं, तब छाड़ौं मैं तुमकौ ।
उघटति हौ तुम मातु-पिता लौं, नहिं जानति हौ हमकौ ॥
हम जानति हैं तुमकौं मोहन, लै-लै गोद खिलाए ।
सूर स्याम अब भए जगाती, वै दिन दिन सब बिसराए ॥
॥१५०८॥२१२६॥

राग कान्हरौ

अजहूँ माँगि लेहु दधि देहैं ।
दूध दही माखन जो चाहौ, सहज खाहु सुख पैहैं ॥
तुम दानी ह्वै आए हम पर, यह हमकौं नहिं भावै ।
करौ तहाँ लौं निबहै जोई, जातें सब सुख पावै ॥

हमकौं जान देहु दधि बेंचन, पुनि कोऊ नहिं लैहै।
गोरस लेत प्रातहीं सब कोउ, सूर धस्यौ पुनि रैहै॥
॥१५०६॥२१२७॥

राग कान्हरौ

दान दिये बिनु जान न पैहौ।
जब दैहौं ढराइ सब गोरस, तबहिं दान तुम दैहौ॥
तुम सौं बहुत लेन है मोकौं, पहिलैं ताहि सुनाऊँ।
चोरी आवति बेंचि जाति हौ, पुनि गोरस कहँ पाऊँ॥
माँगति छाप कहा दिखराऊँ, को नहिं हमकौं जानत।
सूर स्याम तब कह्यौ ग्वालि सौं, तुम मोकौं नहिं मानत॥
॥१५१०॥२१२८॥

राग रामकली

कहा हमहिं रिस करत कन्हाई।
यह रिस जाइ करौ मथुरा पर, जहँ है कंस कसाई॥
अब हम कहाँ जाइ गुहरावैं, बसति तिहारैं गाउँ।
ऐसे हाल करत लोगनि के, कौन रहै इहिं ठाउँ।
अपने घर के तुम राजा हौ, सब कौ राजा कंस।
सूर स्याम हम देखत बाढ़े, अब सीखे ये गंस॥
॥१५११॥२१२६॥

राग देवगंधार

कापर दान पहिरि तुम आए।
चलहु जु मिलि उनहीं पैं जैयै, जिनि तुम रोकन पंथ पठाए॥
सखा संग लीन्हे सैंतिक के, फिरत रैनि-दिन बन मैं धाए।
नाहिंन राज कंस कौ जानत, मारग रोकत फिरत पराए॥
लिये उपरना छीनि सबनि के, जहाँ-तहाँ कुंजनि अरुझाए।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, दधि के माट भूमि ढरकाए॥
॥१५१२॥२१३०॥

राग सूहौ

जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु हजूर बुलावहु॥

ऐसे कौं कहि मोहिं बतावति, पल भीतर गहि मारौं।
मथुरापतिहिं सुनौंगी तुमहीं, जब धरि केस पछारौं॥
बार-बार दिन हमहिं बतावति, अपनौ दिन न बिचार्‌यौ।
सूर इंद्र ब्रज जबहिं बहावत, तब गिरि राखि उबार्‌यौ॥
॥१५१३॥२१३१॥

राग गूजरी

गिरिवर धर्‌यौ आपने घर कौं।
ताही कैं बल दान लेत हौ, रोकि रहत तिय पर कौं॥
अपनेहीं घर बड़े कहावत, मन धरि नंद महर कौं।
यह जानति तुम गाइ चरावन, जात सदा बन बर कौं॥
मुरली कर काछनि आभूषन, मोर पखौवा सिर कौं।
सूरदास काँधैं कामरिया, और लकुटिया कर कौं॥
॥१५१४॥२१३२॥

राग बिलावल

यह कमरी कमरी करि जानति।
जाके जितनी बुद्धि हृदय मैं, सो तितनौ अनुमानति॥
या कमरी के एक रोम पर, वारौं चीर पटंबर।
सो कमरी तुम निंदति गोपी, जो तिहुँ लोक अडंबर॥
कमरी कैं बल असुर सँहारे, कमरिहिं तैं सब भोग।
जाति-पाँति कमरी सब मेरी, सूर सबै यह जोग॥
॥१५१५॥२१३३॥

राग बिलावल

धनि धनि यह कामरी मोहन स्याम की।
यहै ओढ़ि जात बन यहै सेज कौ बसन यहै निवारिनि मेह-बूँद,
छाँह घाम की।
याही ओट सहत सीसिर-सीत, याहीं गहने हरत, लै धरत ओट
कोटि घाम की।
यहै जाति-पाँति, परिपाटी यह सिखवति, सूरज प्रभू के यह सब
बिसराम की॥१५१६॥२१३४॥

राग बिलावल

अब तुम साँची बात कही।
इतने पर जुवतिनि कौं रोकत, माँगत दान दही॥
जो हम तुम्हैं कह्यौ चाहति हीं, सो श्रीमुख प्रगटायौ।
नीकैं जाति उघारि आपनी, जुवतिनि भलैं हँसायौ॥
तुम कमरी के ओढनहारे, पाटंबर नहिं छाजत।
सूर स्याम कारे तन ऊपर, कारी कामरि भ्राजत॥
॥१५१७॥२१३५॥

राग बिलावल

मोसौं बात सुनहु ब्रज-नारी।
इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं, तुमसौं कहौं उघारी॥
कबहूँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी।
जोइ मन करैं सोइ करि डारैं, मूँड़ चढ़त हैं भारी॥
बात कहत अँठिलाति जाति सब, हँसति देति कर तारी।
सूर कहा ये हमकौं जानैं, छाँछहिं बेंचनहारी॥
॥१५१८॥२१३६॥

राग बिलावल

यह जानति तुम नंदमहर-सुत।
धेनु दुहत तुमकौं हम देखतिं, जबहिं जाति खरिकहिं उत॥
चोरी करत रहौ पुनि जानतिं, घर-घर ढूँढ़त भाँड़े।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तैं छाँड़े॥
और सुनौ जसुमति जब बाँधे, तब हम कियौ सहाइ।
सूरदास-प्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ॥
॥१५१९॥२१३७॥

राग आसावरी

को माता को पिता हमारैं।
कब जनमत हमकौं तुम देख्यौ, हँसियत बचन तुम्हारैं॥
कब माखन चोरी करि खायौ, कब बाँधे महतारी।
दुहत कौन को गैया चारत, बात कही यह भारी॥

तुम जानत मोहिँ नंद-ढुटौना, नंद कहाँ तैं आए।
मैं पूरन अविगत, अबिनासी, माया सबनि भुलाए॥
यह सुनि ग्वालि सबै मुसुक्यानी, ऐसे गुन हौ जानत।
सूर स्याम जो निदर्‌यौ सबहीं, मात-पिता नहिं मानत॥
॥१५२०॥२१३८॥

राग सोरठ

तुमकौं नंद महर भरुहाए।
मात-गर्भ नहिं तुम उपजे तौ, कहौ कहाँ तैं आए?॥
घर-घर माखन नहीं चुरायौ? ऊखल नहीं बँधाए?।
हा-हा करि जसुमति के आगैं, तुमकौं हमहिं छुड़ाए?॥
ग्वालनि संग-संग बृंदावन, तुम नहिं गाइ चराए?।
सूर स्याम दस मास गर्भ धरि, जननि नहीं तुम जाए?॥
॥१५२१॥२१३९॥

राग टोड़ी

भक्त-हेत अवतार धरौं।
कर्म-धर्म कैं बस मैं नाहीं, जोग जज्ञ मन मैं न करौं॥
दीन-गुहारि सुनौं स्रवननि भरि, गर्व-बचन सुनि हृदय जरौं।
भाव-अधीन रहौं सबही कैं, और न काहू नैंकु डरौं॥
ब्रह्मा कीट आदि लौं ब्यापक, सबकौं सुख दै दुखहिं हरौं।
सूर स्याम तब कही प्रगटहीं, जहाँ भाव तहँ तैं न टरौं॥
॥१५२२॥२१४०॥

राग धनाश्री

कान्ह कहाँ की बात चलावत।
स्वर्ग पताल एक करि राखौ, जुवतिनि कहा बतावत॥
जौ लायक तौ अपने घर कौ, बन-भीतर डरपावत।
कहा दान गोरस कौ ह्वैहै, सबै न लेहु दिखावत॥
रीती जान देहु घर हमकौं, इतनैंहीं सुख पावत।
सूर स्याम माखन दधि लीजै, जुवतिनि कत अरुझावत॥
॥१५२३॥२१४१॥

राग धनाश्री

माखन दधि कह करौं तुम्हारौ।
धा बन मैं तुम बनिज करति हौ, नहि जानति मोकौं घटवारौ॥
मैं मन मैं अनुमान करौं नित, मोसौं कैहै बनिज-पसारौ।
काहे कौं तुम मोहिं कहति हौ, जोबन-धन ताकौ करि गारौ॥
अब कैसैं घर जान पाइहौ, मोकौं यह समझाइ सिधारौ।
सूर बनिज तुम करति सदाई, लेखौ करिहौं आजु निहारौ।
॥१५२४॥२१४२॥

राग सूहो

ऐसी कहौ बनिज कौं अटकौं।
मुख-मुख हेरि तरुनि मुसुक्यानी, नैन-सैन दै-दै सब मटकौं॥
हमहूँ कहौ दान दधि कौ, कह माँगत कुँवर कन्हाई।
अब लौं कहा मौन धरि बैठे, तबहीं नहीं सुनाई॥
हँसि वृषभानु-सुता तब बोली, कहा बनिज हम-पास।
सूर स्याम लेखा करि लीजै, जाहिं सबै ब्रजबास॥
॥१५२५॥२१४३॥

राग बिलावल

कहौ तुमहिं हमकौं कह बूझति।
लै-लै नाम सुनावहु तुमहीं, मोसौं कहा अरूझति॥
तुम जानति मैं हूँ कछु जानत, जो-जो माल तुम्हारैं।
डारि देहु जापर जो लागै, मारग चलौ हमारैं॥
इतने ही कौं सोर लगायौ, अब समुझीं यह बात।
सूर स्याम कौ वचन सुनौ री, कछु समुझति हौ घात॥
॥१५२६॥२१४४॥

राग बिलावल

इनहीं धौं बूझौ यह लेखौ।
कहा कहैंगे स्रवननि सुनियै, चरित नैंकु तुम देखौ॥
मन मन हरष भई सब जुवती, मुख ये बात चलावति।
ज्यौं-ज्यौं स्याम कहत मृदु बानी, त्यौं-त्यौं अति सुख पावति॥

कोउ काहू कौ भेद न जानति, लोक-सकुच उर मानत।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, अंतर की गति जानत॥
॥१५२७॥२१४५॥

राग बिलावल

कहौ कान्ह कह गथ है हम सौं।
जा कारन जुवती सब अटकीं, सो बूझति हैं तुमसौं॥
लौंग, नारियर, दाख, सुपारी, कह लादे हम आवैं।
हींग, मिरिच, पीपरि, अजवाइनि, ये सब बनिज कहावैं॥
कूट, कायफर, सौंठि, चिरइता, करजीरा कहुँ देखत।
आज, मजीठ, लाख, सेंदुर कहुँ, ऐसिहि बिधि अवरेखत॥
बाइबिडंग, बहेरा, हरैं, बल, गोन ब्यापारी।
सूर स्याम लरिकाई भूली, जोबन भए मुरारी॥
॥१५२८॥२१४६॥

राग सूहौ

कौन बनिज कहि मोहिं सुनावति।
तुम्हरौ गथ लाद्यौ गयंद पर, हींग मिरिच कह गावति॥
अपनौ बनिज दुरावति हौ कत, नाउँ लिये ते नाहीं।
कहा दुरावति हौ मो आगैं, सब जानत तुम गाहीं॥
बहुत मोल के बान तुम्हारे, कैसैं दुरत दुराए।
सुनहु सूर कछु मोल लेहिंगे, कछु इक दान भराए॥
॥१५२६॥२१४७॥

राग टोडी

दधि कौ दान मेटि यह ठान्यौ।
सुनहु स्याम अति चतुर भए हौ, आजु तुम्हैं हम जान्यौ॥
जो कछु दूध दह्यौ हम देतीं, लै खाते मिलि ग्वाल।
सोऊ खोइ हाथ तैं बैठे, हँसति कहति ब्रज-बाल॥
यह सुनि स्याम सबनि कर तैं दधि-मटुकी लई छँड़ाइ।
आपुन खाइ, सखनि कौं दीन्हौ, अति मन हरष बढ़ाइ॥
कछु खायौ, कछु भुइँ ढरकायौ, चितै रहीं ब्रज नारि।
सूर स्याम बन-भीतर जुवतिनि, ये ढँग करत मुरारि॥
॥१५३०॥२१४८॥

राग रामकली

प्यारी पीतांबर उर झटक्यौ ।
हरि तोरी मोतिनि की माला, कछु गर, कछु कर लटक्यौ ॥
ढीठौ करन स्याम तुम लागे, जाइ गही कटि-फेँट ।
आपु स्याम रिस करि अंकम भरी, भई प्रेम की भेँट ॥
जुवतिनि घेरि लियौ हरि कौँ तब, भरि भरि धरि अँकवारि ।
सखा परस्पर देखत ठाढ़े, हँसत देत किलकारि ॥
हाँक दियौ करि नंद-दुहाई, आइ गए सब ग्वाल ।
सूर स्याम कौँ जानति नाहीँ, ढीठि भई हैँ बाल ॥
॥१५३१॥२१४६॥

राग भैरव

हम भईँ ढीठि भले तुम ग्वाल ।
दीन्हौ ज्वाब दई कौ चैहौ, देखौ री यह कहा जँजाल ॥
बन-भीतर जुवतिनि कौँ रोकत, हम खोटी, तुम्हरे ये ख्याल ।
बात कहन कौँ येऊ आवत, बड़े सुधर्मा धर्महिँ पाल ॥
साखि सखा की ऐसी भरिहौ, तब आवहुगे जीति भुवाल ।
आए हैँ चढ़ि रिस करि हम पर, सूर हमहिँ जानत बेहाल ॥
॥१५३२॥२१५०॥

राग बिलावल

जानी बात तुम्हारी सब की ।
लरिकाई के ख्याल तजौ अब, गई बात वह तब की ॥
मारग रोकत रहे जमुन कौ, तिहिँ धोखैँ हौ आए ।
पावहुगे पुनि कियौ आपनौ, जुवतिनि हाथ लगाए ॥
जौ सुनिहैँ यह बात मात-पितु, तौ हमसौँ कह कैहैँ ।
सूर स्याम मोतिनि लर तोरी, कौन ज्वाब हम दैहैँ ॥
॥१५३३॥२१५१॥

राग नट

आपुन भईँ सबै अब भोरी ।
म हरि कौ पीतांबर झटक्यौ, उन तुम्हरी मोतिनि लर तोरी ॥

माँगत दान ज्वाब नहिं देतीं, ऐसी तुम जोबन की जोरी।
उर नहिं मानति नंद-नँदन कौ, करति आनि भकभोरा भोरी॥
इक तुम नारि गँवारि भली हौ, त्रिभुवन मैं इनकी सरि को री।
सूर सुनहु लैहैं छँड़ाइ सब, अबहिं फिरौगी दौरी दौरी॥
॥१५३४॥२१५२॥

राग नट

कहा बड़ाई इनकी सरि मैं।
नंद-जसोदा के प्रतिपाले, जानति नीके करि मैं॥
तुम्हरे कहैं सबनि डर मान्यौ, हरिहिं गई अति डरि मैं।
बसुद्यौ डारि राति हीं भागे, आए हैं सुभ घरि मैं॥
अंग-अंग कौ दान कहत हैं, सुनत उठी रिस जरि मैं।
तब पीतांबर भटकि लियौ मैं, सूर स्याम कौ भरि मैं॥
॥१५३५॥२१५३॥

राग गौरी

यातैं तुमकौं ढीठि कही।
स्यामहिं तुम भईं भिरकनहारी, एते पर पुनि हार नहीं।
तब तैं हमहि देति हौ गारी, हमकौं दाहति आपु दही।
बनिज करति हमसौं भगरति हौ, कहा कहैं हम बहुत सही।
समुभि परी अब कछु जिय जान्यौ, तातैं ह्वै सब मौन रहीं।
सूर स्याम ब्रज-ऊपर दानी, इहिं मारग अब तुम निबहीं॥
॥१५३६॥२१५४॥

राग कल्यान

तुम देखत रैहौ हम जैहैं।
गोरस बेचि मधुपुरी तैं पुनि, याही मारग ऐहैं॥
ऐसैं ही सब बैठे रैहौ बोलैं ज्वाब न दैहैं।
धरि लै जैहैं जसुमति पै, हरि तब धौं कैसी कैहैं।
काहे कौं मोतिनि लर तोरी, हम पीतांबर लैहैं।
सूर स्याम सतरात इते पर, घर बैठे तब रैहैं॥
॥१५३७॥२१५५॥

राग कल्यान

मेरैं हठ क्यौं निबहन पैहौ ?
अब तौ रोकि सबनि कौं राख्यौ, कैसे करि तुम जैहौ ? ॥
दान लेहुँगौ भरि दिन-दिन कौ, लेख्यौ करि सब दैहौ ।
सौंह करत हौं नंद बबा की, मैं कैहौं तब जैहौ ॥
आवति-जाति रहति याही पथ, मोसौं बैर बढ़ैहौ ।
सुनहु सूर हम सौं हठ माँडति, कान नफा कर लैहौ ॥
॥१५३८॥२१५६॥

राग कान्हरौ

कौन बात यह कहत कन्हाई ।
समुझत नहीं कहा डरपावत तुम करि नंद-दुहाई ॥
डरपावहु तिनकौं जे डरपहि, तुम तैं घटि हम नाहीं ।
मारग छाँड़ि देहु मनमोहन दधि बेंचन हम जाहीं ॥
भली करी मोतिनि लर तोरी, जसुमति सौं हम लैहैं ।
सूरदास-प्रभु यहौ बनत नहिं, इतना धन कहँ पैहैं ॥
॥१५३९॥२१५७॥

राग कान्हरौ

एक हार मोहिं कहा दिखावति ।
नख सिख लौं अँग-अंग निहारहु, ये सब कतहिं दुरावति ॥
मोतिनि माल जराइ कौ टीकौ, करन फूल नकबेसरि ।
कंठसिरी, दुलरी तिलरी तर, और हार इक नौसरि ॥
सुभग हुमेल कटाव की, अँगिया, नगनि जरित की चौकी ।
बहुँटा, कर-कंकन, बाजूबँद, एते पर है तौकी ॥
छुद्रघंटिका पग नूपुर जेहरि, बिछिया सब लेखौ ।
सहज अंग-सोभा सब न्यारी, कहत सूर ये देखौ ॥
॥१५४०॥२१५८॥

राग जैतश्री

याहू मैं कछु बाट तिहारौ ।
अचिरज आइ सुनौ री, भूषन देखि न सकत हमारौ ॥

कहौ गदाइ दिये ते आपन, कै जसुमति, कै नंद ।
घाट धर्यौ तुम यहै जानि कै, करत ठगनि के छंद ॥
जितनौ परिहरि आजु हम आईं घर है यातैं दूनौ ।
सूर स्याम हौ बहुत लुभाने, बन देख्यौ घौं सनौ ॥
॥१५४१॥२१५९॥

राग गौरी

बाँट कहा अब सबै हमारौ ।
जब लौं दान नहीं हम पायौ, तब लौं कैसैं होत तिहारौ ॥
आभूषन की कांन चलावत, कचन-घट काहैं न उघारौ ।
मदन-दूत मोहि बात सुनाई, इनमैं भर्यौ महा रस भारौ ॥
एक ओर अँग-आभूषन सब, एक ओर यह दान बिचारौं ।
सुनहु सूर कह बाँट करैं हम, दान देहु पुनि जहाँ सिधारौ ॥
॥१५४२॥२१६०॥

राग कल्यान

स्याम भए ऐसे रस-नागर ।
दिन द्वै घाट रोकि जमुना कौ अब तुम भए उजागर ॥
काँधैं कामरि, हाथ लकुटिया, गाइ चरावन जाते ।
दही भात की छाक मँगावत, ग्वालनि सँग मिलि खाते ॥
अब तुम कर नवला सी लीन्हे, पीतांबर कटि सोहत ।
सूर स्याम अब नवल भए तुम, नवल नारि-मन मोहत ॥
॥१५४३॥२१६१॥

राग गौरी

दान देति की झगरौ करिहौ ।
प्रथमहिं यह जंजाल मिटावहु, तब तुम हमहिं निदरिहौ ॥
कहत कहा निदरे से हौ तुम, सहज कहति हम बात ।
आदि बुन्यादि सबै हम जानतिं, काहे कौं सतरात ॥
रिस करि-करि मटुकी सिर धरि-धरि, डगरि चलीं सब ग्वारिनि ।
सूर स्याम अचल गहि झिरकी, जैहौ कहा बजारिनि ॥
॥१५४४॥२१६२॥

राग कल्यान

अब तुमकौं मैं जान न देहौं।
दान लेउँ कौड़ी कौड़ी करि, बैर आपनौ लैहौं॥
गोरस खाइ, बच्यौ सो डार्‌यौ, मटुकी डारीं फोरि।
दै दै गारि नारि झकझोरीं, चोली के बँद तोरि॥
हँसत सखा करतारी दै दै, बन मैं रोकीं नारि।
सुरत लोग घर तैं आवैंगे, सकिहौ नहीं सम्हारि।
घर के लोगनि कहा डरावति, कंसहिं आनि बुलाइ।
सूर सबै जुवतिनि कैं देखत, पूजा करौं बनाइ॥
॥१५४५॥२१६३॥

राग गौरी

जौ तुमहीं हौ सबके राजा।
तौ बैठौ सिंहासन चढ़ि कै, चँवर, छत्र, सिर भ्राजा॥
मोर-मुकुट, मुरली पीतांबर, छाँड़ौ नटवर-साजा।
बेनु, बिषान, संख क्यौं पूरत, बाजै नौबत बाजा॥
यह जु सुनैं हमहूँ सुख पावैं, संग करैं कछु काजा।
सूर स्याम ऐसी बातैं सुनि, हमकौं आवति लाजा॥
॥१५४६॥२१६४॥

राग कल्यान

तुम्हरैं चित रजधानी नीकी।
मेरे दास-दास के चेरे, तिनकौं लागति फीकी॥
ऐसी कहि मोहिं कहा सुनावति, तुमकौं यहै अगाध।
कंस मारि सिर छत्र धरावौं कहा तुच्छ यह साध॥
तबहिं लगि यह संग तिहारौ, जब लगि जीवत कंस।
सूर स्याम कैं मुख यह सुनि तब, मन-मन कीन्हौ संस॥
॥१५४७॥२१६५॥

राग जैतश्री

भली करी हरि माखन खायौ।
यहौ मानि लीन्हौ अपनैं सिर, उबर्‌यौ सो ढरकायौ॥
राखी रही दुराइ कमोरी, सो लै प्रगट दिखायौ।
यह लीजै, कछु और मँगावैं, दान सुनत रिस पायौ॥

दान दियैं बिनु जान न पैहौ, कब मैं दान छुटायौ।
सूर स्याम हठ परे हमारे, कहौ न कहा लदायौ॥
॥१५४८॥२१६६॥

राग धनाश्री

लैहौं दान इननि कौ तुम सौं।
मत्त गयंद, हंस हम सौंहैं, कहा दुरावति हम सौं॥
केहरि, कनक-कलस अंमृत के, कैसैं दुरैं दुरावति।
बिद्रुम, हेम, वज्र के कनुका, नाहिन हमहिं सुनावति॥
खग कपोत, कोकिला, कीर, खंजन, चंचल मृग जानति।
मनि कंचन के चक्र जरे हैं, एते पर नहिं मानति॥
सायक, चाप, तुरय, बनि जति हौ, लिये सबै तुम जाहु।
चंदन, चँवर, सुगंध, जहाँ तहँ, कैसैं होत निबाहु॥
यह बनिजति बृषभानु-सुता तुम, हमसौं बैर बढ़ावति।
सुनहु सूर एते पर कहियत, हम धौं कहा लदावति॥
॥१५४९॥२१६७॥

राग सोरठ

यह सुनि चकित भईं ब्रज-बाला।
तरुनी सब आपुस मैं बूझति, कहा कहत गोपाला॥
कहाँ तुरंग, कहाँ गज केहरि, हंस सरोवर सुनियै।
कंचन-कलस गढ़ाए कब हम, देखौ धौं यह गुनियै॥
कोकिल, कीर, कपोत बननि मैं, मृग, खंजन इक संग।
तिनकौ दान लेत हैं हमसौं, देखहु इनकौ रंग॥
चंदन, चँवर, सुगंध बतावत, कहाँ हमारैं पास।
सूर स्याम जो ऐसे दानी, देखि लेहु चहुँ पास॥
॥१५५०॥२१६८॥

राग गुनकली

भूलि रहे तुम कहाँ कन्हाई।
तिनकौ नाम लेत हम आगैं, सपनेहुँ दृष्टि न आईं॥
हय बर, गय बर, सिंह, हंस बर, खग, मृग कहँ हम लीन्हे।
सायक, धनुष, चक्र सुनि चकित, चमर न देखे चीन्हे॥

चंदन और सुगंध कहत हौ, कंचन-कलस बतावहु।
सूर स्याम ये सब जो द्वैहैं, तबहिं दान तुम पावहु॥
॥१५५१॥२१६९॥

राग गूजरी

इतने सब तुम्हारैं पास।
निरखि देखहु अंग-अँग अब, चतुरई कैं गाँस॥
तुमहीं निरवारि डारहु, करति कतहिं अबेर।
तुम कहौ, कछु, हमहुँ बोलैं, घरहि जाहु सबेर॥
कनक-तनु परतच्छ देखहु, सजे नव-सत अंग।
सूर तुम सब रूप जोबन, धर्‍यौ एकहि संग॥
॥१५५२॥२१७०॥

राग बिलावल

प्रगट करौं अब तुमहिं बताऊँ।
चिकुर चमर, घूँघट हय-बर, बर भ्रुव-सारँग दिखराऊँ॥
बान कटाच्छ, नैन खंजन, मृग, नासा सुक उपमाऊँ।
तरिवन चक्र, अधर बिद्रुम-छबि, दसन बज्र-कन ठाऊँ॥
ग्रीव कपोत, कोकिला बानी, कुच घट-कनक सुभाऊँ।
जोबन-मद रस-अमृत भरे हैं, रूप रंग झलकाऊँ॥
अंग सुगंध बास पाटंबर, गनि-गनि तुमहिं सुनाऊँ।
कटि केहरि, गयंद-गति-सोभा, हंस सहित इकनाऊँ॥
फेर किय कैसैं निबहति हौ, घरहिं गए कहँ पाऊँ।
सुनहु सूर यह बनिज तम्हारैं, फिरि-फिरि तुमहिं मनाऊँ॥
॥१५५३॥२१७१॥

राग नट

माँगत ऐसौ दान कन्हाई।
अब समुझीं हम बात तुम्हारी, प्रगट भई कछु धौं तरुनाई॥
इहिं लालच अँकवारि भरत हौ, हार तोरि चोली झटकाई।
अपनी ओर देखि धौं लीजै, ता पाछैं करियै बरियाई॥
सखा लिये तुम घेरत पुनि-पुनि, बन-भीतर सब नारि पराई।
सूर स्याम ऐसी न बूझियै, इन बातनि मरजाद नसाई॥
॥१५५४॥२१७२॥

राग नट

हम पर रिस करति ब्रजनारि।
बात सूधैं हम बतावत, आपु उठतिं पुकारि॥
कबहुँ, मरजादा घटावति, कबहु देति हैं गारि।
प्रात तैं झगरौ पसार्यौ, दान देहु निवारि॥
बड़े घर की बहू बेटी, करतिं वृथा झँवारि।
सूर अपनौ अंस पावैं, जाहि घर झख मारि॥
॥१५५५॥२१७३॥

राग सारंग

तुमहिं उलटि हम पर सतराने।
जो कछु हमकौं कहन बूझियै सो तुम कहि आगैं अतुराने॥
यह चतुराई कहाँ पढ़ी हरि थोरै दिन अति भए सयाने।
तुम कौं लाज होति कै हमकौं, बात परै जौ कहुँ महराने॥
ऐसो दान और पै माँगहु, जो हम सौं कहौ छाने छाने।
सूरदास प्रभु जान देहु अब, बहुरि कहौगे काल्हि बिहाने॥
॥१५५६॥२१७४॥

राग सारंग

स्यामहिं बोलि लियौ ढिग प्यारी।
ऐसी बात प्रगट कहुँ कहियत, सखिनि माँझ कत लाजनि मारी॥
इक ऐसेहिं उपहास करत सब, ता पर तुम यह बात पसारी।
जाति-पाँति के लोग हँसहिंगे, प्रगट जानिहैं स्याम-मतारी॥
लाजनि मारत हौ कत हमकौं, हा हा करति जानि बलिहारी।
सूर स्याम सर्बज्ञ कहावत, मात-पिता सौं द्यावत गारी॥
॥१५५७॥२१७५॥

राग सारंग

जब प्यारी यह बात सुनाई।
सखा सबनि तबहीं लखि लीन्ही, स्याम के प्रकृति सुभाई॥
सुनहु ग्वारि इक बात सुनावैं, जौ तुम्हरैं मन आवै।
तुव प्रति अंग-अंग की सोभा, देखत हरि सुख पावैं॥

तुम नागरी, नवल नागर वै, दोउ मिलि करौ विहार।
सूर स्याम स्यामा तुम एकै, कह हँसिहै संसार॥
॥१५५८॥२१७६॥

राग नट

नंद-सुवन यह बात कहावत।
आपुन जोबन-दान लेत हैं, जोइ-सोइ सखनि सिखावत॥
वै दिन भूलि गए हरि तुमकौं, चोरी माखन खाते।
खीझन हीं भरि नैन लेत हे, डरडगात भजि जाते॥
जसुमति जब ऊखल सौं बाँध्यौ हमहीं छोरयौ जाइ।
सूर स्याम अब बड़े भए हौ, जोबन-दान सुहाइ॥
॥१५५९॥२१७७॥

राग टोड़ी

लरिकाई की बात चलावति।
कैसी भई, कहा हम जानैं, नैंकहुँ सुधि नहिं आवति॥
कब माखन चोरी करि खायौ, कब बाँधे धौं मैया?
भले बुरे कौ मानऽपमान न, हरषत ही दिन जैया।
अपनी बात खबरि करि देखहु, न्हात जमुन कैं तीर।
सूर स्याम तब कहत, सबनि के कदम चढ़ाए चीर॥
॥१५६०॥२१७८॥

राग गूजरी

सबै रहीं जल-माँझ उघारी।
बार-बार हा-हा करि थाकीं, मैं तट लई हँकारी॥
आई निकसि बसन बिनु तरुनी, बहुत करी मनुहारी।
कैसे हाल भए तब सबके, सो तुम सुरति बिसारी॥
हमहिं कहत दधि-दूध चुरायौ, अरु बाँधे-महतारी।
सूर स्याम के भेद-वचन सुनि, हँसि सकुचीं ब्रजनारी॥
॥१५६१॥२१७९॥

राग सारंग

कहा भए अति ढीठ कन्हाई।
ऐसी बात कहत सकुचत नहिं, कहँ धौं अपनी लाज गँवाई॥

जाहु चले लोगनि के आगे, झूठी बानी कहत सुनाई ॥
तुम हँसि कहत, ग्वाल सुनि सुनि कै, घर-घर मैं कैहैं सब जाई ।
बहुत होहुगे दसहि बरस के, बात कहत हौ बनै बनाई ।
सूर स्याम जसुमति के आगे, यहै बात सब कैहैं जाई ॥
॥१५६२॥२१८०॥

राग हमीर

झूठी बात कहा मैं जानौं ।
जो मोकौं जैसैं हि भजै री, ताकौं तैसैंहि मानौं ॥
तुम तप कियौ मोहि कौं मन दै, मै हौं अंतरजामी ।
जोगी कौं जोगी ह्वै दरसौं, कामी कौं ह्वै कामी ॥
हमकौं तुम झूठे करि जानति, तौ काहैं तप कीन्हौ ।
सुनहु सूर कत भई निठुर अब, दान जात नहि दीन्हौ ॥
॥१५६३॥२१८१॥

राग गौरी

दान सुनत रिस होति कन्हाई ।
और कहौ सो सब सहि लैहैं, जो कछु भली-बुराई ॥
महतारी तुम्हरी के वे गुन, उरहन देत रिसाई ।
तुम नीके ढँग सीखे, बन मैं, रोकत नारि पराई ॥
आवन जान न पावत कोऊ, तुम मग मैं घटवाई ।
सूर स्याम हमकौं बिलमावत खीझति भगिनी माई ॥
॥१५६४॥२१८२॥

राग गौरी

मोहन तुम कैसे हौ दानी ।
सूधे रहौ गहौ पति अपनी, तुम्हरे जिय की जानी ॥
हम तौ अहिर गँवारि ग्वारि हैं, तुम हौ सारँगपानी ।
मटुकी लई उतारि सीस तैं, सुंदरि अधिक लजानी ॥
कर गहि चीर कहा ऐंचत हौ, बोलत मधुरी बानी ।
सूरदास-प्रभु माखन कैं मिस, प्रीति-रीति चित आनी ॥
॥१५६५॥२१८३॥

राग गौरी

काहे कौं तुम झेर लगावत।
दान देहु, घर जाहु बेंचि दधि, तुमहीं कौं यह भावत॥
औनि करौ सोसौं तुम काहे न, बनिज करनि ब्रज-गाउँ।
आवहु जाहु सबै इहि मारग, लेत हमारौ नाउँ॥
लेखौ करौ तुमहि अपनैं मन, जोइ देहौ सोइ लैहौं।
सूर सुभाइ चलौगी जब तुम पुनि धौं मैं कह कैहौं॥
॥१५६६।२१८४॥

राग कान्हरौ

सुनहु आइ हरि के गुन माई।
हम भईं बनिजारिनि, आपुन भए दानी कुँवर कन्हाई॥
कहा बनिज धौं ले आईं हम, जाकौ माँगत दान।
कालहहि कै ढँग पुनि आई हैं, नहिं जानति कछु आन॥
तुम गँवारि याही मग आवति, जानि-बूझि गुन इनके।
सूर स्याम सुंदर बहु-नायक, सुखदायक सबहिनि के॥
॥१५६७।२१८५॥

राग टोड़ी

काहे कौं हमसौं हरि लागत।
बातहि कछु लेखा सर नाहीं, का जानै कह माँगत॥
कहा सुभाउ परयौ अबहीं तैं, इन बातनि कछु पावत।
निपट हमारे ख्याल परे हरि, बन मैं नितहि खिझावत॥
पूरौ देहु बहुत अब कीन्हौ, सुनत हँसैंगे लोग।
सूर स्याम मारग जिनि रोकहु, घर तैं लीजौ ओग॥
॥१५६८॥२१८६॥

राग सूही

अब लौं यहै कियौ तुम लेखौ।
ऐसी बुद्धि बतावति कंकन कर-दर्पन लै देखौ॥
आपुहिं चतुर, आपुहीं सब कछु, हमकौ करति गँवार।
आगहिं लेत फिरौ इनकैं घर, ठाढ़े ह्वै ह्वै द्वार॥

घाट छाँड़ि जैहौं तब लैहौं, ज्वाब नृपहिं कह दैहौं।
जा दिन तैं इहिं मारग आवति, ता दिन तैं भरि लैहौं॥
इनकी बुद्धि दान हम पहिरयौ, काहूँ न घर-घर जैहैं।
सूर स्याम हँसि कहत सखनि सौं, जान कौन विधि पैहैं॥
॥१५६९॥२१८७॥

राग टोड़ी

भली भई नृप मान्यौ तुमहूँ।
लेखौ करैं जाइ कसहिं पै, चलैं संग तुम हमहूँ॥
अब लौं हम जानी घरही मैं, पहिरयौ है तुम दान।
काल्हि कह्यौ हो दान लेन कौं, नंद-महर की आन॥
तौ तुम कंस पठाए हौ ह्याँ, अब जानी यह बात।
सूर स्याम सुनि-सुनि यह बानी, भौंह मोरि मुसुकात॥
॥१५७०॥२१८८॥

राग आसावरी

कहा हँसत मोरत हो भौंह।
सोई कहौ मनहिं जो आई, तुमहिं नंद की सौंह॥
और सौंह तुमकौं गोधन की, सौंह माइ जसुमति की।
सौंह तुमहिं बलदाऊ की है, कहौ बात वा मति की॥
बार-बार तुम भौंह सकोरयौ, कहा आपु हँसि रीझे।
सूर स्याम हम पर सुख पायौ, की मनहीं मन खीझे॥
॥१५७१॥२१८९॥

राग रामकली

हँसत सखनि सौं कहत कन्हाई॥
मैया की बाबा की दाऊ जू की, सौंह दिवाई॥
कहति कहा काहूँ हँसि हेर्‍यो, काहूँ भौंह सकोरयौ॥
यह अचरज देखौ तुम इनकौ, कब हम बदन मरोर्‍यौ॥
ऐसी बातनि सौंह दिवावति, अधिक हँसी मोहिं आवत।
सूर स्याम कहैं श्रीदामा सौं तुम काहैं न समुझावत॥
॥१५७२॥२१९०॥

राग धनाश्री

श्रीदामा गोपिनि समुझावत।
हँसत स्याम के तुम कह जान्यौ, काहैं सौंह दिवावत॥
तुमहूँ हँसौ आपनैं सँग मिलि, हम नहिं सौंह दिवावैं।
तरुनिनि की यह प्रकृति अनैसी, थोरिहिं बात खिसावैं॥
नान्हे लोगनि सौंह दिवावहु, ये दानी प्रभु सबके।
सूर स्याम कौं दान देहु री, माँगत ठाढ़े कब के॥
॥१५७३॥२१६१॥

राग जैतश्री

हम जानति वेइ कुँवर कन्हाई।
प्रभु तुम्हरैं मुख आजु सुनी हम, तुम जानत प्रभुताई॥
प्रभुता नहीं होति इन बातनि, मही दही कैं दान।
वै ठाकुर, तुम सेवक उनके, जान्यौ सबकौ ज्ञान॥
दधि खायौ, मोतिनि लर तोरी, घृत माखन सोउ लीजै।
सूरदास प्रभु अपनैं सदका, घरहिं जान हम दीजै॥
॥१५७४॥२१६२॥

राग सोरठ

तुम घर जाहु दान को दैहै।
जिहिं बीरा दै मोहिं पठायौ, सो मोसौं कह लैहै॥
तुम घर जाइ बैठि सुख करिहौ, नृप-गारी को खैहै।
अबहीं बोलि पठावैगो री, ता सनमुख को जैहै॥
जान कहै तुमकौं तुम जैहौ, बिधना कैसैं सैहैं।
सूर मोहिं अँटक्यौ है नृप बर, तुम बिनु कौन छुड़ैहै॥
॥१५७५॥२१६३॥

राग जैतश्री

नृप कौ नाउँ लेत ताही मुख, जिहिं मुख निंदा काल्हि करी।
आपुन तौ राजनि के राजा, आजु कहा सुधि मनहिं परी॥
भले स्याम ऐसी तुम कीन्ही, कहा कंस कौ नाउँ लियौ।
जब हम सौंह दिवावन लागीं, तबहिं कंस पर रोष कियौ॥

जाकौं निंदि बंदियै सो पुनि, वह ताकौं बहुरौ निंदै।
सूर सुनी वह बात काल्हि की, तब जानी इन कंस डरै॥
॥१५७६॥२१६४॥

राग आसावरी

कहा कहति कछु जान न पायौ।
कब कंसहिं धौं हम कर जोरे, कब हम माथ नवायौ॥
कबहूँ सौंह करत देख्यौ मोहिं, लेत कबहुँ मुख नाउँ।
निपटहिं ग्वारि गँवारि भईं तुम, बसत हमारैं गाउँ॥
कहा कंस, कितने लायक कौ, जाकौं मोहिं दिखावति।
सुनहु सूर इहिं नृप के हम हैं, यह तुम्हरैं मन आवति?॥
॥१५७७॥२१६५॥

राग टोड़ी

कौन नृपति (पुनि) जाके तुम हौ।
ताकौ नाउँ सुनावहु हमकौं, यह सुनिकै अति पावति भौ॥
इहिं संसार भुवन चौदह भरि, कंसहिं तैं नहिं दूजौ औ।
सो नृप कहाँ रहत सुनि पावैं, तब ताही कौं मानैं जौ॥
कहा नाउ, किहिं गाउँ बसत है, ताही के ह्वै रहियै तौ।
सूरदास प्रभु कहे बनैगी, झूठहिं हमहिं कहत धौं हौ॥
॥१५७८॥२१६६॥

राग धनाश्री

मोसौं सुनहु नृपति कौ नाउँ।
तिहूँ भुवन भरि गम है जाकौ, नर-नारी सब गाउँ॥
गन गंधर्व बस्य वाही कैं, और नहीं सरि ताहि।
उनकी अस्तुति करौं कहा लगि, मैं सकुचत हौं जाहि॥
तिनहीं कौ पठयौ मैं आयौ, दियौ दान कौ बीरा।
सूर रूप-जोबन-धन सुनि कै, देखत भयौ अधीरा॥
॥१५७९॥२१६७॥

राग गौरी

पाई जाति तुम्हारे नृप की, जैसे तुम तैसे वोऊ हैं।
कहाँ रहे दुरि जाइ आजु लौं, येई गुन ढँग के सोऊ हैं॥

यह अनुमान कियौ मन मैं हम, एकहिं दिन जनमे दोऊ हैं।
चोरी, अपमारग, बटपारयौ, इन पटतर के नहिं कोऊ हैं॥
स्याम बनी अब जोरी नीकी, सुनहु सखी मानत तोऊ हैं।
सूर स्याम जितने रँग काछत, जुवती जन-मन के गोऊ हैं॥
॥१५८०॥२१९८॥

राग गौरी

ठगति फिरति ठगिनी तुम नारि।
जोइ आवत सोइ सोइ कहि डारति, जाति जनावति दै-दै गारि॥
फँसिहारिनि, बटपारिनि हम भईं आपुन भए सुधर्मा भारि।
फंदा फाँस कमान बान सौं, काहूँ देख्यौ डारत मारि॥
जाकैं मन जैसीयै बरतै, मुख-बानी कहि देति उघारि।
सुनहु सूर नीकैं करि जान्यौ, ब्रज-तरुनी तुम सब बटपारि॥
॥१५८१॥२१९९॥

राग सूहौ

अपने नृप कौं यहै सुनायौ।
ब्रज-नारी बटपारिनि हैं सब, चुगली आपुहिं जाइ लगायौ॥
राजा बड़े बात यह समुझी, तुमकौं हम पर धौंस पठायौ।
फँसिहारिनि कैसैं तुम जानी, हम कहँ नाहिन प्रगट दिखायौ॥
ब्रज-बनिता फँसिहारिनि जौ सब, महतारी काहैं न गनायौ।
फंदा-फाँसि, धनुष, बिष-लाडू, सूर स्याम हमहीं न बतायौ॥
॥१५८२॥२२००॥

राग भैरव

फंदा-फाँसि बतावौं जौ।
अंगनि धरे छुपाइ जहाँ जो, प्रगट करौ सब बदिहौ तौ॥
प्रथमहिं सीस मोहिनी डारति, ऐसे ताहि करति बस हौ।
बिष-लाडू दरसावति लै पुनि, देह-दसा सुधि बिसरत ज्यौं॥
ता पाछैं फंदा गर डारति, इनि भाँतिनि करि मारति हौ।
सुनहु सूर ऐसे गुन तुम्हरे, मोसौं कहा उचारति हौ॥
॥१५८३॥२२०१॥

राग सूहौ

प्रगट करौ यह बात कन्हाई।
बान, कमान, कहाँ किहिं मारयौ, काकैं गर हम फाँस लगाई॥
काकैं सिर पढ़ि मंत्र दियौ हम, कहाँ हमारै पास दिनाई।
मिलवत कहाँ कहाँ की बातैं, हँसत कहत अति गई सकुचाई॥
तब मानै सब हमहिं बतावहु, कहौ नहीं तौ नंद-दुहाई।
सूर स्याम तब कह्यौ सुनहुयी, एक-एक करि देउँ बताई॥
॥१५८४॥२२०२॥

राग सूहौ

मोसौं कहा दुरावति नारि।
नैन सेन दै चितहिं चुरावति यहै मंत्र टोना सिर डारि।
भौंह धनुष, अंजन गुन ऐंचति, बान कटाच्छनि डारति मारि।
तरिवन-स्रवन फाँसि गर डारति, कैसेहुँ नाहिं सकत निरवारि॥
पीन उरज मुख-नैन चखावति, यह विष-मोदक जात न झारि।
घालति छुरी प्रेम की बानी, सूरदास को सकै सम्हारि॥
॥१५८५॥२२०३॥

राग टोड़ी

अपनौ गुन औरनि सिर डारत।
मोहन, जोहन, मंत्र-जंत्र, टोना, सब तुम पर वारत॥
तनु त्रिभंग, अँग-अंग मरोरनि, भौंह बंक करि हेरत।
मुरली अधर बजाइ मधुर सुर, तरुनी-मन-मृग घेरत॥
नटवर वेष पितांबर काछे, छैल भए तुम डोलत।
सूर स्याम रावरे ढंग ये, औरनि कौं ठग बोलत॥
॥१५८६॥२२०४॥

राग टोड़ी

जानी बात मौन धरि रहियै।
यहै जानि हम पर चढ़ि आए, जो भावै सो कहियै॥
हम नहिं बिलग तुम्हारौ मान्यौ, तुम जिनि कछु मन आनौ।
देखहु एक दोइ जिनि भाषहु, चारि देखि दुइ गानौ॥

दोबल देति सबै मोहीं कौं, उन पठयौ मैं आयौ।
सूर रूप-जोबन की चुगुली, नैननि जाइ सुनायौ॥
॥१५८७॥२२०५॥

राग बिलावल

तब रिस करिकै मोहिं बुलायौ।
लोचन-दूत तुमहिं इहि मारग, देखत जाइ सुनायौ॥
सैलव-महलनि तैं सुनि बानी, जोबन-महलनि आयौ।
अपनैं कर बीरा मोहिं दीन्हौ, तुरत दान पहिरायौ॥
बैठौ है सिंहासन चढ़ि कै, चतुराई उपजायौ।
मन-तरंग आज्ञाकारी भृत, तिनकौं तुमहिं लगायौ॥
तिनकौ नाम अनंग नृपति वर, सुनहु बात सुख पायौ।
सूर स्याम मुख बात सुनत यह, जुवतिनि तन बिसरायौ॥
॥१५८८॥२२०६॥

राग सूही

ब्रज-जुवती सुनि मगन भईं।
यह बानी सुनि नंद-सुवन-मुख, मन ब्याकुल, तन सुधिहु गई॥
को हम, कहाँ रहति, कहँ आईं, जुवतिनि कैं यह सोच पर्‍यौ।
लागी काम-नृपति की साँटी, जोबन-रूपहिं आनि अर्‍यौ॥
भ्रमित भईं तरुनी अनंग-डर, सकुचि रूप-जोबनहिं दियौ।
सूर स्याम अब सरन तुम्हारी, हृदय सबनि यह ध्यान कियौ॥
॥१५८९॥२२०७॥

राग जैतश्री

मन यह कहति देह बिसरायैं।
यह धन तुमहीं कौं सँचि राख्यौ, इहिं लीजै सुख पायैं॥
जोबन-रूप नहीं तुम लायक, तुमकौं देति लजाति।
ज्यौं बारिधि आगैं जल-किनुका, बिनय करति इहिं भाँति॥
अंमृत-सर आगैं मधु रंचक, मनहिं करति अनुमान।
सूर स्याम सोभा की सींवाँ, तिन पटतर को आन॥
॥१५९०॥२२०८॥

राग जैतश्री

अंतरजामी जानि लई।
मन मैं मिलें सबनि सुख दीन्हौं, तब तनु की कछु सुरति भई॥
तब जान्यौ बन मैं हम ठाढ़ीं, तन निरख्यौ मन सकुचि गई।
कहति परस्पर आपुस मैं सब, कहाँ रहीं, हम काहि रईं॥
स्याम बिना ये चरित करै को, यह कहि कै तनु सौंपि दयौ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, गुप्तहि जोबन-दान लयौ॥
॥१५६१॥२२०९॥

राग रामकली

यह कहि उठे नंद-कुमार।
कहा ठगि सी रहीं बाला, पर्‌यौ कौन बिचार॥
दान कौ कछु कियौ लेखौ, रहीं जहँ-तहँ सोचि।
प्रगट करि हमकौं सुनावहु, मेटि डारौ दोचि॥
बहुरि इहि मग जाहु-आवहु, राति साँझ सकार।
सूर ऐसो कौन जो पुनि, तुमहिं रोकनहार॥
॥१५६२॥२२१०॥

राग गूजरी

हमहि और सो रोकै कौन।
रोकनहारौ नंदमहर-सुत, कान्ह नाम जाकौ है तौन॥
जाकैं बल है काम-नृपति कौ, ठगत फिरत जुवतिनि कौं जौन।
टोना डारि देत सिर ऊपर, आपु रहत ठाढ़ौ ह्वै मौन॥
सुनहु स्याम ऐसी न बूझियै, बानि परी तुमकौं यह कौन।
सूरदास-प्रभु कृपा करहु अब, कैसैंहु जाहिं आपनै भौन॥
॥१५६३॥२२११॥

राग सूही

दान मानि घर कौं सब जाहु।
लेखौ मैं कहुँ-कहुँ जानत हौं, तुम समुझै सब होत निबाहु॥
पछिलौ देहु निबाहि आजु सब पुनि दीजौ जब जानौ कालि।
अब मैं कहत भली हौं तुमसौं, जौ तुम मोकौं मानौ ग्वालि॥

वृंदावन तुम आवत डरपति, मैं देहौं तुमकौं पहुँचाइ।
सुनहु सूर त्रिभुवन बस जाकैं, सो प्रभु भए जुवतिनि बस आइ॥
॥१५६४॥२२१२॥

राग टोड़ी

को जानै हरि चरित तुम्हारे।
अजहूँ दान नहीं तुम पायौ, मन हरि लिये हमारे॥
लेखौ करि लीजौ मन मोहन, दूध दही कछु खाहु।
सद्‌माखन तुम्हरेहिं मुख-लायक, लीजै दान उगाहु॥
तुम खैहौ माखन-दधि, हम सब देखि-देखि सुख पावैं।
सूर स्याम तुम अब दधि-दानी, कहि-कहि प्रगट सुनावैं॥
॥१५६५॥२२१३॥

राग गौड़

कान्ह माखन खाहु हम सु देखैं।
खद्य दधि दूध ल्याईं अबहिं अबहिं हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखैं॥
सखा सब बोलि, बैठारि हरि मंडली, बनहिं के पात दोना लगाए।
देतिं दधि परुसि ब्रज-नारि, जेंवत कान्ह, ग्वाल-सँग बैठि अति रुचि बढ़ाए॥
धन्य दधि, धन्य माखन, धन्य गोपिका, धन्य राधा-बस्य हैं मुरारी।
सूर-प्रभु के चरित देखि सुर-गन थकित, कृष्न-सँग सुख करति घोष-नारी॥
॥१५६६॥२२१४॥

राग जैतश्री

माखन दधि हरि खात ग्वाल-सँग।
पातनि के दोना सब लै-लै, पतुकिनि मुख मेलत रँग॥
मटुकिनि तैं लै-लै परुसति हैं, हरष भरीं ब्रज-नारी।
यह सुख तिहूँ भुवन कहुँ नाहीं, दधि जेंवत बनवारी॥

गोपी धन्य कहति आपुन कौं, धन्य दूध-दधि-माखन।
जाकौं कान्ह लेत मुख मेलत, सयनि कियौ संभाषन॥
जो हम साध करति अपनैं मन, सो सुख पायौ नीकैं।
सूर स्याम पर तन-मन वारति, आनँद जी सबही कैं॥
॥१५९७॥२२१५॥

राग देवगंधार

गोपिका अति आनंद भरी।
माखन-दधि हरि खात प्रेम सौं निरखति नारि खरी॥
कर लै लै मुख परस करावत, उपमा बढ़ी सु भाइ।
मानहुँ कंज मिलत ससि कौं लिये, सुधा-कौर कर आइ॥
जा कारन सिव ध्यान लगावत, सेस सहस मुख गावत।
सोई सूर प्रगटि ब्रज-भीतर, राधा-मनहि चुरावत॥
॥१५९८॥२२१६॥

राग कान्हरौ

राधा सौं माखन हरि माँगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ, तुम्हरौ कैसौ लागत॥
लै आई वृषभानु-सुता, हँसि सद लवनी है मेरौ।
लै दीन्हौ अपनैं कर हरि-मुख, खात अल्प हँसि हेरौ॥
सबहिनि तैं मीठौ दधि है यह, मधुरैं कह्यौ सुनाइ।
सूरदास-प्रभु सुख उपजायौ, ब्रज ललना मनभाइ॥
॥१५९९॥२२१७॥

राग रामकली

मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिनि कौ सौ है, लयौ छिड़ाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय, मधुर आँचि मैं औटि सिरायौ।
नई दोहनी पोंछि पखारी, धरि निरधूम खिरनि पै तायौ॥
तामैं मिलि मिस्रित मिसिरी करि, दै कपूर-पुट जावन नायौ।
सुभग ढकनियाँ ढाँकि बाँधि पट, जतन राखि छींकैं समुदायौ॥
हौं तुम कारन लै आई गृह, मारग मैं न कहूँ दरसायौ।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, कियौ कान्ह ग्वालिनि मन भायौ॥
॥१६००॥२२१८॥

राग नट

गोपिनि हेत माखन खात।
प्रेम कैं बस नंद-नंदन, नैंकु नाहिं अघात॥
सबै मटुकी भरीं वैसैंहि, प्रेम नाहिं सिरात।
भाव हिरदय जानि मोहन, खात माखन जात॥
इकनि कर दधि दूध लीन्हे, इकनि कर दधि जात।
सूर-प्रभु कौं निरखि गोपी, मनहिं-मनहिं सिहात॥

॥१६०१॥२२१६॥

राग बिहागरौ

गोपी कहति धन्य हम नारी।
धन्य दूध, धनि दधि, धनि माखन, हम परुसति जैंवत गिरिधारी॥
धन्य घोष, धनि दिन, धनि निसि वह, धनि गोकुल प्रगटे बनवारी।
धन्य सुकृत पाछिलौ, धन्य धनि नंद, धन्य जसुमति महतारी॥
धनि धनि ग्वाल, धन्य बृंदावन, धन्य भूमि यह अति सुखकारी।
धन्य दान, धनि कान्ह मँगैया, धन्य सूर त्रिन-द्रुम-बन-डारी॥

॥१६०२॥२२२०॥

राग नट

गन गंधर्ब देखि सिहात।
धन्य ब्रज-ललनानि कर तैं, ब्रह्म माखन खात॥
नहीं रेख, न रूप, नहिं तनु बरन, नहिं अनुहारि।
मातु-पितु नहिं दोउ जाकैं, हरत मरत न जारि॥
आपु कर्त्ता आपु हर्त्ता, आपु त्रिभुवन-नाथ।
आपुहीं सब घट कौ ब्यापी, निगम गावत गाथ॥
अंग प्रति-प्रति रोम जाकैं, कोटि-कोटि ब्रह्मंड।
कीट ब्रह्म प्रजंत जल-थल, इनहिं तैं यह मंड॥
येइ बिस्वंभरन नायक, ग्वाल-संग-बिलास।
सोइ प्रभु दधि-दान माँगत, धन्य सूरजदास॥

॥१६०३॥२२२१॥

राग रामकली

कंस-हेतु हरि जन्म लियौ।
पापहिं पाप धरा भई भारी, तब सुरनि पुकार कियौ॥

सेस-सैन जहँ रमा संग मिलि, तहँ अकास भई बानी।
असुर मारि भुव-भार उतारौं, गोकुल प्रगटौं आनी॥
गर्भ देवकी कैं तनु धरिहौं, जसुमति कौ पय पीहौं।
पूरब तप बहु कियौ कष्ट करि, इनकौ बहुत रिनी हौं॥
यह बानी कहि सूर सुरनि कौं, अब कृष्ना अवतार।
कह्यौ सबनि ब्रज जन्म लेहु सँग, मेरैं करहु बिहार॥
॥१६०४॥२२२२॥

राग गौरी

ब्रह्म जिनहिं यह आयसु दीन्हौ।
तिन तिन संग जन्म लियौ परगट, सखी सखा करि कीन्हौ॥
गोपी-ग्वाल कान्ह द्वै नाहीं, ये कहुँ नैंकु न न्यारे।
जहाँ-जहाँ अवतार धरत हरि, ये नहिं नैंकु बिसारे॥
एकै देह बहुत करि राखे, गोपी ग्वाल मुरारी।
यह सुख देखि सूर के प्रभु कौं, थकित अमर-सँग-नारी॥
॥१६०५॥२२२३॥

राग गौरी

अमर-नारि अस्तुति करैं भारी।
एक निमिष ब्रजबासिनि कौ सुख, नहिं तिहुँ लोक बिचारी॥
धन्य कान्ह नटवर वपु काछे, धन्य गोपिका नारी।
इक-इक तैं गुन-रूप उजागरि, स्याम-भावती प्यारी॥
परुसति ग्वारि ग्वाल सब जेंवत, मध्य कृष्न सुखकारी।
सूर स्याम दधि-दानी कहि-कहि, आनँद घोष-कुमारी॥
॥१६०६॥२२२४॥

राग बिलावल

धन्य कृष्न अवतार ब्रह्म लियौ। रेख न रूप प्रगट दरसन दियौ॥
जल थल मैं कोउ और नहीं बियौ। दुष्टनि बधि संतनि कौं सुख दियौ॥
जौ प्रभु नर देही नहिं धरते। देवै-गर्भ नहीं अवतरते॥
कंस-सोक कैसैं उर टरते। मातु पिता दुरितहिं क्यौं हरते॥
जौ प्रभु ब्रज-भीतर नहिं आवैं। नंद जसोदा क्यौं सुख पावैं॥

पूरब तप कैसैं प्रगटावैं। बेद-बचन कैसैं ठहरावैं॥
जौ प्रभु भेष धरैं नहिं बालक। कैसैं होहिं पूतना-घालक॥
अँगुठा पियत सकट-संहारक। तृना अकास सिला पर डारक॥
जौ प्रभु ब्रज माखन न चोरावैं। क्यौं गोपिनि कौं आपु जनावैं॥
भुजा उलूखल नाहिं बँधावैं। जमला मोच्छ कौन बिधि पावैं॥
सो प्रभु दधि-दानी कहवावैं। गोपिनि कौं मारग अँटकावैं॥
करि करि लेखौ दान सुनावैं। आपुन खीझैं उनहिं खिझावैं॥
ब्रजबासी यौं धन्य कहावैं। जहाँ स्याम दधि-दान लगावैं॥
माँगि खात आनंद बढ़ावैं। जुवतिनि सौं कहि-कहि परुसावैं॥
तेई हरि नटवर-बपु काछैं। मोर-मुकुट पीतांबर आछैं॥
ग्वाल सखा ठाढ़े सब पाछैं। सूरस्याम गोपिनि सुख साछैं॥
॥१६०७॥२२२५॥

राग सूहौ

यह महिमा येई पै जानैं।
जोग-जग्य-तप ध्यान न आवत, सो दधि-दान लेत सुख मानैं॥
खात परस्पर ग्वालनि मिलि कै, मीठौ कहि कहि आपु बखानैं।
बिस्वंभर जगदीस कहावत ते दधि दोना माँझ अघाने॥
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, आपु बनावत, आपुहिं भानैं।
ऐसे सूरदास के स्वामी, ते गोपिनि कैं हाथ बिकाने॥
॥१६०८॥२२२६॥

राग रामकली

धनि बड़भागिनी ब्रजनारि।
खात लै दधि-दूध-माखन, प्रगट जहाँ मुरारि॥
नाहिं जानत भेद जाकौ, ब्रह्म अरु त्रिपुरारि।
सुक सनक मुनि येउ न जानत, निगम गावत चारि॥
देखि सुख ब्रजनारि हरि-सँग, अमर रहे भुलाइ।
सूर प्रभु के चरित अगनित, बरनि कापै जाइ॥
॥१६०९॥२२२७॥

राग बिलावल

ब्रज-बनिता यह कहतिं स्याम सौं, दूध दह्यौ अरु ल्यावैं।
मटुकिनि तैं हम देहिं खाहु तुम, देखि देखि सुख पावैं॥

गोरस बहुत हमारैं घर-घर, दान पाछिलौ लेहु।
खायौ जौन दान आजुहिं कौ, माँगत है सब देहु॥
सबै लेहु, राखहु जिनि बाकी, पुनि न पाइहौ माँगैं।
आजुहि लेहु सबै भरि दैहैं, कहति तुम्हारे आगैं॥
कहत स्याम अब भई हमारी, मनहिं भई परतीति।
जब चैहैं तब माँगि लेहिंगे, हमहिं तुमहिं भई प्रीति॥
बेंचहु जाइ दूध दधि निधरक, घाट-बाट डर नाहीं।
सूर स्याम-बस भई ग्वारिनी, जात बनत घर नाहीं॥
॥१६१०॥२२२८॥

राग टोड़ी

सुनहु सखी मोहन कह कीन्हौ।
इक इक सौं यह बात कहति, लियौ दान कि मन हरि लीन्हौ॥
यह तौ नाहिं बदी हम उनसौं, बूझहु धौं यह बात।
चकित भई विचार करत यह, बिसरि गई सुधि गात॥
उमचि जाति तबहीं सब सकुचति, बहुरि मगन ह्वै जाति।
सूर स्याम सौं कहौ कहा यह, कहत न बनत लजाति॥
॥१६११॥२२२९॥

राग धनाश्री

स्याम सुनहु इक बात हमारी।
ढीठौ बहुत दई हम तुमसौं, बकसौ चूक हमारी॥
मुख जो कहीं कटुक सब बानी, हृदय हमारैं नाहीं।
हँसि-हँसि कहति, खिझावति तुमकौं, अति आनँद मन माहीं॥
दधि माखन कौ दान और जो, जानौ सबै तुम्हारौ।
सूर स्याम तुमकौं सब दीन्हौं, जीवन प्रान हमारौ॥
॥१६१२॥२२३०॥

राग धनाश्री

नंद-कुमार कहा यह कीन्हौ।
बूझति तुमहिं दान यह लीन्हौं, कैधौं मन हरि लीन्हौं॥
कछू दुराव नहीं हम राख्यौ, निकट तुम्हारैं आईं।
एते पर तुमहीं अब जानौ, करनी भली बुराई॥

जो जासौं अंतर नहिं राखै, सो क्यौं अंतर राखै।
सूर स्याम तुम अंतरजामी, बेद उपनिषद भाषै॥
॥१६१३॥२२३१॥

राग टोड़ी

सुनहु बात जुवती इक मेरी।
तुमतैं दूरि होत नहिं कबहूँ, तुम राख्यौ मोहिं घेरी॥
तुम कारन बैकुंठ तजत हौं, जनम लेत ब्रज आइ।
बृंदावन राधा-गोपी सँग, यह नहिं बिसर्‍यौ जाइ॥
तुम अंतर-अंतर कह भाषति, एक प्रान द्वै देह।
क्यौं राधा ब्रज बसैं बिसारौं, सुमिरि पुरातन नेह॥
अब घर जाहु दान मैं पायौ, लेखौ कियौ न जाइ।
सूर स्याम हँसि-हँसि जुवतिनि सौं, ऐसी कहत बनाइ॥
॥१६१४॥२२३२॥

राग नट

घर तनु मन बिना नहिं जात।
आपु हँसि-हँसि कहत हौ जू चतुरई की बात॥
तनहिं पर है मनहि राजा, जोइ करै सोइ होइ।
कहौ घर हम जाहिं कैसैं, मन धर्‍यौ तुम गोइ॥
नैन-स्रवन बिचार सुधि-बुधि रहे मनहिं लुभाइ।
जाहिं अबहीं तनुहिं लै घर, परत नाहिंन पाइ॥
प्रीति करि, दुबिधा करी कत, तुमहिं जानौ नाथ।
सूर के प्रभु दीजियै मन, जाहिं घर लै साथ॥
॥१६१५॥२२३३॥

राग कान्हरौ

मन-भीतर है बास हमारौ।
हमकौं लै तहँ तुमहिं छपायौ, यह तौ दोष तुम्हारौ॥
अजहूँ कहा रहे हम आनतहि, तुम अपनौ मन लेहु।
अब पछितानी लोक-लाज-डर, हमहिं छाड़ि तौ देहु॥
घटती होइ जाहि तैं अपनी, ताहि कीजियै त्याग।
चोरैं कियौ बास मन-भीतर, अब समुझे भए जाग॥

मन दीन्हौ, मोकौं तब लीन्हौ, मन लैहौ, मैं जाउँ।
सूर स्याम ऐसी जनि कहियै, हम यह कही सुभाउ॥
॥१६१६॥२२३४॥

राग कान्हरौ

तुमहिं बिना मन धिक अरु धिक घर।
तुमहिं बिना धिक-धिक माता पितु, धिक कुल-कानि, लाज, डर॥
धिक सुत पति, धिक जीवन जग कौ, धिक तुम बिनु संसार।
धिक सो दिवस, पहर, घटिका, पल जो बिनु नंद-कुमार॥
धिक धिक स्रवन कथा बिनु हरि के, धिक लोचन बिनु रूप।
सूरदास प्रभु तुम बिनु घर ज्यौं, बन-भीतर के कूप॥
॥१६१७॥२२३५॥

राग राग्नी हठीली

सुनि तमचुर कौ सोर घोष की बागरी।
नव सत साजि सिंगार चलीं नव-नागरी॥
नव सत साजि सिंगार अंग पाटंबर सोहैं।
इक तैं एक अनूप रूप त्रिभुवन-मन मोहैं॥
इंदा बिंदा राधिका स्यामा कामा नारि।
ललिता अरु चंद्रावली सखिनि मध्य सुकुमारि॥ सबै ब्रजनागरी।
कोउ दूध कोउ दह्यौ मह्यौ लै चली सयानी।
कोउ मटुकी कोउ माट भरी नवनीत मथानी॥
गृह गृह तैं सब सुंदरी, जुरी जमुन-तट जाइ।
सबनि हरष मन मैं कियौ, उठीं स्याम-गुन गाइ॥ चलीं ब्रजनागरी।
यह सुनि नंद-कुमार सैन दै सखा बुलाए।
मन हरषित भए आपु जाइ सब ग्वाल जगाए॥
यह कहिकै तब साँवरे राखे द्रुमनि चढ़ाइ।
और सखा कछु संग लै रोकि रहे मग जाइ॥
एक सखी अवलोकि तबहिं सब सखी बुलाई। तहाँ नँदलाड़िलो।
इहि बन मैं इक बार लूटि हम लई कन्हाई॥
तनक फेर फिरि आइयै अपनैं सुखहिं बिलास।
यह झगरौ सुनि होइगौ गोकुल मैं उपहास॥ कहति ब्रजनागरी।

उलटि चलीं तब सखी तहाँ कोउ जान न पावैं ।
रोकि रहे सब सखा और बातनि बिरमावैं ॥
सुबल सखा तब यह कह्यौ, तुम नागरि हरि-जोग ।
कैसैं बातैं दुरति हैं, तुम उनकैं संजोग ॥ कहत ब्रजलाड़िलौ ।
किनहु सृंग, कोउ बेनु, किनहुँ वन-पत्र बजाए ।
छाँड़ि छाँड़ि द्रुम डारि, कूदि धरनी पर आए ॥
सखिनि मध्य हुत राधिका, सखनि मध्य बलबीर ।
झगरौ ठान्यौ दान कौ, कालिंदी कैं तीर ॥ आइ ब्रजलाड़िले ।
दै नागरि दधि-दान कान्ह ठाढ़े बृंदावन ।
और सखा सब संग बच्छ चारत अरु गोधन ॥
बड़े गोप की लाड़िली, तुम बृषभानु-कुमारि ।
दही मही के कारनैं, कतहि बढ़ावति रारि ॥ कहत ब्रजलाड़िले ।
सूधैं गोरस माँगि कछू लै हम पैं खाहू ।
ऐसे ढीठ गुवाल, कान्ह बरजत नहिं काहू ॥
इहिं मग गोरस लै सबै, नित-प्रति आवहिं जाहिं ।
हमहिं छाप दिखरावहू, दान चहत किहिं पाहिं ॥ कहति ब्रजलाड़िली ।
इतै मान सतराति ग्वालि पै जान न पावै ।
अन ऊतर उठि चली, कुँवर सिर-नैन-कँपावै ॥
इतनी हम सौं को करै, या बृंदावन बीच ।
पुहुमि माट ढरकाइहौं मचिहै गोरस-कीच ॥ कहत नँदलाड़िलौ ।
कान्ह अचगरी करत, देत अगिनित हौ गारी ।
कापैं पढ़िखो दान, भए कबतैं अधिकारी ॥
मातु पिता जैसैं चलैं, तैसैं चलियै आपु ।
कठिन कंस मथुरा बसै, को कहि लेइ सँतापु ॥ कहतिं ब्रजनागरी ।
कहौ न जाइ उताल, जहाँ भूपाल तिहारौ ।
हौं बृंदावन-चंद, कहा कोउ करै हमारौ ॥
सेस सहस-फन नाथि ज्यौं सुरपति करे निरंस ।
अग्नि-पान कियौ छिनक मैं, कित क बापुरौ कंस ॥ कहत नँदलाड़िलौ ।
जाके तुम सु कुमार, ताहि हम नीकैं जानैं ।
जौ पूछौ सतिभाव, आदि अरु अंत बखानैं ॥
बातनि बड़े न हूजिये, सुनहु कान्ह उतपाति ।
गर्भ साँटि जसुमति लियौ, तब तुम आए राति ॥ कहति ब्रजनागरी ।

अरी ग्वारि मयमत, वचन बोलति जु अनेरौ।
कब हरि बालक भए, गर्भ कब लियौ बसेरौ॥
प्रबल असुर पुहुमी बढ़े, विधि कीन्हे ये ख्याल।
कमल-कोस अलि भुरै त्यौं, तुम भुरयौ गोपाल॥ कहत ब्रजलाड़िले॥
तुम भुरए हौ नंद, कहत हैं तुम सौं ढोटा।
दूध दही कैं काज, देह धरि आए छोटा॥
गढ़ि गढ़ि छोलत लाड़िले, भली नहीं यह स्याम।
या धोखें जिनि भूलहू, हम समरथ की बाम॥ कहति ब्रजनागरी॥
जौ प्रभु देह न धरै, दीन कौं कौन उधारै।
कंस-केस को गहै, विघन ब्रज कौ को टारै॥
कहा निगम कहि गावतौ, कह मुनि धरते ध्यान।
दरस-परस बिनु नाम गुन, को पावे निर्वान॥ कहत नँदलाड़िले॥
जौ इतनौ गुन आहि, तिहारैं दरस कन्हाई।
तुम निर्भय पद देत, वेदहू यहै बताई॥
जोग जुगुति तप ध्यावहीं, तिन गति कौन दयाल?
जल-तरंग गत मीन ज्यौं बँधे कर्म कैं जाल॥ कहति ब्रजनागरी॥
जटा भस्म तन दहै, बृथा करि कर्म बँधावै।
पुहुमि दाहिनी देहि, गुफा बसि मोहिं न पावै॥
तजि अभिमान जु गावही, गदगद सुरहिं प्रकास।
इहिं रस मगन जु ग्वालिनी, ता घट मेरौ बास॥ कहत नँदलाड़िले॥
जु पै चाहि लैं स्याम, करत उपहास घनेरे।
हम अहीर-गृह-नारि, लोक-लज्जा कैं जेरे॥
ता दिन हम भईं बावरी, दियौ कंठ तैं हार।
तब तैं घर घैरा चल्यौ, स्याम तुम्हारे जार॥ कहति ब्रजनागरी॥
सखा सबनि मिलि कह्यौ, ग्वारि इक बात सुनावैं।
तुम तन-ज्योति-सुभाव-रूप-उपमा को पावैं॥
गुप्त प्रीति बिधिना रची, रसिक साँवरैं जोग।
यह सँजोग सुनि ग्वारिनी, न्याय हँसैंगे लोग॥ कहत ब्रजलाड़िले॥
ऐसी बातैं कान्ह, कहत हमसौं काहे तैं।
चोरी खाते छाँछ, नैन भरि लेत गहे तैं॥
देत उरहनौ रावरैं, बछरा-दाँवरि जोरि।
जननी ऊखल बाँधती, हमहीं देतीं छोरि॥ कहति ब्रजनागरी॥

बालक रूप अजान, कहा काहू पहिचानै ।
अन ऊतर कोउ कहै, भली अनभली न मानै ॥
वह दिन सुमिरौ आपनौ, न्हात जमुन कैं पानि ।
जब सब मिलि हाहा करी, वस्त्र हर्यौ मैं जानि ॥ कहत नँदलाड़िले ॥
बहुत भए हौ ढीठ, देत मुख ऊपर गारी ।
जिहिं छाजै तिहिं कहौ, इहाँ को दासि तुम्हारी ॥
तुमसौं अब दधि-कारनैं, कौन बढ़ावै रारि ।
या बन मैं इतरात हौ, रोकि पराई नारि ॥ कहति ब्रजनागरी ॥
लियौ उपरना छीनि, दूरि डारनि अँटकायौ ।
दियौ सखनि दधि बाँटि, माँट पुहुमी ढरकायौ ॥
फेंट पीत पट साँवरे, कर पलास कैं पात ।
हँसत परस्पर ग्वाल सब, बिमल बिमल दधि खात ॥ आपु नँदलाड़िले ॥
कान्ह बहोरि न देहु, दही, काहे कौं माते ।
बसियै एकहिं गाउँ, कानि राखति हैं ताते ॥
तब न कछू बनि आइहै, जब बिरुझैं सब नारि ।
लरिकनि कैं बर करत यह, धरिहैं लाड़ उतारि ॥ कहति ब्रजनागरी ॥
गहि अंचल झकझोरि, तोरि हारावलि डारी ।
अटुकी लई उतारि, भोरि भुज कंचुकि फारी ॥
गुपुत सैन दै साँवरैं, कामरि धरी दुराइ ।
या कमरी के कारनैं, अभरन लेउ छिनाइ ॥ कहत नँदलाड़िले ॥
झीनी कामरि काज, कान्ह ऐसे नहिं हूजै ।
काँच पोत गिरि जाइ, नंद-घर गयौ न पूजै ॥
झटकि लई कर मुद्रिका, नासा-मुक्ता गोल ।
इक मुँदरी कौ होइगौ, कान्ह तिहारौ मोल ॥ कहति ब्रजनागरी ॥
सिव बिरंचि सनकादि, आदि तिनहूँ नहिं जानी ।
सेस सहस-फन थक्यौ, निगम कीरतिहिं बखानी ॥
तेरी सौं सुनि ग्वालिनी, यह मेरैं मन माहँ ।
भुवन चतुर्दस देखियै, वा कमरी की छाहँ ॥ कहत नँदलाड़िले ॥
जाहि इतौ परताप, गाइ सो काहैं चारै ।
पर दारा कैं जाइ, आपु कत लज्जा हारै ॥
घर के बाढ़े रावरे, बातैं कहत बनाइ ।
ग्वारनि पै लै खात हैं, जूठी छाक छिनाइ ॥ कहति ब्रजनागरी ॥

देव-रूप सब ग्वाल, करत कौतूहल न्यारे।
गोकुल गुप्त-बिलास, सखा सब संग हमारे॥
इहिं बृंदावन ग्वारिनी, जित कित अंमृत-बेलि।
तिहूँ लोक मैं गाइयै, मेरे रस की केलि॥ कहत नँदलाड़िलौ॥
अब लौं कीन्ही कानि, कान्ह अब तुमसौं लरिहैं।
अधर नयन रिस कोपि, विरचि अन उत्तर करिहैं॥
मो आगे कौ छोहरा, जीत्यौ चाहै मोहिं।
काकैं बल इतरात हौ, देहिं न नख भरि तोहिं॥ कहति ब्रजनागरी॥
चितै बदन मुसुकात, हाथ दधि पूरन दोना।
इत सुंदरी विचित्र, उतै घन स्याम सलोना॥
अति तामस तोहिं ग्वारिनी, मैं जानत सब आदि।
खोटी करनी जाहि की, सोई करै उपादि॥ कहत नँदलाड़िले॥
हठ छाँड़ौ नँदलाल, दान तुमकौं नहिं देहैं।
बिना कहैं ब्रज-लोग, कहा काहू पतियैहैं॥
लाज नहीं तुम आवई, बोलत हौ सतराइ।
कहूँ कंस सुनि पाइहै, गहत फिरौगे पाइ॥ कहति ब्रजनागरी॥
सुनत हँसे नँदलाल, ग्वारि जिय तामस मान्यौ।
सींच्यौ अंमृत बैन, कोप करषत नहि जान्यौ॥
कहाँ बसति हौ नागरी, सो पुर मुग्ध गँवार।
ब्रज-वासी कह जानहीं, तामस कौ व्यवहार॥ कहत नँदलाड़िले॥
जनमत जननी तजी, तात-कुल-धर्म नसायौ।
नंदगोप-गृह आइ, पुत्र कौ नाम धरायौ॥
इतनिक सौं एतौ कियौ, खाटी छाँछ पियाइ।
तुमहिं दोष नहिं लाड़िले, ओछौ गुन क्यौं जाइ॥ कहति ब्रजनागरी॥
अविगत अगम अपार, आदि नाहीं अविनासी।
परम पुरुष अवतार, जिनहिं की माया दासी॥
तुमहिं मिलैं ओछे भए, कहा रही धरि मौन।
तुम्हरेहिं आगैं न्याव है, द्वै मैं ओछौ कौन॥ कहत नँदलाड़िले॥
हमहिं ओछाई यहै, कान्ह तुमकौं प्रतिपाले।
तुम पूरे सब भाँति, मातु-पितु-संकट घाले॥
कहा चलत उपरावटे, अजहूँ नहीं खिसात।
कंस सौंह दै पूछियै, जिनि पटके हैं सात॥ कहति ब्रजनागरी॥

कंस-केसि निग्रहौं पुहुमि कौ भार उतारौं।
उग्रसेन-सिर छत्र, चमर अपनैं कर ढारौं॥
मथुरा सुरनि बसाइहौं असुर करौं जम-हाथ।
दनुज-दवन बिरुदावली, साँचौ त्रिभुवन-नाथ॥ कहत नँदलाड़िले॥
तब न कंस निग्रह्यौ, पुहुमि कौ भार उतार्‌यौ।
चोरी जायौ मातु-गोद, गोकुल पग धार्‌यौ॥
अब बहुतै बातैं कहौ, दही दूध कैं घात।
जौ ऐसे बलवंत हौ, क्यौं न मधुपुरी जात॥ कहति ब्रजनागरी॥
जौ जैहौं मधुपुरी, बहुरि गोकुल नहि ऐहौं।
यह अपनौ परताप, नंद-जसुदा न दिखैहौं॥
बचन लागि मैं है कियौ, जसुमति कौ पय-पान।
मोहिं ग्वार जिनि जानहु, ग्वारिनि सुनौ निदान। कहत नँदलाड़िले॥
हम ग्वारिनि, तुम तरुन, रूप छबि, रबि ससि मोहै।
तिहूँ लोक परताप, छत्र सिंहासन सोहै॥
भई गर्व गत ग्वालिनी, चित्र लिखी तिहिं काल।
हम अहीरि ढीठौ कियौ, जै-जै मदन गुपाल॥
बहुत दिननि तैं कान्ह, दह्यौ इहिं मारग ल्याईं।
तुम देखत नँदलाल, बहुत हम दई ढिठाई॥
कान्ह बिलग जिनि मानियै, राखि पाछिलौ नेहु।
दूध दह्यौ की को गिनै, जो भावै सो लेहु॥
धन्य नंद कौ गेह, धन्य गोकुल जहँ आए।
धनि गोकुल की नारि जिन्हैं तुम रोकन धाए॥
धनि धनि झगरौ आजु कौ, इहिं सुख नाहिन पार।
नंद-नँदन पर कीजियै, तन-मन-धन बलिहार॥
तब दधि आगैं धर्‌यौ, कान्ह लीजै जो भावै।
खाइ जाइ मंजार, काज एकौ नहिं आवै॥
हम अनखीं या बात कौं, लेत दान कौ नाउँ।
सहज भाव रहौं लाड़िले, बसत एक ही गाउँ॥ कहति ब्रजनागरी॥
अभरन दियौ मँगाइ, कियौ गोपिनि मन भायौ।
हिलि मिलि बढ़्यौ सनेह, आपु कर माट उठायौ॥
नंद-नँदन छबि देखिकै, गोपिनि वार्‌यौ प्रान।
कंस-केलि मन मैं बसी, गायौ सूर सुजान॥१६१८॥२२३६॥

राग बिलावल

जबहिं कान्ह यह बात सुनाई। ब्रज-जुवती सब गईं मुरझाई॥
कंस सँहारन मथुरा जैहौं। बहुरो फिरि ब्रज कौं नहिं ऐहौं॥
देवै-गर्भ बास हौं लीन्हौ। तुमकौ गोकुल दरसन दीन्हौ॥
नंद जसोदा अति तप कीन्हौ। मोसौ पुत्र माँगि तब लीन्हौ॥
मोसौ दूजौ और न कोई। हरता करता मैं ही सोई॥
तुम सौं सुत पय-पान कराऊँ। यह तुमसौं मैं माँगैं पाऊँ॥
मोसौं सुत तुमकौं मैं देहौं। मथुरा जनमि गोकुलहिं ऐहौं॥
नंद जसोदा वचन बँधायौ। ता कारन देही धरि आयौ॥
यह बानी सुनि ग्वारि झुरानी। मीन भईं मानौ बिनु पानी॥
यहै कथा तब गर्ग सुनाई। सोई आपु कहत री माई॥
नर देही करि मोहिं न जानौ। ब्रह्म-रूप करि मोकौं मानौ॥
षोडष बरष मिले सुख करिहौं। मथुरा जाइ देव उद्धरिहौं॥
केस गहौं अरि कंस पछारौं। असुर कठोर जमुन लै डारौं॥
रंगभूमि करि मल्लनि मारौं। प्रबल कुवलया-दंत उपारौं॥
सुनहु न री हरि-मुख की बानी। यह सुनि सुनि तरुनी बिकलानी॥
तन मन धन इनपर सब वारहु। जोबन-दान देइ रिस टारहु॥
षोडष बरष गए धौं जैहैं। ब्रज तैं जाइ मधुपुरी रैहैं॥
राजा उग्रसेन कौं करिहैं। कनक-दंड आपुन कर धरिहैं॥
मातु पिता बसुदेव देवकी। जसुमति धाइ कहत हैं इनकी॥
अब तिनके बंधन मोचहिंगे। दरस बिना पुनि हम लोचहिंगे॥
मथुरा नारिनि कौं सुख दैहैं। तब घट प्रान कहौ क्यौं रैहैं॥
कहत सखी यह बात अयानी। जानति हौ तुम कछुक सयानी॥
जोबन दान लेहिंगे तुमसौं। चतुरायौ मेलत हैं हमसौं॥
इनके गाँस कहा री जानौ। इनकी कही एक जनि मानौ॥
जो चाहैं सो दीजै इनकौं। ज्यौं बिनु देखैं रहत न जिनकौं॥
आपु आपु यह बात बिचारैं। नारि नारि मन धीरज धारैं॥
आगैं धर्‌यौ दूध दधि माखन। प्रथमहिं यह कीन्हौ संभाषन॥
बड़े चतुर तुम अहो कन्हाई। तरुनि सबनि कहि यहै सुनाई॥
जानी बात तुम्हारैं मन की। दूरि न कीजै यह रिस तन की॥
सबनि धर्‌यौ दधि माखन आगैं। लेहु सबै अब बिनुहीं माँगैं॥
तुम रिस करत देखि सुख पावैं। यातैं बारहिं बार खिझावैं॥

तन जोबन धन अर्पन कीन्हौ । मन दै मन हरि कैं सुख दीन्हौ ॥
सुभग पात दोना लिए हाथहिं । बैठे सखा स्याम इक साथहिं ॥
मोहन खात खवावति नारी । माँगि लेत दधि गिरिवर-धारी ॥
आपुहिं धन्य कहति ब्रज-नारी । रुचि करि माँगि खात बनवारी ॥
और खाहु मोहन दधि-दानी । यह कहि कहि तरुनी मुसुकानी ॥
सुख दीन्हौ हरि अंतरजामी । ब्रज-जुवतिनि के पूरनकामी ॥
देखत रूप थकित ब्रज-नारी । देह-गेह की सुरति बिसारी ॥
सूर स्याम सबकैं सुखकारी । कह्यौ जाहु घर घोष-कुमारी ॥
॥१६१६॥२२३७॥

राग रामकली

जुवती ब्रज घर जानि बिचारतिं ।
कबहुँक मटुकी लेति सीस पर, कबहुँ धरनि फिरि धारतिं ॥
देखत स्याम, सखा सब देखत, चितै रहीं ब्रज-नारि ।
रीती मटुकिनी मैं कछु नाहीं, सकुचीं मनहिं बिचारि ॥
तब हँसि बोले स्याम जाहु घर तुमकौं भई अबार ।
सकुचति दान पाछिले कौं तुम, मैं करिहौं निरवार ॥
यह कहिकै हरि ब्रजहिं सिधारे, जुवतिनि दान मनाइ ।
सूर स्याम नागर नारिनि के, चित्त लै गए चुराइ ॥
॥१६२०॥२२३८॥

बिलावल अलहिया

रीती मटुकी सीस लै, चलीं घोष-कुमारी ।
एक एक की सुधि नहीं, को कैसी नारी ॥
बनहीं मैं बेंचति फिरैं, घर की सुधि डारी ।
लोक-लाज, कुल-कानि की, मरजादा हारी ॥
लेहु-लेहु दधि कहति हैं, बन सोर पसारी ।
हुम सब घर करि जानहीं, तिनकौं दै गारी ॥
दुध दह्यौ नहिं लेहु री, कहि कहि पचिहारी ।
कहत सूर घर कोउ नहीं, कहँ गईं दइ मारी ॥
॥१६२१॥२२३९॥

राग टोड़ी

या घर मैं कोउ है कै नाहीं ।
बार-बार बूझति बृच्छनि कौं, गोरस लेहु कि जाहीं ॥

आपुहिं कहति लेति नाहीं दधि, और द्रुमनि तर जाति ।
मिलतिं परसपर बिवस देखि तिहिं, कहति कहा इतराति ॥
ताकौं कहति, आपु सुधि नाहीं, सो पुनि जानति नाहीं ।
सूर स्याम-रस भरी गोपिका, बन मैं यौं बितताहीं ॥
॥१६२२॥२२४०॥

राग बिलावल

रीती मटुकी सीस धरैं ।
बन की घर की सुरति न काहूँ, लेहु दही यह कहति फिरैं ॥
कबहुँक जाति, कुंज भीतर कौं, तहाँ स्याम की सुरति करैं ।
चौंकि परतिं, कछु तन-सुधि आवति, जहाँ तहाँ सखि-सुनति ररैं ॥
तब यह कहति कहौं मैं इनसौं, भ्रमि-भ्रमि बन मैं बृथा मरैं ।
सूर स्याम कैं रस पुनि छाकतिं, वैसैंहीं ढँग बहुरि ढरैं ॥
॥१६२३॥२२४१॥

राग नट

तरुनी स्याम-रस मतवारि ।
प्रथम जोबन-रस चढ़ायौ, अतिहि भई खुमारि ॥
दूध नहिं, दधि नहीं, माखन नहीं, रीतौ माट ।
महा रस अँग अंग पूरन, कहाँ घर, कहँ बाट ॥
मातु-पितु गुरुजन कहाँ के, कौन पति, को नारि ।
सूर प्रभु कैं प्रेम-पूरन, छकि रहीं ब्रज नारि ॥
॥१६२४॥२२४२॥

राग रामकली

गोरस लेहु री कोउ आइ ।
द्रुमनि सौं यह कहति डोलति, कोउ न लेइ बुलाइ ॥
कबहुँ जमुना-तीर कौं सब, जाति हैं अकुलाइ ।
कबहुँ बंसीबट-निकट जुरि, होति ठाढ़ी धाइ ॥
लेहु गोरस-दान मोहन, कहाँ रहे छपाइ ।
डरनि तुम्हरैं जाति नाहीं, लेत दह्यौ छुड़ाइ ॥
माँगि लीजै दान अपनौ, कहति हैं समुझाइ ।
आइ पुनि रिस करत हौ हरि, दह्यौ देत बहाइ ॥

एक-एकहिं बात बूझति, कहाँ गए कन्हाइ।
सूर-प्रभु कैं रंग राँची, जिय गयौ भरमाइ॥

॥१६२५॥२२४३॥

राग जैतश्री

बैठि गईं मटुकी सब धरि कै।
यह जानति अबहीं हैं आवत, ग्वाल सखा सँग हरि कैं॥
अंचल सौं दधि-माट दुरावति, दृष्टि गई तहँ परि कै।
सबनि मटुकियाँ रीती देखीं, तरुनी गईं भभरि कै॥
कहि-कहि उठीं जहाँ-तहँ सब मिलि, गोरस गयौ कहुँ ढरि कै।
कोउ कोउ कहै स्याम ढरकायौ, जान देहु री जरि कै॥
इहिं मारग कोऊ जनि आवहु, रिस करि चली डगरि कै।
सूर सुरति तनु की कछु आई, उतरत काम लहरि कैं॥

॥१६२६॥२२४४॥

राग नट

चकित भईं घोष-कुमारि।
हम नहीं घर गईं तब तैं रहीं बिचारि-बिचारि॥
घरहिं तैं हम प्रात-आईं, सकुचि बदन निहारि।
कछु हँसति कछु डरति, गुरुजन देत ह्वैहैं गारि॥
जो भई सो भई हम कहँ, रहीं इतनी नारि।
सखा सँग मिलि खाइ दधि, तबहीं गए बनवारि॥
इहाँ लौं की बात जानतिं, यह अचंभौ भारि।
यहै जानतिं सूर के प्रभु, सिर गए कछु डारि॥

॥१६२७॥२२४५॥

राग धनाश्री

स्याम बिना यह कौन करै।
चितवत ही मोहिनी लगावै, नैंकु हँसनि पर मनहिं हरै॥
रोकि रह्यौ प्रातहिं गहि मारग, लेखौ करि दधि-दान लियौ।
तनुकी सुधि तबही तैं भूली, क पढ़ि कै सिर नाइ दियौ॥
मन के करत मनोरथ पूरन, चतुर नारि इहिं भाँति कहैं।
सूर स्याम मन हर्यौ हमारौ, तिहिं बिनु कहि कैसैं निबहैं॥

॥१६२८॥२२४६॥

राग धनाश्री

मन हरि सौं तनु घरहिं चलावति।
ज्यौं गज मत्त लाज-अंकुस करि, घर गुरुजन-सुधि आवति॥
हरि-रस-रूप यहै मद आवत, डर डारयौ जु महावत।
गेह-नेह-बंधन-पग तोरयौ, प्रेम-सरोवर धावत॥
रोमावली सुंड, बिबि कुच मनु कुंभस्थल-छबि पावत।
सूर स्याम केहरि सुनि कै ज्यौं बन-गज-दर्प नवावत॥
॥१६२६॥२२४७॥

राग धनाश्री

जुवति गईं घर नैंकु न भावत।
मातु-पिता गुरुजन पूछत कछु औरै और बतावत॥
गारी देत सुनति नहिं नैंकहु, स्रवन सब्द हरि पूरे।
नैन नहीं देखत काहू कौं, ज्यौं कहुँ होहिं अधूरे॥
बचन कहति हरि ही के गुन कौ, उतहीं चरन चलावैं।
सूर स्याम बिनु और न भावै, कोउ कितनहु समुझावै॥
॥१६३०॥२२४८॥

राग सोरठ

लोक-सकुच कुल-कानि तजी।
जैसैं नदी सिंधु कौं धावै, वैसैंहि स्याम भजी॥
मातु पिता बहु त्रास दिखायौ, नैंकु न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति, बहुतै बुद्धि सजी॥
मानति नहीं लोक-मरजादा, हरि कैं रंग मजी।
सूर स्याम कौं मिलि, चूनौ-हरदी ज्यौं रंग रँजी॥
॥१६३१॥२२४६॥

राग सोरठ

बार बार जननी समुझावति।
काहे कौं जहँ-तहँ डोलति, हमकौं अतिहिं लजावति॥
अपने कुल की खबरि करौ धौं, सकुच नहीं जिय आवति।
दधि बेंचहु घर सूधैं आवहु, काहैं भेर लगावति॥

यह सुनि कै मन हर्ष बढ़ायौ, तब इक बुद्धि बनावति।
सुनि मैया दधि-माट ढरायौ, तिहिं डर बात न आवति॥
जान देहि कितनौ दधि डार्‌यौ, ऐसैं तब न सुनावति।
सुनहु सूर इहिं बात डरानी, माता उर लै लावति॥
॥१६३२॥२२५०॥

राग सारंग

नैंकु नहीं घर सौं मन लागत।
पिता-मातु, गुरुजन परबोधत, नीके बचन बान सम लागत॥
तिनकौं धिक-धिक कहति मनहिं मन, इनकौं बनै भलै हौं त्यागत।
स्याम-बिमुख नर-नारि बृथा सब, कैसैं मन इनसौं अनुरागत॥
इनकौ बदन प्रात दरसै जिनि, बार-बार बिधि सौं यह माँगत।
यह तनु सूर स्याम कौं अरप्यौ, नैंकु टरत नहिं सोवत जागत॥
॥१६३३॥२२५१॥

राग धनाश्री

पलक-ओट नहिं होत कन्हाई।
घर गुरुजन बहुतै बिधि त्रासत, लाज करावत, लाज न आई॥
नैन जहाँ दरसन हरि अँटके, स्रवन थके सुनि बचन सुहाई।
रसना और नहीं कछु भाषति, स्याम-स्याम रट इहै लगाई॥
चित चंचल संगहिं सँग डोलत लोक-लाज-मरजाद मिटाई।
मन हरि लियौ सूर-प्रभु तबहीं, तन बपुरे की कहा बसाई॥
॥१६३४॥२२५२॥

राग बिलावल

चली प्रातहीं गोपिका, मटुकिनि लै गोरस।
नैन, स्रवन, मन, बुद्धि, चित, ये नहिं काहूँ बस॥
तन लीन्हे डोलति फिरैं, रसना अटक्यौ जस।
गोरस नाम न आवई, कोउ लैहै हरि-रस॥
जीव पर्‌यौ या ख्याल मैं, अरु गयौ दसा दस।
बझै जाइ खग-बृंद ज्यौं, प्रिय छबि लटकनि लस॥
छाँड़िहु दियैं उड़ात नहिं कीन्हौ पावै तस।
सूरदास प्रभु-भौंह की मोरनि फाँसी-गँस॥
॥१६३५॥२२५३॥

राग कान्हरौ

दधि बेंचति ब्रज-गलिनि फिरै।
गोरस लेन बुलावत कोऊ, ताकी सुधि नैंकहु न करै॥
उनकी बात सुनति नहिं स्रवननि, कहति कहा ये घरनि जरै।
दूध-दह्यौ ह्याँ लेत न कोऊ, प्रातहिं तैं सिर लिये ररै॥
बोलि उठति पुनि लेहु गुपालहिं, घर-घर लोक-लाज निदरै।
सूर स्याम कौ रूप महारस, जाकैं बल काहूँ न डरै॥
॥१६३६॥२२५४॥

राग कान्हरौ

गोरस कौ निज नाम भुलायौ।
लेहु लेहु कोऊ गोपालहिं, गलिनि गलिनि यह सोर लगायौ॥
कोउ कहै, स्याम, कृष्ण कहै कोऊ, आजु दरस नाहीं हम पायौ।
जाकैं सुधि तन की कछु आवति, लेहु दही कहि तिनहिं सुनायौ॥
इक कहि उठति दान माँगत हरि, कहूँ भई कै तुमहिं चलायौ।
सुनहु सूर तरुनी जोवन-मद, तापर स्याम-महारस पायौ॥
॥१६३७॥२२५५॥

राग कान्हरौ

ग्वालिनि फिरति बिहालहिं सौं।
दधि-मटुकी सिर लीन्हे डोलति, रसना रटति गोपालहिं सौं॥
गेह-नेह, सुधि-देह बिसारे, जीव पर्यौ हरि ख्यालहिं सौं।
स्याम धाम निज बास रच्यौ, रचि, रहित भई जंजालहिं सौं॥
छलकत तक्र उफनि अँग-आवत, नहिं जानति तिहिं कालहिं सौं।
सूरदास चित ठौर नहीं कहुँ, मन लाग्यौ नँदलालहिं सौं॥
॥१६३८॥२२५६॥

राग मलार

कोउ माई लैहै री गोपालहिं।
दधि कौ नाम स्यामसुंदर-रस, बिसरि गयौ ब्रज-बालहिं॥
मटुकी सीस, फिरति ब्रज-बीथिनि, बोलति बचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत, चित लाग्यौ नँद-लालहिं॥

हँसति, रिसाति, बुलावति, बरजति देखहु इनकी चालहिं।
सूर स्याम बिनु और न भावै, या बिरहिनि बेहालहिं॥
॥१६३९॥२२५७॥

राग गौड़ मलार

ग्वालिनी प्रगट्यौ पूरन नेहु।
दधि-भाजन सिर पर धरे, कहति गोपालहिं लेहु॥
बन-बीथिनि अरु पुर-गलिनि, जहाँ-तहाँ हरि-नाउँ।
समुझाई समुझति नहीं, सिख दै बिथक्यौ गाउँ॥
कौन सुनै, काकैं स्रवन, काकैं सुरति सँकोच।
कौन डरै पथ-अपथ तैं, को उत्तम, को पोच॥
पिये प्रेम बर बारुनी, बलकति मुख न सम्हार।
पग डगमग जित-तित धरति, बिथुरी अलक लिलार॥
मंदिर मैं दीपक दिवै, बाहिर लखै न कोइ।
तृन परसत परगट भयौ, गुप्त कौन पै होइ॥
लज्जा तरल तरंगिनी, गुरुजन गहिरी धार।
दुहूँ कूल-परमिति नहीं, तरत न लागी बार॥
सरिता निकट तड़ाग कैं, निकसी कूल बिदारि।
नाम मिट्यौ सरिता भई, कौन निवारै वारि॥
बिधि भाजन ओछौ रच्यौ, सोभा-सिंधु अपार।
उलटि मगन तामैं भई, कौन निकासनहार॥
चित आकर्ष्यौ नंद-सुत मुरली मधुर बजाइ।
जिहिं लज्जा जग लज्जियै (सो) लज्जा गई लजाइ॥
प्रेम-मगन ग्वालिनि भई सूरज-प्रभु कैं संग।
स्रवन नैन मुख-नासिका (ज्यौं) कैंचुल तजै भुजंग॥
॥१६४०॥२२५८॥

राग सुघरई

छोटी मटुकी, मधुर चाल चलि, गोरस बेंचति ग्वालि रसाल।
झरबराइ उठि चली प्रातहीं बिथुरे कच कुम्हिलानी माल॥
गेह-नेह-सुधि नैंकु न आवति, मोहि रही तजि भवन-जँजाल।
और कहति औरै कहि आवत, मन मोहन कैं परी जु ख्याल॥

जोइ जोइ पूछत हैं कह यामैं, कहति फिरति कोउ लेहु गुपाल ।
सूरदास-प्रभु कैं रस-वस ह्वै, चतुर ग्वालिनी भई बिहाल ॥
॥१६४१॥२२५९॥

राग कान्हरौ

दधि-मटुकी सिर लिये ग्वालिनी कान्ह कान्ह करि डोलै री ।
बिवस भई तनु-सुधि न सम्हारै आपु बिकी बिनु मोलै री ॥
जोइ-जोइ पूछै यामैं है कह लेहु लेहु कहि बोलै री ।
सूरदास-प्रभु-रस-वस ग्वालिनि बिरह भरी फिरै टोलै री ॥
॥१६४२॥२२६०॥

राग धनाश्री

बेँचति ही दधि ब्रज की खोरी ।
सिर कौ भार सुरति नहिँ आवत, स्याम स्याम टेरत भई भोरी ॥
घर-घर फिरति गुपालहि बेँचत, मगन भई मन ग्वारि किसोरी ।
सुंदर बदन निहारन कारन, अंतर लगी सुरति की डोरी ॥
ठाढ़ी रही बिथकि मारग मैं, हाट-माँझ मटुकी सो फोरी ।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, चित-चिंतामनि लियौ अँजोरी ॥
॥१६४३॥२२६१॥

राग बिलावल

नरनारी सब बूझत धाइ ।
दही मही मटुकी सिर लीन्हे, बोलति हौ गोपाल सुनाइ ॥
हमहिँ कहौ तुम करति कहा यह, फिरति प्रातहीं तैं हौ आइ ।
गृह द्वारा कहुँ है कै नाहीं, पिता, मातु, पति, बंधु न भाइ ॥
इततैं उत, उततैं इत आवति, बिधि-मर्जादा सबै मिटाइ ।
सूर स्याम मन हर्यौ तुम्हारौ, हम जानी यह बात बनाइ ॥
॥१६४४॥२२६२॥

राग धनाश्री

कहति नंद-घर मोहिं बतावहु ।
द्वारहिँ माँझ बात यह बूझति, बार बार कहि कहाँ दिखावहु ॥
याही गाउँ किधौं औरै कहुँ, जहाँ महर कौ गेहु ।
बहुत रि तैं मैं आई हौं, कहि काहे न जस लेहु ॥

अतिहीं संभ्रम भई ग्वालिनी, द्वारेही पर ठाढ़ी।
सूरदास स्वामी सौं अटकी प्रीति प्रगट अति बाढ़ी॥
॥१६४५॥२२६३॥

राग गौड़ मलार

नंद के द्वार नँद-गेह बूझै।
इतहिं तैं जाति उत, उतहिं तैं फिरै इत, निकट ह्वै जाति नहिं नैंकु सूझै॥
भई बेहाल ब्रज-बाल, नँद-लाल-हित, अरपि तन मन सबै तिन्है दीन्हौ।
लोक-लज्जा तजी, लाज देखत लजी, स्याम कौं भजी, कछु डर न कीन्हौ॥
भूलि गयौ दधि-नाम, कहति लैहो स्याम, नहीं सुधि धाम कहुँ है कि नाहीं।
सूर-प्रभु कौं मिली, मँटि भली अनभली, चून-हरदी-रंग देह छाहीं॥१६४६॥२२६४॥

राग रामकली

तब इक सखी प्रियतम कहति।
प्रेम ऐसौ प्रगट कीन्हौ, धीर काहैं न गहति॥
ब्रज-घरनि उपहास जहँ-तहँ, समुझि मन किन रहति।
बात मेरी सुनति नाहिन, कतहिं, निंदा सहति॥
मातु-पितु, गुरुजननि जान्यौ, भली खोई महति।
सूर प्रभु कौ ध्यान चित धरि, अतिहिं काहैं बहति॥
॥१६४७॥२२६५॥

राग धनाश्री

आपु कहावति बड़ी सयानी।
तब तू कहति सबनि सौं हँसि-हँसि, अब तौ प्रगटहि भई दिवानी॥
कहाँ गई चतुराई तेरी, अतिही काहैं भई अयानी।
गुप्त प्रीति परगट तैं कीन्ही, सुनति कछू घर-घर की बानी?॥
एकहि बेर तजी मरजादा, मातु-पिता गुरुजनहि भुलानी।
सुनहु सूर ऐसी न बूझियै, सीस धरे मटुकी बिततानी॥
॥१६४८॥२२६६॥

राग नट

सुनुरी ग्वारि मुग्ध गँवारि।
स्याम सौं हित भलैं कीन्हौ, दियौ ताहि उघारि॥
कृष्न-धन कह प्रगट कीजै, राखि सकै उबारि?।
अजहुँ काहे न समुझि देखति, कह्यौ सुनि री नारि॥
ओछि बुधि तैं करी सजनी, लाज दीन्ही डारि।
लाज आवति मोहिं सुनि री, तोहि कहत गँवारि॥
ज्वाब नाहिंन आवई मुख, कहति हौं जु पुकारि।
सूर प्रभु कौं पाइ कै यह, ज्ञान हृदय बिचारि॥
॥१६४६॥२२६७॥

राग कान्हरौ

कछु कैहै कै मौनहिं रैहै।
कहा कहति हौं तोसौं तब त, ताकौ ज्वाब कछू मोहिं दैहै॥
सुनिहैं मातु-पिता लोगनि-मुख, यह लीला उनि सबै जनैहै।
प्रातहिं तैं आई दधि बेंचन, घरहिं आजु जैहै किन जैहै॥
मेरौ कह्यौ मानिहै नाहीं, ऐसहिं भ्रमि भ्रमि द्यौस बितैहै।
मुख तौ खोलि सुनौं तेरी बानी, भली बुरी कैसी धौं कैहै॥
गुप्त प्रीति काहे न करि हरि सौं, प्रगट कियैं कछु नफा बढ़ैहै।
सूर स्याम सौं प्रीति निरंतर, लाज कियैं अंतर कछु ह्वै है॥
॥१६५०॥२२६८॥

राग कान्हरौ

कहा कहति तू मोहिं री माई।
नंद-नँदन मन हरि लियौ मेरौ, तब तैं मोकौं कछु न सुहाई॥
अब लौं नहिं जानति मैं, को हौ, कब तैं तू मेरैं ढिग आई।
कहाँ गेह, कहँ मातु पिता हैं, कहाँ सजन, गुरुजन कहँ भाई॥
कैसी लाज, कानि है कैसी, कहा कहति ह्वै ह्वै रिसहाई?।
अब तौ सूर भजी नँद-लालहिं, की लघुता की होइ बड़ाई॥
॥१६५१॥२२६९॥

राग धनाश्री

बार बार मोहिं कहा सुनावति।
नैकहुँ नहीं टरत हिरदय तैं, बहुत भाँति समुझावति॥

दोबल कहा देति मोहिं सजनी, तू तौ बड़ी सुजान।
अपनी सी मैं बहुतै कीन्ही, रहति न तेरी आन॥
लोचन और न देखत काहूँ, और सुनत नहिं कान।
सूर स्याम कौं वेगि मिलावहु, कहत रहत घट प्रान॥
॥१६५२॥२२७०॥

राग धनाश्री

सबै हिरानी हरि-मुख हेरैं।
घूँघट-ओट पट-ओट करैं सखि, हाथ न हाथनि मेरैं॥
काकी लाज, कौन कौ डर है, कहा कहे भयौ तेरैं।
को अब सुनै, स्रवन हैं काकैं, निपट के निगम टेरैं॥
मेरे नैन न हौं नैननि की, जो पै जानति फेरैं।
सूरदास हरि चेरी कीन्ही, मन मनसिज के चेरैं॥
॥१६५३॥२२७१॥

राग नट

मेरे कहे मैं कोउ नाहिं।
कह कहौं, कछु कहि न आवै, नैंकुहूँ न डराहिं॥
नैन ये हरि-दरस-लोभी, स्रवन सब्द-रसाल।
प्रथमहीं मन गयौ तन तजि, तब भई बेहाल॥
इंद्रियनि पर भूप मन है, सबनि लियौ बुलाइ।
सूर प्रभु कौं मिले सब ये, मोहिं करि गए बाइ॥
॥१६५४॥२२७२॥

राग गौरी

कहा करौं मन हाथ नहीं।
तू मो सौं यह कहति भली री, अपनौ चित मोहिं देति नहीं॥
नैन रूप अटक नहिं आवत, स्रवन रहे सुनि बात तहीं।
इंद्री धाइ मिलीं सब उनकौं, तन मय जीव रह्यौ सँगहीं॥
मेरैं हाथ नहीं ये कोऊ, घट लीन्हे इक रही महीं।
सूर स्याम सँग तैं कहूँ टरत न, आनि देहि जौ मोहिं तुहीं॥
॥१६५५॥२२७३॥

राग सारंग

बिकानी हरि-मुख की मुसुकानि ।
पर बस भई फिरति सँग निसि दिन, सहज परी यह बानि ॥
नैननि निरखि बसीठी कीन्ही, मन मिलयौ पय पानि ।
गहि रति-नाथ लाज निज पुर तैं, हरि कौं सौंपी आनि ॥
सुनि री सखी स्यामसुंदर की, दासी सब जग जानि ।
जोइ जोइ कहत सोई सोई करति, आयसु माथैं मानि ॥
तजि कुल-लाज, लोक-मरजादा, पति-परिजन-पहिचानि ।
सूर सिंधु-सरिता मिलि जैसैं, मनसा-बूँद हिरानि ॥
॥१६५६॥२२७४॥

राग गौरी

अब तौ प्रगट भई जग जानी ।
वा मोहन सौं प्रीति निरंतर, क्यौं अब रहैगी छानी ॥
कहा करौं सुंदर मूरति, इन नैननि माँझ समानी ।
निकसति नहीं बहुत पचिहारी, रोम रोम अरुझानी ॥
अब कैसैं निरवारि जाति है, मिली दूध ज्यौं पानी ।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, उर अंतर की जानी ॥
॥१६५७॥२२७५॥

राग गौरी

कहा करैगौ कोऊ मेरौ ।
हौं अपनैं पतिव्रतहिं न टरिहौं, जग उपहास करौ बहुतेरौ ॥
कोउ किन लै पाछैं मुख मोरै, कोउ कहि स्रवन सुनाइ न टेरौ ।
हौं मति कुसल नाहिंनै काची, हरि-सँग छाँड़ि फिरौं भव-फेरौ ॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई, स्याम-धाम मैं करौं बसेरौ ।
तिहिं रँग सूर रँग्यौ मिलि कै मन, होइ न स्वेत, अरुन फिरि पेरौ ॥
॥१६५८॥२२७६॥

राग धनाश्री

सखि मोहिं हरि-दरस-रस प्याइ ।
हौं रँगी अब स्याम-मूरति, लाख लोग रिसाइ ॥

स्यामसुंदर मदन-मोहन, रंग-रूप सुभाइ ।
सूर-स्वामी-प्रीति-कारन, सीस रहौ कि जाइ ॥
॥१६५९॥२२७७॥

राग धनाश्री

(माई री) गोबिंद सौं,प्रीति करत तबहिं क्यों न हटकी ।
यह तौ अब बात फलि, भई बीज बटकी ॥
घर घर नित यहै घैर, बानी घट घट की ।
मैं तौ यह सबै सही, लोक-लाज पटकी ॥
मद के हस्ती समान, फिरति प्रेम लटकी ।
खेलत मैं चूकि जाति, होति कला नट की ॥
जल रजु मिलि गाँठि परी, रसना हरि-रट की ।
छोरे तैं नाहिँ छुटति, कैक बार झटकी ॥
मेटैं क्यौंहूँ न मिटति, छाप परी टटकी ।
सूरदास-प्रभु की छबि, हृदय माँझ अटकी ॥
॥१६६०॥२२७८॥

राग आसावरी

मैं अपनौ मन हरि सौं जोर्‌यौ । हरि सौं जोरि सबनि सौं तोर्‌यौ ॥
नाच कछ्‌यौ तब घूँघट छोर्‌यौ । लोक-लाज सब फटकि पछोर्‌यौ ॥
आगैं पाछैं नीकैं हेर्‌यौ । माँझ बाट मटुकी सिर फोर्‌यौ ॥
कहि कहि कासौं करति निहोर्‌यौ । कहा भयौ कोऊ मुख मोर्‌यौ ॥
सूरदास-प्रभु सौं चित जोर्‌यौ । लोक-बेद तिनुका सौ तोर्‌यौ ॥
॥१६६१॥२२७९॥

राग आसावरी

सखी री स्याम सौं मन मान्यौ ।
नीकैं करि चित कमल-नैन सौं, घालि एकठाँ सान्यौ ॥
लोक-लाज उपहास न मान्यौ, न्याति आपनेहिं आन्यौ ।
या गोबिंदचंद कैं कारन, बैर सबनि सौं ठान्यौ ॥
अब क्यौं जात निबेरि सखी री, मिल्यौ एक पय पान्यौ ।
सूरदास-प्रभु मेरे जीवन, पहिलैं ही पहिचान्यौ ॥
॥१६६२॥२२८०॥

राग आसावरी

नंदलाल सौं मेरौ मन मान्यौ, कहा करैगौ कोउ।
मैं तौ चरन-कमल लपटानी, जो भावै सो होउ॥
बाप रिसाइ, माइ घर मारै, हँसैं बिराने लोग।
अब तौ स्यामहि सौं रति बाढ़ी, बिधना रच्यौ सँजोग॥
जानि महति पति जाइ न मेरी, अरु परलोक नसाइ।
गिरिधर बर मैं नैंकु न छाँड़ौं, मिली निसान बजाइ॥
बहुरि कबहिं यह तन धरि पैहौं, कहँ पुनि श्रीबनवारि।
सूरदास-स्वामी कैं ऊपर यह तन डारौं वारि॥
॥१६६३॥२२८१॥

राग सारंग

करन दे लोगनि कौं उपहास।
मन क्रम बचन नंद-नंदन कौं, नैंकु न छाँड़ौं पास।
सब या ब्रज के लोग चिकनियाँ, मेरे भाएँ घास।
अब तौ यहै बसी री माई, नहिं मानौं गुरु त्रास॥
कैसैं रह्यौ परै री सजनी, एक गाँव कै बास।
स्याम मिलन की प्रीति सखी री, जानत सूरजदास॥
॥१६६४॥२२८२॥

राग रामकली

एक गाउँ कै बास सखी हौं, कैसैं धीर धरौं।
लोचन-मधुप अटक नहि मानत जद्यपि जतन करौं॥
वै इहिं मग नित प्रति आवत हैं, हौं दधि लै निकरौं।
पुलकित रोम रोम, गदगद सुर, आनँद उमँग भरौं॥
पल अंतर चलि जात, कलप बर बिरहा अनल जरौं।
सूर सकुच कुल-कानि कहाँ लगि, आरज-पथहिं डरौं॥
॥१६६५॥२२८३॥

राग धनाश्री

हरि देखें बिनु कल न परै।
जा दिन तैं वे दृष्टि परे हैं, क्यौं हूँ चित उनतैं न टरै॥

नव कुमार मनमोहन, ललना-प्रान-जिवनधन क्यौं बिसरै ।
सूर गुपाल-सनेह न छाँड़े, देह-सुरति सखि कौन करै ॥
॥१६६६॥२२८४॥

राग रामकली

मेरौ मन हरि-चितवनि अरुझानौ ।
फेरत कमल द्वार ह्वै निकसे, करत सिंगार भुलानौ ॥
अरुन अधर, दसननि दुति राजति, मो तन मुरि मुसुकानौ ।
उदधि-सुता-सुत पाँति कमल मैं, बंदन भुरके मानौ ॥
इहिं रस मगन रहति निसि-बासर, हार जीति नहिं जानौ ।
सूरदास चित-भंग होत क्यौं, जो जिहिं रूप समानौ ॥
॥१६६७॥२२८५॥

राग रामकली

हौं सँग साँवरे के जैहौं ।
होनी होइ होइ सो अबहीं, जस अपजस काहूँ न डरैहौं ॥
कहा रिसाइ करै कोउ मेरौ, कछु जो कहै प्रान तिहिं दैहौं ।
देहौं त्यागि राखिहौं यह व्रत, हरि-रति-बीज बहुरि कब वैहौं ॥
का यह सूर अचिर अवनी, तनु तजि अकास पिय-भवन समैहौं ।
का यह ब्रज-बापी क्रीड़ा जल, भजि नँद-नंद सबै सुख लैहौं ॥
॥१६६८॥२२८६॥

राग धनाश्री

तैं मेरैं हित कहति सही ।
यह मोकौं सुधि भली दिवाई, तनु बिसरे मैं बहुत बही ॥
जब तैं दान लियौ हरि हमसौं, हँसि हँसि कै कछु बात कही ।
काकौ घर, काकै पितु, माता, काकौं तनु की सुरति रही ॥
अब समुझति कछु तेरी बानी, आई हौं लै दही मही ।
सुनहु सूर प्रातहि तैं आई, यह कहि कहि जिय लाज गही ॥
॥१६६९॥२२८७॥

राग धनाश्री

सुनि री सखी बात इक मेरी ।
तोसौं धरौं दुराइ, कहौं किहिं, तू जानहि सब चित की मेरी ।

मैं गोरस लै जाति अकेली, काल्हि कान्ह बहियाँ गही मेरी।
हार सहित अँचरा गहि गाढ़ैं, इक कर गही मटुकिया मेरी॥
तब मैं कह्यौ खीझि हरि छाँड़हु टूटहिगी मोतिनि लर मेरी।
सूर स्याम ऐसैं मोहि रिझयौ, कहा कहति तू मोसौं मेरी॥
॥१६७०॥२२८८॥

राग धनाश्री

तऊ न गोरस छाँड़ि दयौ।
चहुँ-फल-भवन, गह्यौ सारँग-रिपु बाजि धरा अथयौ॥
अमी-वचन-रुचि रचत कपट हठ झगरौ फेरि ठयौ।
कुमुदिनि प्रफुलित, हौं जिय सकुची, ले मृग-चंद नयौ॥
जानि निसा सिसु-रूप बिलोकत नवल किसोर भयौ।
तब तैं सूर नैंकु नहिं छूटत, मन अपनाइ लयौ॥
॥१६७१॥२२८९॥

राग रामकली

यह कहि मौन साध्यौ ग्वारि।
स्याम-रस घट पूरि उछलत, बहुरि धर्यौ सम्हारि॥
वैसैंही ढँग बहुरि आई, देह-दसा बिसारि।
लेहु री कोउ नंद-नंदन, कहै पुकारि पुकारि॥
सखी सौं तब कहति तू री, को, कहाँ की नारि।
नंद कैं गृह जाउँ कित ह्वै, जहाँ हैं बनवारि॥
देखि वाकौं चकित भई, सखि बिकल भ्रम गई मारि।
सूर स्यामहिं कहि सुनाऊँ, गए सिर कँह डारि॥
॥१६७२॥२२९०॥

राग नट

सखी वह गई हरि पैं धाइ।
तुरतहीं हरि मिले ताकौं, प्रगट कही सुनाइ॥
नारि इक अति परम सुंदरि, बरनि कापैं जाइ।
पानि तैं सिर धरे मटुकी, नंद-गृह भरमाइ॥
लेहु लेहु गुपाल कोऊ, दह्यौ गई भुलाई।
सूर-प्रभु कहुँ मिलैं ताकौं, कहति करि चतुराइ॥
॥१६७३॥२२९१॥

राग कान्हरौ

नंद-ग्राम कौ मारग बूझै है, हो कोउ दधि बेंचनहारी।
छुवहु न स्याम कठिन तन गारै, विधु-वदनी अरु हाटक-ढारी॥
अपया को सुत ताहि बिरचै, जाहि बरंचि सीस पर धारी।
कमल कुरंग चलत वरुना भख, राख्यौ निकट निषग सँवारी॥
गति मराल-सावक ता पाछैं, जावक मुकुता चुनत बिसारी।
सूरदास-प्रभु कहत बनै नहिं, सुख संपति वृषभानु दुलारी॥
॥१६७४॥२२१२॥

राग बिलावल

सिर मटुकी मुख मौन गही॥
भ्रमि भ्रमि बिवस भई नव ग्वारिनि, नवल कान्ह कैं रस उमही॥
तन की सुधि आवति जब मनहो, तबहिं कहति कोउ लेहु दही।
द्वारैं आइ नंद कैं बोलति, कान्ह लेहु किन सरस मही॥
इन उत फिरि आवति याही मग, महरि तहाँ लगि द्वार रही।
और बुलावति ताहि न हेरति, बोलति आनि नंह-दरही॥
अंग-अंग जसुमति तिहिं चरची, कहा करति यह ग्वारि वही।
सुनहु सूर यह ग्वारि दिवानी, कब की याही ढंग रही॥
॥१६७५॥२२१३॥

राग रामकली

कब की मह्यौ लिये सिर डोलै।
झूठै हीं इत उत फिरि आवै, इहाँ आनि पै बोलै॥
मुँह लौं भरी मथनियाँ तेरी, तोहिं रटत भई साँझ।
जानति हौं गोरस कौ लेवा, याही बाखरि-माँझ॥
इत धौं आइ बात सुनि मेरी, कहैं बिलग जनि मानै।
तेरे घर मैं तुहीं सयानी, और बँचि नहिं जानै॥
भ्रमत-भ्रमत भ्रमि गई ग्वारिनी, बिकल भई बेहाल।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, आइ मिले गोपाल॥
॥१६७६॥२२१४॥

राग रामकली

भई मन माधव की अवसेर।
मौन धरे मुख चितवति ठाढ़ी, ज्वाब न आवै फेर॥

तब अकुलाइ चली उठि बन कौं, बोलैं सुनति न टेर।
बिरह बिबस चहुँघा भरमति है, स्याम कहा कियौ फेर॥
आवहु बेगि मिलौ नँद-नंदन, दान न करौ निबेर।
सूर स्याम अकम भरि लीन्ही, दूरि कियौ दुख-ढेर॥
॥१६७७॥२२६५॥

राग बिलावल

साँची प्रीति जानि हरि आए। पूरन नेह प्रगट दरसाए।
लई उठाइ अंक भरि प्यारी। भ्रमि-भ्रमि स्रम कीन्हौ तनु गारी॥
मुख मुख जोरि अलिंगन दीन्हौ। बार-बार भुज भरि उर लीन्हौ॥
बृंदावन-घनकुंज लता-तर। स्यामा-स्याम नवल-नवला बर।
मनमोहन-मोहिनि सुखकारी। कोक-कला-गुन प्रगटे भारी॥
छूटे-बंद अलक सिर छूटे। मोतिनि-हार टूटे, सुख लूटे।
सूर स्याम बिपरीत बढ़ाई। नागरि सकुचि रही लपटाई॥
॥१६७८॥२२६६॥

राग नट

स्यामा स्याम करत बिहार।
कुंज गृह रचि कुसुम सज्जा, छबि बरनि को पार॥
सुरत-सुख करि अंग आलस, सकुचि बसन सम्हारि।
परसपर भुज कंठ दीन्हे, बैठे हैं बर नारि॥
पीत कंचन-बरन भामिनि, स्याम घन-अनुहारि।
सूर घन अरु दामिनी मिलि, प्रगट सुख बिस्तारि॥
॥१६७९॥२२६७॥

राग कान्हरौ

राधा बसन स्याम तनु चीन्ही।
सारँग-बदन, बिलास बिलोचन, हरि सारँग जानि रति कीन्ही॥
सारँग-बचन, कहत सारँग सौं, सारँग-रिपु दै राखति झीनी॥
सारँग पानि गहत रिपु-सारँग, सारँग कहा कहति लियौ छीनी॥
सुधा पान करिकै नीकी बिधि, रह्यौ सेस फिरि मुद्रा दीन्ही॥
सूर सुदेस आहि रति-नागर, भुज आकर्षि बाम कर लीन्ही॥
॥१६८०॥२२६८॥

राग कान्हरौ

तुम सौं कहा कहौं सुंदर घन ।
या ब्रज मैं उपहास चलत है, सुनि सुनि स्रवन रहति मनहीं मन ॥
जा दिन सवनि पछारि, नोइ करि, मोहि दुहि दई धेनु बंसीबन ।
तुम गही बाहँ सुभाइ आपनैं हौं चितई हँसि नैकुँ बदन-तन ॥
ता दिन तैं घर मारग जित तित, करत चवाव सकल गोपीजन ।
सूर-स्याम अब साँच पारिहौं, यह पतिब्रत तुमसौं नँद-नंदन ॥
॥१६८१॥२२६६॥

राग भैरव

कहा कहौं सुंदरघन तोसौं ।
घेरा यहै चलावत घर-घर, स्रवन सुनत जिय सोसौं ॥
भगिनी।मातु-पिता, बांधव अरु गुरुजन यह कहैं मोसौं ।
राधा कान्ह एक सँग बिलसत, मनहीं मन अपसोसौं ॥
कबहुँक कहौं सबनि परित्यागौं, बूझति हौं अब गौं सो ।
सूर स्याम-दरसन बिनु पाएँ, नैन देत मोहिं दोषौ ॥
॥१६८२॥२३००॥

राग रामकली

बात यह तुमसौं कहत लजाउँ ।
सुनि न जात घर घर कौ घेरा, काहूँ मुख न समाउँ ॥
नर नारी सब यहै चलावत, राधा मोहन एक ।
मातु पिता सुनि सुनि अति त्रासत, मैं इक वै जु अनेक ॥
आपु जबै द्वारैं ह्वै निकसत, देखत सबै सुगात ।
निंदत तुमहिं सुनावत मोकौं, सुनत न नैंकु सुहात ॥
धिक नर, धिक नारी, धिक जीवन, तुमहिं बिमुख धिक देह ।
सूर स्याम यह कोउ न जानत, तन ह्वैहै जरि खेह ॥
॥१६८३॥२३०१॥

राग गूजरी

स्याम यह तुमसौं क्यौं न कहौं ।
जहाँ तहाँ घर घर कौ घेरा, कौनी भाँति सहौं ॥

पिता कोपि करवाल गहत कर, बंधु बधन कौं धावै।
मातु कहै कन्या कुल कौ दुख, जनि कोऊ जग जावै॥
बिनती एक करौं कर जोरे, इनि बीथिनि जनि आवहु।
जौ आवहु तौ मुरलि-मधुर-धुनि, मो जनि कान सुनावहु॥
मन क्रम बचन कहति हौं साँची, मैं मन तुमहि लगायौ।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, क्यौं न करौ मन भायौ॥
॥१६८४ २३०२॥

राग रामकली

हँसि बोले गिरिधर रस-बानी।
गुरुजन खिझैं कतहि रिस पावति, काहे कौं पछितानी॥
देह धरे कौ धर्म यहै है, स्वजन कुटुंब गृह-प्रानी।
कहन देहु, कहि कहा करैंगे, अपनी सुरत हिरानी?॥
लोक लाज काहे कौं छाँड़ति, ब्रजहीं बस भुलानी।
सूरदास घट द्वै हैं, मन इक, भेद नहीं कछु जानी॥
॥१६८५॥२३०३॥

राग जैतश्री

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
तुम बिनु स्याम और नहि जानौं, सकुचि न तुमहिं कहौं॥
कुल की कानि कहा लै करिहौं तुमकौं कहाँ लहौं।
धिक माता, धिक पिता बिमुख तुव, भावै तहीं वहौं॥
कोउ कछु करै, कहै कछु कोऊ, हरष न सोक गहौं।
सूर स्याम तुमकौं बिनु देखैं, तनु मन जीव दहौं॥
॥१६८६॥२३०४॥

राग जैतश्री

ब्रजहिं बसैं आपुहिं बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ॥
जल थल जहाँ रहौ तुम बिनु नहिं, वेद उपनिषद गायौ।
द्वै-तन जीव-एक हम दोउ, सुख-कारन उपजायौ॥
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिं कोऊ, तब मन तिया जनायौ।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हँसि, आनँद-पुंज बढ़ायौ॥
॥१६८७॥२३०५॥

राग रामकली

तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि स्याम कौं, अति आनंद-मई ॥
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति, काहैं भूलि गई।
को माता, को पिता, बंधु को, यह तौ भैंट नई ॥
जन्म-जन्म, जुग-जुग यह लीला, प्यारी जानि लई।
सूरदास-प्रभु की यह महिमा, यातैं बिबस भई ॥

॥१६८८॥२३०६॥

राग सूही

सुनहु स्याम मेरी बिनती।
तुम हरता तुम करता प्रभु जू, मातु पिता कौनैं गिनती ॥
गय वर मेटि चढ़ावत रासभ, प्रभुता मेटि करत हिनती।
अब लौं करी लोक-मरजादा, मानौ थोरैं हीं दिन ती ॥
बहुरि बहुरि ब्रज जन्म लेन हौ, यह लीला जानी किन ती।
सूर स्याम चरननि तैं मोकौं, राखत रहे कहा भिन ती ॥

॥१६८९॥२३०७॥

राग धनाश्री

देह धरे कौ यह फल प्यारी।
लोक-लाज कुल-कानि मानिये, डरियै, बंधु पिता महतारी ॥
श्रीमुख कह्यौ जाहु घर सुंदरि, बड़े महर वृषभानु-दुलारी।
तुव अवसेर करत सब ह्वैहैं, जाहु बेगि दैहैं पुनि गारी ॥
हमहुँ जाहिं ब्रज, तुमहुँ जाहु अब, गेह-नेह क्यौं दीजै डारी।
सूरदास-प्रभु कहत प्रिया सौं नैंकु नहीं मोतैं तुम न्यारी ॥

॥१६९०॥२३०८॥

राग धनाश्री

देह धरे कौ कारन सोई।
लोक-लाज कुल-कानि न तजियै, जातैं भलौ कहै सब कोई ॥
मातु पिता के डर कौं मानै, मानै सजन कुटुँब सब सोई।
तात मातु मोहूँ कौं भावत, तन धरि कै माया-बस होई ॥

सुनि वृषभानु-सुता मेरी बानी, प्रीति पुरातन राखहु गोई।
सूर स्याम नागरिहिं सुनावत, मैं तुम एक नाहिं हैं दोई॥
॥१६६१॥२३०९॥

राग सारंग

अब कैसैं दूजैं हाथ बिकाउँ।
मन-मधुकर कीन्हौ वा दिन तैं, चरन-कमल निज ठाउँ॥
जौ जानौ और कोउ करता, तऊ न मन पछिताउँ।
जो जाकौ सोई सो जानै, नर-अघ-तारन नाउँ॥
जो परतीति होइ या जग की, परमिति छुटत डराउँ।
सूरदास प्रभु-सिंधु-सरन तजि, नदी-सरन कत जाउँ॥
॥१६६२॥२३१०॥

राग बिलावल

घर पठई प्यारी अंकम भरि।
कर अपनैं मुख परसि तिया कौ, प्रेम सहित दोऊ भुज धरि धरि॥
सँग सुख लूटि हरष भरि हिरदै, चली भवन भामिनि गज-गति ढरि।
अँग मरगजी पटोरी राजति, छबि निरखत रीझत ठाढ़े हरि॥
बेनी डुलति नितंबनि पर दोउ, छीन कटि पर वारौं केहरि।
फिरि चितयौ तब प्यारी पिय-तनु, दुहुँ मन मन आनंद हरष करि॥
राधा हरि आधा आधा तनु एकै, ह्वै ह्वै ब्रज मैं अवतरि।
सूर स्याम रस भरी उमँगि अँग, वह छबि देखि रह्यौ रति-पति डरि॥१६६३॥२३११॥

राग भैरव

रैनि जागि प्रीतम कैं संग रंग भीनी।
प्रफुलित मुख-कंज,नैन-खंजरीट-मीन-मैन, बिथुरि रहे चूरनि कच बदन ओप दीनी॥
आतुर आलस जँभाति, पुलकित अति पान खाति, मद माती तन-सुधि नहिं, सिथिलित भई बेनी।
माँग तैं मुकुतावलि टरि, अलक संग अरुझि रही, उरगिनि सत-फन मानौ कंचुलि तजि दीनी॥

विकसत ज्यौं चंप-कली भोर भएँ भवन चली लटपटात प्रेम घटा
गज-गति गति लीन्ही।
आरति कौ करत नास, गिरिधर सुठि सुख की रासि, सूरदास-
स्वामिनि-गुन-गन न जात चीन्ही ॥
॥१६६४॥२३१२॥

राग बिलावल

घरहिं जाति मन हरष बढ़ायौ।
दुख डारयौ, सुख अंग भार भरि, चली लूट सौ पायौ ॥
भौंह सकोरति चलति मंद गति, नैंकु वदन मुसुकायौ।
तहँ इक सखी मिली राधा कौं, कहति भयौ मन भायौ ॥
कुंज-भवन हरि-संग बिलसि रस, मन कौ सुफल करायौ।
सूर सुगंध चुरावनहारौ, कैसैं दुरत दुरायौ ॥
॥१६६५॥२३१३॥

राग जैतश्री

कह फूली आवति री राधा।
मानहुँ मिली अंक भरि माधौ, प्रगटत प्रेम अगाधा ॥
भृकुटी-धनुष नैन-सर साधे, वदन विकास अबाधा।
चंचल चपल चारु अवलोकनि, काम नचावति ताधा ॥
जिहिं रस सिव सनकादि मगन भए, सेस रहति दिन साधा।
सो रस दियौ सूर-प्रभु तोकौं, सिवा न लहति अराधा ॥
॥१६६६॥२३१४॥

राग जैतश्री

मोसौं कहा दुरावति राधा।
कहाँ मिली नँद-नंदन कौं, जिहिं पुरई मन की साधा ॥
ब्याकुल भई फिरति ही अबहीं, काम-बिथा तनु बाधा।
पुलकित रोम रोम गद गद, अब अँग अँग रूप अगाधा ॥
नहिं पावत जो रस जोगी जन, जप-तप करत समाधा।
सुनहु सूर तिहिं रस परिपूरन, दूरि कियौ तनु-दाधा ॥
॥१६६७॥२३१५॥

राग आसावरी

कहा कहति तू भई बावरी।
तू हँसि कहति सुनै कोउ औरै, कह कीन्हौ चाहति उपाव री॥
सो तौ साँच मानि यह लैहै हमहिं तुमहिं बातैं सुभाव री।
मेरी प्रकृति भलैं करि जानति, मैं तोसौं करिहौं दुराव री?॥
ऐसी कैसैं होइ सखी री, घर पुनि मेरौ है बचाव री?।
सूर कहति राधा सखि-आगैं, चकित भई सुनि कथा रावरी॥
॥१६९८॥२३१६॥

राग सारंग

स्याम कौन कारे की गोरे।
कहाँ रहत काके पै ढोटा, वृद्ध, तरुन की धौं हैं भोरे॥
इहँई रहत कि और गाउँ कहुँ, मैं देखे नाहिन कहुँ उनकौं।
कहै नहीं समुझाइ बात यह, मोहिं लगावति हौ तुम जिनकौं॥
कहाँ रहौं मैं, वै धौं कहँके, तुम मिलवति हौ काहैं ऐसी।
सुनहु सूर मोसी भोरी कौं, जोरि जोरि लावति हौ कैसी॥
॥१६९९॥२३१७॥

राग सारंग

जाहि चली मैं जानति तोकौं।
आजुहि पढ़ि लीन्ही चतुराई, कहा दुरावति मोकौं॥
इहिं ब्रज हम तुम नंद-नँदनहू, दूरि कहूँ नहिं जैहैं।
मेरैं फंद कबहुँ तौ परिहौ, मुजरा तबहीं दैहै॥
उनहिं मिलैं बितपन्न भई अब, वे दिन गए भुलाइ।
सूर स्याम-सँग तैं उठि आई, मोसौं कहति दुराइ॥
॥१७००॥२३१८॥

राग सोरठ

हँसत कहति कीधौं सत भाउ।
तेरी सौं मैं कछू न समुझति, कहा कह्यौ मोहिं बहुरि सुनाउ॥
मेरी सपथ तोहिं री सजनी, कबहूँ कछु पायौ यह भाउ।
देख्यौ नैन, सुन्यौ कहुँ स्रवननि, झूठैं कहति फिरति हौ दाउ।

यह कहनी औरै जौ कोऊ, तासौं मैं करती अपडाउ।
सूरदास यह मोहिं लगावति, सपनेहुँ नहिं जासौं दरसाउ॥
॥१७०१॥२३१९॥

राग धनाश्री

राधे तेरौ वदन विराजत नीकौ।
जब तू इत-उत बंक विलोकति, होत निसा-पति फीकौ॥
भृकुटी धनुष, नैन सर, साँधे, सिर केसरि कौ टीकौ।
मनु घूँघट-पट मैं दुरि बैठ्यौ, पारधि रति-पतिही कौ॥
गति मैमंत नाग ज्यौं नागरि, करे कहति हौं लीकौ।
सूरदास-प्रभु विविध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पी कौ॥
॥१७०२॥२३२०॥

राग बिहागरौ

राजति राधे अलक भली री।
मुक्ता माँग, तिलक पन्नगि सिर, सुत समेत भष लेन चली री॥
कुमकुम-आड़ स्रवत स्रम-जल मिलि, मधु पीवत छवि-छीट चली री।
चारु उरज ऊपर यौं राजति, अरुझे अलि-कुल कमल-कली री॥
रोमावलि त्रिबली उर परसति, बाँस चढ़े नट काम बली री।
प्रीति सुहाग भुजा सिर मंडन, जघन सघन विपरित कदली री॥
जावक चरन, पंच-सर-सायक, समर जीति लै सरन चली री।
सूरदास प्रभु कौं सुख दीन्हौ, नख-सिख राधे सुखनि फली री॥
॥१७०३॥२३२१॥

राग रामकली

सजनी कत यह बात दुरैहौं।
ऐसी मोहिं कहै जनि कबहूँ, झूठे पर दुख पैहौं॥
तो तैं प्रियतम और कौन है, जाके आगैं कैहौं।
मोकौं उचटाए कछु पैहै, बहुरि नाम नहिं लैहौं॥
यह परतीति नहीं जिय तेरैं, सो कह तोहिं चुरैहौं।
सूर स्याम धौं कहा रहत हैं, काहे कौं तहँ जैहौं!॥
॥१७०४॥२३२२॥

राग धनाश्री

चतुर सखी मन जानि लई ।
मोसौं तौ दुराव इहिं कीन्हौ, याकैं जिय कछु त्रास मई ॥
तब यह कह्यौ हँसति री तोसौं, जनि मन में कछु आनै ।
मानी बात कहाँ वै कहँ तू, हमहूँ उनहि न जानै ॥
अबै तनक तू भई सयानी, हम आगे की बारी ।
सूर स्याम ब्रज मैं नहिं देखे, हँसत कह्यौ घर जा री ॥
॥१७०५॥२३२३॥

राग बिलावल

सकुच-सहित घर कौं गई, वृषभानु-दुलारी ।
महरि देखि तासौं कह्यौ, कहँ रही री प्यारी ? ॥
घर तोहिं नैंकु न देखऊँ, मेरी महतारी ।
डोलत लाज न आवई, अजहूँ है बारी ॥
पिता आजु रिस करत हे, दै-दै कै गारी ।
सुता बड़े वृषभानु की, कुल खोवनहारी ।
बंधू मारन कहत हैं, तेरे ढँग का री ।
सूर स्याम-सँग फिरति है, जोबन-मतवारी ॥
॥१७०६॥२३२४॥

राग गौंड़ मलार

कहा री कहति तू मातु मोसौं ।
ऐसी बहि गई को, स्याम-सँग फिरे जो, बृथा रिस करति कह कहौं तोसौं ! ॥
कही कौनैं बात, बोलि धौं तिहिं मात, मेरे आगैं कहै, नाहिं देखौं ।
तात रिस करत, भ्राता कहै मारिहौं, भीति बिनु चित्र तुम करति रेखौ ॥
तुमहुँ रिस करति, कछु कहा मोहिं मारिहौ, धन्य पितु भ्रात अरु मातु तुमहीं ।
ऐसौ लायक नंद महर कौ सुत भयौ, तिनहिं मोहिं कहति प्रभु सूर सुनहीं ॥१७०७॥२३२५॥

राग गूजरी

काहे कौं पर-घर छिनु-छिनु जाति।
घर मैं डाँटि देति सिख जननी, नाहिंन नैंकु डराति॥
राधा-कान्ह कान्ह-राधा ब्रज ह्वै रह्यौ अतिहिं लजाति।
अब गोकुल कौ जैबौ छाँड़ौ, अपजस हू न अघाति।
तू वृषभानु बड़े की बेटी, उनकैं जाति न पाँति।
सूर सुता समुझावति जननी, सकुचति नहिं मुसुकाति॥
॥१७०८॥२३२६॥

राग कान्हरौ

खेलन कौं मैं जाउँ नहीं?
और लरिकिनी घर घर खेलतिं, मोहीं कौं पै कहति तुहीं॥
उनकैं मातु पिता नहिं कोई, खेलत डोलतिं जहीं तहीं॥
तोसी महतारी वहि जाइ न, मैं रैहौं तुमहीं बिनुहीं॥
कबहूँ मोकौं कछू लगावति, कबहुँ कहति जनि जाहु कहीं।
सूरदास बातैं अनखौहीं, नाहिंन मो पै जाति सही॥
॥१७०९॥२३२७॥

राग सारंग

मनहीं मन रीझति महतारी।
कहा भई जौ बाढ़ि तनक गई, अबहीं तौ मेरी है बारी॥
झूठैं हीं यह बात उड़ी है, राधा-कान्ह कहत नर-नारी।
रिस की बात सुता के मुख की, सुनत हँसति मनहीं मन भारी॥
अब लौं नहीं कछू इहिं जान्यौ, खेलत देखि लगावैं गारी।
सूरदास जननी उर लावति, मुख चूमति पोंछति रिस टारी॥
॥१७१०॥२३२८॥

राग सूही

सुता लए जननी समुझावति।
संग बिटिनिअनि कैं मिलि खेलौ, स्याम-साथ सुनि-सुनि रिस पावति॥
जातैं निंदा होइ आपनी, जातैं कुल कौं गारी आवति।
सुनि लाड़िली कहति यह तोसौं, तोकौं यातैं रिस करि धावति॥

अब समुझी मैं बात सबनि की, झूठैं ही यह बात उड़ावति ।
सूरदास सुनि-सुनि ये बातैं, राधा मन अति हरष वढ़ावति ॥
॥१७११॥२३२६॥

राग नट

राधा विनय करति मनहीं मन, सुनहु स्याम अंतर के जामी ।
मातु-पिता कुल-कानिहिं मानत, तुमहिं न जानत हैं जग-स्वामी ॥
तुम्हरौ नाउँ लेत सकुचत हैं, ऐसैं ठौर रही हौं आनी ।
गुरु परिजन की कानि मानियौ, वारंवार कही मुख बानी ॥
कैसैं संग रहौं विमुखनि कैं, यह कहि-कहि नागरि पछितानी ।
सूरदास प्रभु कौं हिरदै धरि, गृह-जन देखि-देखि मुसुकानी ॥
॥१७१२॥२३३०॥

राग धनाश्री

जब प्यारी मन ध्यान धर्यौ है ।
पुलकित उर, रोमांच प्रगट भए, अंचल टरि मुख उघरि पर्यौ है ॥
जननी निरखि रही ता छवि कौं, कहन चहै कछु कहि नहिं आवै ।
चकित भई अँग-अंग विलोकति, दुख-सुख दोऊ मन उपजावै ॥
पुनि मन कहति सुता काहू की, कै धौं यह मेरी ही जाई ।
राधा हरि कैं रंगहिं राँची, जननि रही जिय मैं भरमाई ॥
तब जानी मेरी यह बेटी, जिय अपनैं जब ज्ञान कियौ है ।
सूरदास प्रभु-प्यारी की छवि देखि, चहति कछु सीख दियौ है ॥
॥१७१३॥२३३१॥

राग सोरठ

राधे दधि-सुत क्यौं न दुरावति ।
हौं जु कहति वृषभानु नंदिनी, काहैं जीव सतावति ॥
जल-सुत दुखी, दुखी हैं मधुकर, द्वै पंछी दुख पावत ।
सारँग दुखी होत बिनु सारंग, तोहिं दया नहिं आवत ॥
सारँग-रिपु की नैंकु ओट करि, ज्यौं सारँग सुख पावत ।
सूरदास सारँग किहिं कारन, सारँग-कुलहि लजावत ॥
॥१७१४॥२३३२॥

राग बिहागरी

मेरी सिख स्रवन काहैं न करति।
अजहुँ भोरी भई रहै, कहति तोसौं डरति॥
ससि निरखि मुख चलत नाहिन, नैन निरखि कुरंग।
कमल, खंजन, मीन, मधुकर, होत हैं चित-भंग॥
देखि नासा कीर लज्जित, अधर दसन निहारि।
बिंब अरु बंधूक, विद्रुम, दासिनी डर भारि॥
उर निरखि चकवाक विथके, कटि निरखि बनराज।
चाल देखि मराल भूले, चलत तब गजराज॥
अंग-अँग अवलोकि सोभा, मनहिं देखि विचारि।
सूर सुख पट देति काहैं न, बरष द्वादस भारि॥
॥१७१५॥२३३३॥

राग सूहा बिलावल

अब राधा तू भई सयानी।
मेरी सीख मानि हिरदय धरि जहँ-तहँ डोलति बुद्धि-अयानी॥
भई लाज की सामा तनु मैं सुनि यह बात कुँवरि मुसुकानी।
हँसति कहा मैं कहति भली तोहिं सुनति नहीं लोगनि की बानी॥
आजुहिं तैं कहुँ जान न दैहौं मा तेरी कछु अकथ कहानी।
सूर स्याम कैं संग न जैहौं जा कारन तू मोहिं रिसानी॥
॥१७१६॥२३३४॥

राग टोड़ी

भली बात बाबा आवन दै।
कान्ह लगाइ देति मोहिं गारी, ऐसे बड़े भए कब तैं वै॥
काल्हि मोहिं मारग मैं रोक्यौ, जाति रही सखियनि संग दधि लै।
कहन लगे मेरौ देहु खिलौना, ता दिन लै भागी चुराइ कै॥
छठ आठैं मोहिं कान्ह कुँवर सौं, तिनकौं कहति प्रीति तोसौं है।
सूर जननि सुनि-सुनि यह बानी, पुनि-पुनि निरखि-निरखि मुख बिहँसै॥१७१७॥२३३५॥

राग गौरी

बड़ी भई नहिं गई लरिकाई।
बारेही के ढंग आजु लौं, सदा आपनी टेक चलाई॥

अबहीं मचलि जाइगी तब पुनि, कैसैं मोसौं जाति बुझाई ।
मानो हारि महरि मन अपनैं, बोलि लई हँसि कै दुलराई ॥
कंठ लगाइ लई अति हित सौं, पुनि-पुनि कहि मेरी रिसहाई ।
सूरदास अति चतुर राधिका, राखि लई नीकैं चतुराई ॥
॥१७१८॥२३३६॥

राग गौड मलार

स्याम नग जानि हिरदै चुरायौ ।
चतुर बर नागरी, महा मनि लखि लियौ, प्रिय सखी संग तिहिं नहिं जनायौ ॥
कृपन ज्यौं धरत धन, ऐसैं दृढ़ कियौ मन, जननि सुनि बात हँसि कंठ लायौ ।
गाँस दियौ डारि, कह्यौ कुँवरि मेरी बारि, सूर-प्रभु-नाम झूठैं उड़ायौ ॥१७१९। २३३७॥

राग कल्यान

सखियनि यहै बिचार पर्‌यौ ।
राधा कान्ह एक भए दोऊ, हमसौं गोप कर्‌यौ ॥
वृंदावन तैं अबहीं आईं, अति जिय हरष बढ़ाए ।
औरै भाव, अंग-छबि औरै, स्याम मिले मन भाए ॥
तब वह सखी कहति मैं बूझी, मोतन फिरि हँसि हेर्‌यौ ।
जबहि कही सखि मिले तोहि हरि, तब रिस करि मुख फेर्‌यौ ॥
औरै बात चलावन लागी, मैं वाकौं पहिचानी ।
सूर स्याम कौं मिलत आजुहीं, ऐसी भई सयानी ॥
॥१७२०॥२३३८॥

राग सोरठ

सुनहु सखी राधा की बातैं ।
मोसौं कहति स्याम हैं कैसे, ऐसी मिलईं घातैं ॥
की गोरे, की कारे-रँग हरि, की जोबन, की भोरे ।
की इहि गाउँ बसत, की अनतहिं, दिननि बहुत, की थोरे ॥
की तू कहति बात हँसि मोसौं, की बूझति सति-भाउ ।
सपनैंहूँ उनकौं नहिं देखे, वाके सुनहु उपाउ ॥

मोसौं कही कौन तोसी प्रिय, तोसौं बात दुरैहौं।
सूर कही राधा मो आगैं, कैसैं मुख दरसैहौं॥
॥१७२१॥२३३९॥

राग गौरी

वह निधरक मैं सकुचि गई।
तब यह कह्यौ जाहि घर राधा, मैं झूठी, तू साँच भई॥
त्यौरी भौंहनि मो तन चितवै, नैंकु रहौं तौ करै खई।
काम-भँडार लूटि नीकैं करि, निदरि गई, मैं चकृत भई॥
घर धौं जाइ कहा अब कैहै, अब कछु औरै बुद्धि नई।
सूर स्याम-सँग अँग रँग राची, मन मानौ सुख लूटि लई॥
॥१७२२॥२३४०॥

राग बिलावल

सुनि सुनि बात सखी मुसुकानी।
अब हौं जाइ प्रगट करि दैहौं, कहा रहै यह बात छपानी?॥
औरनि सौं दुराव जौ करतो, तौ हम कहतीं भई सयानी।
दाई आगैं पेट दुरावति, वाकी बुद्धि आजु मैं जानी॥
हम जातहिं वह उघरि परैगी, दूध दूध, पानी सो पानी।
सूरदास अब करति चतुरई, हमहिं दुरावति बातनि ठानी॥
॥१७२३॥२३४१॥

राग रामकली

अपनो भेद तुम्हैं नहिं कैहै।
देखहु जाइ चरित तुम वाके, जैसैं गाल बजैहै॥
बड़े गुरू की बुद्धि पढ़ी वह, काहू कौं न पत्यैहै।
एकौ बात मानिहै नाहीं, सबकी सौहैं खैहै।
मैं नीकैं करि बूझि रही हौं, अब बूझैं रिस पैहै।
सुनहु सूर रस-छकी राधिका, बातनि बैर बढ़ैहै॥
॥१७२४॥२३४२॥

राग बिलावल

कहा बैर हमसौं वह करिहै।
वाकी जाति भलैं करि पाई, हमकौं कहा निदरिहै॥

कैहै कहा चोरटी हमसौं, बातहिं बात उघरिहै।
दूरि करौं लँगराई वाकी, मेरैं फँग जौ परिहै॥
हमसौं बैर कियैं कह पैहै, काज कहा पुनि सरिहै।
सूरदास मटुकी सिर लीन्हे, बहुरि बैसैंही ररिहै॥
॥१७२५॥२३४३॥

राग गौरी

चलहु सखी जैयै राधा-घर।
बूझैं बात कहा धौं कैहै, निधरक है कै मन डर॥
कीधौं हमहिं देखि भजि जैहै, की उठि हमकौं मिलिहै।
कीधौं बात उघारि कहैगी, की मनहीं मन गिलिहै॥
कीधौं हँसि बोलै, की रिस करि, कीधौं सहज सुभाइ।
कीधौं सूर स्याम-रस-माती, जोवन-गर्व बढ़ाइ॥
॥१७२६॥२३४४॥

राग गौरी

जुवती जुरि राधा-ढिग आईं।
लखि लीन्ही तब चतुर नागरी, ये मोपर सब हैं रिसहाईं॥
आदर नहीं कियौ काहू कौं, मन मैं एक बुद्धि उपजाई।
मौन गह्यौ नहिं बोलति तिनसौं, बैठि रही करिकै निठुराई॥
आपुहिं बैठि गईं ढिग सिगरी, जब जानी यह तौ चतुराई।
सूरदास वै सखी सयानी, और कहूँ की बात चलाई॥
॥१७२७॥२३४५॥

राग जैतश्री

चतुर चतुर की भैंट भई।
वह तौ निठुर मौन ह्वै बैठी, इनि सबहिनि लखि ताहि लई॥
मुँहाचुही जुवतिनि तब कीन्ही, देखौ उलटी रीति ठई।
कहा हमारौ मन यह राखै, हमहीं पर सतराइ गई॥
बूझौ याहि खूँट गहिकै, तू कहा आजु यह मौन लई।
सुनहु सूर हमसौं कह परदा, हम करि दीन्ही साँट सई॥
॥१७२८॥२३४६॥

राग गुंड

राधिका मौन-व्रत किनि सधायौ।
धन्य ऐसौ गुरू, कान के लगतहीं मंत्र दै आजुहीं यह लखायौ ॥
काल्हि कछु और,प्रातहिं कछू औरही,अवहिं कछु और ह्वै गई प्यारी।
सुनत इहिं बात कौं, दौरि आईं सबै, तोहिं देखत भईं चकृत भारी॥
अब कहौ बात या मौन कौ फल कहा,सुनि जु लीजै कछू हमहुँ जानैं।
एकहीं सँग भईं सबै जोबन नई, होहु अब गुरू हम तुमहिं मानैं ॥
देहु उपदेस हमहूँ धरैं मौन सब, मंत्र जब लियौ तब हम न बोली।
सूर-प्रभु की नारि राधिका नागरी, चरचि लीन्हौ मोहिं करति ठोली॥
॥१७२६॥२३४७॥

राग मारू

की गुरू कहौ की मौन छाँड़ौ।
हमहिं मूरख बदति, आप ये ढँग सधति, पाइ अब मदति, हठ कतहिं माँडौ ॥
एकही संग हम तुम सदा रहति हैं, आजुहीं चटकि तू भई न्यारी।
भेद हमसौं कियौ मौन व्रत कह लियौ, और कोऊ बियौ कह देहि गारी ॥
कहा तोहिं भयौ, तुव प्रकृति कौनैं हरी, रीति यह नई तैंहीं चलाई।
सूर-सुनि नागरी, गुननि की आगरी, निठुरई सौं बात कहि सुनाई ॥१७३०॥२३४८॥

राग गौरी

तुम प्रियतम कै वैरिनि मेरी।
वासौं कहति मिली जो मारग, यह मोसौं अति कही अनेरी ॥
कहति कहा स्यामहिं मिलि आई, मैं जकि रही सौंह मोहिं तेरी।
मेरैं अँग छबि और कहति कछु, जुवती सुनत रहीं मुख हेरी ॥
मैं जिनकौं सपनेहुँ नहिं देख्यौ, तिनकी बात कहति फिरि फेरी।
सूरदास गुन-भरी राधिका, महिमा को जानै इहिं केरी ॥
॥१७३१॥२३४९॥

राग कल्यान

तुम सौं कछु दुराव है मेरौ।
कहाँ कान्ह, कहँ मैं सुनि सजनी, ब्रज-घर-घर है घैरौ॥
और कहत सब मोहिं न ब्यापै, तुमहुँ कहौ यह बानी।
आदर नहीं कियौ याही तैं, तुम पर अतिहिं रिसानी॥
हम तौ नहीं कह्यौ कछु तोसौं ताहीं पर रिस करती।
सूर तबहिं हमसौं जौ कहती, तेरी घाँ ह्वै लरती॥
॥१७३२॥२३५०॥

राग रामकली

सखी तू राधेहिं दोष लगावति।
तेरौ स्याम कहाँ इन देखे, बातनि बैर बढ़ावति॥
हम आगैं झूठी नहिं कैहै, सखियनि सैन बतावति।
ऐसी बात अरी मुख तेरैं, कैसैं धौं कहि आवति॥
भेदहिं भेद कहति है बातैं, ऐसैं मनहिं जनावति॥
सूर स्याम तैं देखे नाहीं, कीधौं हमहिं दुरावति॥
॥१७३३॥२३५१॥

राग नट नारायन

काकौ काकौ मुख माई बातनि कौं गहियै।
पाँच की सात लगायौ, झूठी झूठी कै बनायौ, साँची जौ तनक होइ, तौलौं सब सहियै॥
बातनि गह्यौ अकास, सुनत न आवै साँस, बोलि तौ कछू न आवै, तातैं मौन गहियै।
ऐसैं कहँ नर नारि, बिना भीति चित्रकारि, काहे कौं देखे मैं कान्ह कहा कहौ कहियै॥
घर घर यहै घैर, बृथा मोसौं करैं बैर, यह सुनि सुनि स्रौन, हिरदय दहिए।
सूरदास बरु उपहास होइ सिर मेरैं, नँद कौ सुवन मिलै तौ पै कहा चहियै॥१७३४॥२३५२॥

राग गुंड मलार

दुरत नहिं नेह अरु सुगँध-चोरी।
कहा कोउ कहै, तू सुनति काहूँ न रहै, तनहिं कत दहै, सुनि सीख मोरी॥

लोग तोहिं कहत हैं, पाप कौं गहत हैं, कहा धौं लहत हैं, सुनहु-
भोरी।
खरिकहूँ नहिं मिले, कहैं कह अनभले, करन दै गिले, तू दिननि
थोरी॥
नंद कौ सुवन अरु सुता वृषभानु की, हँसत सब कहैं चिरजीव
जोरी।
सूर-प्रभु कहाँ, तू कहाँ अपनैं भवन, मैं लखी तोहिं तोसी न
औरी॥१७३५॥२३५३॥

राग बिलावल

कैसे हैं नँद-सुवन कन्हाई।
देखे नहीं नैन-भरि कबहूँ, ब्रज मैं रहत सदाई॥
सकुचति हौं इक बात कहति तोहि, सो नहिं जाति सुनाई।
कैसेहुँ मोहिं दिखावहु उनकौं, यह मेरैं मन आई॥
अतिहीं सुंदर कहियत हैं वै, मोकौं देहु बताई।
सूरदास राधा की बानी, सुनत सखी भरमाई॥
॥१७३६॥२३५४॥

राग धनाश्री

सुनहु सखी राधा की बानी।
ब्रज बसि हरि देखे नहिं कबहूँ लोग कहत कछु अकथ कहानी॥
यह अब कहति दिखावहु हरि कौं, देखहु री यह अचिरज मानी।
जो हम सुनति रहीं सो नाहीं, ऐसैंही यह बायु बहानी॥
ज्वाब न देत बनै काहू सौं, मन मैं यह काहू नहिं मानी।
सूर सबै तरुनी मुख चाहतिं, चतुर चतुर सौं चतुरई ठानी॥
॥१७३७॥२३५५॥

राग बिलावल

सुनि राधे तोहिं स्याम दिखैहैं।
जहाँ तहाँ ब्रज-गलिनि फिरत हैं, जब इहिं मारग ऐहैं॥
जबहीं हम उनकौं देखैंगी, तबहीं तोहि बुलैहैं।
उनहूँ कैं लालसा बहुत यह, तोहिं देखि सुख पैहैं॥
दरसन तैं धीरज जब रैहै, तब हम तोहिं पत्यैहैं।
तुमकौं देखि स्याम सुंदर घन, मुरली मधुर बजैहैं॥

तनु त्रिभंग करि अंग अंग सौं, नाना भाव जनैहैं।
सूरदास-प्रभु नवल कान्ह वर, पीतांबर फहरैहैं॥
॥१७३८॥२३५६॥

राग गौड़ मलार

नंद-नंदन-दरस जबहिं पैहौ।
एक द्वै तीनि तजि, चारि बानी मेटि, पाँच छह निदरि, सातै भुलैहौ॥
आठहू गाँठि परिहै, नवहु दस दिसा भूलिहौ, ग्यारहौ रुद्र जैसैं।
बारहौ कला तैं तपनि तन तैं मिटति, तेरहौ रतन-सुख छबि न तैसैं॥
निपुन चौदह, बरन पंद्रहौ सुभग अति, बरष सोडष सतरहौ न रैहै।
जपत अट्ठारहौं भेद उनइस नहीं, बीसहू बिसै तैं सुखहि पैहै॥
नैन भरि देखि जीवन सफल करि लेखि, ब्रजहिं मैं रहत तें नहीं जाने।
सूर-प्रभु चतुर, तुमहूँ महा चतुर हौ, जैसी तुम तैसे वोऊ सयाने॥ १७३९॥२३५७॥

राग देवगधार

मन मन हँसति राधिका गोरी।
ऐसी स्याम रहत ब्रज-भीतर, पूछति है ह्वै भोरी॥
तुम उनकौं कहुँ देख्यौ है, कै, सुनी कहति हौ बात।
चतुराई नीकैं गहि राखी, कहति सखी मुसुकात॥
कबहूँ तौ काहूँ फँग परिहौ, तबहीं लीजौ चीन्हि।
सूर स्याम कौ पीतांबर मेरी, बेसरि लीजौ छीन्हि॥
॥१७४०॥२३५८॥

राग नट

यह सुनि हँसि चलीं ब्रज-नारि।
अतिहिं आईं गरब कीन्हे, गईं घर झख मारि॥

कबहुँ तौ हम देखिहैं, इक संग राधा-कान्ह।
भेद हमसौं कियौ राधा, निठुर भई निदान॥
बीस बिरियाँ चोर की तौ, कबहुँ मिलिहै साहु।
सूर सब दिन चोर कौ कहुँ, होत है निरबाहु॥
॥१७४१॥२३५९॥

राग कान्हरौ

भेद लियौ चाहति राधा सौं।
बैठि रहौ अपनैं घर चुपकैं, काम कहा बाधा सौं॥
यह मन दूरि धरौ अपनौ, बड़ बोलि गई कह कीन्हौ।
कैसैं निर्भय रही सबनि सौं, भेद न काहुहि दीन्हौ॥
वह कैसैं फँग परै तुम्हारैं, वाके घात न जानौ।
सूर सबै तुम बड़ी सयानी, मोहिं नहीं तुम मानौ॥
॥१७४२॥२३६०॥

राग बिलावल

फेर पारि देखौ मैं धरिहौं।
सुनि री सखी प्रतिज्ञा मेरी, तिहि दिन तोसौं लरिहौं॥
हमकौं निदरि रही है राधा, रिसनि रही मैं जरि हौं।
तब मेरैं मन धीरज ऐहै, चोरी करत पकरिहौं॥
राति दिवस मोहिं चैन नहीं अब, उनकौं देखत फिरिहौं।
सूरदास स्वामी के आगैं, नीकैं ताहि निदरिहौं॥
॥१७४३॥२३६१॥

राग नट नारायन

गोपी यहै करतिं चवाउ।
देखौ धौं चतुराइ वाकी, हमहिं कियौ दुराउ॥
लरिकई तैं करति ये ढँग, तब रहे सति भाउ।
अब करति चतुरई जानैं, स्याम पढ़ए दाउ॥
कहाँ लौं करिहै अचगरी, सबै ये उपजाउ।
आजु बाँची मौन धरि जौ, सदा होत बचाउ॥
दिवस चारिक भोर पारहु, रहौ एक सुभाउ।
सूर काल्हिहिं प्रगट ह्वै है, करन दै अपड़ाउ॥
॥१७४४॥२३६२॥

राग सूहा बिलावल

कहा कहति तू बात अयानी।
तुम यह कहति सबै वह जानति, हम सबतैं वह बड़ी सयानी॥
सात बरष तैं ये ढँग सीखे, तुम तौ यह आजुहिं है जानी।
वाके छंद-भेद को जानै, मीन कबहिं धौं पीवत पानी॥
हरि के चरित सबै उहिं सीखे, दोऊ हैं वे बारहबानी।
काल्हि गईं वाकैं घर सब मिलि, कैसी बुद्धि मौन की ठानी॥
केती कही नैंकु नहिं बोली, फिरि आईं तब हमहिं खिसानी।
सूर स्याम-संगति की महिमा, काहू कौं नैंकुहु न पत्यानी॥
॥१७४५॥२३६३॥

राग मारू

तब राधा सखियनि पैं आई।
आवत देखि सबनि मुख मूँद्यौ, जहँ-तहँ रहीं अरगाई।
मुख देखत सब सकुचि गईं, यह, कहा अचानक आई॥
करति रहीं चुगली हम याकी, तरुनी गईं लजाई॥
अति आदर बैठक दीन्हीं, कह्यौ कहाँ तुम आईं।
कहा आजु सुधि करी हमारी, सूर स्याम-सुखदाई॥
॥१७४६॥२३६४॥

राग धनाश्री

मैं कह आजु नवै री आई।
बहुतै आदर करति सबै मिलि, पहुने की पहुनाई॥
कैसी बात कहति तू राधा, बैठन कौं नहिं कहियै।
तुम आईं अपनै घर तैं ह्याँ, हमहुँ मौन धरि रहियै॥
जानि लई बृषभानु-सुता हँसि, तरक कह्यौ तुम कीन्हौ।
सूरदास ता दिन कौ बदलौ, दाउँ आपनौ लीन्हौ॥
॥१७४७॥२३६५॥

राग धनाश्री

दाउँ घाउँ तुमहीं सब जानति।
सदा मानि तुमकौं हम आईं, अबहूँ तैसैंहि मानति॥

तुम यह बात गाँस करि राखी, हमकौं गई भुलाइ।
ता दिन कह्यौ नहीं मैं जानौं, मानि लई सतिभाइ॥
चोर सबनि चोरै करि जानै, ज्ञानी मन सब ज्ञानी।
सूरदास गोपिनि की बानी, सुनि राधा मुसुकानी॥
॥१७४८॥२३६६॥

राग मारू

सखी यह बात तुम कही साँची।
जाकैं हिरदय जौन, कहै मुख तैं तौन, कैसैं हरि कौन, कही लीक खाँची॥
हरखि ब्रज-नारि भरि लेति अँकवारि, सब कहति तू कहा यह बात जानै।
हम हँसत कहति, तू रिस कहा गहति री, नागरी राधिका बिलग मानै।
तुमहिं उलटी कहौ, तुमहिं पलटी कहौ, तुमहिं रिस करतिं, मैं कछु न जानौं।
सूर-प्रभु कौ नाम मोहिं तुमहीं कह्यौ, स्रवन यह सुन्यौ तुम कछू-मानौ॥१७४९॥२३६७॥